संसार का मानचित्र
० ५०० १००० २००० ३०००
यात्रामार्ग
पूर्वार्द्ध
ब्रिटिश द्वीप
लंदन
नार्वे
स्वीडन
पेरिस
जर्मनी
फ्रांस
स्पेन
आस्ट्रिया
पोलैण्ड
यो रो प
तुर्की
कहिरा
मिश्र देश
सू डा न
अ र ब
अदन
आ फ्री का
अ र ब सा ग र
बम्बई
दिल्ली
काशी
कलकत्ता
भारतवर्ष
बंगाल की खाड़ी
मंगोलिया
पेकिन
चीन
शांघाई
हांगकांग
चीन सागर
जापान
तोकियो
याकोहामा
मार्स
हिन्द महासागर
केपकालोनी
आ स्ट्रे लि या
१० २० ३० ४० ५० ६० ७० ८० ९० १३०

अथ

पृथिवी-प्रदक्षिणा

या

विदेशमें २१ मास

लेखक—

शिवप्रसाद गुप्त ।

सम्पादक—

मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव ।

प्रकाशक—

ज्ञानमण्डल कार्यालय,

काशी ।

संवत १९८१ विक्रमीय

उपहार

मेरी सांसारिक यात्रा की सहचरी,

जब मैं पहली प्रवास-यात्रा के लिये गया था, उस समय मैं तुम्हें इस कापी को बताने के लिये जिसमें कहाँ कहाँ का देख रहा हूँ, संक्षेप अपनी यात्रा का हाल लिखे जाता। यह एक पुस्तक बन गई। तुम्हारे ही लिये यह लिखी गई थी, अतः तुम्हीं को यह सप्रेम भेंट देता हूँ।

तुम्हारा
[illegible]

३० कार्तिक
१९८०

श्रीमती भगवती को

उपोद्‌घात

परमात्माकी प्रकृतिकी अनंत विकृतियां ।

ब्रह्म अर्थात् परमात्माके स्वभावको प्रकृति कहते हैं । इस स्वभावकी अनंत नाम-रूप-क्रिया हैं । इसमें अनंत देश-काल-अवस्था हैं । सब द्रव्य-गुण-कर्म, पांचों महाभूत जो हमको ज्ञात हैं, और दूसरे जो कुछ महाभूत अथवा तत्त्व हमसे छिपे हों, यह सब भूगोल खगोल जो देख पड़ता है, आकाश और उसमें चमकते और घूमते फिरते गोल अंडेके स्वरूप ब्रह्मके अंड अर्थात् ब्रह्मांड, तारा, सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथिवी आदि, पृथ्वी [illegible], पर्वत, जंगल, नदी, तड़ाग, मरुभूमि, ज्वालामुखी, हिमशैल, आंधी ववंडर, तरह [illegible] (पुराणोंमें उनचास कही हैं), तरह तरहकी वायु (पुराणोंमें उनचास कही [illegible]), [illegible], जंगम, और उसमें चतुर्विध भूतग्राम, अर्थात् अनगिनत उद्भिज्ज, स्वेदज, अंड[illegible], जरा[illegible] के रूपके अनंत जीवजंतु, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, पारा आदि धातु, [illegible], लाल, नीलम, पुखराज, मानिक, लहसुनिया आदि मणि, मोती, मूंगा [illegible], लाखों प्रकारके पेड़, लता, घास, बांस आदि, लाखों प्रकारके जल[illegible], सूक्ष्म कीटाणु, छोटीसे छोटी और बड़ीसे बड़ी मछलियां, लाखों प्रकारके [illegible], घड़ियाल, सांप, छिपकिली, गोह आदि, लाखों प्रकारकी चिड़ियां, लाखों प्रकारके मांसाहारी, शाकाहारी, तथा उभयाहारी पशु, यथा सिंह, व्याघ्र, वृक आदि, हाथी, घोड़ा, ऊंट, गाय, भैंस, हरिन, गैंडा, शूकर आदि, भालू, कुत्ता, चूहा आदि, तथा इन जीवजंतुओंके [illegible] और वहिष्करण, इनके मन, वुद्धि, अहंकार आदि, इनकी ज्ञानेंद्रिय, आंख, नाक, कान आदि, इनकी कर्मेंद्रिय, हाथ, पैर, वाणी आदि, इन अंतःकरण वहिष्करणोंके [illegible] और कृत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, भाषण, आदान, गमन, चेष्टा आदिके [illegible], तथा भूख-प्यास और तृप्ति, शीत-उष्ण, राग-द्वेष, काम क्रोध, लोभ [illegible], करुणा-घृणा, स्मृति-विस्मृति, सावधानता-प्रमाद, संकल्प-विकल्प, संश[illegible] [illegible]विह्वलता, आलस्य-व्यवसाय, स्फूर्ति-शिथिलता, श्रम-विश्राम, संयो[illegible] प्रसाद-[illegible], [illegible]गना-सोना, हर्ष-शोक, स्वास्थ्य-रोग, संपत्ति-[illegible] यौवन-जरा, वृद्धि-ह्रास, [illegible] बनाई तरह तरहकी [illegible] [illegible]पांग गृह उद्यान, भोजन पान, वस्त्र आभूषण, [illegible] मत उपासना, अस्त्र शस्त्र, कला कौशल, तरह तरहके [illegible] जन्म और मरण, वंध-मोक्ष, प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप चित्तकी [illegible] और इन सबका निचोड़ सुख और दुःख——यह सब परमात्माके स्व[illegible] सब "प्रकृति" शब्दमें अंतर्गत हैं ।

उपनिषत् पुराण आदिमें इन भावोंका संग्रह थोड़े थोड़े शब्दों [illegible]

आत्मैवेदं सर्वम् । (उपनिषत्)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ (गीता)

[illegible] कोऽनुपश्यति ।
[illegible] विजुगुप्सते ॥ (ईशोपनिषद्)
[illegible] नवलक्षकं ।
[illegible] च पक्षिणः ॥
[illegible] चतुर्लक्षं च वानराः ।
[illegible] ततो मोक्षं तु साधयेत् ॥ (बृहद्विष्णुपुराणं)

[illegible] परमात्मनः कार्यभूताः सर्वेऽपि पदार्थाः [illegible] । (ऐतरेय[illegible]–सायणभाष्यम्)

अयमात्मेदं शरीरं निहत्यान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

पच्छिमके नये विज्ञानने, नये अधिभूतशास्त्रने, इवोल्यूशन् (evolution) आदि नामसे इन्हीं भावोंका पुनरुज्जीवन किया है, और सृष्टिके विकासका क्रम भी प्रायः वही माना है जो ऊपरके श्लोकोंमें कहा है, अर्थात् पहिले स्थावर, मणि, ओषधि, वनस्पति, तब जलजंतु, तब जल-स्थल जंतु कूर्मादि, तब पक्षी, पशु, वानर, और नर ।

प्रकृति–विकृतिका विवरण, वेद-इतिहास–पुराणादि ।

परमात्माकी प्रथम कृति, प्रकृष्ट कृति, प्रधान कृति होनेके हेतुसे इस संसारके कारण-रूप परमात्माके स्वभाव हीको प्रकृति कहते हैं । दूसरे सब अनंत रूपोंकी यही बीजरूप, सामान्यरूप, मूलरूप है । इसलिये मूलप्रकृति भी कहते हैं । इस मूलसे जो अनंतरूप पैदा होते हैं और फि[illegible] इसीमें लीन हो जाते हैं उनको विकृति कहते हैं । इन रूपोंके आविर्भावों और तिरो[illegible] वर्णनको ही इतिहास–पुराण कहते हैं । एक सौरसंप्रदाय (Solar System) एक [illegible]डकी उत्पत्तिसे लयतककी अवस्थाओंके वर्णनको पुराण कहते हैं । किसी एक मानववंशके, अथवा किसी एक मनुष्यकुलके, अथवा किसी एक मनुष्यके, चरितके वर्णनको इतिहास कहते हैं । [illegible] ही विदित हो जाता है कि पुराणमें समग्र शास्त्र अंतर्गत हैं--यदि लिखनेवाले और व्याख्यान करने [illegible]लेको सच्चा ज्ञान हो और उसने लिखते कहते ठीक ठीक वर्णन [illegible] [illegible]ने कुछ दूसरे ग्रंथ काव्य और शास्त्रके हैं उन सबको इतिहास-पुराणके [illegible] टीका समझना चाहिये । इसी लिये मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियोंमें

[illegible]हासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
[illegible]ल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥

[illegible] सब [illegible] शास्त्रीय ज्ञान है । और यह ज्ञान अनंत [illegible]रीय श्रुतिमें स्वयं कहा है । पर विशेष अर्थ इस शब्दका [illegible]आजसे प्रायः पांच हजार वर्ष हुए वेदव्यास ऋषिने अपने [illegible]मूल वेदका विभाग और पुनःसंस्करण करके संग्रह किया । ये [illegible], और अथर्वके नामसे अब प्रसिद्ध हैं । इनके साथ उपवेद, वेदांग, विद्या (सब ही विद् धातुसे बनी) लगी हैं । पर इन सबकी ताली भाष्य कहिये, उपव्याख्यान उपबृंहण कहिये, इतिहास-पुराण हैं ।

विना इनकी मददके वेदादिक ठीक ठीक नहीं समझे जा सकते । पर आज काल जो ग्रंथ पुराण-इतिहासके नामसे प्रसिद्ध हैं उनका ठीक समझना वेदोंके समझनेसे भी अधिक कठिन हो रहा है, और अर्थका अनर्थ हो रहा है । इसका मुख्य कारण यह मालूम होता है कि उनके सच्चे व्याख्यान और ज्ञानकी परंपरा, ऐतिहासिक कारणोंसे, आर्यजातिके ह्रासने, लुप्त हो गई । शास्त्र, शस्त्र, अन्नवस्त्र, परस्पर सेवा साहाय्य, इन सबका अन्योऽन्याश्रय है, और इन सबका एकमात्र आश्रय परस्पर स्नेह प्रेम सहानुभूति अथवा इससे भी घनिष्ठ और गूढ़ प्राणसंबंध और अंगांगिभाव पर है, जैसे मुख-बाहु-ऊरूदर-पादका । इस परस्पर प्रेमके क्षीण होनेसे, जातपांत और छूतछातकी अलगाअलगी अत्यन्त हो जानेसे, परस्पर ईर्ष्या द्वेष भय तिरस्कार अपमान अहंकार अविश्वासादिके बढ़नेसे आपसमें भेदभाव वैमनस्य द्रोह और युद्ध अधिक होकर क्रमशः स्वराज खो गया, और साथ ही साथ ज्ञान भी सब प्रकारका घटता गया । अनर्थपरंपराने एक दूसरेकी वृद्धि तथा देश और आर्यजातिका क्षय किया ।

ज्ञानके पुनरुज्जीवन और उससे देशके जीर्णोद्धारका उपाय— हिंदुस्तानी भाषा ।

ज्ञानके उत्कर्षसे शक्ति और सभ्यताका उत्कर्ष, शक्तिके उत्कर्षसे
न्योन्याश्रय मनुष्यलोकमें देख पड़ता है । उस देशमें ऐसे [illegible]तः ॥
हण, संपादन करनेका काम, और उसके द्वारा भारतक[illegible] लोकहितैषिणा ।
करनेमें सहायता देनेका काम, साक्षात् अथवा परंपर[illegible]तमद्भुतम् ॥
लित जीवित भाषाओंमें विविध ज्ञानोंका आविष्कार करनेस[illegible] पश्यतु ।
[illegible] ॥
तामें फैली हुई हृदयकी उत्साहशक्ति, शरीरकी प्राणशक्ति, बुद्धिकी ज्ञा[illegible] कमानेवाले
ही जातिकी सामुदायिक शक्ति होती है । और ज्ञान फैलानेका उपाय भाषा है । [illegible] दूर हो,
ज्ञानको सहजमें दूरतक घर घरमें फैला सकती है जो प्रचलित हो । इसलि[illegible]
संस्कृत भाषामें बड़े गुण हैं तौ भी वह भाषा आज दिन भारतवर्षमें वह काम [illegible]
न अंग्रेजी ही या अन्य कोई विदेशी भाषा, जो प्रचलित हिंदुस्तानी भाषा कर सकती है ।

संस्कृत भाषाको तो जैसे बड़ा भारी लोहेका संदूक समझना चाहिये जिसमें [illegible]
रूपी ख़ज़ाना सहस्रों वर्ष तक रक्षित रहा और रह सकता है । पर ऐसा संदूक जल्दी [illegible]
एक जगहसे दूसरी जगह नहीं ले जाया जा सकता है । चारों ओर धन बांटने पहुंचानेके
हल्की थैलियां या काठके संदूकोंकी ही ज़रूरत होती है । यही कारण है कि बुद्धदेव [illegible]र
महावीर जिनस्वामीने अपने अपने समयकी प्रचलित भाषाओंमें ही धर्मका प्रच[illegible]
कृतार्थतासे किया, संस्कृतमें नहीं । यद्यपि वे भाषाएं अब लुप्त [illegible], और इन [illegible]दि ग्रंथ महाभारता-
की शिक्षा और विचारका सार प्रायः संस्कृतके कतिपय ग्रन्थोंमें [illegible] ल्मीकिकी संस्कृत रामा-
ही इस नये कालमें जो भाषा देशमें मुख्य रूपसे व्यवहार की जाती [illegible] इन परमपावनी सर्व-
संस्कृतग्रन्थस्थ ज्ञानका तथा नवीन पाश्चात्य ज्ञानका भी प्रचार कर[illegible] प्रचार किया । उनके

हिंदी—उर्दू—हिंदुस्तानी

देशकी, आर्य जातिकी, अन्तरात्मा अथवा सूत्रात्म[illegible]

[illegible] पचास वर्षसे हिन्दीकी, तथा उसकी बहिन उर्दूकी, गोदमें एक नया साहित्य पैदा होकर बढ़ रहा है। वह समय भी आ रहा है जब दोनोंको मिलाकर [illegible], क्योंकि ऐसा किये बिना देशका उद्धार होना दुष्कर है। और यह मेल [illegible] जैसे गंगा यमुनाका मेल होता ही है वैसे इनका भी होगा। लिपि प्रायः [illegible] ही रहेगी, क्योंकि कुछ थोड़ीसी मात्रा इसमें बढ़ा देनेसे संसारकी जितनी भाषा हैं, अपने अपने सीधेसे सीधे और टेढ़ेसे टेढ़े स्वर और व्यंजन समेत, इस लिपिमें सब ही अस्खलित लिखी और पढ़ी जा सकती हैं, जैसा किसी दूसरी लिपिमें नहीं। पर भाषाका नाम, विवाद शांत करनेके लिये, हिन्दीकी जगह हिन्दुस्तानी कर देना होगा। यद्यपि जैसे पंजाबकी भाषा पंजाबी, बंगालकी भाषा बंगाली, अरबकी अरबी, फ़ारसकी फ़ारसी, वैसे हिंद देशकी भाषा हिंदी मानने पुकारनेमें हमारे मुसल्मान भाइयोंको कोई तरद्दुद तो नहीं होना चाहिये, तौ भी हिंदी–उर्दूका झगड़ा छिड़ जानेसे अब हिंदीका यह अर्थ करनेसे भी उनको संतोष शायद न हो, और "हिंदुस्तानी" इस नामको मिली बोलीके लिये वे भी पसंद कर रहे हैं, इस लिये यही नाम काम चलानेको और झगड़ा मिटानेको रख लिया जाय [illegible] नहीं है। इसके रूपके बारेमें–वाक्यरचना, शब्दोंका क्रम, [illegible] और परमात्माकी प्रथम [illegible] हिंदी उर्दू दोनोंमें एक ही हैं, भेद इतना ही है कि जब रूप परमात्माके स्वभाव हीको प्रकृति [illegible] तो भाषाको हिंदी कहते हैं, जब अरबी सामान्यरूप, मूलरूप है। इसलिये [illegible]। हिंदुस्तानी भाषामें ये दोनों प्रकारके लफ़्ज़ हैं और [illegible] इसीमें लीन हो जाते हैं [illegible] भी यकसां बरते जायंगे। अभी ऐसी मिलावटके [illegible] वर्णनको ही इतिह[illegible] और लिखने वालोंमें आपसमें मतभेद है। कोई [illegible] चाहिये, कोई कहते हैं नहीं। पर देशकालकी अवस्था देखते [illegible] मिलावटको छोड़ कोई दूसरी गति नहीं सूझ पड़ती। और आदत [illegible] सब मुश्किलको सहज कर देती है, अप्रियको सह्य, नागवारको पसंदीदा, [illegible] देती है। और मामूली हिंदीमें तो अब भी बहुतसे अरबी फ़ारसी लफ़्ज़ मिले [illegible] हैं, और वैसे ही मामूली उर्दूमें बहुतसे संस्कृत लफ़्ज़, थोड़ी थोड़ी शकल बदल कर।

हिंदुस्तानी भाषाके साहित्यकी वृद्धिकी आवश्यकता।

संस्कृतके जानने वाले जो लोग पुरानी परिपाटी हीमें पले हैं वे हिंदी भाषाको इसमें अधिक ग्रंथोंके लिखे जानेको अनादर और शंकाकी आँखसे ही प्रायः और संस्कृतके शब्दों और ग्रंथों और अक्षरार्थोंको ही पकड़े बैठे रहना चाहते हैं। [illegible] युगके धर्मको, नये समयकी नयी आवश्यकताओंको, रोक नहीं सकते, [illegible] चाहते हैं उसी ओर स्वयं खिंचे चले आते हैं। हवा किस [illegible] अनुमान इसीसे होता है कि भारतवर्षके सब प्रांतोंमें, संस्कृतके [illegible] में, ठेठ संस्कृतज्ञ विद्वान् अध्यापक भी ग्रंथके विषयका व्याख्यान [illegible] मातृभाषामें ही करते हैं। ऐसी दशामें बुद्धिमानी यही है [illegible]

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयाः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनंतं विदधति ।

"जब संसारके सुख दुःखके भोगके विषय, इंद्रियोंके विषय, अवश्य ही एक न एकदिन जानेवाले हैं, तो उनको दाँतोंसे पकड़े रहने और रो रो कर और विवश होकर छोड़नेसे यह बहुत अच्छा है कि जब छोड़नेका उचित स्वाभाविक समय आ गया तब आप ही समझदारीसे उनका त्याग कर दिया जाय, और उसके बदलेमें अनंत शांतिका सुख प्राप्त किया जाय।"

इसी न्यायके अनुसार वेदोंके अर्थको व्यासजीने महाभारतके और पुराणोंके द्वारा वर्णन किया,

स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्म श्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ।
भारतव्यपदेशेन वेदार्थमुपदिष्टवान् ॥
चकार संहिताश्चान्या व्यासः कृपणवत्सलः ।
प्रवृत्तस्सर्वभूतानां हिताय भगवान् सदा ॥
प्रायशो मुनयः सर्वे केवलात्महितोद्यताः ।
द्वैपायनस्तु भगवान् सर्वभूतहिते रतः ॥
स्तुत्यं तस्यास्ति किं चान्यद् येन लोकहितैषिणा ।
वेदा व्यस्ताः कृतं चापि महाभारतमद्भुतम् ॥
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
इत्युक्ताः सर्ववेदार्था भारते तेन दर्शिताः ॥

"गृहस्थीके कामोंमें सनी हुई स्त्रियों[illegible]जी कमानेवाले मज़दूरीपेशोंका, जिनको श्रुति और शास्त्र पढ़नेका अवसर [illegible] है [illegible] कैसे दूर हो, उनका कल्याण कैसे हो, इसी चिंतासे आकुल वत्सलहृदय व्या[illegible]जीने भारत[illegible] बहाने वेद और शास्त्रका सब सार सार अर्थ कह दिया। [illegible] मुनि लोग अपना ही हित साधनेकी फिक्रमें रहते हैं, पर व्यासजी सब प्राणियोंके हितकी [illegible] ही सदा लगे रहे। इससेबढ़के उनकी और क्या प्रशंसा की जाय कि उन्होंने वेदोंका संस्करण और विभाग किया और अद्भुत ग्रंथ महाभारत रचा—इसी इच्छासे कि सबका भला हो, सब क्लेशोंको पार करें, सब अच्छी राह चलें, सब अच्छे दिन देखें, [illegible] पावें।"

इस प्रथासे जान पड़ता है कि व्यासजीके समयमें भारतवर्षमें वैदिक भाषाका [illegible] कम हो गया था और उस संस्कृतका बहुत प्रचार था जिसमें रामायण महाभारतादि ग्रंथ लिखे गये। जब वह समय भी बीत गया और ऐसा समय आया कि रामायण महाभारतादिकी संस्कृत भी विरल हो गई तब सूरदास तुलसीदास आदिने वाल्मीकिकी संस्कृत रामायण और व्यासजीकी संस्कृत भागवत आदिका हिंदीमें उल्था करके इन परमपावनी सर्वशिक्षामयी कथाओंका आपत्कालके अंधेरेमें दीपककी नाईं फिरसे प्रचार किया। उनके पीछे धीरे धीरे पुराण, दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयके बहुतसे संस्कृत [illegible] अनुवाद हिंदीमें क्रमशः होता रहा और अब भी हो रहा है।

१५८

संस्कृत और प्राकृत ।

प्रसंगवशसे संस्कृत और प्राकृतके भेदके विषयमें कुछ चर्चा उचित जान पड़ती है ।

भाषामात्रका प्रयोजन यही है कि बोलनेवालेकी बुद्धिमें जो भाव है उसका ज्ञान सुननेवालेकी बुद्धिमें उत्पन्न हो जाय । उत्तम, शोधित, परिष्कृत, सम्यक्-कृत, संस्कृत भाषाके द्वारा उत्तम, असंदिग्ध, सविशेष, सूक्ष्म, यथातथ ज्ञानका संक्रमण होता है । साधारण, अनिश्चित, अनुत्कृष्ट, स्थूल ज्ञानका संक्रमण साधारण, अपरिमार्जित, अपरिष्कृत, असंस्कृत, प्राकृत भाषासे होता है । भाषाके ये दोनों स्वरूप, अर्थात् संस्कृत और प्राकृत, प्रत्येक शालीनता–सभ्यतासंपन्न महाजातिकी भाषामें पाये जाते हैं । जैसे अंग्रेजी भाषामें, जो भाषा पढ़े लिखे लोग बोलते हैं और जो अच्छी पुस्तकोंमें प्रयोग की जाती है वह अंग्रेजी-की परिष्कृत संस्कृत है, और जो इंग्लिस्तानके ग्रामीण जन बोलते हैं और जिसके बहुत भेद " डायालेक्ट्स (dialects) के नाम से प्रसिद्ध हैं वह सब उसकी प्राकृत है ।

प्रकृति शब्दका अर्थ राजधर्म-शास्त्रमें सर्वसाधारण प्रजा (अर्थात् प्रजापति ब्रह्मा, ईश्वर, आत्माकी प्रजा) है । और सब जो राष्ट्रके सात अंग हैं वे इसी प्रकृतिकी विकृतियां हैं, इसीसे उत्पन्न होती हैं, इसीमें लीन होती हैं । इस प्रकृतिकी भाषा प्राकृत । उस प्राकृतके देश काल अवस्था वागिंद्रिय आदिके भेदसे बहुत भेद होते हैं जिनको विकृत कह सकते हैं, यद्यपि ऐसा शब्द इस अर्थमें प्रचलित नहीं है । इन्हीं विकृतोंमेंसे जब कोई एक रूप वि-आ-कृत हो जाता है, वि-शेष आ-कारसे युक्त किया जाता है, वि-आ-करण व्याकरणके नियमोंसे मर्यादाबद्ध कर दिया जाता है तब वह परिष्कृत संस्कृत हो जाता है, और पुस्तकों-में उसका व्यवहार होनेसे, और उन पुस्तकोंके चारों ओर देश प्रदेशमें तथा पुश्त दर पुश्त प्रचार होनेसे वह संस्कृत रूप भाषाका स्थिर हो जाता है, और क्रमशः उसमें ज्ञानका संग्रह बहुतेरा हो जाता है ।

तो यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि जिस किसी भी भाषाका परिष्कार हो सकता उसके परिष्कृत रूपको संस्कृत कह सकते हैं । और देववाणी, ब्रह्मगिरा, आदि नामसे सकते हैं । क्योंकि अध्यात्मशास्त्रसे मालूम होता है कि देव शब्द का अर्थ इंद्रिय है और ब्रह्माका अर्थ बुद्धि । यथा

मनो महान् मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः । (वायुपुराण)

सभी जीवजंतु, सभी मनुष्य जाति परमात्माकी कला हैं और किसी भी मनुष्य जातिके समष्टि रूप आत्माको ही उसका सूत्रात्मा महानात्मा ब्रह्मा आदि पदसे कह सकते हैं; और उसकी प्रेरणासे जो परिष्कृत भाषा वह जाति बोले वह संस्कृत ही कहलावेगी ।

जैसे 'वेद' शब्दका अर्थ आजकाल भारतवर्षमें संकुचित हो रहा है वैसे ही अधिकतर गुर्वर्थ शब्दोंका भी, यथा] संस्कृत, प्राकृत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, धर्म, आदि । यदि इन शब्दोंको अध्यात्मशास्त्रकी सात्त्विक दृष्टिसे देखिये तो इनके अर्थ संसारभरमें एक दिखाई पड़ेंगे, और सनातन-आर्य-वैदिक-मानव धर्मकी सच्ची बड़ाई जान पड़ेगी कि पृथिवीके सब देशोंमें हो सकता है । पर यदि अहंकार-तिरस्कारकी राजस

तामस दृष्टिसे देखियेगा तो आपको यही देख पड़ेगा कि सिवाय आपके दूसरा कोई पवित्र, धर्मात्मा, और सनातनधर्मका अनुयायी हो ही नहीं सकता, और सनातनधर्मका समग्र तेजः-पुंज आपके ही शरीरमें अथवा किसी किसी कठिनतासे आपके कुल कुटुंब अथवा अवांतर विशेष जातिमें ही पिंडीभूत हो गया है और शेष सारा संसार अधर्मके अंधकारमें पुकार रहा है।

इन बातोंको विचारकर, देशकाल देखते हुए, हमको यह उचित है कि जिस किसी एक मनुष्यवाणीको हमने इस जन्ममें बचपनसे संस्कृतके नामसे विशेषतः पुकारे जाते सुना है उसकी भक्ति और अर्चनामें इतने लीन न हो जायँ कि जातिकी सूत्रात्मासे महानात्मासे प्रेरित और आविष्कृत अन्य जीवद्भाषाका सर्वथा अनादर ही करते रहें। बल्कि उस विशेष संस्कृतमें जो ज्ञान रक्खा है उसकी सर्वथा रक्षा करते हुए भी उसको इस प्रचलित भाषामें लोकहितार्थ यथाशक्ति यथासंभव अनुवाद करके फैलावें, तथा इस नवीन युगानुरूप भाषामें नये ज्ञानका भी संग्रह और प्रचार करें। और यदि बन पड़े तो इस नये ज्ञानके निचोड़को उस प्राचीन संस्कृतमें भी लिख कर रख दें जिसमें चिरस्थायी हो जाय।

श्री शिवप्रसादजीका प्रयत्न।

ऐसे भावोंसे भावित होकर हिंदी अथवा हिंदुस्तानी भाषाद्वारा भारतवर्षमें ज्ञानके प्रचारके लिये, काशीनिवासी, प्रतिष्ठितकुलभूषण, अत्युदारस्वभाव, देशभक्त, लोकप्रिय सज्जन श्री शिवप्रसाद गुप्तजीने 'ज्ञानमंडल' छापाखानेकी स्थापना ज्येष्ठ संवत् १९७६ में की, एक दैनिक पत्र "आज" का जन्माष्टमी संवत् १९७७से आरंभ किया, तथा काशी विद्यापीठकी भी स्थापना की, जिसका कार्यारंभ स्वयं महात्मा गांधीके पवित्र हाथोंसे सौर २८ माघ संवत् १९७८ को हुआ, और जिसमें अध्ययनाध्यापनका मध्यम हिन्दुस्तानी भाषा है।

स्वराजके लिये राजनीतिक आंदोलन जो भारतवर्षमें हो रहा है उसके संबंधकी लिखापढ़ी भाषणव्याख्यान रिपोर्ट आदि तथा प्रांतीय कान्फ़रेंस और सर्वभारतीय कांग्रेसकी कार्रवाई हिंदुस्तानी भाषामें हो इसके लिये आंदोलनमें अधिक जोर शुरूसे प्रायः श्री शिवप्रसादजी हीने दिया, और बहुधा इन्हींके वादविवादसे दूसरे नेताओंका भी इस ओर मन फिरा। और जहां पहिले अंग्रेजीमें और खास खास शहरोंमें ही सब काम होता था और सैकड़ोंकी जाग मुश्किलसे होती थी वहां अब जिले जिले और कस्बे कस्बेमें देशकी बोलीमें कार्रवाई होती है और लाखोंकी जाग हो गई है।

ज्ञानमंडल प्रेससे अच्छी अच्छी पुस्तकें राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि शास्त्रीय और गंभीर विषयोंकी बीससे अधिक इन तीन-चार वर्षोंमें निकल चुकी हैं। तथा सर्वसम्मतिसे हिन्दी पत्रोंमें "आज" पत्र विशेष मान्यगण्य है। और काशी-विद्यापीठमें देशभक्त, विद्याप्रेमी तथा त्यागी अध्यापकों और छात्रोंका संग्रह क्रमशः बढ़ता जाता है।

यह ग्रंथ।

पर इतनेसे संतुष्ट न होकर श्री शिवप्रसादजीकी यह इच्छा हुई कि स्वयं उत्तम ग्रंथ रचकर हिंदीके सरस्वती कोशमें स्थापित करें। उस इच्छाकी पूर्ति १५३ प्रदक्षिणा" नामक ग्रंथसे हुई है। १५८

ग्रंथके आदिमें श्री शिवप्रसादजीने बड़े सादे पर बड़े प्यारे और सरस शब्दोंमें अपनी जीवनी लिख दी है और फिर जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा आपने संवत् १९७१-७२ अर्थात ईसवी सन् १९१४-१६ में की उसका वर्णन किया है । इस देशकी पुरानी प्रथा है कि देशाटन ज्ञानवृद्धिका उत्तम उपाय है । पुराणमें कथा है कि हनूमान जब विद्याग्रहणके योग्य हुए तो उनके वृद्धोंने कहा कि अब गुरुके यहां जाकर विद्या सीखो । किस गुरुके यहां? सलाह होकर यह स्थिर हुआ कि सूर्य देव दिन भर फिरा ही करते हैं, सारे संसारको देखते रहते हैं, जितना हाल दुनियाका इनको मालूम होगा दूसरेको नहीं, प्रत्यक्ष ज्ञान ही तो ज्ञान है, सुना सुनी कुछ नहीं, तो बस इन्हींसे सीखना उचित है । पहुंचे एक कुदानमें हनूमानजी सूर्य देवके रथके पास । कहीं बिना समयके ही राहु तो ग्रहण करने नहीं आया? नहीं, देख भालकर सूर्य देवने स्थिर किया कि हनूमान् है । "कहोजी, क्या चले?" तो, "विद्या सीखनेको" । तो, "क्या नहीं देखते किस दुर्दशामें पड़ा हूं, दिन रात चक्कर खाता रहता हूं, छुट्टी कहां जो पढ़ाऊं" । "ठीक, मैं भी आपके साथ साथ दौड़ता हूं, आप अपना भी काम कीजिये और मेरा भी काम कीजिये" । "वाह, फिर क्या पूछना है, जो मेरे साथ दौड़ोगे तो जो मैं देखता हूं वह तुम भी आपही आप देख लोगे, मुझे तो कुछ मिहनत ही न पड़ेगी, आप ही सब कुछ सीख लोगे । हां, कहीं कोई विशेष अचम्भेकी बात न समझमें आवे तो पूछ लेना" । एक ही पृथिवी परिक्रमामें हनूमानजी महापंडित हो गये ।

प्रिय पाठक, आप भी श्री शिवप्रसादजीके साथ साथ इस पुस्तक रूपी रथपर सवार हो कर पृथ्वीप्रदक्षिणा कर आइये । नारदजीके अथवा कथानायक और अन्य पात्रोंके भ्रमणके वर्णनके द्वारा प्रकृतिके अनंत प्रकारों विकारों आविष्कारोंका नये नये वेशमें श्रोता पठिता लोकोंको ज्ञान देना—पुराण इतिहासका एक मुख्य अंग है । इस पृथ्वीप्रदक्षिणाकी पुस्तकसे वर्तमान पृथ्वी मंडलके मुख्य मुख्य देशोंके प्राकृतिक दृश्यों तथा वहां वहांके मनुष्यों-के रहन सहनके प्रकारों तथा शिक्षा रक्षा जीविका संबन्धी संस्थाओं और व्यवसायोंके गुण दोषोंका ज्ञान तथा उनमेंसे कौन भारतवर्षके लिये अनुकरणीय हैं और कौन वर्जनीय हैं इसका परामर्श, बड़े सरस और रोचक शब्दोंमें मिलता है ।

खेदका विषय है कि ग्रन्थकर्त्ताने अपनी लेखनीको और अधिक अवसर नहीं दिया, और कई जगह घूमने फिरनेकी थकान या दूसरे अनिवार्य कार्योंमें व्यग्र होनेके कारणसे रोजका वृत्तान्त उसी दिन न लिख कर दूसरे दिनके लिये छोड़ रखा, जिसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन भी वह न लिखा जा सका और पुस्तकमें कई जगह कमी रह गई । इस कारण पाठककी आशाका भंग फिर फिर होता है । पर जितना हमको मिलता है उसीके लिये धन्यवाद देना चाहिये, और अधिक क्यों नहीं मिला इसके लिये दोष न देना चाहिये, यद्यपि यह पुरानी प्रथा है, और मनुष्यका स्वभाव ही है, कि

आदि । य लाभाल्लोभः प्रवर्धते । श्रेयसि केन तृप्यते ॥

एक दि... लोभ बढ़ता है । अच्छी वस्तुसे कौन अघाता है ।

भगवानदास ।

विषय-सूची।

प्रथम खंड—मिश्रदेश

द्वितीय खंड—अमरीका

तृतीय खंड—जापान

चतुर्थ खंड—चीन

चित्र-सूची।

प्रथम भाग।

[जो चित्र पुस्तक-पृष्ठपर ही छपे हैं, उनकी सूची]

औ

चतुर्थ खण्ड

द्वितीय भाग ।

[जो चित्र पुस्तक-पृष्ठसे पृथक् छपे हैं, उनकी सूची]

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

मान चित्रोंकी सूची ।

लेखककी भूमिका ।

जब मैं संवत् १९७१ में घरसे निकल विदेश-यात्रा करने चला, तब मेरी माताजीको गत हुए एक वर्ष भी व्यतीत नहीं हुआ था । मेरी पत्नीको घरमें अकेले रहनेका कभी मौका नहीं पड़ा था, इस कारणसे तथा और भी कई कारणोंसे मुझे बिदा करते वक्त मेरी पत्नी बहुत अधीर हो गयीं और मैं बड़े दुःखके साथ रोता हुआ घरसे विदा हुआ । अपनी पत्नीके दुःखको कम करनेके लिये मैंने उनसे वादा किया था कि मैं तुम्हें रोज रोजका समाचार लिखा करूँगा; पर डाक तो रोज आती ही नहीं, इस लिये रोज़ पत्र भेजना असम्भव था । मैंने यह देखकर स्थिर किया कि रोजका वृत्तान्त सप्ताहमें एक बार जब डाक आती है घर भेजा करूँगा । यही इस पुस्तकके लिखे जानेका आदिकारण है । इसके पहिले मुझे पुस्तक क्या, लेखोंके लिखनेका भी बहुत कम अवसर मिला था । मैं कोई विद्वान् या लेखक नहीं हूँ, एक मामूली दर्जेका पढ़ा-लिखा साधारण आदमी हूँ । मेरे लिये एक पुस्तक लेकर उपस्थित होना अनधिकार चेष्टा है, पर मैं ऐसा क्यों कर रहा हूं, यही बतानेके लिये तथा इस पुस्तकके सम्बन्धमें और भी दो चार बातें कहनेके लिये यह भूमिका लिखना आवश्यक हुआ, अस्तु।

उपर्युक्त निश्चयके अनुसार जब मैं रोज रोजका वृत्तान्त लिखने बैठा तो मेरे परम मित्र और यात्राके साथी अध्यापक श्री विनयकुमार सरकारने मुझे बड़ा उत्साह दिलाया और मुझपर दवाब डालकर इस बातके लिये राजी किया कि मैं इस विवरणको ज़रा विस्तारसे लिखूँ जिसमें पीछेसे यह लेख या पुस्तकके रूपमें छापा जा सके । उन्हींके उत्साह दिलानेका यह फल है कि आज मेरे ऐसा आदमी भी इस प्रकारकी अनधिकार चेष्टा कर रहा है कि विद्वज्जनोंके सामने यह पुस्तक लेकर उपस्थित हो रहा है । इसमें जो भूल-चूक और त्रुटियाँ हैं उनका पूरा दायित्व मेरे ऊपर है, वे मेरे अज्ञान व अल्प जानकारीका फल हैं । यदि पाठकोंको इसमें कोई जानने लायक बात मिले तो उन्हें उसे श्री विनयकुमार सरकारके अनुग्रह व विद्वत्ताकी छाप समझनी चाहिये मैं यहाँ इतना कहे विना नहीं रह सकता कि यदि उक्त अध्यापक मेरे साथ न होते तो मैं कदापि इस पुस्तकको न लिख सकता। अध्यापक श्री विनयकुमार सरकारने वंग-भाषामें कई जिल्दोंमें एक बड़ी उत्कृष्ट पुस्तक अपने विदेश-भ्रमणके अनुभवोंका वृत्तान्त देनेके लिये लिखी है। इस पुस्तकका नाम "वर्त्तमान जगत्" है । जैसे जैसे ये इस पुस्तकको लिखते थे मुझे सुनाते जाते थे । मैं कुछ तो उनकी पुस्तकसे, और कुछ इधर उधरकी बातें मिला जुलाकर अपने वृत्तान्तको लिखता जाता था। उनकी पुस्तकका पूरा अनुवाद या छायानुवाद भी देना मेरे लिये असंभव था, इसलिये जो कुछ मेरी समझमें आता था और मैं अपने भाइयोंको बताना चाहता था उसे लिखता जाता था। यह विवरण मैं पूर्व विचारके अनुसार प्रति सप्ताह अपनी पत्नीके पास न भेज अधिक अन्तरसे अपने बन्धु, अभ्युदय व मर्यादाके सम्पादक, श्री कृष्णकान्त मालवीयको भेजने लगा। मैंने उनसे बिला मेरा नाम दिये इसे क्रमशः अभ्युदय व

मर्यादामें छापने जानेका अनुरोध किया। उन्होंने मुझपर बड़ा अनुग्रह कर इसका अधिक भाग मर्यादा और अभ्युदयमें भिन्न भिन्न शीर्षक देकर छाप दिया। इसके लिये मैं उनका जितना उपकार मानूँ वह थोड़ा है।

जब मैं शांघाईसे अपने मित्र अध्यापक सरकारसे विदा हो घरकी ओर चला तो उन्होंने अत्यन्त आग्रहपूर्वक मुझसे अनुरोध किया कि मैं अपने लेखोंको पुस्तकके रूपमें अवश्य निकालूँ। घर लौटनेपर मैंने इस विचारसे मर्यादा और अभ्युदयकी फाइल उलटनी शुरू की और जहाँ तक मेरे लेखोंके अंश छपे थे उन्हें एकत्र किया। छापते समय मेरे बन्धु कृष्णकान्त जीने मेरे लेखोंको बहुत कुछ शोधनेका यत्न किया था। जहां वे मेरे खराब अक्षरोंको न पढ़ सकते थे वहाँ वे उस अंशको छोड़ देते थे अथवा जैसा कुछ पढ़ सकते थे वैसाही छाप देते थे। जब मैंने इन सब लेखोंको एकत्र कर पढ़ा तो मुझे इन्हें अपनी लिखी हुई प्रतिसे मिलानेकी इच्छा हुई। बड़े परिश्रमसे अभ्युदय-कार्यालयकी रद्दीकी टोकरियोंमेंसे असली लेखोंको खोज निकालनेका यत्न किया गया। एकाधको छोड़कर प्रायः सभी अंश प्राप्त हो गये। इस प्रकार मेरे पास एक मेरी लिखी हुई प्रति हो गयी और दूसरी अभ्युदय व मर्यादाके कालमोंसे निकाली प्रति हुई। इस विचारसे कि इसकी भाषा ठीक कर ली जाय मैंने छपी हुई प्रति अपने पूज्य और सम्मानित मित्र सेण्ट्रल हिन्दू-कालेजियट स्कूलके भूतपूर्व अध्यापक पंडित लक्ष्मीनारायण त्रिपाठीको दे दी। उक्त पंडित जीने बड़े परिश्रमसे इसकी भाषा शोधनेका प्रयत्न किया था। दुःख है कि पंडित जी इस पुस्तकको छपी हुई न देख सके। ईश्वर उनकी आत्माको सद्गति दे।

शुद्ध हो जानेके बाद इस पुस्तकके छापनेका विचार हुआ। अभिलाषा यह थी कि पुस्तक सुन्दर छपे, इसलिये पहिले प्रयाग, मुंबई आदि कई स्थानोंमें छापनेका यत्न किया, पर सब निष्फल हुआ। इसी बीचमें ज्ञानमण्डल यंत्रालयका जन्म हो चुका था और मैंने भी इसे यहीं छापनेका विचार निश्चित कर लिया, पर अनेक विघ्न पड़ते रहे और इसमें विलम्ब होता रहा। अंगरेजीमें एक कहावत है 'दि बेटर इज़ दि वर्स्ट एनिमी आफ दि गुड'*, इस कहावतके अनुसार पुस्तकको बहुत अच्छी बनानेके विचारने इसमें इतना विलम्ब करा दिया और वह मंशा भी पूरी न होने दी। खैर, किसी न किसी तरह अब यह अवसर मिला है कि यह पुस्तक छपकर आप लोगोंके हाथमें रखी जा सके। यह उसके अनुग्रहका फल है जो संसार-के जीवोंके कर्मका विधाता है। यदि वह कोई व्यक्ति विशेष है जिसे क्षुद्र मनुष्योंके धन्यवादकी आवश्यकता है तो मैं इस अनुग्रहके लिये उसे अनेकानेक धन्यवाद देता हूं। मैं यहाँ इतना अवश्य ही कहना चाहता हूं कि इस पुस्तकको लिखना और प्रकाशित करना मेरे लिये प्रायः असंभव ही था। यह न जाने क्यों और किस प्रेरणासे पूरी हुई, मैं नहीं कह सकता। यदि इसका कोई उपयोग है तो वह पीछे ज्ञात होगा।

मुझे हिन्दीकी क्रमबद्ध शिक्षा नहीं मिली थी। जैसा आप मेरी जीवनीमें आगे पढ़ेंगे, मुझे प्रारंभसे ही उर्दू-फारसीकी शिक्षा दी गयी थी और मेरी भाषापर उर्दू की ही छाप है। पीछे भी मैंने हिन्दी बहुत कम पढ़ी है, इस कारण आप इसे

*The better is the worst enemy of the good.

पुस्तकमें जगह जगहपर उर्दूके मुहावरे पायेंगे जो सम्पादकके परिश्रमसे भी पूर्णतया नहीं निकाले जा सके। इसके अतिरिक्त पाठकोंको अनेक स्थलोंपर ऐसे शब्द भी बहुतायतसे मिलेंगे जिन्हें आजकलके पढ़े-लिखे लोग ग्राम्य तथा स्थानीय कहेंगे। इनका प्रयोग मैंने जान बूझकर किया है और सम्पादकके कहनेपर भी इन्हें निकालने नहीं दिया। इसका कारण केवल यही है कि मैं काशीका रहनेवाला हूं और पुस्तकमें बनारसीपन लाना चाहता था। मैंने बहुत सी जगहोंपर इस तरहकी मिसालें दी हैं जिससे मेरे भावोंको समझनेमें कमसे कम काशीवालोंको दिक़त न पड़े। कुछ ऐसे ग्राम्य शब्द भी जो मुझे बहुत प्यारे लगते हैं मैंने आग्रहपूर्वक पुस्तकमें रहने दिये हैं। आशा है यदि विद्वानोंको ये बातें खटकें तो वे मुझे एक अल्पज्ञ विद्यार्थी समझ क्षमा करेंगे।

मैंने यथासंभव इस पुस्तकमें घटनावलीका विवरण विक्रम संवत्में देनेका यत्न किया है, किन्तु आजकल ज्ञान-स्रोत पश्चिमसे प्रवाहित होता है, इस कारण प्रायः सब घटनाएँ खीष्ट संवत्के अनुसार मिलती हैं। उनमें साधारणतया ५७ (जनवरी-फरवरी-मार्चकी घटनाओंके लिये ५६) जोड़कर विक्रम संवत् बना लिया जाया करता है। इसी क्रमका मैंने भी अनुसरण किया है, किन्तु यह सर्वथा अभ्रान्त नहीं है। इस कारण इस पुस्तकमें कहीं कहीं तिथि या संवत्की भूल होना संभव है, उसके लिये भी मैं क्षमा चाहता हूं। मनुष्यों और स्थानोंके नाम देते समय मैंने यथासंभव यह यत्न किया है कि जिस मुल्कके लोग अपने नामोंका जैसा उच्चारण करते हैं वैसा ही इस पुस्तकमें भी दिया जाय। हिन्दी पाठकोंको सब जगहोंका नाम अंगरेजी उच्चारणके अनुसार देना मुझे आवश्यक नहीं जान पड़ा। यदि मुझे पुरुषों और स्थानोंके नाम अपनी भाषाके उच्चारणके अनुसार मिलते तो मैं उन्हींको देता, किन्तु उनके अभावमें जो प्रकार मैंने वर्त्ता है, आशा है, वह पसन्द किया जायगा।

यह विवरण रोजनामचेके रूपमें लिखा गया था और अनेक जगहोंमें 'आज मैंने यह देखा' या 'आज मैंने अमुक काम किया' इस प्रकार प्रारंभ किया गया है, किन्तु पुस्तकके रूपमें रोजनामचेकी तिथियोंके देनेकी आवश्यकता न थी व परिच्छेदोंको ठीक करनेके लिये कई दिनके लेखोंको एक एकमें मिलाना भी आवश्यक था, इस कारण बहुतसे स्थलोंसे रोजनामचेका रूप हटा दिया गया है, किन्तु जहां उसका रखना अनिवार्य अथवा आपत्तिशून्य प्रतीत हुआ वहाँसे वह नहीं हटाया गया। यह लेख-माला जिस समय लिखी गयी थी उसे आज आठ बरससे अधिक होगये। बहुत सी घटनाएँ बदल गयीं पर यात्रा-वृत्तान्त होनेके कारण पुस्तकमें विशेष परिवर्त्तन नहीं किया गया। यदि मैंने स्वयं इसके संशोधनका कार्य किया होता तो शायद मैंने एक जगह भी परिवर्त्तन न किया होता।

मैंने इस पुस्तकको यथासंभव रुचिकर बनानेकी चेष्टा की है, इसी कारण इसे बोलचालकी भाषामें लिखनेका यत्न किया है और प्रायः इसमें साधारण बातें ही लिखी हैं। किन्तु कई स्थलोंपर हिन्दू विश्वविद्यालयके विचारसे कई विदेशी शिक्षालयोंका विस्तारसे वर्णन किया है, जो, संभव है, बहुतसे लोगोंको अरुचिकर जान पड़े, किन्तु मेरे ख्यालसे उसका उपयोग भी है और मुझे आशा है कि दिन बीतनेसे उसकी उपयोगितामें अन्तर न पड़ा होगा।

ज्ञानमण्डलके नियमोंके अनुसार इस पुस्तकमें भी विभक्तियोंको मिलाकर लिखनेकी पद्धतिका अनुसरण किया गया है, इस कारण सम्भव है पढ़नेवालोंको कहीं कहीं—खासकर जापान, कोरिया व चीनके नामोंके सम्बन्धमें, उदाहरणार्थ पृष्ठ ३०२ में, भ्रम हो सकता है. किन्तु मुझे आशा है कि ज़रा सावधानीसे पढ़नेपर या शब्दोंके पूर्वापर सम्बन्धका विचार करनेपर विला किसी तरद्दुदके यह समझमें आ जायगा कि कहाँ 'का के-की-को-ने' इत्यादि विभक्तियोंके रूपमें आये हैं और कहाँ वे शब्दों या नामोंके ही अंग हैं।

इसमें बहुतसी जगहोंपर सामाजिक तथा राजनीतिक मामलोंपर मेरी निजकी रायकी छाया भी देख पड़ेगी उसके लिये मैं स्वयं उत्तरदायी हूं, कोई दूसरा नहीं।

मैं भूमिकाके इस अंशको विला यह लिखे समाप्त नहीं कर सकता कि इसके अन्तिम बार छपना प्रारंभ होनेके समय इसकी छान-बीन व इसका सम्पादन करनेमें जो सहायता मुझे ज्ञानमण्डल प्रकाशन-विभागके अध्यक्ष श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तवसे मिली है उसके विना इस पुस्तकका इस रूपमें पूरा होना कठिन था। उक्त महाशयने इसको आगे पीछेसे मिलानेमें, इसकी भाषा दुरुस्त करनेमें, इसके परिच्छेद-विभाग आदिमें पूरा परिश्रम किया है। इसकी अनुक्रमणिका इत्यादि भी उन्हींके अध्यवसायका फल है। मुझे इस सम्बन्धमें उनसे जो सहायता मिली है उसके लिये मैं उन्हें अनेक धन्यवाद देता हूं।

इस पुस्तकमें बहुतसे चित्र व नक्शोंके देनेका यत्न किया गया है तथा सारीकी सारी पुस्तक उत्तम व चिकने कागजपर छापी गयी है, इस कारण इसकी लागत बढ़ गयी। आशा है ग्राहक लोग इसका ख्याल न करेंगे। इसके लिखने, छापने, सम्पादन करने तथा इसे हर प्रकारसे सुन्दर बनानेमें जो यत्न और परिश्रम मेरे अनेक मित्रोंने किया है, वह कहाँ तक सफल हुआ है यह इससे मालूम होगा कि हिन्दीप्रेमी इसे किस प्रकार अपनाते हैं, पर मैंने इसे किसी बदलेके ख्यालसे न लिखा ही था और न अब भी मेरे दिलमें वह ख्याल है। मैंने अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार जो मुझे अच्छा लगा, या जो मुझे अपने देशवासियोंके बताने लायक जान पड़ा, उसे लिख दिया; बस, मेरा काम समाप्त हो गया। यदि वह अच्छी बात है तो पाठक उसे स्वयं पसन्द करेंगे, अन्यथा इस सम्बन्धमें मुझे कुछ नहीं कहना है। बस, अब अन्तमें मैं एक बार पुनः अध्यापक श्री विनयकुमार सरकारको उत्साह दिलानेके लिये, बन्धु श्री कृष्णकान्त मालवीयको इसे छापकर सुरक्षित रखनेके लिये, व उन सब सज्जनोंको जिन्होंने इसके पुस्तक रूपमें प्रकाशित होनेमें किसी प्रकारकी सहायता दी है उनकी सहायताके लिये तथा श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तवको उनके अत्यन्त परिश्रमके लिये धन्यवाद देता हूं।

सेवा-उपवन, काशी ।
२८ कार्तिक १९८०

शिवप्रसाद गुप्त ।

ओ३म्

लेखककी संक्षिप्त जीवनी।

मेरा जन्म संवत् १९४० के आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमी बुधवारको काशीमें हुआ था। मेरे जन्मके पूर्व मेरे माता-पिताकी कई सन्तानें छीज चुकी थीं। मेरे पूज्यपाद पिताजीकी अवस्था भी ३८ वर्षकी हो चुकी थी। अपने कई पुत्र-पुत्रियोंकी अकाल मृत्युके कारण पूजनीया माता जी घर छोड़ कर स्थानीय चौकाघाट-पर राजा शिवलाल दूबे जीके बागीचेमें वहांके प्रबन्धककी फूसकी कुटियामें जा बसी थीं। उसी कुटियामें मेरा जन्म हुआ था। जिलानेके लिये मुझे एक नाल काटनेवाली चमारिनके हाथ सात कौड़ीको बेचा गया था, और फिर उसे धन देकर मैं खरीदा गया। यह कार्य उस समयके ख्यालके मुताबिक किया गया था। मुझे जिलाने तथा स्वस्थ रखनेके लिये मेरे माता-पिताने नाना प्रकारके कष्ट उठाये व बन बनकी खाक छान डाली। जब मैं प्रायः तीन वर्षका हुआ तब मेरी माता जी मुझे लेकर फैजाबाद चली गयीं, जहां मेरे पिता जी रहते थे। वहां भी वे एक जगह नहीं रहने पायीं। पहले शायद हम लोग अयोध्या जीके मन्दिरमें रहते थे। फिर हम लोग फैजाबादके रेल-घरके पास मुदहा नामक गांवमें रहने लगे। वहीं पर मेरे प्रिय छोटे भाईका जन्म संवत् १९४५ में हुआ था। उसके बाद हम लोग खास फैजाबाद शहरमें आये और पास पास दो मकानोंमें रहने लगे। पिताजी बसी-केकी मसजिदके अहातेमें जो कई मकानात थे उनमें रहते थे और बच्चों सहित मेरी माताजी कांचके बंगलेमें रहती थीं। मुझे इन स्थानोंकी बहुत सी बातें स्मरण हैं पर उनका यहां ज़िक्र करके इस छोटेसे विवरणको बढ़ाना उचित अथवा आवश्यक न प्रतीत होता।

छोटे भाईका जन्म होनेके पूर्व मैं अपने माता-पिताकी अकेली सन्तान था, इस कारण मेरा कितना लाड़प्यार था इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। किन्तु मेरे लिये मेरी माता जीको जितना कष्ट व दुःख उठाना पड़ा था वह साधा-रणसे बहुत अधिक था। मेरे पिता जीके एक बड़े स्नेहपात्र पंडित जी थे जिनका शुभनाम पण्डित सीतल दान जी था। उन्होंने मुझे 'श्रीगणेश' कराया था। यह घटना अयोध्या जीकी है किन्तु संस्कृत या हिन्दी पढ़नेका अवसर उस समय बिल्कुल ही नहीं मिला। प्रत्युत उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार मुझे फारसी पढ़ाना आरम्भ हुआ। इस कार्य्यके लिये पूज्यपाद मौलवी यादअली साहब मुकर्रर हुए जिन्होंने हम लोगोंको फारसी पढ़ाना शुरू किया। पन्द्रह सोलह वर्षकी उमर तक मैं पूज्य मौलवी साहबकी शिक्षामें था। मैं लड़कपनमें बड़ा नटखट व शरीर था, इसलिये मुझे मौलवी साहब खूब मारा-पीटा करते थे। उस समय तो मार-पीट बड़ी

[illegible] यह ख्याल होता है कि यह मौलवी साहबके ही चरणोंका प्रताप है कि मैं कुछ लिख पढ़ लेने योग्य हुआ और बहुत कुछ सुधर गया। मैं इस जीवनमें मौलवी साहबके ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। पिता जीने अपने दो भृत्योंको भी मेरी निगरानीके लिये नियुक्त कर दिया था। एक उनका निजका खिदमतगार था जिसका नाम वाले था, और दूसरा उनका चपरासी था जिसका नाम सरयू सिंह था। इन दो सज्जनोंने हम दोनों भाइयोंको अपने पुत्रवत् पाला-पोसा था और हम लोग भी इनसे आत्मीयोंकी तरह स्नेह करते थे। इनके अतिरिक्त मेरी नाना जीकी एक टहलनी थी जिसने हमलोगोंको पाला-पोसा था। हमने उसका दूध भी पिया था। वह मुझपर पुत्रवत् स्नेह रखती थी और मैं भी उसे माताकी तरह मानता था। उसका नाम 'मतावो' था पर मैं उसे "दैया" कह कर पुकारता था। इन लोगोंके अतिरिक्त मेरे साथ एक पण्डित जी भी रहते थे जिनका नाम पण्डित देवदत्त जी था।

मेरे पूज्य पिता जी प्रायः रुग्ण रहा करते थे। संवत् १९४८ के चैत मासमें उनकी सांसारिक लीला समाप्त हो गयी। उस समय मैं आठ वर्षका और मेरा छोटा भाई केवल तीन वर्षका था। मेरी पूजनीया माता जीके ऊपर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा। पिता जीकी 'काम किया'के उपरान्त मेरी माता जीके रहनेका प्रश्न उठा। मेरे पिताजीके शुभचिन्तक मित्र लोग तथा उनके खैरख्वाह बड़े व छोटे कर्मचारीगण चाहते थे कि मेरी माताजी अपने दोनों पितृहीन बच्चोंको लेकर फैजाबाद-में रहें और कुटुम्बके लोग चाहते थे कि वे काशी जी चली आवें जहां घरके और लोग भी रहते थे। अन्तमें कुटुम्बके लोगोंकी ही बात मानी गयी और माताजी हम लोगोंको लेकर काशीजी चली आयीं। इतनी कम अवस्थामें सिरपरसे पूज्यपाद पिता जीका साया उठ जानेसे मुझे पिताजीके वात्सल्य-स्नेह तथा शासनका कुछ भी अनुभव नहीं है। मेरी स्मृति केवल मातृस्नेहसे ही परिपूर्ण है।

काशीजीमें मेरे सबसे छोटे दादा जी रहते थे और मेरे ताऊजीका कुटुम्ब भी यहीं था। मुझे कोई चचेरा भाई न था। मेरी चार चचेरी बहिनोंका विवाह इसके पूर्व ही हो गया था। मेरे दादाजीकी संतान, मेरे चाचा लोग, पांच भाई थे, दो हमसे बड़े व तीन छोटे। हमलोग बड़े प्रेम व स्नेहसे आपसमें रहने लगे किन्तु पिताजीके न होनेके कारण हमारे ऊपर उस प्रकारकी निगरानी, देख-रेख, व लाड़-प्यार न था जो कि पिताहीके सामने होना सम्भव है। मेरे और चचेरे चाचा लोग जो पिता जीके समकालीन थे आज़मगढ़ व अज़मतगढ़में रहते थे। काशीमें सबसे बड़े चाचा राजा मोतीचन्द जी सी. आई. ई. ही थे, जिनकी अवस्था मुझसे केवल सात वर्ष ही अधिक है। पूज्य दादा जी बहुत वृद्ध थे और संसारके झगड़ोंमें कम दिल लगाते थे। इसका फल यह हुआ कि मेरी जिन्दगी एक प्रकारकी स्वच्छन्दतासे गुज़रने लगी। मुझपर मौलवी साहब, सर्यू सिंह व वालेका ही अधिक प्रभाव पड़ता था, क्योंकि उन्हींकी देख-रेखमें मैं रहता था। पण्डित देवदत्त जीका भी कुछ कुछ प्रभाव पड़ ही जाता था।

मेरी शिक्षाका भार पूरे तौरपर उक्त मौलवी साहबपर ही था। मैं उनसे पुराने ढंगपर फारसी पढ़ता था। उसी समय मैं स्थानीय सिद्धेश्वरी महल्लेमें

सरस्वती देवीके मन्दिरके समीप पुरानी चालकी पाठशालामें, जो बेनी गुरुकी पाठशालाके नामसे विख्यात है, कुछ दिनों पहाड़ा पढ़ने भी जाता था। उस समय वहां श्री अनन्तराम नामके एक सज्जन लड़कोंको पढ़ाते थे। मैंने यहांपर प्रायः एक वर्ष तक पढ़ा होगा। इसके अतिरिक्त महाजनी अक्षर व कुछ हिसाब-किताब भी मैंने अपने यहांके मुनीम सेठ वैष्णवदाससे सीखा था। उस समय कोठियोंमें इस प्रकारकी शिक्षा देनेकी रीति थी, और हमारी कोठीमें भी हम लोगोंकी उमरके कई बाहरी बालक इस प्रकारकी शिक्षा लेने आया करते थे। इसके अतिरिक्त हमारे सर्थू सिंहको किस्सा-कहानी कहनेका बड़ा शौक था, वह भी मैं सुना करता था। पंडित जी भी प्रायः प्रतिदिन रात्रिमें सोनेके समय रामायण, शुकसागर व शिवपुराण पढ़कर सुनाते थे। हम लोगोंका चित्त इस प्रकारकी कथामें बहुत लगता था। पर अभी तक हमें नागरी अक्षरोंका परिचय न था। महाजनी अक्षरोंके सहारे कुछ टोय टाय कर दानलीला, हनुमानचालीसा आदि पढ़ लेते थे।

एक दिन मैं बीमार था और अपनी कोठरीमें पड़ा था। इस समय मेरी अवस्था शायद १२,१३ वर्षकी रही होगी। मुझे खूब याद है कि गर्मीका दिन था। दो पहरके समय मेरे एक सम्बन्धी, प्रह्लाद दासजी, जो रिश्तेमें मेरे फूफेरे भाई लगते हैं. मेरे पास आये। उनके हाथमें एक पुस्तक थी जिसे मैंने उनसे जबरदस्ती छीन लिया। इसका नाम "वीरेन्द्र वीर या कटोराभर खून" था। यही पहली हिन्दीकी पुस्तक थी जो मेरे हाथमें पड़ी। मैंने इसे टोय टाय कर पढ़ना आरम्भ किया। ज्यों ज्यों आगे पढ़ता था त्यों त्यों इसके आगे क्या है यह जाननेकी इच्छा होती थी, सारांश यह कि मैंने इसे आद्योपान्त पढ़ डाला और इसीकी बदौलत मुझे हिन्दी पढ़ना आगया। फिर छिपा लुका कर—क्योंकि उस समयकी प्रथाके अनुसार लड़कोंको इस तरहकी पुस्तकें पढ़नेको नहीं दी जाती थीं—और भी कई पुस्तकें, बाबू देवकीनन्दन खत्रीकी बनायी, पढ़ीं। उसी समय चन्द्रकान्ता उपन्यास भी पढ़ना आरम्भ किया था जो अभी तक छप कर पूरा तैयार नहीं हुआ। भूतनाथकी जीवनी पढ़नेकी अभिलाषा इस समय भी बनी हुई है। देखें यह उपन्यास कब तक छप कर समाप्त होता है।

इसी समय यह विचार उठा कि घरके कुछ लड़कोंको अङ्गरेजी पढ़ाना चाहिये। इसके लिये मेरे साथी मेरे मित्र चाचा श्री देवी प्रसाद और मेरा छोटा भाई श्री हरप्रसाद चुने गये। इसपर मैंने बड़ा शोर मचाया और रोना-गाना शुरू किया, कुछ तो मौलवी साहबकी मारसे बचनेके लिये और कुछ नयी चीजके शौक़से। खैर, राम राम करके मुझे अङ्गरेजी शुरू करायी गयी पर वहां भी खूब मार पड़ने लगी। इसी बीचमें तेरह वर्षकी अवस्थाके लगभग मेरी शादी हुई। उस समय अज़मतगढ़से भी कुटुम्बके सब लोग आये हुए थे। मैं उनके साथ माता जीकी आज्ञा लेकर अज़मतगढ़ चला गया। वहां अपने चचेरे भाइयोंके साथ मुंशी रघुबीर प्रसाद जीसे पढ़ने लगा। उक्त मुंशीजीके पढ़ानेकी शैली बहुत अच्छी थी और मैंने वहां साल डेढ़ सालमें अच्छी उन्नति कर ली, फारसी भी पढ़ी और अङ्गरेजी भी। वहांसे लौटनेपर यह प्रश्न उठा कि हमलोग स्कूल भेजे जायं। इसपर घरके पुराने ख्यालके बड़े व छोटे नौकरोंने बड़ा

और सहमत। पूज्य बाबाजीका देहान्त हो चुका था और हमारे चाचा राजा मोतीचन्द बनारसका काम-काज देखते थे। यह उन्हींका प्रस्ताव था। इस कारण घर-गुमाश्तोंने उन्हें इस प्रकारकी नीची-ऊंची बातें कहीं। उनकी भी हिम्मत इस सामूहिक विरोधसे शिथिल हो गयी और हमलोगोंको स्कूल भेजनेका विचार छोड़ दिया गया। कुछ समयके बाद जब इस विरोध ठंडा हुआ, तो हममेंसे श्री मंगला प्रसादजी (मेरे चाचा) और मेरा छोटा भाई श्री हरप्रसाद, स्थानीय हरिश्चन्द्र स्कूलमें भरती किये गये। दूसरे सत्र (टर्म) के आरम्भमें हम लोगोंने फिर कहना शुरू किया। अबकी बार हम चारों श्री देवीप्रसाद, श्री मंगलाप्रसाद, श्री हरप्रसाद और मैं, स्थानीय जयनारायण स्कूलमें भरती किये गये। यहां भरती होनेका कारण यह था कि हमारे अङ्गरेजीके मास्टर साहब श्री रघुनाथ प्रसादके मित्र श्री भगवान दासजी गुप्त इस स्कूलमें पढ़ाते थे। हम लोग उन्हींके अधीन रक्खे गये।

जयनारायण स्कूलकी पढ़ाई व धार्मिक उपदेशोंका प्रभाव मेरे चरित्र-संगठनपर बहुत अधिक पड़ा जिसके लिये मैं वहांके गुरुओंका बड़ा कृतज्ञ हूं। मैंने यहींसे एण्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की। स्कूलमें जानेके थोड़े ही दिन बाद मेरे परम मित्र, व चाचा बाबू देवीप्रसाद जीका देहान्त हो गया। हमलोग बराबरकी अवस्थाके थे और आपसमें प्रतिद्वन्द्विता व प्रेम अत्यन्त अधिक था। तीन चार वर्षके उपरान्त संवत् १९६० के वैशाखमें, जब काशीमें दूसरी बार प्लेगका प्रकोप हुआ था, मेरे प्रिय भाईका भी शरीरान्त हो गया। इस दुःखसे मेरी माता जी बौखला सी गयीं और मेरा तो एक प्रकार सर्वनाश ही हो गया समझिये। जिस भाईके साथ १५ वर्ष पर्यंत खेला था, लड़ा था, प्रेम किया था, द्वेष किया था और फिर प्रेम किया था वही भाई, वही प्यारा भाई, मुझ अभागेको जीवन भर रोनेके लिये छोड़कर चल बसा। ईश्वर उसकी आत्माको सद्गति दे।

यही समय है जब कि मेरे ऊपर पूरी तरह इस्लाम व ईसाई मतका प्रभाव पड़ चुका था। मैं उन मजहबोंकी, खासकर ईसाई मतकी, उच्च शिक्षापर मुग्ध था, और घरपर इनका पक्ष लेकर बहस मुबाहिसा किया करता था। इसका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि घरके लोगोंने पढ़ना छुड़ा देनेका विचार दृढ़ कर लिया। भाईके देहान्तके पूर्व जब मेरे पूज्य चाचा साहब बाबू दामोदर दासजीका देहान्त हुआ था उस अवसरपर मैं अयोध्याजी गया हुआ था। वहांपर मुझे मेरे एक बड़े पुराने मुनीम श्री पंडित विन्ध्येश्वरी प्रसाद दूबे जीने सन्ध्या करनेकी विधि बतलायी। इसके पूर्व, विवाह हो जानेके बाद, मेरा यज्ञोपवीत हो चुका था और मैं चन्द्र गायत्री, व न जाने और किन किन गायत्रियोंके जाननेके उपरान्त श्री पण्डित रामदाससे ब्रह्मगायत्रीका उपदेश पा चुका था। इस समयसे अभी तक मैं प्रतिदिन दो बार सन्ध्या करता हूं और यदि किसी कारण सन्ध्या छूट जाती है तो दूसरे दिन उपवास करता हूं। पहिले कभी कभी तीन समय भी सन्ध्या करता था। यहीं अयोध्याजीमें मुझे पण्डित भीमसेनजीकी टीका की हुई उपनिषद्की पोथियां भी दूबे जीने दीं। यहीं पहले पहल आर्यसमाजका नाम भी सुना। इसके पहले मेरे धार्मिक विचारोंमें कई परिवर्त्तन हो चुके थे। कुलकी प्रथाके अनुसार मैं बचपनहीमें वल्लभसम्प्रदायमें दीक्षित हो चुका था। कुछ

दिनों तक उक्त सम्प्रदायपर बड़ी श्रद्धा थी । पर इस श्रद्धाका अन्त शीघ्र ही हो गया और मैंने कण्ठी वगैरः तोड़ कर फेंक दी । वल्लभमतको छोड़नेके बाद मैं सूर्य्य, हनुमान तथा सालिग्रामकी पूजा भी करता था और जब जो करता था बड़ी श्रद्धा, भक्ति व कट्टरपन-से करता था। पर ईसाई धर्मके उपदेशने जो शंकाएं मनमें उत्पन्न कर दी थीं, उनका यथेष्ट उत्तर अपने पार्श्ववर्त्तियोंसे न मिलनेके कारण सब प्रकारकी मूर्त्ति-पूजासे मन हट गया था । ऐसे समयमें आर्य्यसमाजके नामने डूबतेको तिनकेका सहारा देकर बचा लिया । साथमें पढ़नेवालोंमें मेरे एक मित्र बाबू नन्दकिशोर गुप्त जी हैं। इनसे आर्य्यसमाजकी ऊपरी बातोंका बहुत पता लगा और कुछ मामूली निबन्धों व गुटकाओंके पढ़नेका भी अवसर मिला जिनकी इस समाजके साहित्यमें बड़ी बहुतायत हैं। इनके द्वारा ईसाई आक्षेपोंका उत्तर मिलने लगा और दिन प्रति दिन समाजकी ओर प्रेम, श्रद्धा व भक्ति बढ़ने लगी । इसीके साथ साथ सामाजिक कुरी-तियोंकी ओर भी निगाह दौड़ी और उसके प्रतिकारका भी विचार मनमें उठने लगा । इसी समय देशकी ओर भी ध्यान गया और राजनीतिक विचार भी उठने लगे। उस समय हम लोग श्रद्धेय बाबू गंगाप्रसाद जीका "एडवोकेट" व विलायती अखबार "इण्डिया" पढ़ा करते थे ।

भाईके देहान्तके एक वर्ष बाद श्री मंगलाप्रसाद जीने और मैंने साथ साथ एण्ट्रेन्स पास किया और हिन्दू कालेजमें नाम लिखाया। यह संवत् १९६१ की बात है । इसी समय मैं श्री काशी अग्रवाल समाजका सदस्य बना और कुछ दिन बाद जब श्री काशी अग्रवाल स्पोर्ट्स क्लब स्थापित हुआ तो उसका भी सदस्य बना । मैं एफ० ए० में दो बार अनुत्तीर्ण होकर काशीसे प्रयाग पढ़ने चला गया और वहां एफ० ए० पास कर बी० ए० में भरती हुआ । जब मैं फोर्थईयर(विद्यालयके चतुर्थ वर्ष) में था तब बहुत दिनों तक सख्त बीमार रहनेके कारण तथा अन्य कई कारणोंसे मैंने पढ़ना छोड़ दिया ।

अग्रवाल स्पोर्ट्स क्लब उन सामाजिक व राजनीतिक विचारों एवं कार्य्यकर्त्ता-ओंका जन्मदाता है जो आज दिन काशीकी अग्रवाल जातिके लोगोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। यहींपर उन मित्रोंसे मेरी जान पहचान हुई जिनके साथ काम करनेका सौभाग्य मुझे आज प्राप्त है। यहींपर बहस मुबाहिसे द्वारा उन विचारोंकी सृष्टि व पुष्टि हुई जो आज मुझमें पाये जाते हैं। यहींपर मैंने भाषण करनेकी रीति व ढंग सीखा व यहींपर उसका अभ्यास किया। संवत् १९६१-६२ (सन् १९०४-०५) से ही मैं राजनीतिक आन्दोलनमें दिलचस्पी लेने लगा । प्रथम बार मैं संवत् १९६१ अर्थात् सन् १९०४ की मुम्बई वाली कांग्रेसमें प्रतिनिधि बनकर गया। उस समय प्रतिनिधि बननेमें इतनी कठिनता न थी जितनी कि पीछेसे होने लगी । संवत् १९६२ (सन् १९०५)में काशीमें कांग्रेस थी। हम लोग स्वयंसेवक थे। उसी समय पंचनदकेशरी लाला लाजपत राय जी, लोकमान्य तिलक तथा श्री विपिनचन्द्र पालके राजनीतिक मतका प्रभाव मेरे मनपर पड़ा और वह दिन दिन दृढ़ होता गया !

संवत् १९६७ (सन् १९१०) में जब मैंने पढ़ना छोड़ा, मैं बहुत बीमार था। मेरे चाचा बाबू गोकुलचन्दजी भी बहुत बीमार थे। श्री हकीम अजमलखांका इलाज कराने में उन्हें लेकर दिल्ली चला गया। वहांसे मंसूरी पहाड़पर गया। जब हम

लोग मंसूरीमें ही थे तो हमलोगोंके साथी व मित्र परलोकवासी श्री लक्ष्मीचन्दजी जो शिक्षाके लिये विदेश गये हुए थे लौटकर काशी पधारे । काशीके अग्रवाल नवयुवकोंको अच्छा मौका हाथ आया । जिन विचारोंको वे ८, ९ वर्ष पूर्वसे सोच रहे थे उनको कार्यमें लानेका अवसर मिल गया, और काशी अग्रवाल स्पोर्ट्स क्लबके अठारह नवयुवकोंने इन लौटे हुए सज्जनके साथ गुप्त रीतिसे प्रीति-भोजन करके दूसरे दिन उसका ऐलान कर दिया। इसपर काशीके अग्रवालोंमें तुमुल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। समाचार पाते ही मैं भी मंसूरीसे काशी आ गया । यहां जो तूफान इस सम्बन्धमें उठा वह अब तक जारी है । इस घटनाके पीछे मेरे चाचा श्री मंगलाप्रसाद और मैं अग्रवाल बिरादरीसे जातिच्युत किये गये ।

इस समय मैं पढ़ना छोड़ चुका था । घरका कोई विशेष काम अभीतक मेरे जिम्मे न था। इसी समय पूज्यपाद मालवीयजी महाराजने हिन्दू-विश्वविद्यालयका आन्दोलन उठाया । उस समय यह आन्दोलन, अधिकारियों द्वारा प्रचलित शिक्षा-नीतिके विरोधमें उठाया गया था । मैंने भी अपनी तुच्छ शक्तिके अनुसार पूज्यवर मालवीयजीकी सेवा-का विचार करके उनके साथ काम करना आरम्भ किया । मैंने मालवीयजी महाराजके साथ बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब व राजपूतानेका भ्रमण किया । जब यह आन्दोलन उठाया गया था तब इसके तीन मुख्य उद्देश्य थे। पहला, हर प्रकारकी ऊंचीसे ऊंची शिक्षा मातृभाषाके द्वारा देना; दूसरा, साधारण शिक्षाके साथ साथ कलाकौशल तथा उद्योगधन्धोंकी शिक्षा भी देना; और तीसरा, सरकारी सहायतासे बचे रहना। यही उच्च भाव थे जिनकी वजहसे मेरी इच्छा इसकी सेवा करनेकी हुई, और मैंने इस कार्यमें अपना थोड़ा समय लगाया ।

इधर पूजनीया माताजीका स्वास्थ्य खराब हो चला था । संवत् १९७० (सन् १९१३) के प्रारम्भमें उनका स्वास्थ्य अधिक खराब होनेके कारण मैं काशी लौट आया और पूज्य माताजीकी सेवामें लगा । संवत् १९७१ में भाद्रकृष्ण ९ दधिकान्दव-के दिन उनका देहान्त हो गया । बहुत दिनोंसे विदेशयात्रा करनेको मेरी बड़ी प्रबल इच्छा थी । पर मैं माता जीके जीवनकालमें इसकी हिम्मत नहीं कर सकता था । उनके देहान्तके कुछ दिनोंके उपरान्त मुझे पता चला कि मेरे एक मित्र श्री राधाचरण साह जीकी इच्छा अगले ग्रीष्ममें विदेशयात्रा करनेकी है । यह सुनकर मैंने भी उनके साथ जानेका इरादा कर लिया । समय बीतते कुछ देर नहीं लगती । तीन चार मास शीघ्र-तासे बीत गये और वह तिथि निकट आगयी जब मुझे यात्रा करनी थी । निश्चित दिनसे ठीक एक सप्ताह पूर्व श्रीयुत राधाचरण साह जीने यात्राका विचार स्थगित कर दिया, पर मैंने इस अवसरको छोड़ना उचित न समझा । वैशाख सुदी ५, संवत् १९७१ (३० अप्रैल सन् १९१४)को काशीसे प्रस्थान कर दिया और मुम्बईसे वैशाख सुदी १३ (८ मई)को जहाजपर सवार हो गया ।

घरवालोंने मेरे साथ एक सज्जनको कर दिया था जिनका नाम पंडित सुरेन्द्र नारायण शर्म्मा है और एक मित्र अध्यापक श्री विनयकुमार सरकार भी मेरे साथ हो लिये थे । मेरा विचार छः मासमें घर वापस लौट आनेका था, परन्तु 'मेरे मन कछु और है कर्त्ताके कछु और ।' छः मासका विचार कर गया था और

इक्कीस मासमें लौटा । इन २१ मासोंका ब्यौरा इस भांति है । जहाज व रेलके सफरको छोड़कर प्रायः १५ दिन मिश्रमें, छः मास इङ्गलिस्तान व आयरलैण्डमें, छः मास अमरीकामें, अढ़ाई मास जापानमें, दो मास कोरिया व चीनमें व तीन मास सिंगापुरमें जेलमें बीते। मैंने पृथिवीप्रदक्षिणामें मिश्र, अमरीका, जापान-कोरिया व चीनका अधूरा हाल लिखा है। इङ्गलिस्तान व सिंगापुरका वर्णन इसमें नहीं है। इन जगहोंका पूरा हाल सात वर्ष बाद लिखना कठिन ही नहीं असम्भव है, क्योंकि मेरे पास इस सम्बन्धकी कुछ याददाश्त भी नहीं हैं। इंगलिस्तानकी हालत तो मैंने जानबूझकर ही नहीं लिखी थी क्योंकि जो मनोवृत्तियां वहां उठती थीं उनका लिखना उस समयके राजनीतिक विचारोंसे मेरे लिये अनुचित था और मुझमें इतनी योग्यता भी न थी कि मैं उनको बचाकर लिख सकता। अतः उनके न लिखनेका ही उस समय निश्चय किया था। इसी कारण इस पुस्तकमें उनका कुछ विवरण नहीं दिया गया। रही सिंगापुरकी कथा, उसे मैं अत्यन्त संक्षेपमें लिखे देता हूं जिसमें उसका भी थोड़ा-बहुत वृत्तान्त पाठकोंको मालूम हो जाय।

मेरे इंगलिस्तान पहुंचने पर तीन मासके उपरान्त योरपीय महासमर प्रारम्भ हो गया। मैं उस समय इंगलिस्तान, स्काटलैण्ड व आयरलैण्डकी सैर प्रायः समाप्त कर चुका था। जब आस्ट्रियाहंगरीके युवराज फर्डिनेण्डके सेराजेवोमें मारे जानेकी सूचना मिली थी तब मैं अपने साथियोंके साथ आयरलैण्डमें ही था। वहींपर रूस व जर्मनीके युद्धकी खबर मिलते ही हम लोग इंगलिस्तान लौट आये। चार दिन बाद इंगलिस्तान व जर्म्मन युद्धकी भी घोषणा हो गयी। हम लोगोंके योरप-यात्राके विचारका अन्त हो गया। घरवाले चाहते थे कि मैं घर वापस लौट आऊं, पर उस वक्त आना संभव न था। कारण यह था कि भारतवर्ष आनेके लिये सिवाय मित्रराष्ट्रोंके दूसरी तटस्थ जातियोंके जहाज मिलते न थे और अङ्गरेजों अथवा मित्रराष्ट्रोंके जहाज़पर सफर करना खतरेसे खाली न था। इसके सिवाय देशाटन करनेका मेरा शौक़ भी अभी कम नहीं हुआ था। इसी उधेड़बुनमें तीन मास और इंगलिस्तानमें बीत गये। अन्तमें अमरीका जानेका निश्चय हुआ और मैंने वहांके लिये प्रस्थान कर दिया।

अमरीका, जापान, कोरिया व चीन आदिकी यात्रा समाप्त कर जब मैं शांघाई नगरमें पहुंचा उस समय यह समाचार मिल चुका था कि प्रशान्त महासागरकी ओरसे लौटनेवाले भारतनिवासी सिंगापुरमें तथा हांगकांगमें रोक लिये जाते हैं और उनकी नाना प्रकारकी दुर्दशा की जाती है। सिंगापुरमें सैनिकोंके बिगड़ जानेके कारण वहां फौजी कानून (मार्शल ला) जारी था। इस कारण जिसे चाहे उसे, विशेषकर हिन्दुस्तानियोंको, वहां उतारकर सतानेका बहाना मिल गया था। मेरे पास घरसे बार बार बुलाहटके पत्र व तार आ रहे थे और मैं यह समाचार साफ साफ लिख भी नहीं सकता था। क्योंकि उस समय भारतमें भी सब पत्र खोल लिये जाते थे। अन्तमें मैंने लौटना ही निश्चय किया और अकेला ही वहांसे चल पड़ा। मेरे साथी शर्म्माजी पहिले ही अमरीकासे लौट आये थे और अध्यापक विनय बाबूने कुछ दिन और चीनमें ही रहनेका निश्चय कर लिया।

जिस दिन मेरा जहाज हांगकांगके बन्दरमें खड़ा था और मैं सवेरेका कलेवा कर रहा था उस समय एक आदमीने आकर मुझसे कहा कि तुम्हें एक व्यक्ति बुलाते हैं। मैं भोजनालयसे बाहर गया तो मालूम हुआ कि पुलिसके आदमी मुझे किनारे-पर ले जानेको आये हैं। मेरा सब असबाब एक डोंगीपर रख वे लोग मुझे किनारेपर ले गये। वहांसे मैं पुलिसके दफ्तरमें पहुंचाया गया और मेरी रत्ती रत्ती तलाशी ली गयी। इसके उपरान्त नाना प्रकारके अनर्गल व बेहूदः सवाल पूछे गये जो ऐसेही आदमीसे पूछे जा सकते थे जो हमारे ऐसा गुलाम हो और जिसकी पीठपर हाथ रखनेवाला कोई भी न हो। सारा दिन इसीमें बीत गया, भूख प्यास तो सहनी ही पड़ी, और ऊपरसे अपमान बदलेमें मिला। शामको मैं जहाजपर वापस भेजा गया। जहाजके कप्तानसे पुलिसका आदमी कह आया कि यह आदमी नज़रबन्द रक्खा जावे और रात्रिको कहीं आने जाने न पावे। दूसरे दिन वह आज्ञा हटा ली गयी और मुझे आगे जानेकी इजाज़त मिली।

सिंगापुर ज्यों ज्यों निकट आता था त्यों त्यों दिलकी धड़कन बढ़ती जाती थी कि देखें क्या होता है। सिंगापुर आया मगर वहां किसीने मुझसे नहीं पूछा कि तुम कौन हो और कहां जाते हो। पर द्विविधा कम न हुई। दूसरे दिन जब जहाज वहाँसे रवाना हुआ तो मैंने सोचा कि बला टली।

इसके बाद वाले दिन मलक्कामें जहाज ठहरा। वहाँसे चलकर पीनाँग पहुंचा। वही सबेरेका समय था. मैं कलेवा कर रहा था जब एक आदमीने आकर मुझसे कहा कि तुम्हें कुछ लोग बुला रहे हैं। बाहर आया तो मालूम हुआ कि पुलिसके आदमी हैं। मेरे आते ही उनमेंसे एकने मेरे कन्धेपर हाथ रखकर कहा कि तुम गिरफ्तार कर लिये गये। पूछनेपर कोई वारण्ट आदि नहीं दिखाया गया। वहाँसे मैं अपनी जहाजकी कोठरीमें लाया गया। वहाँ मेरी नंगाझोरी ली गयी। मेरे जेबकी सब चीजें ले ली-गयीं। मैं वहाँसे पुलिस चौकीपर मय असबाबके लाया गया। मेरी सब चीजें मेरे बेगमें बन्द कर दी गयीं और उसपर मेरी मुहर करायी गयी। इसके बाद मैं हवालातमें बन्द कर दिया गया। यह एक जंगलेदार कोठरी थी। भीतर एक गन्दा तख्त पड़ा था। मैंने अपना कोट उतारकर तख्तको उससे झाड़ पोंछ डाला और अपने जूतोंको कोटमें लपेट उसका तकिया बना ज़रा लेट गया। कुछ देरमें एक सिक्ख सिपाही हाथमें थोड़ी देशी रोटी व साग-मिली-दाल ले आया और मुझे हाथमें ही खानेको दी। मैंने उसीको ग़नीमत समझा। इसके बाद दिनभर कोई पूछने नहीं आया। उसी कोठरीमें रात्रिभर अंधेरे और गर्मीमें पड़े रहना पड़ा।

सवेरे शौचकी समस्या सामने आयी। बड़ी मुश्किलसे वहाँके पहरेदारोंको मैं अपना अभिप्राय समझा सका क्योंकि वे न तो अंगरेजी समझते थे और न हिन्दी। नित्य-क्रियासे छुट्टी पानेके बाद थोड़ी देरमें पहिले दिन वाला आदमी आया। उसने मुझे लेजा-कर दूसरे जहाजमें जो सिंगापुरकी तरफ़ जा रहा था बैठाया। मेरे कैबिनमें एक और बंगाली महाशय भी मेरी ही तरह लाकर रक्खे गये। दरवाज़ेपर चार गोरे सिपाहियोंका संगीन-चढ़ा पहरा था। यह कैबिन दूसरे दर्जेका और ठीक उस पुर्जेके ऊपर था जिससे जहाज चलता है, इस कारण उसमें सोना कठिन था, फिर भयंकर गर्मी पड़ रही थी।
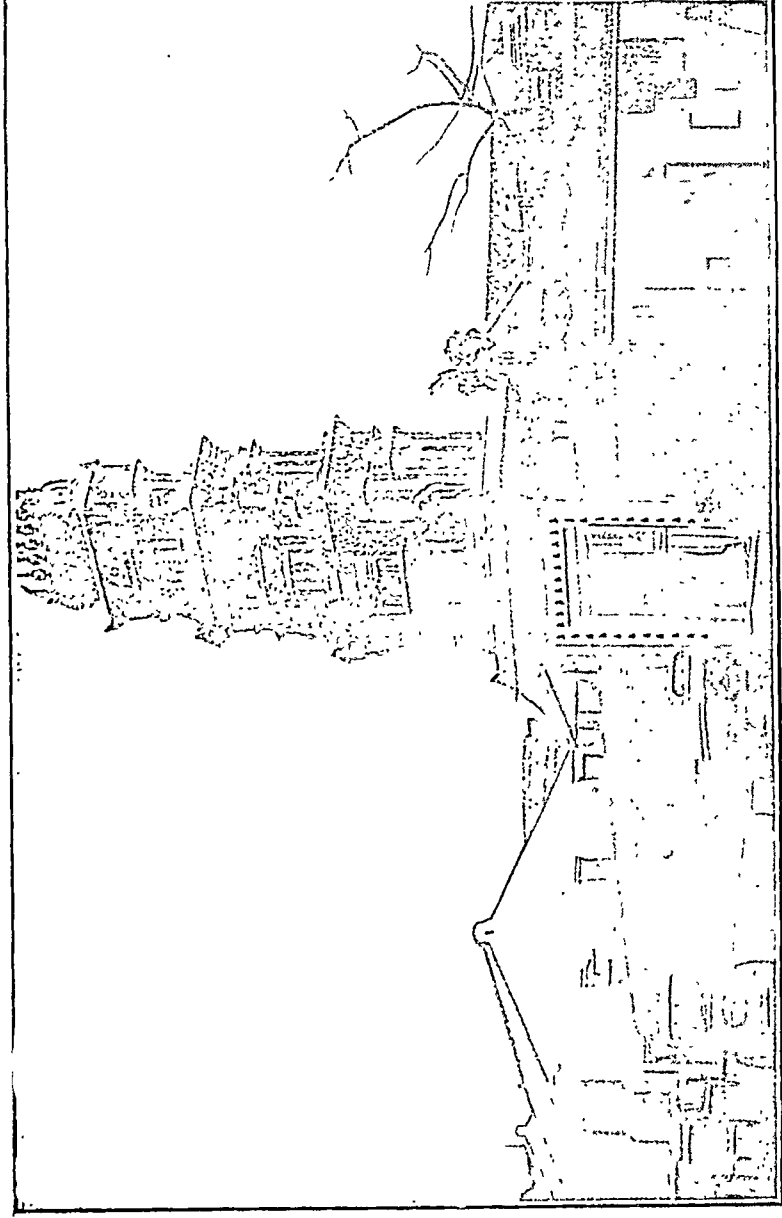
सिंगापुरमें हिन्दू-मन्दिर (पृष्ठ ८)

कहीं आने जाने या उन महाशयसे बात करनेकी भी आज्ञा न थी जो मेरे साथ बन्द थे। गो अधिकारियोंने हम लोगोंका पूरा किराया दिया होगा, जिसमें भोजन भी शामिल है, पर हम लोगोंको बहुत थोड़ा व ख़राब खाना मिला, माँगनेपर भी फल या तरकारी नहीं मिली। दो तीन रोटीके टुकड़ों व आलुओंपर दो दिन व एक रात बितानी पड़ी। दूसरे दिन शामको सिंगापुर पहुंचे। वहाँके दो कर्मचारी हमें लेने आये थे जिनमें एक हिन्दुस्तानी (पारसी) व दूसरा अंगरेज़ था, पीछे इनका नाम मालूम हुआ। हिन्दुस्तानी सज्जनका नाम शायद एच. आर. कोटावाला व अंरेगज़ सज्जनका नाम मेजर ए. एम. टामसन था। हम लोग सिंगापुर किलेमें पहुंचाये गये और रात्रिभर फ़ौजी पहरेमें रक्खे गये। सोनेके लिये एक लोहेकी बेन्च मिली व ओढ़नेके लिये एक कम्मल। हर वक्त सशस्त्र गोरे सिपाहियोंका पहरा रहता था। पेशाव, पायखाना, नहाना-धोना सब उन्हींके सामने करना होता था। दूसरे दिनसे बाज़ारका बना हुआ हिन्दुस्तानी खाना मिलने लगा, मगर ख़ूनी मुजरिमोंकी तरह पहरेमें हो रहना पड़ता था। दो दिनके बाद इन्हीं पारसी महोदयने जो पीछे मालूम हुआ कि ख़ुफ़िया विभागके कर्मचारी हैं मुझसे बात-चीत करनी शुरू की, पर बहुत पूछनेपर भी उन्होंने यह न बताया कि मैं क्यों और किस अपराधमें पकड़ा गया। छः दिन तक मुझसे प्रतिदिन छः या सात घण्टे प्रश्न पूछे जाते थे और उनका उत्तर लिया जाता था। इस प्रश्नोत्तरीको उन्होंने चालीस पृष्ठ फुलिस्कैप मापके काग़ज़ोंपर टाइप किया। उन नाना प्रकारके प्रश्नोंके जो उत्तर मैं देता था वे नहीं लिखे जाते थे बल्कि मनमाने उत्तर लिखकर मुझसे कहा जाता था कि तुमने यही कहा है न? 'नहीं' कहनेपर अपशब्दों द्वारा मेरी पूजा की जाती थी और कहा जाता था कि अगर तुम ठीक तरहसे उत्तर न दोगे तो तुम्हें गोली मार दी जायगी। वे सज्जन बार बार यह कहते थे कि इस किलेके खन्दकोंमें न जाने कितने हिन्दुस्तानी मारके फेंक दिये गये हैं, वहीं तुम भी फेंक दिये जाओगे। मैं अपने जीवनसे निराश होकर यह उत्तर देता था कि यदि मैंने कोई ऐसा काम किया हो जिसका यह परिणाम होना चाहिये तो हरि-इच्छा।

इस प्रकारकी यातनामें छः दिन बीत गये, उसी दिन शामको मैं गारदघरसे हटाकर एक अन्धेरी कोठरीमें बन्द कर दिया गया। इसमें मैं आठ रोज़ तक रक्खा गया, केवल सवेरे शाम शौचादिके लिये और दिनमें दो बार भोजनके लिये निकाला जाता था। यहाँ भी वही बाज़ारका हिन्दुस्तानी भोजन मिलता था। बहुत कहने सुननेपर सिंगापुर पहुंचनेके छः दिन बाद घर तार भेजनेकी इजाज़त मिली जिसमें यह लिखा गया—'डिटेण्ड ऑन बिज़नेस, डिटेल्स विल फॉलो लेटर'* अर्थात् किसी कामसे रुक गया हूं, तफसील पीछे लिखूंगा। इसका जो उत्तर घरसे गया वह मुझे पूरे एक मासके बाद दिया गया और उसका भी उत्तर पहिलेके ही शब्दोंमें भेजा गया।

आठ दिन इस कालकोठरीमें रहनेके उपरान्त मैं वहाँसे हटाकर जेलघरकी कालकोठरीमें रक्खा गया जहाँ मैं दिन रात बन्द रहता था। जेलकी कोठरी बहुत छोटी थी और हवा आनेके लिये छतके पास एक छोटीसी खिड़की थी। यहाँ मुझे

* Detained on business. Details will follow later.

चौदह दिन और रहना पड़ा। यहां खाना केवल एक समय मिलता था, जिसमें मामूली चाय देशी रोटियां व थोड़ी तरकारी रहती थी। चौदह दिनोंमेंसे तीन चार दिन भात व दाल मिली थी। किसी न किसी तरह ये दिन भी कट गये। यहांपर सवेरे नव बजेके करीब मुझे बाहर निकालकर दौड़ाया जाता था। यह कहने पर कि मैं दौड़ नहीं सकता गालियां दी जाती थीं और कहा जाता था कि तुम बहुत मोटे हो, अगर व्यायाम न करनेके कारण तुम जेलमें मर गये तो पीछेसे कौन इसका जिम्मेदार होगा। मतलब यह कि मुझे रोज़ दौड़ना पड़ता था। जहाँ मैं दौड़ाया जाता था या टहलाया जाता था वहांपर बजरियां बिछी रहती थीं जिसका यह परिणाम हुआ कि मेरे पैरोंमें छाले पड़ गये पर दौड़ाना बन्द न हुआ। इसके अतिरिक्त दिन रातमें जो मल-मूत्र मैं उस छोटी कोठरीमें त्याग करता था उसे दूसरे दिन सवेरे उठाकर फेंकना पड़ता था। इसके अलावा और भी काम करने पड़ते थे जैसे झाड़ू देना, ज़मीन धोना व पोंछना, कपड़े धोना तथा बर्तन मांजना वगैरः। इधर परिणाम अनिश्चित होनेके कारण जो मानसिक अवस्था थी उसका लिखना कठिन है। उस भीषण गर्मी व रात्रि भरके अन्धकारका, एवं मच्छड़ोंकी फौज और अकेली कोठरीका ख्याल करके अब भी रोमांच हो आता है। यहांपर मैंने और भी कई हिन्दुस्तानियोंको देखा जो शायद मेरी ही तरह बन्दी थे। उनका क्या परिणाम हुआ, ईश्वर ही जाने।

निदान इसी प्रकार दिन धीरे धीरे कट गये। चौदहवें दिन मैं अत्यन्त व्यग्र था और व्यग्रतामें ईश्वरपर विश्वास अधिक हो जाता है, इस कारण प्रभुके चरणोंका ध्यानकर मन भर गया और मैं रोने लगा। थोड़ी देरमें दरवाज़ा खुलनेकी आहट सुन पड़ी, फिर एक कर्मचारीने भीतर आकर मुझे कपड़े पहननेके लिये कहा और मुझे किलेमें लाकर फिर उन्हीं सज्जनके सामने उपस्थित किया जो मुझसे पहले प्रश्न पूछा करते थे। उनके सामने ही मैं अपनेको न सम्हाल सका, फूट कर रो उठा। मेरी हिचकियां बँध गयीं और मैंने उनसे कहा कि जो कुछ मेरा होना हो शीघ्र होना चाहिये। घर-पर उसकी सूचना दे देनी चाहिये और यह अनिश्चित अवस्था बदलनी चाहिये। उन्होंने आज दूसरा रूप धारण किया। पहले जहां डरा धमकाकर पूछते थे आज दिलासा देकर और लालच देकर पूछने लगे, किन्तु प्रश्न वही थे। मैंने उनके वही उत्तर दिये और कहा कि जो कुछ मुझे कहना सुनना था मैं कह चुका, उसके अतिरिक्त कुछ कहना सुनना नहीं है। यह सुनकर उन्होंने मुझसे लिखे हुए उत्तरोंके कागज पर हस्ताक्षर कर-नेके लिए कहा। मैंने उसे पढ़नेको मांगा। तब उन्होंने पूछा कि पढ़कर तुम इसे शोधना भी चाहोगे? मैंने कहा कि बिना शोधे मैं कैसे हस्ताक्षर कर सकता हूं, आपने न जाने इसमें क्या लिखा है। इसपर न तो उन्होंने मुझे उसे पढ़नेको दिया और न हस्ताक्षर ही करवाये। उन्होंने मुझे उसी गारदघरमें जहां मैं पहले रहता था रहनेको भेज दिया। मैं इसीको गनीमत समझ चुप हो रहा। अकेली काल कोठरीसे, खुला कमरा और आदमियोंके बीच रहना अच्छा ही था।

इस अवस्थामें भी कोई दो सप्ताह बीत गये। एक दिन अचानक मेजर महोदय घरके तारोंको लेकर आये और मुझसे कहने लगे कि हम लोग तुम्हें निर्दोष समझते हैं, किन्तु जबतक पूरी तरह अनुसन्धान न कर लिया जाय हम तुम्हें जाने नहीं दे सकते।

उनके शब्द ये थे—'वी थिंक यू आर इन्नोसेण्ट बट वी कैननाट टेक एनी चान्स, वी कैननाट लेट यू गो अनलेस वी मेक श्यूर।'*

मुझे इससे थोड़ी हिम्मत हुई और मैंने उनसे कहा कि अगर आपकी समझमें मैं निर्दोष हूं तो मेरे ऊपरका कड़ा पहरा आप कुछ ढीला क्यों नहीं कर देते, मैं इस किलेमेंसे भाग थोड़े ही जा सकता हूं ? हर समय संगीनदार पहरेवाले आदमियोंसे घिरे रहनेमें बड़ा अनकुस लगता है। मेरी बात मान ली गयी, पहरा उठा लिया गया और मैं "पेरोल"† पर छोड़ दिया गया। मैं क़िलेमें जहाँ चाहूं घूम सकता था, पर किसीसे बातें करनेकी इजाज़त न थी। वहाँ और कई हिन्दुस्तानी भाई इसी प्रकार पेरोलपर नजरबन्द थे। उन्हें घूमते फिरते देखकर बातें करनेको जी चाहता था पर लाचारी थी। कभी कभी इशारेमें कुछ बातचीत हो जाती थी जिससे मालूम हुआ कि वे भी मेरी ही तरह यहाँपर शकके शिकार बने हैं। मुझे इसके बाद अपने साथकी पुस्तकें व वहाँका समाचारपत्र भी पढ़नेकी इजाज़त मिल गयी। बीच बीचमें सिंगापुरके गवर्नर जो यहाँकी फौजके जनरल भी थे मुझे बुलाते थे और बहुत अच्छी तरह पेश आते थे। मुझे 'पायोनियर' पत्र भी पढ़नेको देने लगे जिससे देशके भी थोड़े बहुत समाचार मिलने लगे। इसी प्रकार डेढ़ मास और बीत गये और क्रिस्मसका दिन आ गया। ऐन क्रिस्मसके दिन मुझसे कहा गया कि तुम्हारे छोड़े जानेकी सिफ़ारिश भारत सरकारसे की गयी है और तुम अब जल्द ही छोड़ दिये जाओगे।

तीन चार दिन और बीत गये। संवत् १९७२ के पौष कृष्ण ११ (पहली जनवरी १९१६) को मुझे आज्ञा मिली कि तुम जहाँ चाहो जा सकते हो। इसके बाद असबाबके साथ मैं होटलमें भेज दिया गया। दो दिनके बाद मेरा रुपया पैसा भी मिल गया पर जो गिन्नियाँ मेरे पास थीं वह सब ले ली गयीं और उनकी जगह मुझे एक रसीद दे दी गयी। यदि मेरे पास टामस कुक व अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी‡ के यात्रियोंके चेक (ट्रेवलर्स चेक||) न होते तो सिंगापुरमें बड़ी ही तकलीफ़ होती क्योंकि मेरे पास, जिस समय मैं छोड़ा गया था, एक पैसा भी न था। मुझे तीन मासके कारागार-वासमें, १४ दिन छोड़ जब कि मैं काल कोठरीमें था, अपने खानेपीनेका मूल्य अपने पाससे ही देना पड़ा था। बादशाहके यहाँ मेहमान रहनेमें औरोंको जो भोजन मुफ्तमें मिलता है वह भी मुझे न मिला।

बाहर, सिंगापुरमें जो जो जुल्म हुए थे उनका कुछ कुछ पता मिला क्योंकि खुल कर कोई बात न करता था। पर सुननेमें तो यहाँ तक आया कि बहुतसे सिपाही वहाँ गोलीसे बीच शहरमें मार दिये गये हैं व न जाने कितने भारतवासी प्रशान्त महासागरसे लौटते हुए यहाँ पकड़कर खतम कर दिये गये जिनका कुछ भी समाचार भारत-

---

*"We think you are innocent but we cannot take any chance, we cannot let you go unless we make sure"

† Parole.

‡ American Express Company.

|| Traveller's Cheque.

बालियोंको नहीं है। न जाने क्यों भारतीय व्यवस्थापक सभा वालोंने इस सम्बन्धमें कोई प्रश्न नहीं पूछा और वहांका समाचार जाननेकी चेष्टा नहीं की। मुझे वहीं, जब मैं जेलमें ही था, यह समाचार उन्हीं महाशयके ज़बानी सुन पड़ा था जो मुझसे मुलाकात करने थे कि वे मेरे बारेमें दर्याफ्त करने भारतवर्ष आये थे और काशी भी गये थे। यहाँ आनेपर मालूम हुआ कि घरवालोंकी पूछताछपर अधिकारियोंने जवाब दिया था कि उन्हें इस बारेमें कुछ नहीं मालूम है जेलसे चलते समय मुझे एक पत्र मिला था जिसे मैं नीचे उद्धृत करता हू ।

A. M. Thomson, Major,
Provost Marshal.

To whom it may concern,

Mr. S. P. Gupta was detained at Singapur from 30-9-15 to 31-12-15 under orders from the General Officer, Commanding Straits Settlement, and is now permitted to proceed home to Benares, India via. Colombo, Madras and Calcutta by the Japanese Mail leaving Singapur on or about the 5th January, 1916.

Fort Canning, SINGAPUR, 3rd Jany. 1916.

(Sd.) A. M. THOMSON, MAJOR,
Provost Marshal

This certificate is only valid for the steamer mentioned above and in connection with passport No 60/15 issued by His Britannic Majesty's Consul General at Kobe, Japan.*

अर्थात्

श्री ए. एम. टामसन, मेजर,
प्रोवस्ट मार्शल ।

"जो सज्जन पूँछताछ करना चाहें उनके लिये—

मुहानेकी बस्तियोंके सेनाध्यक्ष प्रधान कर्मचारीकी आज्ञासे श्री शिवप्रसाद गुप्त सिंगापुरमें तारीख ३०-९-१९१५ से ३०-१२-१९१५ तक रोक लिये गये थे और अब उन्हें ५ जनवरी १९१६ को या उसके लगभग सिंगापुरसे चलने वाले जापानी जहाज द्वारा कोलम्बो, मद्रास व कलकत्तेके मार्गसे अपने घर बनारस (भारतवर्ष) जानेकी अनुमति दी गयी है।

फोर्ट कैनिंग, सिंगापुर
३ जनवरी १९१६

हस्ताक्षर—ए. एम. टामसन, मेजर,
प्रोवस्ट मार्शल

यह प्रमाणपत्र ऊपर कहे गये जहाजमें व ६०/१५ संख्यक उस पासपोर्टके सम्बन्धमें ही मान्य हो सकेगा जो जापानके कोबे नगरमें स्थित ब्रिटेनके महामान्य सम्राट्के कौन्सल जनरल (राजदूत) द्वारा दिया गया है।"

चार दिन होटलमें रहनेके बाद मुझे जहाज़ मिला और मैं घरकी ओर चल दिया। कोलम्बो पहुँचनेपर पुलिस द्वारा फिर एक बार साँसतमें पड़ना पड़ा। पूरी तलाशी ली गयी, तब कहीं ५,६ घण्टेके बाद मैं छोड़ा गया। इसके बाद कोई विशेष उल्लेख योग्य घटना न हुई और मैं काशी लौट आया। काशीमें तत्कालीन कमिश्नर और गवर्नरसे बातचीत हुई। उन्होंने सहानुभूति दिखाने और माफ़ी माँगनेकी जगह उलटा भलाबुरा कह कर दुःख, क्षति और नुक़सानके साथ अपमानकी वृद्धि की। इसका परिणाम मैंने अपने मनमें यही निकाला कि 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'।

काशी,
२९ श्रावण १९८०।

शिवप्रसाद गुप्त।
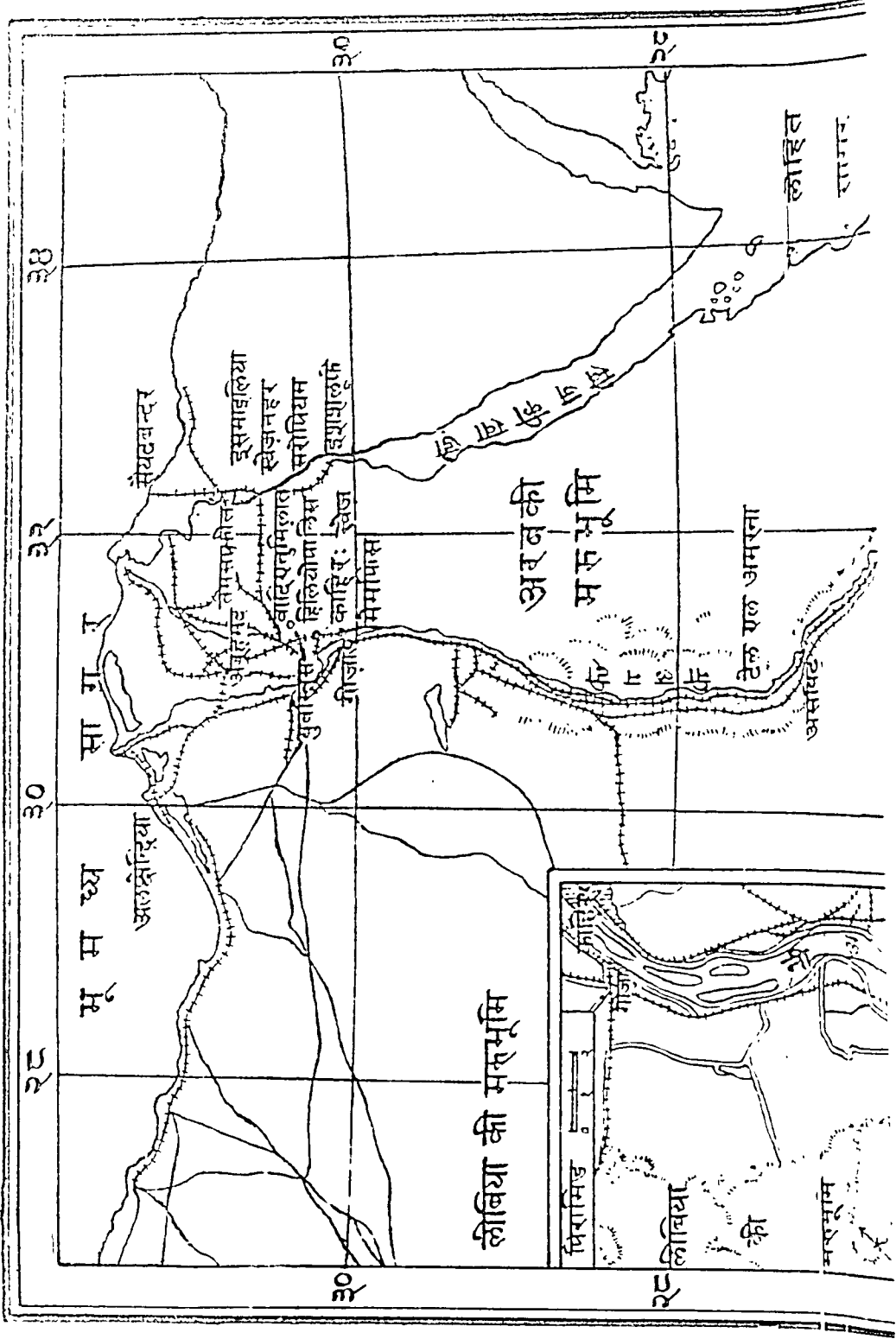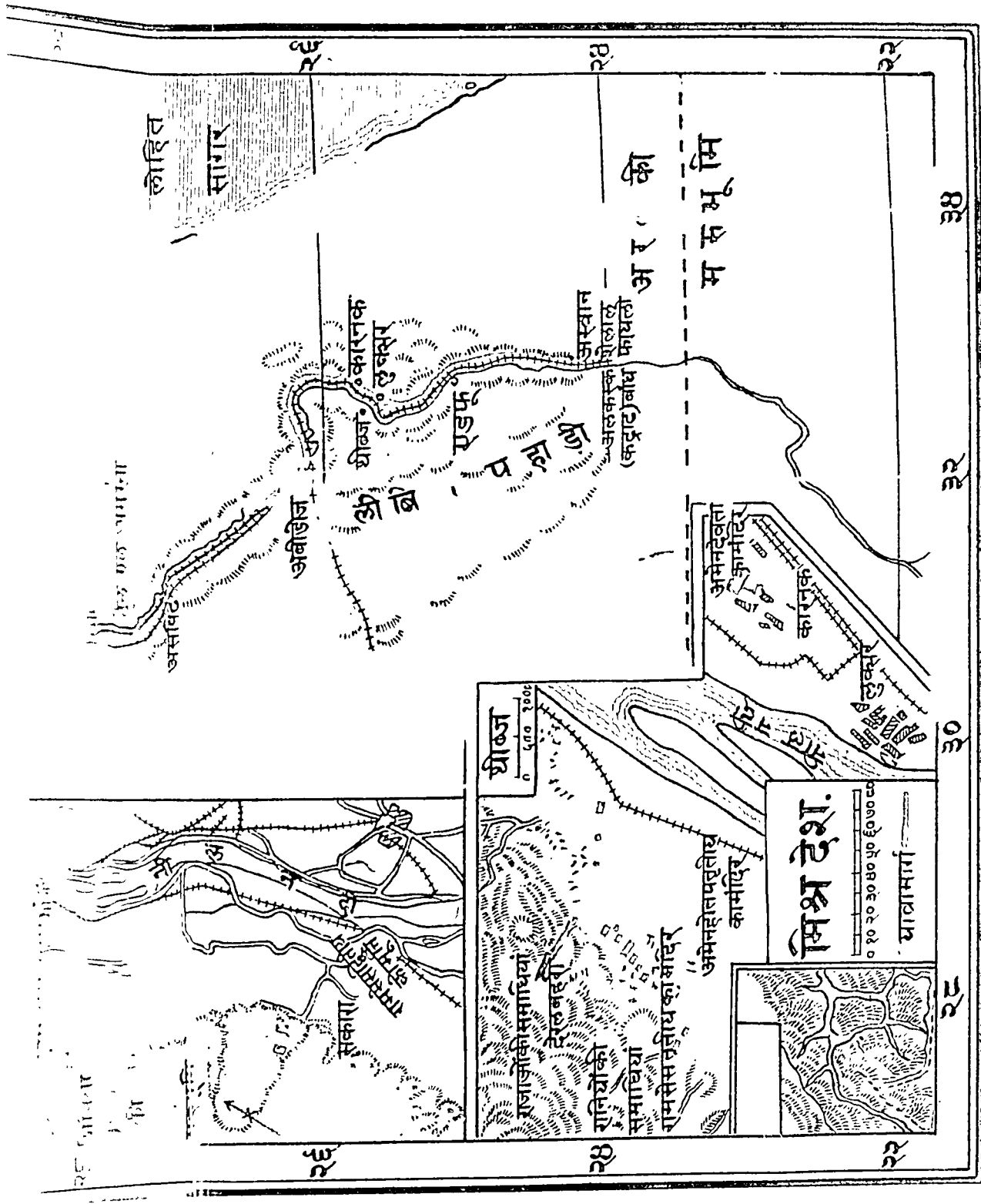
बङ्गाल आर्ट स्टूडिओ. प्रि. लि. कलकत्ता

प्रथम खण्ड—मिश्रदेश।

पृथिवी प्रदक्षिणा

जहाज चला जा रहा है (पृष्ठ १)

अथ

पृथिवी—प्रदक्षिणा।

पहिला परिच्छेद।
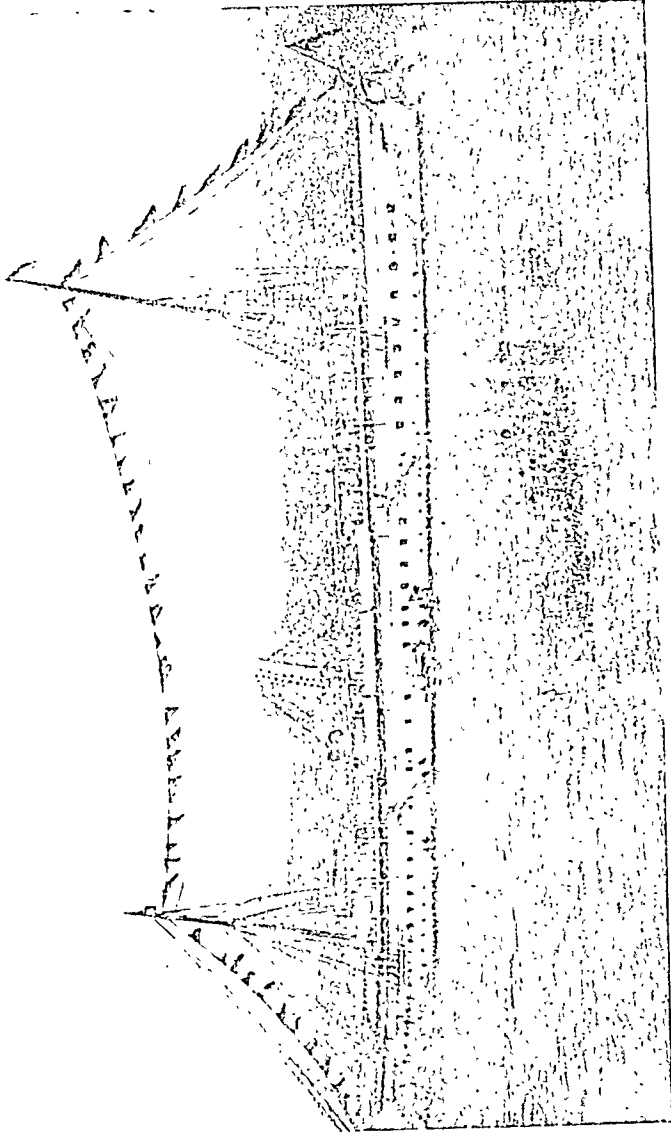
बम्बईसे प्रस्थान।

मध्याह्नका समय है। हम लोग पोतारूढ़ हो चुके हैं। एक छोटीसी नौकापर इष्ट मित्र, बन्धु-बान्धव घरकी ओर मुख किये जा रहे हैं। उनकी नौका हिलोरोंमें हिल रही है। मित्रलोग सफेद रूमाल हिला हिलाकर संकेत कर रहे हैं कि हम तुम्हें अभी देखते हैं। उत्तरमें हम भी अपना रूमाल हिला रहे हैं।

यह क्या! यह खड़बड़ खड़बड़ कैसा? देखनेसे ज्ञात हुआ कि लंगर उठ रहा है, उसीकी मोटी लौह-शृङ्खलाका यह शब्द था। क्या जहाज चल दिया? हाँ, वह देखो विशाल समुद्रके वक्ष-स्थलको चीरता हुआ चला जा रहा है और दोनों ओर नील समुद्रके वक्ष-स्थलसे द्रवित श्वेत रङ्गका लोहू बह रहा है। हाँ! यह शब्द कैसा है।—मानो समुद्र रोता है। ख़ैर, इसे रोने दो, यह तो योंही रोया करेगा।

अरे, यह क्या! प्यारा देश किधर गया! अरे ऐ प्रियतम! तू मुझसे क्यों भागा जा रहा है? यह मैं कह ही रहा था कि मुम्बईका किनारा आँखोंसे ओझल हो गया। उन विशाल अट्टालिकाओंका कहीं पता भी नहीं मिलता। वह देखो 'ताजमहल' का गुम्बज भी नज़रोंके ओझल हो गया। अरे यह क्या? मुम्बईकी पहरा देनेवाली बड़ी बड़ी द्वीपराशिकी पहाड़ियाँ भी छिप चलीं। अरे, अब क्या चारों ओर यह विशाल, अथाह समुद्र ही दीख पड़ेगा और कुछ नहीं? नहीं। यह समझ अकल ठिकाने आयी। अब अपने असबाबकी चिन्ता पड़ी।

अपने कमरेमें आये तो क्या देखते हैं कि एक कबूतरके दरबेमें तीन जनोंकी कलौंजी बनेगी और उसीमें मसालेकी जगह असबाब भी भरा जावेगा। खैर, पर सामान है कहाँ? जो हाथका बेग वगैरः साथ आया था वह तो मिला, यहीं रक्खा है, बाकी सामानका कहीं पता नहीं। बहुत पूछनेके बाद सामने गँजो हुई सामानकी राशि देख पड़ी। एकके ऊपर एक बक्स, बिछौनेके बण्डल और नाना प्रकारका असबाब इस बेरहमीसे लादा गया था कि उसकी भगवान् ही रक्षा करें। नर-नारी गृध्रवत् उसपर टूटे थे। अपना गुज़ारा वहाँ न देख हम अपने कमरेमें चले आये। हमारे इस भावका

अन्त हो गया कि पाश्चात्य देशवाले बड़े कार्य्यकुशल होते हैं और वे सब कार्य्य ठीक रीतिसे करते हैं। हमारे देशकी रेलोंमें देशी कर्म्मचारी इससे कहीं अच्छा प्रबन्ध करते हैं। यहाँपर तो गोरोंकी अध्यक्षतामें कार्य्य अच्छा होना चाहिये था किन्तु है अत्यन्त खराब।

जहाजका भोजनालय

अब भूख लगी तो ऊपर आये। प्रथम श्रेणीके मुसाफिरोंके लिए एक उत्तम सुसज्जित भोजनालय बना है। यह कमरा खूब सजा है। पंखा, रोशनी, फूलपत्ती और तरह तरहकी तसवीरें भी यहां लगी हैं। इसका बाह्य रूप बड़ा मनोहर व चित्ताकर्षक है किंतु भीतरी रूप देखते ही तुलसीदासजीकी यह चौपाई याद आ जाती है

मन मलीन तन सुन्दर कैसे।
विखरस भरा कनकघट जैसे।

अब भोजनके आसनपर जा बैठे। सामने एक रिकाबी, दो कांटे, और एक चम्मच तथा दो छूरियां पड़ी थीं। चम्मच केवल रात्रिके समय ही रसा खानेके लिये रहता है। सामने एक सुन्दर दोहरी पियाली या शीशेके दोवरेमें निमक व मिर्च रक्खी थी। एक गिलासमें पीसी हुई राई थी। कांचकी साफ सुराहीमें शीतल जल था और पीनेका एक पात्र भी रक्खा था। एक थैलीमें एक साफ दस्ती-रूमाल भी था, एक कांचके गिलासमें थोड़ेसे खरके रखे थे। यहां ये लकड़ीके थे पर अंगरेजी जहाजमें परके होते हैं। चांदीकी थालीमें एक बोतल शराब भी रखी थी। फरासीसी जहाज़पर इसका मूल्य नहीं लगता। बांई ओर एक फूली रोटी रक्खी थी और कटोरीमें मक्खन भी था। सबको देखादेखी मैंने रूमाल थैलीमेंसे निकाल पैरपर फैला लिया और हाथमें रोटी उठा ली। इतनेमें एक रसोइया कुछ लेकर आया और सबको दिखाता हुआ मेरे पास भी आ पहुंचा। मेरी बांई ओर खड़ा होकर उसने थाली मेरे सामने भी कर दी। थालीमें एक बड़ा चम्मच और एक कांटा पड़ा था, उसीसे उठाकर लोग उस थालमेंसे भोज्य पदार्थ निकालते थे। मैंने भी वैसा ही करना चाहा किन्तु माथा ठनका और मैंने पूछताछ प्रारम्भ की। मालूम हुआ कि उसमें पकायी हुई मछली थी। मैंने दूरसे नमस्कार किया और रसोइयेको उसे हटानेका संकेत किया। क्रमशः जलचर, नभचर, बकरी, भेंड़ा, शूकर और न जाने किन किन जीवोंका मांस आने लगा। मैं चुपचाप बैठा देखता रहा और सोचता रहा कि नौ मास कैसे बीतेंगे। इतनेमें अंडे आये, उन्हें भी मैंने ले जानेका संकेत किया। अब मेरे पास बैठे हुए एक पारसी बन्धुसे न रहा गया। उन्होंने झट प्रश्न कर दिया कि "इसमें क्या हर्ज है ? इसमें तो प्राण नहीं हैं, इसमें तो जीव केवल प्रारम्भिक (एम्ब्रियो) अवस्थामें है। इस तरह तो जीव वनस्पतियोंमें भी है ? और फिर अंडोंके खानेसे आप हिंसकोंको पक्षिहिंसासे बचावेंगे।" मैंने नम्रतासे उत्तर दिया कि "नहीं महाशय, यह प्रश्न इतना सरल नहीं है कि भोजनके आसनपर इसका यथार्थ निर्णय हो जावे। हम लोग फिर कभी इसपर विवाद करेंगे।" मैं आज

अन्त हो गया कि पाश्चात्य देशवाले बड़े कार्य्यकुशल होते हैं और वे सब कार्य्य ठीक रीतिसे करते हैं। हमारे देशकी रेलोंमें देशी कर्म्मचारी इससे कहीं अच्छा प्रबन्ध करते हैं। यहाँपर तो गोरोंकी अध्यक्षतामें कार्य्य अच्छा होना चाहिये था किन्तु है अत्यन्त खराब।

जहाजका भोजनालय।

अब भूख लगी तो ऊपर आये। प्रथम श्रेणीके मुसाफिरोंके लिए एक उत्तम सुसज्जित भोजनालय बना है। यह कमरा खूब सजा है। पंखा, रोशनी, फूलपत्ती और तरह तरहकी तसवीरें भी यहां लगी हैं। इसका बाह्य रूप बड़ा मनोहर व चित्ताकर्षक है किंतु भीतरी रूप देखते ही तुलसीदासजीकी यह चौपाई याद आ जाती है

मन मलीन तन सुन्दर कैसे।
विषरस भरा कनकघट जैसे।

अब भोजनके आसनपर जा बैठे। सामने एक रिकाबी, दो कांटे, और एक चम्मच तथा दो छूरियां पड़ी थीं। चम्मच केवल रात्रिके समय ही रसा खानेके लिये रहता है। सामने एक सुन्दर दोहरी पियाली या शीशेके दोघरेमें निमक व मिर्च रक्खी थी। एक गिलासमें पीसी हुई राई थी। कांचकी साफ सुराहीमें शीतल जल था और पीनेका एक पात्र भी रक्खा था। एक थैलीमें एक साफ दस्ती-रूमाल भी था, एक कांचके गिलासमें थोड़ेसे खरके रखे थे। यहां ये लकड़ीके थे पर अंगरेजी जहाजमें परके होते हैं। चांदीकी थालीमें एक बोतल शराब भी रखी थी। फरासीसी जहाजपर इसका मूल्य नहीं लगता। बांई ओर एक फूली रोटी रक्खी थी और कटोरीमें मक्खन भी था। सबको देखादेखी मैंने रूमाल थैलीमेंसे निकाल पैरपर फैला लिया और हाथमें रोटी उठा ली। इतनेमें एक रसोइया कुछ लेकर आया और सबको दिखाता हुआ मेरे पास भी आ पहुंचा। मेरी बांई और खड़ा होकर उसने थाली मेरे सामने भी कर दी। थालीमें एक बड़ा चम्मच और एक कांटा पड़ा था, उसीसे उठाकर लोग उस थालमेंसे भोज्य पदार्थ निकालते थे। मैंने भी वैसा ही करना चाहा किन्तु माथा ठनका और मैंने पूछताछ प्रारम्भ की। मालूम हुआ कि उसमें पकायी हुई मछली थी। मैंने दूरसे नमस्कार किया और रसोइयेको उसे हटानेका संकेत किया। क्रमशः जलचर, नभचर, बकरी, भेंड़ा, शूकर और न जाने किन किन जीवोंका मांस आने लगा। मैं चुपचाप बैठा देखता रहा और सोचता रहा कि ये मास कैसे खाते होंगे। इतनेमें अंडे आये, उन्हें भी मैंने ले जानेका संकेत किया। अब मेरे पास बैठे हुए एक पारसी बन्धुसे न रहा गया। उन्होंने झट प्रश्न कर दिया कि "इसमें क्या हर्ज है? इसमें तो प्राण नहीं हैं, इसमें तो जीव केवल प्रारम्भिक (एम्ब्रियो) अवस्थामें है। इस तरह तो जीव वनस्पतियोंमें भी है? और फिर अंडोंके खानेसे आप हिंसकोंको पक्षिहिंसासे बचावेंगे।" मैंने नम्रतासे उत्तर दिया कि "नहीं महाशय, यह प्रश्न इतना सरल नहीं है कि भोजनके आसनपर इसका यथार्थ निर्णय हो जावे। हम लोग फिर कभी इसपर विवाद करेंगे।" मैं आज

मिश्रकी चित्रलिपि व चित्रकारी (पृष्ठ ३५)

केवल रोटियोंके दो टुकड़े मक्खनके साथ और दो चार आलू खाकर तथा कटोरी भर दूध पी कर ही उठ खड़ा हुआ।

जहाजकी दिनचर्य्या।

संध्या समय जहाज़की छतपर आया. चाँदनी खिली थी और अपनी लावण्य-मयी शोभासे लोगोंके हृदयोंको मुग्ध कर रही थी। शीतल समीर भी वेगसे बह रहा था। मैं थोड़ी देर तक इनका आनन्द लेता रहा, फिर देश और बन्धु-बान्धवोंका स्मरण आ जानेसे जी भर आया और नीचे कोठरीमें जा चिराग़ बुता, पंखा खोल बिस्तरेपर जा पड़ा। थोड़ी देर इधर उधर करवटें बदलता रहा, फिर निद्रा-देवीकी गोदमें आजका दिन समाप्त हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल जहाज़की घड़घड़ाहटसे नींद खुली तो सूर्य भगवान् उदय हो चुके थे। प्रातः समीर बह रहा था। कोठरीमें जो एक खिड़की लगी थी उससे झाँककर बाहरका दृश्य देखा तो वही प्रकाण्ड विशाल जलराशि। जिधर आँख जाती थी सिवाय जलके कुछ दृष्टिगोचर न होता था।

अब निपटनेकी फिक्र हुई। यह एक प्रचण्ड समस्या थी। मित्रोंके कह रखनेके कारण मैं एक डांटदार सफेद बोतल अपने साथ लाया था। उसमें पानी भर उसे तौलियामें लपेट एक लम्बा लबादा पहिन कोठरीके बाहर निकला और शौचालय खोज उसमें जा घुसा। यह एक साफ सुथरी जगह थी। रेलकी तरह अंगरेजी ढंगकी खुड्डी बनी थी। मैं उसपर अपने तरीक़ेसे पैर रख बैठ गया। बाद नीचे उतर बोतलसे पानी ले शौच कर लिया। पानी इस प्रकार गिराया कि ठीक नलमें चला जाय, इधर उधर न गिरे।

यहाँसे लौटकर अपनी कोठरीमें हाथ मुंह धो दांतुन की। (हमारी कोठरी दस फुट लम्बी और सात फुट चौड़ी थी। चौड़ानकी ओर उसमें एक आसन था और लम्बानकी ओर नीचे ऊपर दो आसन थे। इस प्रकार तीन जनोंके निर्वाहके लिये यह जगह थी। हाथ मुंह धोनेका स्थान इसीमें था, एक कांचके बर्तनमें पीनेका पानी और लघुशंकाके लिये भी एक पात्र रक्खा था।) इसके उपरान्त स्नानकी तैयारी हुई। यहां भी लम्बा लबादा पहिन, साबुन तौलिया और बादलका एक टुकड़ा ले रवाना हुआ। स्नानागारमें पहुंचा। वहाँके नौकरने दो कोठोंमें मीठा पानी और एक छोटीसी कण्डाल या नाँद ला रखी और एक तौलिया ज़मीनमें पीढ़ेपर बिछा दी और दूसरी बदन पोछनेके लिये रखकर दरवाज़ा बन्द कर दिया। इस कोठरीमें संगमरमरकी एक बड़ी नाँद या पथरी रक्खी थी जिसमें आदमी भलीभाँति लेट सके। उसमें दो नल लगे थे, एक ठंढे पानीका और दूसरा गर्मका। ऊपर एक फुहारा था। पाश्चात्य सभ्यतावाले लोग इस पथरीमें पानी भर उसीमें लेट जाते हैं, और साबुन लगाकर नहा लेते हैं। किन्तु पूर्वके रहने वाले हम लोगोंको यह तरीका गन्दा लगता है, इस कारण मैंने ऊपरका फुहारा खोल कर उसमें स्नान किया। अब ज्ञात हुआ कि यह जल समुद्र-का था। समुद्रका जल खारा होता है, वैसा खारा नहीं जैसा कि हमारे यहाँ कुएका

पानी किन्तु एक लोटेमें आधपाव नोन मिलानेसे पानीका जैसा स्वाद होगा वैसा था। अब मालूम हुआ कि मीठा पानी नहानेके बाद बदन धोनेके लिये था, कारण कि समुद्रका पानी यदि धो न डाला जाय तो शरीर चिपिर चिपिर करने लगता है। मैंने लोटोंका पानी कठवतमें उझिल उसमें बादल डुबो बदन धो डाला। फिर अपने कमरेमें आकर सन्ध्यावन्दन कर कपड़ा पहिन ऊपर गया। जलपान करनेके बाद मित्रोंसे बातचीत और समुद्रकी सैर करतारहा। फिर जहाज़परके खेल-कूद, नाच-रंग, तथा यूरोपीय नरनारियोंकी अठखेलियां देख दिन बिताने लगा। कभी कभी कुछ लिखता पढ़ता भी था। इसमें समय बीतने लगा। देखते देखते पांच दिन व्यतीत हो गये।

पृथ्वी प्रदक्षिणा
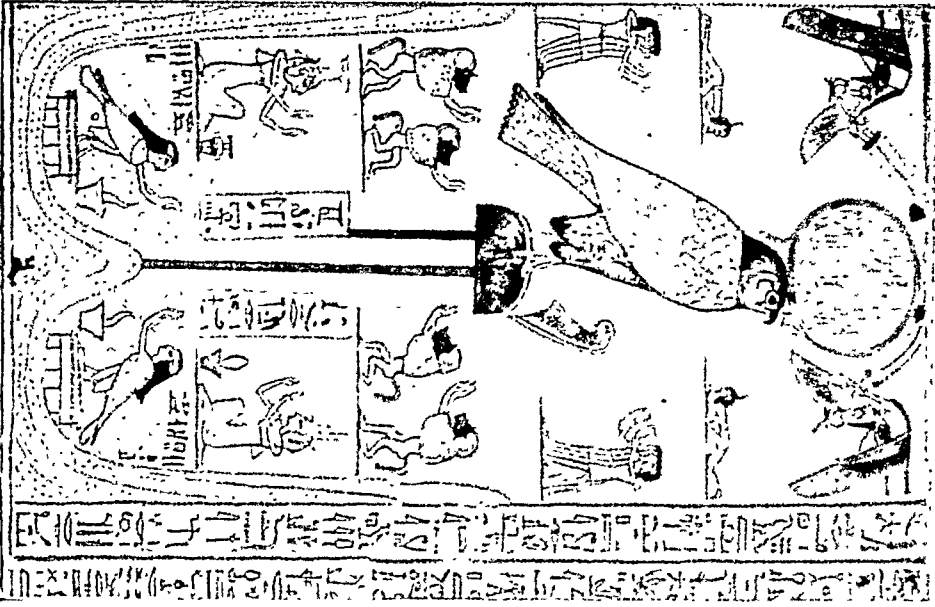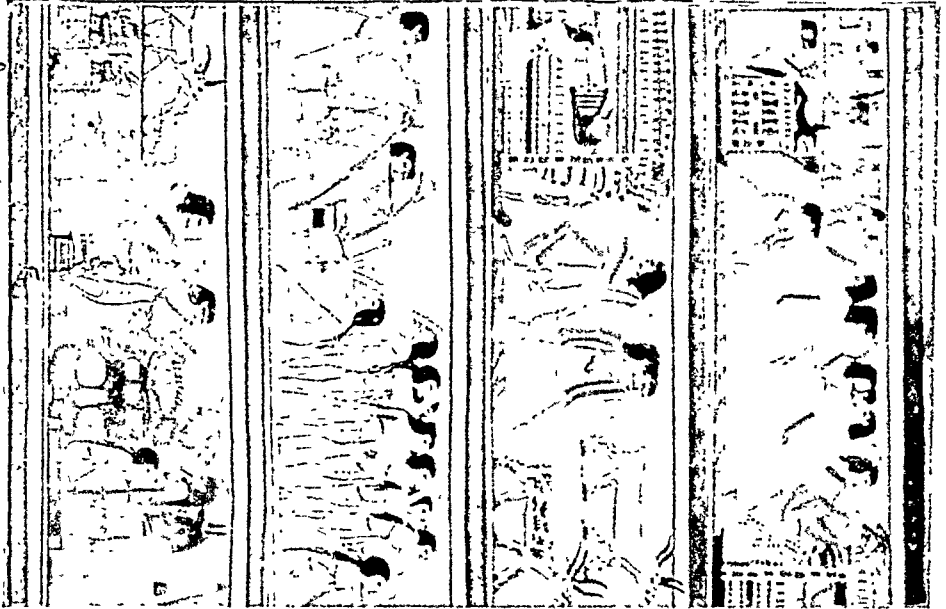
मिश्रकी चित्रलिपि व चित्रकारी (पृष्ठ ३५)
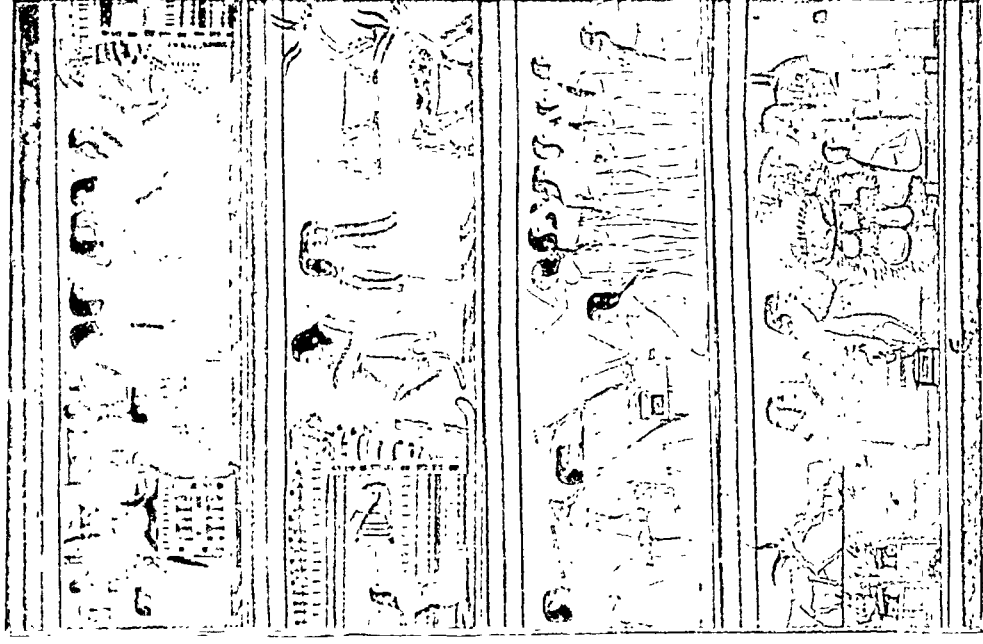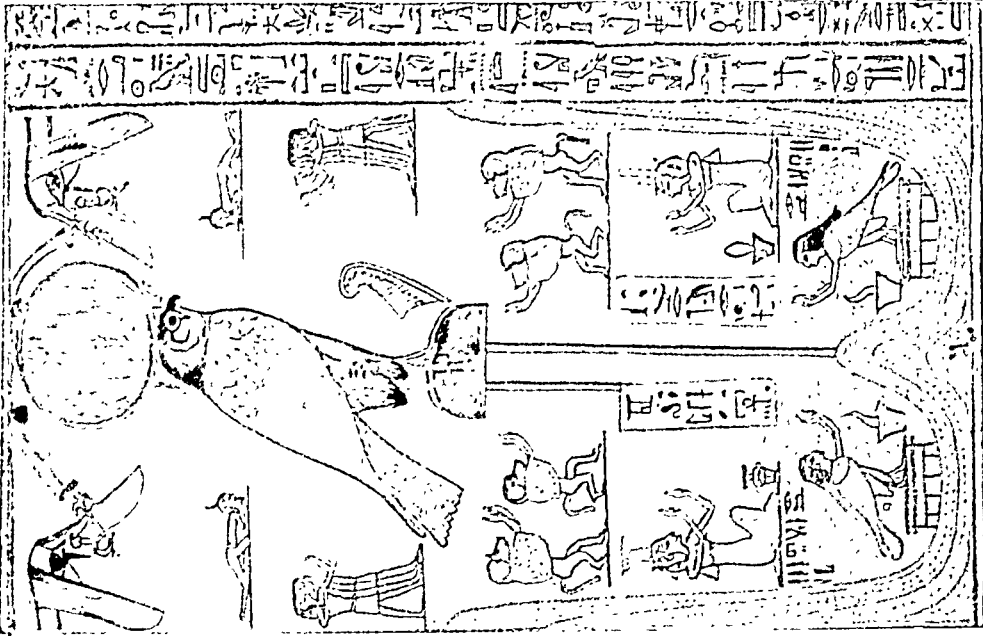
मिश्रकी चित्रलिपि व चित्रकारी (पृष्ठ ३५)

दूसरा परिच्छेद।

अदनका दृश्य।

आज बम्बईसे चले पांच दिन हो गये। इन पांच दिनोंमें सिवाय जलराशिके पृथिवीका दर्शन नहीं हुआ था, इस कारण आज पृथिवीके दर्शनार्थ चित्त उल्लाससे भर रहा था। सवेरा होते ही नित्यक्रियासे निपट, कपड़ा पहिन, चित्र लेनेकी सामग्री और दूरदर्शक यंत्र लेकर नावकी छतपर जा पहुंचा। सामनेकी ओर दूरपर एक पहाड़ीसा कुछ धुंधला धुंधला दीख पड़ता था। दूरदर्शक यंत्रसे देखनेपर वह अदनकी पहाड़ी साफ दिखने लगी। आज पक्षी भी उड़ते हुए अधिक देख पड़ते थे। थोड़ी देरके बाद हम और निकट आ गये और अदन नगर सामने देख पड़ने लगा। हमारा जहाज एक तरफसे घूमकर भीतर गया। यह पोताश्रय (हार्बर) ८ इस आकारका है। पीछेसे घूमकर जहाज़ भीतर आता है। यहाँ पानी छिछला है, इस कारण समुद्रका वर्ण यहांपर नीला नहीं है। यहां जलका रंग हरित है और कहीं कहीं तो मटमैला भी है। इस जगह और कई जहाज़, छोटे छोटे अग्निबोट, पटैले और डोंगियां खड़ी थीं।

हमारे जहाज़के खड़े होते ही बहुतसे पनसुइयोंपर चढ़े हुए श्यामवर्णके लोगोंने हमें आ घेरा। ये अरब व सुमाली देशके रहनेवाले थे। अरबोंका वर्ण पक्के रंगका हमारे देशके लोगोंकी भांति है किन्तु सुमाली देशवालोंका रंग अत्यन्त काला कोयलेकी भांति है और उसमें एक प्रकारकी चमक है। इनके केश भेड़ीके बालोंके सदृश घुंघराले हैं, किन्तु अत्यन्त काले हैं इन लोगोंके ओष्ठ मोटे और रक्तवर्णके हैं। ये लोग भी हमारे देशी मल्लाहोंकी भांति हैं। इनमें कोई विशेषता नहीं है। मैंने फरासीसी और अंगरेजी नाविकोंमें भी कोई विशेष चातुर्य अथवा नैपुण्य नहीं पाया, न उनके शरीर ही हमारे देशी नाविकोंसे अधिक बलिष्ट हैं। मेरा यह भ्रम कि हमारे देशवासी अच्छे नाविक नहीं हैं, एकदम दूर हो गया। मेरा यह दृढ़ निश्चय हो गया कि हमारे देशवासी नाविकोंको यदि ये सब सुविधाएं प्राप्त हों जो इन अन्य देशवासियोंको प्राप्त हैं, तो हमारे नाविक इनसे किसी प्रकार श्रम, चातुर्य अथवा कौशलमें न्यून न प्रतीत होंगे। युद्धमें तो उनसे अधिक पराक्रमी हैं ही, इसमें तो कुछ कहना ही नहीं है।

ये अरब अथवा सुमाली देशवाले, अर्द्ध हबशी, नाना प्रकारकी वस्तुएं बेचनेको लाये थे, जिनमेंसे अधिकांश विलायती कपड़े और अन्य प्रकारकी जरूरी वस्तुएं थीं, जैसे सिगरेट इत्यादि। कुछ थोड़ेसी अरबी उस देशकी चीजें भी लाये थे जिनमें लम्बे हरनोंके सींग, शुतुर्मुर्गके अंडे, पीले पीले दानोंकी मालाएं, मूंगे, सींग, कांटेदार शङ्ख व कौड़े थे। इन सबने जहाजोंकी छतपर आ दूकान खोल दी।

हमलोग प्रायः एक बजे नगर देखनेके लिये किनारेपर गये। वहांसे एक गाड़ी कर पहिले डाकघर गये। डाकमें चिट्ठियां छोड़ीं, फिर नगर देखनेके मिस इधर उधर घूमने लगे। जिधर हमारा जहाज़ खड़ा था उधरकी ओर अंगरेजोंने पहाड़ काटकर छोटासा नगर बसा लिया है। यह बिलकुल आधुनिक रीतिपर बना है। यहां नवीन चालकी इमारतें हैं जिनमें होटल व दूकानें भी हैं। समुद्रके किनारे किनारे बहुत दूर तक एक बहुत अच्छी सड़क चली गयी है। यह नगर केवल सैनिक विचारसे बनाया और सजाया गया है। यहांपर अनेक प्रकारसे मोर्चेबन्दी की गयी है और व्यूहका निर्माण हुआ है। सैनिक विचारसे यह सर्वथा सम्पूर्ण है। एक जापानी बन्धुके बतानेसे ज्ञात हुआ है कि पोर्टआर्थरकी भांति ही यह मज़बूत और दुर्दमनीय है। लोहित सागरका मुहाना इससे भलीभांति सुरक्षित है।

नये नगरको देखकर हम पुराने नगरको देखने चले। रास्तेमें एक जगह कोयलेका ढेर लगा था। यह जहाज़ोंके लिए यहां रक्खा था। सब जहाज़ यहांसे कोयला लेते हैं। उसी जगह काली काली, कोयलेसे कुछ कम काली, ईंटें रक्खी थीं। पूछनेसे ज्ञात हुआ कि ये एक प्रकारसे बनाये हुए निर्धूम कोयले हैं जो युद्धपोतके काममें आते हैं। इनमें ताप अधिक होता है किन्तु धुआं नहीं होता। इस कारण दूर रहनेसे विपक्षवाले जहाज़का पता नहीं लगा सकते।

यहांसे कुछ दूरीपर बहुतसे श्वेत टीले नज़र आये। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि ये नोनकी ढेरियां हैं। यहां समुद्रके जलसे नोन निकालते हैं। इसका यहांपर व्यापार होता है।

अब आगे चले तो देखा कि पहाड़ काटकर एक रास्ता बनाया हुआ है। इसके बीचमेंसे होकर जाना पड़ा। इसके ऊपरके हिस्सेमें एक ईंटोंका मेहराब बना है जो शिल्पकुशलताका परिचय देता है। भीतरका नगर भी बिलकुल नवीन प्रतीत हुआ। यहांकी इमारतें भी बिलकुल आधुनिक ढंगकी हैं।

यहांपर जलकी बड़ी कमी है। प्राकृतिक जलस्रोत बिलकुल नहीं है, कहीं कहींपर कूप हैं जो बहुत गहरे हैं। पानीके जलकी कमीके कारण कहा जाता है कि पहाड़ काटकर दो तीन बड़े बड़े सरोवर आज कोई दो सहस्र वर्ष हुए अरबोंने बनवाये थे। ये आजलों वर्तमान हैं। अब इनकी मरम्मत नये प्रकारसे हो गयी है। इन्हींको देखनेके लिये प्रायः लोग यहां आते हैं। इन सरोवरोंमें प्रायः पहाड़का सभी पानी आ कर जमा होता है। लोग इसी पानीको बटोरकर रखते हैं और इसीसे पीनेका काम चलता है, और चलता था। हम लोगोंको ये सरोवर निर्जल देख पड़े। पूछताछसे ज्ञात हुआ कि यहां आज सोलह माससे वर्षा नहीं हुई। यह प्रदेश बिलकुल मरुभूमि है। यहां-पर वृक्षोंकी क्या कथा, तृण भी नहीं देख पड़े। अब अंगरेज़ोंने कहीं कहीं वृक्षारोपण करनेकी कुछ चेष्टा की है, सो भी भलीभांति सफल होती नहीं देख पड़ती। इधर उधर कहीं कहीं थोड़े बहुत वृक्ष मुरझायी हुई अवस्थामें होटलों और गृहोंके सम्मुख देख पड़ते हैं। मीठा जल प्राप्त करनेके लिए समुद्रके सन्निकट एक कारखाना खुला है, जो समुद्रके जलका मीठा और पीने योग्य बना देता है। यहींसे बड़े बड़े पीपोंमें भरकर जल नगरनिवासियों तथा फौजके लिये जाता है।
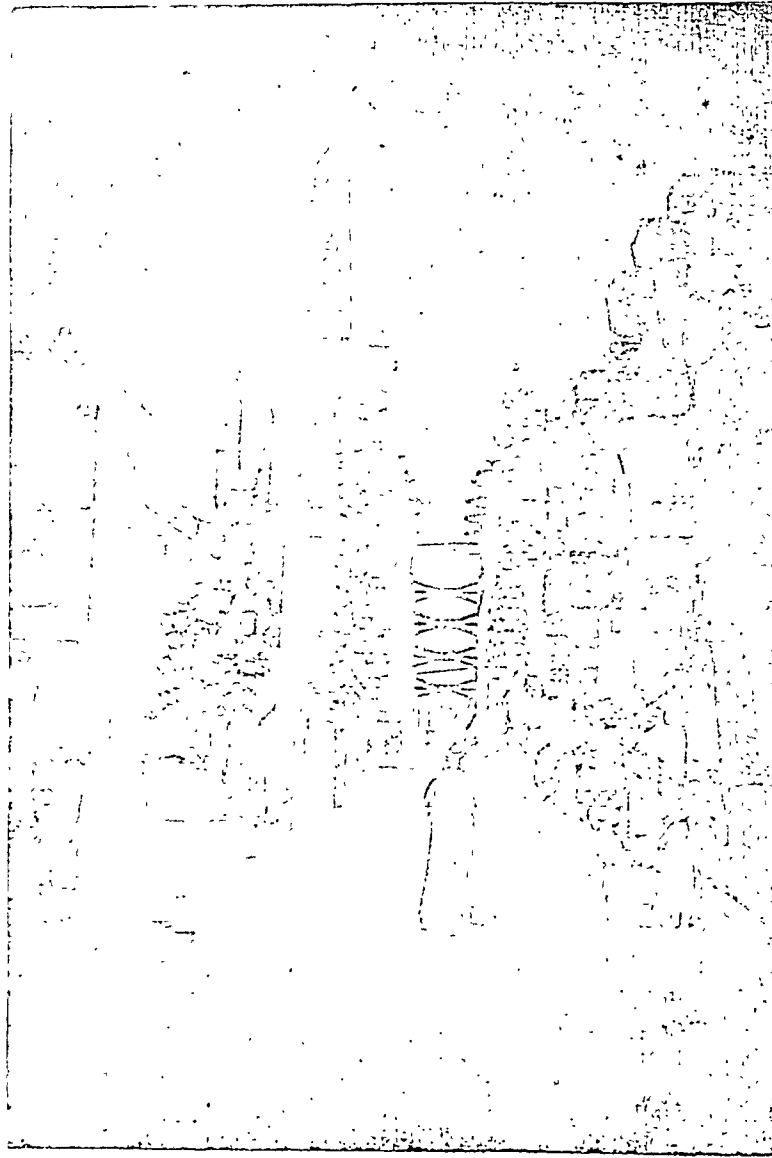
हाई पोस्टाइल हाल (पृष्ठ ३४)

हाई पोस्टाइल हाल (पृष्ठ ३४)

बहुतसे पाठकोंको यह आश्चर्यजनक प्रतीत होगा कि समुद्रका खारा जल मीठा कैसे बनाया जाता है। एक वाक्यमें इसका उत्तर इस भांति हो सकता है कि जिस प्रकार मेघ समुद्रका जल मीठा बना कर बरसाते हैं उसी प्रकार यहां कारखानेमें भी किया जाता है। किन्तु यह उत्तर सर्वसाधारणके चित्तमें न बैठेगा, इस कारण मैं इसे दूसरी भांति समझानेकी चेष्टा करूँगा। आपने कभी दाल रींधी है, यदि दाल रींधी है तो आपको ज्ञात होगा कि जो कटोरा बटुलीके ऊपर औंधाया रहता है उसकी पेंदीमें जलविन्दु एकत्र हो जाते हैं। यदि आपने कभी इस जलको चीखनेकी चेष्टा की होगी तो आपको मालूम होगा कि यह मीठा होता है। अब आप ही विचार कीजिये कि यह जल कहांसे आया। यह उसी बटुलीके भीतरसे प्राप्त हुआ है क्योंकि बाहरसे भीतर जल जानेका रास्ता नहीं है, और न अन्य जल ही कहीं निकट रहता है. बटुलीमें तो नमक पड़ा है, फिर बतलाइये यह मीठा जल कहांसे आया। यह भाफ द्वारा आता है।

विज्ञानवेत्ताओंने इसका पूरा पूरा पता लगाया है कि जलमें नमक मिला कर या कोई अन्य पदार्थ मिलाकर यदि उसकी भाफ उड़ायी जावे या अर्क उतारा जावे तो उसमें उसका स्वाद नहीं आवेगा, केवल फीके पानीका ही स्वाद रहेगा। अर्क कैसे उतरता है, उसका क्या सिद्धान्त है, इसका वर्णन भी यहां करना उचित प्रतीत होता है।

संसारमें जितने पदार्थ हैं हिन्दू विज्ञानके अनुसार उनके पांच रूप होते हैं- पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश अर्थात् ठोस, द्रव, वायुके समान, वायुसे भी अधिक पतला। और उससे भी अधिक पतला किन्तु पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता अभी यहां तक नहीं पहुंच सके हैं। उन्हें केवल चार ही रूप मालूम हैं।

(१) 'सॉलिड' अर्थात् पृथ्वी अथवा ठोस। (२) 'लिक्विड' अर्थात् जल अथवा द्रव। (३) 'गेशियस' अर्थात् वायु अथवा वायु सदृश। (४) 'इथर' वा अल्ट्रागेशियस, अर्थात् तेज वा वायुसे अधिक पतला।

इस पृथ्वीपर जितने पदार्थ मिलते हैं वे इन पूर्वोक्त रूपोंमेंसे प्रथम तीन रूपोंके होते हैं। बहुतसे ठोस अवस्थामें, कुछ द्रव-अवस्था और कुछ वायु-अवस्थामें पाये जाते हैं। किन्तु ताप व दबावकी मात्राके घटाने बढ़ानेसे इनकी अवस्थामें मन-माना परिवर्तन किया जा सकता है। जैसे पानीके तापको घटानेसे अर्थात् उसे ठंढा करनेसे वह हिम अर्थात् बरफ़ हो सकता है, पानीके तापको बढ़ानेसे अर्थात् उसे गरम करनेसे वह भाफ़ अर्थात् वायुरूप होकर उड़ जाता है। इसी प्रकार सब पदार्थों अथवा तत्वोंका स्वभाव है।

कौन पदार्थ कितने तापसे द्रव अथवा वायुरूप धारण करता है विज्ञानवेत्ता-ओंने इसकी तालिका भी बना दी है। इसीके अनुसार जब पानीकी भाफ बनायी जाती है तो केवल वही पदार्थ पानीके साथ भाफ बनकर उड़ता है जो उतने ही या उससे न्यून तापमें वायुरूप धारण कर सकता है जितने तापमें जल वायुरूप धारण करता है। सुतराम् यहाँ इतना ही कहना अलम् होगा कि नमक व इसी भाँतिके और पदार्थ, जैसे फिटकरी वग़ैरह, जो बहुतायतसे समुद्रके जलमें रहते हैं उतनी

गर्मीसे वायुरूप नहीं धारण कर सकते जितनेसे जल करता है, अतः वे पीछे रह जाते हैं। अब आप लोगोंकी समझमें आ गया होगा कि समुद्रका खारा जल पीने योग्य कैसे बनाया जाता है। अर्थात् पहिले वह उबाला जाता है, फिर जो भाफ उड़ती है वह उसी भाँति बटोर कर ठंडी कर ली जाती है जैसे साधारण अत्तार लोग अर्क उतारनेमें करते हैं और पूर्वोक्त कथनानुसार यह बटोरा हुआ जल मीठा और पीने योग्य हो जाता है।

इस अदन नगरमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी लोग बसते हैं। इसी प्रकार अरबी, मिश्री, सुमाली, अंगरेज़ तथा भारतीय भी यहाँ रहते हैं। हमारे हिन्दू भाइयोंने यहाँ दो तीन देवालय भी बनवा रक्खे हैं। मैं मूर्त्तिपूजक नहीं हूँ तो भी दूरसे एक छोटे देवालयपर लाल ध्वजा फहराते देखकर मुग्ध हो गया। मेरे साथ ही साथ पण्डितवर श्री ब्रजेन्द्रनाथ सील महोदयके हृदयमें भी, जो ब्राह्म मतको मानते हैं और मेरे ही समान मूर्त्तिपूजक नहीं हैं, अपने देशके बाहर हिन्दू सभ्यताके इस चिन्हको देखनेका विचार प्रबल हो उठा और हमलोग अपना सीधा रास्ता छोड़ वहाँ जा पहुंचे। वह एक सुन्दर, साफ और सुथरा हनूमानजीका मन्दिर था, भीतर 'बजरंगबिहारी' जी की प्रतिमा स्थापित थी। सेवा, भोग तथा देखभालके लिये एक ब्राह्मण भी वहाँ सपत्नीक रहते हैं। पूछनेसे ज्ञात हुआ कि आप प्रतापगढ़ ज़िलेके अन्तर्गत सकरौली ग्रामके रहनेवाले ब्राह्मण हैं। आपका नाम श्री शिवगोविन्दजी है। आप यहाँ पन्द्रह वर्षोंसे सस्त्रीक निवास करते हैं और देवालयमें पूजा-अर्चन करते हैं। आपने मेरा नाम ग्राम, वर्ण, गोत्र सब पूछने और अपना जी भर लेनेके उपरान्त देवालयका कपाट खोला। कदाचित् इसका कारण यह था कि मेरे दाढ़ी है, और इस समय मैं कोट-बूटधारी बन्दर बना हुआ था। यह जानकर मेरे प्रेमकी सीमा और भी बढ़ गयी कि यह मन्दिर संवत् १९४० में जो कि मेरा जन्म-संवत् है एक काशीनिवासी सज्जन द्वारा ३००० मुद्राओंके व्ययसे निर्मित हुआ है। निर्माणकर्त्ता महाशयका नाम भी एक शिलापर खुदा हुआ वहाँ लगा है। आपका शुभनाम पण्डित दीपनारायण दीक्षित था।

देवालयनिवासी विप्रने हमें दूध पीनेका निमन्त्रण दिया किन्तु देर हो जानेके भयसे हमलोग वहाँ न ठहरे। यदि नगरमें प्रवेश करते ही वहाँ गये होते तो अवश्य विप्रपत्नीसे रोटी दाल इत्यादि बनवाकर भोजन किया होता।

अब हमलोग घूमघाम कर एक सुरंग द्वारा जो पहाड़ काटकर बनी है घाटपर लौट आये और जहाज़पर सवार हो गये।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

लोहित सागर।

गत चार दिनोंमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। लोहित सागरमें बराबर चलते गये। दो दिन तो गर्मी बहुत अधिक थी किन्तु कल परसों खूब ठंढ थी। आज कल वैशाख मासमें यहाँ ठंढा रहना असाधारण बात है। प्रायः यहाँ इस मौसिममें इतनी
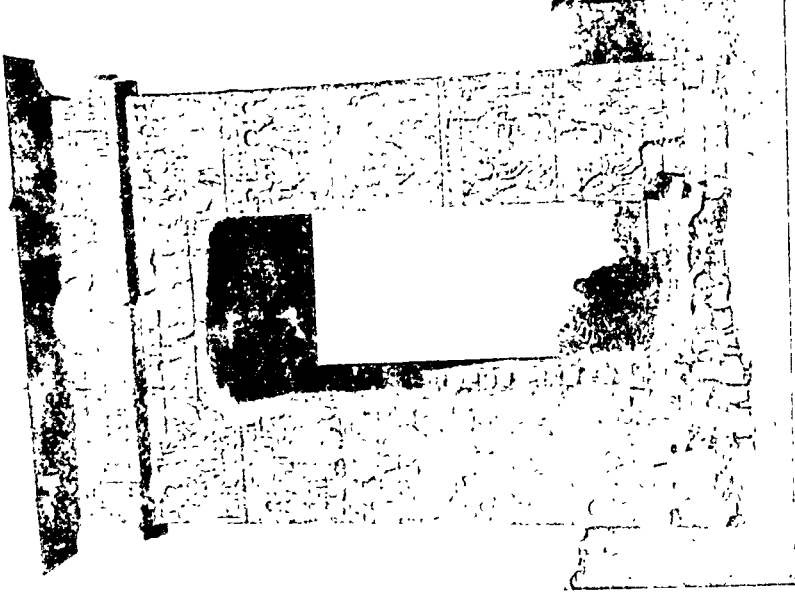
करनकमें विजयद्वार [दक्षिणकी ओर] (पृष्ठ ३४)
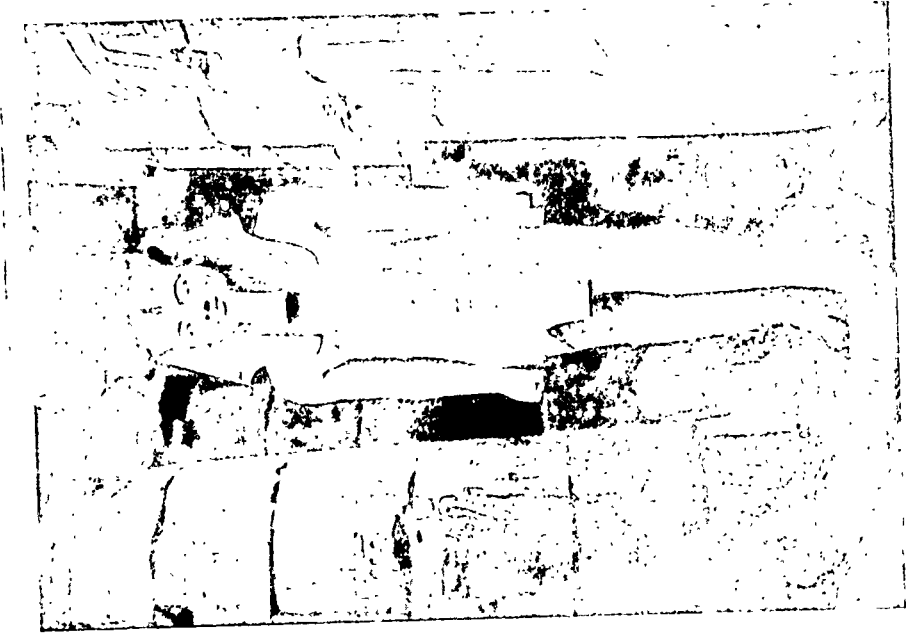
लुकसरमें रामसेस द्वितीयकी मूर्ति (पृष्ठ ३५)

पृथिवी प्रदक्षिणा
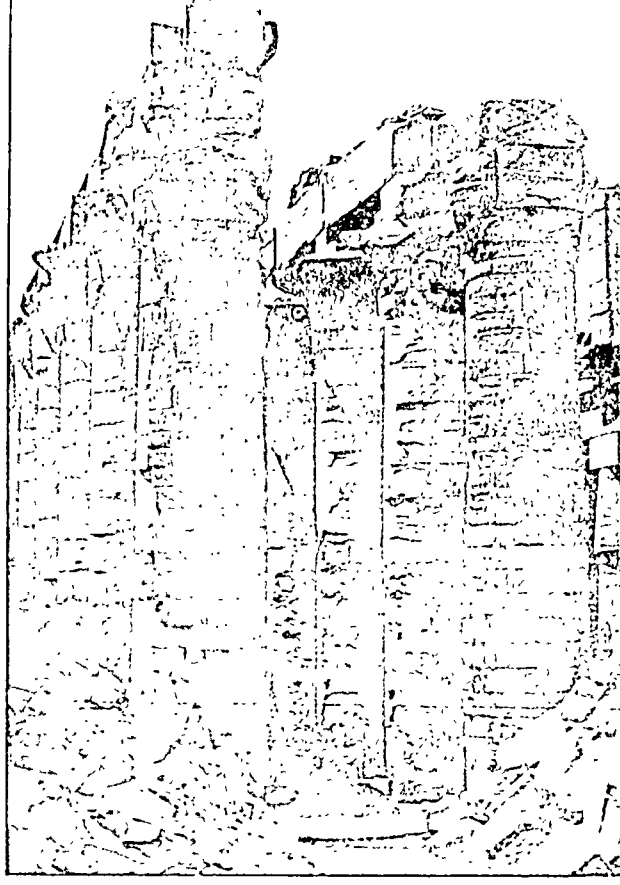
करनकके मंदिरमें विशाल स्तंभ (पृष्ठ ३४)
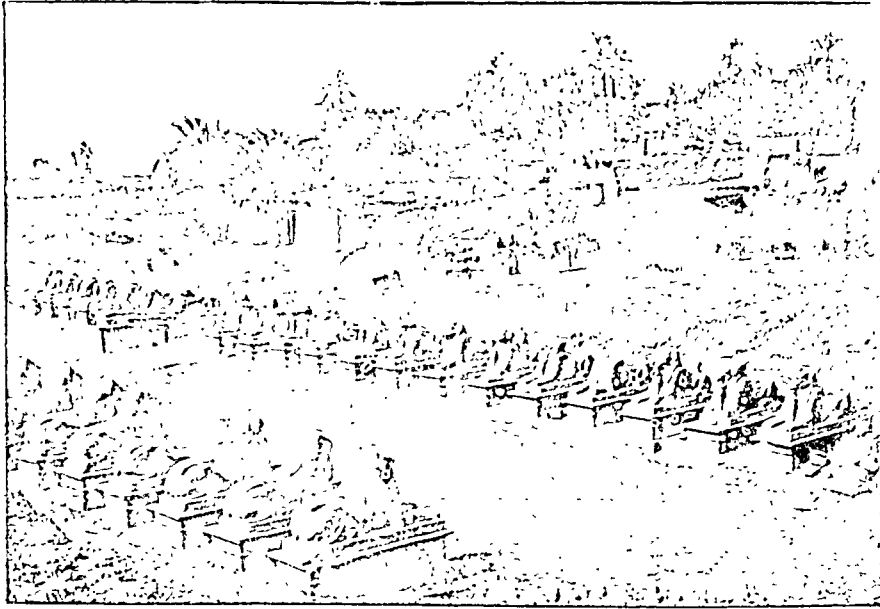
करनकमें स्फिंक्स पंक्तिमण्डल (पृष्ठ ३४,१९६)

अधिक गर्मी पड़ती है कि यात्री लोग भुन जाते हैं किन्तु हम लोगोंके सौभाग्यसे मौसिम अनुकूल था। बहुत लोग तो यह कहते हैं कि इसमें सौभाग्यकी बात नहीं है क्योंकि शीत यह सूचित करता है कि मध्यसागरमें इतना कठिन शीत पड़ेगा कि तबीयत परेशान हो जावेगी। अब देखें क्या होता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि हमलोग आज चार दिनोंसे लोहित या रक्तसागरमें जा रहे हैं। क्या आपलोगोंने इससे यह समझ लिया कि जिस समुद्रमें हमारा जहाज़ जा रहा था वह शोणितका है। नहीं, ऐसा नहीं है। इसका जल भी वैसा ही खारा है जैसा और समुद्रोंका। इसका वर्ण भी और समुद्रोंके सदृश अत्यन्त नीला है, फिर इसका नाम लोहित सागर क्यों पड़ा—यह प्रश्न विचारणीय है। आधुनिक समयमें तीन और सगारोंके नाम वर्णयुक्त हैं।

(१) श्वेत सागर—यह रूसके उत्तरमें है (२) पीत सागर—यह चीनके पूर्वमें है (३) श्याम सागर—यह रूसके दक्षिणमें तथा तुर्कीके पूर्वोत्तरमें पृथिवीसे चारों ओर घिरा हुआ है। अब विचार करना चाहिये कि ऐसे नाम क्यों पड़े। मेरी बुद्धिमें जो बात आती है सो मैं लिखता हूं। मेरे साथी वंगीय अध्यापक श्रीविनयकुमार सरकारका भी यही विचार है। किन्तु उनके व मेरे विचारमें लोहित समुद्रके विषयमें कुछ मतभेद है, जो मैं आगे चलकर बताऊँगा।

(१) मेरा ख्याल है कि श्वेत सागरका यह नाम इसलिये पड़ा होगा कि समुद्रका यह भाग बहुत उत्तरमें रूस देशके सन्निकट है, यहाँपर बरफके टुकड़े और चट्टानें समुद्रमें बहुतायतसे मिलती हैं और आस पासको पहाड़ियाँ भी हिमसे भरी रहती हैं, इसी कारण इसका नाम श्वेत सागर पड़ा होगा। (२) पीत सागर चीनके निकट है, वहाँके मनुष्योंके रंगके अनुसार—जो पीला होता है—उसका नाम पीत समुद्र पड़ा होगा। (३) इसी भाँति श्याम सागरके निकटके पहाड़ कदाचित् श्याम-वर्णके हैं और वहाँकी भूमि भी श्याम है, इसीसे उसका नामकरण इस भाँति हुआ होगा। (४) किन्तु लोहित सागरका नामकरण बहुत प्राचीन है। यह नाम मिश्रियोंका रक्खा हुआ है। अरबके लोग इसे "बहरे कुल्जुम" अर्थात् लोहित सागर कहकर पुकारते हैं। मिश्र देशके छोरपरकी सब पहाड़ियां तृणरहित हैं और उनका वर्ण भी ललाई लिये है। मेरा विश्वास है कि यह नामकरण इसीलिये हुआ। किन्तु वङ्गीय अध्यापक महाशयका विचार है कि यहां बहुतसे लाल पदार्थ समुद्रमें बहते पाये जाते हैं जो कदाचित् किसी प्रकारके जीव अथवा सिवार हैं, इस कारण इसका नाम लोहितसागर (या लाल सागर) पड़ा। किन्तु ये रक्तवर्ण सिवारके टुकड़े हमें केवल अदनके पास दीख पड़े थे। जो कुछ हो, यह तो सिद्ध है कि इस प्रकारके नामकरणका कारण केवल मानुषिक विचार है। समुद्रके जलके वर्णसे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

ऐसी अवस्थामें हमारे पुराणोंमें आये हुए क्षीरसागर, मधुसागर, दधिसागर इत्यादि भी क्यों न इसी प्रकारके नाम समझे जायँ? ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है, यह समझमें नहीं आता। आजकलके नवशिक्षितोंकी शिक्षा इतनी बाह्य और ओछी होती है कि वे किसी गहराई में न जाकर ऊपरसे ही अपनी वस्तुओंका तिरस्कार करने लगते हैं। यह शिक्षाप्रणालीका दोष है जिससे हमारे शिक्षित समाजको

हिन्दू सभ्यता, हिन्दू साहित्य, हिन्दू विज्ञान, तथा हर प्रकारके हिन्दू सिद्धान्तोंकी कितनी अभिज्ञता है, यह सूचित होता है। किसी पर्यटकने उत्तरीय भूमण्डलमें किसी सागरमें बहुतसे श्वेत हिमखंडोंको बहते देख यदि अलङ्कारवत् उसका नाम दधिसमुद्र रख दिया हो तो क्या आश्चर्य ? इसी प्रकार किसी बहुत बड़े मरु-देशमें घूमते हुए यदि कोई पथिक किसी बड़े ह्रद अथवा झीलके पास आ गया होगा जह - पर मीठे पानीकी अधिकता होगी तो उसे उसको मधुसागर पुकारनेमें क्या देर लगी होगी ? यदि हमको ही इस लवण समुद्रमें कहीं मीठे पानीकी झील मिल जाय तो हम भी उसे अमृत सरोवरके नामसे पुकारेंगे। इसी प्रकार किसी बड़े तूफानी समुद्रका नाम, जहाँ फेन ही फेन दीख पड़ता रहा हो, यदि क्षीरसागर रख दिया गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है ।

जहाजपर पशुहत्या ।

जहाज़की उत्तम श्रेणीमें एक वाचनालय है। वहाँपर खड़ा होकर मैं समुद्र तथा अन्य पदार्थोंकी शोभा देखा करता था। उसीके बाद तीसरी श्रेणीकी जगह है और वहींपर पशुपक्षी भी रक्खे रहते हैं। जहाज़के मांसभक्षी यात्रियोंके लिये वहींपर प्रतिदिन अनेक पशुपक्षियोंकी हत्या होती है। मैं भी अपने पुस्तकालयके बरामदेसे वह निर्दय दृश्य अक्सर देखा करता था। केवल एक सिद्धान्त आपके हृदयमें बैठानेके लिए मैंने इस दुःखदायी विषयको यहां उठाया है। हमारे देशमें गोहत्या दिनों दिन बढ़ती जाती है। उसे रोकना देशके सब मनुष्योंका कर्तव्य है, चाहे वे हिन्दू हों चाहे अन्य मतावलम्बी। हिन्दू लोग इसके लिये अनेक यत्न कर रहे हैं किन्तु वे सफल नहीं हो रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं। एक मोटा कारण यह है कि देश दिनों दिन दरिद्र होता जाता है। यद्यपि खेती दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है, किन्तु उसका पूरा लाभ हम नहीं उठाने पाते। हमारे पसीनेसे उत्पन्न किया गया अन्न हमसे छीना जाकर विदेशोंको भेज दिया जाता है। इस कारण तृणके लिये दिन प्रति दिन पृथिवीका भाग न्यून होता जाता है। यदि तृणकी कमी होगी तो ये पशु क्या खाकर जियेंगे। निर्धनताने हमें इस योग्य नहीं छोड़ा है कि हम पैसा खर्च कर इनको पाल सकें। जब अपना तन पालनेके लिये और अपने बाल-बच्चोंको जीवित रखनेके लिए हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है तो भला पशुओंको कौन पाल सकता है ? दूसरा कारण मांसभक्षियोंकी गो-मांसपर रुचि है। तीसरा और सबसे दुःखदायी कारण यह है कि गोका मूल्य कम है। ठांठ किसी कामकी न होनेके कारण बहुत सस्ती बिकती है। अब इस प्रश्नपर जरा अधिक विचार करनेसे मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष कृषिप्रधान देश होनेके कारण और यहांपर बैलोंके बारबरदारीमें काम आनेके कारण उनकी माँग अधिक है, निदान बैलोंका मूल्य गौओंकी अपेक्षा दुगुना तिगुना है। गौ केवल उसी समय तक उपयोगी समझी जाती है जब तक दूध देती है। जहां वह ठांठ हुई कि उसकी उपयोगिता घटी। आज कल बड़ी बड़ी गौएं भी एक दो बियानके बाद ठांठ हो जाती हैं। कारण

अनीकी आत्माका चित्र

(पृष्ठ ३५)

हिन्दू सभ्यता, हिन्दू साहित्य, हिन्दू विज्ञान, तथा हर प्रकारके हिन्दू सिद्धान्तोंकी कितनी अभिज्ञता है, यह सूचित होता है। किसी पर्यटकने उत्तरीय भूमण्डलमें किसी सागरमें बहुतसे श्वेत हिमखंडोंको बहते देख यदि अलङ्कारवत् उसका नाम दधिसमुद्र रख दिया हो तो क्या आश्चर्य ? इसी प्रकार किसी बहुत बड़े मरु-देशमें घूमते हुए यदि कोई पथिक किसी बड़े ह्रद अथवा झीलके पास आ गया होगा जह - पर मीठे पानीकी अधिकता होगी तो उसे उसको मधुसागर पुकारनेमें क्या देर लगी होगी ? यदि हमको ही इस लवण समुद्रमें कहीं मीठे पानीकी झील मिल जाय तो हम भी उसे अमृत सरोवरके नामसे पुकारेंगे। इसी प्रकार किसी बड़े तूफानी समुद्रका नाम, जहाँ फेन ही फेन दीख पड़ता रहा हो, यदि क्षीरसागर रख दिया गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है ।

जहाजपर पशुहत्या ।

जहाज़की उत्तम श्रेणीमें एक वाचनालय है। वहाँपर खड़ा होकर मैं समुद्र तथा अन्य पदार्थोंकी शोभा देखा करता था। उसीके बाद तीसरी श्रेणीकी जगह है और वहींपर पशुपक्षी भी रक्खे रहते हैं। जहाज़के मांसभक्षी यात्रियोंके लिये यहींपर प्रतिदिन अनेक पशुपक्षियोंकी हत्या होती है। मैं भी अपने पुस्तकालयके बरामदेसे वह निर्दय दृश्य अक्सर देखा करता था। केवल एक सिद्धान्त आपके हृदयमें बैठानेके लिए मैंने इस दुःखदायी विषयको यहां उठाया है। हमारे देशमें गोहत्या दिनों दिन बढ़ती जाती है। उसे रोकना देशके सब मनुष्योंका कर्तव्य है, चाहे वे हिन्दू हों चाहे अन्य मतावलम्बी। हिन्दू लोग इसके लिये अनेक यत्न कर रहे हैं किन्तु वे सफल नहीं हो रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं। एक मोटा कारण यह है कि देश दिनों दिन दरिद्र होता जाता है। यद्यपि खेती दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है, किन्तु उसका पूरा लाभ हम नहीं उठाने पाते। हमारे पसीनेसे उत्पन्न किया गया अन्न हमसे छीना जाकर विदेशोंको भेज दिया जाता है। इस कारण तृणके लिये दिन प्रति दिन पृथिवीका भाग न्यून होता जाता है। यदि तृणकी कमी होगी तो ये पशु क्या खाकर जियेंगे। निर्धनताने हमें इस योग्य नहीं छोड़ा है कि हम पैसा खर्च कर इनको पाल सकें। जब अपना तन पालनेके लिये और अपने बाल-बच्चोंको जीवित रखनेके लिए हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है तो भला पशुओंको कौन पाल सकता है ? दूसरा कारण मांसभक्षियोंकी गो-मांसपर रुचि है। तीसरा और सबसे दुःखदायी कारण यह है कि गोका मूल्य कम है। ठांठ किसी कामकी न होनेके कारण बहुत सस्ती बिकती है। अब इस प्रश्नपर जरा अधिक विचार करनेसे मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष कृषिप्रधान देश होनेके कारण और यहांपर बैलोंके बारबरदारीमें काम आनेके कारण उनकी माँग अधिक है, निदान बैलोंका मूल्य गौओंकी अपेक्षा दुगुना तिगुना है। गौ केवल उसी समय तक उपयोगी समझी जाती है जब तक दूध देती है। जहाँ वह ठांठ हुई कि उसकी उपयोगिता घटी। आज कल बड़ी बड़ी गौएं भी एक दो वियानके बाद ठांठ हो जाती हैं। कारण
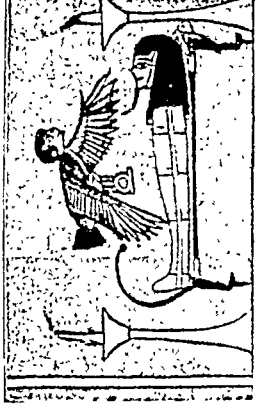
अनीकी आत्माका चित्र

(पृष्ठ ३५)

यह है कि उन्हें चलने फिरनेका कम अवकाश मिलता है, इससे उनपर चरबी चढ़जाती है और वे बच्चे नहीं देतीं। दूसरा कारण यह भी है कि बैलकी अधिक मांगके कारण अब अच्छे मज़बूत सांड़ोंकी भी बहुत कमी हो गयी है। इसलिये ठीक जोड़के सांड़ न मिलनेसे गौओंके बछड़े जनमतेही मर जाते हैं और बहुतसी अवस्थाओंमें ब्रधानेके बाद गौयें उलट देती हैं। इन्हीं उपर्युक्त कारणोंसे अच्छी, मोटी, भारी गौओंमें भी बहुत ठांठ पायी जाती हैं। फिर, हिन्दू लोग धर्मके ख़यालसे इनसे और कोई कार्य नहीं लेते किन्तु पासमें इनको रखनेकी सामर्थ्य न होनेके कारण इन्हें बेच देते हैं, अथवा ब्राह्मणोंको दान कर देते हैं। मैंने बहुतसे समृद्धिशाली पुरुषोंको ठांठ गौएं ब्राह्मणों-के घर भेजते हुए देखा है। वे यह नहीं समझते कि जब वे बेकार गायको बैठाकर नहीं खिला सकते तो बेचारा ग़रीब ब्राह्मण कैसे उसे रख सकता है। परिणाम यही होता है कि वह बेचारी कसाइयोंके हाथ अपनी जान खोती है और अपने मूर्ख हिन्दू बच्चोंकी नादानी पर रोती हैं।

अर्थशास्त्रका यह एक नियम है कि संसारमें बेकार वस्तु नहीं रह सकती। जो निष्प्रयोजन है उसका नाश अवश्य होगा; इसीलिये ये बेचारी गौएं मारी जाती हैं। यदि इनकी उपयोगिता बढ़ा दी जाय तो ये न मारी जायं—अर्थात यदि इनसे भी काम लिया जाय तो ये भी उपयोगी बन सकती हैं। काम ये हर प्रकारका कर सकती हैं जो बैल करते हैं, अर्थात् गाड़ी खींचना, हल जोतना, बोझा ढोना आदि। यदि घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी, बकरी, या स्त्री वह सब कार्य कर सकती है जो घोड़ा, ऊँट, हाथी, बकरा या पुरुष कर सकता है तो मैं नहीं समझता कि गौ वह काम क्यों नहीं कर सकती जो बैल कर सकता है। मैं यह नहीं कहता कि इस प्रकार गोवध देशसे उठ जायगा किन्तु उसमें बहुत कमी हो जायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। और मेरा अभिप्राय भी यही है। मैं इसे आर्थिक प्रश्न समझता हूं, धार्मिक नहीं, क्योंकि गोसन्तानपर हमारी खेती निर्भर है और खेतीपर हमारा जीवन और देशकी भविष्य-आशा। गोसन्तान गोमातापर निर्भर है।

मैं बहुत कुछ बातें लिख गया और अपने पूर्व विचारसे दूर चला गया; मैं यह कहना चाहता था कि मैंने जितने पशु यहाँ मारे जाते देखे वे सब बैल थे। मैंने नीचे जाकर भी देखा तो जहाँ पशु बँधे थे वहाँ भी प्रायः बैल और बछड़े ही थे, गौ एक भी न थी। इसका कारण सोचनेसे तुरन्त मालूम हो गया। पाश्चात्य देशोंमें बैलोंका प्रयोग बारबरदारीके लिये नहीं होता। इस लिये वहाँ वे एक प्रकारसे निरुपयोगी होते हैं किन्तु गौएँ दूध देती हैं बैल पैदा करती हैं, इसलिये वे उपयोगी हैं और उनका वध करना देशका धन नाश करना है। इससे वही सिद्ध होता है जो मैं ऊपर कह आया हूं कि यदि गौओंकी उपयोगिता उनसे काम लेकर बढ़ा दी जाय तो उनका मूल्य भी बढ़ जायगा और इस प्रकार स्वभावतः उनके वधमें कमी हो जायगी और धीरे धीरे फिर हमारे देशमें दूध दहीकी नदियां बहने लगेंगी।

जहाजपर मन बहलाव ।

कल रात्रिसमय द्वितीय श्रेणीकी छतपर तमाशा था। गान, वाद्य, नाच इत्यादि बहुतसी बातें थीं। उसमें एक हरबोलेका भी तमाशा था। वह एक काठका पुतला लेकर आया था और ऐसी चतुरतासे बोलता था कि मानों वह पुतला ही बोलता हो। पुतलेका मुख भी वह किसी यन्त्र द्वारा हिलाता जाता था। यह दृश्य बड़ा अच्छा था।

कल रात्रिके तमाशेमें एक हिन्दुस्थानी महाशयका भी गाना था। मैंने उनसे पूछा कि भाई तुम्हें गाना आता है कि नहीं। उन्होंने उत्तर दिया कि हाँ, गाना जानता हूं; किन्तु जब गाने खड़े हुए तो कलई खुल गयी। गाना बिलकुल नहीं आता था। वे इकबालकी ग़ज़ल गाने लगे। उच्चारण भी बड़ा भ्रष्ट था किन्तु गाना समझनेवाले अधिक जन न थे इससे उसका दोष नहीं मालूम हुआ। हिन्दी-गानमें माधुर्य तो है ही इससे लोगोंने उसे कुछ पसन्द किया और भारतीय लोग प्रथम पद्को "सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा। हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलिस्ताँ हमारा।" सब मिलकर गा रहे थे। इससे उसका कुछ प्रभाव भी पड़ा।

किन्तु मैंने बहुतसे 'साहब' हिन्दुओंको उसे राजविद्रोही गान कहते हुए सुना। यह उनकी निजकी कल्पना थी। आजकल यह चाल चल गयी है कि जिस जिस बातमें अपनी उन्नतिका हाल हो अथवा बड़ाई हो वह राजविद्रोही बात समझी जाती है। जिस देशकी ऐसी अवस्था हो, जहाँ अपनी बड़ाईकी बात इस प्रकार समझी जाय उसका बेड़ा राम ही पार लगायें तो लगे।

कार्यकर्ताने बीचमें कुछ मज़ाक करके विघ्न भी डालना चाहा किन्तु परमात्माने उस गानको पूरा उतार दिया।

स्वेज नहरका दृश्य (पृष्ठ १३)
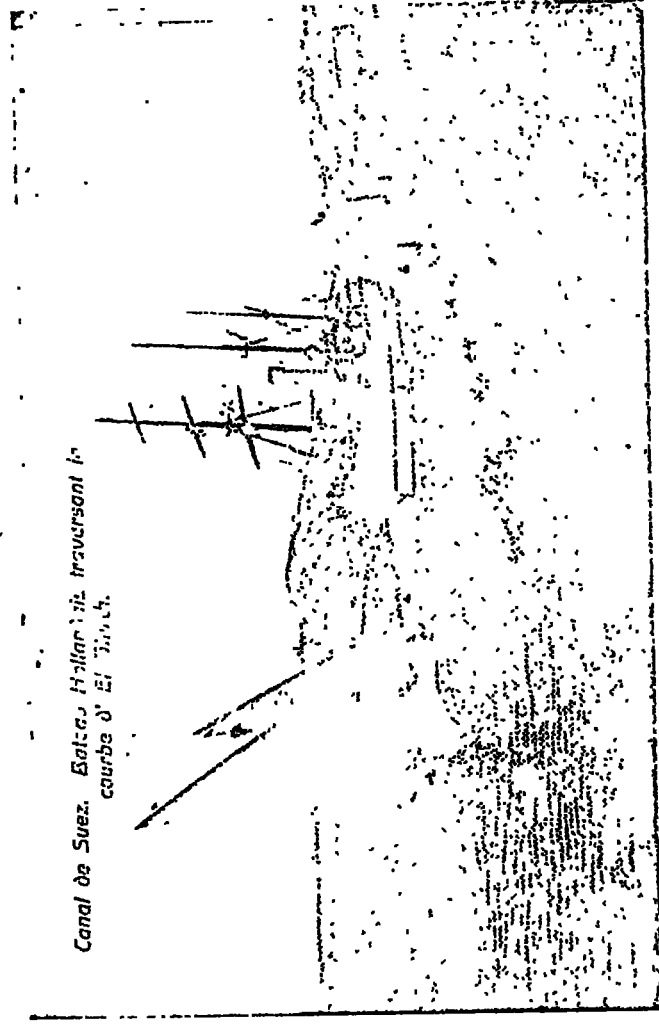
सैयद बन्दरमं लेसेपकी मूर्ति (पृष्ठ १३)

तीसरा परिच्छेद ।

स्वेज़ नहर ।

आज प्रातःकालसे ही हमलोग स्वेज़ नहरके निकट पहुंचने लग गये थे । दोनों ओर फैले हुए विशाल शिखर-समूह हम लोगोंको मानों अपनी दोनों विशाल भुजाओंसे बटोर अपने वक्षःस्थलकी ओर लिये जाते थे । धीरे धीरे जल अपना नीलरंग त्याग, हरित वस्त्र धारण कर अपनी दूसरी छटा दिखाने लगा । अब हमलोगोंका जहाज़ स्वेज़ बन्दरमें आ लगा । बहुत सी छोटी छोटी डोंगियोंपर लोग हर प्रकारकी वस्तुएँ लेकर जहाज़पर आ चढ़े और अपना अपना सौदा बेचने लगे । जब जहाज़ कोयला पानी ले चुका तब कोई ४ बजे सन्ध्या समय फिर चला

स्वेज़ नहर काशीकी वरुणा नदीसे भी पाटमें छोटी है । इसकी चौड़ाई कहीं कहीं २६० फुट और कहीं कहीं ४४५ फुट तक चली गयी है । गहराई इसकी सब जगह ३६ फुट है और केवल वे ही जहाज़ इसमें चलने पाते हैं जिनका पेंदा २८ फुटसे अधिक पानीके नीचे नहीं रहता ।

यह नहर कुल १०० मील लम्बी है । जहाज़ इसमें ५ मील फी घंटेकी तेज़ीसे चल सकता है । इससे अधिक तेज़ीसे चलानेमें किनारोंको नुक्सान पहुंचनेका भय है, इससे इजाज़त नहीं मिलती । यहाँपर स्वेज़ नहरका कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त देना भी प्रसङ्गानुकूल होगा ।

संवत १८५५ में जब नेपोलियन बोनापार्टने मिश्रपर धावा किया था तब उसने विचार किया कि यदि पृथ्वीका यह पतला भाग, जो अफ्रिका और एशियाको जोड़े हुए है और लोहित सागरको भूमध्यसागरसे अलग कर रहा है, काट डाला जाय तो सेनाके लिये सुभीता हो और व्यापार भी अधिक बढ़े । यह कोई बड़ी बात भी न थी, क्योंकि यह टुकड़ा केवल ७० मील चौड़ा था । उसने इस ओर कार्य भी आरम्भ करा दिया किन्तु इसका यश उसके भाग्यमें न था ।

बोनापार्टके प्रधान सड़क बनानेवाले लेपरे नामक इञ्जीनियरने खोजखोज भी प्रारम्भ की किन्तु गणितकी एक बड़ी भूलके कारण वह निराश हो गया और उसने इसके विरुद्ध अपनी सम्मति दी । वास्तवमें भूमध्यसागर तथा लाल सागरकी सतह बराबर है किन्तु लेपरेने गणितकी भूलके कारण लालसागरकी सतह भूमध्यसागरकी सतहसे ३३ फुट ऊँची बतलायी और इसी कारण यह कार्य उस समय छोड़ दिया गया ।

१८९३ विक्रममें फर्डिनैण्ड डी लेसेप नामक एक नौजवान इञ्जीनियर काहिरःमें आया और संयोगवश उसकी नज़र लेपरेके कागज़ोंपर पड़ गयी जिसमें उसने दोनों समुद्रोंके जोड़नेका विस्तारसे वर्णन किया था । लेपरेके सन्देह रहते हुए

भी यह नौजवान उस विचारके महत्त्वमें डूब गया और संवत् १८९५ में इसकी मुलाकात लेफ्टिनेण्ट वाधोर्णसे हुई जिसके इस अटल विचारने कि यूरोपका व्यापार भारतके साथ मिश्र देशके रास्तेसे होना चाहिये, इस नौजवान इञ्जीनियरके विचारको और भी दृढ़ कर दिया।

संवत् १८९८ व० १९०४ में तुर्किस्तानके वाइसरायके पानीके इञ्जीनियर लिनेण्ट वे व मेसर्स स्टीफन्स, नेग्रीली तथा बूर्डलेनने लेपरेके गणितकी भूल निकालकर सबके सामने रख दी।

संवत् १९११ में लेसेपने अपना विचार पुष्ट करके और उसके बारेमें सब वस्तुओंका पता लगाकर उसे सैयद पाशाके सम्मुख उपस्थित किया। ये उस समय मिश्रके वाइसराय थे। इन्होंने इस विचारको कार्यमें परिणत करनेका सङ्कल्प कर लिया किन्तु लार्ड पामरस्टनकी अध्यक्षतामें इङ्गलैण्डके सचिवमण्डलने इस अनुष्ठानमें विघ्न डालना चाहा। फिर भी संवत् १९१३ के २१ पौष (५ जनवरी)को सैयद पाशाने कार्य आरम्भ करनेकी आज्ञा दे दी, किन्तु आवश्यक धन एकत्र करनेमें बहुत समय लग गया और वास्तवमें यह कार्य संवत् १९१६ के ९ वैशाख (२२ अप्रेल) को प्रारम्भ हुआ। सैयद पाशाने चलते व्ययका भार अपने ऊपर ले लिया और २५००० श्रमजीवियोंको एकत्र कर दिया जिनको कम्पनी द्वारा मज़दूरी मिलती थी और वे ही इनके भोजन इत्यादिका भी प्रबन्ध बड़े धनके व्ययसे करते थे। इन श्रमजीवियोंको हर तीसरे महीने छोड़ देना पड़ता था। इनके पीनेके लिए पानी ऊँटोंपर रखकर मँगाना पड़ता था जिसके लिये प्रतिदिन ८००० फ्रैंक अर्थात् कोई ४८००) व्यय करने पड़ते थे। यह व्यय उस समय तक जारी रहा जब तक नील नदीसे मीठे पानीकी एक नहर बनकर तैयार नहीं हो गयी जो संवत् १९१४ में आरंभ होकर १९१९ में समाप्त हुई।

इस नहरके बन जानेके उपरान्त बहुत थोड़े मिश्री मजदूर काममें लाये गये। अधिकांश श्रमजीवी यूरोपसे बुलाये गये और कार्यका बहुत बड़ा भाग यंत्र द्वारा हुआ जिसमें सब मिलाकर २२००० घोड़ोंका बल था।

संवत् ९२५के ४ चैत्र (१८ मार्च) को भूमध्यसागरका जल नहरमें बहाया गया और १ मार्गशीर्ष (१० नवम्बर) १९२५ को यह स्वेज़ नहर बड़ी धूमधामसे खोली गयी। इस अवसरपर यूरोपके बड़े बड़े राजा-महाराज व राव-उमराव वहाँपर एकत्र हुए थे।

कुल नहरके बनानेका व्यय १ करोड़ ९० लाख पाउण्ड अर्थात् २८ करोड़ ५० लाख रुपये हुआ जिसमेंसे एक तिहाई धन मिश्रके 'खदेव" ने दिया था। बाकी कम्पनीके हिस्सोंसे आया। किन्तु संवत् १९३२ विक्रमीमें अंग्रेज़ सरकारने ६ करोड़से खदेवके १ लाख ७७ हज़ार हिस्से खरीद लिये।

अब यह नहर एक व्यवसायी कम्पनीकी मिलकियत है जो १९११ विक्रमीमें बनी थी। इसका नाम* 'कम्पेन यूनीवर्सल डी केनल मेरी टाइम डी स्वेज़' है। इसके पास इस समय ४ करोड़ ५० लाखकी अन्य सम्पत्ति भी है।

ऊपरके वृत्तान्तसे किसीको इस भूलमें न पड़ना चाहिये कि इस नहरके बनाने-

*"Compagnie Universelle du canal maritime de Suez"

मिश्र देशकी महिला (पृष्ठ २०)

का विचार केवल पाश्चात्य देशवासियोंको अर्वाचीन समयमें ही हुआ था या इसके बनानेका कीर्तिस्तम्भ पाश्चात्य देशवालोंने ही गाड़ा। यों तो इस नहरके बनानेकी कीर्ति भी सैयद पाशाको ही मिलेगी किन्तु इसके बहुत पूर्व मिश्रियों और अरबोंने भी यह काम किया था जिसका वृत्तान्त संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

अंग्रेजोंके अनुसार जो विश्वस्त प्राचीन वृत्तान्त इस सम्बन्धमें मिलता है वह विक्रमके पूर्व ७ वीं शताब्दीका है। प्रारम्भमें नीको राजाने इस कार्यको आरम्भ किया था। उनका विचार नील नदीसे एक नहर लोहितसागरमें मिलानेका था और इस भाँति रक्तसागर भूमध्यसागरसे नील नदी द्वारा मिल जाता। नीको राजा टिमशा झीलसे दक्षिणको जा रक्तसागरमें मिलाना चाहते थे।

इसके पूर्व एक नहर और थी जो मिश्रके मध्यकालीन राजवंशसे सम्बन्ध रखती थी जिसका चिन्ह उस समय मौजूद था जो नील नदीसे बुबस्तिसके पाससे निकल वादिये तुमिलात* से होती हुई लोहितसागरमें जा मिलती थी। हिरोडोट्सके वृत्तान्तसे ज्ञात होता है कि इस नहरके बनानेमें १ लाख २० हाज़र मिश्री मज़दूर काम आये थे। राजाको आकाशवाणी द्वारा यह संदेशा मिला कि इस नहरसे केवल जंगली, बर्बर पारसियोंको ही सुविधा प्राप्त होगी और मिश्रियोंका कुछ उपकार न होगा, तब राजा नीकोने इस कार्यको बन्द कर दिया।

एक शताब्दी बाद पारसी राजा दाराने इस कार्यको समाप्त किया। यह नहर प्रायः उसी मार्गसे आयी थी जिससे इस समय नीलकी नहर स्वेज़ नगरमें आयी है। दाराने इसकी समाप्तिके उपलक्ष्यमें बहुतसे स्मारक चिन्ह बनवाये थे जो अब भी कहीं कहीं मिलते हैं, जैसे टेल-इक-मशखुता† के दक्षिण, सरोपियम‡ के पश्चिम, स्वेजके उत्तर व इशशलूफे§ के उत्तर भी।

फिर पटोलिमसके राज्यमें नहर बढ़ायी गयी थी और जहाँ यह लोहितसागरमें गिरती थी वहाँपर बाँध बाँधा गया था। विक्रमसे एक शताब्दी पूर्व लोगोंका ध्यान उधर कम हो गया था, इस कारण यह नहर बर्बाद हो गयी। ऐसा कहा जाता है कि रोमके राजा ट्रोजनने फिरसे इसकी मरम्मत करायी। यह दूसरी मरम्मत विक्रमकी प्रथम शताब्दीमें हुई थी। कहते हैं कि ट्रोजन नदीके नामकी एक और नहर काहिरःसे निकल स्वेज़ उपसागरमें गिरती थी, किन्तु उसका पूरा चिन्ह इस समय नहीं मिलता।

अरबोंके चित्तमें भी, मिश्र जीत लेनेके उपरान्त, नील नदीको लोहित-सागरसे मिलानेका विचार बड़ी गम्भीरतासे उठा होगा और ऐसी जनश्रुति है कि "अमरे इब्नूल आस" ने पुरानी नहरको फिरसे ठीक कराया जिसका पता उसे एक कोप्टसे¶ मिला। और इसी नहरके मार्गसे "फसट्टाक" से अन्न लोहित सागरमें जाता था जहांसे वह अरब देशमें पहुंचता था।

विक्रमकी आठवीं शताब्दीमें यह नहर फिर बेकाम हो गयी। आधुनिक समयमें भी विनीशियन लोगोंने इसका बहुत विचार किया कि एक नहर स्वेज़ डमरूमध्य काटकर बनायी जाय। यह विचार उनका केप गुडहोपके मिलनेके उपरान्त हुआ

---

* Vadi Tumilat † Tell-ec. Maskhuta ‡ Serapeum § Esh-shallufeh

¶ "कोप्ट" यहांके पुराने मिश्रियोंका नाम है।

जब कि उनके व्यापारको धक्का पहुंचा ।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे आपको पता लग गया होगा कि सब महान् कार्योंके कर्त्ता केवल पाश्चात्य देशवाले ही आधुनिक समयमें नहीं हैं किन्तु प्राच्य जातियोंने प्राचीन समयमें जैसे जैसे विशाल व महान् कार्य किये हैं उनकी रीतिका भी पता आज दिन इतने यन्त्र होते हुए भी नहीं लगता उनके निर्माणकी तो कोई बात ही नहीं है ।

स्वेज़ नहरके बन जानेसे आधुनिक समयमें जो व्यापारिक उन्नति हुई है उसका अनुमान नीचेके वृत्तान्तसे किया जा सकता है । लन्दनसे मुम्बई, गुडहोपके रास्ते, १२५४८ मील है और स्वेजके मार्गसे केवल ७०२१ मील । इस प्रकार केवल मार्गमें ४४ सैकड़ेकी बचत हो गयी और बातोंकी तो गिनती ही नहीं है ।

नामस्थान	गुडहोपके मार्गसे		स्वेज़के मार्गसे		बचत	दूरी फी
हैम्बर्गसे मुम्बईतक	१२९०१	मील	७३८३	मील	४३	सैकड़ा
ट्रीएस्टसे ,,	१३२२९	,,	४८१६	,,	६३	,,
लंदनसे हांगकांगतक	१५२२२	,,	११११२	,,	२८	,,
उड़ीसासे ,,	१६६२९	,,	८७३५	,,	४७	,,
मार्सेल्ज़से मुम्बईतक	१२११४	,,	५०२२	,,	५९	,,
कुस्तुन्तुनियासे जन्जीबार तक	१०२७१	,,	४३६५	,,	५७	,,

यह नहर दिन रात हर क़ौमके जहाज़के आमदरफ्तके लिये खुली रहती है । नीचेकी तालिकासे आपको पता लगेगा कि प्रति वर्ष कितने जहाज़ इस नहर द्वारा गये । इससे व्यापारकी वृद्धि तथा मार्गकी बचतसे लाभका अन्दाजा भी लगेगा ।

संवत्	जहाज़ोंकी संख्या	जहाज़ोंका भार टनमें (टन = २७$\frac{1}{4}$ मन)
१९२७	४३५	४२३९११
१९३२	१४२४	२१०९९८४
१९३७	२०२८	३०५७४४२
१९४२	३६२४	६३३५७५३
१९४२—१९४६तक	३३४४	६२८६०८९
१९४७-१९५१ तक	३५६८	८८०८४५५
१९५७—१९६१,	३७६९	११४२३९०४
१९६२	४११५	१३१३२६९४
१९६३	३९७५	१३४४३३९२
१९६४	४२७२	१४७२८३२६
१९६५	३७९५	१३६४०१९९
१९६६	४२३९	१५४१७७४८
१९६७	४४३३	१६५८१८९८
१९६८	४९६९	१७३२४७९४
१९६९	५३७३	२०२७५१२०
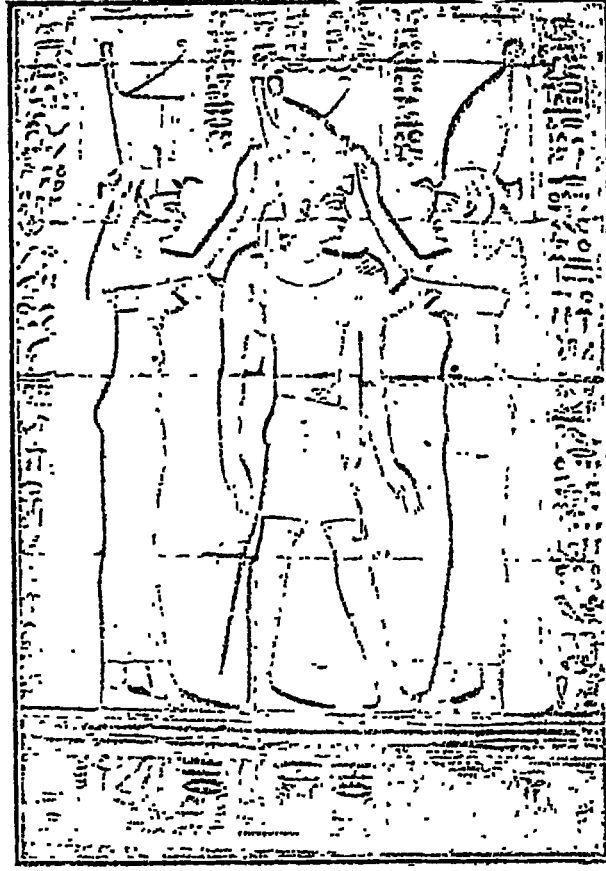
होरसके मंदिरके चित्र, एडफू (पृष्ठ ३८)

विशगीगा परिवार (पृष्ठ ३९)

संवत् १९६९ में किन किन देशोंके कितने जहाज़ इस नहरसे गुज़रे इसकी तालिका इस भांति है—इंग्लैण्डके ३३३५; जर्मनीके ६९८; हालेण्डके ३४३; आस्ट्रिया-हंगरीके २४८; फ्रांसके २२१; इटलीके १४८; रूसके १२६; जापानके ६३; अमरीकाके ५; अन्य देशोंके १९१।

संवत् १९६९ में इस मार्गसे २६६४०३ मनुष्य गये। संवत् १९२७ में केवल २६७५८ थे। यहाँपर १ टनके लिये ६ फ्राङ्क २५ सेण्ट कर लगता है जो ३) के करीब हर २७ मनके पीछे पड़ा; किन्तु उन जहाजोंसे जिनमें भारी बोझा ही रहता है ३ फ्रांक ७५ सेण्ट टन पीछे कर लगता है। प्रत्येक व्यक्तिको दस फ्रांक अर्थात् ६) के करीब कर देना पड़ता है। बच्चोंपर कर आधा है।

संवत् १९६७, १९६८, १९६९ की आमदनी क्रमशः १३३७०४२१२, १३८०३८२२४ और १३९७२२६३९ फ्राँक हुई।

इस नहरको ठीक रखनेका व्यय संवत् १९६९ में ४७७२५६२४ फ्राँक पड़ा अर्थात् १० करोड़ रुपये लगभग प्रतिवर्ष आमदनी हुई और व्यय संवत् १९६९ में कोई दो करोड़ पड़ा।

अब आप ऊपरके वृत्तान्तसे इस कम्पनीके फ़ायदेका अन्दाज़ लगा सकते हैं। हा! भारतवासियोंको ऐसे ऐसे बड़े बड़े कार्य करनेकी योग्यता और साहस कब होगा? लोहेका कारखाना खोलकर ताताने इस ओर मार्ग दिखाया है। यदि इस व्यवसायमें यथेष्ट लाभ हुआ तो आशा है कि ऐसे और कार्य यहाँ भी होने लगेंगे।

चौथा परिच्छेद।

मिश्र-प्रवेश।

आज प्रातःकाल हमारा जहाज़ सैयद बन्दरगाहमें पहुंच गया और हमलोग विचित्र, विलक्षण, प्राचीन और महान् मिश्रदेशके किनारेपर उतरे। यह देश बड़ा महत्त्वपूर्ण है; इसकी कबरोंमें संसारके दस सहस्र वर्षोंका इतिहास गड़ा पड़ा है। इसके खंडरात और टूटे फूटे मन्दिरोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि प्राचीन समयमें यहाँकी सभ्यता संसारमें, अभी तक जितना पता चला है उसके अनुसार, सबसे बढ़ी चढ़ी थी। मैंने अपना देश "भारत" अच्छी तरह नहीं देखा है किन्तु मेरे साथी बंगाली बन्धुके कहनेसे ज्ञात हुआ कि यहाँके मन्दिरोंकी विशालता और प्राचीनताको हमारा देश कुछ नहीं पाता। हमारे यहां अजन्ता, साँची व सारनाथमें जो वस्तुएं मिलती हैं वे प्रायः दो सहस्र वर्षोंकी पुरानी हैं किन्तु यहाँ ५,६ सहस्र वर्षोंकी पुरानी वस्तुओंकी भी पता चला है। यहाँ मन्दिरोंमें जैसे विशाल स्तम्भ लगे हैं वैसे भारतमें कहीं नहीं मिलते। सारनाथमें जो सिंहका स्तम्भ है उससे कहीं बड़े बड़े वैसेही ग्रेनाइटके बने यहाँ सैकड़ोंकी संख्यामें मंदिरोमें मिलते हैं। किन्तु अभी भारतमें हिन्दू स्थानोंकी खोज नहीं की गयी है; न जाने क्यों अयोध्या, प्रयाग, काशी, उज्जैन इत्यादि स्थानोंमें सरकार इस प्रकारक अनुसन्धान नहीं कराती। मथुरामें, कई वर्ष हुए, अनुसन्धानका जो प्रयत्न शुरू किया गया था उसका परिणाम क्या हुआ मालूम नहीं।

मेरी समझमें मिश्रदेशकी विशालता तथा यहाँके प्राचीन कीर्तिस्तम्भोंके वृत्तान्तके लिये देशी भाषाओंमें अनेक स्वतंत्र पुस्तकोंकी आवश्यकता है किन्तु न जाने अभी इसमें कितना समय लगेगा। हमारे देशमें धनिकों तथा विद्वानोंकी कमी नहीं है, किन्तु कमी है स्वदेशानुराग और सच्चे त्यागकी। जहाँ हमारे देशमें विद्वान् लोग एक ओर अपनी विद्वत्ता अंग्रेजीमें दिखानेके लिये चिन्तित हैं और जो कुछ वे लिखते हैं प्रायः अंग्रेजीमें ही लिखते हैं. वहाँ दूसरी ओर धनिकोंका धन देशकी शिल्पकला, विद्वानोंके पालन-पोषण इत्यादिमें न व्यय होकर नाच, तमाशों और विवाहादिकी फजूलखर्चियोंमें तथा अंगरेजोंकी आवभगतमें जाता है।

देशको यह दशा तो दुर्भाग्यवश अभी कुछ दिनोंतक रहेगी ही किन्तु जो लोग इसे समझ गये हैं और जो अपना धन सुमार्गमें लगाना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि होनहार युवकोंको पारितोषिक और छात्रवृत्ति दे देकर विदेशोंमें विद्योपार्जन तथा स्वतन्त्र ज्ञानान्वेषणके लिये भेजें। इन्हींमेंसे एक मण्डलीको मिश्रमें आना चाहिये। यहाँसे पुरातन तत्त्वशास्त्र तथा दस सहस्र वर्षोंके इतिहासका पता धीरे धीरे लगाया जा सकता है। ऐसा ही कार्य इस समय यहाँ संसारकी और जातियाँ कर रहीं हैं और अपने परिश्रमसे अपना सिक्का इस देशमें बैठा रही हैं।

यह एक ऐतिहासिक तत्व है कि बड़ी बड़ी जातियोंके पुरुष पहिले व्यापार, धर्म-शिक्षा, विद्याध्ययन अथवा विद्याविस्तारके मिस अन्य देशोंमें जाते हैं और वहाँ

सैयद नगर (PORT SAID)

[पृ० १६]

अपनी बड़ाईका सिक्का जमाते हैं। पहिले वे उन कमजोर जातियोंपर अपना आन्तरिक और विचार-सम्बन्धी राज्य स्थापित करते हैं, फिर धीरे धीरे वह देश भी कब्जेमें आ जाता है। यूरोपवालोंने व्यापारके मिससे अपने बड़े बड़े उपनिवेश बना लिये, मुसलमान लोगोंने धर्मप्रचार करते करते ही इतनी बड़ी सल्तनत क़ायम की थी। प्राचीन समयमें भारतका सिक्का भी अनेक देशोंमें विद्याप्रचारके ही ज़रिये जमा था।

उक्त बातोंके उल्लेखसे मेरा अभिप्राय केवल यही है कि विद्वानोंको अब भारतसे निकल कर देश-देशान्तरोंमें जाना चाहिये। वहाँकी विद्या, कलाकौशल, सभ्यताको ध्यानसे देखना और उनसे उपयोगी बातें अपने देशके लिये ग्रहण करनी चाहिये और साथ ही साथ अन्य देशवालोंको हिन्दू सभ्यता और हिन्दू विद्वत्ताका भी परिचय देना चाहिये। इस कार्यमें कितना ही धन व्यय किया जाय वह कभी व्यर्थ न जायगा। एक एकका दस दस होकर लौटेगा।

सैयद बन्दर वा रास्तेका दृश्य

हां, जहाज़पर ही काहिरः नगरके नेशनल होटलके आदमीसे हमारी भेंट हो गयी थी। असबाब उसीके सिपुर्द कर हम लोग जहाज़से उतर पड़े। पहिले दो जगह जाकर हमें अपना नाम लिखाना पड़ा। एक जगह उम्र और जातीयता भी लिखानी पड़ी। फिर हम चुंगी घर (कस्टम हाउस) में आये। यहाँ बक्स देखा जाने लगा। हमने बनारसी मालका, जो हमारे साथ था, परिचय दिया उसपर ९०) चुंगी माँगी जाने लगी। हमने वापसी रवन्ना माँगा। वहाँके मुहर्रिरोंने उसके देनेसे इन्कार किया। अन्तमें बहुत कुछ कहा-सुनीके बाद तय हुआ कि हम सब माल एक सन्दूकमें बन्द करके उन लोगोंके हवाले कर दें. वे हमें एक रसीद देंगे जिसके जरिये हमें माल सिकन्दरिया बन्दरमें मिल जायगा। सैयदसे सिकन्दरिया तकका पार्सल-महसूल भी हमें देना पड़ा। यहाँसे छुट्टी पाकर हम नगर देखने चले।

पहिले एक जगह जाकर भोजनका प्रबन्ध किया। अरबी भोजन करनेका मन चला। एक अरबी भोजनालयमें जा बैठे। खमीरी रोटी, प्याज, आलू और सेमका रस्सा, भात इत्यादि खाया। तीन मनुष्योंके लिये चार रुपये देने पड़े। भोजन अच्छा नहीं था। जगह भी गन्दी थी। हमने भविष्यमें अंगरेजी होटलको छोड़ अन्य जगह भोजन न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली।

यह नगर बिलकुल आधुनिक है। बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं पाश्चात्य ढंगकी बनी हैं, जैसे कि मुम्बईमें चौल होते हैं। यहाँपर हर प्रकारकी अंगरेज़ी दूकानें हैं। विलायती आराम और विलासकी सब चीजें मिल सकती हैं। दूकानोंकी बहुत अधिकता है।

यहाँके लोग हृष्टपुष्ट, लम्बे चौड़े देख पड़े। उनका रंग भी पक्का है। पोशाकमें काले रंगका एक लम्बा कुर्ता जिसे अरबी भाषामें "गलाबी" कहते हैं होता है, नीचे पैजामा और अन्य वस्त्र भी पहिनते हैं किन्तु ऊपर यही रहता है। चन्द लोग कोट भी इसके ऊपर पहिनते हैं। सबके सिरपर लाल फेज रहता है जिसे हम लोग तुर्की टोपी कहते हैं। यह तो हुई श्रमी लोगोंकी बात। किन्तु मध्यश्रेणीके लोगों-

की पोशाक बिलकुल अंगरेजी है। सिरपर फेजके सिवा सिरसे पैरतक जेण्टिलमैनी टपकती रहती है। इनका मामूली नाम अलाफ्रैंका है अर्थात् 'अहले फ्रांस'।

स्त्रियोंमें यहाँ पर्दा नहीं है या यों कहना चाहिये कि बिलकुल कम है। यहाँ हर श्रेणीकी रमणियाँ बाहर निकलती हैं। उनकी पोशाक वही, ऊपरसे गलाबी और उसके ऊपर एक स्याह चादर और बुर्का। बुर्का यहाँ नाना प्रकारके हैं किन्तु सब नाकके नीचे मुँह ढँकते हैं। आँखें खुली रहती हैं और वे बराबरसब-से बातचीत करती हैं। हमारे देश-की भाँति मुँह ढाँक-कर गिरती पड़ती नहीं चलतीं। काहिरःमें 'फैशनेबुल' लेडियोंका ढँग तो निराला ही है। वे नीचेसे ऊपर तक पाश्चात्य पोशाकमें सजधजकर ऊपरसे एक काले रंगकी चादर ओढ़ लेती हैं और बुर्का इतना बारीक रखती हैं कि उनके रूप-लावण्यकी छटा उसमेंसे पूर्णतया छनकर निकला करती है। मैंने यह भी सुना है कि नवीन मिश्र इतने पर्देको भी हटा देना चाहता है।
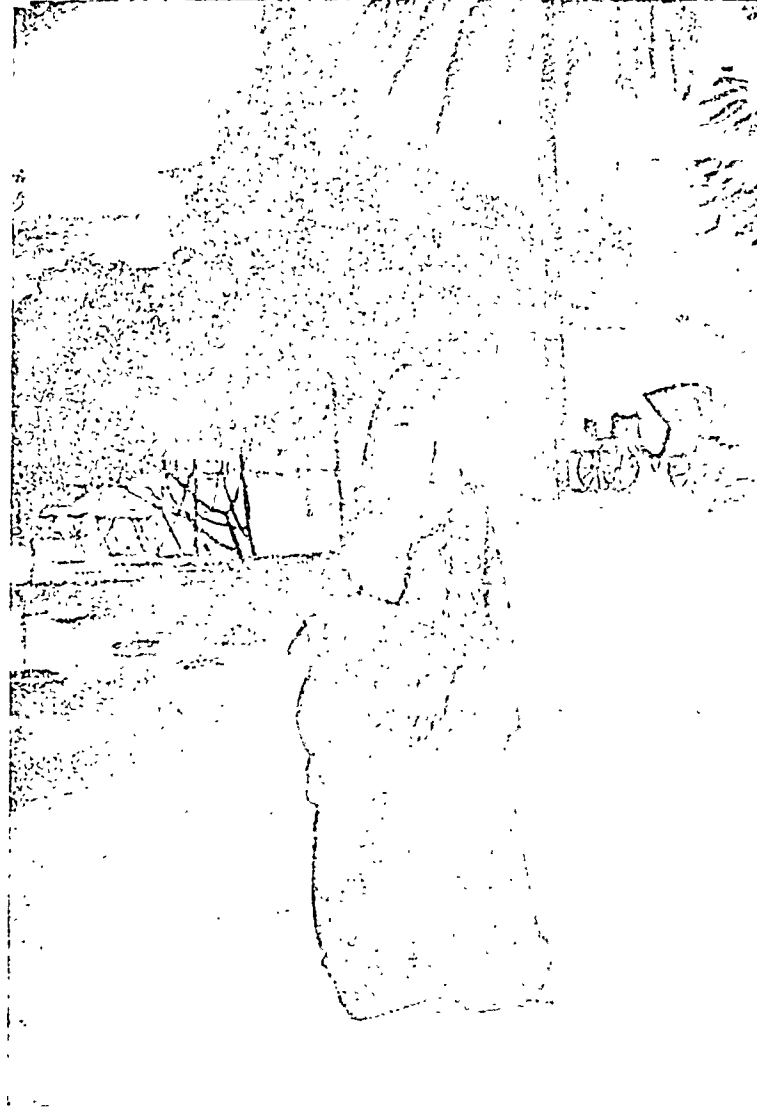
मिश्री महिला।

हम लोग नगरकी प्रदक्षिणा करते करते एक मसजिदके पास आये। यहाँ मसजिदकी बनावट भारतसे भिन्न है। भारतकी मसजिदोंमें जो तीन गुम्बज हिन्दुओंके

मिश्र देशकी तुर्की महिला (पृष्ठ २०)

124

127. EGYPTIAN TYPES AND SCENES. — Arab Cafe. — L

अरबी भोजनालय

(पृष्ठ १९)
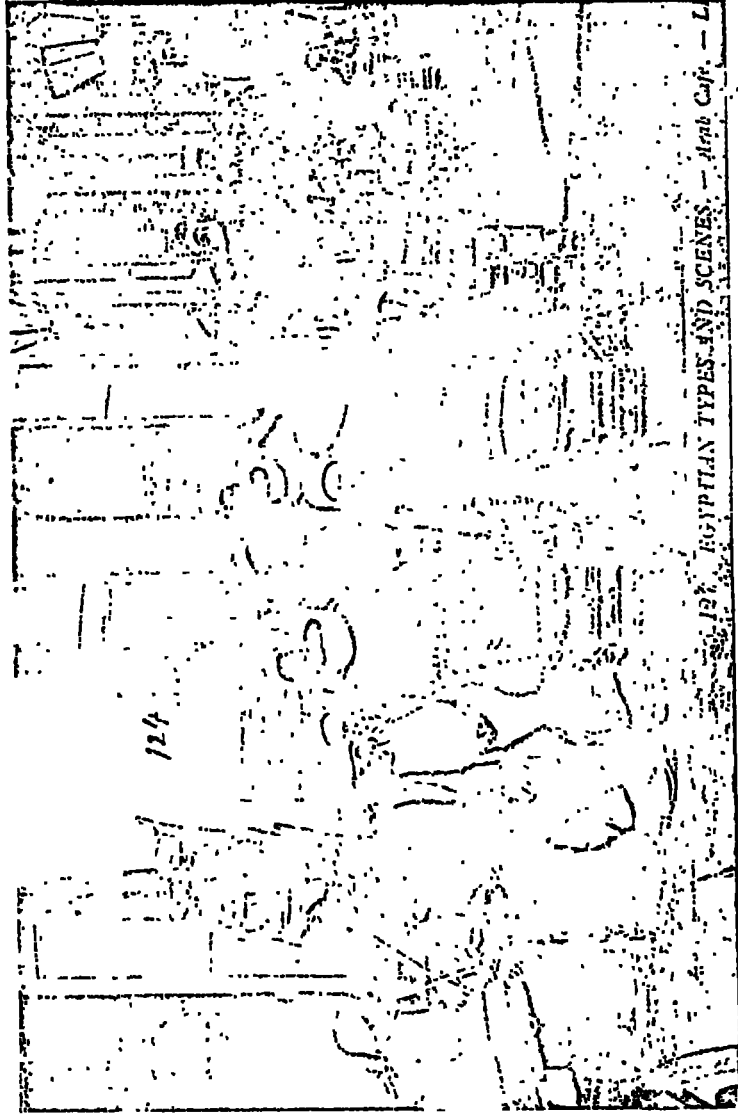
मन्दिरोंकी भाँति होते हैं वैसे यहाँ नहीं देख पड़े । केवल अज़ान देनेके लिये एक ऊँचा मीनार ही यहाँकी मसजिदोंमें होता है । प्रायः सब मसजिदोंमें कुछ न कुछ बिछौना होता है । कहीं आलीशान गलीचे हैं तो कहीं फटी चटाई ही सही । यहाँ एक बात और विचित्र है अर्थात् यहाँ लोग पूर्वमुख नमाज़ पढ़ते हैं क्योंकि काबः मोअज्ज़म यहाँसे पूर्वकी ओर है । इससे ज्ञात होता है कि हमारे मुसलमान भाई सिजदा काबः शरीफके बैतुल अल्लाहको करते हैं और परवरदिगारको हर जगह हाज़िर नाज़िर नहीं मानते । इसे काबःमें ही मौजूद समझते हैं । नहीं तो काबःकी ओर सिजदा करनेका क्या अर्थ है ? मुझे मेरे मुसलमान भाई इसका उत्तर दें । सब मसजिदोंमें मेहराबके पास एक लकड़ीका ऊंचा मेम्बर होता है जिसपरसे इमाम समय समयपर वाज़ देते हैं। यहाँ हम लोग भी अंगरेज़ोंकी भाँति अपने जूतेपर चटाईकी खोली चढ़ाकर जाने पाते हैं । भीतर जाकर मुसलमान भाइयोंको भी जूता हाथमें लिये या ज़मीन पर रक्खे हुए पाया । मुसलमान लोग जूतेको बदतहज़ीबी या नजिस नहीं समझते, केवल तल्लेकी नापाकीको मसजिदके फ़र्शसे बचाते हैं । यदि जूते मसजिद ऐसी पाक जगहोंमें बिलकुल ही न जाने पायें तो अच्छा हो ।

अब हमलोग रेलघर पहुंचे और टिकट खरीद रेलमें जा बैठे । यहाँ नवविवाहित इटैलियनोंकी एक युगल जोड़ी कहीं—शायद काहिरःको—जा रही थी । उन्हें बिदा करनेके लिये इटलीके अनेक स्त्री-पुरुष स्टेशनपर पधारे थे । इनकी पोशाक फ्राक कोट और चिमनी हैट थी । जब दम्पती रेलपर बैठ गये तो सब नरनारियोंने उनपर अक्षत फेंके । एक इटैलियन साथीसे, जो हमारे कमरेमें थे और अंगरेजी जानते थे पूछनेपर विदित हुआ कि इटलीमें बिदाके समय अक्षत फेंकना शुभ समझा जाता है । हमें यह अपनी रीति देखकर बड़ा कौतूहल हुआ और हमने इसका वृत्तान्त इटैलियन महाशयसे कहा । उन्हें भी इसे जानकर कौतूहल हुआ और वे मुसकराये । अब घंटा बजा और रेलने सीटी दी । सब नरनारियोंने नववधूको गले लगा उसका मुख-चुम्बन किया और बहुतोंने अधररस भी पान किया । रेल छूट गयी, 'हिप हिप हुर्रा' का शोर मचा । कुछ देर तक दोनों ओरसे रूमाल हिलते रहे और अन्तमें इसका भी अन्त हुआ ।

अब हमारी गाड़ी तेज़ीके साथ दक्षिणकी ओर जाने लगी । हमारी रेल ठीक स्वेज़ नहरके साथ साथ इसमाइलिया नगर तक जाती है । स्वेज़ नहर और रेलके बीचमें बाईं ओर जो भूमिका टुकड़ा है वह बिलकुल हरा है । इसमें जगह जगह पर कुछ मकान भी बने हैं किन्तु पेड़ोंकी अधिकता है । ये पेड़ अधिकांश हमारे यहांके झाऊकेसे हैं, किन्तु ये यहां बहुत बड़े होते हैं और चीड़की भाँति जान पड़ते हैं । इनके अतिरिक्त यहाँपर खजूर अर्थात् छोहारेके वृक्ष भी बहुतायतसे हैं । ज़मीन में एक प्रकारकी लम्बी घास नरकट ऐसी है । कहीं कहीं वहाँके पाश्चात्य निवासियोंने अपने सन्निकट छोटी छोटी वाटिकाएँ भी लगा रक्खी हैं । हमारे दक्षिण ओर प्रकाण्ड मरुभूमिकी बालुकाराशि तथा कहीं कहीं पहाड़ियाँ नज़र पड़ती थीं । रेलके एक ओर हरियाली और दूसरी ओर मरु देश, यह एक विचित्र समस्या थी किन्तु इसका उत्तर शीघ्र ही समझमें आ गया । स्वेज़ नहरके साथ ही साथ नील नदीकी नहरकी भी

एक शाखा है, उसीकी मायासे यह हरियाली है ।

कहा जाता है कि नील नदीसे जितना उपकार मिश्रदेशनिवासियोंका है उतना संसारमें किसी नदीसे किसी देशवालोंका नहीं है । मिश्र देशकी सभ्यता, मिश्र-देशकी उर्वरता, सब इसी नदीपर निर्भर है । यह नदी दक्षिणमें समुद्र तटसे कोई दो तीन सहस्र मील दूरीपर एक झीलसे निकल, सूदान प्रान्तसे बहती हुई मिश्र-देशमें आती है । फायलीतक यह प्रायः दो पहाड़ियोंके बीचसे होकर बहती है किन्तु यहांसे ये पहाड़ अगल बगल हो जाते हैं और क्रमशः यह घाटी चौड़ी होती जाती है । काहिरः नगरतक इन पहाड़ियोंका सिलसिला बराबर चला आता है और इनके बीचकी भूमि धीरे धीरे चौड़ी होती जाती है । इसकी चौड़ाई ५० मीलतक बढ़कर ये पहाड़ियाँ काहिरःके पास लोप हो जाती हैं और यहींसे थोड़ी दूरीपर नीलकी भी दो शाखाएँ हो जाती हैं, जो जाकर समुद्रमें गिरती हैं । इन दोनों शाखाओंके बीचकी भूमि 'नील दोआब' के नामसे प्रख्यात है । यह त्रिकोण कोई ४०० मील चौड़ा हो जाता है और इसीका नाम मिश्र देश है । इसीके बीचकी भूमि उपजाऊ है, अस्वानसे काहिरः तक जो घाटी है उसमें नील नदी इधरसे उधर लोटा करती है । वह इस २५ मील चौड़ी और कोई ५०० मील लम्बी भूमिको हरीभरी किये हुए है । इन पहाड़ोंके दोनों ओर प्रकाण्ड बालुकाराशि और मरुभूमि है । पहाड़ोंपर एक तृण भी नहीं उगता । नीलके दक्षिण ओरकी मरुभूमिको अरबका मरुप्रदेश और वाम ओरके मरुप्रदेशको लिबियाका प्रान्त कहते हैं । इस भांति मिश्र देश उत्तरकी ओर भूमध्यसागर, पूर्वकी ओर अरबके रेगिस्तान और पश्चिमकी ओर लिबियाकी मरुभूमिसे वेष्टित है । इसकी दक्षिणकी सीमा सदा घटा बढ़ा करती है ।

अब हम लोगोंकी गाड़ी इसमाइलिया पहुंची । यह एक नूतन नगर है और इसमें भी विशाल अट्टालिकाएँ और वासस्थान हैं । यहाँसे हमारी रेल पश्चिमकी ओर स्वेज़ नहरको छोड़ रवाना हुई । अबूहमद तक तो हमलोग बालूके ढेरमें होते हुए चले गये । जहाँ तक निगाह जाती थी केवल बालुकाराशि ही दीख पड़ती थी । कहीं कहीं स्टेशनोंके निकट कुछ हरे वृक्ष और ग्राम भी दीख पड़ते थे । ये हमारे देशकी भाँति छप्परके न थे किन्तु कच्ची ईंट अथवा नर्कटकी टट्टीके दोनों ओर मिट्टीके गारेको लगाकर दीवारें बना ली गयी थीं और छतें भी बनी थीं ।

अब हमलोग अबूहमद पहुंच गये । एकबारगी हमारे नाटकका दृश्य बदल गया । जिस भांति रंगमञ्चपर पर्दा बदल देनेसे भिन्न दृश्य आगे आ जाता है उसी भाँति मरुस्थल हरित क्षेत्रोंमें बदल गया । यहाँकी भूमि 'सुजला सफला शस्य-श्यामला' कही जाय तो कुछ अनुचित नहीं है । अब हमको कहीं बालुकाराशि नहीं दीख पड़ती थी किन्तु पके हुए पीले गेहूंके खेत ही दृष्टिगोचर होते थे अथवा कहीं कहीं लूसन घाससे हरीभरी भूमि । नीलकी नहरों द्वारा यह भूमि ऐसी सजला है कि यहाँ भी मलेरिया अवश्य फैलेगा । अब हमारे देशकी नाईं खेतोंमें स्त्री-पुरुष कार्य करते देखे जाने लगे । कहीं बैलसे जुते हुए हल चल रहे हैं, कहीं पेड़ोंके नीचे श्रमके उपरान्त नरनारी विश्राम कर रहे हैं, कहीं ग्रामीण स्त्रियाँ सिरपर घड़े रक्खे नहरमें जल लेने जा रही हैं और आपसमें अठखेलियाँ भी कर रही हैं । कहाँतक कहें,

पृथिवी प्रदक्षिणा

इसमाइलियामें स्वेज कैनालका कार्यालय (पृष्ठ २२)
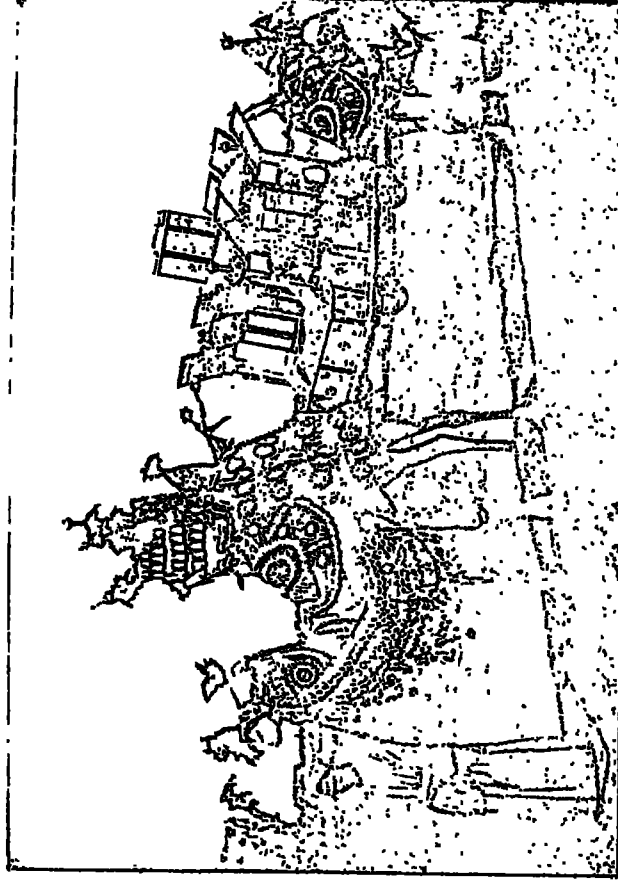
बारातके समयकी मिश्री पालकी (पृष्ठ २३)

अपने देशकी सब बातें देख देख प्यारा घर याद आता था। यहाँ भी गोबरकी चिप-रियाँ पाथी जाती हैं। यहाँ भी हमारे देशकी भाँति कौवे काँव काँव करते हैं किन्तु उनकी गर्दन अधिक सफेद होती है। हाँ, यहाँ सूखे हाड़, नंगेबदन, पेट धँसे, आँखें बैठीं, मुर्झाये हुए चेहरेवाले पुरुष नहीं देख पड़े! सब हट्टे कट्टे, लम्बे जवान, नरनारियोंके प्रसन्न वदन, हरे चेहरे देख पड़े और सबके शरीरोंपर लम्बे गलाबी पड़े थे। स्त्रियां आभूषित थीं, प्रायः सभीकी नाकोंपर सोनेकी बड़ी नकलोल चढ़ी थी। पैरमें भी कड़े देख पड़े। हां, यहां भी जिन बालकोंको स्कूल जाना चाहिये, वे अपने मां-बापके साथ खेतमें काम करते नज़र पड़े। यहांकी ज़मीन काली करैली मिट्टीकी है इसीलिये यहां अन्न बहुत होता है। गेहूं एक बिगहेमें २५ मनसे कम न बैठता होगा। गेहूंके साथ दर्रे बोनेकी यहां भी चाल है और कुसुमके लाल पीले दृश्य यहां भी देख पड़ते थे।

पाँचवाँ परिच्छेद।

काहिरः नगरका दृश्य।

मार्गका दृश्य देखते देखते रेलकी पटरियोंकी खटपट बढ़ी व हम एक विशाल नगरके निकट पहुंच गये। हमारी गाड़ी मुम्बईके विक्टोरिया टरमिनस-के समान एक बड़े स्टेशनपर खड़ी हो गयी।

यही काहिरः नामी प्रसिद्ध नगर था। यहां स्टेशनपर हमारे होटलका आदमी मौजूद था। उसने असबाब संभाला और हम गाड़ीसे उतर पड़े। इस विशाल स्टेशनमें सब बातें पाश्चात्य देशोंकीसी थीं किन्तु इस्लामकी सभ्यताका चिह्न यहां भी मिलता था। स्टेशनके मेहराब कहे देते थे कि यह ढंग मुसलमानी है। स्टेशनके बाहर होते ही एक बड़ी गाड़ीमें असबाब रक्खा गया। हम भी बैठ गये। साईसकी जगह साहब बहादुर, जिन्होंने हमारा असबाब संभाला था, खड़े हो गये और हमारी गाड़ी बड़ी बड़ी ऊंची अट्टालिकाओंसे भरी चौड़ी सड़कोंसे होती हुई होटलमें पहुंची। होटलके मैनेजरने आगे बढ़ टोपी उतारकर सलाम किया और बड़ी आव-भगतसे भीतर ले जाकर एक खूब सुसज्जित कमरेमें टिका दिया। आज भोजन करके सो रहनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। हां, एक बार हम लोग बाहर गये और अपने देशके भाई चेलाराम महोदयसे मिल आये।

रातको चेलाराम महोदयकी दूकानपर एक ड्रागोमैन (यह यहांपर गाइड या पथप्रदर्शकका नाम होता है) के लिये कह दिया था। यह महाशय कोई ८ बजे प्रातःकाल आ विराजमान हुए। मुझे नींद बड़े ज़ोरकी लगी थी मैं तो बिस्तरे-से न उठा, पर मेरे साथी बन्धुओंने इनसे वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया और प्रायः तीन घंटे बातचीत करके अपने भ्रमणके समय-विभाग और रीतिका निश्चय कर लिया।

हम लोग तीसरेपहर भ्रमणके लिये चले। जिस सड़कसे हमारी गाड़ी जाती थी उसीको देख हम भौचक हो जाते थे। हमने इतना विशाल नगर अपने देशमें नहीं देखा था। यह नगर अत्यन्त साफ-सुथरा और शानदार है किन्तु जितने मकान हैं सब नवीन ढंगके बने हैं। यह सब विभव यहां मुहम्मदअली पाशाके समय-से हुआ है। यह नगर ही उनके समयमें फरासीसियोंने अपने ढंगपर बनाया था। सब सड़कें खूब चौड़ी और साफ हैं और सभी नये ढंगकी बनी हैं। गर्दे या कीचड़का नाम भी यहां नहीं है।

हमने उर्दूके उपन्यासोंमें चौकमें कटोरे खनकनेकी बात पढ़ी थी सो यहां देखनेमें आयी। जगह जगहपर पानी व शर्बत पिलानेवाले यहां घूमा करते हैं। पीठपर एक खूबसूरत पीतलका अथवा शीशेका बना हुआ सुराहीदार बड़ा घड़ा रहता है। हाथमें कटोरे रहते हैं जिन्हें बजा बजा वे अपने ग्राहकोंका चित्ताकर्षण
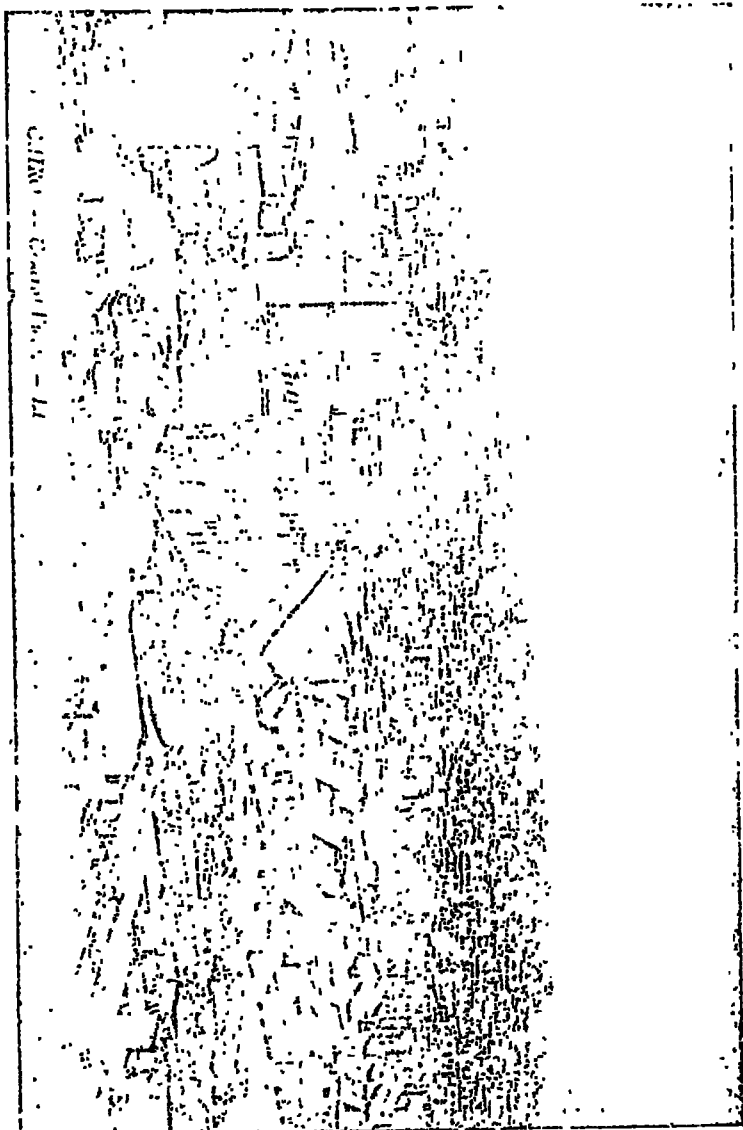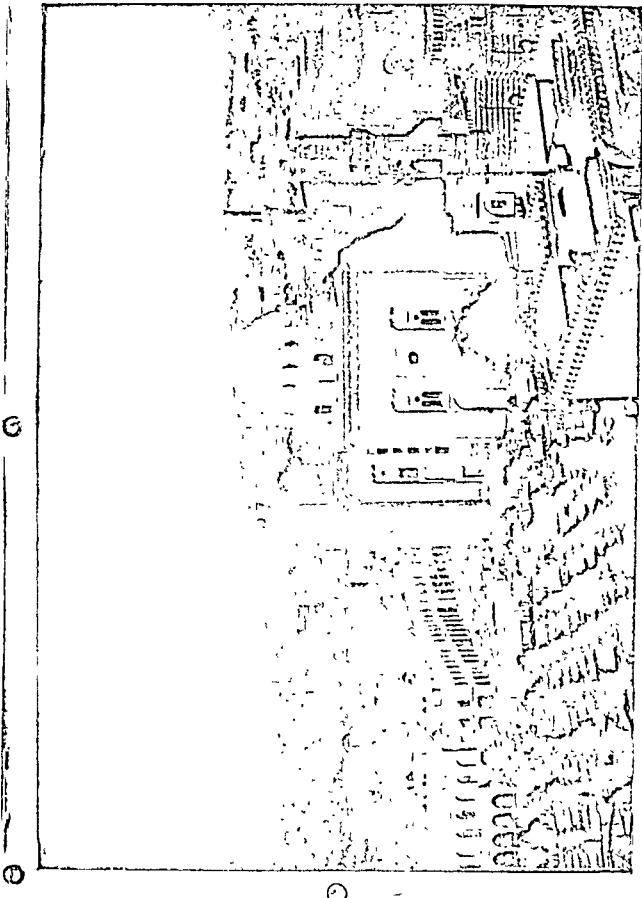
काहिरः नगरका दृश्य (पृष्ठ-२४)

क़ाहिरः नगरमें सुलतान हसनकी मसजिदका दृश्य (पृष्ठ २४)

करते हैं। ये पानी पिलानेवाले इतने साफ और सुथरे हैं कि प्यास न होनेपर भी इन्हें देख पानी पीनेका मन चल जाता है।
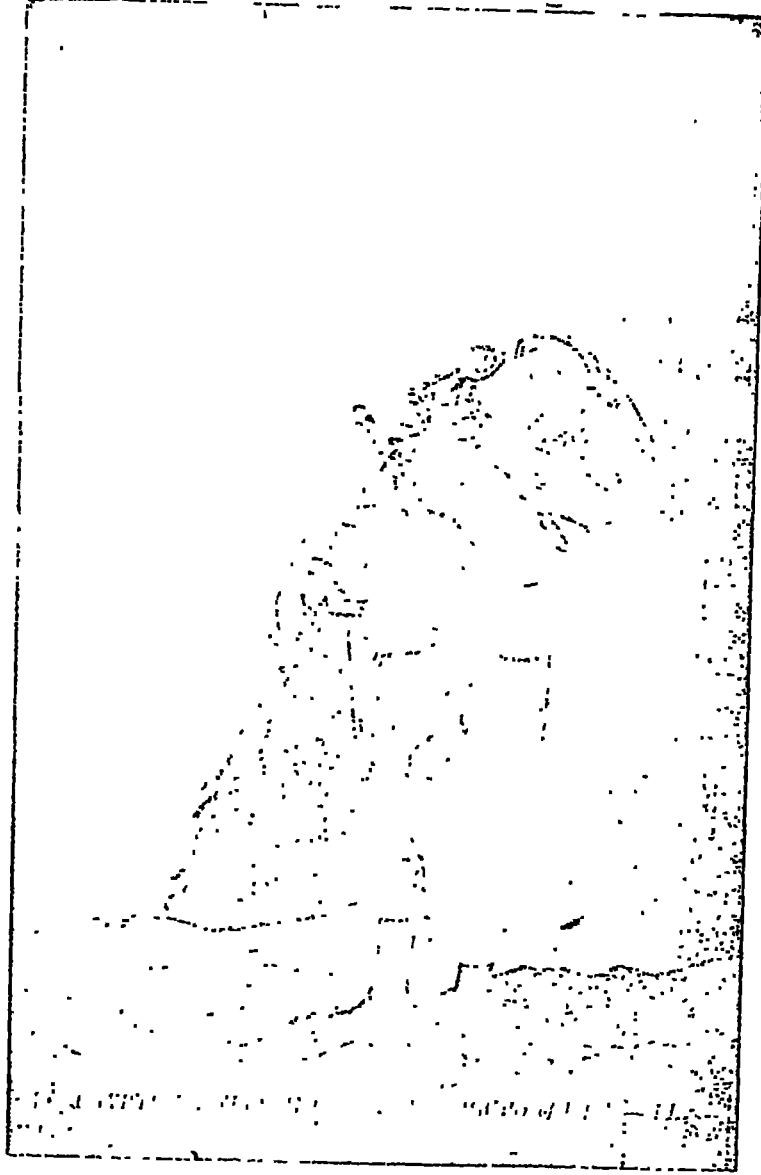
चौकमें पानी पिलानेवाले ।

पहिले हमलोग नगरमें घूमते हुए गामीअल अजहर (Gamiel Ahzar) की मसजिदमें पहुंचे किन्तु वह समय नमाज़का होनेसे हम उसे न देख सके। यहांसे घूमकर हमलोग मुरिस्ताने कालौनमें पहुंचे। इसका निर्माण संवत १३४१ वि० में प्रारम्भ हुआ था और वि० १३५० में समाप्त हुआ। इसमें तीन मकान हैं, एक चिकित्सालय, एक मक़बरा और एक मसजिद। कहा जाता है कि मुरिस्तान अर्थात् चिकित्सालयमें

हर एक व्याधिके लिये अलग अलग गृह थे। यहांपर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाया जाता था और चिकित्सा भी होती थी। खासकर यहांपर पागलोंका इलाज बड़ी अच्छी तरह होता था। पागलोंको सुलानेके लिये तीन उपाय निकाले गये थे (१) मधुर गान और वाद्य (२) कथा (३) बदनका धीरे धीरे सुहराना।

यह जगह अब बिलकुल बर्बाद हो गयी है। दिल्लीकी भाँति टूटे फूटे खंडरात यहाँ देख पड़ते हैं। मस्जिदमें भी कोई विशेष बात उल्लेख योग्य नहीं है। हाँ, मकबरेमें जाते ही मनुष्यकी आंखें खुल जाती हैं। मुसलमान नृपतियोंने कितना धन और समय अनेक कबरोंपर खोया है, यह यहाँ देख पड़ता है। यह भवन बड़ा विशाल है। इसके ऊपरका विशाल गुम्बज ४ बड़े स्तम्भों और ४ खम्भोंपर बना है। ये खम्भे और स्तम्भ ग्रेनाइटके हैं अर्थात् उसी पत्थरके जिसका सारनाथवाला सिंहस्तम्भ है किन्तु ये उससे बड़े और अधिक मोटे हैं। इनपर भी उसी प्रकारकी उत्तम चमकदार चिकनाहट है। यहाँ दीवारोंपर ऐसी सुन्दर पच्चीकारीके काम बने हैं कि एक एकको देखनेमें घण्टों लग जाते हैं। यहाँ भी सच्चे जवाहिर और सीपका काम है। अभीतक फ़ीरोजे, नीलम, संगयशब और अन्य कीमती पत्थरोंकी पच्चीकारी यहाँ वर्तमान है।

अब हम लोग सिटेडल पहुंचे। सिटेडल एक ऊँची जगह है जहांपर एक पुराना क़िला सलादीनका बनवाया हुआ विक्रमकी १३वीं शताब्दीका अभीतक भग्ना-

सिटेडलयुक्त काहिरः का दृश्य

वस्थामें पाया जाता है। इसीके बीचमें मुहम्मद अलीकी बनवायी हुई खूबसूरत संगमरमरकी मसजिद है। यह मामूली पीत रँगके संगमरमरकी है और भीतर लकड़ी
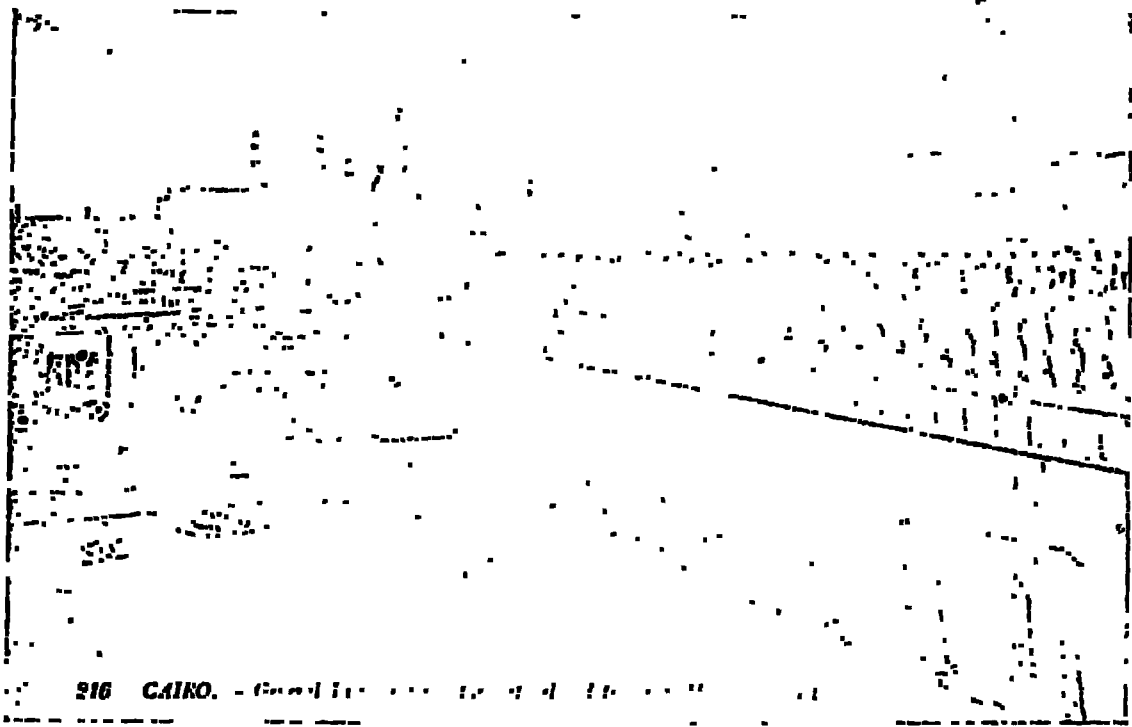
काहिरःमें सिटाडेल तथा विशाल मसजिद (पृष्ठ २६)
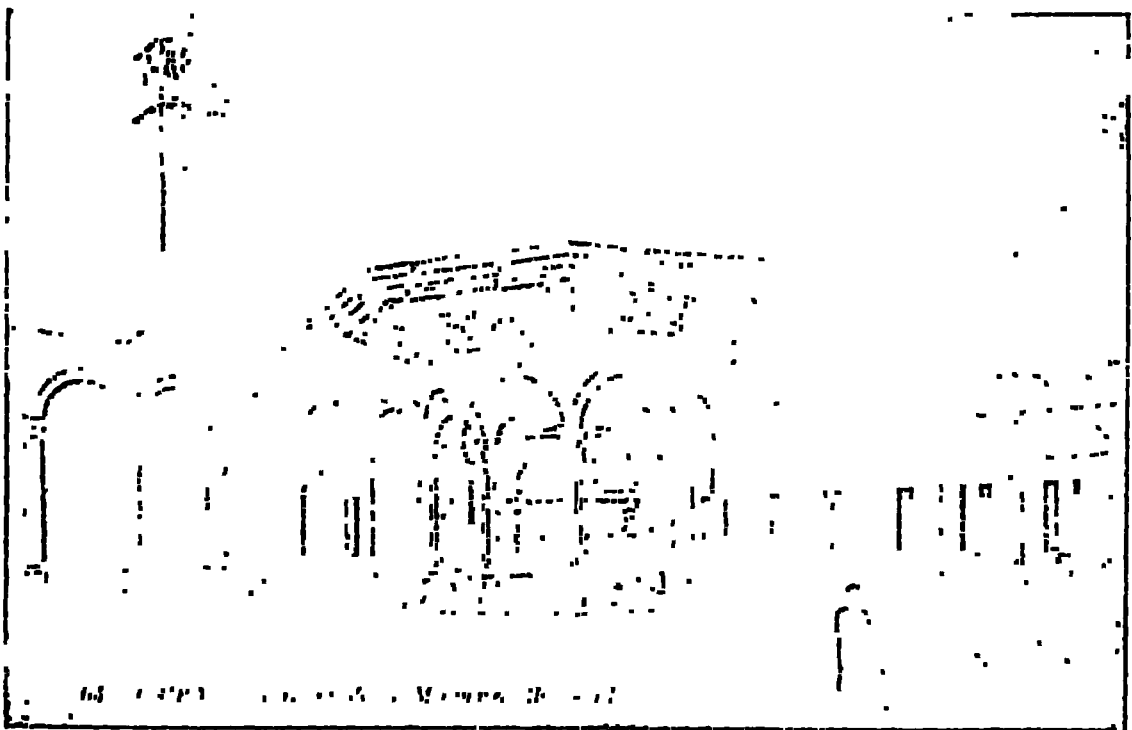
मुहम्मदअलीकी मसजिदका भीतरी दालान (पृष्ठ २७)
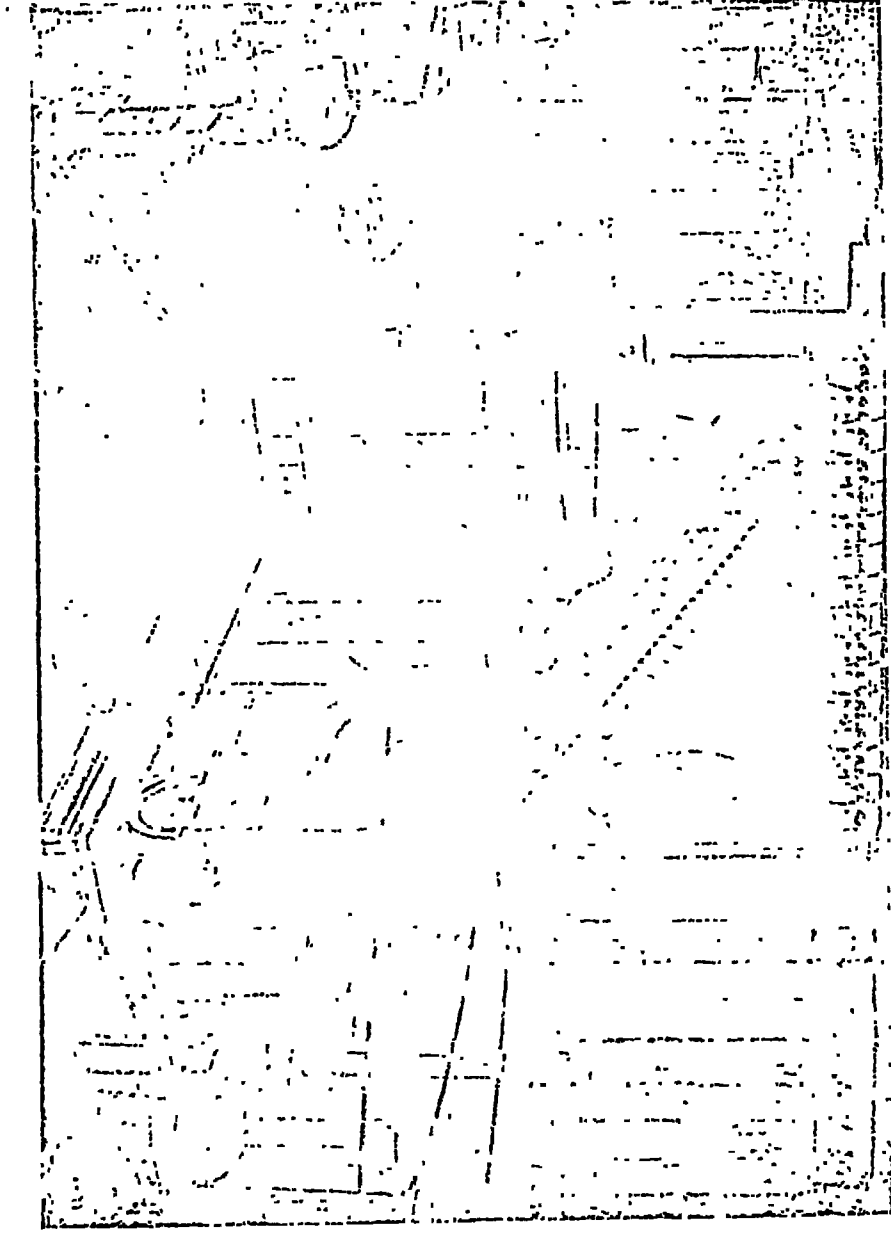
मुहम्मद अलीकी मसजिदमें रोशनीका प्रबन्ध (पृष्ठ २७)

भी रंगकर लगायी गयी है । यह ग्रूसुफ बोशना यूनानी कारीगरके कुस्तुन्तुनियाँके 'नूरी उस्मानिया" के नक़शेपर बनी है । इसके मीनार बड़े ऊँचे हैं और दूरसे काशीके माधवदासके धरहरेकी भांति लोगोंको बुलाते हैं। इसके भीतर एक बहुत बड़ा
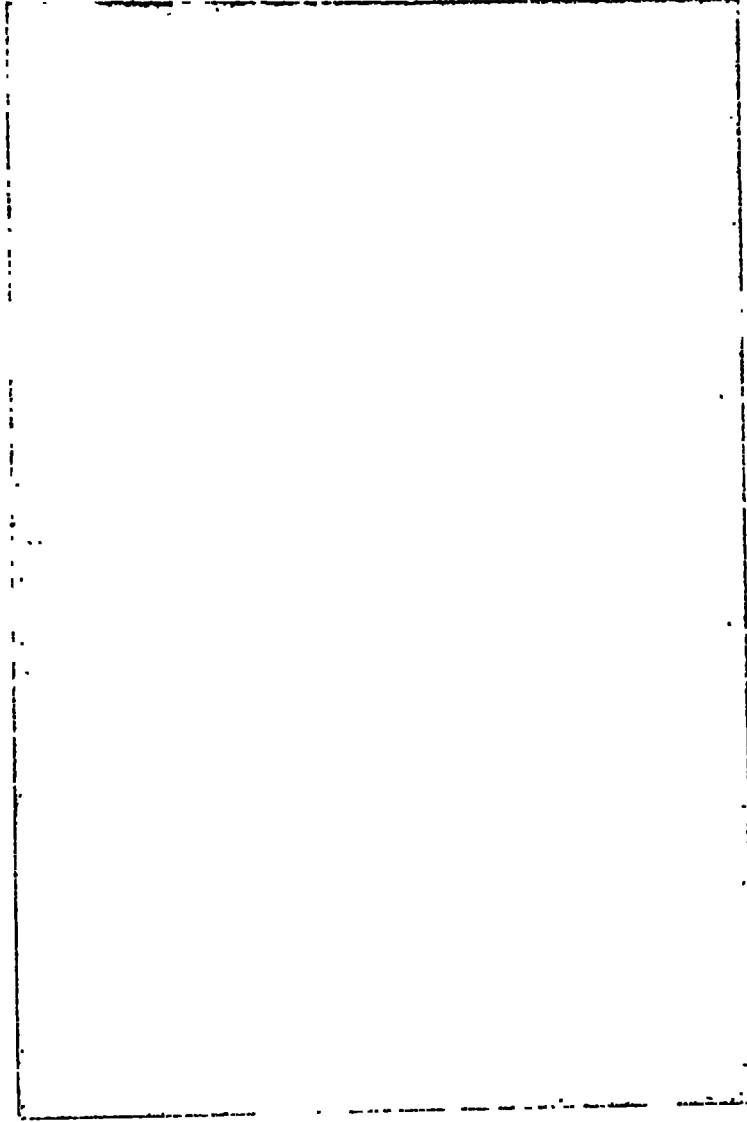
मुहम्मद अलीकी मसजिदका भीतरी दृश्य ।

सहन है। सहनके बीचमें वज़ू करनेकी जगह है। यहाँसे मसजिदके भीतर जाना होता है। यह एक बड़ा आलीशान कमरा है जिसका गुम्बज़ बैजण्टाईन तौरका बना है और ४ विशाल स्तम्भोंपर खड़ा है। यहाँपर रोशनीका बहुत बड़ा इन्तंजाम है। बड़े बड़े झाड़ और फानूस लगे हैं और छतसे लटकती हुई सिकड़ोंमें एक बहुत बड़ा लोहेका चक्कर बँधा है जिसमेंसे कई सौ हँड़ियाएँ और कूंड़ लटके हैं। इन सबमें

बिजली द्वारा रोशनी होती है। रमज़ानके महीनेमें यहाँ प्रतिदिन रोशनी होती है। एक बगलमें मुहम्मद अलीकी क़बर भी है। इस मसजिद्के पीछे जानेसे सारे नगरका दृश्य देख पड़ता है। वहाँसे नगरकी शोभा बड़ी मनोहर और ममोरम मालूम पड़ती है।

यहांसे हमलोग पुराना काहिरः देखने चले। यहांपर खलीफा उमरकी बनवायी हुई एक मसजिद है। इसमें एक सौसे अधिक संगमरमरके मोटे मोटे खम्भे हैं। कहा जाता है कि ये काहिरःके रोमन और बैजण्टाइन मकान तोड़कर यहाँ लाये गये हैं। यहाँके सहनमें एक पुराना गहरा कुआँ है जिसके बारेमें यह किंवदन्ती है कि यह मक्केके कुएँसे भीतर भीतर मिला है। यहांपर एक खम्भा है जिसमें "अल्लाह और हज़रत मुहम्मदादि" का नाम हलके रंगमें है। कहा जाता है कि ये नाम प्रकृतिने स्वयम् लिखे हैं और यह हज़रत उमरके मोजज़ेसे मक्काशरीफ़से यहां आ गया है।

इन सब वस्तुओंको देख कर हम लोग होटलको लौटे और आजका दिन समाप्त हुआ। मुहम्मद शुक्री आजके तजर्बेसे बड़े होशियार और बुद्धिमान् पुरुष मालूम हुए।

❀ ❀ ❀

मिश्रियोंका जातीय त्योहार

आज मिश्रियोंका जातीय त्योहार "सम्मेनसीम" है। आज सारा काहिरः बन्द है। सब स्त्री-पुरुष उत्तम उत्तम वस्त्राभूषणसे अलंकृत हो मैदान और बागीचोंमें चले जा रहे हैं। आज कोई भी घरमें बैठा नहीं देख पड़ता। सब लोग प्रसन्नचित्त हैं। यह त्योहार हमारे वसन्तोत्सवका सा है। हमारा वसन्तोत्सव आज लुप्त हो गया है किन्तु यह त्योहार जीवित है। आज प्रकृतिने भी अपना वेष बदला है। चितकबरे रंगके बादलोंकी साड़ी पहिन अपने यौवनकी छटा दर्शानेके लिये आज वह भी सज-धज कर निकली है।

हम लोग भी सुबह ही नहा धो हिलियोपालिसकी यात्राके लिये घरसे निकले। रेलपर सवार हो मतरिया जा पहुँचे। वहाँसे चलकर प्रायः १॥ मील पर "मेरी" के बागीचेमें पहुंचे। कहा जाता है कि मेरीने पैलस्टाइनसे भागकर अपने बच्चेके साथ यहाँ आकर विश्राम किया था। यहाँपर एक अंजीरका पेड़ है, उसीके नीचे वह आकर बैठी थी। रोमन कैथलिक ईसाईयोंके लिये यह स्थान पवित्र है। वे यहाँ आकर इस पेड़को चूमते हैं और इसके तनेपर अपना अपना नाम लिखते हैं। यहाँपर एक कूप है जिसके जलसे यह बाग सींचा जाता है। जनश्रुति है कि बालक ईसूकी करामातसे इसका जल मीठा पीने लायक हो गया है। आसपास ग्रामके कुएँ खारे हैं।

मेरीके बागीचेमें अंजीरका पेड़ (पृष्ठ २८)
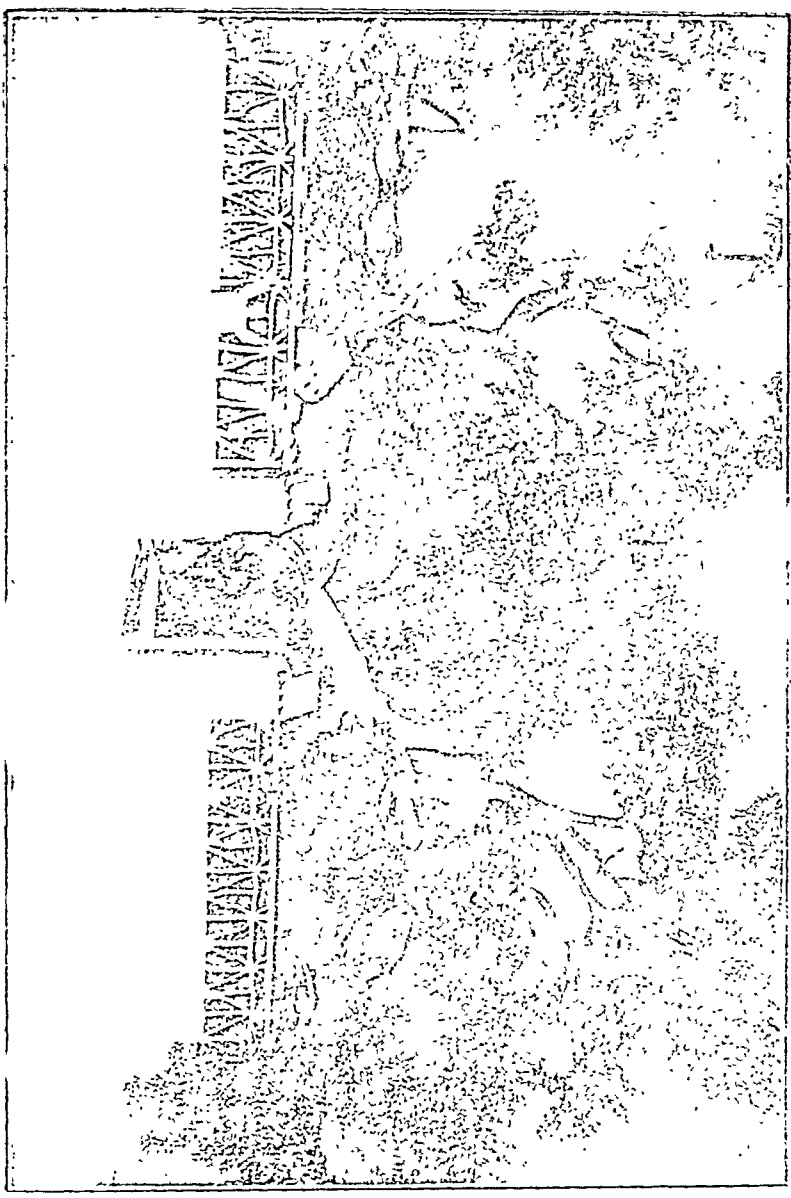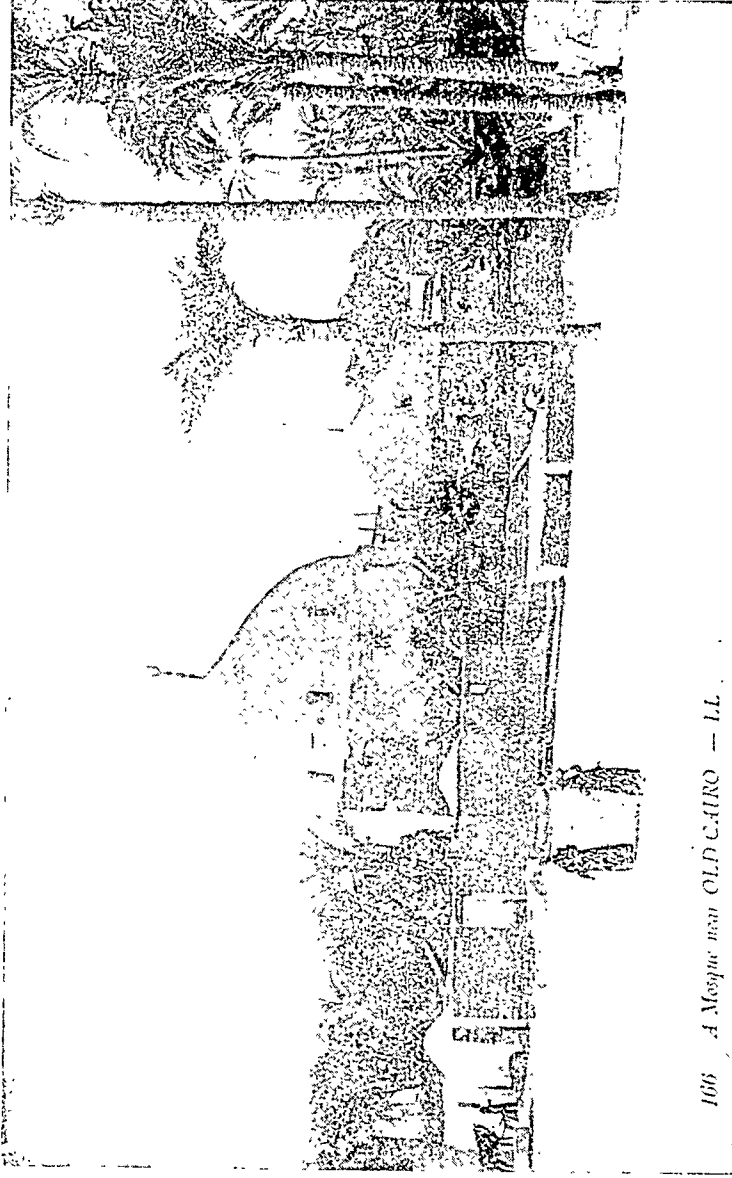
पुराने काहिरः के समीप मसजिद (पृष्ठ २८)

यहाँसे हमलोग हिलियोपालिस (सूर्य देवत) का मन्दिर देखने चले। र होनेके कारण हम लोग गदहोंपर सवार हो लिये। यहाँकी यही प्रधान सवारी
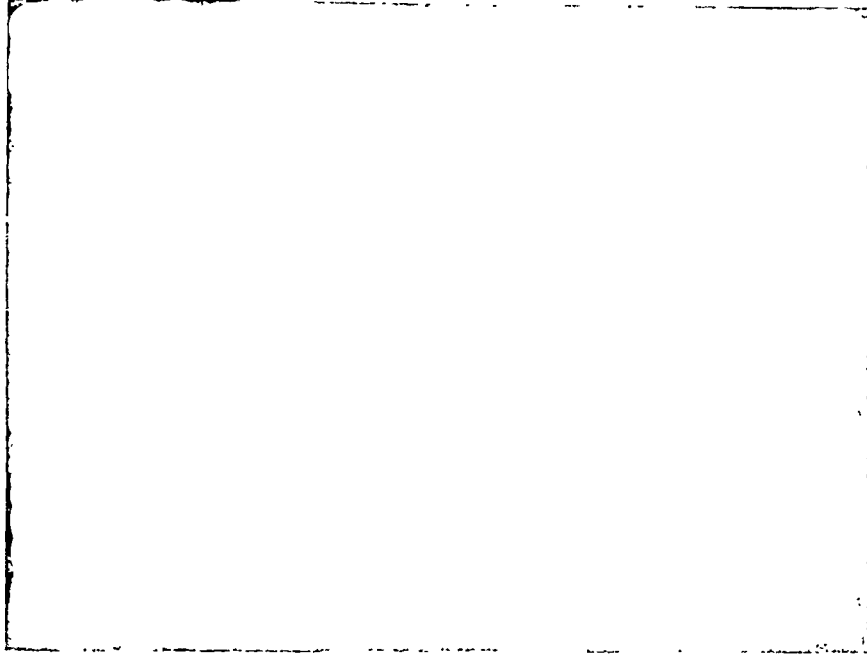
हिलियोपालिसम गदहकी सवारी

है। पाँच सहस्र वर्ष पूर्व यह एक विशाल नगर था। यहाँपर सूर्य देवताका बहुत बड़ा मन्दिर था, इसी कारण यह नगर भी उसी "हिलियोपालिस" के नामसे विख्यात है यहाँपर किसी समयमें बड़ा भारी विद्यापीठ था और बड़ी दूर दूरसे विख्यात पण्डित विद्यालाभ करनेके लिए आते थे। यूनानका विख्यात विद्वान् और तत्ववेत्ता अफलातून (प्लेटो) यहींका विद्यार्थी था। यहांपर उसने १३ वर्ष अध्ययन किया था किन्तु आज उस विशाल नगर और मन्दिरका नामोनिशान भी बाकी नहीं है। पीले पीले पके गेहूंके खेत हमें दिखाये गये और यह बताया गया कि यहीं वह विख्यात नगर और मन्दिर था जहां संसारके बड़े बड़े विद्वान् और पराक्रमी नृपतिगण अपना माथा टेकते थे। आज यहां सियार लोटते और लोमड़ियां हू हू करती हैं। यहां नालंद और तक्षशिलाके समान चिन्ह भी बाकी नहीं हैं। एक मिट्टीका गड़हा दिखाकर हमें पुराने नगर और मन्दिरकी दीवार बतायी गयी। यहांपर ५००० वर्षका पुराना एक लाल ग्रेनाइटका स्तम्भ खड़ा है और यह बता रहा है कि उसके साथी सब सो गये, केवल वही पुरानी सभ्यताका स्मरण दिलानेके लिये बच रहा है।

यह लाल ग्रेनाइटका स्तम्भ ६६ फुट ऊँचा है। इसे Obelisk ओबलिस्क कहते हैं। यह चौपहला है और ऊपर नोकदार हो गया है। इसपर बड़ी कान्ति है और चिड़ियों इत्यादिके तरह तरहके चित्र इसपर खुदे हैं जो वास्तवमें 'हाय-

रोग्लिफिक' भाषामें उसका इतिहास है। इसीका साथी एक और ओबलिस्क था जो १२वीं शताब्दी तक खड़ा था किन्तु अब उसका कहीं पता नहीं है। इन टूटे फूटे मन्दिरोंको देखकर हमें दिल्लीके निकटस्थ पाण्डवोंका हस्तिनापुर याद आ गया और उस टूटे फूटे किलेकी याद आते ही (जो दिल्लीके बाहर १२ मीलपर है) आंखोंसे आंसू निकल पड़े। फिर हम लोग गदहोंपर चढ़कर रेलघरकी ओर चल दिये।

एक पुराना विश्वविद्यालय ।

तीसरे पहर हम लोग "अल अज़हर" देखने फिर गये। इसके भीतर एक बहुत बड़ा सहन है और चारों ओर बड़े बड़े विशाल दालान हैं। पूर्वकी ओर बहुत
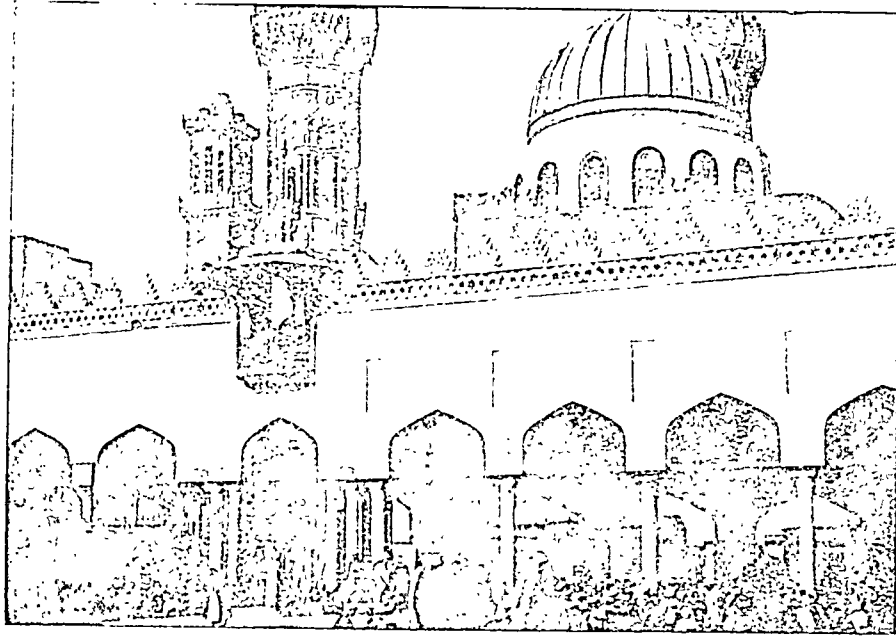
अल अज़हर की मसजिद

बड़ी बारहदरी है जो मसजिदके नामसे विख्यात है। सहन और मसजिदमें मिलाकर बीस पच्चीस हजार आदमी एक साथ नमाज पढ़ सकते हैं। यह मसजिद हजरत फातिमाकी औलादके बादशाहोंकी बनवायी हुई है। संवत् १०२७ विक्रमीमें इसे सुलतान अल मुइज़ने बनवाया था किन्तु संवत् १०४४विक्रमीमें सुलतान अजीजने इसमें एक बड़े विश्वविद्यालयकी नींव डाली। इस मकानमें बहुत उलटफेर हुए हैं किन्तु इस समय यह वैसा ही है जैसा मैं ऊपर कह आया हूं। दालानोंमें दीवारके साथ काठकी अलमारियां लगी हैं जिनमें कबूतरके दर्बोंकी भांति छात्रोंकी पुस्तकें आदि रखनेकी जगह है।

यह विश्वविद्यालय पुराने समयमें अरबीकी पढ़ाईका केन्द्र था किन्तु अब यह वैसा नहीं रहा। यहांपर अंगरेजोंके आनेके पहिले सात साढ़े सात सौ विद्यार्थी थे और ३३० मौलवी इन्हें पढ़ाते थे, किन्तु बीचमें यहांपर छात्रोंकी संख्या कम हो गयी

खलीफाओंकी कब्रें (पृष्ठ २८)

227 CAIRO. — Tombs of the Kalifs. — Sultan Inal and Emir el Kebir Mosques — LL.
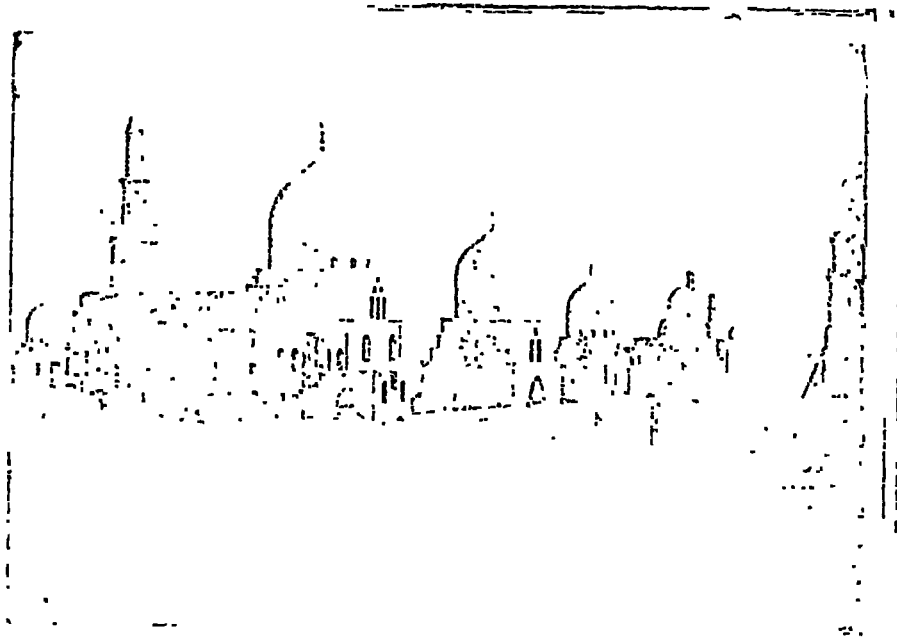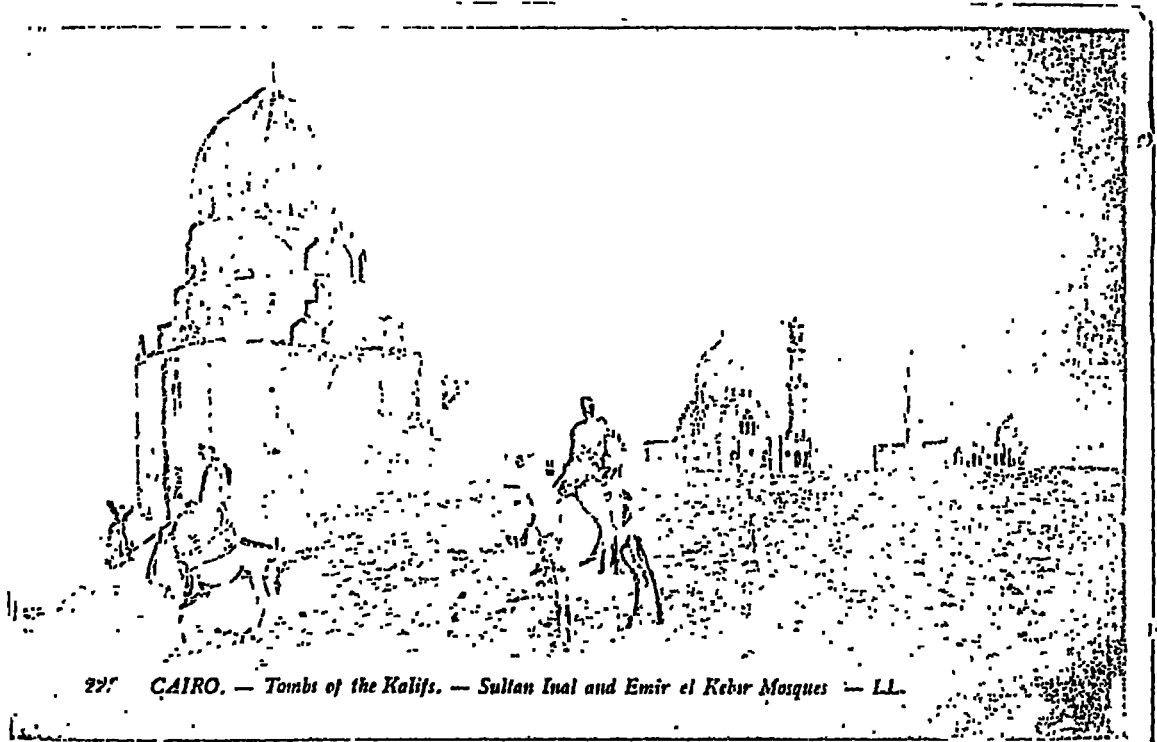
खलीफाओंकी समाधियां व सुलतान इनल और अमीरुल कबीरकी मसजिदें (पृष्ठ २८)

OLD CAIRO. — The Island of R

पुराना काहिरः, रौडा द्वीप

(पृष्ठ २
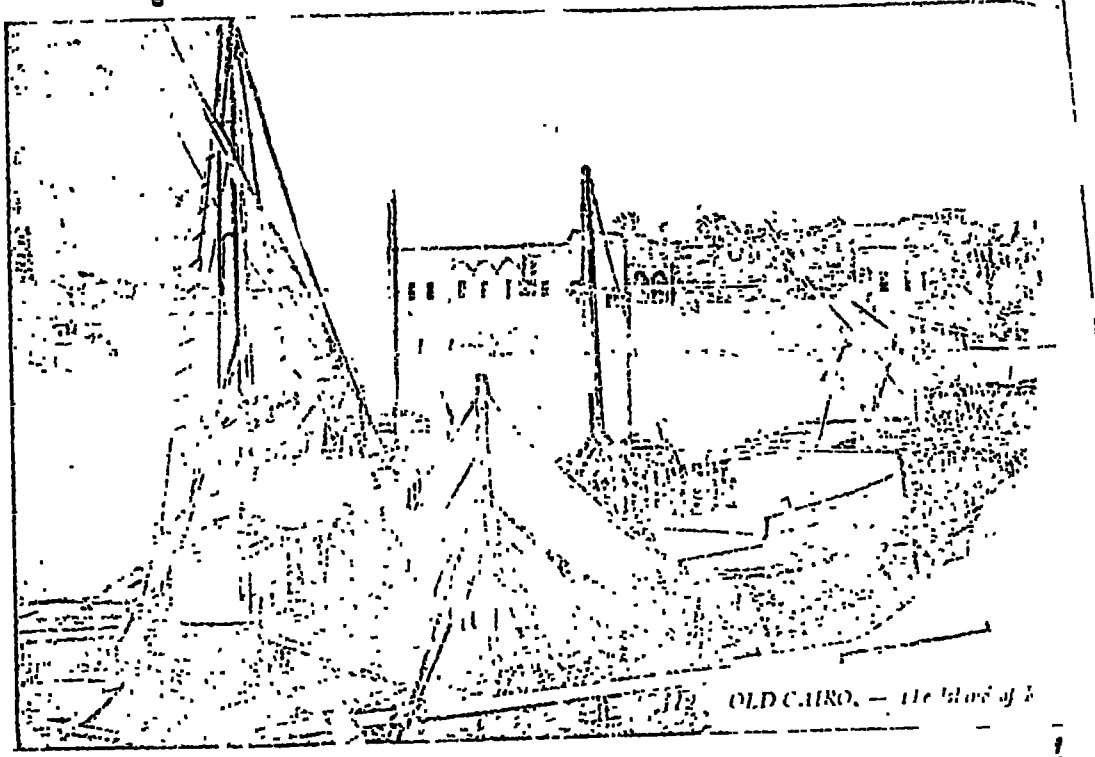
थी। संवत १६८ वि० में यहां २४,९५१ विद्यार्थी और ५८७ मौलवी थे। एक एकके पास सैकड़ों लड़के हमारे यहांके मकतबों अथवा पाठशालाओंकी भांति पढ़ते थे। इस समय यहां पर १७ वर्षकी पढ़ाई है। शिक्षा निम्नलिखित विषयोंमे होती है- नहव, सर्फ, वलाग़, मन्तिक अरुज़ कूफिया, अलजेवा, हिसाव, मुस्तलाह, कलाम, फिक़ह, तफसीर इतिहास, भूगोल, आदि। यहांका व्यय वकफसे चलता है जिसकी वार्षिक आय करीब ४३३,५००, रुपया है, और इसके अतिरिक्त ५ ०० रोटियां रोज़ मिलती है। वहांपर विद्यार्थियोंको भोजन इत्यादि सब मिलता है और काशीके पंडितोंकी पाठशालाकी भांति विद्यार्थियोंको वहीं रहना पड़ता है। यहांके निकले हुए विद्यार्थियोंमें-से मिश्रके वज़ीर आज़म व अन्य राजकर्मचारी हैं। किन्तु अब यह बड़ी हीन अवस्थामें है। इसके पुनरुद्धार करनेकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु करे कौन ? नवीन मिश्र तो विलासिता (ऐशोइशरत) में पड़ा है; उसे भोगविलाससे ही छुट्टी नहीं। रहे परदेशी, उन्हें क्या पड़ी है कि फ़जूलका सरदर्द मोल लें और अपने हाथों अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारें? यहांकी हालत देखकर मुझे काशीके पंडित और विद्यार्थी समूह याद आ गये।

हमलोग यहांसे एक बार फिर सिटेडलकी ओर बढ़े। सिटेडलमें पहुंच मुहम्मद अलीकी मसजिदके पीछे जाकर नगरकी शोभा देखी। फिर वहांसे
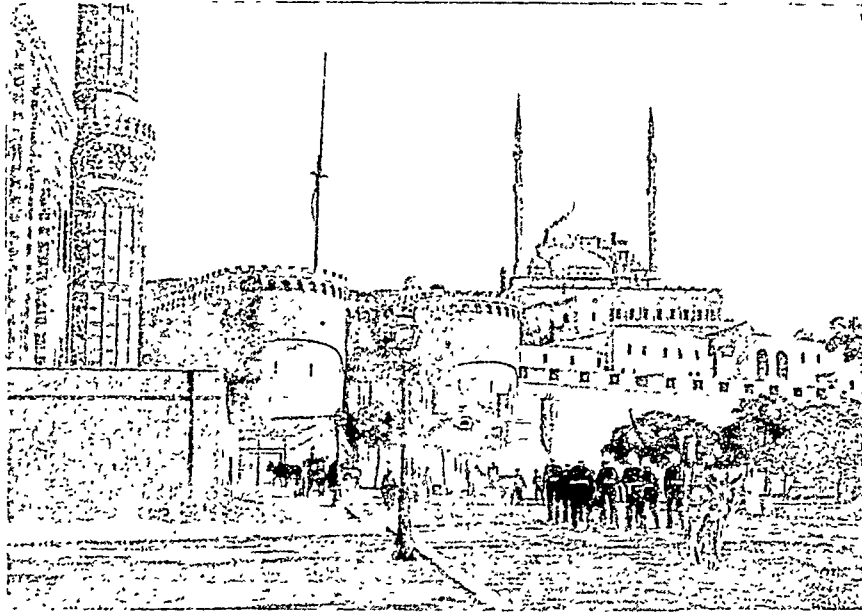
सिटेडलका प्रवेश-द्वार

यूसुफका कुआं देखने गये जहां जलेखाने उन्हें कैद किया था। यह एक बहुत गहरा कुआं है और घूमकर चक्करदार रास्ता इसमें उतर जानेका है किन्तु हमलोग बहुत नीचे नहीं उतरे। देखनेसे यह पुराना तो अवश्य मालूम होता है किन्तु कितना पुराना है यह नहीं कहा जा सकता, सम्भवतः किलेमें पानीके लिये यह गहरा कूप

खोदा गया होगा । यहांसे सुक्कत्तम पहाड़ी भी देख पड़ती है जहांपर कहा जाता है कि नूहकी किश्ती बड़े तूफानमें खड़ी थी । यहांपर अनेक और चीजें भी देखनेकी हैं जिन्हें समय न रहनेके कारण हमलोग न देख सके ।

मिश्री नाच ।

आजकी पूर्व रात्रिमें हमलोग मिश्र देशीय नाच देखने गये थे। यह एक विलक्षण जगह है। मैं यह नहीं कह सकता कि ऐसी जगह हमारे देशमें है ही नहीं, किन्तु मैंने नहीं देखी है । यह काहिरः की दालमंडीमें एक बड़ा कमरा है जिसे 'म्यूज़िक हाल' कहते हैं । यहांपर कई एक ऐसे कमरे हैं, किन्तु हमलोग अरबी कमरेमें गये थे, यूनानी आदिमें नहीं । यह कमरा खूब सजा था। एक ओर रंगमंच था जिसपर एक वेश्या, तीन समाजी तथा और लोग बैठे थे । हॉल दर्शकोंसे भरा था। वेश्या कुछ गा रही थी और खुशामदें कराती जाती थी। बीच बीचमें बहरकी आवाज बुलन्द होती थी। लोग टोपी और छड़ी फेंकते थे जिन्हें वह बटोर कर रखती जाती थी। हालमें टेबुल लगे थे जिनके चारों ओर मित्रगण बैठकर कहवा, शराब तथा फल आदि खा पी रहे थे और बात चीत तथा हँसी-मज़ाक भी करते जाते थे ।

यहाँ अन्य बहुतसी वेश्यायें थीं जो एक एक गोलमें जा बैठती थीं और अपने हाव-भाव तथा बातचीतसे लोगोंको रिझाना चाहती थीं । यहाँ जितनी अश्लीलता थी उसका बयान करना कठिन है ।

थोड़ी देरके बाद नाच शुरू हुआ। नाचनेवाली एक युवती स्त्री घंघरा के ऊपर एक कोपकी कुर्ती और चोली पहिने हुई थी। पहिनावा इस प्रकारका था कि कमरके ऊपरका भाग खुला ही कहना चाहिये । हाथोंमें मंजीरा था। नाच भी विलक्षण था। कभी पेट, कभी छाती, कभी कमर हिला हिलाकर विचित्र प्रकारसे वह नाचती रही। यह विलक्षण नृत्य देखकर हम लोग लौट आये ।

मिश्रका नाच

[पृ० ३२]

खोदा गया होगा। यहांसे सुश्कत्तम पहाड़ी भी देख पड़ती है जहांपर कहा जाता है कि नूहकी किश्ती बड़े तूफानमें खड़ी थी। यहांपर अनेक और चीजें भी देखनेकी हैं जिन्हें समय न रहनेके कारण हमलोग न देख सके।

मिश्री नाच।

आजकी पूर्व रात्रिमें हमलोग मिश्र देशीय नाच देखने गये थे। यह एक विलक्षण जगह है। मैं यह नहीं कह सकता कि ऐसी जगह हमारे देशमें है ही नहीं, किन्तु मैंने नहीं देखी है। यह काहिरः की दालमंडीमें एक बड़ा कमरा है जिसे 'म्यूज़िक हाल' कहते हैं। यहांपर कई एक ऐसे कमरे हैं, किन्तु हमलोग अरबी कमरेमें गये थे, यूनानी आदिमें नहीं। यह कमरा खूब सजा था। एक ओर रंगमंच था जिसपर एक वेश्या, तीन समाजी तथा और लोग बैठे थे। हॉल दर्शकोंसे भरा था। वेश्या कुछ गा रही थी और खुशामदें कराती जाती थी। बीच बीचमें बहरकी आवाज बुलन्द होती थी। लोग टोपी और छड़ी फेंकते थे जिन्हें वह बटोर कर रखती जाती थी। हालमें टेबुल लगे थे जिनके चारों ओर मित्रगण बैठकर कहवा, शराब तथा फल आदि खा पी रहे थे और बात चीत तथा हँसी-मज़ाक भी करते जाते थे।

यहाँ अन्य बहुतसी वेश्यायें थीं जो एक एक गोलमें जा बैठती थीं और अपने हाव-भाव तथा बातचीतसे लोगोंको रिझाना चाहती थीं। यहाँ जितनी अश्लीलता थी उसका बयान करना कठिन है।

थोड़ी देरके बाद नाच शुरू हुआ। नाचनेवाली एक युवती स्त्री घांघरा के ऊपर एक कोपकी कुर्ती और चोली पहिने हुई थी। पहिनावा इस प्रकारका था कि कमरके ऊपरका भाग खुला ही कहना चाहिये। हाथोंमें मंजीरा था। नाच भी विलक्षण था। कभी पेट, कभी छाती, कभी कमर हिला हिलाकर विचित्र प्रकारसे वह नाचती रही। यह विलक्षण नृत्य देखकर हम लोग लौट आये।

मिश्रका नाच

[पृ० ३२]

छठवां परिच्छेद ।

लुकसरकी यात्रा

आज प्रातःकाल हम लोग लुकसरके लिये रवाना हुए। यहींपर मिश्रके पुराने विभवके चिन्ह सुरक्षित हैं। जह तक निगाह जाती थी दोनों पहाडोंके बीचमें पीले पीले गेहूंके खेत ही देख पड़ते थे या लूसन घाससे भरे मैदान। जगह जगहपर नहरसे पानी उठानेके लिये ढेंकुली लगी थी,

पानी निकालनेकी ढेंकुली

कहीं कहीं जहांपर वालुकाराशि मिल जाती थी वहांपर मन्दार व टेटीके पौधे

भी देख पड़ते थे। यहाँकी करैली मिट्टी और खेतोंकी उपज देख आंखोंको बड़ा आनन्द होता था। देखते देखते एक बज गया। अब हम लोगोंने खानेका विचार किया। चेलाराम महोदयके मुनीम ज्ञानचन्द्र महोदयने हमारे भोजनकी सामग्री अपने घरसे भेजी थी। आज पांच दिनोंके बाद अपने देशकी रोटी, आलू और बैगनकी तरकारी खानेको मिली। बड़ी प्रसन्नतासे हम लोग भोजन करके सो रहे। चलते चलते रात्रिके दस बजे हम लुकसर पहुंचे, रात्रिमें विण्टर पैलेस होटलमें विश्राम किया।

आज प्रातःकाल हम लोग करनकमें अमन देवताका विशाल मंदिर देखने गये। इसकी विशालताका बयान करना मेरी शक्तिके बाहर है। इसका सम्पूर्ण
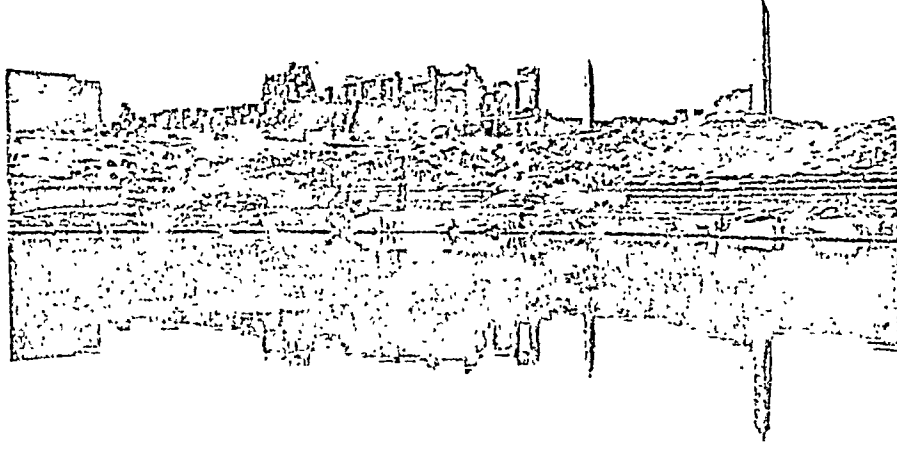
अमन देवताका विशाल मन्दिर और पवित्र झील

हाल जाननेके लिये बडेकरकी 'ईजिप्ट' नामक पुस्तक पढ़नी चाहिये जिसके २६५ वें पन्नेसे इसका वर्णन प्रारम्भ होता है। यह करीब एक मीलके घेरेमें है और इसका पहिला दर्वाज़ा अब भी ३७० फुट चौड़ा है जिसकी दीवारें ४९ फुट मोटी और १४२ फुट ऊँची पत्थरकी बनी हैं। इसके निकट आनेका रास्ता बड़े चोड़े पत्थरका है और रास्तेके दोनों ओर भेड़ोंकी विशाल मूर्तियां बनी हैं। भीतर एक फरलांग (२२० गज) तक रास्ता चला गया है जिसके दोनों ओर बहुतसे छोटे बड़े मन्दिर, दालान, कमरे, कोठरियां मूर्तियां और खम्भे हैं। बहुतसे भग्न मन्दिरोंको देखता हुआ दर्शक जब प्रधान जगमोहनमें पहुंचता है तो सभा-मण्डपकी विशालता उसको चकित कर देती है। इसका नाम 'हाइपोसटाइल हाल' है। यह प्राचीन संसारकी सात विचित्र वस्तुओंमेंसे एक है। इस मण्डपकी चौड़ाई ३३८ फुट और लम्बाई १७० फुट है। इसका क्षेत्रफल ६००० वर्ग गज़
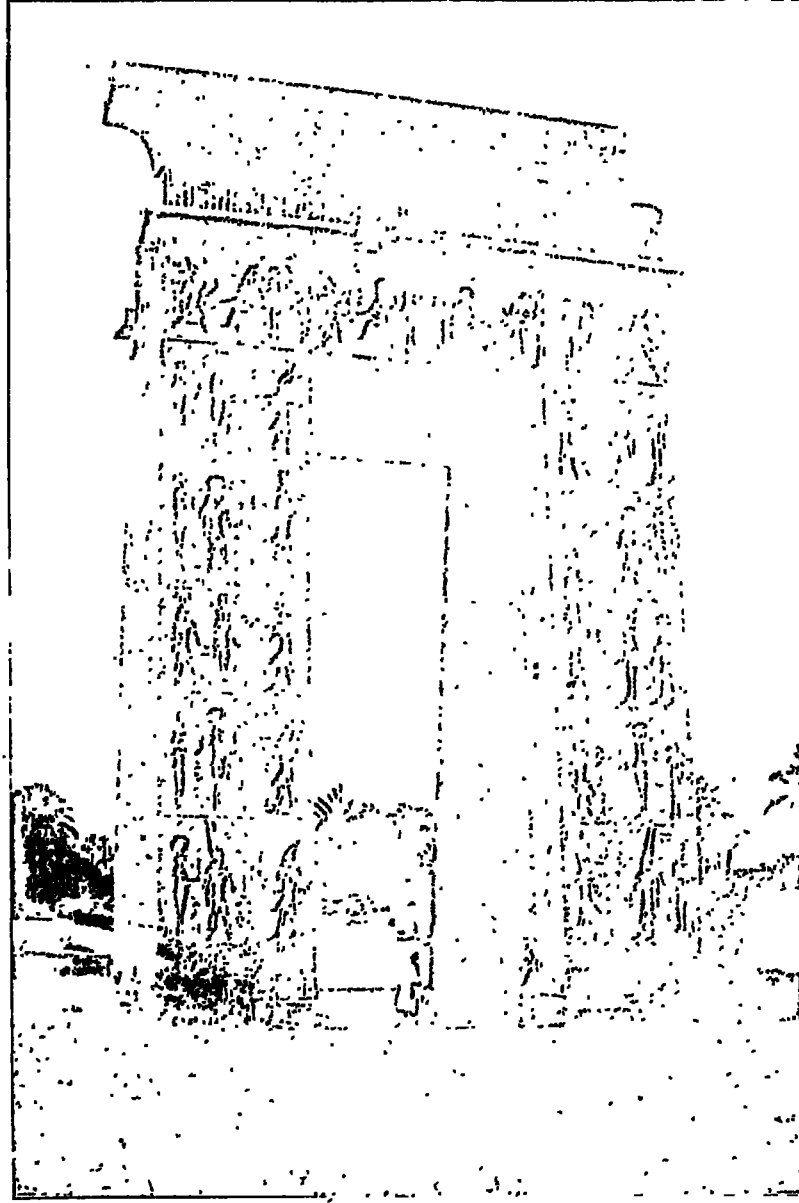
करनकमें विशालद्वार (पृष्ठ ३४)

हाई पोस्टाइल हाल (पृष्ठ ३४)
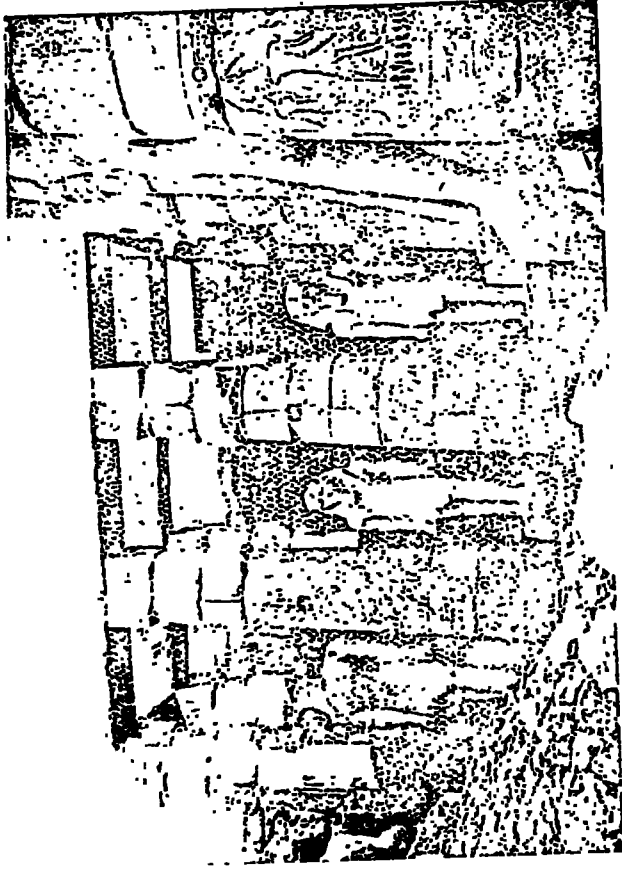
लुक्सरमें रामसेसका दरबार (पृष्ठ . ३५)
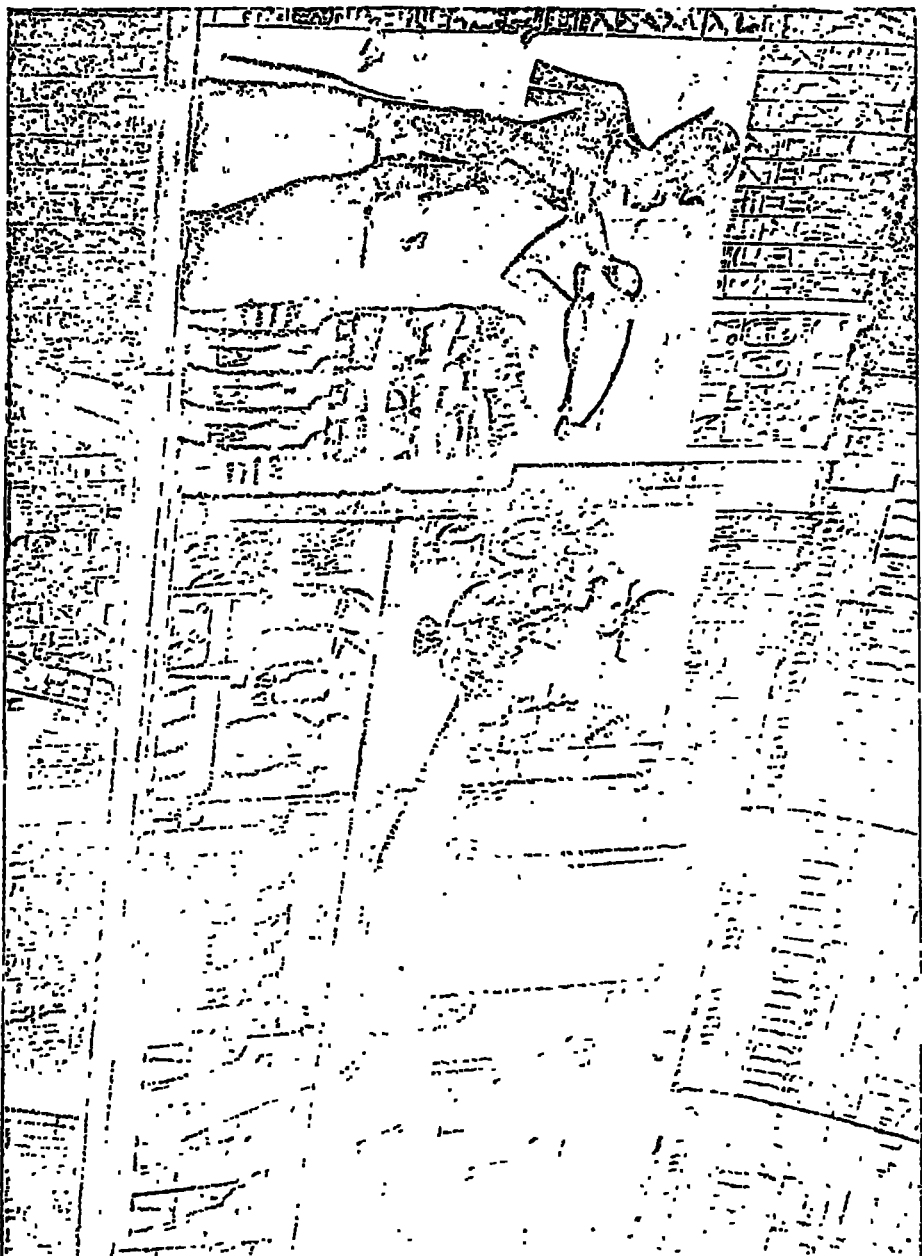
अबीडासमें दीवारपर चित्रकारी, सेटीकी समाधि (पृष्ठ ३५)

है। इसकी विशाल छत १३४ खम्भोंपर खड़ी है जो १६ कतारोंमें है। इसकी बीच-की दो कतारोंके खम्भे और खम्भोंसे ऊंचे हैं। ये खंभे एक पत्थरके नहीं हैं किन्तु अर्द्ध परिधिके आकार के ३॥ फुट मोटे और ६॥ फुट लम्बे पत्थरोंसे बने हैं। बीचकी दो कतारोंके खम्भे ३३ फुटसे अधिक मोटे हैं, छः आदमी हाथ फैलाकर खड़े हों तब उनकी गोदमें ये खम्भे आ सकते हैं। उनकी ऊँचाई ६९ फुट है, बाकी १२२ खम्भे ४२॥ फुट ऊँचे और २७॥ फुट मोटे हैं।

इन खम्भों और दीवारोंपर अनेक प्रकारके चित्र बने हैं। कहीं खेती हो रही है, कहीं गाय बैल हैं, कहीं दूध दुहा जा रहा है, कहीं भोजन बनता है, कहीं जहाज बन रहा है, कहीं दरया पार किया जा रहा है, कहीं देवाराधना हो रही है, कहीं बलि चढ़ रही है कहीं मल्लयुद्ध हो रहा हैं, कहीं तीर बर्छेसे वैरियोंका मुकाबला हो रहा है, कहीं तलवार चल रही हैं, कहीं राज्याभिषेक हो रहा है, कहीं पालकी, कहीं रथ, कहीं घोड़े, कहीं ऊंट हैं, कहीं कहीं नहरपर पुल बंधा है, लौटती हुई सेनाकी अगवानीके लिये पुरोहित लोग खड़े हैं, इत्यादि तरह तरहकी चित्रकारी है।

थोड़ेमें यों कहना उचित है कि मनुष्यके जीवनमें जिन जिन वस्तुओंकी आव-श्यकता होती है या जो जो घटनाएँ होती हैं सबके चित्र यहां हैं। हम लोग चार घंटे इधरसे उधर घूम घूम कर देखते रहे। अन्तमें थककर घर चले आये। ऐसी विशाल पुरातन सामग्री कहीं और देखनेको मिलेगी या नहीं इसमें सन्देह है। यह मन्दिर ३५०० वर्षोंका पुराना है। यह फरऊन वंशके रामसे द्वितीयका बनवाया हुआ है।

सायंकाल लुकसरके मन्दिरको देखने रहे। वह भी इसी प्रकारका है किन्तु इससे छोटा। आजका दिन इन्हीं मन्दिरोंकी सैरमें समाप्त हो गया।

❀ ❀ ❀

पुरानी कब्रें।

आज प्रातःकाल हम लोग नील नदीके वाम तटपर फरऊनोंकी कब्रें देखने चले। भोजनकी सामग्री साथमें ले ली थी। नीलका वाम तट कब्रोंसे भरा है। नीलके परे किनारेके पहाड़का दामन बर्रोंके छत्तेकी भांति कब्रोंसे भरा हुआ है। किन्तु अभी सब कब्र साफ नहीं हुई हैं।

ये कब्रें विक्रमके १४८३ वर्षपूर्वसे फरऊनोंकी १८ वी वंशावलीसे बननी प्रारम्भ हुई थीं। हम लोगोंने इनमेंसे दोको देखा। एक "रामसे तृतीय" की और दूसरी "अमनोफिस" की।

यहां पहुंचनेका रास्ता बड़ा खराब है। पहिले एक मील बालू पार करनी होती है, फिर लीबिया पहाड़की घाटीमेंसे होकर उसकी दूसरी ओर जाना पड़ता है। यह बिलकुल पथरीला रास्ता है। दो चार वर्ष पूर्व सिवा गदहेके दूसरी सवारीकी

गुज़र यहां नहीं थी किन्तु अब वालूगाड़ी† चली जाती है।

ये कब्रें पहाड़के परले दामनमें इस कारण बनायी गयी थीं जिससे यहाँ कोई जा न सके। इन कब्रोंके बनानेके दो प्रधान कारण थे, एकतो बनाने वालोंकी यह धारणा कि मुर्दोंको बहुतसी चीज़ोंकी आवश्यकता पड़ती है और शरीरको नाश होनेसे बचाना उचित है, दूसरे यह भी खयाल था कि कोई उनका पता न जान ले। इन्हीं कारणोंसे ये इतनी उत्तम बनायी जानेपर भी इस प्रकार छिपायी गयी थीं।

हम लोग रामसे तृतीयकी कब्र देखने चले। पहाड़के भीतर कोई २५ गज़ चले गये। (यह जान लेना चाहिये कि यह सब मिट्टीसे ढँका था। इसका पता
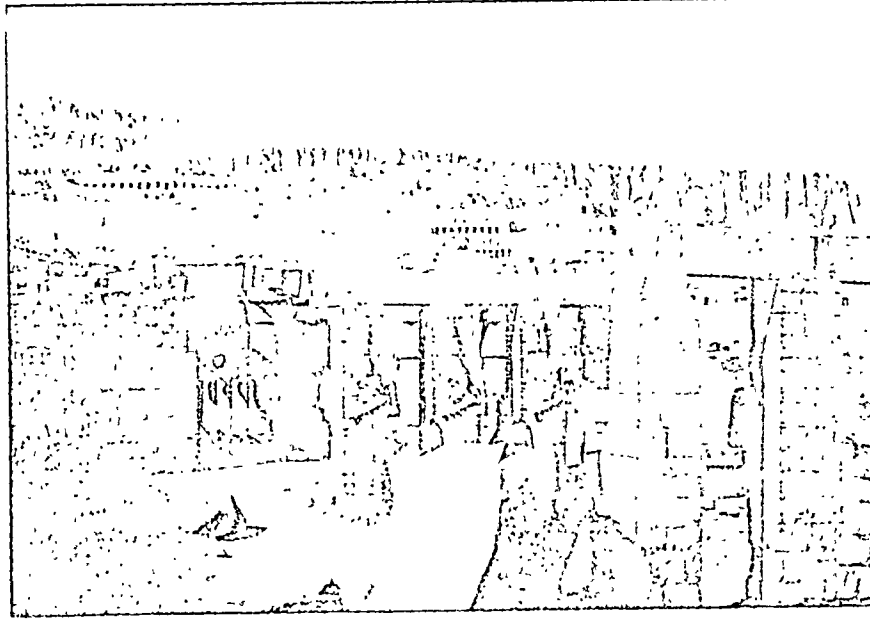
रामसे तृतीयकी कब्र

कैसे चला यह खोजनेवालोंकी तारीफ है। पता तो इन सबका मिश्रियोंनेही लगाया है किन्तु ये विख्यात हैं विदेशियोंके नामसे! हमारे देशमें भी ऐसा ही होता है। इसमें कोई चिन्ताकी बात नहीं है।) इसके उपरान्त यहाँ एक पत्थर-की चौखट और बाजूका दरवाज़ा मिलता है। अब आप उसके भीतर घुसिये, बीस कदमके बाद दो कोठरियां मिलती हैं। फिर आगे बढ़िये, प्रायः ५० कदमके बाद फिर आठ कोठरियां मिलती हैं। फिर आगे बढ़िये तो रास्ता बन्द है। अब यहाँसे पीछे लौटिये, थोड़ी दूर आनेके बाद दाहिनी ओर रास्ता है। फिर आगे जाकर बाईं ओर घूमिये और आगे चलिये तो एक बड़ा कमरा मिलता है। इसके आगे फिर उससे भी बड़ा

† वालूगाड़ी मामूली ४ पहियेकी गाड़ी होती है किन्तु पहियोंमें ६, ७ इंच चौड़ी हाल चढ़ी रहती है जिसके कारण वह बालूमें कम धसती है। यह दो घोड़ोंसे खींची जाती है। हम लोग इसी पर चढ़ कर गये थे।
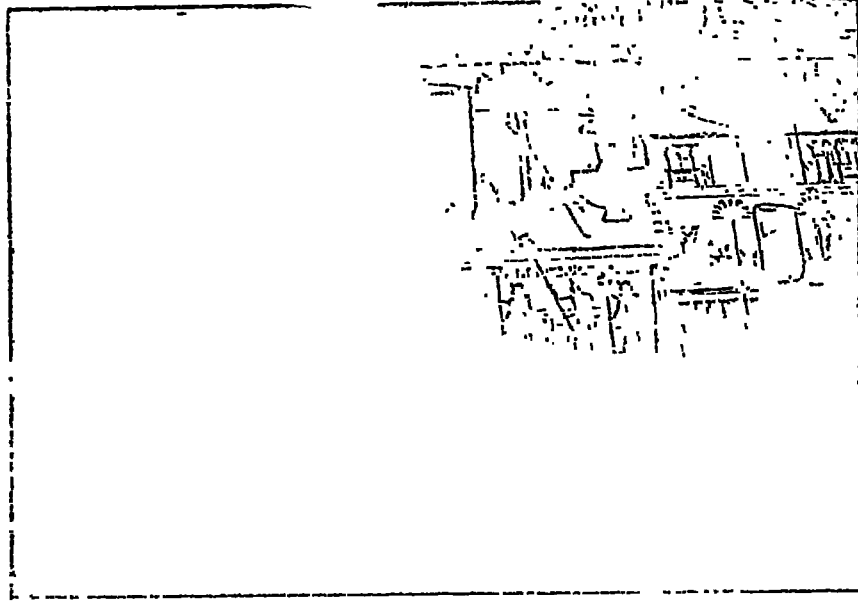
अबीडासमें अमन देवताका मंदिर (पृष्ठ ३५)
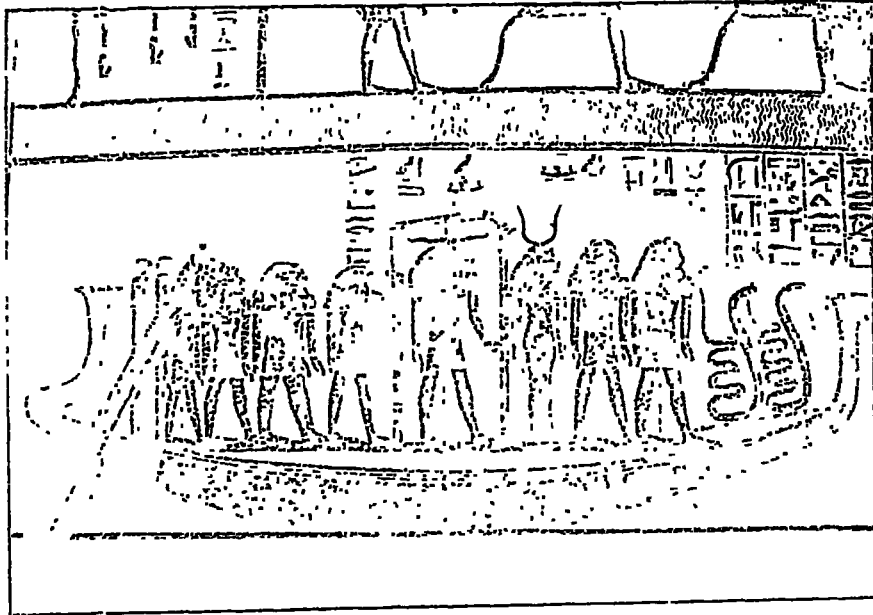
थीब्जके राजाओंकी कब्रोंमें भित्ति चित्र (पृष्ठ ३५)

कमरा और बगलमें कोठरी, फिर आगे दो कमरे, इसके बाद बड़ा कमरा जिसमें चार बड़े खम्भे हैं, इसके पीछे तीन कोठरियाँ हैं जिनमें कब्रें हैं। यहां चार और कोठरियाँ हैं।

इन ऊपर कहे हुए सब कमरोंमें तसवीरें हैं, किन्तु खम्भे वाली कोठरी रंगीन तसवीरोंसे भरी है। मालूम होता है कि चित्रकारने अभी काम समाप्त किया है। यहाँपर भी विलक्षण वलक्षण तसवीरें हैं। छत आकाशकी भाँति नीली बनी है और उसपर तारोंका आकार सफेद बनाया गया है। खम्भोंपर राजा पूजा करते देख पड़ते हैं। सूर्यकी तसवीर तथा रथ और नाव भी बनी है और पुराने मिश्री अक्षरोंमें इतिहासकी तथा अन्य बातें भी लिखी हैं। इस आखिरी कोठरीमें रामसे तृतीयका शव रखा है। यह एक प्रकारके मसालेसे ठीक किया गया है। हम लोग निकट जाकर इसे न देख सके। बगलकी कोठरीमें तीन शव और रक्खे हैं। दोके बड़े बड़े बाल हैं जिनसे वे स्त्रियोंसे ज्ञात होते हैं। इन्हें हमलोग निकटसे देख सके। इनका पेट काटकर अंतड़ो इत्यादि निकाल कर अलग बर्तनोंमें रक्खी हैं। इन शवोंको "ममी" कहते हैं। ये इस प्रकारकी औषधियोंसे ठीक किये गये थे कि आज ३—३॥ सहस्र वर्षोंमें भी ये सड़े नहीं। हड्डियाँ गली नहीं, अभीतक चमड़ी और बाल भी मौजूद हैं। बहुत यत्न करनेपर भी इस दवाका पता नहीं लगा।

यहांसे हम लोग "देरल बहरी" का मन्दिर देखने चले। पहाड़को घूम कर इस तरफ़ आये, तब मन्दिरके पास पहुंचे। यह मन्दिर तीन खण्डोंमें पहाड़ काटकर
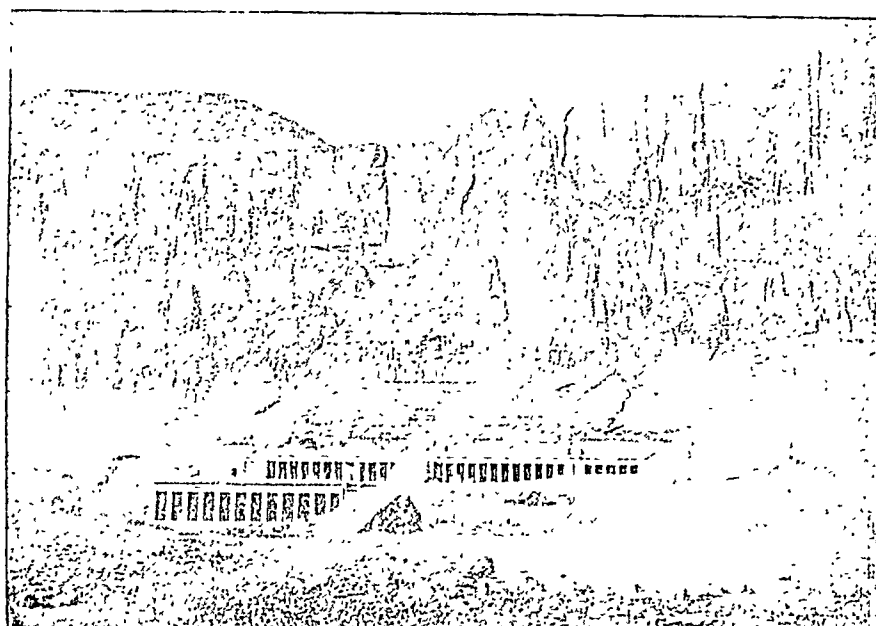
देरल बहरीका मन्दिर

बना है। इसे "हतसेपसूट" रानीने जो "थतमोसिम ३" की भगिनी और पत्नी भी थी, बनवाया था। यह मन्दिर अमन देवताका था। इसमें बहुतसी तसवीरें देखने

योग्य हैं। कहा जाता है कि रानीने जन्मभर जल नहीं पिया था। वह गोस्तनसे गोदुग्ध पीती थी। उसकी भी मूर्ति यहां बनी है। यह सब देखते भालते हमलोग अत्यन्त थक गये और विश्रामभवनमें आ भोजन करके विश्राम किया। यहांसे हम लोग फिर होटलमें लौट आये।

❀ ❀ ❀

असुवान नगर।

आज सबेरेकी गाड़ीसे "असुवान" चले। यहां मध्याह्नोपरान्त पहुंचे। यह जगह नील नदीपर है और बड़ी मनोहर है। यों कहना चाहिये कि यह मिश्रका अन्तिम स्थान है। यहांपर प्रायः अरब और लिबिया पहाड़ी मिल जाती हैं और इसीके बीचसे होकर नील नदी आयी है।

हमारे होटलके सामने अलफैण्टाइन पहाड़ी नदीके बीचमें है। उसपर सुन्दर सुन्दर गृह बने हैं। हम लोग उसकी प्रदक्षिणा करने चले। यहां नदीमें बड़े सुन्दर सुन्दर काले पहाड़ोंके अनेक ढोके जलके बाहर निकले हुए नदीकी शोभा बढ़ाते हैं और साथ ही साथ नदीमें चलना कठिन और भयप्रद बनाते हैं। जबतक सन्ध्या नहीं हुई थी, हम लोग आनन्द मनाते चले गये किन्तु सूर्य डूब जानेके उपरान्त हवा अत्यन्त तेजीसे बहने लगी और हमको भय लगने लगा। निदान हम लोग नावपरका पाल उतरवा कर डांड़ेपर फिर पीछे लौट आये।

होटलसे इस छोटेसे द्वीपकी शोभा देखने ही योग्य है। सारा द्वीप खजूरके पेड़ोंसे हरा-भरा है। यहांपर नीलके जलके चढ़ाव-उतरावके नापनेका बहुत पुराना यन्त्र बना है। इसके पीछे दरिया पार लिबियाका पहाड़ बालुकाराशिसे भरा है। जहांतक दृष्टि जाती है स्वर्णरेणुका ही दीख पड़ती है। प्रातःकाल जब सूर्य भगवान्की किरणें इसपर पड़ती हैं तब तो इस प्रकार चमकती हैं कि घण्टों वहांसे हटनेको जी नहीं चाहता। यहांका जलवायु क्षयरोगवालोंके लिये बड़ा उपयोगी है। यूरोपसे बहुत रोगी यहां आते हैं।

आज प्रातःकाल हम लोग कटरैक्ट देखने चले किन्तु रेल छूट जानेके कारण वहां इस समय न जा सके। अब हम लोग ग्रेनाइट पत्थरकी खान देखने चले जहांसे बड़े बड़े औबलिस्क, समाधिकुण्ड तथा मूर्तियोंके लिये पत्थर आते थे। यह वही पत्थर है जिसका सारनाथवाला सिंह-स्तम्भ है। यहांसे ही सब स्थानोंके लिये मिश्रमें ये पत्थर गये हैं। यहांपर एक औबलिस्क अधूरा बना पड़ा है। न जाने क्यों यह यहांपर छोड़ दिया गया है। यह ९२ फुट लम्बा और १०॥ फुट चौड़ा है। यहां जगह जगहपर यह दिखायी पड़ता है कि पुराने समयमें यहांपर बहुत कार्य हुए हैं।

यहांसे हम लोग संगमरमरकी खान देखने गये। यह भी बड़ी विशाल और सुन्दर थी। सारे मिश्र देशमें यहींसे संगमरमर जाता है, यहांका संगमरमर उत्तम जातिका है जैसा हमारे ताज†में लगा है।

† ताजमहल

पृथिवी प्रदक्षिणा

नील नदीपर असुवान नगरका दृश्य (पृष्ठ ३८

अलफैण्टाइन पहाड़ी युक्त द्वीप (पृष्ठ ३८)
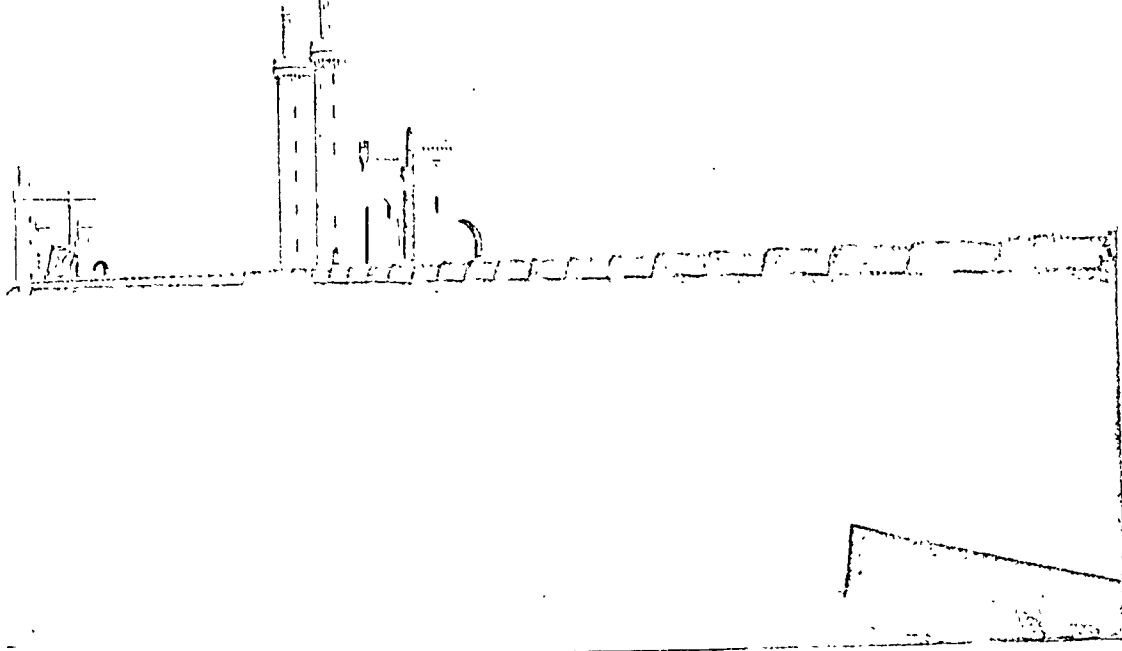
नील नदीका बांध (पृष्ठ ३९)
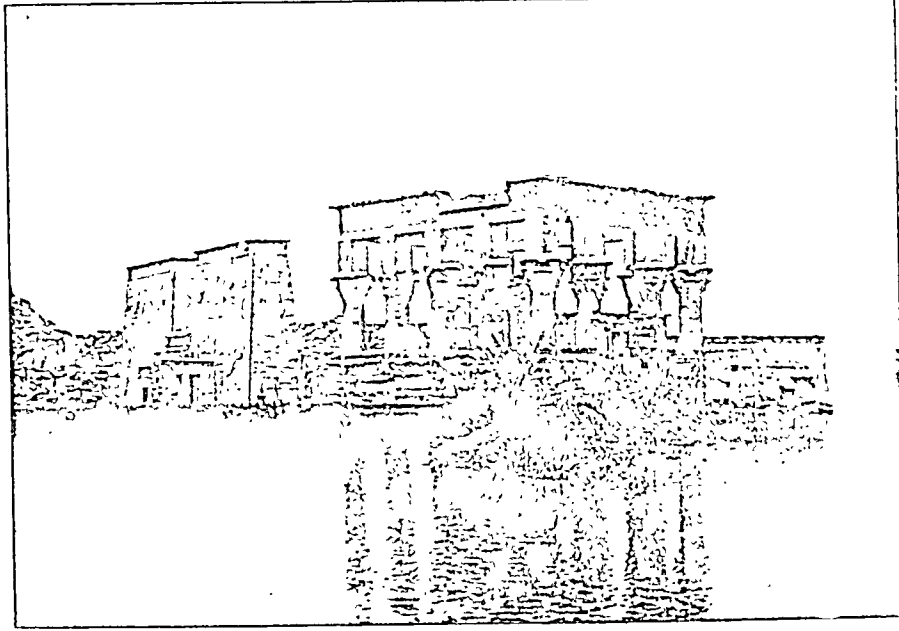
फाइलीका मन्दिर (पृष्ठ ३९)

रास्तेमें हमें विशरीण ग्राम मिला जिसमें पुराने मिश्री लोग, जो फरऊनके वंशज हैं, रहते हैं। ये सांवले और बड़े हट्टे-कट्टे हैं। इनके बाल लम्बे और विचित्र प्रकारके घुंघराले हैं।

विशरीण ग्रामके निवासी

नील नदीका बाँध।

यहांसे लौटनेके उपरान्त हम लोग मध्याह्नकी गाड़ीसे फाईलीका मन्दिर और नील नदीका बांध देखने चले। आधे घण्टेमें हम लोग शेलाल स्टेशनपर पहुंच गये, यहांसे नावपर चढ़कर रवाना हुए। बीचमें अलकस्क टापू व मन्दिर मिला। इसे देखनेके लिये हमलोग नहीं उतरे। यह भी और मन्दिरोंकी भांति है। यहांसे सम्बन्ध रखनेवाली, प्रेमियोंकी एक कथा है। जिन्हें वह पढ़नी हो वे बडेकरके मिश्रका ३६४ वां पृष्ठ देखें। यहांसे होते हुए हमलोग नीलके बांधपर पहुंच गये। यह बांध संसारमें सबसे बडा बांध है। बांध बँधनेके पूर्व नील नदीका पानी गर्मियोंमें सूख जाता था, इससे कृषिको नुकसान पहुंचता था। इस कारण बांध संवत् १९५४-१९५८में बांधा गया। यह असुवानका बांध बहुत बड़ा है। इसके बननेके बाद गर्मियोंमें पांच लाख एकड़

जमीन अधिक जोती बोयी जाने लगी और इससे करीब २२॥ करोड़ रुपये फायदा बढ़ गया। यह बांध ग्रेनाइटका बना है और नदीके आरपार २१५० गज़ लम्बा है। पहिले यह १३० फुट नींवसे ऊंचा बना था। इसकी मोटाई ऊपर २३ फुट थी और नींवके पास ९८ फुट। संवत् १९६३–६८ में इसकी ऊँचाई और मोटाई १६। फुट बढ़ा दी गयी। इस कारण यहां अब २४१०००००० घन मीटर (पहिले ९८०००००० घन मीटर था) जल रुका रहता है।

जब यह झील भर जाती है तब इसकी गहराई ८८ फीट होती है। इसमें १८० दरवाज़े हैं, १४० नीचे और ४० ऊपर। ऊपरवालोंसे ज़रूरतसे अधिक पानी बह जाता है। इसके निर्माणमें ७१३५५००० रुपये व्यय हुआ है। इसके पश्चिम किनारेपर एक नहर है जिसके द्वारा नीचेसे ऊपर नाव इत्यादि जा सकती है। इसमें चार फाटक लगे हैं जिनके द्वारा पानी घटा बढ़ाकर नाव चढ़ायी उतारी जाती है। नीचे और ऊपरकी सतहमें ७५ फुटका फर्क है। अनुमान कीजिये कि नावको ऊपरसे नीचे जाना है तो पहिले पहिला दरवाज़ा खोला जाता है और नाव भीतर कर ली जाती है। अब यह दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है और दूसरा दरवाज़ा धीरे धीरे खोला जाता है। जब पानीकी सतह घट कर भीतर बाहर बराबर हो जाती है तब दरवाज़ा पूरा खोलकर नाव बाहर निकाल दी जाती है। इसी प्रकार चारों दरवाजे लांघने पड़ते हैं। हम लोगोंने भी एक दरवाजा इसी प्रकार लांघा था।

यहांसे असुवानतककी यात्रा हमलोगोंने नावपर की। नदीके दोनों किनारोंकी शोभाका वर्णन करनेके लिये कविकी लेखनीकी आवश्यकता है। कहीं ऊंचे पहाड़, कहीं स्वर्ण भूषित बालुकाराशि, कहीं वकपिक, कहीं सारस, कहीं पनडुब्बी दिखायी दी। सारांश तीन घण्टे तक हमलोग प्रकृतिकी शोभा देखनेमें ही मग्न रहे।

धीरे धीरे हमलोग असुवान पहुंचे और नित्यक्रियासे निपट नींदमें निमग्न होगये।

७

असुवानकी स्त्रियां

(पृष्ठ ४०)

पृथिवी प्रदक्षिणा

नील नदीकी शोभा (नौकानरणका दृश्य) (पृष्ठ ४०)

सातवाँ परिच्छेद ।

काहिराकी लौटती यात्रा ।

प्रातः समीरके लगनेसे हमारी निद्राका भङ्ग हुआ। हम लोग हाथ मुँह धो नित्यक्रियासे निपट काहिरः लौटनेका प्रबन्ध करने लगे। कुछ भोजन कर लिया, फिर कुछ सामान साथमें लेकर यहांसे प्रस्थान किया। दिनभर उसी पवित्र नील नदीके किनारे किनारे चले जानेके उपरान्त सन्ध्याके निकट हम लोग लुकसर पहुँचे। यहाँ स्टेशनपर ही नित्यक्रिया-से निपट कर और कुछ भोजन कर रेलपर सवार हुए और रेल हमें ले भागी।

जिस रास्तेसे हमारी रेल जा रही थी उसे मिस्रकी घाटी कहना चाहिये। हम सीधे उत्तरकी ओर जा रहे थे। हमारे दक्षिण ओर अरबकी और बाईं ओर लूबियाकी पहाड़ियाँ थीं। सन्ध्या हो गयी थी किन्तु लूबिया पहाड़ीके पीछेकी प्रकाण्ड बालुकाराशिपर अभी सूर्यकी सुनहरी रश्मि पड़ रही थी। सूर्य हमारी आँखोंसे ओझल था। लूबिया पहाड़ीके पीछेकी मरुभूमिको भी हम नहीं देख सकते थे किन्तु सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे जो आभा सुन्दर सुनहली बालूसे टक्कर खा पश्चिमके आकाशको प्रकाशित कर रही थी वह अकथनीय थी। रेल-गाड़ीका बेतहाशा दौड़ते चले जाना, सामने सुन्दर हरेभरे खेतोंका दिखना, उनके बाद झाऊके पेड़, खेतके पहिले नीलके श्वेतजलकी रेखा, झाऊके पेड़ोंके उप-रान्त ऊँचे ऊँचे खजूरके पेड़, उनके पीछे पहाड़, पहाड़के इस ओर कमबेशी अन्धकार किन्तु पहाड़ोंके पीछे गगनमण्डल सुनहले रंगसे रँगा हुआ—यह दृश्य ऐसी शोभा दे रहा था कि चित्त खींचे लेता था।

थोड़ी देर तक हम यह शोभा देखते रहे और विचार करते रहे कि हे राम यदि हम कवि या चित्रकार होते तो यह हृदयग्राही दृश्य खींचकर अपने भाइयोंके चित्ताकर्षणका यत्न करते। पहाड़के ऊपर नज़र जाते ही क्या देखते हैं कि निशा-देवीने श्वेतकिरीट धारण किया। सुईके ऐसे पतले द्वितीयाके चन्द्रमाका दर्शन हुआ किन्तु मैंने कभी अपने देशमें इतना पतला और सुन्दर चाँद नहीं देखा था। मैंने अपना पञ्चाङ्ग निकाला तो देखा कि आज वैशाख शुक्ल प्रतिपदा है। चकित हुआ कि प्रतिपदाको चन्द्रदर्शन कैसे सम्भव हुआ! मैं इसी फिक्रमें डूबा था कि मेरे साथी पण्डितवर्गने मेरी शङ्काका समाधान किया कि आपके इस पञ्चाङ्गकी प्रतिपदाका समय ३ बजेके पूर्व हो गया। हम अपने देशसे बहुत पश्चिम आ गये इससे यह सम्भव है कि चाँदका दर्शन शीघ्र हुआ हो। मैं ज्योतिष नहीं जानता, इससे चुप हो रहा।

रात्रि अधिक हो गयी थी, भोजन कर हम सो गये। १२ बजे एक पुरुषने आकर जगाया और कुछ कहा। मैंने अरबी नहीं समझी किन्तु उसका यह अभिप्राय समझ गया कि वह टिकट देखना चाहता है। मैं कुड़बुड़ा उठा और फिर लेट गया किन्तु उसने नहीं माना। दो तीन दफेकी उठाबैठीके बाद मुझे अपना बेग खोलकर उसे

टिकट दिखाना ही पड़ा । इसी भांति रात्रिमें फिर एक बार टिकटके लिये उठाया गया । जिज्ञासासे मालूम हुआ कि यहाँ बिना टिकटके बहुत लोग चला करते हैं इसीलिये यह देखभाल है ।

एक हम्मामका अनुभव ।

प्रातःकाल काहिरः पहुंचे । अपने होटलमें आकर नित्यक्रियासे निपट हम हम्माममें नहानेके लिये घरसे बाहर हुए । हम्मामका वाह्य दृश्य भी ठीक नहीं था किन्तु मैंने उसे देखनेकी ही ठानी थी । मेरा कपड़ा उतारा गया, मुझे एक लाल लुंगी पहिननेको मिली, साथ ही एक बड़ी तौलिया ओढ़नेको और काठके पौले(देहाती खड़ाऊँ)पहिननेको दिये गये। मैं उस कमरेसे दूसरे कमरेमें पहुंचाया गया जिसका फर्श संगमरमरका था । छतमें लगे अनेक शीशोंके द्वारा प्रकाश आ रहा था । यह कमरा भाफसे भरा, गर्म था । पहिले तो मेरा दम घुटने लगा किन्तु साहस कर मैं दूसरे कमरेमें गया । यह और भी भाफसे गर्म था । यहाँपर अरबी नौकरोंने मुझसे कुछ कहा जिसका मतलब मैंने यह समझा कि एक कुण्डमें जो उस कमरेमें था कूद पड़ो । मैंने कई बार उससे पूछा कि उसमें कितना पानी है किन्तु न तो वह मेरी बात समझता था और न मैं उसकी । खैर, थोड़ी देर खड़े रहनेके उपरान्त मैंने उस कुण्डमें उतरनेकी तैयारी की । वह बड़ा गन्दा था तथापि मैं उसमें उतर ही पड़ा । पानी केवल छाती तक था। वहाँसे निकाल वह मुझे फिर पहिले कमरेमें लाया और एक चौतरेपर बैठाया जिसके बीचमें एक बड़े गर्म पानीका फुहारा चल रहा था । उसमेंसे पानी निकाल निकाल एक थैली द्वारा मेरा शरीर उसने धीरे २ रगड़ना प्रारम्भ किया और मैलकी बत्तियाँ निकाल निकाल मुझे दिखाने लगा । यदि उसी प्रकार वह देर तक मलता तो शायद सारे शरीरका मैल दूर हो जाता किन्तु ऐसा न कर वह मुझसे पूछने लगा कि तुम्हें छुरा चाहिये क्या ?' मैंने 'नहीं' का संकेत किया । तब वह मुझे दूसरे कमरेमें ले गया और चौतरेपर बैठा खूब साबुन लगा उसने किसी फलके बड़े खुज्जेसे मेरा वदन मलकर साफ कर दिया । उसने यह भी चाहा कि मैं बिलकुल वस्त्र त्याग दूं किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया,तब वह वहाँसे निकल गया और पर्दे गिराता गया । उस समय मैंने अच्छी तरह स्नान कर लिया किन्तु तबीयत शुद्ध नहीं हुई, कारण कि जिस कटोरेसे पानी उठाकर नहाना होता था वह अत्यन्त गन्दा था । वहाँसे जब मैं निकला तो पासके कई कमरोंमें अनेक पुरुषोंको बिलकुल नग्नावस्थामें नहाते देखा; इनको न तो आपसके लोगोंसे लज्जा थी और न मुझसे ही, खैर ।

अब कई तौलियोंसे लपेटकर मैं बाहर लाया गया और थोड़ी देर पड़े रहनेके उपरान्त कपड़े पहिननेकी आज्ञा मिली । मुझे बन्धु मुहम्मद शुकरी महाशयसे जो मेरे प्रदर्शक थे ज्ञात हुआ कि यहाँके लोग परदेशियोंको खूब लूटना चाहते हैं, इससे यहाँ बिना किसी उसी देशके अच्छे पुरुषके साथ आना उचित नहीं है । मेरी जान तो दस पियास्टर जो १॥) के बराबर हैं देकर छूट गयी, नहीं तो वह २०), २५) मुझसे ले लेता और कुछ छीन छान करता तो भी ताज्जुब न था ।
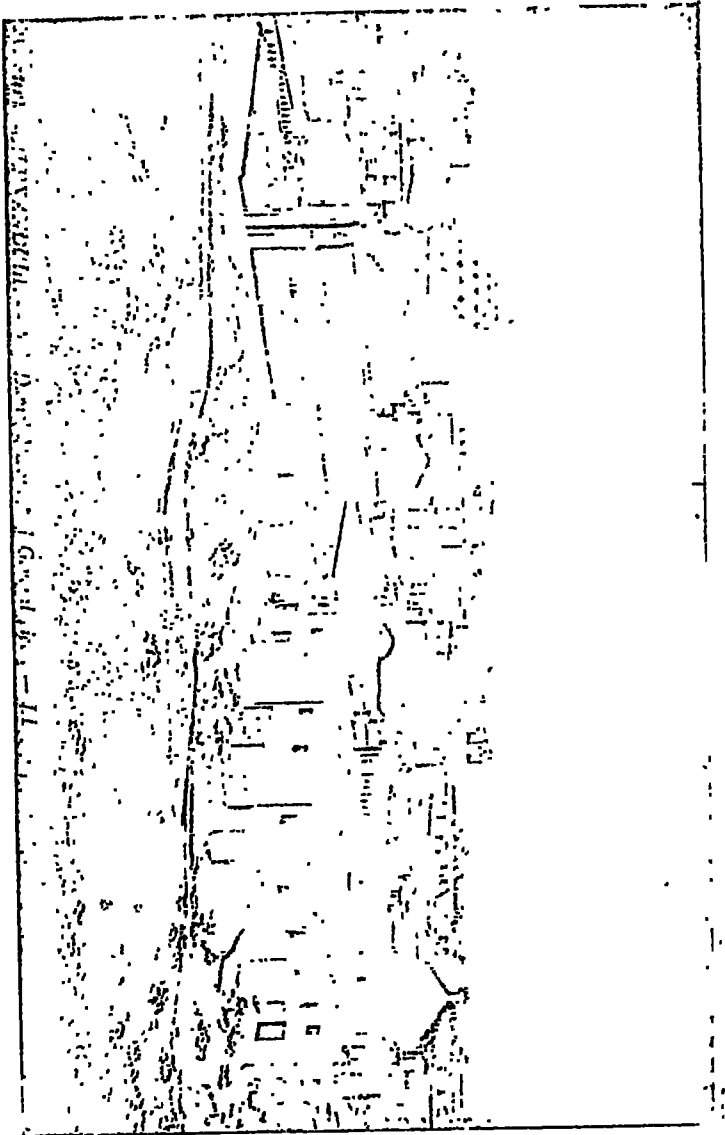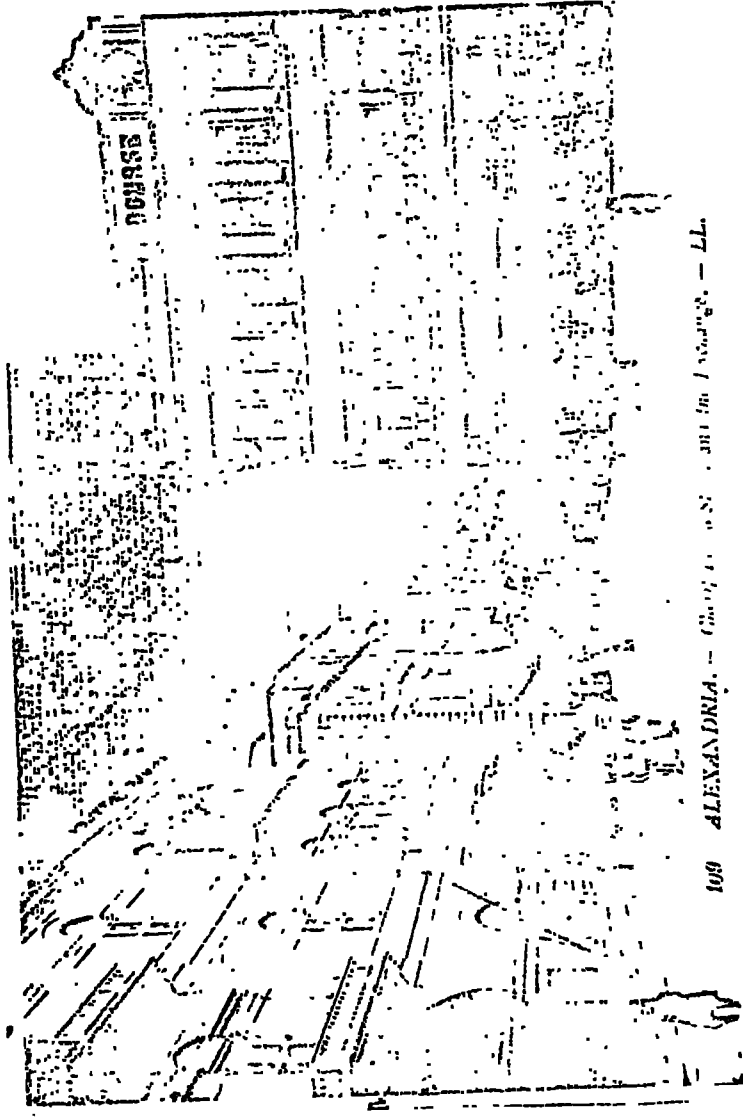
अलक्षांन्द्रयाम सीदी दानियल मसजिद (पृष्ठ ४८)

109 ALEXANDRIA. — ... — LL.

अलक्षेन्द्रियामें शरीफ पाशा सड़क (पृष्ठ ४८)

यहाँसे हम लोग एक पुस्तककी दूकानपर गये । मैंने वहाँसे बहुतसे चित्र और पुस्तकें इत्यादि मिश्र देशके सम्बन्धमें खरीदीं । और जो कुछ लेना देना था ले देकर मैं अपने देशी बन्धु चेताराम महोदयकी दूकानपर गया । वहाँसे होटलमें लौट आया और भोजन कर सुचित्त हुआ ।

सन्ध्याको मैं एक मिश्री बन्धुसे मिलने गया । आप यहाँके एक "बे" हैं और बड़े प्रतिष्ठित हैं । आप हम लोगोंसे बड़े उत्साहके साथ मिले और हमारी बड़ी खातिर की । आप भारतके बारेमें कुछ जानते हैं और अधिक जाननेकी बड़ी इच्छा रखते हैं । आप बड़े सज्जन हैं । मुझे आपसे यह जानकर दुःख हुआ कि हमारे देशी मुसलमान भाई भी मिश्रके बारेमें कुछ अधिक नहीं जानते, न मिश्री भाई ही जानते हैं कि भारतके मुसलमान बन्धु क्या कर रहे हैं । यहां तक कि उन लोगोंको अलीगढ़ कालेज और मुसलमान विश्वविद्यालयका भी वृत्तान्त नहीं मालूम है । आज रात्रिको और कुछ नहीं हुआ ।

❀ ❀ ❀

जगत् विख्यात पाषाणस्तूप ।

आज प्रातःकाल ही हम लोग नहा धो कर 'पिरामिड'(पाषाणस्तूप)देखने चले। यह जगह शहरसे बाहर प्रायः १२ मीलकी दूरीपर है किन्तु ट्रामगाड़ी यहाँ तक जाती है । मार्गकी बाईं ओर नील नदी और उसकी नहरें पड़ती हैं और दक्षिण ओर जीव-विद्या और वनस्पतिविद्या-सम्बन्धी उद्यान हैं । ट्रामको सड़कके साथ साथ एक ओर मामूली घोड़ा-गाड़ीकी सड़क है जिसके दोनों ओर बड़ी सुन्दरतासे वृक्ष लगे हैं । ये इतने निकट निकट हैं कि रास्तेके ऊपर सुन्दर छाया करते हैं । यह बड़ाही मनोहर दृश्य है ।

अब हम लोग भीमकाय गीज़ाके पिरामिडके निकट पहुंच गये । ट्राम स्टेशनसे अभी आध मीलपर है तब भी इसका गगनचुम्बी माथा और साथ ही इसका विशाल अंग दूरसे ही देख पड़ने लगा। देख तो यह काहिरःसे ही पड़ता है किन्तु यहाँ-से इसकी मोटी मोटी ईंटें भी दिखायी देने लगीं जो ३० फुट लंबी ४ फुट चौड़ी और करीब ३ फुट मोटी हैं । प्रत्येकका वजन बारह मनका है । अध्यापक फिलंडर्स पेलरीके मतसे इस पिरामिडमें पत्थरोंके ऐसे २३ लाख टुकड़े लगे होंगे ।

मेरी बुद्धिमें यह आता है कि हिरोडोटसने इसका जो बयान विक्रमके ३९४ वर्ष पूर्व दिया था वह आपको बड़ा प्रिय लगेगा । मैं यहाँ उसका अनुवाद दे देता हूं ।

हिरोडोटसके कथनानुसार इस पिरामिडके बननेमें कोई तीस वर्ष लगे हैं । इतने दिनों तक एक लाख मनुष्योंने प्रति वर्ष तीन मास बराबर इसपर कार्य किया । इसकी गगनभेदी ऊँचाई और भीमकाय स्थूलतासे मनुष्यकी बुद्धि चकित हो जाती है किन्तु जब यह मालूम होता है कि ये पत्थर सैकड़ों कोसकी दूरीसे लाये गये हैं तब तो आश्चर्य्यका कुछ ठिकाना ही नहीं रहता है और मानवबुद्धि फरऊनोंकी ताकतका पता लगाने चलकर अचम्भेके सागरमें गोते लगाने लगती है ।

पहिले इन मज़दूरोंको नील नदीके तटसे जहाँपर पहाड़से कटे हुए पत्थर नाव द्वारा आकर उतरते थे पिरामिडकी भूमितक पत्थरोंके लानेके लिये पत्थरकी

सड़क बनानी पड़ी थी क्योंकि यह जगह जहाँपर पिरामिड है रेगिस्तान है। यह सड़क १०१७ गज लम्बी १० गज़ चौड़ी और कहीं कहीं ८६ गज़ ऊँची नीची है। इसमें सब पत्थर चिकने करके लगाये गये थे जिनपर मूर्तियां भी खुदी थीं। इस सड़कका कुछ पता अब भी मिल जाता है। इस सड़क और उन कोठरियोंके बनानेमें जिनमें राजशव और प्रेतके कामकी वस्तुएं रक्खी गयी थीं दस वर्ष लग गये। पिरामिडमें बीस वर्ष लगे।
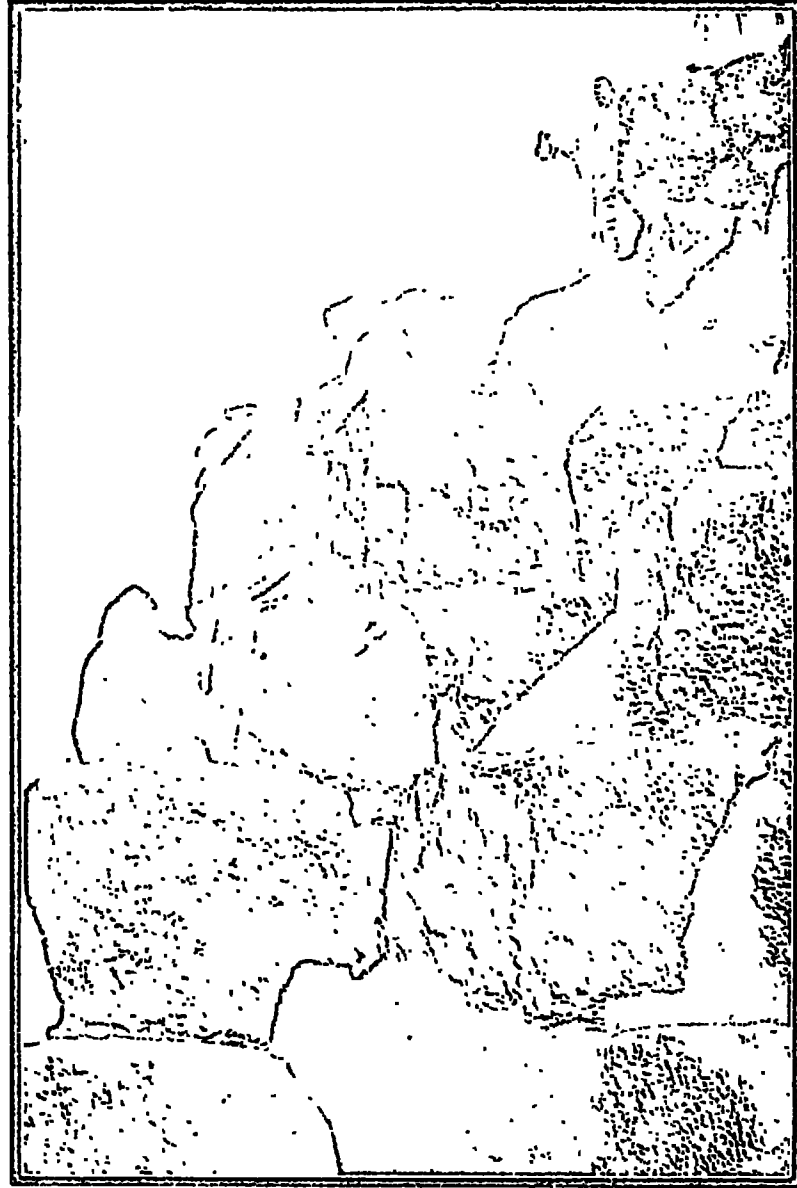
पाषाण स्तूपपर चढ़ रहे हैं

हिरोडोटसके लेखानुसार इसकी एक एक भुजा ८२० फुट लम्बी थी और ऊँचाई भी इतनी ही थी। हिरोडोटसके कथनानुसार केवल मज़दूरोंकी चबैनीमें अर्थात् गाजर, प्याज, लहसुनमें ५२, ५०००) रुपये व्यय हुए। इस अनुमानके अनु-

स्फिक्स (काहिरः) (पृष्ठ ४५)

सार तो कुल कितना व्यय हुआ होगा इसका अन्दाज़ा लगाना बड़ा कठिन है। किन्तु आधुनिक मिश्रतत्ववेत्ता यह अनुमान नहीं मानते।

आधुनिक खोजके अनुसार इसका वृत्तान्त यों है ; यह भीमकाय पिरामिड चतुर्भुजपर स्तूपको नाईं बना है। ऊपर जाकर यह एक अनीकी भाँति हो जाता है। इसकी भुजाओंकी लम्बाई ७४६ फुट है किन्तु पूर्वमें ७५६ फुट थी। १० फुटकी कमी पलस्तर उखड़ जानेसे हो गयी है। इसकी ऊंचाई इस समय ४५१ फुट है किन्तु पहिले ४८१ थी। हर एक ढालुए किनारेकी ऊंचाई ५६८ फुट है, पहिले यह ६११ फुट थी। इसके ढालुए किनारे ५१°-५०″ के कोण पृथिवीसे भीतरी ओर बनाते हैं। समूचे स्तूपका घनफल इस समय ३०५७००० घनगज है। इसका क्षेत्रफल १३ एकड़ है।

इसे देखकर मनुष्यकी बुद्धि चक्करमें आ जाती है। जिन सामर्थ्यशाली पुरुषोंने इतने बड़े बड़े कार्य केवल अपनी हड्डियोंके सुरक्षित रखनेके लिये किये उन्होंने अपने शरीरके सुखके लिये क्या न किया होगा।

कहाँ हैं आज वे फरऊन जिनकी हड्डियाँ इन भीमकाय स्तूपोंमेंसे निकालकर अजायबघरोंमें रक्खी हुई हैं, और आज पाँच हज़ार वर्ष बीत जानेपर भी जिनके मृतक शव देख देखकर चकित होना पड़ता है। यदि आज उनमें फिर जीव आ जाय तो उन्हें मालूम हो कि संसारमें कितना परिवर्त्तन हो गया है और अब उनकी क्या अवस्था है। एक दिन संसारकी सब जातियों और व्यक्तियोंका यही हाल होना है। कोई अपनी शक्तिपर न इतराय, आजकी शक्तिशाली जातियाँ कल मिट्टीमें मिल जायँगी और उनके पुराने गौरव देखकर भविष्यमें लोग ऐसे ही हंसेंगे, जैसे आज इन मिश्रियोंको देखकर हम और आप हंसते हैं। संसारमें वही जाति जीवित रहेगी जो दूसरोंके लिये जीती है।

हे भारत-निवासियो ! क्या तुम्हारा यह दावा सत्य है? यदि सत्य हो तो इसका प्रमाण दो, उठो, जागो प्रभात हो गया। संसार तुम्हारी ओर देख रहा है। तुम संसारको वह संदेशा दो जिसके लिये तुम सदासे जीवित हो और सर्वदा जीवित रहना चाहते हो। जीवित शक्तिका प्रमाण मुर्दे नहीं देते किन्तु जीवित लोग ही देते हैं। तुम संसारमें यदि सच्चाईके दूत बनना चाहते हो तो ढिलाई छोड़ो, अपनी आधुनिक नींद हटा दो और दूसरोंको उपदेश देनेकी शक्ति और नम्रता ग्रहण करो।

हम लोग यहाँ गदहोंपर चढ़कर आये थे, फिर उन्हींपर चढ़कर आगे बढ़े। यहाँसे निकट ही एक बड़े पत्थरका एक पशु बनाया हुआ खड़ा है जिसका मुख मनुष्य-कासा है। इसको लोग 'स्फिंक्स' के नामसे पुकारते हैं। यह पिरामिडके मुकाबलमें ज़रासा मालूम पड़ता है किन्तु वास्तवमें बहुत बड़ा है।

कुछ और महत्वपूर्ण स्थान।

यहाँसे बालुकाराशिमें पूरे दो घंटे चलकर हम लोग मैम्फिस पहुंचे। यह एक पुराने नगरकी श्मशानभूमि है। यहांपर अब एक भी ईंट या पत्थर बाकी नहीं, केवल नाम अवशेष है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँपर पाँच, छः हज़ार वर्ष पूर्व बड़ी सुन्दर नगरी और राजधानी थी।

यहाँसे निकट ही सकाराकी दो विशाल कबरें देखीं। एक में २५ कोठरियाँ हैं जिनमें अब शव नहीं हैं। सब अजायबघरोंमें चले गये हैं। वे बड़े बड़े पत्थरके सन्दूक अभी कहीं कहीं पड़े हैं जिनमें ये शव बन्द थे।

यहाँसे नज़दीक ही टीकामस्तबा हैं। यह पहिले पृथिवीके ऊपर था किन्तु अब बालूके नीचे दब गया है। यह खोजकर निकाला गया है और साफ करके देखने लायक बनाया गया है। यहाँपर मिश्र देशकी कारीगरीका सबसे अच्छा और सबसे पुराना पता लगता है। इसकी दीवारें तसवीरोंसे भरी हैं और उनसे मनुष्यके जीवनके हरएक अंगपर प्रकाश पड़ता है।

आप कहीं बड़े बड़े जानवरोंके मारे जानेका दृश्य देखते हैं। कहीं बत्तखें कैसे भूजी जाती थीं, यह दिखाया गया है। कहीं बत्तखोंका पालनपोषण अंकित है। कहीं जहाज़में मस्तूल पाल वगैरह चढ़े दिखायी देते हैं। कहीं अन्न दाँया जा रहा है। कहीं कटनी हो रही है। कहीं मनुष्य गदहोंपर बोझ लिये घर जा रहे हैं। एक जगह जहाज़ बनं रहा है। दूसरी जगह पेड़ काटकर सुडौल किये जा रहे हैं। कहीं कचहरी लगी है, न्यायाधीशके सामने दोपी पकड़ कर लाये जा रहे हैं। किसी जगह ग्वाले दूध दुह रहे हैं। कहीं हल चलता है। एक जगह भेड़ें खेत खा रही थीं वहाँसे हटायी जा रही हैं, यह दृश्य अंकित है। एक जगह गाय, बैल नदी पार कराये जाते हैं। एक जगह बन्दर और कुत्तोंका तमाशा हो रहा है। एक जगह समुद्रमें अनेक जलके जीवोंका चित्र है। एक जगह स्त्रियां अनेक प्रकारकी वस्तुएँ लिये जा रही हैं···इत्यादि इत्यादि।

यदि कोई देखना चाहे तो यहांपर कई दिन लग जावें किन्तु हम लोग पाँच मिनटमें इधर उधर देखकर भागे व दो घटे और गदहेपर दौड़ कर रेल पकड़ी। दिन भर धूपमें मारे मारे फिरनेके बाद ओर चार घंटे गदहेपर सवारी करनेके उपरान्त शामको जब काहिरः पहुंचे तो कुछ दम बाकी नहीं रह गया था।

आज हम लोग काहिरः का अजायबघर देखने चले। यहां दो अजायब घर हैं, एक मिश्री, दूसरा अरबी। मिश्रीमें पुराने मिश्रके सम्बन्धकी चीजें हैं। अरबीमें मुसलमानोंके मिश्रपर जय पानेके बाद जो वस्तुएं अरब व फारसके जरिये यहां आयी हैं वे रखी हैं। हमलोग पहिले मिश्री अजायबघरमें पहुंचे। यह बहुत बड़ी जगह है और इसे पूरी तरह देखनेमें महीनों लग सकते हैं। यहांपर मिश्रके अनेक स्थानोंमें प्राप्त देवी देवताओंकी सूरतें, राजाओंकी सूरतें, पशु इत्यादिकी सूरतें, मन्दिरोंके बड़े बड़े खम्भे व और कारीगरीकी चीज़ें हैं। इनके अतिरिक्त मिट्टीके वर्तन जो पुराने ऐतिहासिक समयके पूर्वके मिले हैं वे भी रखे हैं। जिन पत्थरके बड़े बड़े सन्दूकोंमें बादशाहोंके शव बन्द थे वे भी यहाँ लाकर रखे गये हैं। इनमें अनेक ग्रेनाइटके थे, एक संगमरमरका व दो लकड़ीके हैं। सब एक एक पत्थरमें खोदके बने हैं और प्रायः सब ही ६ फुट चौड़े, कोई १२, १४ फुट लम्बे और ८,९ फुट ऊंचे हैं। इनके अतिरिक्त बहुतसी तस्वीरें, पुराने हर्वे-हथियार, गहने व जेवरात, पेपाइरसके पत्तोंपर लिखी पुस्तकें व अनेक ममी (मृतक शव) व उनके रखनेके घर हैं। इनका ठीक ठीक वृत्तान्त लिखना मेरे लिये कठिन हैं। जिन्हें इनके बारेमें अधिक जानना हो वे बडेकरकी मिश्र संबंधी पुस्तकें मंगा कर देखें। उससे भी अधिक जाननेके लिये मिश्रमें जाना पड़ेगा और बड़ी बड़ी पुस्तकोंसे पता लगाना होगा।
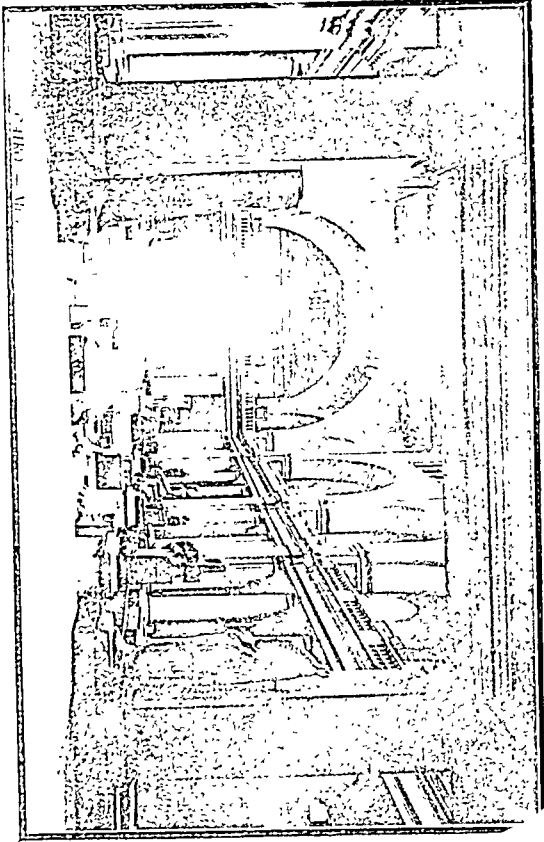
काहिर:का अजायबघर (पृष्ठ ४६)

पृथिवी प्रदक्षिणा
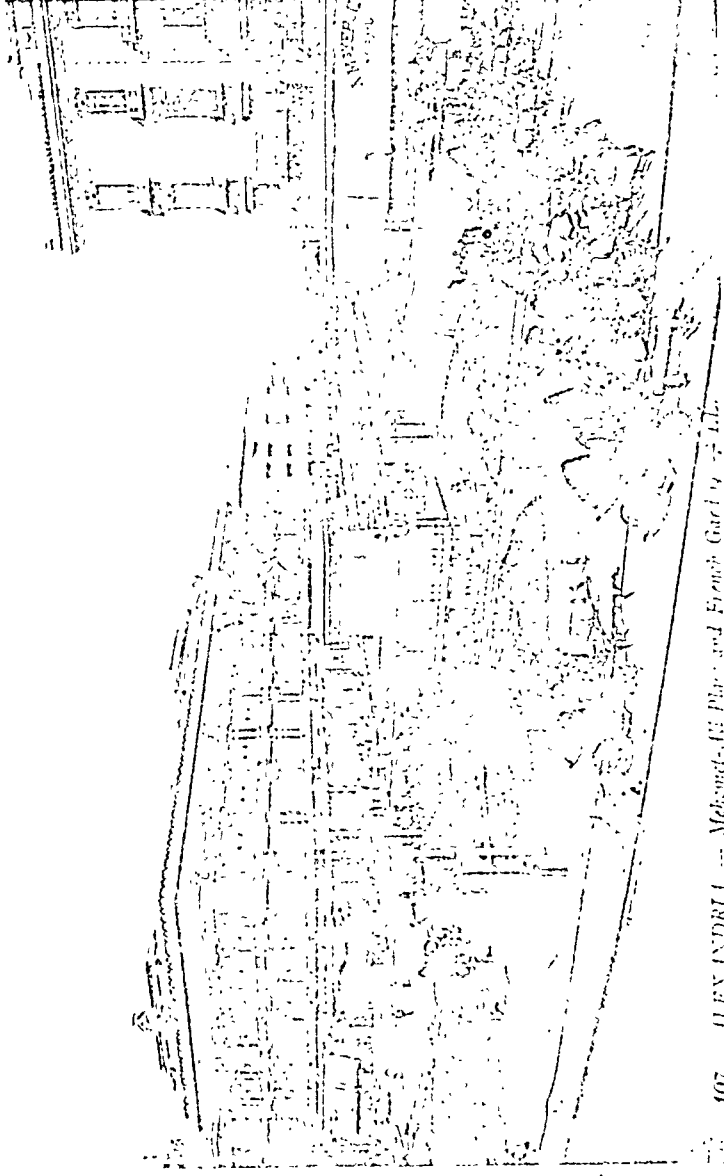
अलक्षेन्द्रियामें : मुहम्मद अली स्थान और फरासीसी उद्यान (पृष्ठ ४८)

हाँ, मैं यहां एक बात लिख देना चाहता हूँ कि इनके हथियार हमारे पुराने हथियारोंकी भाँतिके थे और गहने तो बिलकुल हमारे यहाँके गहनेसे मिलते हैं। पायजेब, बालियाँ, कड़े व चूड़ियाँ सब हमारे देशकी भाँतिके हैं। इन लोगोंको मृतक शरीरके रखनेका बड़ा शौक था। यहांतक कि बादशाहोंके प्यारे बैलों व बकरियोंतक-की ममी पायी जाती है।

अरबी अजायबघरमें पुरानी मुसलमानी सभ्यताकी सब चीजें मिलती हैं। काठके उम्दः नक्काशीके काम, पत्थरकी नक्काशियां, पुराने चीनीके बर्तन, शीशेकी सुराहियां इत्यादि, काश्मीरी दुशाले, बनारसी कारचोबीके थान इत्यादि अनेक चीजें यहां हैं। अच्छे सुनहले अक्षरोंमें लिखी क़ुरानशरीफकी पुस्तकें यहां बहुत सी रखी हैं।

यहांसे नज़दीक ही एक बड़ा पुस्तकालय है जहाँपर अनेक पुस्तकें हैं। प्रायः सभी अरबी या अरबीसे सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें यहां हैं। इन सबको देखता भालता शामको होटलमें लौटा और फिर बाहर नहीं निकला।

दूसरे दिन प्रातःकाल पुस्तकालय देखकर जिसका वृत्तान्त ऊपर दे चुका हूं आर्ट स्कूल देखने गया। एक फरासीसीकी अध्यक्षतामें यह स्कूल चलता है। यहाँपर चित्रकारी व मूर्ति-निर्माण-कला सिखलायी जाती है, पढ़ाईका ढंग अच्छा है और कार्य भी अच्छा होता है किन्तु धनाभाव यहां भी है। यह मदरसा एक स्वतंत्र व्यक्ति द्वारा पालित पोषित होता है।

आज शामको हम लोग यहांकी आधुनिक युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) देखने गये। इसे स्थापित हुए अभी चार वर्ष हुए हैं। यह यहांके धनिकोंके धनसे बनी है किन्तु धनाभाव यहाँ भी विद्यमान है। यहाँके मंत्री महाशयकी बातोंसे बड़ा सन्तोष हुआ। अभी शैशवावस्थामें ही युनिवर्सिटीने ठीक रीतिसे कार्य करना आरम्भ किया है। "होनहार विरवानके चिकने चिकने पात" के लक्षण अभीसे दिखायी देने लग गये हैं। यहांकी खास खास बातें मैं थोड़ेमें दिखाया चाहता हूं। जिस समय मैं उक्त विश्वविद्यालय देखने गया था उस समय ये लोग सात बड़ी इमारतें बनवाना चाहते थे जिनमें करीब सात लाख रुपयेके व्ययका अनुमान किया गया था। इन्होंने चार बड़े व खास सिद्धान्त बनाये हैं। (१) इस विद्यालयका संबंध गवर्नमेंटसे न होगा। (२) इसके अधिकारी-मण्डलमें कोई विदेशी न रहेगा। (३) सब शिक्षा-ऊंचीसे ऊंची मातृभाषा अरबीके द्वारा दी जावेगी। (४) बड़े बड़े अध्यापक सब देशवाले ही होंगे।

इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये अभीसे उद्योग प्रारम्भ हो गया है। २५ विद्यार्थी इस समय तक अन्यान्य देशोंमें भिन्न भिन्न विज्ञान सीखनेके लिये जा चुके हैं। उनके आते ही विद्याका दान अरबीके जरिये होने लगेगा। विदेशी अध्यापक जो इस समय हैं वे इस शर्तपर रखे गये हैं कि मिश्रियोंके लौटनेके बाद वे पृथक् कर दिये जावेंगे। एक विशेष समिति भिन्न भिन्न विषयोंकी पुस्तकोंका अनुवाद अरबीमें कर रही है, किन्तु अभी वह पारिभाषिक शब्द ज्योंके त्यों विदेशी भाषाओंमेंसे लेती जाती है। मैंने समितिके सदस्योंसे कहा कि इनको आप लोग अरबीसे क्यों नहीं बनाते ? इस ओर कुछ काम अलीगढ़ कालेज व काबुलमें हो रहा है। आप लोग वहांसे पत्र-व्यवहार करें और यदि यह कार्य मिल जुल कर हो तो अच्छा है। यह बात उनको पसन्द आयी।

इस थोड़ेसे वृत्तान्तसे मालूम होगा कि यह विद्यालय जातीय मार्गपर चल रहा है। इस समय जिस भवनमें यह विद्यालय है वह बड़ा ही विशाल व उत्तम बना है किन्तु विद्यालयके उपयोगी नहीं है।

यहाँसे हम लोग हाईस्कूल-क्लब देखने गये। यह क्लब उन लोगोंका है जो हाईस्कूलमें पढ़ते हैं अथवा पढ़ चुके हैं। यह बड़ा शानदार व अत्यन्त सुसज्जित है, ऐसे क्लब भारतवर्षमें केवल अंगरेजोंके ही होते हैं, सो भी बड़े नगरोंमें ही। यहाँ अनेक प्रकारका प्रबन्ध है। आरामकी सभी वस्तुएं मौजूद हैं। आज यहाँपर एक विद्वान् 'आत्मीय अधिकारपर मुसलमानी कानून क्या है' इसपर व्याख्यान दे रहे थे। व्याख्यान अरबीमें था इससे कुछ भी समझमें नहीं आया। व्याख्यानके उपरान्त सब सभ्य लोग खान-पानमें लग गये। हम लोगोंको भी चाय इत्यादि दी गयी।

यहाँसे हमलोग मिश्री बन्धुके घर, जिनके यहाँ एक बार हो आये थे, गये। आज यहाँ दो सज्जन और थे जिनपर स्वामी रामतीर्थ व स्वामी विवेकानन्दका बड़ा प्रभाव पड़ा है। ये सचमुच सच्चे त्यागी हैं। इनसे अद्वैत मत व मुक्ति इत्यादिपर बातें होती रहीं। ये बातें करते करते मग्न हो जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ईश्वर की यादमें ये तनमनकी सुधि बिसरा देते हैं। ऐसे भक्त कम देख पड़ते हैं। यहाँसे हम लोग बहुत देर बाद लौटे।

दूसरे दिन देरसे उठे। १२ बजे अलक्षेन्द्रियाके लिये प्रस्थान किया। सायंकाल अलक्षेन्द्रिया पहुंचे। यह नगर काहिरासे किसी अंशमें कम नहीं है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि यह अलक्षेन्द्रवाली नगरी है। नहीं नहीं, वह तो श्मशानावस्थामें एक किनारे पड़ी है। इसपर कई बार उतार चढ़ाव हुए हैं। दिल्लीकी भाँति इसने कई राजवंशोंको बनते बिगड़ते देखा है। इसका भी कई बार श्रृंगार-पटार हुआ है। किन्तु इस समय यह मुहम्मदअलीकी बसाई १०० वर्ष पुरानी नगरी, फ़रासीसी सभ्यताके अनुसार बनी हुई यूरोपका गर्व खर्व कर रही है। यदि इसमेंसे काले मनुष्य निकाल दिये जावें तो यह एक यूरोपीय नगर कहानेके लायक हो जावे।

यहाँ बहुत चीजें देखनेकी हैं। हमलोग आज इसे देखने चले किन्तु बनारसी कपड़ोंका एक पार्सल मेरे पास था उसे मैंने चुंगी बचानेके ख्यालसे कस्टम हाउस-में छोड़ दिया था। उसे ही लेने पहिले चला गया। समझा था ५, १० मिनटमें उसे ले आऊँगा किन्तु एकसे दूसरे व दूसरेसे तीसरे आफिसमें जाते जाते पूरे दो घंटे लग गये। मैं बिना कुछ देखे भाले होटल लौट आया। भोजन कर सब लोग जहाजपर चले आये।

आज यहाँ सहस्रों नर-नारी अपने अपने आत्मीयोंको पहुंचाने आये थे। उनके हर्ष-विलापको देख अपने इष्ट-मित्र, बन्धु बान्धव स्मरण होने लगे। एक युवती मिश्री बालाका विलाप देख मेरे आँसू न रुक सके। मैं अपने कैबिनमें आ मुंहपर रूमाल रख देर तक घरकी याद करता रहा।

जहाज भूमध्यसागरमें तेजीसे चलने लगा। बड़ी बड़ी तरंगें उठने लगीं। हमारा जहाज भी बहादुरोंकी नाईं मस्त हो झूमने लगा। मैं देर तक बैठ न सका, बिस्तरपर लेट गया, तब जी ठेकाने हुआ और धीरे धीरे नींद आ गयी।
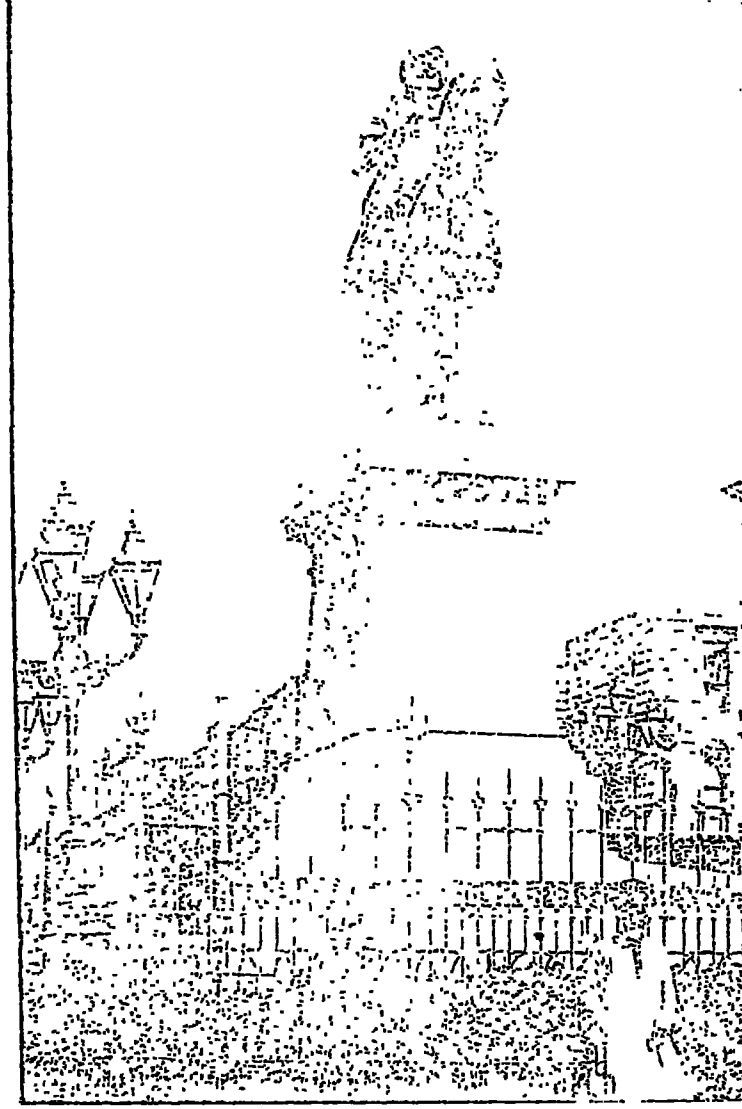
अलेक्जेन्ड्रियामें मुहम्मद अलीकी मूर्ति (पृष्ठ ४८)
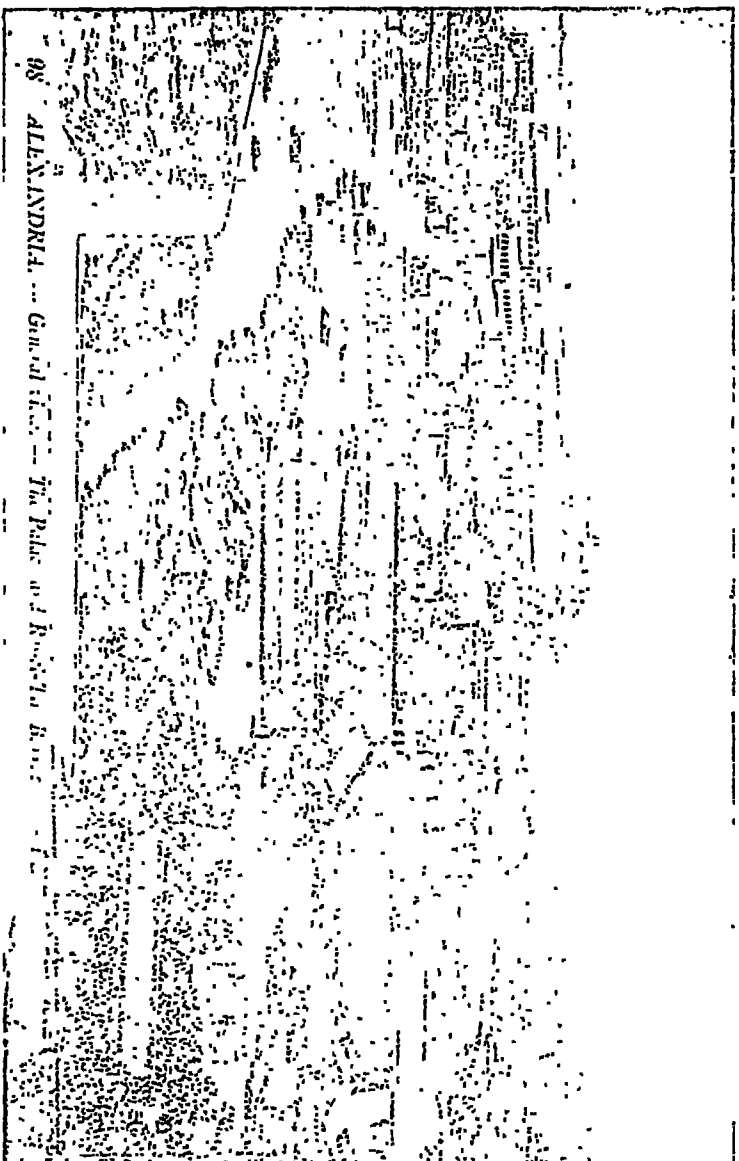
अलचेन्द्रियाका दृश्य (पृष्ठ ४८)
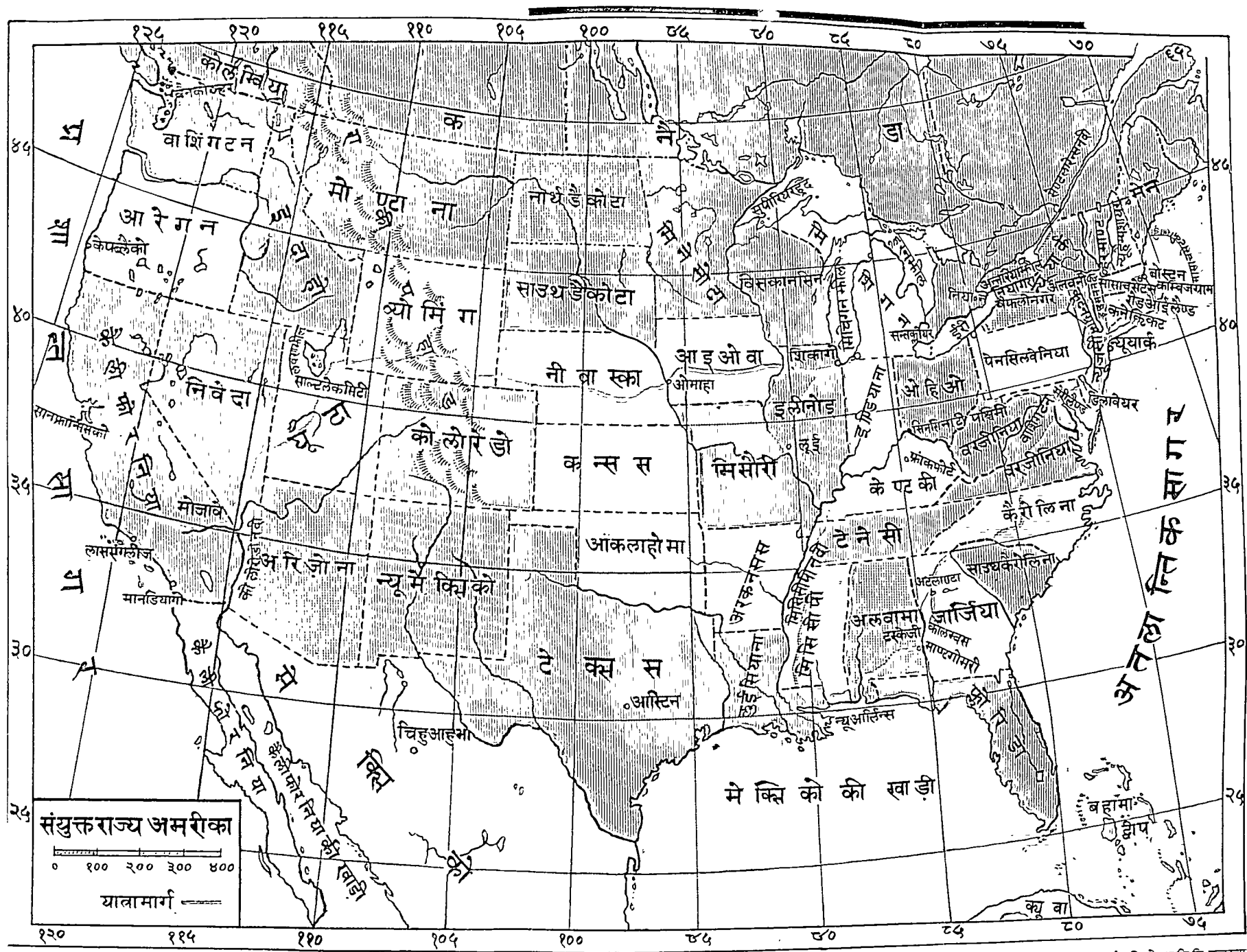
द्वितीय खण्ड—अमरीका।

पहिला परिच्छेद ।
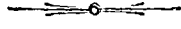
फ्रांसमें दो दिन ।

आज मैं साढ़े छै मासके उपरान्त फिर अपनी दिनचर्या लिखना प्रारम्भ करता हूं। मुझे पाँच दिन पूर्वसे ही प्रारम्भ करना उचित था क्योंकि मैंने २८ कार्त्तिक (१४ वीं नवम्बरको) इंग्लिस्तान छोड़ा था। किन्तु सागर इतना अस्थिर था कि तीन दिनों तक शिर उठाना दुस्तर हो गया। अपनी कोठरीमें बिस्तरेपर लेटकर ही समय व्यतीत करना पड़ा। अस्तु।

मैं......अलक्षेन्द्रिया नगर छोड़ फिर जहाज़पर सवार हो मारसेल्सके लिये रवाना हो गया था। चार दिनमें मारसेल्स पहुंच गया था। रास्तेमें कुछ विशेष घटना नहीं हुई सिवा इसके कि दो दिन समुद्रमें अत्यन्त आन्दोलन रहा और मेरा जहाज़ ११ हजार टनका होकर भी इस भाँति हिल रहा था जैसे गंगाजीपर बरसाती हवामें डोंगी हिलती हो। लहरें जहाज़की छतपरसे होकर गुज़र जाती थीं और यात्री बेचारे अपनी अपनी कोठरीमें या छतपर कुर्सीपर बैठे बैठे समय व्यतीत किया करते थे।

यहाँपर यह भी बता देना उचित होगा कि जहाज़ दो प्रकारसे हिलता है, एक तो अगल बगल और दूसरे आगे पीछे। पहिले प्रकारके हिलनेको रोलिंग अर्थात करवट लेना कहते हैं और दूसरे प्रकारको पिचिंग अर्थात् पेंग लेना कहते हैं। पिचिंग रोलिंगसे अधिक भयंकर है। पिचिंगके समय मनुष्यका माथा घूमने लगता है और पेटमेंका अन्न पानी मुँहकी राह बाहर निकल आता है। जिन मनुष्योंका ऐसे समयमें जी नहीं मिचलाता वे अच्छे नाविक कहे जाते हैं।

हम लोगोंने अपना टिकट विख्यात कुककी कोठीके मार्फत नहीं लिया था क्योंकि ये महाशय भारतवासियोंके विशेष मित्र हैं, और उनपर अधिक प्रेमके कारण उन्हें निरालेमें या कोनेकानेमें ही जहाज़पर जगह देते हैं, जिससे हिन्दुस्थानियोंको उन अंग्रेज़ोंसे दुःख न पहुंचे जो कि भारतमें रहकर उस सिद्धान्तको भूल जाते हैं जिसके लिये उनके देशमें बहुत नररक्त बहाया गया है अर्थात् दासत्वकी प्रथा उठानेमें जो कार्य अंग्रेज-जातिने किया है उसे ये महापुरुष लोग बिलकुल भुला देते हैं और बेचारे पंगु भारतवासियोंसे बड़ा ही अनुचित व्यवहार करते हैं। यही नहीं, कुक महाशयकी और बहुत कीर्ति है जिसके कारण हम लोगोंने उनसे बचनेका ही निश्चय किया था। हमने अपने टिकट दूसरी कोठीके मार्फत लिये थे किन्तु मारसेल्समें पहुंचनेपर हमें अपने कोठीवालेका कोई भी मनुष्य बन्दरपर सहायतार्थ नहीं मिला। किन्तु कुकके कई मनुष्य यात्रियोंके सहायतार्थ बन्दरपर उपस्थित थे। हमें उनसे कुछ भी सहायता नहीं मिल सकी। हमलोगोंने एक दूसरे यात्रीवालेके मार्फत अपने अपने असबाबका प्रबन्ध कराया।

मैं यहाँ अन्यत्रकी एक बात कह देना चाहता हूँ जिसके लिये कदाचित् पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे। मुझसे एक विदेशीने बात करते हुए कहा था कि अंग्रेज जातिने अमेरिकामें दासत्वकी प्रथाके उठानेमें जो असंख्य धन तथा मनुष्योंके प्राण होम किये थे उसका कारण केवल यही नहीं था कि उन लोगोंका हृदय मानव ऐक्यके भावसे पवित्र हो गया हो और उन्होंने इतना बलिदान केवल मानव अधिकार व स्वतन्त्रताके लिये कर दिया हो। उसका विचार तो यह है कि यह बलिदान नहीं किन्तु व्यापार था क्योंकि स्पेनिश जातिको गुलामोंकी बदौलत सस्ता माल बनानेमें सहायता मिलती थी और इस कारण अंग्रेजोंको उनके मुकाबलेमें कठिनाई पड़ती थी। इसीको दूर करनेके लिये उन्होंने इतना नुकसान उठाया था। उसका फल यह निकला कि स्पेनवालोंका व्यापार चौपट हो गया और अंग्रेजोंने एक एक पाईके दस दस रुपयेसे अधिक व्यापार द्वारा भर पाये। ज़रा विचार करनेसे और यह देखनेसे कि आजकल ये पाश्चात्य जातियाँ अपने अधीनोंके साथ कैसा व्यवहार करती हैं, यह विचार कुछ कुछ ठीक प्रतीत होता है।

हम लोग मारसेल्समें उतरकर, असबावको एक यात्रीवालके पास छोड़ और यात्रीवालका एक आदमी साथ ले नगर देखने चले। पहिले हम लोग एक गिर्जाघर देखने गये जो एक पहाड़ीपर स्थित था। सुन्दर सड़कोंसे होते हुए हम लोग गिर्जाघरकी पहाड़ीके नीचे पहुंचे, वहांसे एक लिफ्ट (ऊपर लेजानेवाले यन्त्र) पर बैठ ऊपर पहुंचे। यह गिर्जाघर बड़ा प्राचीन है। १६ वीं शताब्दीमें यह निर्मित हुआ था। यह मरियम देवीका गिर्जा कहा जाता है, इसके भीतर जानेसे एक प्रकारका धर्म-भाव उत्पन्न हो जाता है। यह भाव वैसाही है जैसा किसी धार्मिक मनुष्यके हृदयमें किसी देवस्थानमें जानेसे उत्पन्न होता है। यहींपर ईसामसीहकी मूर्ति सूलीपर चढ़ी हुई एक ओर रक्खी है और प्रधान वेदीपर मरियम बालक ईसाको गोदमें लिये खड़ी है। इधर उधर स्वर्गदूत आकाशमें उड़ रहे हैं। इनके अतिरिक्त और बहुतसे देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ यहाँ रक्खी हैं। बहुतसे ऐसे राजाओंके मुकुट भी रक्खे हुए हैं जिन्होंने समय समयपर धार्मिक युद्ध किये हैं।

जिस प्रकार भारतवर्षमें देवस्थानमें जाते समय यात्री लोग फूल, पत्र, दियाबत्ती इत्यादि अर्चनार्थ ले जाते हैं, उसी प्रकार यहां भी मोमबत्ती ले जानेका रिवाज है। सभी लोग छोटी बड़ी मोमबत्ती लेकर जाते हैं जिसे ईसाकी सूलीपर विराजमान मूर्तिके सामने मन्दिरका पुजारी जला देता है। वहांपर तालेसे बन्द छोटासा बक्स रक्खा है जिसमें जो कुछ द्रव्य श्रद्धालु यात्री चाहते हैं डाल देते हैं। यह द्रव्य अब भारतवर्षकी प्रथाके अनुसार पुजारियोंके जेबमें नहीं जाता। पहले यहाँ भी ऐसा ही होता था किन्तु अब यह धन मन्दिरकी रक्षा तथा अन्य सार्वजनिक उपकारके कामसें लगाया जाता है।

यहाँ भी बाहर दीनपुरुष व स्त्रियाँ भिक्षा माँगनेके लिये खड़ी रहती हैं जिन्हें देखकर हृदय पिघल जाता है। देखें यह कुप्रथा संसारमें कबतक रहती है कि जिसके कारण समाजमें कुछ तो ऐसे लोग होते हैं जिनके पास बिना मेहनत मशक्कतके, हाथ पैर हिलाये बिना ही, दूसरोंके पसीनोंसे कमाया हुआ इतना धन समाजकी कुप्रथा-

के कारण आ जाता है कि वे उसे व्यय करना ही नहीं जानते और जानें भी तो अपने ऊपर व्यय नहीं कर सकते क्योंकि मानुषिक आवश्यकताओंसे वह कहीं अधिक होता है; निदान उन्हें अपच हो जाता है और धन अपव्ययके मार्गसे चला जाता है। (इस अपव्ययके बहुत मार्ग हैं और उनका सविस्तर वर्णन यहाँ प्रसंगविरुद्ध है। वह निराला ही विषय है जो समाजसंगठन शास्त्रमें लिखा जाना चाहिये।) और कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो बेचारे हाथ पैरसे बेकार या अन्धे अपाहिज होते हैं और स्वयं रोटी नहीं कमा सकते उन्हें इन मनुष्योंके सामने हाथ फैलाना पड़ता है। जिन्हें लोग भूल कर समृद्धिशाली भाग्यवान् कहते हैं वास्तवमें उन्हें हत्यारे, चोर व डाकूके नाम से संकेत करना अधिक ठीक व सच्ची बात होगी। अस्तु।

यहाँसे होते हुए हम लोग अजायबघर देखने चले। सड़ककी शोभाका वर्णन करना मेरी सामर्थ्यके बाहर है। केवल इतना ही कह देना उचित जान पड़ता है कि सड़कें अत्यन्त चौड़ी व खूबसूरत थीं। दोनों ओर गाड़ियोंके लिये चौड़ी चौड़ी जगह थी, एक ओरसे जानेके लिये और दूसरी ओरसे आनेके लिये। बीचमें चौड़ी पटरी मनुष्योंके चलनेके लिये बनी थी जिसके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लगे थे। वृक्ष वसन्त ऋतुके कारण पुष्प तथा नरम कोपलोंसे भरे थे, जिनमें प्रकृतिने इतना सुहावना हरा रंग भर दिया था कि जिससे बीचकी पटरी हरी देख पड़ती थी। मन्द मन्द वायु पत्तोंको हिलाती थी और सारी जगहको विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे भरे देती थी। हमें यह देख दिल्लीकी चाँदनी चौक वाली सड़क याद आगयी। जिस समय यह नगर अपने यौवनपर रहा होगा, जब इसे संसारकी सबसे बड़ी शक्तिशालिनी जातिकी राजधानी होनेका गौरव प्राप्त रहा होगा उस समय इसमें कैसी शोभा रही होगी, यह इसके टूटे-फूटे खंडहर ही बताये देते हैं। जाओ इन पियावोंमेंसे किसीपर जो अब भी चाँदनी चौकके बीचमें वर्त्तमान हैं और उनसे पूछो कि तुम्हारी अवस्था नरपति अकबरके समय क्या थी। यदि तुम्हारे हृदय है तो ठीक उत्तर मिलेगा और तुम अश्रुपूरित आँखोंसे लौटोगे।

अब हम लोग अजायबघरमें पहुंच गये। यह बड़े सुन्दर स्थानमें है। बीचमें एक बहुत बड़ा फुहारा है जिसके ऊपर स्वतंत्रता देवीकी एक विशाल मूर्ति है। जिस रथपर यह मूर्त्ति विराजमान है उसे चार बैल खींचते हैं। उन्हीं नांदियों-के मुखसे जलकी धारा गिरती है और ऊँचे नीचे तीन सरोवरोंमेंसे होती हुई बागमें चली जाती है।

इस विशाल भवनके कई पृथक् पृथक् विभाग हैं। हम लोगोंने इसके दो विभाग देखे। एकमें बड़े बड़े विख्यात मूर्ति निर्माणकर्ताओंकी बनायी हुई सैकड़ों मूर्तियाँ हैं, दूसरेमें चित्रोंका संग्रह है। यहाँपर निरीक्षकने मुझे एक बड़ा चित्र दिखाया जिसका मूल्य दस लाख पाउण्ड अर्थात् डेढ़ करोड़ रुपया दिया गया है। मेरी बुद्धिमें ये सब अमीरी चोचले हैं। मैं यह नहीं कहता कि चित्रकार चित्र बनानेमें बुद्धि तथा विशकी सीमा तक नहीं पहुंच गया है किन्तु एक चित्रके लिये इतना व्यय, जब कि देशमें करोड़ों मनुष्य क्षुधाग्निमें जल रहे हों, यही प्रकट करता है कि संसारमें न्याय नहीं है। 'जबर्दस्तका ठेंगा सरपर' यह सभी जगह चलता है। न्यायका जामा पहने

हुए अन्यायी सभी जगह विराजमान हैं, और गरीबोंको इनसे बचानेका कठिन परि-श्रम कभी न कभी संसार भरको एक साथ मिलकर करना पड़ेगा ।

इस भवनमें एक विभाग है जिसमें ऐसे जन्तुओंके अस्थिपिंजरोंका संग्रह है जो अब संसारमें नहीं हैं अर्थात् जिनकी नसल नष्ट हो गयी है। मरम्मतके कारण वह विभाग बन्द था, इससे हम लोग उसे नहीं देख सके।

यहांसे अब रेल घर पहुंचे और अपना अपना सामान संभाल हम लोगोंने यात्रा प्रारम्भ की । हमें रास्तेमें बहुतसी छोटी छोटी नदियों, नालों व पहाड़ियोंको पार करना पड़ा । फ्रांसीसी देशकी विख्यात नदियोंको जिनके बारेमें इतना पढ़ रक्खा था, देख देख हँसी आ जाती थी । वे काशीकी वरुणा नदीसे बड़ी नहीं निकलीं किन्तु इन्हीं-को काट काट कर इस प्रकार नहरें बना दी गयी हैं कि जिनके कारण सारा देश हरा भरा हो गया है । मैंने बंग देशको भली भाँति नहीं देखा है किन्तु फ्रांसको देख एक बारगी "सुजलां सुफलां शस्यश्यामलां मातरम्" जबानपर आ गया ।

मुझे फ्रांस देशको दक्खिनसे उत्तर तक पार करनेमें २४ घण्टोंसे अधिक लगा था किन्तु मैं सत्य कहता हूं कि मुझे एक इञ्च भी ऐसी भूमि नहीं दीख पड़ी जिसपर हरियाली न हो । पहाड़की चोटियां तक लता, गुल्म और घाससे परिपूर्ण थीं । नाना प्रकारके धान यहां देखनेमें आये । सब्जी व तरकारियोंकी खेती बहुत बड़ी मिकदारमें थी । बहुत प्रकारकी भाजियां, वनस्पतियां व अन्य ऐसी चीजें कांचके गमलोंके नीचे या कांचके घरोंमें बन्द थीं जिन्हें सर्दीसे बचाना अभिप्रेत था। बंजर, ऊसर या उजाड़का नाम भी यहां नहीं था । हरी हरी घासोंसे लहलहाते हुए बड़े बड़े मैदानोंमें गोसन्तान स्वच्छन्दतासे विचर रही थी । घोड़ों व भेड़ोंके लिये भी अनेक रम्य स्थान घासोंसे लहलहा रहे थे। यहाँपर पशु निडर हो विचर रहे थे । यहाँकी यह अवस्था देख भारतकी डींगपर हँसी आगयी । दया-धर्मकी पुकार मचानेवाले और झूठी गप्पों-से संसारको सरपर उठानेवाले हिन्दुओंकी बस्तियोंमें इसका शतांश भी प्रबन्ध गोसन्तान तथा पशुओंके लिये नहीं है जैसा कि इन हिंसक देशोंमें देखनेमें आया। इन छः महीनोंमें मुझे एक पशु भी ऐसा नहीं मिला जो दुःखी, अपाहिज, निर्बल या आहत हो । यह अवस्था देख स्वामी रामतीर्थके ये वचन स्मरण हो आये कि भारत-का धर्म मुर्दा है व अन्य देशोंका जीवित--भारतमें धर्मका नाम लेकर शोर मचाया जाता है किन्तु और देशोंमें धार्मिक जीवन है अर्थात् अन्य देशोंमें धर्म चल अवस्था-में ह और भारतमें अचल अवस्थामें है ।

इसी प्रकार इधर उधर देखते, कभी प्रसन्न होते, कभी खिन्न होते थे, पर रेल हमारी प्रसन्नता या खिन्नताके कारण अपना कार्य नहीं छोड़ती थी । वह तो ५०, ६० मीलकी गतिसे दौड़ी हुई चली जाती थी। उसके सामने नदी, पहाड़, बन कुछ भी नहीं थे। कहीं नीचे उतर कर, कहीं ऊपर चढ़कर, कहीं पहाड़के हृदयको छेदकर, कहीं नदीके सिरपर सवार हो कर वह बेतहाशा भागी चली जाती थी । इसी प्रकार भागते भागते संध्या हो गयी और हम लोग खाने पीनेकी फिक्रमें पड़े । रेलके उपहारगृहमें कुछ खा पी कर दूसरी गाड़ीमें सवार हुए और रात भर चलकर विख्यात नगर
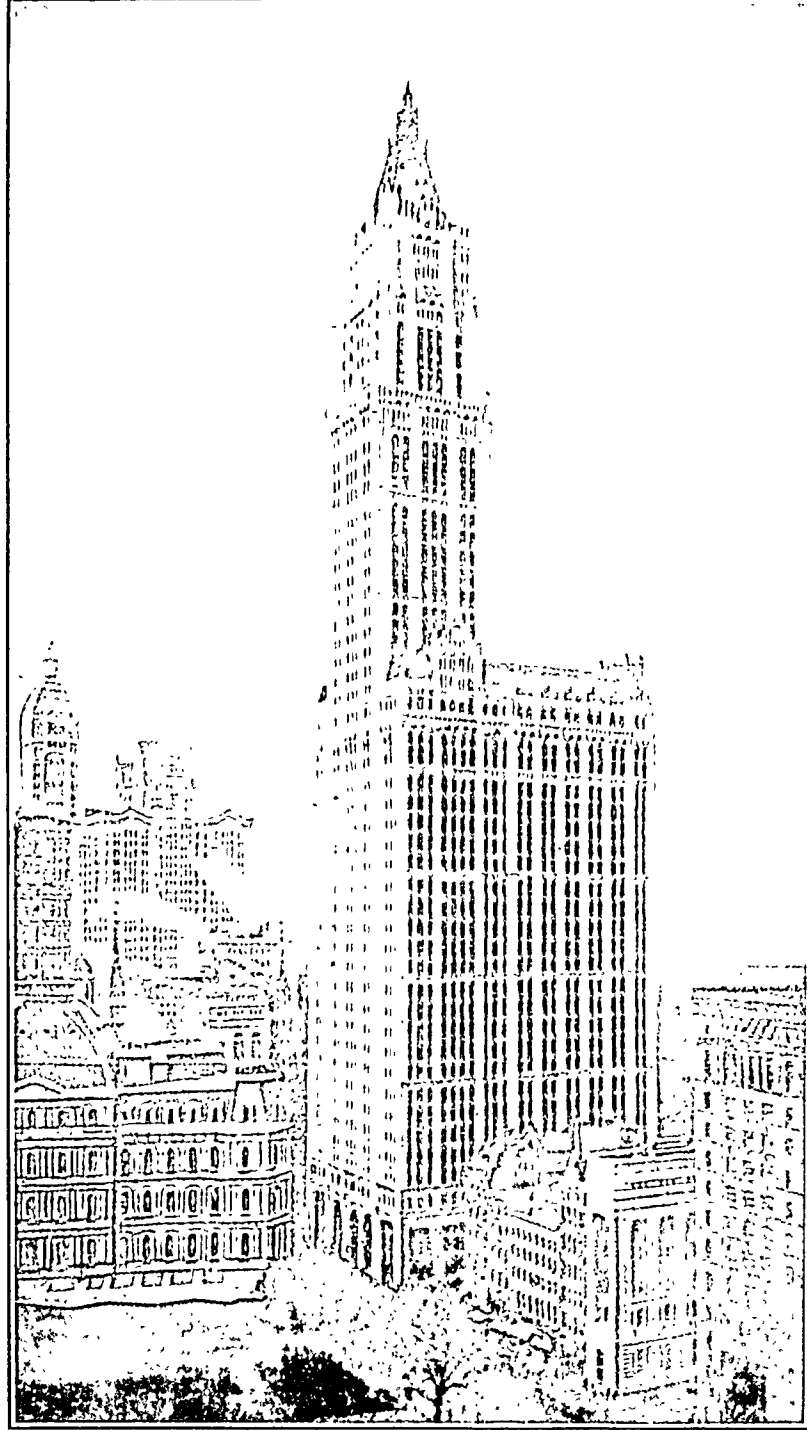
उलवर्थ हवेली (पृष्ठ ५६)

परी (पेरिस) में पहुंच गये। इस विचारसे कि इस नगरको फिर भलीभाँति देखेंगे दो घंटे समय रहनेपर भी हम लोग स्टेशन छोड़ बाहर नहीं गये।

आठ बजे दूसरी गाड़ीपर सवार हो फिर रवाना होगये और १२ बजेके लगभग 'केलन' पहुंचे। वहाँसे एक छोटे अग्निबोटपर सवार हो इंगलिस्तानको प्रस्थान किया।

अंगरेजी खाड़ी बेतरह उछल कूद रही थी। नावकी छतपर जहाँ हम लोग बैठे थे बराबर लहरें पानी फेंक रही थीं। सब असबाब इत्यादि भीग गया। उस समय जितने लोग उस छतपर थे सभी उलटी कर रहे थे। मैं भी एक कोनेमें बैठा तमाशा देख रहा था। किसी प्रकार राम राम करके जहाज़ डोवर पहुंचा और हम लोगोंने अपने प्रभुओंकी जन्मभूमिमें पदार्पण किया। अंगरेज़ कुलियोंने सलाम कर असबाब उठा रेलमें रख दिया। रेल सीटी दे चल दी। ३, ४ घंटोंके बाद हम लोग 'चेरिङ्ग-क्रास' स्टेशनपर पहुंच गये। यहाँपर मेरे एक मित्र मुझे लेने आये थे, उनके साथ जा एक मकानमें ठहर गया।

इंग्लिस्तानमें मैंने क्या क्या देखा इसका विस्तृत वर्णन फिर कभी पृथक् लिखूंगा किन्तु इस दिनचर्याके पूर्ण करनेके लिये इतना लिख देना आवश्यक है कि मैंने यहाँ २६ बैशाख (९ मई) से लेकर २८ कार्त्तिक (१४ नवम्बर) तक ६ महीने ६ दिन निवास किया।

ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण इन तीन मासोंमें इस देशके प्रधान प्रधान नगर अर्थात् आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, एडिनबरा, ग्लासगो, लीड्स, मानचेस्टर, डबलिन, ब्लाकपूल, पाडिहम व ब्राइटन देखे। यह उपर्युक्त देखभाल हम लोगोंने १५ श्रावण (३१ जुलाई) तक समाप्त कर दी थी और यह विचार था कि अगले सप्ताहमें जर्मन देशमें जावें किन्तु इसी बीचमें यूरोपीय महाभारतका सूत्रपात हो गया और हम लोग एक प्रकारसे लन्दनमें बन्द होगये। पहिले तो यही विचार होता था कि २०वीं शताब्दीमें लड़ाई नहीं होगी, यदि प्रारम्भ भी हुई तो शीघ्र समाप्त हो जायगी पर ऐसा नहीं हुआ। घर भी लौटनेका प्रबन्ध निष्फल हुआ। तीन मास तक इसी आगापीछामें पड़े रहनेके उपरान्त २८ कार्त्तिकको अमरीकाके लिये प्रस्थान कर दिया।

दूसरा परिच्छेद ।

अमरीकामें क्रिसमस-अर्थात् महात्मा ईसाका जन्मदिन ।

आज मुझे इस देशमें आये एक माससे पांच दिन अधिक हो गये । अभी तक मैं न्यूयार्कमें ही पड़ा रहा । इस छोटेसे वृत्तान्तमें मैं न्यूयार्क नगरका विस्तृत दृश्य व विवरण अनावश्यक समझ नहीं देना चाहता, किन्तु इसका दिग्दर्शन मात्र अवश्य कराना चाहता हूं, जिसके लिए मैं पाठकोंसे क्षमा चाहता हूं। यह नगर हडसन नदीके तटपर अमरीकाके पूर्व छोरपर अटलांटिक महासागरके निकट वर्त्तमान है । यूरोपके यात्री प्रायः यहीं आकर उतरते हैं। जिस समय जहाज़ सागरको छोड़ हडसन नदीमें प्रवेश करता है उस समय जो यात्री जहाजकी छतपर नगर देखनेके निमित्त एकत्र हुए रहते हैं उनके नेत्रोंको शीतल करनेके लिये उन्हें एक विशाल भीमकाय मूर्तिके दर्शन होते हैं जो अपनी दक्षिण भुजा उठाये, उसमें एक बड़ी मशाल लिये हुए मानों यात्रियोंको प्रकाश प्रदान करती हुई, अपनी ओर बुलाती है। पूछनेसे ज्ञात हुआ कि यह विशाल मूर्ति पवित्र स्वतंत्रता देवी(लिबर्टी) की मूर्ति है।

यह मूर्ति इस समय संसारमें सबसे बड़ी मूर्ति कही जाती है। यह फ्रांस देशनिवासी विख्यात मूर्तिनिर्माता 'अगस्त बरथालडी' (Auguste Barthaldi) की विचार-शक्तिका फलस्वरूप है जिसे फ्रांस देशके पञ्चायती राज्यने अमरीकाके पञ्चायती राज्यको स्नेहांजलिस्वरूप संवत् १८३३ में भेंट किया था। इस मूर्तिकी ऊंचाई शिरसे पैर तक १ १॥ फुट है । यह इस्पातके ढांचेपर ताम्रपत्र जड़कर बनी है। ऊपर चढ़नेके लिये इसके भीतर सीढ़ियां बनी हैं। स्वतन्त्रताके उपासकोंका हृदय इस मूर्तिको देखकर गद्गद हो जाता है और अपने इष्टदेवको सम्मुख देख नेत्रोंसे प्रेमाश्रु-जल निकल पड़ता है। उपर्युक्त मूर्तिके अतिरिक्त अन्य वस्तुएं जो यात्रियोंको प्रथम देख पड़ती हैं वे आकाशको छूने वाली इमारतें हैं, पहली पचपन खण्डोंकी ७९३॥ फुट ऊंची "ऊलवर्थ" हवेली, दूसरी सैंतालीस खण्डोंका ६१२ फुट ऊंचा 'सिंगरका कारखाना' (Singer Building) है। इनमेंसे पूर्वकथित हवेली संसारकी सब हवेलियोंसे ऊंची है ।

अमरीकाके प्रधान नगरोंकी प्रधानता ऊंची ऊंची इमारतोंसे ही है। इस अंशमें यह देश यूरोपसे बढ़ा चढ़ा है, हां न्यूयार्ककी प्रधानता भी इसीसे है । यह नगर लम्बान चौड़ानमें संसारमें सब नगरोंसे विस्तृत है। जन संख्याके अनुसार केवल एक ही नगर और है जो इससे बाजी मार लेता है। यहाँ चौड़ी चौड़ी साफ सुथरी सड़कें हैं और नवीन होनेके कारण बड़े अच्छे ढंगसे बनी हैं। समस्त नगर चौपड़की भांति बना है। नगरके बारेमें इतने ही वर्णनसे सन्तोष कर अब मैं अपने मुख्य विषयकी ओर बढ़ता हूं।

जिस प्रकार भारतवर्षमें कृष्ण जन्माष्टमीपर यदि काली काली घटाएं न छायी

Statue of Liberty, New York
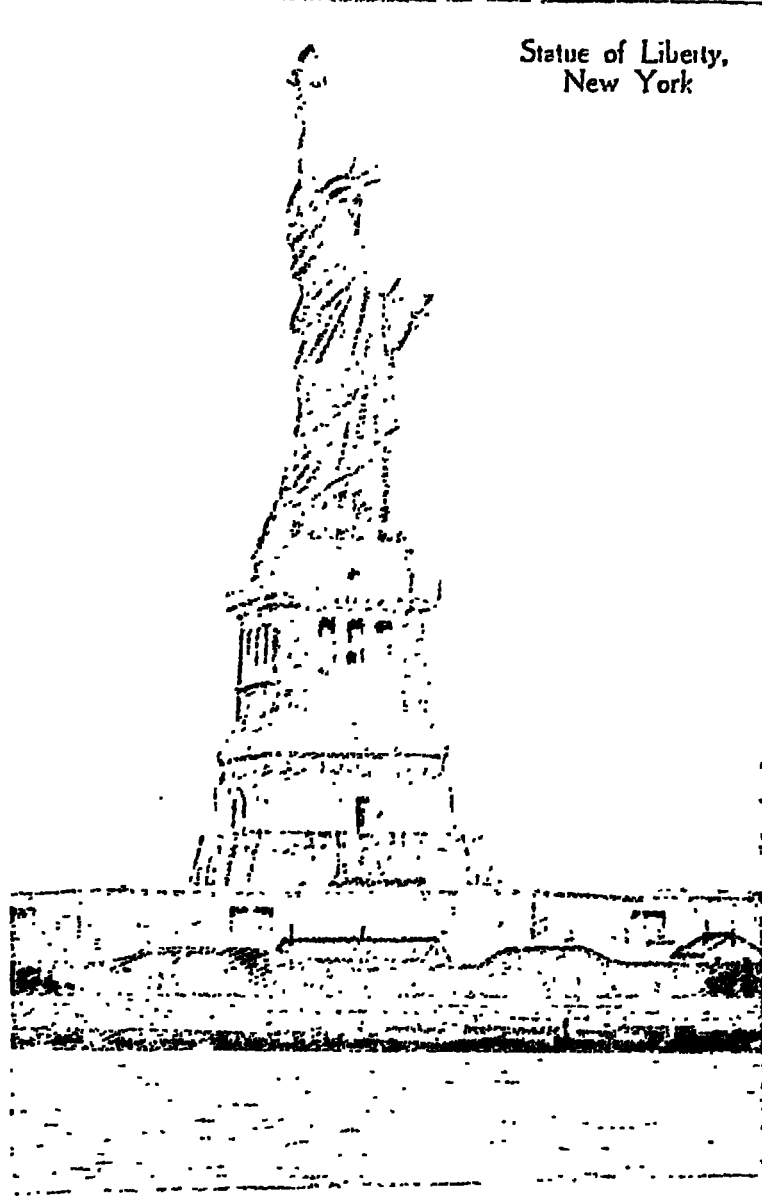
स्वतंत्रता देवीकी मूर्त्ति [पृ० ५६]

हों, बिजलीके डरावने शब्दोंसे हृदय न काँपता हो व मूसलधार वर्षा न होती हो तो जन्माष्टमीकी छटा फीकी ही रहती है—उसी प्रकार ईसाके जन्म-दिनके पूर्व दिवस यदि हिम न गिरे और रास्ते, चौराहे, खेत, उद्यान, घर, मैदान, सारी सृष्टि यदि बर्फसे न ढँक जाय तो यहांका जन्मोत्सव फीका समझा जाता है। इस वर्ष यहाँ-का जन्मोत्सव फीका नहीं था। प्रातःकालसे ही आकाशसे मानो रूई गिरने लगी, बर्फ धुनी हुई रूईके समान आकाशसे गिरती है और चूर किये हुए सेंधालोनकी भांति कई दिनोंतक सड़कोंपर पड़ी रहती है। वह प्रायः गलती नहीं। देखते देखते तीन या चार घंटोंमें सारी जगह श्वेत हो गयी। अहा ! कैसा सोहावना प्रखर श्वेत रूप था मानों महात्मा ईसाकी जन्मगांठ मनानेके लिये प्रकृति धोये हुए सुन्दर मलमलकी सारी पहिनकर निकली थी। सड़क, पटरी, मकानोंकी सीढ़ी व छत, नीरस पत्रहीन वृक्ष, मैदान, बाग बगीचे, छोटे ताल तथा तलैयाँ, स्रोत तथा हडसननदके भाग भी हिमसे भर गये थे। सरोवरोंने तो हिमके भयसे अपना कवच बर्फका ही बना लिया था जिसमें भीतर बसने वाले जलचरोंको हिमसे दुःख न सहना पड़े। सायंकाल तीन बजेतक हिमवर्षा बराबर होती रही। जाड़ा इतना बढ़ गया कि भयके मारे सायंकालको नगरकी हाटबाटकी शोभा देखनेके लिये मैं घरसे नहीं निकला।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यक्रियासे निपट, वस्त्र पहिन ९ बजे मैं अपने एक अमरीकन बन्धुके घर उत्सव मनानेके लिये चला। सड़क बर्फसे भरी थी। उसीपर चलकर सुरंगके मुहानेपर पहुंचा। यहाँपर नगरमें एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिये तीन प्रकारकी सवारियाँ मिलती हैं-(१) सब-वे अर्थात् सुरंगमें चलने वाली बिजलीकी रेल (२) एलीवेटर अर्थात् सड़कोंके ऊपर पुलपर चलने वाली बिजलीकी गाड़ियां (३) मामूली सड़कोंकी ट्रामगाड़ी। यहाँ मैंने अपने बन्धुके लिये कुछ पुष्प लेना चाहा। एक दर्जन पीले गुलाबोंका, जो एक सुन्दर बेंतके चंगेज़में पत्तियों व सुम्बुल इत्यादिसे सजाये हुए थे मूल्य दो डालर अर्थात् ६) छः रुपये सुन कर होश ठिकाने आगये। मैंने इसके पूर्व यहाँ पुष्प नहीं खरीदा था, लन्दनमें एक बार एक शिलिंग अर्थात् बारह आनेके बारह ऐसे ही फूल खरीदे थे। भारतवर्षमें लोग इनका मूल्य चार आनेसे अधिक देने वालेको फजूलखर्च व बेवकूफ समझेंगे। खैर, पुष्प लेकर मैं सुरंगमें घुसा, वहांसे रेलघर पहुंचा, रेलपर सवार हुआ और रेल चलदी।

जिस मार्गसे रेल जाती है वह बड़ा ही मनोहर है—एक ओर हडसन नदी, दूसरी ओर छोटी छोटी पहाड़ियां व उनके ऊपर छितरे बितरे मकान व बस्ती। किन्तु आज सब कुछ बर्फसे ढँका था—लम्बे लम्बे मैदान बर्फसे ढंके हुए ऐसी शोभा दे रहे थे कि जिसका वर्णन करना कठिन है।

थोड़ी देरमें मैं क्रूटन ग्रामके स्टेशनपर पहुंच गया। वहां उतर एक गाड़ी ले पहाड़ी-के ऊपर चल दिया। मेरी गाड़ी छः इञ्च मोटी बर्फकी सड़कपर चल रही थी। गाड़ीके पहियेसे कटकर बर्फ धूलकी भांति उड़ती थी। यहां बहुतसे बालक कोस्टिंग (Coasting) कर रहे थे। छोटे छोटे लकड़ीके तख्तोंमें पहियेकी जगह दो अर्द्धचन्द्रा-कार लकड़ी या लोहेके टुकड़े जुड़े रहते हैं जिनसे वे गाड़ीकी भांति खसक सकते हैं। इसीपर लड़के चढ़कर ढालुआँ पहाड़ी तथा बर्फपरसे नीचे खसक कर आते हैं। यह

गाड़ी बड़ी तेजीसे बर्फपर खसकती है। यह दृश्य बहुत मनोहर लगता है। यही तमाशा देखते हुए मैं अपने बन्धुके गृहपर पहुंच गया। यहाँपर आज बहुजातीय क्रिस्मस था अर्थात् कई देशके लोग यहाँ एकत्र थे, अमरीकन, जर्मन, स्काच, रूसी, यूनानी, भारतीय, व चीनी।

रूसी दम्पति जो यहाँ थे विचित्र पुरुष थे। रूसी महिला अपने २७ वर्षके जीवनमें ही अनेक विचित्र घटनाओंको देख चुकी थी। साईबेरियाकी कठिन यातना भी दो बार भोग चुकी थी। उसका वृत्तान्त बड़ा ही उत्साहजनक, घटनापूर्ण व शिक्षाप्रद है किन्तु यहाँ वह अंकित नहीं किया जा सकता। जर्मन महिला भी एक प्रकारसे समयकी सतायी हुई अपने दुःखके दिन यहां काट रही थी।

खैर, अब अपने मतलबकी ओर आना उचित है। इन महाशयका गृह अच्छी तरह सजाया हुआ था। दालानकी छतमें तोरण लगा था, खिड़कीके पास क्रिस्मसट्री (क्रिस्मसका पेड़) लगा था, यह यहां सब घरोंमें आज लगाया जाता है। घरोंमें ही नहीं किन्तु बाजारोंमें भी यह रखा होता है। यह चीड़की डालियोंका बना सुन्दर छोटासा सरोंकी वृक्षकी भाँति देख पड़ता है। इसे भिन्न भिन्न प्रकारके खिलौनोंसे सजाते हैं। आगे पीछे तथा डालियोंपर छोटी छोटी मोमबत्तियाँ लगाते हैं। जिस भांति हमारे यहाँ जन्माष्टमीपर सजावट होती है या दीपावलीपर ' हटरी ' सजायी जाती है उसी प्रकार यहाँ भी सजावट होती है। दूसरी ओर टेबुलपर बरके बालकका छोटासा क्रिस्मस बाजार लगा था। ' हटरी ' इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकारके खिलौने यहाँ सजाकर रखे हुए थे, जिन्हें देख देख बालक इधर उधर दौड़कर सबको उसकी शोभा दिखा रहा था जिससे मातापिताका चित्त बालककी तोतली, सीधी-सादी, कपटरहित, भोली-भाली मधुर बातोंसे गदगद हो जाता था और वे प्रसन्नवदन हँस हँसकर उसका आनन्द ले रहे थे। इसी भाँति खेलते कूदते तथा आनन्दप्रमोद मनाते भोजनका समय निकट आ गया। हम लोग भोजनके आसनपर जा बैठे—भोजनकी सामग्री गृहिणीके सम्मुख ला रखी गयी। माँसकी बड़ी थाली गृहपतिके सामने आयी। इन देशोंमें माँस हमारे देशकी भांति काटकर नहीं राँधा जाता किन्तु पशु समूचाका समूचा रांधकर भोजनालयमें लाया जाता है और गृहपति उसे काटकर परोसता है। इस मांसके काटनेका नाम 'कार्विंग' है। यह यहाँ एक प्रकारकी कला समझी जाती है। सभ्य लोगोंको और विद्याओंकी भांति इसे भी सीखना पड़ता है। ठीक रीतिसे काटना न जाननेवालेकी हँसी होती है और वह अशिक्षित समझा जाता है। धन्य है यहांकी सभ्यता ! खैर, धीरे धीरे भोजन प्रारम्भ हुआ और साथ साथ नाना प्रकारकी हँसी दिल्लगी व बातचीत भी होने लगी। एक शब्द या वाक्यको लेकर सब अतिथि लोग अपनी अपनी भाषामें उसका अनुवाद करते और हँसते थे। धीरे धीरे भोजन समाप्त हुआ व हम लोग दीवानखानेमें आये।

यहाँ फिर वही खेल-कूद प्रारम्भ हुई। थोड़ी देरमें सब लोग बाहर गये। वहाँ सबकी एक तस्वीर ली गयी। फिर हमलोग 'कोस्टिंग' करने चले। थोड़ी देर कोस्टिंग करनेके उपरान्त कुछ लोग भीतर चले गये, कुछ लोग आगे बढ़ गये पर थोड़ी देरमें वे भी लौट आये।

देखते देखते सन्ध्या हो गयी और क्रिस्मस वृक्षपर प्रकाश करनेका समय आ गया। घरके सब लोग अतिथियोंके सहित वृक्षके चारों ओर एकत्र हो गये। गृहपतिने सब मोमबत्तियोंको प्रकाशित कर दिया। बिजलीकी रोशनी गुल कर दी गयी, केवल वृक्षका ही प्रकाश रह गया। अब महिला-समाजने बड़े मधुरस्वरमें गाना प्रारम्भ किया। अहा! कैसा मधुर स्वर था! गाना सुनकर हृदयमें प्रेम-स्रोत उमड आया—देखें ऐसी उमंग, ऐसी खुशी, ऐसा प्रेम, ऐसी सादगी हमारे त्योहारोंमें कब आती है।

गानके उपरान्त गृहिणी एक चौकीपर बैठ गयी और उसके सम्मुख नाना प्रकारकी वस्तुओंसे भरा एक बड़ा टोरा ला रखा गया। इसमें क्रिस्मसकी भेंट थी। अधिकांश भेंट घरके बालकके लिये ही थी जो मातापिता व बन्धु-बान्धवोंके यहाँसे आयी थी, और एक एक पदार्थ अतिथियोंके लिये था—सब वस्तुएँ कागजमें लपेटी हुई थीं, उनपर नाम लिखे थे। माता एक एकको उठाकर बालकको देती जाती थी, बालक उसे भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको उनके नामके अनुसार देता जाता था। बालककी वस्तुओंको माता स्वयं खोलकर बालकको उसका अभिप्राय समझाती थी और बालक उसे प्रेमसे ले गद्गद् हो सबको दिखाता था। सभी उसकी भोली खुशीपर प्रमुदित होते थे। थोड़े समयमें इसका भी अन्त हुआ। फिर भोजनका समय आ गया। सभी लोग फिर भोजनालयमें उपस्थित हुए। भोजनके उपरान्त बालकके नेत्र बांधे गये और उससे कहा गया कि सैण्टा क्रूज़ (Santa Cruz) आते हैं। (यह यहांकी चाल है कि इस प्रकार बच्चेको बहका कर उसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ दी जाती हैं और कहा जाता है कि यह सैण्टा क्रूज़ बाबा दे गये हैं। ये बाबा सालमें एक बार क्रिस्मसमें बालकोंको भेंट दे जाते हैं। उन्हें कोई बालक देखता नहीं।)

अब पिता एक लिल्ली घोड़ा ले आया। बालकको उसके भीतर खड़ा करके उसे आधा घोड़ा आधा बालकसा बना दिया। माताने बालकको बड़े शीशेके पास खड़ा कर उसकी आंखें खोल दीं। बालक अपना वेश देख चकित हो गया और इधर उधर घोड़ेकी भांति कूदने लगा। थोड़ी देरतक इस प्रकार सब लोग हँसते रहे। फिर अतिथियोंने विदा हो घरकी राह ली। चलते समय सबको थोड़ी थोड़ी मिठाई, या प्रसाद कहिये, दी गयी। इस प्रकार आजके दृश्यका अन्त हुआ। मैंने अपने मित्रसे, जो अर्थशास्त्रके एक विख्यात अध्यापक हैं, क्रिस्मस वृक्ष व सैण्टा क्रूज़की उत्पत्तिका हाल पूछा किन्तु उन्हें वह ज्ञात नहीं था। वे केवल यही बता सके कि यह ईसाई धर्मके पूर्वसे ही ड्रूइड (Druid) धर्मके अनुसार जाड़ोंका त्योहार है किन्तु यह अब ईसाई त्योहार बना लिया गया है, अर्थात् बगैर जाने पाश्चात्य लोग भी कई बातोंमें पुरानी लकीरके फकीर हैं और उससे घृणा नहीं करते।

तीसरा परिच्छेद ।

बोस्टन नगरका वृत्तान्त ।

आज मुझे इस देशमें आये प्रायः एक मास नौ दिन हो गये किन्तु मैंने यहाँका कुछ वृत्तान्त अंकित नहीं किया--कारण, आलस्य ।

कलतक मैं न्यूयार्कमें ही था । कल ही वहाँसे चलकर बोस्टन नगरमें आया । न्यूयार्क किस प्रकारका नगर है, वहाँ कौन कौन वस्तुएँ देखने योग्य हैं उनका वृत्तान्त न देकर मैंने कल रेलकी यात्रामें जो कुछ देखा है इस समय उसीके अंकित करनेकी इच्छा है ।

न्यूयार्कसे बोस्टन नगर रेलद्वारा प्रायः ५ घण्टेका रास्ता है। इस हिसाबसे इसकी दूरी भी २०० मीलसे कम नहीं है । हम लोग १२ बजे दिनकी गाड़ीसे चलकर ५ बजे सायंकाल यहाँ पहुंचे थे ।

आजका दिन बड़ा सुहावना था, धूप निकली हुई थी, प्रकृतिकी छटा देखनेमें खूब आनन्द आ रहा था। जिस मार्गसे हमारी गाड़ी जा रही थी वह नाना प्रकारके सुन्दर दृश्योंसे पूर्ण था। मार्गमें अनेक छोटे छोटे ग्राम थे किन्तु ग्रामके नामसे आप लोग अपने देशके टूटे फूटे टपकते हुए छप्परों तथा मट्टीकी दीवारोंके घरोंका अनुमान मत कर लीजियेगा । ग्रामसे केवल इतना ही तात्पर्य है कि घनी बस्ती नहीं, छिट फुट दस दस, बीस बीस, गृहोंका समूह है । किन्तु ये सब गृह सुन्दर ईंटों अथवा लकड़ीके बने हुए थे, सबकी खिड़कियोंमें पर्दे लगे हुए थे। खिड़कियोंकी राह भीतरका दृश्य भी मनोहर देख पड़ता था । भीतर छोटे छोटे पौधोंके गमले दृष्टिगोचर होते थे, टेबुल, कुर्सी भी देख पड़ती थी । धूपके कारण बाहर डोरीकी अर्गनी बाँध कर कपड़े भी सूखनेको डाले हुए थे जिनके देखनेसे ज्ञात होता था कि घरमें रहने वाले क्षुधित निर्वस्त्र मनुष्य नहीं हैं, बल्कि सांसारिक सुखकी सामग्रीसे भरपूर सुखी मनुष्योंका यह वासस्थान है । यहाँ यह भी कह देना अनुचित न होगा कि अमरीकामें जीवन निर्वाहका व्यय बहुत अधिक है अर्थात् जिस प्रकारसे वहाँ मामूली श्रेणीके मनुष्योंको रहना पड़ता है उसमें बड़ा व्यय होता है इसी कारण वहाँ मजूरी भी अधिक मिलती है। मामूली फावड़ेसे जमीन खोदने वालोंको भी ८ घण्टे दिनमें काम करनेके बदले प्रायः प्रतिदिन ३ डालर मिलते हैं जो ९) रुपयेके बराबर हुआ । मैं आपके मनोरंजनार्थ एक मेमार अर्थात् मकान बनानेवाले राजके गृहका समाचार सुनाता हूं--

न्यूयार्कमें मेरे पूर्व परिचित एक अंगरेज सज्जनके पुत्र रहते हैं। आप यहाँ मेमारीका काम करते हैं। आपकी आय ५ डालर प्रतिदिन है। आपने मुझे एक दिन भोजनार्थ निमंत्रित किया था। शहरके बाहर चौमंजलेपर आपका निवासस्थान है। आपके पास दो कमरे हैं। एकमें सोने व बैठनेका प्रबन्ध है, दूसरेमें भोजन करने और पाकका प्रबन्ध

स्वाधीनताकी घोषणा

[पृष्ठ—६३]

तीसरा परिच्छेद।

बोस्टन नगरका वृत्तान्त

आज मुझे इस देशमें आये प्रायः एक मास [illegible] दिन हो गये किन्तु मैंने यहाँका कुछ वृत्तान्त अंकित नहीं किया—कारण, आलस्य।

कलतक मैं न्यूयार्कमें ही था। कल ही वहाँसे चलकर बोस्टन नगरमें आया। न्यूयार्क किस प्रकारका नगर है, वहाँ कौन कौन वस्तुएँ देखने योग्य हैं उनका वृत्तान्त न देकर मैंने कल रेलगाड़ी मार्गमें जो कुछ देखा है इस समय उसीके अंकित करनेकी इच्छा है।

न्यूयार्कसे बोस्टन नगर रेलद्वारा [illegible] घण्टेका रास्ता है। इस हिसाबसे इसकी दूरी भी २०० मीलसे कम नहीं है। हम लोग १२ बजे [illegible] चलकर ५ बजे सायंकाल यहाँ पहुंचे थे।

आजका दिन बड़ा सुहावना था, धूप निकली हुई थी, प्रकृतिकी [illegible] में खूब आनन्द आ रहा था। जिस मार्गसे हमारी गाड़ी जा रही थी वह नाना प्रकारके सुन्दर दृश्योंसे पूर्ण था। मार्गमें अनेक छोटे छोटे ग्राम थे किन्तु ग्रामके नामसे आप लोग अपने देशके टूटे फूटे टपकते हुए छप्परों तथा मट्टीकी दीवारोंके घरोंका अनुमान मत कर लीजियेगा। ग्रामसे केवल इतना ही तात्पर्य है कि घनी बस्ती नहीं, छिट फुट दस दस, बीस बीस, गृहोंका समूह है। किन्तु ये सब गृह सुन्दर ईंटों अथवा लकड़ीके बने हुए थे, सबकी खिड़कियोंमें पर्दे लगे हुए थे। खिड़कियोंकी राह भीतरका दृश्य भी मनोहर देख पड़ता था। भीतर छोटे छोटे पौधोंके गमले दृष्टिगोचर होते थे, टेबुल, कुर्सी भी देख पड़ती थीं। कहीं [illegible] डोरीकी अर्गनी बाँध कर कपड़े भी सुखनेको डाले हुए [illegible] मालूम होता था कि घरमें रहने वाले क्षुधित निर्धन मनुष्य नहीं हैं, बल्कि सांसारिक सुखकी सामग्रीसे भरपूर सुखी मनुष्योंका यह वासस्थान है। यहां यह भी कह देना अनुचित न होगा कि अमरीकामें जीवन निर्वाहका व्यय बहुत अधिक है अर्थात् जिस प्रकारसे वहाँ मामूली श्रेणीके मनुष्योंको रहना पड़ता है उसमें बड़ा व्यय होता है इसी कारण वहाँ मजूरी भी अधिक मिलती है। मामूली फावड़ेसे जमीन खोदने वालोंको भी ८ घण्टे दिनमें काम करनेके बदले प्रायः प्रतिदिन ३ डालर मिलते हैं जो ९) रुपयेके बराबर हुआ। मैं आपके मनोरंजनार्थ एक मेमार अर्थात् मकान बनानेवाले राजके गृहका समाचार सुनाता हूं—

न्यूयार्कमें मेरे पूर्वपरिचित एक अंगरेज सज्जनके पुत्र रहते हैं। आप वहाँ मेमारीका काम करते हैं। आपकी आय ५ डालर प्रतिदिन है। आपने मुझे एक दिन भोजनार्थ निमंत्रित किया था। शहरके बाहर चौमंजलेपर आपका निवासस्थान है। आपके पास दो कमरे हैं। एकमें सोने व बैठनेका प्रबन्ध है, दूसरेमें भोजन करने और पाकका प्रबन्ध

स्वाधीनताकी घोषणा [पृष्ठ--६३]

है। आपके बैठनेके कमरेमें सुन्दर गलीचा बिछा था। एक ओर उत्तम पीतलका पलंग पड़ा था जिसपर खूब साफ बिस्तर था, बीचमें मेज थी, ५, ६ अच्छी कुर्सियाँ थीं, दो आलमारियोंमें पुस्तकें भरी थीं और इधर उधर ताकोंपर सजावटके सामान थे। ऐसे सामान भारतवर्षमें जमींदार साहूकारोंकी तो क्या गरीबोंको लूटनेवाले वकीलों तथा बड़ी बड़ी तनख्वाहसे भी सन्तोष न कर ऊपरी आमदनी करनेवाले लोगोंके घरोंमें भी नहीं देखनेको मिलते। इसपर तारीफ यह कि यहाँ उनके पास कोई नौकर भी नहीं, सिर्फ गृहिणी ही भोजन इत्यादि बनाती है, बर्तन मांजती है और घरको भी साफ करती है, किन्तु घरके सब पदार्थ आरसीकी भाँति चमकते थे और सब वस्तुए अपने अपने स्थानपर थीं। अब आपके भोजनका हाल सुनिये। प्रथम तो चकोतरा, जिसे माहताबी भी कहते हैं, आया, फिर एक प्रकारका मांड़ आया, पीछे तीन प्रकारकी तरकारी आयी, फिर अंडोंका बना सलाद आया, अन्तमें फिर फल आये जिनमें अंगूर भी थे। अन्तके फलको छोड़कर बाकी इनका रोजका भोजन था। कांटे, छुरी भी सभी उत्तम चाँदीकी कलईके थे। वर्त्तमान बर्तन भी साफ और दुरुस्त थे, पास ही नहानेका घर भी बड़ा साफ सुथरा था और घरमें एक पियानो बाजा भी था। मैंने यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक इसी कारण लिखा है जिससे हमारे देशवासियोंको यहाँके रहनसहनका अन्दाजा लग जावे। यहाँ आमदनी भी अधिक है और उसीके साथ आवश्यकताएँ भी अधिक हैं। लोग कमाते भी हैं और व्यय करना भी जानते हैं, बटोरके रखते नहीं। और यही कारण है कि उनकी आमदनी जब घटने लगती है तो हाथपर हाथ धर वे सन्तोष कर चुप नहीं बैठते किन्तु आकाश-पाताल एक कर देते हैं! यहाँतक कि देशके निरीक्षकोंको झख मारकर उनकी बात सुननी पड़ती है और केवल सुननी ही नहीं पड़ती उसीके अनुसार कार्य भी करना पड़ता है। नहीं तो दूसरे ही दिन बड़े साहब कान पकड़कर कुर्सीसे उतार दिये जाते हैं और दूसरा मनुष्य वहाँ नियत किया जाता है, अस्तु।

हाँ, मार्गके ग्रामोंमें डाकघर, तार, बिजलीकी रोशनी, टेलीफोन, नलका पानी, नलद्वारा मैला बहानेका प्रबन्ध इत्यादि सब कुछ हैं। ये यहाँकी मामूली आवश्यकताए हो गयी हैं जिनके बिना काम ही चलना कठिन है।

मैंने उर्दू तथा हिन्दीके काव्योंमें खिज़ाँ अर्थात् पतझड़का वर्णन बहुत पढ़ा है किन्तु कभी देखनेका सौभाग्य नहीं मिला था, यह दृश्य यहाँ देखनेमें आया। २०० मीलकी यात्रामें एक इञ्च भी ऐसी पृथ्वी नहीं मिली जो बर्फसे न ढँकी हो। एक वृक्ष भी ऐसा नहीं देखा जिसपर एक भी पत्ती हो, हाँ बेहया चीड़के पेड़ कहीं कहीं पत्तीसहित देख पड़ते थे किन्तु अधिकांश वे ही वृक्ष थे जिनपर शहतूतकेसे पत्र लगे थे। किन्तु सब नीरस थे और सूखकर लालिमामिश्रित पीतवर्ण हो गये थे। उनपर सूर्यकी लाल किरणोंके पड़नेसे जो अनोखी शोभा देख पड़ती थी उसका वर्णन मेरी लेखनी नहीं कर सकती। अहा! ऐसा प्रतीत होता था कि मानों जंगलमें आग लगी है और वह धीरे धीरे सुलग रही है। हवाके झोंकेसे बर्फकी रेणु धूलकी भाँति उड़ रही थी और सारी प्रकृतिमें नीरसता छा रही थी, केवल प्रचण्ड हिमका राज्य था। कैलाशनिवासी शम्भुनाथके ताण्डवनृत्यके लिये यह स्थान बड़ा ही उपयुक्त जान पड़ता था।

चलते चलते थककर सूर्य भगवान् अस्ताचलमें विश्रामार्थ बैठ गये। देखते देखते

क्षितिजसे सूर्यकी अन्तिम लालिमाका भी लोप होगया, किन्तु इसी समय आकाशमें निशानाथका राज्य हो गया। रजनीश्वर अपनी सोलहों कलाओंसे निकल आये और बर्फपर अपनी ज्योत्स्ना फैलाने लगे। रेल सर्पकी भाँति इधर उधर चक्कर लगाती जा रही थी जिससे चन्द्रदेव कभी सामने, कभी पीछे, कभी बगलमें आजाते थे। इसी भाँति थोड़ी देरमें हम बोस्टनके निकट पहुंच गये। दूरसे ही नगरका दृश्य देख पड़ने लगा। धीरे धीरे गाड़ी स्टेशनपर पहुंची और आजका दिन समाप्त हुआ।

शुक्रवारको प्रातःकाल प्रायः कुछ नहीं किया, सायंकालमें युनिटेरियन चर्च* में नववर्षके नवीन दिनका महोत्सव था। वहींके निमन्त्रणपर हम लोग इस नगरमें आये थे, हम वहाँ गये। एक बड़े कमरेमें वहाँके सभापति महाशय हम लोगोंको ले गये। हम लोग भी एक किनारे खड़े हो गये। सैकड़ों नर- नारी वहाँ आये। सभी सबसे हाथ मिला अपना अपना नाम इत्यादि बताते थे। यह एक पारस्परिक सम्मिलन था। एक घण्टेके उपरान्त यह दृश्य समाप्त हुआ। उसके उपरान्त दो भारतवासी सज्जनोंकी, एक तो अध्यापक जगदीशचन्द्र बोस व दूसरे लाला लाजपतराय, जो यहाँ उपस्थित थे ब्राह्मसमाज तथा आर्यसमाजके विषयमें क्रमानुसार छोटी छोटी वक्तृताएं हुईं। इसके अनन्तर नीचे जा जलपान कर अतिथि लोग अपने अपने घर गये। मैं भी वहाँसे अपने निवासस्थानपर आ भोजनकर बाजारको गया। वहाँ "प्रकृतिकी पुस्तक" (दि बुक आफ नेचर) नामक एक खेल देखने चला गया। यह चलती तस्वीरोंके द्वारा दिखाया गया था। ये तस्वीरें रेमाण्ड एल० डिटमर (Raymand L Ditmars) महाशय न्यूयार्क पशुशाला (जूलाजिकल गार्डन्स) के निरीक्षककी बनायी हुई उनके तीन वर्षोंके अनुभवका फल हैं। इसमें नाना प्रकारके जीवोंका हाल था।

शनिवारको दोपहरके भोजनका निमन्त्रण 'बीसवीं शताब्दी क्लब' (ट्वेण्टिएथ सेन्चुरी क्लब) से मिला था। यहाँ भी मैं गया था। यहाँ कोई ३०० मनुष्य उपस्थित थे। दर्वाजा ठीक १ बजे खुला। दर्वाजेके पास भोजन करनेवालोंकी भीड़ थी। भारतवर्षकी जेवनारके सदृश ही यहाँ भी सबके सब पहिले भीतर घुसनेको उत्सुक थे। धक्कमधक्का तो नहीं कह सकते किन्तु कुछ कुछ वैसाही दृश्य हो गया था। भोजनके बाद फिर कलके उपर्युक्त दो भारतीय महानुभावोंकी वक्तृताएं हुईं। अध्यापक महाशयने अपने अद्भुत आविष्कारोंका वर्णन किया और लालाजीने देशकी स्थितिकी चर्चा की। इसके बाद ऊपर एक कोठरीमें सुलफेबाजोंका जमाव हुआ। इस छोटेसे कमरेमें कोई ५०।६० विद्वान् बैठे थे किन्तु सभी सिगरेट पी रहे थे। कमरा धूएँसे भरा था। सर्दीके भयसे कोई दर्वाजा नहीं खुला था। इससे और भी कष्ट था। खैर, यहांपर अनेक प्रश्न उपर्युक्त दोनों महाशयोंसे हुए, अधिकतर प्रश्न लालाजीसे हुए जिनके उत्तर उन्होंने अपने अनुभवके कारण बड़ी उत्तमतासे दिये। इस प्रश्नावलीसे यह

* यह एक प्रकारकी धार्मिक संस्था है जो ईश्वरमें विश्वास करती है किन्तु किसी पुस्तकको या किसी विशेष व्यक्तिको ईश्वरीय पुस्तक व मनुष्यका बचनिवाला नहीं मानती अर्थात् ईसा, मूसा, मोहम्मद इत्यादि महात्माओंको यह सम्प्रदाय ईश्वरका पुत्र या पैगम्बर नहीं समझता किन्तु उन्हें महान् पुरुष मानकर उनका सम्मान करता है।

स्वतन्त्रताके युद्धमें भागलेनेवाले सैनिकोंका स्मारक [पृ० ६३]

मालूम हुआ कि यहाँके विद्वानोंको भारतका कुछ भी ज्ञान नहीं। जो कुछ उन्हें मालूम भी है वह नितान्त भ्रममूलक व स्वार्थियोंद्वारा ही ज्ञात हुआ है। उन लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होता था कि भारतवासी अपने बच्चोंको मार नहीं डालते, अथवा उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें दो करोड़ मनुष्य केवल क्षुधासे कैसे मर गये किन्तु उसी समय २५ वर्षोंमें करोड़ों मन गल्ला प्रति वर्ष विदेश जाता रहा, अथवा विदेशियों तथा स्वदेशियोंके बीचमें झगड़ा होनेसे न्याय नहीं होता, अथवा देश-के बने हुए सूती मालपर देशमें ही चुङ्गी लगती है जिसमें विदेशी मालको हानि न हो। इन बातोंको जानकर उन्हें अचम्भा होता था। सायंकाल यह सभा समाप्त हुई और मैं वहाँसे उठ भोजन कर महाकवि शेक्सपियरका नाटक "किङ्ग जान" देखने चला गया।

रविवारको मध्याह्नके भोजनके उपरान्त महात्मा 'अमरसन्त' (एमरसन) की समाधि देखने गया। नगरके बाहर १२ मीलपर एक ग्राम है। उसीके निकट एक श्मशान है जिसका नाम "स्लीपी हालो" (निद्राखण्ड) है, उसीमें इस महात्माकी समाधि है। समाधिपर एक बिना गढ़ा हुआ सुन्दर संगमरमरका ढोंका रखा है। आसपास हजारों समाधियाँ हैं। यहां जानेमें बर्फके ऊपर चलना पड़ा था। जिस प्रकार बालूमें पैर धँसता है उसी प्रकार बित्ता बित्ता पैर हिमबालुकामें धँस जाता था। कई जगह पैर खिसक जानेसे मैं गिरा भी। सर्दी बहुत थी, रात्रिको कहीं नहीं गया।

बोस्टन नगरमें ही सबसे प्रथम यूरोपीय लोगोंने आकर अपना अधिकार इस देशमें फैलाया है, इससे यह नगर बड़े ऐतिहासिक महत्त्वका है। जब अठारहवीं शताब्दीके मध्यमें अंगरेज़ोंके जुल्मसे तंग आकर अमरीकानिवासियोंने दासत्व-शृङ्खलाको तोड़नेके लिये कटिबद्ध हो शस्त्र उठाये थे, उस समय वह प्रयत्न भी प्रथम प्रथम इसी नगरसे प्रारम्भ हुआ था। स्वाधीनताके युद्धके चिह्न व स्मरणस्तूप यहाँ अनेक हैं जिन्हें देख हृदय गद्गद हो जाता है। संसारकी विचित्र लीला है, "काने चाट कनौड़े भेंट" की कहावत बहुत सत्य है। गुलामीके पञ्जेमें पड़े हुए देशोंमें स्वतन्त्रताकी लड़ाई जब प्रारम्भ होती है तो वह प्रथम प्रथम थोड़े ही मनुष्योंके समूहद्वारा हुआ करती है। किन्तु यदि स्वतन्त्रताकी विजय हुई तो वही छोटा दल देशभक्तोंके दलके नामसे इतिहासके पृष्ठोंपर अंकित होता है और आने वाली जातियाँ इन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखती हैं, इनका अनुसरण करती हैं और ये युवकोंके हृदय-मन्दिरमें स्थान पाते और पूजे जाते हैं। यदि गुलामीका जुआ हटानेकी चेष्टा करनेवाले वीरोंकी हार हुई तो वे ही 'बाग़ी' पुकारे जाते हैं और भविष्य जाति ज़ालिमोंके डरके मारे उनके नामसे डरती है। अपनेको प्रतिष्ठित समझनेवाले लोग इन्हीं देशभक्तोंको दुष्ट, दुरात्मा, पापी कहकर पुकारते हैं और उनसे घृणा करते हैं। हा! कालकी विचित्र गति है।

सोम, मंगल, बुधवारको कोई विशेष घटना नहीं हुई। केवल बुधवारकी रात्रिको एक डाक्टरके घर गया था। इन महाशयको बोतल बटोरनेका व्यसन है। जिस प्रकार बहुतसे लोग स्टाम्प, सिक्का, तितली, मक्खी इत्यादि बटोरते हैं, आप उसी भांति बोतल बटोरते हैं। आपके यहां भिन्न भिन्न प्रकारकी ३०० बोतलें हैं, ऐसी ऐसी सुन्दर, कुरूप व विचित्र बोतलें हैं कि जिन्हें देखकर बटोरनेवालेकी बुद्धि व दिमाग़की

स्वतन्त्रताके युद्धमें भागलेनेवाले सैनिकोंका स्मारक [पृ० ६३]

मालूम हुआ कि यहाँके विद्वानोंको भारतका कुछ भी ज्ञान नहीं । जो कुछ उन्हें मालूम भी है वह नितान्त भ्रममूलक व स्वार्थियोंद्वारा ही ज्ञात हुआ है । उन लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होता था कि भारतवासी अपने बच्चोंको मार नहीं डालते, अथवा उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें दो करोड़ मनुष्य केवल क्षुधासे कैसे मर गये किन्तु उसी समय २५ वर्षोंमें करोड़ों मन गल्ला प्रति वर्ष विदेश जाता रहा, अथवा विदेशियों तथा स्वदेशियोंके बीचमें झगड़ा होनेसे न्याय नहीं होता, अथवा देशके बने हुए सूती मालपर देशमें ही चुङ्गी लगती है जिसमें विदेशी मालको हानि न हो। इन बातोंको जानकर उन्हें अचम्भा होता था । सायंकाल यह सभा समाप्त हुई और मैं वहाँसे उठ भोजन कर महाकवि शेक्सपियरका नाटक "किङ्ग जान" देखने चला गया ।

रविवारको मध्याह्नके भोजनके उपरान्त महात्मा 'अमरसन्त' (एमरसन) की समाधि देखने गया । नगरके बाहर १२ मीलपर एक ग्राम है । उसीके निकट एक श्मशान है जिसका नाम " स्लीपी हालो " (निद्राखण्ड) है, उसीमें इस महात्माकी समाधि है । समाधिपर एक बिना गढ़ा हुआ सुन्दर संगमरमरका ढोंका रखा है। आसपास हजारों समाधियाँ हैं । यहां जानेमें बर्फके ऊपर चलना पड़ा था । जिस प्रकार बालूमें पैर धँसता है उसी प्रकार बित्ता बित्ता पैर हिमबालुकामें धँस जाता था । कई जगह पैर खिसक जानेसे मैं गिरा भी । सर्दी बहुत थी, रात्रिको कहीं नहीं गया ।

बोस्टन नगरमें ही सबसे प्रथम यूरोपीय लोगोंने आकर अपना अधिकार इस देशमें फैलाया है, इससे यह नगर बड़े ऐतिहासिक महत्त्वका है। जब अठारहवीं शताब्दीके मध्यमें अंगरेज़ोंके ज़ुल्मसे तंग आकर अमरीकानिवासियोंने दासत्व-शृङ्खलाको तोड़नेके लिये कटिबद्ध हो शस्त्र उठाये थे, उस समय वह प्रयत्न भी प्रथम प्रथम इसी नगरसे प्रारम्भ हुआ था । स्वाधीनताके युद्धके चिह्न व स्मरणस्तूप यहाँ अनेक हैं जिन्हें देख हृदय गद्गद हो जाता है। संसारकी विचित्र लीला है, " काने चाट कनौड़े मेंट " की कहावत बहुत सत्य है । गुलामीके पञ्जेमें पड़े हुए देशोंमें स्वतन्त्रताकी लड़ाई जब प्रारम्भ होती है तो वह प्रथम प्रथम थोड़े ही मनुष्योंके समूहद्वारा हुआ करती है। किन्तु यदि स्वतन्त्रताकी विजय हुई तो वही छोटा दल देशभक्तोंके दलके नामसे इतिहासके पृष्ठोंपर अंकित होता है और आने वाली जातियाँ इन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखती हैं, इनका अनुसरण करती हैं और ये युवकोंके हृदय-मन्दिरमें स्थान पाते और पूजे जाते हैं । यदि गुलामीका जुआ हटानेकी चेष्टा करनेवाले वीरोंकी हार हुई तो वे ही 'बाग़ी' पुकारे जाते हैं और भविष्य जाति ज़ालिमोंके डरके मारे उनके नामसे डरती है । अपनेको प्रतिष्ठित समझनेवाले लोग इन्हीं देशभक्तोंको दुष्ट, दुरात्मा, पापी कहकर पुकारते हैं और उनसे घृणा करते हैं । हा ! कालकी विचित्र गति है ।

सोम, मंगल, बुधवारको कोई विशेष घटना नहीं हुई । केवल बुधवारकी रात्रिको एक डाक्टरके घर गया था । इन महाशयको बोतल बटोरनेका व्यसन है । जिस प्रकार बहुतसे लोग स्टाम्प, सिक्का, तितली, मक्खी इत्यादि बटोरते हैं, आप उसी भांति बोतल बटोरते हैं । आपके यहां भिन्न भिन्न प्रकारकी ३०० बोतलें हैं, ऐसी ऐसी सुन्दर, कुरूप व विचित्र बोतलें हैं कि जिन्हें देखकर बटोरनेवालेकी बुद्धि व दिमाग़को

उपजकी सराहना करनी पड़ती है । यह है स्वतन्त्रताका प्रसाद । जब मनुष्य चिन्तारहित होता है तो उसे बड़ी बड़ी बातें सूझती हैं। यहाँपर एक बोतलकी गर्दन 1½ गज़ लम्बी देखी, व दूसरी केवल आधे इञ्चमें सब कुछ थी। एक गुलाबके फूलकी आकृतिकी थी। कहाँतक कहें, हर प्रकारकी बोतलें थीं, मछली, पुरुष, जूता, रेलगाड़ी, शमादान इत्यादिके रूपोंकी बोतलें यहाँ देखीं।

बृहस्पतिवारको हमलोग हार्वर्ड विश्वविद्यालय देखने गये । यह विश्वविद्यालय बोस्टन नगरके पास केम्ब्रिज ग्राममें स्थापित है। अमरीका विद्याकी खानि है । यहाँ कई सौ विश्वविद्यालय अथवा गुरुकुल हैं। हार्वर्डका विश्वविद्यालय अमरीकाके उत्तम गुरुकुलोंमेंसे अत्यन्त उत्तम गुरुकुल समझा जाता है। यह इस देशका सबसे प्राचीन विद्यापीठ है। मैं इसका संक्षिप्त वृत्तान्त आगे लिखूँगा, यहाँ इसका गौरव दिखानेके लिये केवल इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि एक अमरीकन रमणीका पुत्र बड़ा विद्यारसिक था व पुस्तकोंसे इतना प्रेम रखता था कि उसने अपने घरपर एक अत्यन्त उत्तम पुस्तकालय बना रखा था। यह होनहार अनुभवी विद्वान् इसी हार्वर्ड विश्वविद्यालयका विद्यार्थी था। दुःखसे कहना पड़ता है कि इस मनुष्यकी सांसारिक लीलाका अन्त विख्यात टाईटानिक पोतके डूबनेके साथ हो गया। इस विद्यारसिककी दुःखिनी माताने अपने पुत्रके स्मारकरूपमें उसकी पुस्तकोंका भंडार विश्वविद्यालयको दान दे दिया। विश्वविद्यालयमें कोई सरस्वतीभवन नहीं था, इसी कारण यह देवी अपने प्यारे पुत्रके स्मारकचिह्नस्वरूप एक भवन बनवा रही हैं जिसमें २० लाख पुस्तकोंके रखनेकी जगह होगी और इसके निर्माणमें प्रायः ६० लाख रुपये व्यय होंगे। यह एक देवीका दान है। ऐसी ऐसी कई स्त्रियों तथा पुरुषोंकी कीर्त्तिके चिह्न यहाँ यात्रियोंके नेत्रोंको सुख देनेके लिये एकत्र हैं।

यहाँ घूमते हुए हमलोग विख्यात अध्यापक सी० आर० लैनमैन (C. R. Lanman) से मिलने गये। आप संस्कृत विद्याके रसिक हैं। आपका स्वभाव बच्चोंकासा ऐसा निर्मल है कि आपसे थोड़ी देर भी यदि किसीको वार्तालापका अवसर मिलता है तो उसका मन आपकी सरलताकी ओर सहज ही आकृष्ट हो जाता है। आपने किस प्रकार हमलोगोंसे प्रेमालाप किया, यह यहाँ कहना व्यर्थ है। आपकी बैठक जिसमें आप पठन-पाठनका कार्य करते हैं, संस्कृत तथा पाली पुस्तकोंसे भरी हुई है। ऐसी प्राचीन प्राचीन संस्कृतकी पुस्तकें आपके यहाँ देखीं जो काशीमें बड़े बड़े विद्वानोंके यहाँ कदाचित् ही दृष्टिगोचर हों। आप वास्तवमें इस समय हिन्दू-धर्म तथा बौद्धधर्मकी छानबीनमें लगे हैं और आपके परिश्रमसे जो संस्कृतके ग्रन्थ यहाँसे निकल रहे हैं वे बड़ी योग्यतासे संपादित होते हैं और बड़े ही उपयोगी हैं किन्तु इस उत्तम कार्यको देख मेरे ऐसे अल्पबुद्धि मनुष्यकी भी आँखोंसे आँसू निकल पड़े और मुझे एक ठंडी आह खींचनी पड़ी। क्यों ? इसीलिये कि जो काम हमारे देशी विद्वानोंके करनेका है उसे विदेशी विद्वान् कर रहे हैं और हम बैठे चुपचाप तमाशा देख रहे हैं। हा ! हमारे प्रातःस्मरणीय विद्यावारिधि विद्वानोंमें इस ओर क्यों इतनी उदासीनता है, यह समझमें नहीं आता। मुझे रह रह कर यही ख्याल होता है कि हमारे विद्वान् जहाँ एक ओर अपने अपने विषयमें अद्वितीय विद्वान् हैं वहाँ दूसरी ओर दासत्वने, स्वतन्त्र विचारके अभाव०
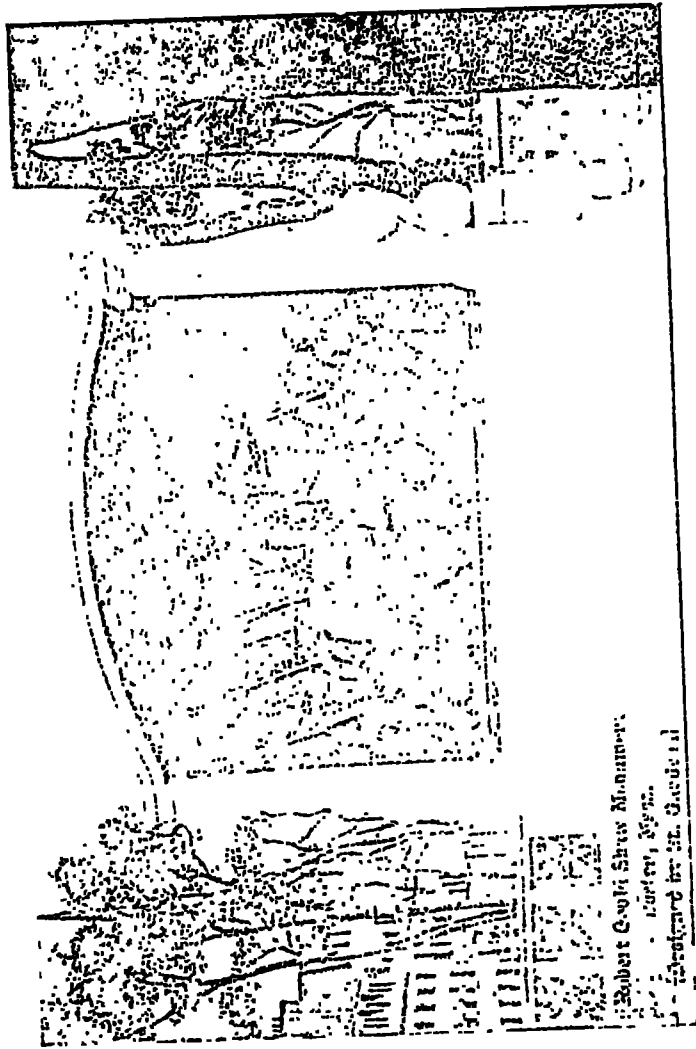
स्वाधीनताकी घोषणा (पृष्ठ ६३)

राबर्ट गोल्डशाका समाधि-स्मारक, बोस्टन (पृष्ठ ६३)

ने उन्हें उपयोगी कामोंकी ओरसे इतना उदासीन बना दिया जिसका ठिकाना नहीं। हाँ, अब कुछ नवयुवक विद्वान् उत्साह दिखाने लगे हैं, किन्तु इनका उत्साह अभी मतमतान्तर और साम्प्रदायिक झगड़ोंसे आगे नहीं बढ़ा और स्वतन्त्र विचार करनेकी ओर अभी इनकी रुचि नहीं गयी। आर्य समाजके अनेक विद्वान्, यद्यपि इस सम्प्रदायमें ऐसे वास्तविक विद्वानोंकी संख्या इनी गिनी ही है जो काम करते हैं, वास्तविक छानबीन न करके इस विचारसे ही प्रेरित होकर कार्य करते हैं कि पुराने हिन्दू अथवा आर्यग्रन्थोंमें अमुक अमुक बात नहीं होनी चाहिये क्योंकि वे ऐसा समझते हैं। बस फिर क्या, जहाँ उन्हें अपने पक्षको निर्बल करनेवाली कोई बात मिली उसे काट फेंका, किसीको अनार्य कह दिया, किसी अंशको पीछेसे मिलाया हुआ कह दिया।

मैं यह नहीं कहता कि संस्कृतकी पुस्तकोंमें पीछेसे मिलावट नहीं हुई किन्तु पुस्तकका महत्त्व उसकी उपयोगितासे समझा जाना चाहिये, न कि विचारकर्त्ताके पूर्वकल्पित विचारोंके अनुसार। आर्यसमाज अथवा किसी भी उदार संस्थाके लिये यह बड़े लाञ्छनकी बात है कि उसके विद्वान् ऐसे संकुचित विचारके हों।

इधर दूसरी ओर अपनेको सनातनधर्मी कहनेवाले विद्वानोंके बड़े अंशका तो इस ओर ध्यान ही नहीं गया है। वे यदि महात्मा मुहम्मदके दूसरे खलीफा उमरके पैरोकार समझे जावें तो ठीक होगा, जिनका विचार यह था कि संसारमें दो प्रकारकी ही पुस्तकें हो सकती हैं—एक पवित्र कुरानके खिलाफ और दूसरी उसके मुताबिक।* किन्तु जिन लोगोंका ध्यान उधर गया है वे निरे अर्द्धशिक्षित श्रेणीके लोग हैं जो बनी हुई इमारतको ढहानेका कार्य उसके निर्माण करनेके बनिस्बत अच्छा कर सकते हैं।

मैं यह लिखे बिना इस प्रसंगको नहीं छोड़ सकता कि अब समय आ गया है कि जहाँ एक ओर गुरुकुलके विद्वान् निरर्थक परिश्रमको छोड़ वास्तविक ज्ञानान्वेषणमें लग जावें वहाँ दूसरी ओर काशीकी विद्वत्परिषदसे भी मेरी यह प्रार्थना है कि वह मतमतान्तरके झगड़ोंको छोड़ केवल खोज सम्बन्धी कार्यमें लगे। यदि ऐसा करना वह उचित न समझे तो कमसे कम इतना तो अवश्य करे कि एक शाखा अपनी परिषद्की ऐसी बना दे जो केवल ज्ञानान्वेषण (रिसर्च) के कार्यमें लग जावे।

मुझे भय है कि यह वार्ता अथवा विज्ञापन बढ़ता जाता है किन्तु बिना अच्छी तरह लिखे मेरा मन नहीं मानता, अतः पाठक क्षमा करेंगे।

हार्वर्ड प्राच्य ग्रन्थमाला (हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज) के सम्पादक उपर्युक्त विख्यात विद्वान् चार्लस् रोकवेल लैनमैन महोदय हैं। यह माला हार्वर्ड विश्वविद्यालयकी ओरसे प्रकाशित व मुद्रित होती है। इसमें अभीतक निम्न लिखित ग्रन्थसुमन ग्रथित हो चुके हैं--

१–आर्यसूरकृत–"जातकमाला"–देवनागरी अक्षरोंमें।

---

*उनके ख्यालके मुताबिक दोनों प्रकारकी पुस्तकोंकी आवश्यकता संसारको नहीं है। इसी विचारसे प्रेरित हो उन्होंने सिकन्दरियाके विख्यात पुस्तकालयको जलानेका घृणित नहीं, मूर्खताका कार्य किया था। इसमें आजकल मतभेद है। अधिक विद्वानोंका मत है कि यह कार्य रोम निवासी ईसाई पुरोहितोंका था; क्योंकि ज्ञानके विस्तारसे उन्हें अपनी निर्बलताके खुल जानेका भय था।

२–विज्ञानभिक्षुकृत–"सांख्य-प्रवचन–भाष्य" रोमन अक्षरोंमें ।
३–हेनरी क्लार्क वारन कृत 'बुद्धिज्म इन ट्रान्सलेशन' ॥
४–राजशेखर कवि कृत–प्राकृतका नाटक ग्रन्थ "कर्पूरमञ्जरी"–नागरी अक्षरोंमें ।
५–६–शौनककृत–"बृहद्देवता"–नागरीमें अंगरेजी अनुवाद सहित ।
७–८–अध्यापक डब्लू० डी० भिटनी अनूदित "अथर्ववेद" ।
९–शूद्रककृत–"मृच्छकटिक"–नाटकका अंगरेजी अनुवाद ।
१०–'वैदिककानकार्डेन्स,–वैदिक अनुक्रमणिका–अध्यापक मारिस ब्लूमफील्ड कृत
११–पूर्णभद्रकृत–"पञ्चतन्त्र"–नागरीमें ।
१२–पञ्चतन्त्रका दूसरा संस्करण–उत्तम भूमिका सहित ।
१३–पञ्चतन्त्रका तृतीय संस्करण ४ पृथक् पाठसहित ।
१४–काश्मीरी पञ्चतन्त्र–"तन्त्राख्यायिका"
१५–भारविकृत–"किरातार्जुनीय"–जर्मनभाषामें ।
१६–कालिदास कृत–"शकुन्तला" ।
१७–"योगसूत्र"–व्यासके भाष्य तथा वाचस्पति मिश्रकी टीका सहित अंगरेजीमें ।
१८–१९–"तैत्तिरीय संहिता"–अंगरेजी अनुवाद ।
२०–ऋग्वेदमें कई बार आये हुए मन्त्रोंका समूह–'ऋग्वेद रिपीटीशन्स,
२१–२२–२३–भवभूतिकृत–"उत्तररामचरित" मूल, अंगरेज़ी अनुवाद सहित ।
२४–२५–बुद्ध साम्प्रदायिक कथा–बुद्धिस्ट लीजण्डज़
२६–२७–२८–कृष्णमिश्रकृत–"प्रबोधचन्द्रोदय" मूल, अंगरेज़ी अनुवाद सहित ।
२९–३०–"विक्रमचरित्र" अथवा "सिंहासन द्वात्रिंशक ।"

उपर्युक्त पुस्तकमालाके देखनेसे पता लगता है कि ये पाश्चात्य विद्वान् संस्कृत-के उद्धार करने व उसीके साथ साथ भारतीय सभ्यताका जगत्में प्रचार करनेके लिये कितना अधिक परिश्रम कर रहे हैं ।

इस परिश्रमके लिये हिन्दू जातिको उपर्युक्त अध्यापक लैनमैनके प्रति सदा श्रद्धा तथा सम्मानपूर्वक भक्ति करनी पड़ेगी । हिन्दू जातिपर इनसे भी बढ़कर उपकार जिन महाशयने किया है उनका नाम हेनरी क्लार्क वारन है। आपने पचास हजार मुद्राओंका दान इस निमित्त इस विश्वविद्यालयको दिया है कि उसके व्याजकी आयसे यह पुस्तकमाला बराबर छपती रहे। कितने सेठ, साहूकार, महाजन, राजा, बाबू भारतवर्षमें हैं जो ऐसे पवित्र कार्यमें एक कौड़ी भी दान देते हों, और दें भी क्यों ? क्या उन्हें और उपयोगी कामोंसे धन बचता है जो इस व्यर्थके टंटेमें लगावें ? उन्हें नाचमुजरे, गौरांगभोजन, श्वेतमूर्त्ति स्थापन इत्यादि शुभ कार्योंके सामने इसका ख्याल कहां है, अस्तु । इस महात्माको जितना साधुवाद दिया जाय थोड़ा है । अध्यापक लैनमैनका लिखा उनका संक्षिप्त पवित्र वृत्तान्त पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ नीचे दिया जाता है—

वारन-चरित

"थोड़ा समय हुआ हेनरी वारन हमारे मध्यसे उठ गये । आपके वसीयतनामेकी शर्तोंको देख हार्वर्डके मित्रोंके मुखसे एकबारगी साधुवाद निकल पड़ा । इसका कारण

यह था कि अपने संकल्पद्वारा आप 'डिवन्ती' गलीवाला अपना सुन्दर निवासस्थान विश्वविद्यालयको दे गये। इस भवनमें एक समय अध्यापक बेक (Beck) रहते थे। इसके अतिरिक्त ४५ सहस्र रुपये आप "हार्वर्ड प्राच्य ग्रन्थमाला" के लिये, ३० सहस्र रुपये दांतके रोगोंकी शिक्षाके लिये पाठशालार्थ व अन्य एक उतनी ही रकम "अमरीकन प्राचीन वास्तु शास्त्र-संग्रहालय" के निमित्त छोड़ गये।

"आप एपिक्युरियन सिद्धान्तके इतने भक्त थे कि आपका नाम अब इस दानपत्रके छपनेके उपरान्त ही बहुतसे हार्वर्डके पुत्रोंको विदित होगा। अबतक आपका नाम उनपर भी विदित न था। यद्यपि यह दान स्वयं बड़े महत्त्वका विषय है किन्तु आपकी कीर्त्ति इसीसे बस नहीं हो जाती। आपके जीवनके कुछ महान् कार्योंकी बातें नीचे पढ़ अपने नेत्रोंको कृतार्थ कीजिये।

"आपका जन्म बोस्टनमें १९११ विक्रमके २ मार्गशीर्षको हुआ था। शैशवावस्थामें गाड़ीपरसे गिर पड़नेके कारण आपकी पीठमें बड़ी चोट आयी थी जिसके कारण आप यावज्जीवन कुबड़े रहे। आपकी मानसिक प्रतिभा असाधारण श्रेणीकी थी। उसमें पवित्र चरित्र, निस्पृह भक्ति तथा उच्च विचारोंके मिल जानेसे मानो सोनेमें सुगन्धि मिल गयी थी।

"किन्तु इस दुर्घटनाके कारण आपको संसारमें अपनी शक्तियोंकी परीक्षाका बहुत कम अवसर मिला। बालकपन तथा यौवनावस्थामें अपने इस अङ्गभङ्गके कारण आपको संसारमें वे बहुतसे सुअवसर नहीं मिले जो दूसरोंको मिल जाते हैं, किन्तु आप शूरवीरोंकी भाँति हताश नहीं हुए और अपने उद्यममें लग गये।

"आपकी विशाल प्रतिभाका अनुमान आपके उन उच्च विचारोंसे लगने लगा जो इतनी अवस्थामें विरलोंमें पाये जाते हैं। अभी आप कालेजमें ही थे कि दर्शनके इतिहासमें अपनी लगनके कारण आप अध्यापक पामरके प्रेमभाजन बन गये। आप धीरे धीरे प्लेटो, कांट व शोपेनहारके बुद्धिमान् शिष्य बन गये। आपका स्वाभाविक ध्यान काल्पनिक प्रश्नोंकी ओर अधिक था, इसका पता हमें आपकी बौद्ध-धर्म सम्बन्धी विद्वत्तापूर्ण खोजोंसे लगता है। किन्तु इसीके साथ जगत्‌की वस्तुओंकी ओर भी आपका ध्यान कम नहीं था। हमारी यह निश्चित धारणा है कि आप एक बड़े प्रतिभाशाली वैज्ञानिक भी हो जाते क्योंकि आपमें वस्तुओंकी छानबीनकी शक्ति अपार थी। आप वनस्पतिशास्त्रके अध्ययनमें अपने अणुवीक्षण यन्त्रका बड़ा ही सदुपयोग करते थे। आपने रसायनशास्त्रका भी अध्ययन किया था व जीवन पर्यन्त एक उत्तम मत्स्यागार (अक्वेरियम) आपके निकट सदा ही आपकी बुद्धिके प्रसारकी साक्षी देनेको बना रहता था। किन्तु बहुधा विवश होकर आपको इन विषयोंकी जांचपड़तालमें दूसरोंकी खोजका ही सहारा लेना पड़ता था और इसी कारण आपकी जानकारी इन वैज्ञानिक विषयोंमें बहुत थी। आपने इनको अपने अन्य कठिन परिश्रमवाले कार्योंके बीचमें मन[illegible] भी ऊँच[illegible] रुख छोड़ा था। कभी कभी जब आप अपना निर्दिष्ट काम करते करते बहुत [illegible] यात्रियोंके भ्रमणवृत्तान्त तथा उपन्यास भी पढ़ा करते थे। किन्तु आपकी बुद्धि इत[illegible] खर थी कि आप कभी जर्मन, कभी डच, कभी फरांसीसी, कभी स्पानि[illegible] या रूसी भ[illegible] मनबहलावका कार्य करते थे।

"आपके विशेष अध्ययनका विषय, जिसमें आपने ख्याति पायी है, प्राच्य दर्शन शास्त्र था, सो भी विशेष करके बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी। इस अध्ययनमें आप किसी विशेष मतके खोजनेके विचारसे प्रवृत्त नहीं हुए किन्तु विशाल शास्त्रीय तत्त्वका अन्वेषण करनेके विचारसे ही आप इस कार्यमें लगे थे। आपने हार्वर्डमें ही संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया था व बी० ए० पास हो जानेके उपरान्त अध्यापक लैनमैनसे तथा उनके शिष्य अध्यापक ब्लूमफील्डसे उसका अधिक अध्ययन किया। संवत् १९४१ में आपकी लन्डनयात्रा और वहां राईडेविडस् महाशयसे भेंट आपके पाली भाषाके अध्ययनमें जीवन अर्पण कर देनेमें अधिक उत्साहवर्धक हुई।

"आपका प्रथम लेख एक बौद्ध धर्म-सम्बन्धी कथापर प्राविडेन्स जर्नल में १९४१ विक्रमके १० कार्त्तिक (१८८४ ई० २७ अक्तूबर) वाले अंकमें प्रकाशित हुआ था। उसके बाद 'छींक' के विश्वासपर एक लेख अमरीकन ओरियंटल सोसाइटीके जर्नलमें निकला। फिर आपका लेख 'ट्राञ्जेक्शन आफ दि इण्टरनैशनल क्रांग्रेस आफ ओरियण्टलिस्ट्स् ऐट लण्डन, में प्रकाशित हुआ। फिर इसके बाद लन्दनके जर्नल आफ दि पाली टेक्स्ट सोसायटीमें भी प्रकाशित हुआ, किन्तु ये लेख उस विशाल पोतके पेंदेमें की एकाध चैलियाँ थीं जिन्हें उन्होंने अपने उच्च विचारको प्रकट स्वरूप देनेके लिये अभी प्रारम्भ ही किया था।

"आपको अपने समयकी न्यूनता तथा भिन्न भिन्न शक्तियोंका पूरा ज्ञान था। इसीसे आपने उसे उन महान् कार्य्योंकी ओर नहीं लगाया जिनकी खोजमें अनेकानेक विद्वानों-ने अपना समय खो दिया, और फिर भी कुछ विशेष लाभ न उठा सके। उन्होंने अपना समय एक आध ही अनोखे व नये कार्यमें लगाना उचित समझा।

"परिश्रमसे अध्ययन करनेका फल आपको यह मिला कि थोड़े ही दिनोंमें पालीके पाश्चात्य विद्वानोंमें आप एक उत्तम विद्वान् गिने जाने लगे। १९५३ विक्रम में आपकी प्रथम पुस्तक 'बुद्धिज्म इन ट्रान्सलेशन' निकली। वारन महाशयकी पुस्तकका मसाला विद्यास्रोतके मुहानेसे प्राप्त किया गया था, इसी कारण आपकी पुस्तककी उत्तमता सर्वमान्य है और यह अत्यन्त प्रामाणिक समझी जाती है। आपको अपनी पुस्तकके विषयमें इङ्गलैण्ड, फ्रांस, निदरलैण्ड, भारतवर्ष तथा लंकाके विद्वानोंकी सम्मतियां पढ़ कर वास्तविक व सच्चा सन्तोष हुआ था।

"आपको कुछ दिन बाद लंकाके "सुभूति" महाशयसे भेंट करके बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ था। इस विख्यात तपस्वीने जिसकी सादगी तथा प्रेमपर चिलडर्स, फास-बाल व राईडेविडस् *प्रभृति विद्वान् मोहित थे, बड़े सौजन्यसे वारन महाशयकी प्रशंसा कर आपके उत्साहकी वृद्धि की थी और हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रहमें आपको बड़ी सहायता भी की थी। स्यामके नरपतिने अपने सिंहासनारूढ़ होनेकी पचीसवीं वर्षगांठके उपलक्ष्यमें बौद्ध धर्मके 'त्रिपतिका' नामक ग्रन्थको ३९ भागोंमें मुद्रित कराके बड़ा यश कमाया था। †इस पुस्तककी [illegible] प्रतियाँ संसारके उत्तम उत्तम पुस्त-

* Childers, Faussboll, Rhys Davids.

† वर्षगांठ मनानेका यह एक बड़ा उत्तम उपाय है। इस देशसे बहुत अधिक सभ्य देशोंके नरपति आतशबाजी उड़ा कर यह कार्य किया करते हैं।

ालयोंको भेंट की गयी थीं। वारन महाशयने हार्वर्ड पुस्तकमालाको बड़ी उत्तमतासे सुनहरी जिल्दोंमें पिरोकर आपको भेंट किया था। उसके उपलक्ष्यमें आपको त्रिपतिकाको ग्रन्थावली पानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

"बौद्धधर्म" के प्रकाशनके बहुत पूर्व ही वारन महाशय "बुधघोष" प्रणीत "वे आव प्योरिटी" (विशुद्धि मार्ग) ग्रन्थसे भलीभांति परिचित थे । इस ग्रन्थका अपूर्व संस्करण प्रकाशित करनेका आपका सच्चा संकल्प था। किन्तु उसके पूर्ण होते देखनेका सौभाग्य आपको नहीं मिला, तथापि ह्विटनी, चाइल्ड व लेनकी भांति, आशा है कि इनका भी परिश्रम निष्फल न जावेगा । "बुधघोष" की पुस्तक व "वारन" के परिश्रमका कुछ हाल यहां देना उचित है।

"विक्रमकी चतुर्थ शताब्दीमें "बुधघोष" एक बड़े विख्यात पण्डित हुए थे। आपकी शिक्षा हिन्दू धर्मके अनुसार उत्तम प्रकारकी हुई थी। बौद्धधर्ममें दीक्षित होनेके उपरान्त आप एक बहुत बड़े लेखक हो गये। आपको भारतका सन्त ऑगस्टाइन कहना अनुचित न होगा। आपका 'विशुद्धिमार्ग' ग्रन्थ बौद्धधर्मका एक प्रकारका विश्वकोष है । अध्यापक चिल्डरके कथनानुसार यह सूक्ष्म तथा उत्तम भाषामें लिखा हुआ अपूर्व ग्रन्थ है। वारन महाशय इसका शुद्ध मूल संस्करण मुद्रित कराना चाहते थे। उसीके साथ आप इसका उत्तम अनुवाद भी अनेक अन्य विशेषताओंके सहित निकालना चाहते थे। इस पुस्तकमें "बुधघोष" महाराजने अनेक पूर्व विद्वानोंके कथनोंके उदाहरण भी दिये हैं। "वारन" महाशय पुस्तककी उपयोगिता बढ़ानेके लिये इन उदाहरणोंको खोजकर उनके स्थानका पता लगाकर उनकी भी एक तालिका उसके साथ देना चाहते थे।

"इस कार्यके लिये तालपत्रपर लिखी हुई आपके पास चार भिन्न भिन्न पुस्तकें थीं। प्रथम ब्रह्मदेशकी पुस्तक इण्डिया आफिससे अंगरेजोंकी कृपासे इन्हें उधार मिली थी और दूसरी सिंघलाक्षरमें अध्यापक डेविड्ससे प्राप्त हुई थी। पाली मूल ग्रन्थका सम्पादन वारन महाशय कर चुके थे। इसके अतिरिक्त अनेक लिपिभेदोंको भी वे ठीक कर चुके थे जो बर्मी अक्षरों तथा दूसरे संस्करणोंमें पाये जाते थे। किन्तु अभी 'एपरेटस क्रिटिकस' के पूर्ण करनेमें अत्यन्त परिश्रमका काम बाकी है । अंगरेज़ी अनुवादका एक-तिहाई कार्य हो चुका है जो आपकी "बौद्धधर्म" नामकी पुस्तकमें प्रकाशित हो चुका है और आधे प्रमाणोंका पता भी उन ग्रन्थोंसे लग चुका है जिनके आधारपर "बुधघोष" ने अपनी पुस्तक लिखी थी।

"अगर वारन महाशयका ग्रन्थ कभी प्रकाशित हुआ तो इसका पता लग जायगा कि उनके सम्पादनका ढंग ऐसा था कि उसका अनुसरण अन्य शब्दशास्त्रके तथा क्लासिकल अथवा सेमिटिक ग्रन्थोंके सम्पादन करनेमें बड़ा सहायक हो सकता है, और उनकी योग्यता इस श्रेणीकी प्रतीत होगी कि जो केवल हार्वर्डकी ही नहीं प्रत्युत अमरीकन विद्वत्ताका माथा भी ऊँचा कर देगी। यह आशा की जाती है कि उनका यह कार्य पूरा किया जायगा। यदि यह आशा पूर्ण हुई तो उसका फल उस महान् पुरुषका उत्तम स्मारक समझा जावेगा जो हार्वर्ड विद्यालयका एक प्रेमी पुत्र था।"

———

चौथा परिच्छेद ।

हार्वर्ड विद्यालय ।

केम्ब्रिज-मासाचसेट

संयुक्तराज्यमें उच्च शिक्षाका यह सबसे प्राचीन विद्यापीठ है। मासाचसेट खाड़ीके उपनिवेशान्तर्गत सार्वजनिक समिति द्वारा संवत् १६९३ के ११ कार्तिकको यह विद्यालय स्थापित हुआ था। इसका जन्म "जान हार्वर्ड" महाशयकी उदारतासे सम्भव हुआ था। आप मासाचसेट उपनिवेशके अन्तर्गत चार्लसटाउनके गिर्जेके उपदेशक थे। आपने यह दान संवत् १६९५ में दिया था। संवत् १६९६ में विद्यालयको आपका नाम देकर आपकी कीर्ति चिरस्थायिनी की गयी। इस विश्वविद्यालयने १६९९ विक्रम में अपना कार्य प्रारम्भ किया था। जहाँ यह विद्यालय स्थापित हुआ था उस ग्रामका नामकरण केम्ब्रिज हुआ। इसका प्रधान कारण यही था कि इस उपनिवेशके अधिकांश प्रधान पुरुष इङ्गलैंडान्तर्गत केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके छात्र थे। हार्वर्ड महाशय स्वयं इमैनुअल विद्यालय, केम्ब्रिजके उपाधिधारी विद्वान् थे।

'नवीन इङ्गलैंडके प्रथम फल' (न्यू इङ्गलैण्डस फर्स्ट फ्रूट्स) नामक लेखमें जो संवत् १७०० में प्रकाशित हुआ था इस विश्वविद्यालयका इतिहास इस भांति पाया जाता है।

"ईश्वरने जब हमें सकुशल यहाँ पहुंचा दिया और हमने उसकी कृपासे जब अपने निवासस्थानोंका निर्माण कर लिया, अपनी आवश्यक जीविकाका प्रबन्ध भी कर लिया, परमात्माके उपासनार्थ स्थान भी बना लिये व अपने शासनार्थ राजकीय प्रबन्ध भी कर लिये तब हममें उच्चशिक्षाके प्रचार तथा प्रसारका विचार उदित हुआ। यह विचार हम लोगोंमें इस कारण उत्पन्न हुआ कि कहीं हम अपनी गाथाको इस अभावके कारण मूर्ख पादरियोंके हाथमें न छोड़ जावें, क्योंकि हमारा सामयिक पादरीसमाज एक न एक दिन कालके गालमें अवश्य ही चला जावेगा। हम इसका विचार ही कर रहे थे कि ईश्वरने हार्वर्ड महाशयके हृदयको अपनी कृपासे प्रेरित किया। आप एक ईश्वरीय विद्याव्यसनी पुरुष थे। आपने अपनी सम्पत्तिका आधा अंश लगाकर एक विद्यालय स्थापित करना चाहा। आपकी कुल सम्पत्ति १७०० पाउंड (कोई १७००० रुपये) की थी। आपने इस विद्यालयको अपना पुस्तक भण्डार भी दे दिया। आपके बाद एक अन्य दानी पुरुषने ३०० पाउंडका दान दिया व इसके अनन्तर अनेक और पुरुष इस यज्ञकुण्डमें आहुति डालते गये। इस यज्ञको संपूर्ण करनेके लिये बाकी धनरूप सामग्री औपनिवेशिक संघशक्तिने प्रदान की। विश्वविद्यालय सर्वसम्मतिसे केम्ब्रिजमें स्थापित हुआ और उसको प्रथम आहुति डालनेवाले पुरुष हार्वर्डका नाम दिया गया।"

हार्वर्ड महाशयका दान व्यक्तिगत दानोंमें प्रथम दान था जिसने अमरीकन

पृथिवी प्रदक्षिणा
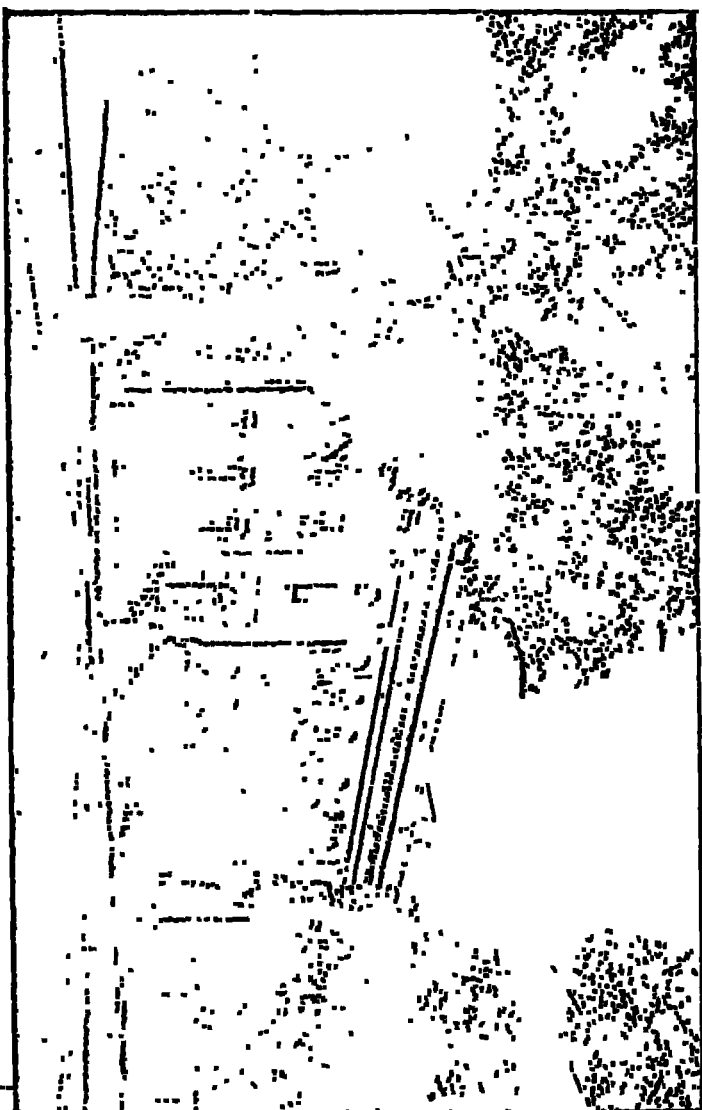
यूनिवर्सिटी हाल, हार्वर्ड विश्वविद्यालय (पृष्ठ ७०)
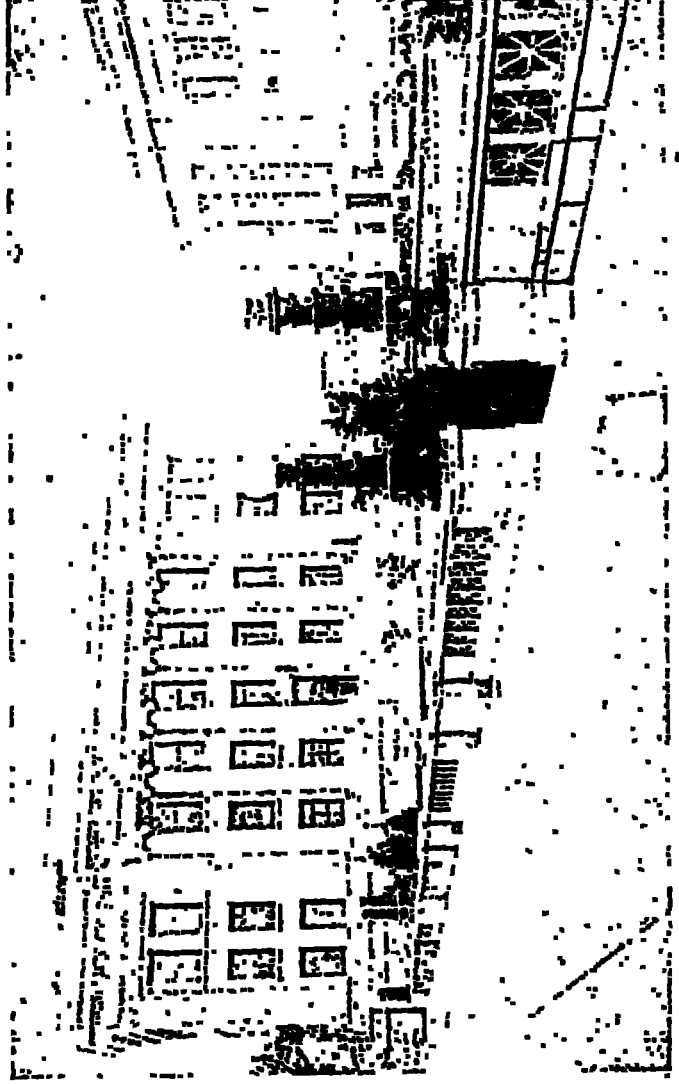
हार्वर्ड विश्वविद्यालय [मेडिकल स्कूल] (पृष्ठ ७०)

इतिहासका माथा ऊँचा किया है। उसीके साथ साथ १६९३ विक्रम का औपनिवेशिक विधान इस प्रकारका प्रथम विधान था जिसने अमरीकामें उच्चशिक्षाकी जड़ जमायी।

१६९९ विक्रम के विधानके अनुसार हार्वर्ड विश्वविद्यालयकी प्रधान सभा बनी जिसको यहां 'ओव्हरसीयर्स' कहते हैं व १७०७ विक्रम के नियमके अनुसार हार्वर्ड विद्यालयकी प्रधान समितिका निर्माण हुआ। इन नियमोंके बन जानेसे विद्यालय एक संस्थाके रूपमें आगया जिसमें एक प्रधान, पांच सभ्य व एक कोषाध्यक्ष थे। अन्तरङ्ग समितिके अधिकारमें सब सम्पत्ति आ गयी और यही समिति प्रधान सभाकी अनुमतिके अनुसार सब कार्य करनेकी शक्तिसे सम्पन्न की गयी। इसके बाद बहुतसे नियम व उपनियम बनते व बदलते रहे। १८३७ विक्रम में "विद्यालय" नामका विधान बना व अभी तक इस विद्यालयकी जड़ इसी विधानपर स्थापित है।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियोंमें इस विद्यालयके अधिकांश प्रधान आस पासके गिर्जोंके उपदेशक ही होते रहे, केवल जान राजर्स (१७३९-१७४१ विक्रम) व जान लेवर्ट (१७६५-८१ विक्रम) ये दो महाशय जनतासे लिये गये थे। इन प्रधानोंमें सबसे विख्यात इन्क्रीज मैथर* (१७४२-१७५९ वि०) व एडवर्डहोलिओक† (१७९४-१८५४ वि०) थे।

उपनिवेशमें जो कट्टर धार्मिकों तथा विचारशीलोंमें एक प्रकारका युद्ध होता रहा उसमें यह विश्वविद्यालय प्राचीन समयसे ही उदारदलका समर्थक रहा, किन्तु खुल्लमखुल्ला झगड़ा संवत् १७५७ में हुआ। यह झगड़ा काटन मैथरके चुनावके महत्त्वपर उठा जो कट्टर दलके नेता थे। आपको चुनावमें सफलता प्राप्त नहीं हुई, इस घटनासे कट्टर कैलविनिस्टिक‡ दलको अपनी कमजोरीका भलीभाँति पता लग गया। इस घटनासे दुःखित हो मेथर महाशय कनैकटिकटमें जो दूसरा विद्यालय स्थापित हो चुका था उसमें जा मिले। और आपने संवत् १५७५ में इलिहूयाले (Elihuyale) महाशयसे जो लण्दनके दानी व्यापारी थे, अपने प्रभावके कारण एक अच्छी रकम इस नवीन विद्यामन्दिरके लिये ले ली। (इस विश्वविद्यालयका नाम अब याले है)। १८ वीं शताब्दी (१७९२-१८०२) विक्रम की घटनासे विश्वविद्यालयके इतिहासमें एक और उदारताकी लकीर खिंच गयी। यह घटना प्रधान, धर्मशिक्षक व अन्यशिक्षकोंके उस धार्मिक आन्दोलनके कठिन प्रतिवाद करनेके कारण ही उपस्थित हुई थी जो विशाल जागृति 'ग्रेट अवेकनिङ्ग' के नामसे विख्यात है। इस विद्यालयने जार्ज ह्वाइट फील्ड नामी पादरीका जिसके विचारोंने नवीन इङ्गलैण्डको हिला रक्खा था घोर प्रतिरोध किया।

१८६२ विक्रम में खूब झगड़ेके बाद विश्वविद्यालयकी धार्मिक शिक्षाकी गद्दीपर पादरी§हेनरी वारेका जो युनिटेरियन मतके नेता थे, निर्वाचन हो गया। इस घटनासे यहाँके धार्मिक उदार विचारका स्रोत सम्पूर्ण वेगसे प्रवाहित हो चला। यह गद्दी होलिस|| गद्दीके नामसे विख्यात है। इस निर्वाचनका फल यह हुआ कि केलविनि दलने इस विद्यालयसे अपनी सारी सहानुभूति हटा ली और उन लोगोंने १८६५ विक्रममें ऐंडोवर थियोलोजिकल सेमीनरी¶ व १८७८ वि० में ऐमहर्स्ट कालेजकी नींव डाल

* Increase Mather † Edward Holyoke ‡ Orthodox Calvinistic
§Rev Henry Ware || Hollis ¶ Andover Theological Seminary

दी। आधी शताब्दीसे अधिक हार्वर्ड कालेज खुल्लमखुल्ला युनिटेरियन सिद्धान्तपर चलता रहा और इसकी सहायता मासचसेटके रईस लोग बोस्टनसे करते रहे।

१७ वीं व १८ वीं शताब्दीमें यद्यपि इस विद्यालयको सार्वजनिक कोषसे सहायता मिली किन्तु इसका प्रधान कार्य व्यक्तिविशेषकी ही उदारतासे चलता रहा। १७ वीं शताब्दीकी सबसे बड़ी रकम मैथ्यु हालवर्दी* महाशयकी दान की हुई १००० पाउंडकी थी। १८ वीं शताब्दीमें सबसे बड़ा दान टामस हालिसका † था। आप इंगलिश नानकानफरमिस्ट दलके पादरी थे। आपने बहुसंख्यक पुस्तकों व धनके अतिरिक्त १७७८ में हालिस गद्दी स्थापित की जो उत्तरी अमरीकाकी सबसे पुरानी धार्मिक गद्दी है।

राज्यक्रान्तिके समय कालेजने अमरीकाका पक्ष लिया था और मासाचसेटके प्रायः सब देशभक्तोंके नाम कालेजमें हैं क्योंकि इन्होंने प्रायः यहींसे विद्या प्राप्त की थी। १८३३ में जब अँगरेज़ोंने बोस्टन नगर खाली कर दिया तब प्रातःस्मरणीय महात्मा जार्ज वाशिंगटनको इस विद्यालयने एल०-एल० डी० की उपाधि प्रदान करके अपने कालेजको सम्मानित किया। आप पूर्वके शीतकालमें यहीं केम्ब्रिजमें डेरा लगाये हुए थे।

राज्यक्रान्तिके महायुद्धके समय विश्वविद्यालयकी सम्पत्ति १७००० पाउण्ड(कए लाख ७० हजार रुपये) मात्र थी। इसके अतिरिक्त कुछ और आय भी जायदादोंसे थी। यह सब सम्पत्ति कांटिनंण्ट तथा मासाचसेट उपनिवेशके ऋणमें लगी हुई थी। इस कारण राष्ट्र-दलकी जीतमें ही कालेजकी भलाई व उसके जीवित रहनेकी आशा निर्भर थी। इस बहादुरी तथा देशभक्तिका फल यह हुआ कि लड़ाईके उपरान्त इसकी सम्पत्तिका मूल्य १८२००० डालर कूता गया जो सबकी सब अच्छी जगह हिफाजतसे लगी हुई थी। १९ वीं शताब्दीमें भी यह धनराशि कालेजके पुत्रों तथा मित्रोंकी उदारतासे बढ़ने लगी यहाँ तक कि उसकी दशा आज देखने योग्य है।

१९ वीं शताब्दीमें घरेलू युद्धके पूर्व तक हार्वर्ड विद्यालयका प्रभाव बढ़ता ही गया व मासाचसेटके बाहर भी पड़ने लगा। यहाँ तक कि विद्यार्थियोंकी संख्याका पंचमांश मध्यप्रदेश तथा दाक्षिणात्य प्रदेशसे आने लगा। विश्वविद्यालयकी शक्ति नवीन इंगलैण्डकी मानसिक उन्नतिमें तनमनसे लगी हुई थी और उस समयके विद्वानोंका बड़ा अंश यहींके शिक्षाप्राप्त पुत्रोंसे बना था। विख्यात कवि लांगफेलो जो बाडविनके पढ़े हुए थे, इस विद्यालयमें १८९३–१९११ तक अध्यापक रहे और आपने अपनी सारी आयु यही केम्ब्रिजमें व्यतीत कर दी। नवीन इंग्लैण्ड-के विख्यात कवि, इतिहासवेत्ता व प्रायः सभी उदार धार्मिक नेता व प्रखर बुद्धि-सम्पन्न विचारशील दार्शनिक इसी हार्वर्डके विद्यार्थी रह चुके थे। यहाँके सबसे विख्यात प्रधानोंके नाम ये हैं—‡जान थार्नटन किर्कलैंड (१८६७–१८८५), §जोशिया क्विनसी (१८८६–१९०२) व ||जेम्स वाकर (१९१०–१९१७)। इस कालमें विद्यालयकी आयकी वृद्धि हुई, चिकित्सा, कानून, ब्रह्मविद्या व विज्ञानकी पाठशालाएँ बनीं व

*Mathew Holworthy † Thomas Hollis
‡ John Thornton Kirhland § Josiah Quincy || James Walker

पृथिवी प्रदक्षिणा
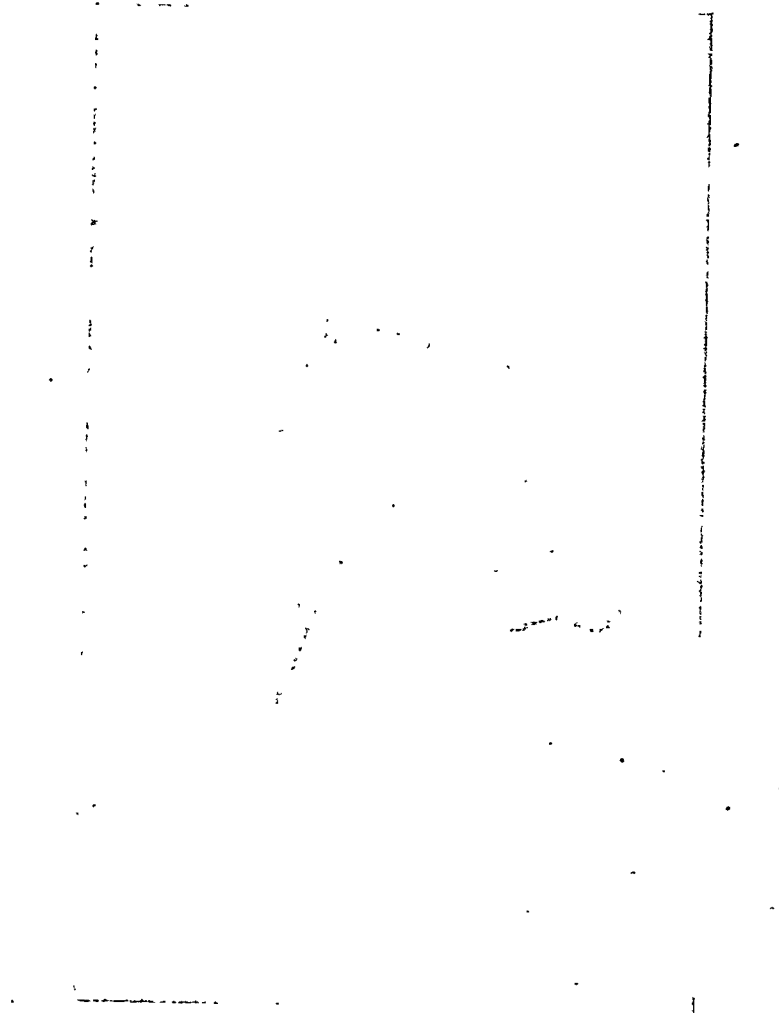
जार्ज वाशिंगटन (पृष्ठ ७२)

अध्यापक जार्ड स्पार्क्स* तथा एडवर्ड इवरेट † के यहाँ रहनेके कारण विद्यालयका नाम बढ़ा । इसके अतिरिक्त यहाँके विद्यार्थियोंमें भी निम्नलिखित विद्वान् हो गये हैं—जोजेफ स्टोरी, जार्ज टिकनर, एच० डब्ल्यू० लौंगफेलो, जे० आर० लोवेल, बेंजामिन परसी, लुईस, आगासिज, आसा ग्रे, जे० ओ० डब्ल्यू० हालवेज़ इत्यादि ।

इस कालमें बहुतसे छात्रालय व अन्यान्य भवन विद्यालयमें बढ़े व संवत् १८५७ से १९२६ तकमें इसकी सम्पत्ति ७२६००० रुपयेसे बढ़कर ६७५०००० रुपयेपर पहुंच गयी । १८६७ से १९२६ में विद्यालयके विद्वन्मण्डलकी संख्या १५ से बढ़कर २४ तक पहुंच गयी । १८६०–६१ में फ्रेशमैन क्लासकी संख्या ५७ व विद्यालयके छात्रोंकी संख्या २३३ थी, इसके अतिरिक्त बहुतसे विद्यार्थी चिकित्सा विभागमें भी थे, किन्तु १९२५–२६ में ये दोनों संख्याएँ १२८ व १०४३ हो गयीं ।

इस विद्यालयमें संवत् १८५७ तक शिक्षापर साम्प्रदायिक विचारोंका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही रहा । १८४७ में लातीन, ग्रीक, गणित ज्योतिष, अँगरेज़ी, दर्शन, साम्प्रदायिक मत व प्रकृतिदर्शन यहाँ पढ़ाये जाते थे. केवल हिबरू व फ्रांसीसी भाषाका लेना न लेना छात्रोंकी रुचिपर छोड़ा गया था । अन्तिम विषयको छोड़ अन्य सब विषय सबको पढ़ने पड़ते थे । यह शिक्षा उस समयकी आवश्यकता व विचारकी दृष्टिसे अत्यन्त उत्तम थी ।

१९ वीं शताब्दीके तृतीय चरणमें ही विद्याके स्वाभाविक प्रवाह तथा अनेक अध्यापकोंके प्रभावके कारण, जिन्होंने जर्मनीमें शिक्षा प्राप्त की थी, शिक्षाके क्रम तथा छात्रोंकी रहनसहनके व्यवहारमें बहुत उलट फेर होने लगा । जार्ज टिकनर‡ (१८७४-१८९२) के प्रभावसे शिक्षाके विषयोंका चुनाव अधिकतर विद्यार्थियोंकी रुचिपर छोड़ दिया गया और अन्य विषयों साथ, रसायन, भूगर्भ शास्त्र, इतिहास, सम्पत्ति-शास्त्र तथा अन्य अनेक आधुनिक विषय जोड़ दिये गये ।

उपर्युक्त परिवर्तनके साथ विश्वविद्यालयके शासनमें भी अनेक परिवर्तन हुए । संवत् १८५७ तक प्रायः अधिकांश फेलो पादरी लोग हुआ करते थे, किन्तु उपर्युक्त समयसे यह चाल चली कि केवल एक पादरी ही एक समयमें इसका सभ्य रह सके । इस परिवर्तनके कारण इस पदका सम्मान बहुत बढ़ गया । एक समय ऐसा हुआ कि पाँच फेलोओंमेंसे तीनमें एक जोजेफ स्टोरी§, दूसरे लम्युएल शा‖, जो दोनों सज्जन देशके प्रधान वकील थे, व तीसरे विख्यात गणितज्ञ नैथेनियल बौडिच¶ ये सज्जन चुने गये । १९०० में कंग्रीगेशनल पादरियोंके अतिरिक्त अन्य पादरियोंके लिये इस विद्यालयकी प्रधान सभाका द्वार खुल गया । इससे भी अधिक प्रभावशाली परिवर्तन यह हुआ कि प्रधान सभाके शासक दलका प्रभाव कम हो गया । उत्पत्तिके समयसे ही गवर्नर व उच्च सरकारी कर्मचारीगण उस सभाके सदस्य हुआ करते थे । किन्तु संवत् १९२२ में सदस्योंके निर्वाचनका अधिकार विद्यालयसे उत्तीर्ण हुए छात्रोंके ही हाथमें आ गया व उसी समयसे सरकारी कर्मचारियोंका कुछ हाथ विद्यालयके शासनमें न रह गया । यह उस झगड़ेका अन्तिम परि-

* Jard Sparks † Edward Everatt ‡ George Tecknor
§ Joseph Story ‖ Lemuel Shaw ¶ Nathaniel Bowditch

णाम था जिसमें कट्टर दलके पादरियोंने राजनीतिक चालबाजियोंके प्रभाव व सहायतासे कालेजके शासनमें बोस्टनके उदार विचारवालोंकी शक्तिको कम करना चाहा था पर वे हार गये। किन्तु यह जीत पाक्षिक जीत न थी। यह नये जातीय जीवनके प्रभावसे पुराने विचारोंके मनमुटावके कम होनेसे घटित हुई थी और इसके कारण विद्यालयकी उपयोगितामें कुछ फर्क नहीं पड़ा। विश्वविद्यालयकी प्रधान सभामें मासाचसेटके बाहरके लोगोंके सम्मिलित होनेकी आज्ञाके कारण विद्यालयकी सार्वजनिकता बढ़ गयी व उसकी उपयोगिताके आकारमें भी आशातीत वृद्धि हुई।

घरेलू झगड़ेके बाद हार्वर्डने उस उन्नतिमें भी हिस्सा लिया है जो सारे संयुक्त प्रदेशके उत्तरीय व पश्चिमी भागमें हुई। इसका इस समयका इतिहास वास्तवमें चार्ल्स विलियम इलियट (१९२३–१९६६) के सभापतित्व-सम्बन्धी शासनका इतिहास है। सभापति इलियट अपनी दूरदर्शिता, अनुराग तथा बुद्धि, शासनकुशलता तथा अपने उद्देश्यकी अटलता व चरित्रकी पवित्रताके कारण समयकी नवीन शक्तियोंका सद्व्यवहार करनेमें समर्थ हुए। उनके प्रभावसे विद्यालयको अनेकानेक दान मिले, जो सब मिलकर भारी सम्पत्ति हो गयी। और इसीके साथ साथ दिन प्रतिदिन बढ़नेवाले शिक्षक-मण्डलकी योग्यता व प्रेमको भी खूब सञ्चय करके आप अपने गत चालीस वर्षोंके सभापतित्वमें विद्यालयकी आशातीत उन्नति व उसकी वृद्धिको देख सके। इसी कालमें छात्रोंकी संख्या चौगुनी हो गयी व विद्यालय राष्ट्रका प्रथम विद्यामन्दिर गिना जाने लगा। देशदेशान्तरोंमें भी इसका सम्मान बढ़ गया। आपके परिश्रमसे शिक्षाप्रणालीमें इच्छानुसार विषय लेनेकी पूर्ण स्वतंत्रता छात्रोंको मिल गयी, परीक्षा व विद्यामन्दिरमें सम्मिलित होनेके ठीक नियम बन गये, और उनके अनुसार कार्य भी होने लगा। विश्वविद्यालयमें ज्ञानकी सभी शाखा-प्रशाखाओंमें शिक्षा देनेका प्रबन्ध हो गया। इसी समय उपाधि-परीक्षाकी योग्यतामें भी वृद्धि की गयी, और उसमें उदार बुद्धिसे कलाकौशल व विज्ञान सम्मिलित हुए। विशेष प्रकारके व्यावहारिक शिक्षालयोंमें प्रवेश करनेके पूर्व साधारण उपाधि प्राप्त करनेका नियम बनाया गया। साथ ही उपाधिके लिये विशेष विषयोंमें पारंगत होना भी आवश्यक किया गया। आपके शासनकालमें छात्रोंके व्यवहारमें पूर्ण स्वतन्त्रता व मानसिक बलका जान बूझकर प्रयोग हुआ और वही नियम दृढ़ता, उदार नीति व न्यायके साथ विद्वन्मण्डल तथा शिक्षकसमुदायके सम्बन्धमें भी बर्ता गया।

इस समयके प्रधान, जिनका नाम ऐबट लारेन्स लावेल* है, जब इस पदपर निर्वाचित किये गये उस समय ये विद्यालयमें शासन-शास्त्रके अध्यापक थे। अबतक इनके शासनमें यह विशेष उद्देश्य रक्खा गया है जिसके द्वारा विद्यार्थियोंको इस बातके लिये बाध्य होना पड़ता है कि वे अपनी शिक्षाके विषयोंको किसी विशेष उद्देश्यसे प्रेरित होकर चुनें। इन्होंने साधारण उपाधि-परीक्षाके पाठ्य-क्रमसे विशेष आजीविका-सम्बन्धी पढ़ाई (प्रोफेशनल और टेकनिकल) को अलग रक्खा है। इससे साधारण शिक्षाकी जड़ अधिक मज़बूत हो जाती है।

* Abbott Lawrence Lowell

जिस कारपोरेशन द्वारा हार्वर्डका शासन होता है उसमें एक प्रकारका स्वयंसनातनत्व है। यह समिति प्रधान, पांच अन्य सदस्यों(फेलोओं) तथा कोषाध्यक्षसे मिलकर बनी है। इसे धन तथा विद्यासम्बन्धी दोनों विभागोंमें आज्ञाओं तथा नियमोंको ठीक रीतिसे व्यवहारमें लानेका अधिकार है। प्रधान सभा (वोर्ड आफ ओव्हरसीयर्स) को, जिसमें विद्यालयके पुत्रों (Alumni) द्वारा ३० सभ्य नियुक्त हैं, एवं प्रधान व कोषाध्यक्ष भी उसके सभ्य होते हैं, सब कार्योंके लिये अबाध्य, विपुल किन्तु अनिश्चित अधिकार प्राप्त हैं। कारपोरेशनके सभ्योंके चुनाव तथा अध्यापकोंकी नियुक्तिमें इस प्रधानसभाकी अनुमतिकी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त और प्रधान कर्मचारियोंकी नियुक्ति भी इस प्रधानसभाकी सम्मति लेकर ही होती है। कारपोरेशन सम्बन्धी हर प्रकारके आवश्यक नियम व विद्वन्मण्डलके सम्बन्धके सब नियम इस प्रधानसभाके सम्मुख उपस्थित होते हैं। इस प्रधान सभाका यह भी कर्त्तव्य है कि अनेक छोटी छोटी समितियोंद्वारा विश्वविद्यालयके हर अंशका पूरा निरीक्षण करे और इसके सम्बन्धमें शासकसमितिको बराबर सूचित करती रहे।

प्रधान प्रत्येक विद्वन्मण्डल व शासकसभाका सदस्य है। कार्यरूपेण सब अधिवेशनोंमें उसे सम्मिलित होना पड़ता है। अध्यापक तथा अन्य उच्च कर्मचारीगण पहले प्रधानद्वारा नामाङ्कित होते हैं, तब उन्हें प्रधानसभा वा शासकसभा नियुक्त करती है। इस नियुक्तिमें विशेष शिक्षाविभागके प्रधान अध्यापककी राय भी निजी तौरपर लेली जाती है। केवल चिकित्सा विभागमें अध्यापकोंकी अन्तरङ्गसभा नये अध्यापकको नियमित रूपसे चुनती है, विशेष जीविका-सम्बन्धी पाठशालाओंमें अपने अपने विषयोंके विषयमण्डलके प्रधानों (डीन्स) को ठीक रूपसे कार्य चलाने तथा शिक्षाके निरीक्षणका पूरा भार मिला हुआ है। किन्तु आय-व्ययके चिट्ठोंको बनानेका अधिकार उन्हें नहीं है। हार्वर्ड विद्यालय तथा ज्ञान और विज्ञान (आर्ट्स एण्ड साइन्स) सम्बन्धी उपाधि-पाठशालाएँ सीधो प्रधानके ही निरीक्षणमें हैं, इनके विषयमें प्रधानको केवल छात्रोंके शासनका अधिकार है।

इस विश्वविद्यालयमें ज्ञान, विज्ञान, ब्रह्मविद्या, कानून, चिकित्सा तथा विज्ञानके प्रयोग-शास्त्रके लिये पाँच विद्वन्मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डलमें वे सब कार्यकर्ता होते हैं जिनकी नियुक्ति एक वर्षसे अधिकके लिये हुई हो। उन शिक्षकोंको जो मण्डलके सभ्य हैं एवं अन्य सब अध्यापकोंको सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त है। केवल चिकित्सा विभागको छोड़कर और सब विभागोंमें उच्च-पदाधिकारियोंको अन्य विद्वन्मण्डलोंके छोटे कार्यकर्ताओंसे अधिक कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। हार्वर्ड विश्वविद्यालयमें यह विशेषता है कि उसके ज्ञान-विज्ञान विषयक विद्वन्मण्डलके मण्डलपतिको केवल सभापतित्वके अधिकारको छोड़कर और कोई अधिकार प्राप्त नहीं है और ये बहुधा बदला करते हैं। इस नियमके कारण नौजवान भी सभापति हो जाया करते हैं, जो विद्यालयके लिये उपयोगी है, क्योंकि इस रीतिसे सहायक अध्यापक व शिक्षकोंको शिक्षासम्बन्धी चालढालपर अपना प्रभाव डालनेका अवसर मिल जाता है। यह विद्वन्मण्डल बहुत शीघ्र शीघ्र अपना अधिवेशन करता रहता है। ज्ञान-विज्ञान-मण्डल तो प्रति सप्ताह एकत्र होता है। इसे हर प्रकारके नियम बनानेका अधिकार है। छात्रोंकी देखभाल व अन्य शासन-

कार्योंका भार बड़े बड़े विद्वन्मण्डलोंमें प्रायः शासकसभाके ऊपर रखा जाता है। ज्ञान-विज्ञान-मण्डल विभाग कई समितियोंमें विभक्त है जिन्हें शासकके विस्तृत प्रपञ्चकी देखभालका पूरा पूरा अधिकार प्राप्त है।

हार्वर्ड विद्यालय इस विद्यापीठका हृदय है। ज्ञान व विज्ञान सम्बन्धी पाठशालाओंका सम्बन्ध भी इस विद्यालयसे घनिष्ट है। शासनसम्बन्धी शिक्षालय भी इस समय ज्ञान-विज्ञान मण्डलके अधीन हैं। इस समय उपाधिपरीक्षा व उसके पूर्वकी शिक्षाके लिये उपर्युक्त मण्डलमें कोई भिन्न प्रबन्ध नहीं है।

हार्वर्ड विद्यालयमें केवल परीक्षाद्वारा ही प्रवेश होता है व प्रति वर्ष अनेक छात्र प्रवेश पानेसे वञ्चित रह जाते हैं—१९६८ विक्रमके नये नियमके अनुसार प्रत्येक विद्यार्थीकी तैयारीके समयकी शिक्षाका क्रम (प्रोग्राम) पृथक् पृथक् जाँचा जाता है और यदि क्रम ठीक पाया जाता है तो उसके श्रमकी परीक्षा ४ भिन्न भिन्न विभागोंमें भी होती है—(१) अंगरेज़ी भाषा (२) लातीनी भाषा अथवा (बैचलर आफ साइन्सके विद्यार्थीके लिये) कोई अन्य आधुनिक भाषा भी (३) गणित वा भौतिक अथवा रसायन शास्त्र (४) वह दूसरी शाखा जिसे विद्यार्थी सात भिन्न भिन्न विषयोंमेंसे एक अपने लिये चुन ले। यह क्रम इसलिये बर्ता जाता है जिसमें हार्वर्ड इन सब उच्च-शिक्षाओंकी पाठशालाओंके साथ चल सके जो देशमें सर्वत्र फैली हुई हैं, और इसलिये यह क्रम पुराने तरीकेके मुताफिक रक्खा गया है, जिसके अनुसार तैयारीके समयकी शिक्षाकी परीक्षा सब विषयोंमें, जिन्हें विद्यार्थी तैयार करता था, ली जाती थी। १९५८—१९६७ विक्रममें जितने विद्यार्थी इस विद्यालयमें सम्मिलित हुए उनमें ४४ सैकड़े सार्वजनिक पाठशालाओंसे, बाकी ५६ सैकड़े व्यक्तिविशेषकी पाठशालाओंमेंसे आये थे। १९६९ के १५४ विद्यार्थियोंमेंसे ८० सैकड़े सर्वसाधारणकी व २० सैकड़े व्यक्तिविशेषकी पाठशालाओंमेंसे आये। हार्वर्ड विद्यालयकी उपाधियोंका नाम ए० बी० व एस० बी० है। इनमें विशेष अन्तर यह है कि ए० बी० के विद्यार्थियोंका प्रवेशिका परीक्षामें लातीनी भाषाकी परीक्षामें उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

हार्वर्ड विद्यालयने साधारण शिक्षा एवं जीविका-विशेषकी शिक्षाओंको एकमें मिलानेका सदा विरोध किया है और ये दोनों उपर्युक्त परीक्षाओंसे मिलायी नहीं जातीं किन्तु विद्यार्थियोंका बड़ा समूह इन दोनों परीक्षाओंकी तैयारी तीन या साढ़े तीन वर्षके परिश्रमसे कर लेता है।

ए० बी० और एस० बी०की उपाधि तथा और अन्य उपाधियाँ भी उन्हींको मिलती हैं जिन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा यहीं ग्रहण की हो किन्तु अन्य विद्यालयोंमें शिक्षाके द्वारा प्राप्त हुई उपाधियाँ यहाँ आगे पढ़नेके लिये प्रामाणिक होती हैं। गर्मीके दिनोंमें छुट्टियोंके समय पढ़नेवाले छात्रों तथा अन्य प्रकारसे (एक्सटेन्शन कोर्सेज द्वारा) शिक्षा-ग्रहण करनेवालोंकी सुविधाके लिये ए० ए० (एसोसियेट इन आर्ट्स)की उपाधि संवत् १९६७ में नियुक्त की गयी है। इस उपाधिके लिये भी उतने ही पाठोंका पढ़ना आवश्यक है जितना अन्य दोनों उपाधियोंके लिये है किन्तु इसके लिये प्रवेश-परीक्षा व छात्रालयमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है। पत्रव्यवहारसे प्राप्त शिक्षाके लिये कोई उपाधि नहीं मिलती।

संवत् १९४३ से गिरजेकी हाजिरी छात्रोंके लिये आवश्यक नहीं गिनी जाती। विश्वविद्यालयके गिरजेमें प्रतिदिन प्रातः काल ईश्वरवन्दना होती है, रविवारको उपदेश भी होता है।

धार्मिक कार्यवाहीके निरीक्षणार्थ पाँच भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके पादरी नियुक्त हैं। इनपर एक प्रधान है जो विद्यालयमें रहनेवाला अध्यापक होता है और वह विद्यालयका पुरोहित (पैस्टर) समझा जाता है। उपर्युक्त प्रत्येक पादरी लगातार कई सप्ताहोंतक उपदेश देता तथा उपासना कराता है एवं छात्रोंसे शंका-समाधान भी कराता है। गिरजेके कार्यमें मामूली छात्रमण्डलियोंद्वारा सहायता मिलती है। ये मण्डलियाँ भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके गिरजों तथा रोमन कैथोलिक सम्प्रदायकी हैं।

विद्यालयके भिन्न भिन्न विभागोंका लेखा, उनकी स्थापनाकी तिथि, छात्रोंकी संख्या (१९६९–१९७०) विद्वन्मण्डलोंके सभ्योंकी संख्याके सहित नीचेकी तालिकामें दी जाती है। भिन्न भिन्न विद्वन्मण्डलोंके सभ्योंकी संख्या दोबारा आये हुए नामोंको छोड़कर १९६९–१९७० में २४९ थी। इसके अतिरिक्त सालाना पदाधिकारियोंकी संख्या जो शिक्षकका कार्य करते हैं, ५०० थी।

	किस संवत में स्थापित हुआ।	१९६९-७० के छात्रोंकी संख्या	सभापति सहित विद्वन् मण्डलके सभ्योंकी संख्या
ज्ञान-विज्ञान मण्डल	...	...	१६६
हार्वर्ड विद्यालय	१६९३	२३०८	...
ज्ञान-विज्ञान-उपाधि पाठशाला	१९२९	४६३	...
कलाकौशल-शिक्षा-सम्बन्धी उपाधिशाला	१९६५	१०७	...
ब्रह्मविद्या मण्डल (ब्रह्मविद्यालय)	१८७६	४८	७
व्यवहार धर्मशास्त्र मण्डल (कानून पाठशाला)	१८७४	७४१	११
चिकित्सा मण्डल	...	...	६१
चिकित्साशाला	१८३९ / १९६३	२९०	..
दांतके रोगोंकी शाला	१९२४	१९०	...
विज्ञान-प्रयोग-शास्त्र मण्डल	...	...	३९
प्रयोगात्मक विज्ञान-उपाधि-शाला	१९०४ / १९६३	१३२	...
जोड़	...	४२७९	...
सम्बद्ध छात्र (एफिलीएटेड स्टूडेण्ट्स)	...	...	...
विशेष छात्र (एक्सटेन्शन् स्टूडेण्ट्स) *	१९६७	९	...
१९६९ की गर्मियोंकी ज्ञान-विज्ञानशाला	१९२८	८२३	...
१९६९ की गर्मियोंकी चिकित्साशाला	१९४६	२१८	...
१९६८-६९ की चिकित्सा-उपाधि-शिक्षा	१९२९	१५६	...

*४१० विद्यार्थियोंके अतिरिक्त जिन्हें विद्यालयकी अधीनतामें बोस्टनमें शिक्षा मिलती है।

आजीविका-सम्बन्धी उपाधिके शिक्षालयमें प्रवेशार्थ किसी प्रामाणिक विद्यालयकी उपाधिकी आवश्यकता सर्वदा होती है। दाँतके रोगोंकी पाठशालामें प्रवेश पानेके लिये इसकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु यहाँ प्रवेशिका परीक्षा ली जाती है।

आजीविका-सम्बन्धी शिक्षामें जो विशेष उन्नति अभी हुई है वह प्रयोगात्मक विज्ञान्के सम्बन्धमें है। जो लारेन्स विद्यालय उपाधिसे नीचेकी शिक्षाके लिये था उसका स्थान अब प्रयोगात्मक उपाधि-विज्ञान-विद्यालयने ग्रहण किया है। इस विद्यालयमें—वास्तु-विद्या (साधारण वास्तु-विद्या, यन्त्र-वास्तु-विद्या, विद्युत् वास्तुविद्या—सिविल, मिकैनिकल, इलेक्ट्रिक इञ्जिनियरिङ्ग), आखनिक शास्त्र (माइनिङ्ग), धातुशोधन शास्त्र (मेटलरजी), निर्माणशिल्प शास्त्र (आर्किटेक्चर), भूप्रदेश शिल्प शास्त्र (लैंड्सकेप आर्किटेक्चर), आरण्यशास्त्र (फारेस्टरी) और प्रयोगात्मक जीवशास्त्र (अप्लायड बायलोजी)—ये आजीविका सम्बन्धी विद्याएँ पढ़ायी जाती हैं।

अभी हालमें (१९५९) स्थापित कार्य्य-शासन सम्बन्धी उपाधिशालामें निम्नलिखित विषय पढ़ने होते हैं—बही खाता, वाणिज्यविषयक नियम, औद्योगिक प्रयुक्ति, वाणिज्य तथा व्यापार-सम्बन्धी शासन, महाजनी और सराफेके काम (बैकिङ्ग ऐण्ड फाइनैन्स), माल भेजना मँगाना (ट्रैन्सपोर्टेशन्) व बीमा। ये सब विषय उपाधिधारी छात्रोंको कारबारमें उचित निर्दिष्ट आसन दिलाते हैं।

ब्रह्मविद्याका विद्यालय पूर्वमें युनिटेरियन सम्प्रदायके अनुसार था किन्तु अब अन्‌डिनोमिनेशनल सम्प्रदायके अनुसार चलता है, और इसके विद्वन्मण्डलमें तीन सम्प्रदायोंके अध्यापक हैं। इसके साथ ऐण्डोवर थियोलोजिकल सिमीनरी सम्मिलित हो गयी है। इसका कारण इस संस्थाका केम्ब्रिज नगरमें १९६५ में आगमन तथा यहाँके विद्यालयके साथ सम्बद्ध होना है। इन दोनों शिक्षालयोंका पाठ्य-क्रम इस भाँति बनाया गया है कि उनमें आपसमें मिलकर एक प्रकार पूर्णत्व आगया है।

रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा विषयक पाठशालाओंके लिये मासाचसेटके साधारण चिकित्सालय तथा बोस्टन नगर चिकित्सालय व अन्य १० से अधिक चिकित्सालयों तथा औषधालायोंमें प्रबन्ध किया गया है। इस विषयमें पीटरबेण्ट ब्रिंघम चिकित्सालय* की चिकित्साशालाके निकट बन जानेसे और सहायता मिली है। इस चिकित्सालयका प्रबन्ध उसके दाता तथा चिकित्साशालाके कार्यकर्त्ताओंकी संघशक्तिसे होताहै। ऐसा ही प्रबन्ध बहुतसे अन्य चिकित्सालयोंके सम्बन्धमें भी है।

विश्वविद्यालयमें भिन्न भिन्न प्रयोगशालाओंको छोड़कर विशेष विज्ञान-संबंधी संस्थाएँ ये हैं–खनिज पदार्थोंका संग्रहालय (१८५०) [मिनरालोजिकल म्युज़िअम], बनस्पति उद्यान (१८६४) [बोटानिकल गार्डन],वेधशाला (१९००) [एस्ट्रानामिकल आबजवटरी] चिड़ियाखाना या पशुशाला (१९१६) [म्युज़ियम आव कमपरेटिव जुआलाजी] ग्रे हरबेरियम (१९२१), पीबाडी म्युजिअम आफ अमेरिकन आरकेआलॉजी व इथनॉलाजी, (१९२३), बिसी साहबकी कृषि-सम्बन्धी-संस्था (१९२८), आरनाल्ड आरबोरेटम (१९२९) व जङ्गलात (१९६४) (हार्वर्ड फॉरेस्ट पीटरशाम माल)।

विद्यालयके प्रधान पुस्तकालयके लिये विडेनर स्मारक पुस्तकालय (विडेनर

*Peter Bent Brigham Hospital

मेमोरियल लाईब्रेरी) बन रहा है किन्तु भिन्न भिन्न विभागोंका पुस्तकालय अलग अलग है। कानूनके पुस्तकालयमें (संवत १९६९ में) १, ४८,००० पुस्तकें व १७,५०० गुटके थे। कम्पैरिटिव जूआलोजीका पुस्तकालय विशेष उपयोगी है। ब्रह्मविद्या सम्बन्धी पुस्तकालय अब ऐण्डोवर सिमीनरी पुस्तकालयके साथ मिला दिया गया है और इसका नाम ऐण्डोवर हार्वर्ड थियोलाजिकल पुस्तकालय हो गया है। यहाँ एक लाख पुस्तकें और ५० हजार गुटके हैं। विश्वविद्यालयके प्रधान पुस्तकालयमें (१९६९में) ६८,६४,९०० पुस्तकें व गुटके थे किन्तु इसकी प्राचीनता, पुस्तकोंका संग्रह व अनमोल पदार्थोंकी दान-प्राप्ति आदिसे इसकी उपयोगिता इसके आकारसे कहीं अधिक बढ़ जाती है।

इस विश्वविद्यालयके साथ रेडक्लिफ विद्यालय भी सम्बद्ध है। यह पाठशाला स्त्रियोंकी है। यह १९३६ में अन्य नामसे स्थापित हुई थी। ऐण्डोवर थियोलोजिकल सिमिनरी १८६५ में स्थापित हुई थी जिसका वृत्तान्त अन्यत्र आचुका है। सामाजिक कार्यकर्त्ताओंकी पाठशाला (स्कूल फार सोशल वर्क्स) भी १९६१ में स्थापित हुई थी।

जो लोग भिन्न भिन्न आजीविकाओंके कार्योंमें सम्मिलित हैं उन्हें विशेष रूपसे शिक्षा देनेके लिये केवल गर्मियोंकी पाठशालाओंमें ही नहीं किन्तु जाड़ोंमें भी बोस्टन नगरमें एक समिति द्वारा प्रबन्ध होता है जो हार्वर्ड, टफ्टस्, मासाचसेट औद्योगिक संस्था व बोस्टन कालेज, बोस्टन विश्वविद्यालय, बोस्टन संग्रहालय, वेल्सबी व साइमनकी प्रतिनिधि है *।

विश्वविद्यालयके कार्यमें (जमींदारीओंको छोड़कर) ५०० एकड़ जमीन केम्ब्रिज व बोस्टनमें घिरी है। इसके साथ ये और अन्य भूमियाँ भी हैं--वास्तु-शास्त्र सम्बन्धी ७०० एकड़ जमीन स्काम फीलपर हैं, न्युहैम्पशायर हार्वर्ड वन २००० एकड़ † है। इस समय भिन्न भिन्न इमारतोंका मूल्य ८०,०००,०० डालर अर्थात् ढाई करोड़ रुपया है। १९६९ की जुलाईमें यह सम्पत्ति जिससे विश्वविद्यालयकी आय होती है २,६०,०००,०० डालर अर्थात् ७ करोड़ ८० लाख रुपयेके मूल्यकी थी। १९६८-६९ की कुल आय २४, ८५, ००० डालर अर्थात चौहत्तर लाख पचपन हजार रुपये हुई। इसका ब्योरा नीचे देखिये।

लागतसे आय	३५९७०००) रु०
छात्रोंसे किराया और फीस	२५८९०००) रु०
अन्य आय	२९१०००) रु०
चलते कामके लिये दान	९८५५००) रु०
कुल आय	७४६२५००) रु०

*Representing Harward, Tufts, the Massachusetts Institute of Technology, Boston College, Boston University, the Boston Museum of fine Arts, Wellesby and Simmons.

† Newhampshire Harward forest at Petersham, Massachusetts, and the observatory at Arequipa, Peru.

व्यय इस भाँति हुआ:—

शासन	२९४०००) रु०
विद्यासम्बन्धी	४१०४०००) रु०
वैज्ञानिक खोज व अन्य बातें	२०९७०००) रु०
विद्यार्थियोंको सहायता	५७६०००) रु०
भूमि तथा इमारतोंकी मरम्मत	४३९५००) रु०
कुल व्यय	७५१०५००)रु०

१९५९से १९६९ तकमें बड़े छोटे दानोंको मिलाकर विश्वविद्यालयको १० वर्षोंमें कुल आय ४९,०५,०००रु० प्रतिवर्ष हुई।

हार्वर्ड विद्यालयमें संयुक्त राष्ट्रोंके सभी भागोंसे विद्यार्थी आते हैं। आधेसे कुछ कम विद्यार्थी आसपासके उन नगरोंसे ही आते हैं जो मासाचसेट प्रान्तके अन्तर्गत हैं। १९६९–७० में हार्वर्ड कालेजमें ५७ सैकड़े विद्यार्थी इसी मासाचसेट प्रान्तके थे। ५ सैकड़े न्यूइङ्गलैंडके अन्य प्रान्तोंके थे व बाकी ३८ सैकड़े न्यूइङ्गलैंडके बाहरसे आये थे। बहुतसे छात्र हार्वर्ड कालेज तथा विश्वविद्यालय सम्बन्धी अन्य उपाधि-पाठशालाओं तथा आजीविका सम्बन्धी पाठशालाओंमें अपने परिश्रमसे रोटी कमाकर पढ़ते हैं। छात्रवृत्ति तथा अन्य वृत्तियाँ हार्वर्ड कालेजमें प्रतिवर्ष २,२५,००० रु० मूल्यकी व अन्य आजीविका सम्बन्धी पाठशालाओंमें ३,००,००० रु० के मूल्यकी प्रतिवर्ष होती हैं। ये सब वृत्तियाँ विशेष दान तथा आयसे दी जाती हैं। स्कूल या कालेजकी फीस इसके लिये कभी नहीं छोड़ी जाती।

हार्वर्ड कालेजमें छात्रोंका जीवन हर प्रकारसे उन्नत होता है व उपाधि न पाये हुए छात्रोंकी खेल-कसरतका प्रबन्ध अत्यन्त उत्तम है। खेलकूदमें मुख्य मुठभेड़ येल विश्वविद्यालयसे होती है। छात्रोंकी प्रधानसभा नागरिक संस्था ही है, इससे अन्य कालेजोंसे सम्बन्ध नहीं है। इनमेंसे बहुत कम सभाओंके भवनोंमें छात्रोंके रहनेका प्रबन्ध है। उपाधि नहीं प्राप्त किये हुए छात्रोंकी सामाजिक संस्था उपाधिधारी तथा आजीविका सम्बन्धी छात्रोंसे बिलकुल भिन्न है। इति।

मैंने यह विस्तृत विवरण, हिन्दू और मुसलमान विश्वविद्यालयोंकी, तथा ऐसा ही कार्य करनेवाली अन्य भारतीय संस्थाओंकी ओर दृष्टि रख कर ही यहाँ दिया है ताकि यदि वे चाहें तो इससे लाभ उठा सकें।

पाँचवाँ परिच्छेद।

नियागरा जल-प्रपात।

आजका सारा दिन न्यूयार्कमें व्यतीत कर सायंकाल विख्यात नियागरा जल-प्रपात देखनेके लिये प्रस्थान किया। होटल छोड़ रेलवर पहुंचे। वहाँपर एक छोटी सी वाष्प-नौकाद्वारा, जिसमें दो डाई सौ मनुष्य अच्छी तरह बैठ सकते थे, हडसन नदी पार की। इसके उपरान्त रेलगाड़ीपर चढ़े। न्यूयार्कसे नियागरा प्रायः ४४० मील दूर है अर्थात् काशीसे कलकत्ता या प्रयागसे कलकत्ता समझिये। इतनी दूरीके लिये ८ या ९ डालर अर्थात् २४) या २७) रुपये भाड़ा लगता है। इस देशमें, रेलमें केवल एक ही दर्जा है जिसे फस्ट क्लास अर्थात् पहिला दर्जा कहते हैं। यहाँ रेलगाड़ियाँ लम्बी लम्बी होती हैं जिनमें दोनों ओर सुन्दर मखमली गद्दीदार बैठक बनी है व बीचमें इधरसे उधर जानेका मार्ग है। बाहर निकलनेके लिये गाड़ीके अन्तमें दोनों ओर मार्ग हैं—अन्तमें ही एक ओर पुरुषोंके लिये व दूसरी ओर महिलाओंके लिये शंका-निवारणस्थान हैं। यहींपर, कोठरीके बाहर, कल लगे हुए जलका पात्र रहता है जिससे मनुष्य अपनी प्यास बुझाता है। पीनेका पात्र यहांपर विचित्र ढंगका है—कागज-के गिलास हैं। प्रत्येक मनुष्य अलग अलग गिलासमें जल पीता है। यूरोप तथा अमरीका-के और प्रदेशोंकी नाईं एक ही काँच या धातुके पात्रसे सब लोग जल नहीं पीते। यह नियम न्यूयार्क स्टेटने बड़ी जाँच पड़तालके उपरान्त बनाया है। कहा जाता है कि एक ही पात्रसे अनेकोंके जलपान करनेसे नाना प्रकारके रोगोंके फैलनेका डर रहता है; इसी कारण ऐसा नियम बनाया गया है।

उस दिन मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था जिसका नाम "हिमसेल्फ टॉक्स विद मेन कनसर्निंग देमसेल्व्स" है। इसे डाक्टर ई० बी० लोरी (Dr. E. B. Lowry) ने लिखा है। इसमें पढ़ा कि सारे संसारमें (यूरोप व अमरीकानिवासी जब किसी विषयमें 'सारा संसार' शब्दका प्रयोग करें तो उससे प्रायः अमरीका व यूरोप ही समझना चाहिये क्योंकि एशिया व अफ्रिकाको ये लोग संसारमें नहीं समझते। ये देश केवल सफेद मनुष्योंकी लूट-खसोटके लिये ही हैं।) सूजाकका रोग प्रायः सौ पीछे ९५ लोगोंमें है। आगे चलकर इसी डाक्टरने लिखा है कि "यह घृणित रोग कभी कभी छोटे छोटे बच्चोंमें भी पाया गया है जो उनको माता पिताके लाड़प्यारमें बच्चेको चूमनेसे ही हो गया था।" इन दृष्टान्तोंसे यह प्रतीत होता है कि थूक लग जानेसे अथवा जूठे बर्तनके व्यवहारसे अनेक रोग फैलते हैं। मैं अपनेको सुधारक अर्थात् सोशल रिफार्मर समझता था किन्तु इन बातोंको देख व पढ़कर मेरे विचारमें जो कुछ थोड़े दिनसे परिवर्तन आरम्भ हुआ है उसमें आगे सरकनेके लिये एक बड़ा धक्का लगा। मैं विचार करने लगा कि समाज-सुधार-सभा अब भारतवर्षमें क्या करेगी क्योंकि वह

तो इस नयी दुनियाके चमकीले भड़कीले उदाहरणोंके ही भरोसे कूदती थी व अब जब येही लोग पुराने हिन्दू-आचारविचारोंकी ओर आनेलगे हैं तो वह किसका उदाहरण देगी। मैंने भारतके सच्चे समाज-सुधारकोंको लक्ष्य करके उपर्युक्त व्यंगका प्रयोग नहीं किया है किन्तु, यह व्यंग केवल उनकी ही ओर लक्षित है जो बिना समझे बूझे बने बनाये समाजको ध्वंस करना चाहते हैं व जिनके कोषमें सुधारका अर्थ लाइसेन्स है और जो समाजके किसी नियमसे बद्ध होकर नहीं रहना चाहते किन्तु मनमाना ऊधम मचाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। दुर्भाग्यवश भारतमें ऐसे ही समाज-सुधारकोंकी संख्या अधिक है। यदि पाठकगण निष्पक्ष भावसे प्रान्तीय व भारतीय समाज-सुधारक कान्फरेन्सोंकी छानबीन करेंगे तो उनके प्रधान वक्ताओंमें जो टेबुलतोड़ व बेञ्चफोड़ वक्ता कहे जाते हैं ऐसे लोगोंकी ही संख्या अधिक मिलेगी जिनका निजका चरित्र अनुकरणीय नहीं पाया जायगा।

मेरे उपर्युक्त लेखसे पाठकगण यह भाव न निकालें कि मैं हिन्दू-समाजको निर्दोष समझता हूं। कदापि नहीं, उसमें बहुत सी त्रुटियाँ हैं जिनके दूर करनेकी बड़ी आवश्यकता है किन्तु यह कार्य ऐसे लोगोंके हाथोंमें होना चाहिये जिन्हें काँच व हीरेकी परख हो, अनजान जौहरी जोशमें आकर कहीं ऐसा न कर बैठे कि जो नकली हीरे अधिक चमकते हैं उन्हें मैले व कम चलकनेवाले असली हीरोंकी जगह रखले व असलीको ही फेंक दे। रत्नोंमें लगी हुई गर्दके झाड़नेकी आवश्यकता है न कि उनके फेंकनेकी। समाज-रूपी इमारतके बनानेमें हजारों वर्ष लगते हैं, पर उसका ढहाना सहज है, वह एक दिनमें हो सकता है। किन्तु ढहानेके बाद फिरसे निर्माण करना जरा टेढ़ी खीर है, इसलिये सुधारकोंको चाहिये कि समाजकी स्थितिमें उलट-फेर करनेके पूर्व भलीभांति विचारके काम करें, केवल कुछ प्रचलित शब्दोंके आधार-पर ही न चल दें जैसे "हिन्दुओंके चौकेने चौका लगा दिया" "संग खानेसे प्रेम बढ़ता है" "नौ कनौजिये तेरह चूल्हे" "अनमिल विवाहसे प्रेम नहीं बढ़ता" "छूतछात बेहूदगी है" इत्यादि। इन उपर्युक्त वाक्योंको जरा गौरके साथ देखनेसे ज्ञात होगा कि ये केवल बेहूदगियोंपर ही नहीं बने हैं, इनकी तहमें समाजनिर्माण-शास्त्र तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी गहिरे नियमोंकी जड़ पड़ी है। यद्यपि आधुनिक समयमें इनका अत्यन्त दुरुपयोग हुआ है और हो रहा है, फिर भी इससे वे नितान्त त्याज्य नहीं हो गये। आवश्यकता इस बातकी है कि देशके अनुभवी विद्वान् जिन्होंने समाज-शास्त्र (सोशिऑलाजी) को खूब छानबीन की है इन प्रश्नोंपर भलीभाँति विचार करें और इनका खरापन व खोटापन जनताके सामने रक्खें। समाजसुधारका कार्य हमारे जैसे अनगढ़ छोकड़ोंके हाथमें होना देशका दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? खैर!

रेलगाड़ीमें और हर बातका आराम व सुविधा है किन्तु भारतके प्रथम व द्वितीय श्रेणीके यात्रियोंकी भाँति यहाँ प्रत्येक मनुष्यको एक एक लम्बी चौड़ी बेञ्च सोनेको नहीं मिलती, हाँ रात्रिमें सोनेके लिये अलग गाड़ियाँ हैं जिनमें दो डालर अर्थात् ६) रुपये अधिक देनेसे रात भर सोनेको मिलता है। हम लोगोंको चूंकि रात्रिमें यात्रा करनी थी इस कारण हमने शय्या-शकट (स्लीपिंग कार) का टिकट लिया था। यह भी मामूली गाड़ीकी भाँति है। इसमें २४ मनुष्योंके बैठनेकी जगह

होती है । सोनेके लिये नीचेकी दो बेञ्चें मिलाकर पूरी शय्या बना दी जाती है । इन दोनों बेंचोंके ऊपरकी टाँड़पर भी एक शय्या हो जाती है । रात्रिके समय इस शकटमें नीचे ऊपर १२ पृथक् पृथक् कोठरियाँ बन जाती हैं । आगे पर्दा होता है। बगलमें काठके तख्ते लगा दिये जाते हैं । मेजोंपर साफ व उत्तम गद्दा, तकिया, कम्बल, चद्दर इत्यादि वस्तुएं प्रस्तुत रहती हैं । इस शकटमें एक मनुष्य रहता है जो कहनेसे सेज सजा देता है । आप आनन्दसे सो सकते हैं । मेज काफी लम्बी चौड़ी होती है । सोनेमें जरा भी तकलीफ नहीं होती । यह मनुष्य रात्रि भर जागकर पहरा देता है । आपको अपनी वस्तुओंकी भी रखवाली अधिक नहीं करनी पड़ेगी । सवेरे या रात्रिको जिस समयके लिये आप कह दें यह मनुष्य आपको उसी समय जगा देगा व कपड़े भी ब्रुश करके साफ कर देगा । इस सेवाके लिये यह यात्रियोंसे कुछ पुरस्कारकी आशा भी रखता है । २५ सेण्ट अर्थात् साढ़े बारह आने दे देनेसे यह प्रसन्न हो जाता है। हम लोग इसी गाड़ीमें आनन्दसे सोये हुए प्रातःकाल बैफलो नगर पहुंचे । यहाँसे गाड़ी बदल कर ९ बजे नियागरा पहुंच गये । कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह ४४० मीलका फासला कुल बर्फसे भरा था और सर्दी खूब थी ।

प्रातःकाल पहुंचनेपर पहले होटलमें जाकर विश्राम किया । नित्य-क्रियाके उपरान्त भोजन कर संसारमें प्रकृतिके विलक्षण रूपके दर्शनके लिये निकले । प्रकृतिकी उस विलक्षण, विचित्र, महती शोभायुक्त, मनोरम पर डरावनी सूरत-की छटाके लिखनेकी शक्ति मेरी लेखनीमें नहीं है । पाठकोंके चित्तविनोदार्थ कुछ न कुछ वर्णन तो मैं अवश्य ही करूँगा किन्तु वह फीका व नीरस होगा । अंग्रेजीके कई प्रधान कवियों तथा लेखकोंने इसका वर्णन पद्य तथा गद्यमें किया है, मैं यहाँपर प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकोंका वर्णन ज्योंका त्यों पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ उद्धृत करता हूं:—

Ah, Nature! sublime beautiful.
How fittingly thou hast jewelled
Thy crown with glory
By setting therein a sparkling gem-Niagara.
A truth of God, a golden story.
A placid stream, a glimmer-glass
Moves on in silent wood;
A sudden burst; a maddening rush-life renewed.
And then the fall with rainbows circling o'erhead
And veil of silvery spray
Gives forth the glorious spectacle
Of God's Almighty sway,
But, ah! Niagara, who can view
Thy mighty fall—
And changing tints
And not link there a God of all?

No just or adequate impression can be conveyed by language of the grandeur and sublimity of Niagara. The artist's pencil alone can give a faint conception of the scene, but even this is inadequate to express intelligently the charm of perpetual changing which absorbs the spectator. The whirling floods, the unvarying thunderous roar, the vast sheets of spray and mist that are caught in their liquid depths by sunbeams and formed into radiant rainbows, as if homage was paid by the skies to creation's greatest cataract. At all seasons and under all circumstances, wether viewed by sun-light or moon-light, or the dazzling glare of electricity, the falls of Niagara are always sublime.

हम लोग उपर्युक्त नियागराको देखने चले। किरायेपर एक हिमशकट (स्लेज कार) लिया था, उसपर चढ़कर छागलद्वीप (गोट आइलैण्ड) होते हुए अमरीकन जलप्रपातके निकट पहुंचे। यहाँपर जल १६७ फुट ऊपरसे नीचे गिरता है। जलकी चद्दर १०६० फुट चौड़ी है। अहा! हा! यहाँकी सुन्दरताका लिखना कठिन है। विशाल जलराशिके इतने ऊपरसे गिरनेसे जो कलरव हो रहा था उससे एक विचित्र मनोसुग्धकारी ध्वनि निकलती थी। यह ऐसी मनोहारी प्राकृतिक तान थी जिसके सुननेसे कान नहीं भरे। अहा! इसी जलराशिके प्रपातसे जो धूम सदृश अत्यन्त झीनी झीनी जलविन्दुराशि उठती थी उसपर सूर्यकी रश्मिके पड़नेसे पूर्ण इन्द्र-धनुष बन जाता था। जलके अथाह निविड़ समूहपर, हिमसे सुसज्जित प्रकृति देवीकी जीवित मूर्तिपर, अनुवृत्ताकार (पैराबोलिकल) इन्द्रधनुष कैसा शोभायमान विचित्र मुकुट सा भासता था मानों यह दृश्य दर्शकोंको वहाँसे हटने न देगा। ठंडके कारण नाक, कान मानों गिरेसे पड़ते थे, हाथोंकी अंगुलियाँ ठिठुर गयी थीं। ऊनी मोजे व जूतोंके ऊपरसे बर्फकी ठंडक पैरोंको सुन्न कर रही थी किन्तु आँखें दर्शनसे नहीं अघाती थीं। सारा द्वीप, जहाँ हम खड़े थे, हिमसे भरा था। इतने वेगसे गिरनेवाला जल भी नीचेकी जमी हुई बर्फको तोड़नेमें असमर्थ था। पासके सारे वृक्ष व झाड़ियाँ बर्फसे लदी थीं। वृक्षोंकी पतली पतली शाखाओंके चारों ओर बर्फ जमी हुई थी जिससे जान पड़ता था कि ये काँचके वृक्ष हैं—यह द्वीपका द्वीप एक भाँतिसे शीशेके बागीचे सा मालूम होता था। यहाँसे दूसरी ओर जाकर हम लोग कैनेडियन प्रपातके निकट पहुंचे। यह अर्धचन्द्राकार प्रपात पहिलेसे चौड़ाईमें दुगुनेसे भी अधिक है। इसकी चौड़ाई ३०१० फ़ुट है किन्तु ऊँचाई १५६ फुट ही है अर्थात् प्रथमसे ११ फुट कम। यहाँ भी पूर्व सा दृश्य है किन्तु जलके वेगसे जो छींटा उड़ता है वह कुहरेकी भाँति हो सामने-का दृश्य छिपा लेता है इससे गिरते हुए जलकी सारी चद्दर नहीं देख पड़ती। यहाँ-से घूमते हुए हम लोग दूसरी जगह आकर हिमशकट छोड़ मोटरगाड़ीपर बैठे व लोहेके एक ताखवाले पुलपरसे होते हुए कैनेडा पहुंच गये। यह सेतु १९५५ में बना था। यह जलप्रपातसे २२० गज नीचे नदीपर बना है और लोहेके ८४० फुट लम्बे

नियागरा जलप्रपात

[पृ० ८४]

बर्फसे लदी झाड़ियां (पृष्ठ ८४)

पृथ्वी प्रदक्षिणा

एक तानेवाला पुल (पृष्ठ ८४)
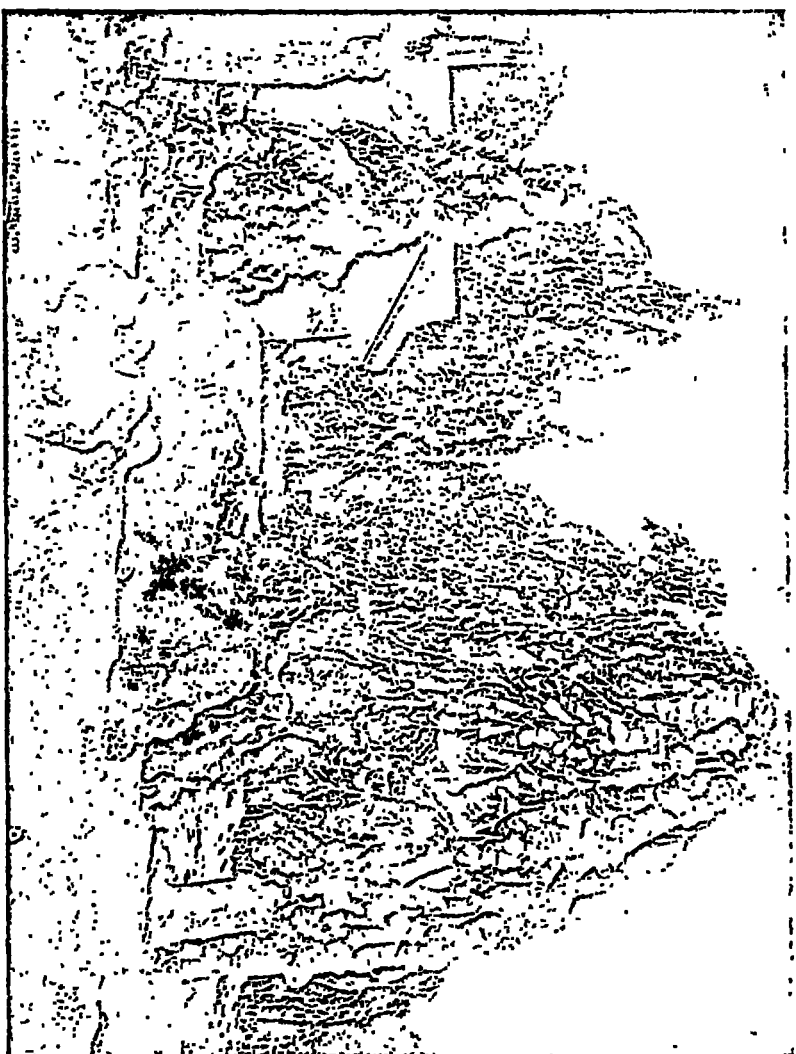
एक तख्तपर खड़ा है । कहा जाता है कि यह ताखा संसारमें सबसे बड़ा है—सेतुकी लम्बाई १२४० फुट है व जलकी सतहसे १९२ फुट ऊपर है । यहाँसे चलकर एक जगह पहुंचे जहाँ जल बड़े वेगसे बहता है । इसका नाम व्हर्लपुल रैपिड है । यहाँपर जलका वेग बहुत अधिक है । ऊँचे ऊँचे पहाड़ी छोरोंके बीचमें केवल ३०० फुट जगह है, उसीमेंसे होकर अथाह जलराशिको नीचे जाना होता है इसीसे वेग यहाँ इतना अधिक हो गया है । नदी भी यहाँपर प्रायः २०० फुट गहरी है । यहां जानेके लिये एक प्रकारके लिफ्ट (Lift)का प्रबन्ध है जिससे आप नीचे जलके तटपर पहुंच जाते हैं । इसे देखकर हम लोग लौटे और फिर कैनेडियन प्रपातके निकट आये । रास्तेमें कैनेडाका विद्युत्-कोष गृह मिला । किन्तु लड़ाईके कारण यहाँ सख्त पहरा है व हम लोग इसे नहीं देख पाये । यहाँपर एक सुरङ्ग काटकर प्रपातके पीछे जानेका मार्ग बनाया गया है । प्रत्येक दर्शकको १॥-) इसे देखनेके लिये कर देना पड़ता है । कर देनेके बाद बचोंके फरगुल सा बना हुआ मोमजामेका लबादा व टोपी पहिनायी जाती है । इसके उपरान्त लिफ्ट द्वारा आप १०० फुट कुएँमें जाते हैं फिर कोई ८०० फुट चलकर आप महान् जलप्रपातके ठीक पीछे पहुंच जाते हैं । आपके सामने घर घर शब्द करती हुई जलराशि अत्यन्त वेगसे गिरती देख पड़ती है । यहाँसे लौट ऊपर आ फिर देर तक प्रपातकी शोभा देखते रहे, बादमें घर लौटे । नियागरा नाम 'ईरोकोइस' भाषासे लिया गया है । यह भाषा इसी नामकी पुरानी जातिकी थी जिसे पुराने समयमें यूरोपनिवासी लुटेरोंने नष्टप्राय कर डाला । बाइबिलकी सभ्यता अजीब सभ्यता है, इसको मानने वाली यूरोपकी सफेद जातियाँ यदि मौका पावें तो स्वयं महात्मा ईसामसीहको भी सूलीपर चढ़ा उनके लत्ते-पत्ते नोच खसोट लें । मेरा यह विश्वास होता जाता है कि यूरोपवालों-की ईसाइयत केवल भेड़ियोंके लिये बकरीकी खालका ही काम देती है । ये दुष्ट अपनेको ईसाई पुकारकर पवित्र ईसामसीहके नामको कलंकित करते हैं । इन पाखण्डी ईसाइयोंकी करतूतोंको यदि जानना हो तो "कंकेस्ट आव पेरू ऐण्ड मेक्सिको" नामक पुस्तकोंका पाठ करना चाहिये । नियागराका अर्थ पुरानी देशी भाषामें 'जल गरजानेवाला' (दि थंडरर आव दि वाटर्स) था । यहाँके पुराने निवासी अपनी भिन्न भिन्न जातियोंका नामकरण भी इसी भाँति किया करते थे ।

यह नियागरा नदी अपनी विशाल जलराशिके प्रवाह व विचित्र मनोहारी दृश्योंके कारण तथा प्राचीन इतिहास व जनश्रुतियोंकी दृष्टिसे भी संसारमें एक विल-क्षण एवं सबसे अपूर्व नदी है । लक्ष्मण झूलेपर बैठनेसे गङ्गाके कलरवका जो प्रभाव हि-न्दुओंके हृदयपर पड़ता है उसी प्रकारका प्रभाव सहृदय देशी आदमियोंपर नियागराके शब्दसे भी अवश्य पड़ता होगा ।

इस नदीका जन्म प्रसिद्ध पाँच विशाल ह्रदों (लेक्स) से होता है । 'सुपी-रियर' ह्रद संसारमें सबसे बड़ा मीठे पानीका सरोवर है । यह ३५० मील लम्बा, १६० मील चौड़ा व १०३० फुट गहिरा है । हूरन ह्रद २६० मील लम्बा, १०० मील चौड़ा व १००० फुट गहरा है । मिचिगन ३२० मील लम्बा, ७० मील चौड़ा व १००० फुट गहरा है । सन्तक्लेयर ४० मील लम्बा, १५ मील चौड़ा व २० फुट गहरा है । ईरीह्रद २९० मील लम्बा, ६५ मील चौड़ा व ८४ फुट गहरा है ।

संवत् १८७२ की सन्धिके अनुसार यह नदी भिन्न भिन्न ह्रदों सहित संयुक्त प्रदेश तथा कैनेडाके बीचकी सीमा है। यह सीमा-रेखा ह्रदों तथा नदीके बीचमेंसे होकर जाती है।

यह नदी कुल ३४ मील लम्बी है। यह ईरीह्रदसे निकल कर अन्तारिया ह्रदपर समाप्त हो जाती है। इसो ३४ मीलकी यात्रामें इसे ३३६ फुट नीचे गिरना होता है। प्रति मिनटमें इस प्रपातसे १ करोड़ ५० लाख घनफुट जल ऊपरके ह्रदोंसे नीचे आता है अर्थात् प्रति घंटा १० करोड़ टन अर्थात् २७० करोड़ मन पानी ऊपरसे नीचे गिरता है। इतने पानीका गिरना कितनी शक्ति उत्पन्न कर सकता है इसका हिसाब लगाया गया है अर्थात् ५० लाख घोड़ोंकी शक्ति इसमें है। इस शक्ति-भाण्डारमेंसे अभी तक केवल ५ लाख घोड़ोंकी शक्तिके कार्य लेनेका प्रबन्ध हो सका है व इतना कार्य इससे कराया जाता है। प्रचलित कथा है कि वरुण, वायु, इन्द्र व अग्निको रावणने वशकर रक्खा था, मेरी समझमें इसका यही अर्थ है कि वह जल, वायु, विद्युत् व अग्निसे काम लेना जानता था।

संसारकी विचित्र गति है। भिन्न भिन्न जातियोंके हृदयपर प्राकृतिक वस्तुओं-का भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। भारतवर्षमें तथा सभी पुराने देशोंमें जहां कहीं प्रकृतिके ऐसे विचित्र रूपका दर्शन होता था वहां तीर्थस्थान स्थापितकर यात्रायें व मेले हुआ करते थे। प्रतिवर्ष नर-नारियोंका समूह दूर देशोंसे आकर यहां प्रकृति देवीकी सुन्दरताको देख ईश्वरके सर्वव्यापी रूपका ध्यानकर चित्तको प्रमुदित किया करता था। किन्तु आधुनिक समयमें ऐसे स्थानोंमें अनेक प्रकारके आमोद-प्रमोदकी सामग्री एकत्र की जाती है। जन-समुदाय यहां आकर प्राकृतिक सौन्दर्यकी छटा भी लूटते हैं तथा अन्य सांसारिक व्यापारोंमें भी निमग्न रहते हैं। यह दशा पुरानी अन्त-र्मुखी व आधुनिक बाह्यमुखी सभ्यताकी प्रधान सूचक है।

यहां नियागरापर भी प्राचीन समयमें—देशी लोगोंके अभ्युदय कालमें—बड़ा मेला लगता था। दूर दूरसे यात्री आकर यहां एकत्र होते थे व नियागरा देवको बलिप्रदान करते थे। देशी चालके अनुसार एक तरणीमें नाना प्रकारके कन्द, मूल, फल रक्खे जाते थे। जातिकी एक परम सुन्दरी बाला जो नव यौवनावस्थामें होती थी अपनेको सुस-ज्जित कर इस तरणीपर चढ़ नियागरा जलप्रपातमें खुशी खुशी गिर जाती थी। यही बलिप्रदानका ढंग था। इस सम्बन्धमें एक बड़ी मर्मभेदी जनश्रुति प्रचलित है। एक समयमें एक जातिके मुखियाके एक षोडशवर्षीया सुन्दरी कन्या थी। मुखियाकी यही जीवनाधार थी, इसीका मुख देख कर वह अपने जीवनके बचे खुचे समयको व्यतीत करता था। एक साल इस सुन्दरीकी पारी बलिप्रदानके लिये आयी। पिता इस दुःखको अपनी वीरताके गर्वमें पी गया किन्तु हृदयकी मसोसको मस्तिष्क नहीं संभाल सका। समय आ गया, षोडशवर्षीया सुन्दरी तरणीपर आरूढ़ हो पूर्ण चन्द्रमाकी ज्योतिमें चमकती हुई प्रपातकी ओर तेजीसे बही। अभी प्रपातसे कुछ दूर थी कि एक दूसरी नौका देख पड़ी। यह वेगसे प्रथम तरणीके समीप पहुंची। इसपर सुन्दरीका वीर पिता था। एक क्षणके लिये दोनोंकी आखें चार हुईं किन्तु पलमात्रमें दोनों—पिता-पुत्री—अथाह जलराशिमें लीन हो गये। यही इनका अन्तिम स्नेहालिङ्गन था। छागल

NIAGARA FALLS

षोडश वर्षीया कुमारीका बलिदान [पृ० ८६]

द्वीपपर पुराने समयमें जातिके मुखियाओंकी समाधि बनती थी व जातिका यह विश्वास था कि इसी द्वीपमें बलिप्रदान की हुई सुन्दरीकी आत्मा नियागरा देवकी सेवामें विचरती है ।

आज हम लोग यहाँके रहने वालोंको जो अब प्रायः मर मिटे हैं देखने चले। पूर्वमें तो पाश्चात्य सभ्यताके गर्वीले राक्षसोंने इनकी सम्पत्ति हड़प जानेके लिये जङ्गली जानवरोंकी भांति इन बिचारोंका खूब शिकार किया किन्तु अब, जब इनका सिक्का यहाँ खूब जम गया है, इन बचे हुए पुराने बाशिन्दोंका प्राकृतिक विचित्रताकी भाँति, गुणगान हो रहा है । इन्हींकी एक बस्ती नियागरासे ७ । ८ मील बाहर है, वहीं हम लोग गये थे । ३ घंटे निविड़ हिमवनमें जानेके उपरान्त थामसन महाशयके घर पहुंचे । यह कुछ ईसाई है किन्तु गृहपति इस समय घरपर न थे इस कारण इनका पता बहुत नहीं लग सका। इन लोगोंका आकार सुन्दर, रङ्ग गेहुंआ, आंखें व बाल काले होते हैं, आंखे भौंहके बराबर होतीं हैं व पलकें खिंची हुई होती हैं । यदि ऐसा न होता तो इनके आकार व हमारे आकारमें कुछ अन्तर नहीं था । इनकी पुरानी कारीगरियोंके नमूने देखनेसे यह जाति सभ्य जान पड़ती है । इन्हें लिखना भी आता था ।

इस देशमें अनेक जातियां व अनेक भाषायें थीं। अभी कल ही मध्य अमरीकाके टूटे फूटे खण्डहरोंके चित्र देखे थे जिनसे वहांकी सभ्यता बड़े ऊंचे दर्जेकी प्रतीत हुई । यदि मुझे इनका और पता आगे चलकर लगा तो पाठकोंके विनोदार्थ संग्रह करूँगा ।

दूसरे दिन दोपहरको अलबनीके लिये प्रस्थान किया किन्तु टिकटको गड़बड़ोसे बैफलोमें ४ घंटे पड़ा रहना पड़ा, इस कारण अलबनी १ बजे रात्रिमें पहुंचा। होटलका टिकट पूर्वमें ही ले रक्खा था इसी भरोसे हैम्पटेन होटलमें जा पहुंचा । किन्तु हमारी काली शकल देखते ही गोरे मैनेजरका मुंह बिगड़ गया व उसने तुरन्त ही कहा कि इस होटलमें जगह नहीं है । बड़ी मुश्किल हुई । अब रात्रिको कहाँ जाऊँ? फिर मैंने उससे वाद करना प्रारम्भ किया जिसका नतीजा यह निकला कि उसे झखमार जगह देनी पड़ी । उसका पूर्वका कहना बिलकुल झूठ था । रात्रिमें सोये ।

जब भोजनागारमें गये तो जिस प्रकार भारत वर्षमें चमारोंसे व्यवहार होता है वैसा ही मुझसे हुआ । एक कोनेमें मुझे जगह मिली जिसमें मैं किसीको छू न लूं । पहिले तो बड़ा क्रोध आया कि उठकर चला जाऊँ किन्तु फिर सोचा कि जब तक भारतवर्षमें एक भी मनुष्यके साथ ऐसा ही बर्ताव होता रहेगा तब तक मुझे क्या अधिकार है कि दूसरोंसे सर उठाकर बोलूँ । जैसा हम बोते हैं वैसा ही फल पायेंगे । हमने ऐसा न किया होता तो क्यों इस दशाको प्राप्त होते । यह हमारे ही पापोंका फल है कि हम दास हैं । हम आज संसारमें स्वतन्त्र नहीं हैं । हमारी पीठपर हाथ रखनेवाला कोई नहीं है । हमारे दुःखोंको सुननेवाला कोई नहीं है । हाँ, परमात्मा है किन्तु परमात्माको किस मुखसे पुकारें । हमने भी दूसरोंको दासवृत्तिमें रक्खा है, अब भी दासोंसे बढ़कर घृणित व्यवहार हम अपने ही भाइयोंसे करते हैं, फिर क्या मुँह लेकर परमात्माको पुकारें ।

इस देशमें यद्यपि नाममात्रके लिये दासत्वका अन्त हो गया है किन्तु रंगीन हबशी जातिके साथ यहाँ बड़ा अन्याय होता है। भारतवर्षमें तो तिल्ली फाड़नेवाले गोरोंको १०) २०) रु० जुर्माना भी हो जाता है, यहाँ इतना भी नहीं है। अभी उस दिन पढ़ा था कि एक दक्षिणी प्रान्तमें किसी काले मनुष्यने एक सफेद मनुष्यकी गाय चुरा ली। बस फिर क्या था, सफेद भूतोंने बिचारे काले मनुष्यको पकड़ लिया व उसकी स्त्री व बच्चोंको भी एक पेड़में बांध तेल छिड़क आग लगा दी। चारों बिचारे तड़प तड़प कर मर गये और ये नरपिशाच खड़े हँसते रहे। मुझे आश्चर्य मालूम होता है कि अमरीकाके पादरी क्या मुँह लेकर हमें सभ्यता सिखाने आते हैं। कदाचित् अमरीकामें इन भेड़ोंकी बात सफेद भेड़िये नहीं सुनते होंगे इसीसे ये हमें उल्लू बनाने आते हैं। अमरीकाको सभ्य समझना नितान्त भूल है। यह देश बिलकुल जंगली पशुओंसे भरा है किन्तु पुंश्चली दुष्टा लक्ष्मीकी इन नरदेहधारी पशुओंपर कृपा है, बस इसीके भरोसे ये कूदते हैं। रंगीन जातियोंके साथ इनका व्यवहार बड़ा खराब है। दक्षिणी प्रदेशोंमें तो रंगीन लोगोंके लिये गाड़ियां अलग हैं। वे श्वेतोंकी गाड़ियोंमें नहीं चलने पाते। देखें परमात्मा कब रंगीन जातियोंको इस योग्य करता है कि उनके प्रति ऐसे निन्द्य व्यवहार करनेसे लोग डरें।
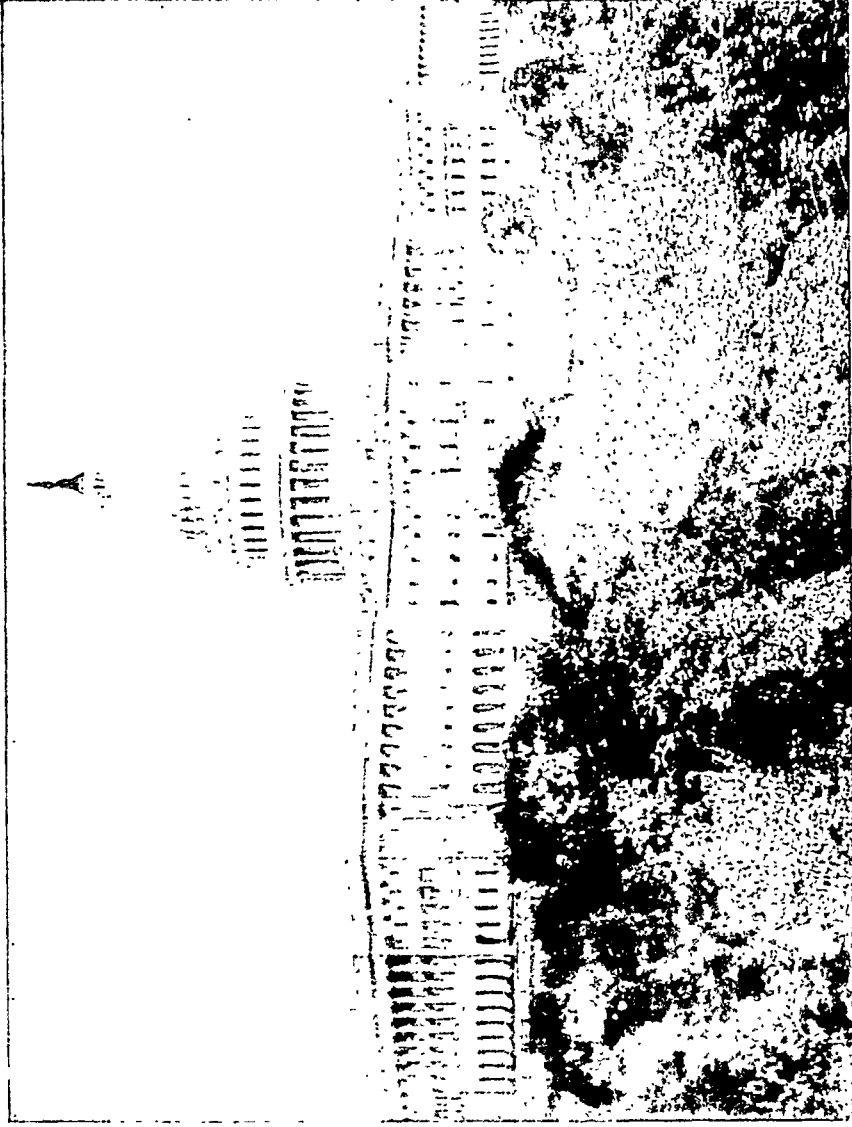
कांग्रेस भवन, वाशिंगटन।

[पृ० ८६]
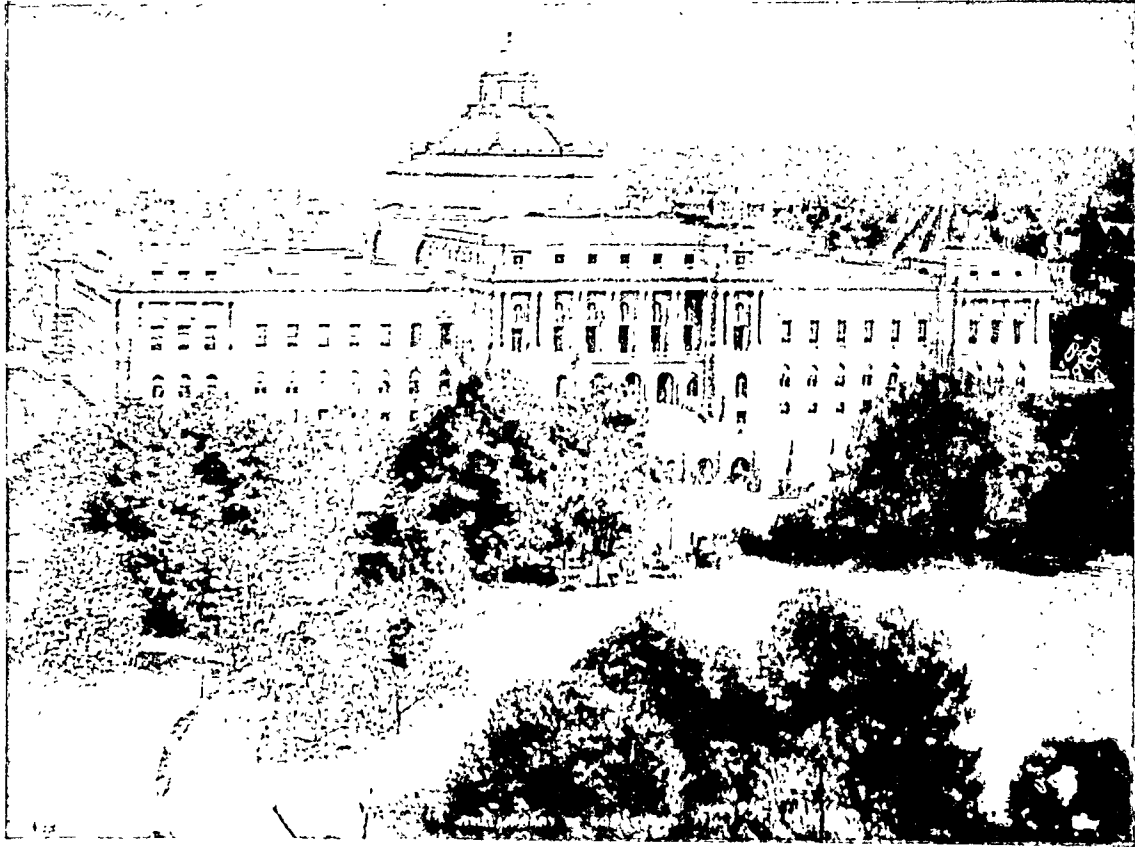
प्रसका पुस्तकालय, वाशिंगटन [पृ० ८९]
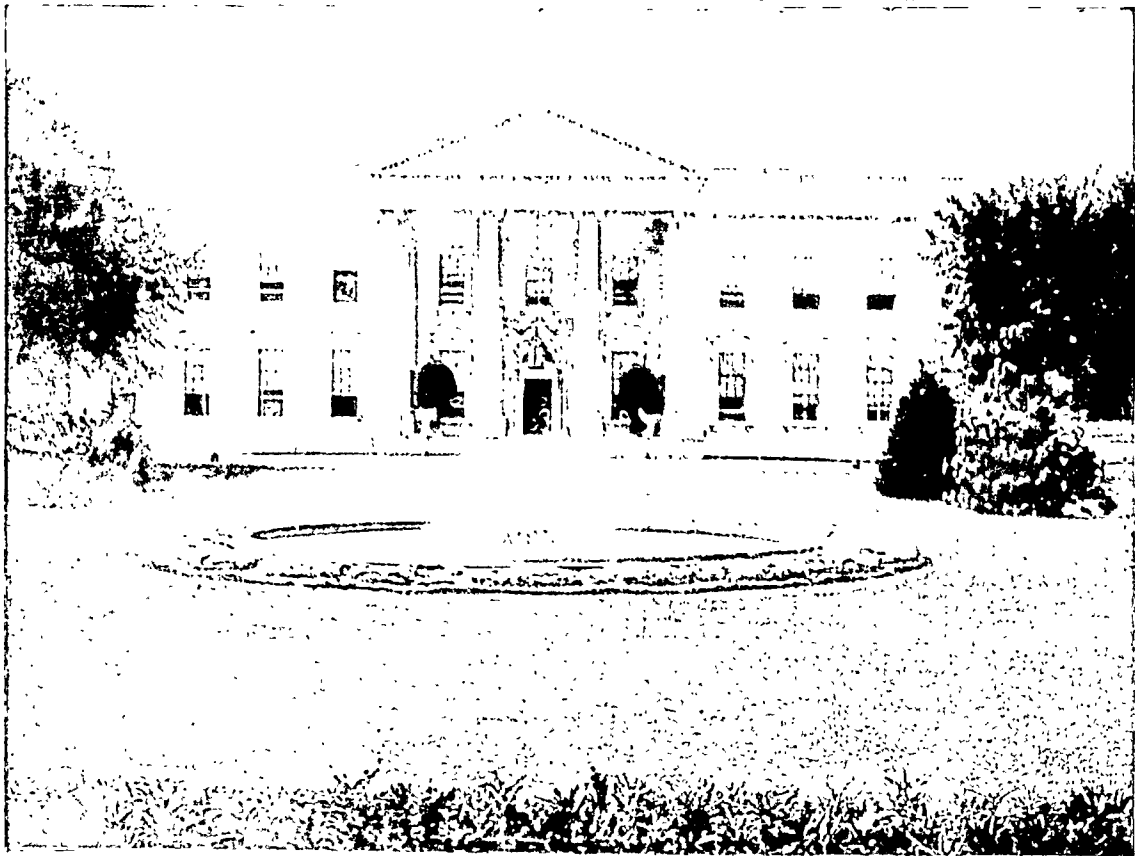
अमरीकाके राष्ट्रपतियोंका निवासस्थान (ह्वाइट हाउस) [पृ० ८९]

छठवाँ परिच्छेद।

अटलाण्टा नगरकी सैर।

करीब बारह दिन संयुक्त राष्ट्रकी राजधानी वाशिङ्गटनमें व्यतीतकर कल प्रातःकाल अटलाण्टाके लिये चले। लगभग चौबीस घण्टे लगातार रेलमें चढ़े रहनेके उपरान्त आज प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त्तमें यहाँ पहुंचे। रेलसे उतरकर हवागाड़ीमें बैठे और होटलकी तलाशमें चले। पहिले जिस होटलमें पहुंचे उसमें जगह पूछनेके लिये मेरे साथी महोदय गये। ये इस समय पञ्जाबी साफा बाँधे हुए थे, तिसपर भी काला मुख देख सफेद मनुष्यने कहा कि जगह नहीं है। मेरे मित्रने यह भी कहनेकी भूल की कि हम हवशी नहीं, विदेशी मनुष्य हैं, किन्तु उसके मनमें कोई बात नहीं समायी। हमलोग भी तो भारतमें यही करते हैं। मद्रास या बम्बई प्रदेशका होनेसे भी तो हम चमारको अपने घरमें नहीं घुसने देते, चाहे वह कितना ही साफ कपड़ा क्यों न पहिने हो। जो घृणा हमारे यहाँ कतिपय जातियोंके प्रति है वही यहाँ रङ्गीन मनुष्योंके प्रति है। अस्तु, थोड़ी देर तक माथा मारनेके बाद एक होटलमें जगह मिल ही गयी। यहाँसे हमलोग प्रायः दस बजे अध्यापक 'होप' से मिलने गये। इन्होंने जो पाठशाला रङ्गीन लड़कोंके लिये खोली है उसे देखा और इनसे देर तक बातें भी कीं। बातचीतके समय नीग्रो जातिके प्रति अमरीकाकी सफेद जाति कैसा अन्याय कर रही है, इसके अनेक उदाहरण मिले। सफेद जातिके लड़कोंके लिये राष्ट्रकी ओरसे प्रारम्भिक पाठशालाओंके अतिरिक्त उच्च पाठशालाएँ (हाई स्कूल्स) भी हैं किन्तु काले बालकोंके लिये ऐसी पाठशालायें नहीं हैं। सफेद बालकोंकी पाठशालाओंमें दस्तकारी सिखानेका प्रबन्ध है, किन्तु काले लोगोंको पाठशालाओंमें यह भी नहीं है। इनकी पाठशालाओंमें अधिकांश शिक्षक स्त्रियाँ ही हैं। इन्हें आठ घण्टे प्रतिदिन पढ़ानेके लिये लगभग १८०) रुपये मासिक मिलता है, किन्तु सफेद लड़कियोंको सफेद पाठशालामें चार घण्टे प्रतिदिन पढ़ानेके लिये लगभग २४०) रुपये मासिक। दक्षिणी प्रान्तोंमें इस भयसे कि कहीं ऐसा करनेसे काले लोगोंके बालक भी लाभ उठाने लगें प्रारंभिक शिक्षा भी अनिवार्य्य नहीं की गयी। इनके रहनेके मकान बहुत ख़राब हैं, किन्तु उनकी तुलना भारतवर्षसे नहीं हो सकती। सड़कें व गलियाँ भी मैली, गन्दी व धूलसे भरी होती हैं। ट्राम गाड़ीपर इन्हें सफेद चमड़े वालोंके पीछे बैठना पड़ता है। सुना है कि रेलमें इनके लिये अलग गाड़ियाँ हैं। इन्हें नामके लिये भिन्न भिन्न चुनावोंमें सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त हुआ है, किन्तु वह इस प्रकार कार्य्यमें लाया जाता है कि उसका होना-न होना बराबर है। दो एक नगरोंमें, जहाँ इनकी इतनी संख्या है कि किसी उपायसे भी इनका रोकना कठिन है, नागरिक कर्म्मचारी

गवर्नरद्वारा नियुक्त किये जाते हैं। एक करोड़ जनसंख्यामें दस लाख नीग्रो होते हुए भी एक भी नीग्रो किसी स्थानिक, प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय सभामें अभी तक सदस्य नहीं नियुक्त हुआ है। यह है अमरीका वालोंका ऐक्यका बर्ताव व स्वतन्त्रता-की शेख़ी। जिस प्रकार भारतवर्षमें अङ्गरेज़ लोग बड़ी सचाईसे न्याय करते हैं किन्तु जब किसी अभागे हिन्दुस्तानीकी तिल्ली किसी अङ्गरेज़की ठोकरसे फट जाती है, तो वह १०, २० रुपये जुरमाना देकर ही छूट जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये। सफेद जातियोंके लिये यहाँ वास्तवमें व्यापक लोकतन्त्र (डिमोक्रेसी पद्धति) प्रचलित है, किन्तु जब काले मनुष्योंका प्रश्न आता है तब " ज़बरदस्तका ठेंगा सरपर" वाला न्याय भी चलता है। अब हम जातीय प्रश्नोंपर विचार न कर यहाँकी उन भिन्न भिन्न संस्थाओंका संक्षिप्त वर्णन करना चाहते हैं जिनके देखनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है और जो यहाँ हब्शी जातिकी उन्नतिके लिये विशेष रूपसे यत्न कर रही हैं। इस अटलाण्टा नगरमें (१) मोरहाउस कालेज (२) अटलाण्टा विश्वविद्यालय (३) स्पेल मैन सिमिनरी (४) लियोमार्ड स्ट्रीट ऑर्फन होम तथा इनके अतिरिक्त और कई एक छोटे मोटे स्कूल या पाठशालायें हैं, किन्तु वे राज्यकी होनेके कारण अधिक महत्त्वकी नहीं गिनी जा सकतीं।

मोरहाउस कालेज

इस कालेजके प्रधानाध्यापक आज कल महाशय होप हैं। आप बड़े सज्जन हैं। आपके रक्तके बिन्दु बिन्दुमें जातिप्रेम व स्वाभिमान भरा है। आपका हृदय अपनी जातिकी हीनावस्थाके कारण सदा दुःखी हुआ करता है। ईश्वरीय संयोगसे आपकी धर्मपत्नी भी आपके ही रङ्गमें रंगी हैं। अटलाण्टा निवासके समय मुझे इस दम्पतीसे बड़ी सहायता मिली और आप बड़े सौजन्यके साथ मुझसे मिले। मैं आपका हृदयसे कृतज्ञ हूं। आपकी देखरेखमें यह संस्था बड़ी उन्नति कर सकती है। यह संस्था संवत् १९२४ में स्थापित हुई थी। इसका संचालक अमरीकाकी 'बैपटिस्ट होम मिशन' नामकी संस्था है। प्रारम्भ समयसे आजतक इस विद्योपवनने अनेक रूप परिवर्तन किये हैं। अब यह एक उत्तम स्थानमें जिसका क्षेत्रफल १३ एकड़ है स्थित है। इस समय तक यहाँ कतिपय इमारतें बन चुकी हैं। ग्रेवज़ हॉल * ६६ हज़ार रु०की लागतसे बना है जिसमें छात्रालय भी है। यहाँपर भोजनालय व पाकशाला भी है। कार्ल्स हॉल † लगभग ४२ हजार रुपयेकी लागतसे बना है। इसमें प्रधान विद्यालय स्थित है। यहींपर प्रयोगशालायें भी हैं। सेलहॉल ‡ लगभग सवा लाख रुपयेकी लागतसे बना है। इसमें शिल्पशास्त्र व अन्य शिक्षा सम्बन्धी शाखाएं स्थापित हैं। इसीमें पुस्तकालय व उपासनागृह भी हैं। प्रधान अध्यापककी गद्दीके लिये ६० हजार रुपयेकी एक वृत्ति है, जिसकी आयसे यह गद्दी सदा कायम रहेगी। 'अन्य व्ययके लिये संस्था लड़कोंके शुल्क, मिशनकी सहायता व अन्य पुरुषोंकी उदारतापर निर्भर रहती है।

यहाँपर अधिकतर वे ही छात्र हैं जो छात्रालयमें निवास करते हैं। निवास, भोजन तथा शुल्क इत्यादिका व्यय प्रायः ३९ रुपये होता है। इतने कम व्ययपर यहाँ

* Graves Hall † Qarles Hall ‡ Sale Hall
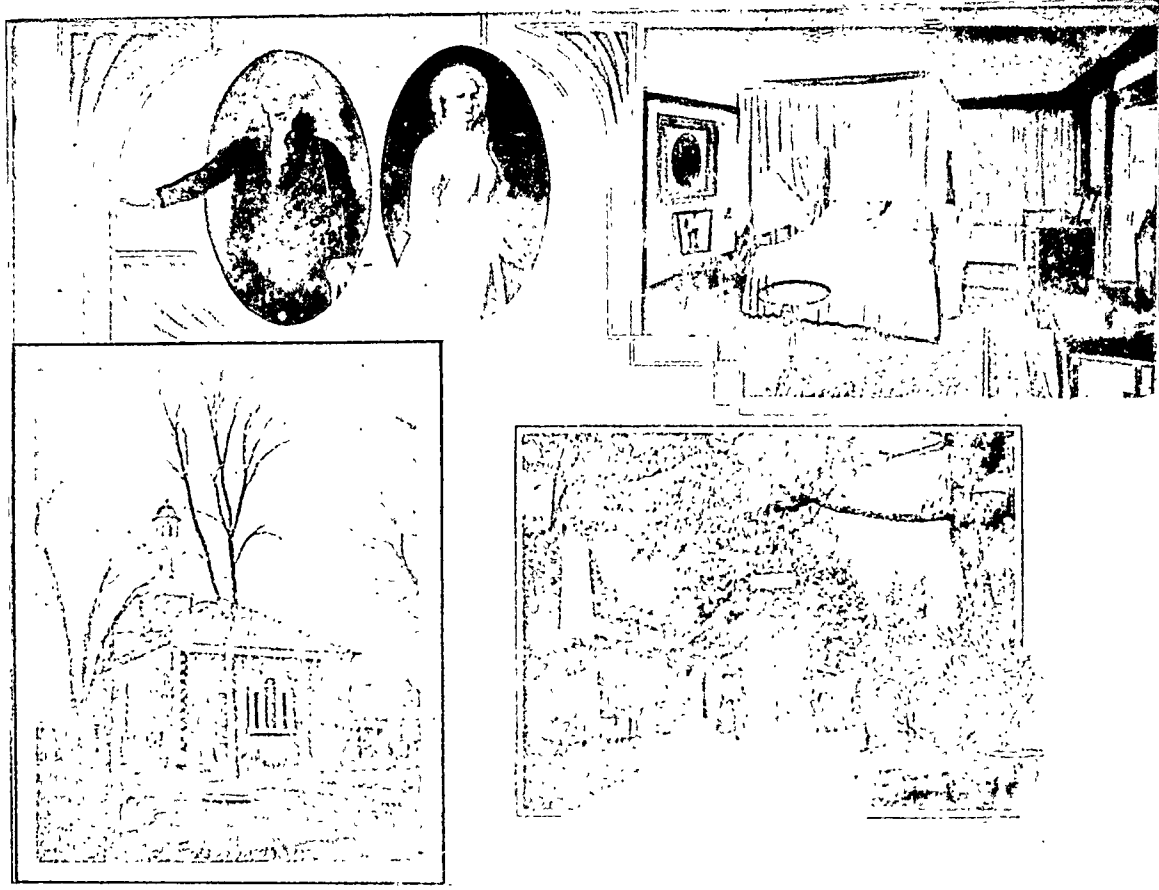
राष्ट्रपति वाशिंगटन, उनका शयनागार तथा समाधि [पृ० ८६]
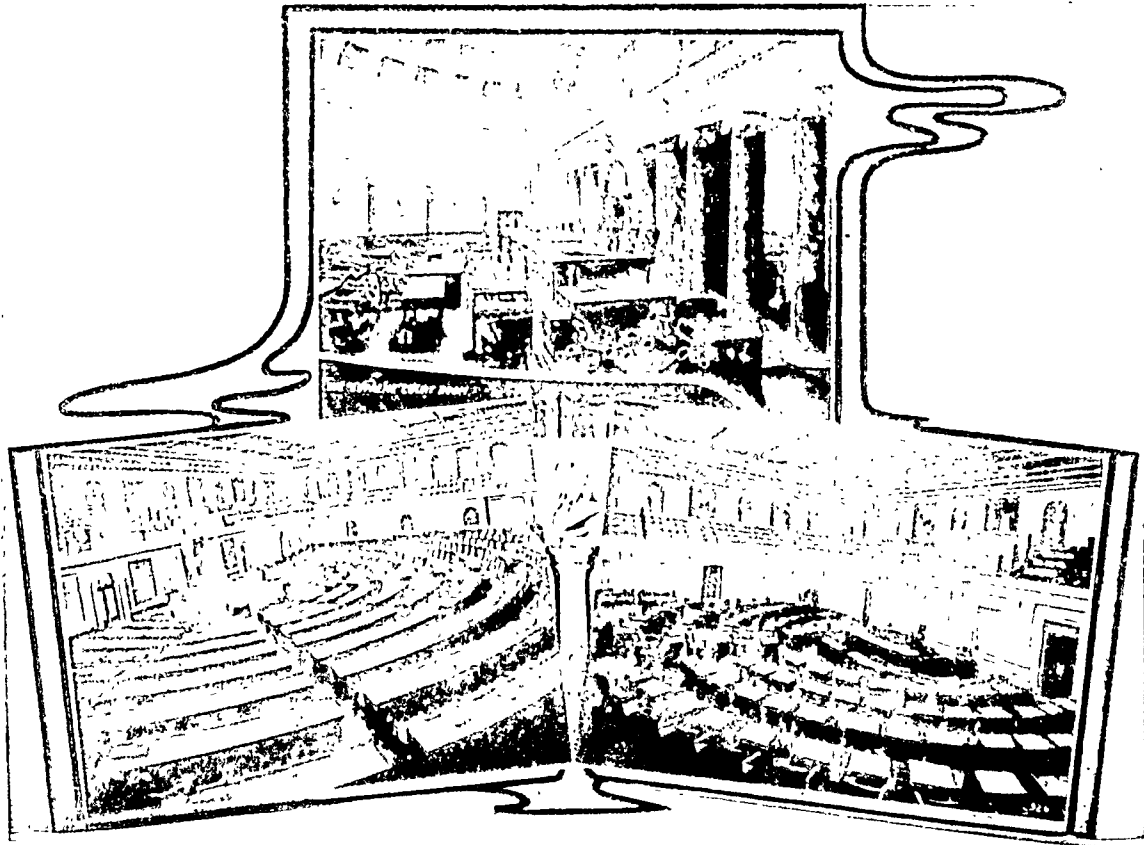
सुप्रीमकोर्ट, प्रतिनिधि भवन, सिनेट चेम्बर [पृ० ८६]

भोजन अच्छा मिलता है। मैंने भी यहाँ भोजन किया है। इस समय यहाँ कुल ३०९ विद्यार्थी हैं। इस संस्थासे अब तक ४०५ स्नातक निकल चुके हैं जिनमेंसे २२५ इस समय जीवित हैं। ऐसे विद्यास्थानोंकी इस देशके रङ्गीन मनुष्योंके लिये बड़ी आवश्यकता है।

अटलाण्टा युनिवर्सिटी

यह संस्था ४५ वर्षकी पुरानी है। इसका उद्देश्य नीग्रो जातिके लोगमें विद्याका प्रचार करना और उन्हें विशेषतया शिक्षित बनाना ही है। यहाँ शिल्पपर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। यह एक विशाल विद्यापीठ है। बालकों व बालिकाओं सभीको यहाँ शिक्षा मिलती है। यह विश्वविद्यालय विशेष रूपसे वैज्ञानिक रीतिपर सामाजिक, शिक्षासम्बन्धी, आर्थिक तथा सदाचार सम्बन्धी अवस्थाका अन्वेषण कर उस सम्बन्धमें ठीक ठीक परामर्श लोगोंको देनेका प्रयत्न करता है।

इस समय इस संस्थाके अधीन सात बड़ी व उत्तम इमारतें हैं। एक उत्तम पुस्तकालय भी है जिसमें १४ हजार पुस्तकें हैं। एक अच्छा छापाखाना भी है। यह सब साठ एकड़के मैदानमें है। इस सम्पत्तिका मूल्य इस समयके भावसे प्रायः ९ लाख रुपये है।

इस समय यहाँ ४०० छात्र तथा ३२ शिक्षक हैं। १६० छात्र छात्रालयमें निवास करते हैं। ये छात्र विद्याध्ययनके लिये प्रायः दक्षिण प्रांतसे यहाँ आये हैं।

इस समय तक यहाँसे प्रायः ७९५ स्नातक निकल चुके हैं जो सबके सब प्रायः शिक्षक हैं या अन्य उपयोगी कामोंमें लगे हैं। वे अपनी जातिमें उन्नत विचार फैला रहे हैं। इनके अतिरिक्त यहाँसे एक बड़ी संख्या उन विद्यार्थियोंकी भी निकली है जिन्हें स्नातक बननेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका। विद्यालयके ये पुत्र भी विद्यालयका गौरव भिन्न भिन्न रूपमें बढ़ा रहे हैं। ये लोग दक्षिणके प्रान्तोंके ग्रामोंमें फैल कर शिक्षाका कार्य तथा अन्य कार्य भी योग्यतासे करते हैं।

इस समय तक इस संस्थाकी स्थायी धन-राशिकी मात्रा कोई तीन लाख इक्कीस हजार रुपयेसे अधिक नहीं है। इस संस्थाको १५ लाख रुपयेकी बड़ी आवश्यकता है। इस समय तो प्रतिदिनके व्ययके लिये भी इसका हाथ तङ्ग है। इस विद्यालयको भ हम लोगोंने अच्छी तरह देखा। यहाँका जो प्रभाव बालकोंपर पड़ता है उसे मैं बहुतही उपयोगी समझता हूं।

स्पेलमैन सिमिनरी

यह संस्था केवल लड़कियोंकी ही है। यहाँकी अन्य संस्थाओंमें बालकों व बालिकाओं दोनोंकी शिक्षाका प्रबन्ध रहता है, पर यह विशेषरूपसे केवल स्त्री-शिक्षाके लिये ही स्थापित है। यहाँपर स्त्रियोंके लिये उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया गया है। इस समय यहाँ ७०३ स्त्रियाँ तथा बालिकाएं शिक्षा पाती हैं। यहाँ निम्नलिखित विषयोंकी शिक्षाका प्रबन्ध है—कालेज तथा स्कूलकी शिक्षापद्धति, दाईगिरी तथा डाक्टरी, सिलाईका काम, कृषिशास्त्र, दौरी व मौनी बनाना, पाकशास्त्र, टोपी बनाना, प्राकृतिक विज्ञान, मुद्रण-कला, ब्रेञ्चवर्क, वाद्य, गान इत्यादि। यहाँ लड़कियाँ कैसी सफाईसे रहती हैं यह देखते ही

बनता है। इस संस्थामें सब कार्य-झाड़ू देनेसे लेकर बड़ेसे बड़े कार्य तक-यहाँकी बालिकाएं ही करती हैं। इसे देखकर हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। यहाँ भी शिक्षाका तथा खाने-पीने, रहने इत्यादिका व्यय कोई ३९) रुपये होता है व विशेष शाखाओंमें मुफ्त तथा कम व्ययपर भी शिक्षा पानेकी सुविधा है।

इस संस्थाकी सम्पत्ति बीस एकड़ भूमि तथा दस उत्तम ईंटे-चूनेकी इमारतें हैं जो छात्रालयों व भिन्न भिन्न शिक्षालयोंका काम देती हैं। विद्यार्थियोंके शुल्कसे कुल व्ययका सप्तम अंश प्राप्त होता है। 'दि वीमेन्स अमरीकन बैपटिस्ट होम मिशन सोसाइटी' पन्द्रह शिक्षकोंका व्यय देती है। "स्लेटर कोपसे" (Slater Funds) सात शिक्षकोंका व्यय मिलता है। 'दि जनरल एजूकेशन बोर्ड' नामक शिक्षा-समिति शिक्षकोंके तथा मामूली व्ययके कार्योंके चलानेमें सहायता देती है। बाकीके लिये संस्थाको जनताकी उदारतापर निर्भर रहना पड़ता है। इसकी स्थायी पूंजी लगभग एक लाख रुपये ही है, सो भी भिन्न भिन्न विशेष कार्योंके लिये निर्धारित है।

इस संस्थाका प्रथम उद्देश्य महात्मा ईसाकी सेवा करना और मनुष्योंमें ईसाके धर्मका प्रचार करना है। इसका दूसरा प्रधान उद्देश्य लोगोंको सुखी बनाना है और उन्हें इस बातकी शिक्षा देना है कि वे किसी कार्यको तुच्छ व घृणाकी दृष्टिसे न देखें, अपना काम उत्तमतासे तथा ठीक रीतिसे करें व उसके करनेमें मन लगावें, और साथही सामाजिक तथा घरू जीवनको उच्च, सुखी व मनुष्यके योग्य बनावें। ऐसी संस्था गिरी जातियोंको उभाड़नेमें जो कार्य करती है उसका अन्दाजा लगाना कठिन है। वह थोड़े कालमें ही मानव जीवनको पलट देती है और उसे विशाल व महान् बना देती हैं।

लियोनार्ड स्ट्रीट अनाथालय ।

(४) यह एक टूटे-फूटे स्थानमें छोटा सा अनाथालय है, जिसमें प्रायः ६० या ७० अनाथ अश्वेत बालक-बालिकाएं रहती हैं। इसे मानव दीनताके करुणामय दृश्यसे द्रवित हृदय वाली एक स्त्री महोदया चलाती हैं। ये बड़ी उदार व दीनवत्सल महिला हैं। यहां भी थोड़ी बहुत शिक्षा मिलती है, बालिकाओंको अपना गृह-कार्य स्वयम् करना पड़ता है। इसे देख हृदय भर आया था। सभी बच्चे वाले माँ-बापको ऐसी संस्थामें शक्तिके अनुसार कुछ न कुछ दान देना चाहिये। इस संस्थाके पास कोई सम्पत्ति नहीं है। यह दैवी सहायतापर ही निर्भर है। ऊपर मैंने अटलाण्टाकी रङ्गीन जातिके बालकोंकी शिक्षाका क्या प्रबन्ध है, इसका संक्षेपमें बयान किया है। सफेद लोगोंके लिये क्या प्रबन्ध है, इसका लिखना अनावश्यक है क्योंकि वे तो देशके राजा ही ठहरे, उनके प्रबन्धका क्या पूछना है। जो कुछ धन व बुद्धि कर सकती है सभी वहाँ मौजूद है।
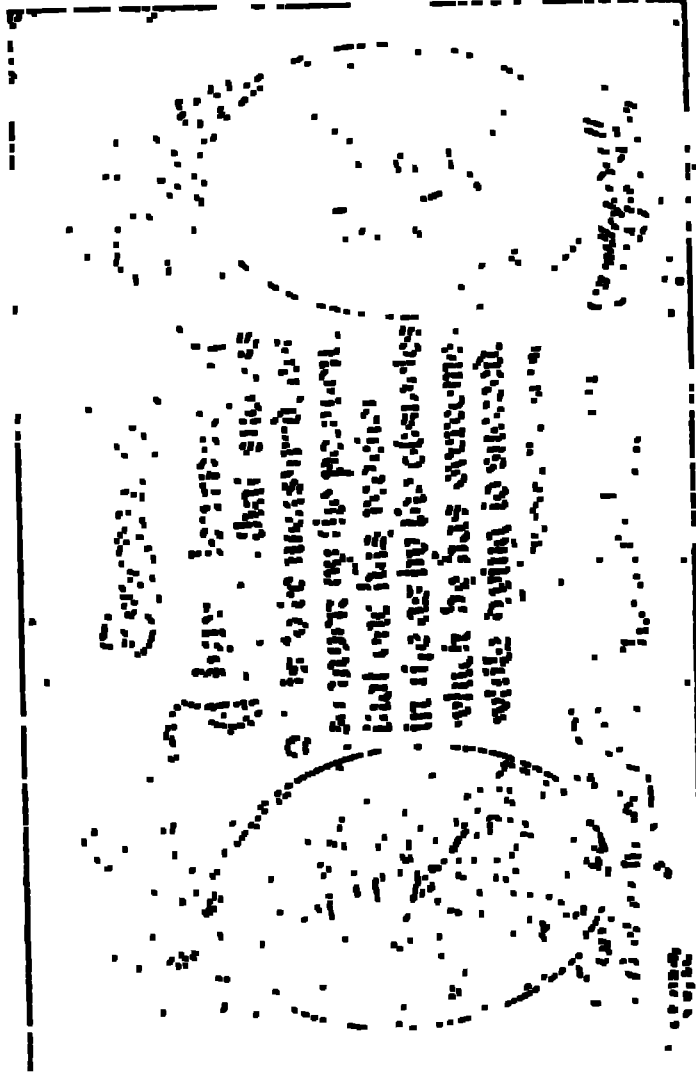
बुकर टी वाशिंगटन (पृष्ठ ६३)

सातवाँ परिच्छेद ।

टस्केजी विश्वविद्यालय ।

अटलाण्टासे प्रातःकाल ८ बजेकी गाड़ीसे रवाना हुआ व उसी दिन सायंकाल टसकेजीमें पहुंच गया। यह यहाँकी रंगीन जातिके लोगोंका प्रधान विद्यालय है। इसे यदि हबशी जातिका गुरुकुल अथवा जातीय विद्यालय कहें तो कुछ अनुचित न होगा, पर इससे कोई सज्जन यह न समझ लें कि इस संस्था और हमारी संस्थाओंमें कोई विशेष समानता है। गुरुकुलकी भाँति यहाँ ब्रह्मचारी नहीं पढ़ते और न यह पाठशाला केवल बालकोंको ही शिक्षा प्रदान करती है। इतना ही नहीं गुरुकुलकी स्वच्छता, पवित्रता व त्यागके भावोंका भी यहाँ अभाव ही है। पर यहाँ गुरुकुलकी कुछ त्रुटियाँ, जैसे विद्यार्थियोंका ८ वर्षसे २४ वर्ष तक एक प्रकारका कारागारवास अर्थात् घर व समाजके प्रभावोंसे विलगता व विशेष रूपकी प्रतिज्ञायें इत्यादि, नहीं हैं। हमारे जातीय विद्यालयोंकी भाँति यह संस्था केवल जातीय धनसे ही नहीं बनी है और न विशेष रूपसे यहाँ जातीयताका पाठ ही पढ़ाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँके अधिष्ठाता व शिक्षकगण लाला हंसराज, लाला मुंशीराम, अध्यापक पराञ्जपे प्रभृतिकी भांति झोपड़ीमें रहकर ७५ रुपये महीनेमें ही गुजारा नहीं करते। यहाँके अध्यापकोंको भरपूर वेतन मिलता है। यहाँके अधिष्ठाता महाशय बुकर टी० वाशिंगटनको छत्तीस हजार डालर अर्थात् एक लाख अट्ठारह हजार रुपये वार्षिककी आमदनी है। यह आमदनी इन्हें उस निधिसे होती है जो इसी निमित्त एक दानी अमरीकनने जमा कर दी है। वाशिंगटन महाशय इस बड़ी रकमकी बदौलत सुखसे जीवन व्यतीत करते व अपना नैमित्तिक कार्य करते हैं। क्या हमारे देशमें भी कभी ऐसा होनेकी संभावना है ? यदि ऊपर लिखे अनुसार यहाँकी संस्थामें व हमारी संस्थाओंमें कोई समानता नहीं है तो फिर मैंने इस संस्थाको यह नाम क्यों दिया, इसका कारण केवल यही है कि यह संस्था केवल हबशी जातिके लिये ही है। यहाँ शिक्षक व विद्यार्थी सभी इसी (हबशी) जातिके हैं।

यहाँ एक बात और कह देना मैं प्रसंगविरुद्ध नहीं समझता। इस देशमें आजकल रंगभेदके कारण सामाजिक भेद अत्यन्त बढ़ रहा है। यह भेद दक्षिणी प्रान्तोंमें अत्यन्त अधिक है, यहाँतक कि वहाँके शासकोंने यह नियम बना दिया है कि सफेद व काले बालक एक पाठशालामें न पढ़ें। इससे अभिप्राय यह है कि यदि ये बालक साथ साथ पढ़ेंगे तो बड़े होनेपर उनमेंसे बड़ाई व छोटाईका भाव अलग हो जावेगा। स्वाभाविक रीतिसे काली जातियोंसे ऊंचा होनेका विचार–जो अभी सफेदोंमें है—जाता रहेगा। यह बात अमरीकन जातिके हृदयकी संकीर्णता प्रकट करती है व उसके माथेपर काला धब्बा लगाती है।

उपर्युक्त नियमके कारण इस विश्वविद्यालयमें सफेद लड़के सफेदके नामसे नहीं भरती होने पाते, किन्तु दर्शकोंको यहाँ बहुत बड़ा अंश सफेद चमड़े वालोंका ही देख पड़ता है। इनमें अधिकांश तो वर्णसंकर हैं, किन्तु बहुतसे असली सफेद वर्ण वाले भी वर्णसंकर बन कर यहाँकी उत्तम शिक्षाका लाभ उठाते हैं। यहाँ एक बात और भी लिख देनी है कि जिस प्रकार भारतवर्षमें वर्णसंकरोंको गवर्नमेण्टने भारतीयोंसे अधिक अधिकार दे रखा है, जिसके कारण वे अपनेको ऊंचा समझ 'देशी' लोगोंसे नहीं मिलते जुलते व अपनेको अलग रखते हैं, वैसा इस देशमें नहीं है।

यहाँके नियमके अनुसार यदि किसी व्यक्तिके शरीरमें एक विन्दु भी काला रुधिर है तो वह काला ही गिना जाता है, चाहे उसके चमड़ेका रंग सफेद चमड़े वालोंसे भी बढ़कर सफेद क्यों न हो। इस कारण यहाँके वर्णसंकर अपनेको काला ही समझते हैं व अपनी जातिके साथ ही मिल जुलकर कार्य करते हैं। हम लोग जिस समय टसकेजी रेलरोड स्टेशनपर पहुंचे, यहाँके कर्मचारीगण हमें दफ्तरमें ले गये और वहांसे हमें निर्दिष्ट निवासस्थानमें ला उतारा। थोड़ी देर विश्राम करनेके उपरान्त एक कर्मचारीने हमें घूमनेके लिये कहा। हम उसके साथ घूमने चले। हम लोगोंको इस विद्यालयके देखनेके लिये बहुत कम समय था और देखना था बहुत कुछ, इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि हमने क्या देखा होगा।

यह संस्था जहाँपर स्थापित है उस स्थानको एक छोटासा कसबा कहना उचित होगा। इस कसबेका क्षेत्रफल २३४५ एकड़ भूमि है। यहाँपर छोटे बड़े सब मिलाकर १०७ मकान हैं। इस संख्यामें शिक्षालयके भिन्न भिन्न विभाग, छात्रालय तथा शिक्षकों के रहनेके स्थान इत्यादि भी शामिल हैं। यहाँपर छोटे बड़े सब मिलाकर भिन्न भिन्न प्रकारके प्रायः ४० व्यावसायिक विषयोंकी शिक्षा दी जाती है जिनका वर्णन विशेष-रूपसे मैं यहाँके अधिकारियोंकी भाषामें ही करूँगा।

इस छोटेसे कसबेमें ऐसी उत्तम साफ सड़कें हैं जैसी कि हमें कलकत्तेके चौरङ्गी-पर मिलती है। तार, टेलीफोन, बिजलीका प्रकाश, साफ शुद्ध जलके नल, नये ढंगकी जरूरतकी जगहें, मैले पानीके निकासके लिये बन्द सण्डास अर्थात् सभी आधुनिक प्रकारके आराम व आवश्यकताके सामान यहाँ हैं। इन सब वस्तुओंके लिये धन भी कोई पचास लाख रुपये ही व्यय हुआ है। इससे हिन्दू तथा मुसलमान विश्वविद्यालयों-के सञ्चालकोंको लाभ उठाना चाहिये। मैं एक बात और यहाँ कह देना चाहता हूं। मुझे डर है कि हम लोग अपनी संस्थाओंपर व्यर्थ ही अधिक धन केवल बेहूदगियोंपर सर्फ कर देते हैं। हम अपनी संस्थाओंको केवल इंगलिस्तानकी संस्थाओंके अनुरूप ही बनानेका प्रयत्न करते हैं। मैंने सुना था कि हिन्दू-विश्वविद्यालयके मंत्री महाशयका यह विचार था कि 'टेकनालॉजी' का विषय पढ़ानेके लिये ही एक करोड़ रुपयेकी जरूरत है। किन्तु यहाँ ४० विषयोंकी टेक्निकल शिक्षाका प्रबन्ध केवल ५० लाखमें ही हो गया है। लीड्स, मैञ्चेस्टर व ग्लासगोके विश्वविद्यालयोंमें भी साधारण व्ययसे काम निकाला जाता है। हम लोगोंने यहांका पुस्तकालय, छात्रालय, साधारण शिक्षालय व बड़ा बिजली घर (पावर हाउस) जो कि उस समय बन रहा था देखा। सायंकाल यहाँके वृहत् भोजनालयमें शिक्षकोंके साथ ही भोजन किया। फिर यहाँसे छात्रोंका भोजन

देखने चले जो एक प्रकाण्ड भोजनशालामें होता है। इसमें प्रायः दो सहस्र जन बैठ सकते हैं, बैठनेका प्रबन्ध बड़ा उत्तम है। टेबुलके एक ओर पुरुष व दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठती हैं। रात्रिको हमने साधारण शिक्षाकी रीति देखी, उसमेंकी एक बात यहाँ लिखनी आवश्यक जान पड़ती है। जिस कक्षाको हम देख रहे थे वह सातवीं कक्षा थी। यहाँपर मिकैनिक्स पढ़ायी जा रही थी जो भारतवर्षमें एफ० ए० में पढ़ायी जाती है। विषय लीवर (Lever) था। हमारे यहाँ तो काले तख्तेपर रेखाएं खींचकर यह विषय समझा दिया जाता है चाहे विद्यार्थीकी समझमें आवे या नहीं, किंतु यहाँकी रीति दूसरी ही है। यहाँपर इस विषयके पाठके लिये एक दो पहियोंकी बोझा ढोनेकी गाड़ी थी, कुछ ईंटें थीं व एक तराज़ू था। एक बालक गाड़ीका कम्पास पकड़ कर उसे उठाये हुए था। काले तख्तेपर गाड़ीका बोझ तौलकर लिखा था। ईंटोंका तोल भी लिखा था। आदमीको कम्पास उठानेमें कितना बल लगाना पड़ेगा इसके जाननेकी आवश्यकता थी। पहले गणितकी रीतिसे वह निकाला गया। फिर आदमीके हाथोंको हटा वहाँ कमानीदार तराज़ू लगाकर वही ज्योंका त्यों दिखा दिया गया। लड़कोंकी समझमें गणित भी आ गया व लीवरका वास्तविक उपयोग भी समझमें आगया। यह तीसरे प्रकारके लीवरका उदाहरण था। जिनको वास्तविक ज्ञान सिखाना मंज़ूर होता है उन्हें इस प्रकार शिक्षा दी जाती है, हमारे यहाँकी शुष्क रीतिपर नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल लड़कोंकी कवायद देखी। यह दृश्य भी बड़ा ही उत्साहजनक था। सब बालक झूठी बन्दूक लिये फौजी बाजेके साथ ठीक फौजी ढंगसे कवायद कर रहे थे। फिर हम कारीगरीकी शिक्षा देखने चले। शिक्षा बालकों और बालिकाओं दोनोंके लिये विभिन्न प्रकारकी है। गौण रूपसे यहाँपर लोहारी, बढ़ईगीरी जूते बनाने, कपड़े सीने, सींककी वस्तुएं बनाने, टोपी बनाने, कपड़े साफ करने, भोजन बनाने, विद्युत् शक्ति प्रयोगमें लाने, मशीन चलाने, बुनने, मक्खन निकालने, भिन्न भिन्न कृषिकी देखभाल करने इत्यादिके काम भी सब विद्यार्थी ही करते हैं। ये कार्य भी ऐसे हैं जो केवल सिखाने होके लिये नहीं वरन् वास्तविक उपयोगिताकी दृष्टिसे कराये जाते हैं, जिससे विद्यार्थियोंको मजूरी भी मिलती है। इस तरह वे व्यवसाय भी सीखते हैं व पढ़ने इत्यादिका व्यय भी निकाल लेते हैं। इस प्रकार शिक्षाके लाभका मोल अधिकतर माँ-बापपर नहीं पड़ता। दोपहरको सब विद्यार्थी-पुरुष व स्त्री-फौजी बाजे व अमरीकन झण्डेके साथ मार्च करके भोजन करने जाते हैं। एक ओर तो यह शिक्षा विद्यार्थियोंको चुस्त व चालाक बनाती है किन्तु दूसरी ओर इसमें प्रतिदिन अमूल्य समयका भी बड़ा भाग व्यय होता है। इसे देख हम लोग विश्वविद्यालयके प्रधान वाशिंगटन महाशयके यहाँ भोजन करने गये। उन्होंने बड़े सत्कारके साथ भोजन कराया। फिर हम लोग गोशाला व कृषिशाला देखने चले। गोशालामें बच्चे नहीं हैं, वे जनमते ही गायोंसे अलग कर दिये जाते हैं, किन्तु गायें दूध बराबर देती हैं। मैंने प्रश्न किया तो मालूम हुआ कि यहाँ कलकत्तेकी भाँति फूका नहीं लगाया जाता केवल हाथोंसे स्तनोंको जिस प्रकार बच्चे चुभलाते हैं उसी प्रकार धीरे धीरे सुहलानेसे ही गौ दूध देती है। गोशाला बड़ी ही साफ व सुथरी थी। दुहनेवाले विद्यार्थी भी साफ थे। दुहनेके पूर्व स्तन धो लिये जाते हैं

जिसमें गंदगी न रह जावे। दुहनेका पात्र बन्द होता है। उसपर एक महीन छेद-की खीप होती है जिसपर साफ सफेद छनना पड़ा रहता है। दूध छननेमें गिरता है और वह भीतर दोहनीमें चला जाता है। यहांसे वह दूध-घरमें जाता है। यह घर बड़ा ही साफ था, सब जमीन धो धाकर स्वच्छ की गयी थी। पहिले दूध भाप द्वारा गर्म किया जाता है जिसमें रोगके जन्तु, यदि उसमें हों, तो मर जावें। फिर ठंडा करके बोतलोंमें बंद हो जाता है। यही क्रम यहाँ सारे देशमें है। यहाँ हलवाइयोंकी दूकानपर मक्खी भिनकती कड़ाहीमेंसे कोई दूध नहीं लेता और न ग्वालोंकी ६ वर्षकी पुरानी मिट्टीकी कालिख लगी दुहेंड़ी ही देख पड़ती है। दूरसे ही बदबू करने वाले दूध-दहीके मैले छनने भी यहाँ नहीं देख पड़े। यही कारण है कि यहाँके बच्चे जनमते ही नहीं मर जाते। यहाँसे मैं कृपिशालामें गया। यहाँपर एक मजदूर-को देखा जिससे हमारे देशके साहब बाबू लोग बात भी न करेंगे किन्तु वह मजदूरी ही करते करते ऐसे वैज्ञानिक आविष्कार कर रहा है जिनसे थोड़े ही दिनोंमें संसारको चकित होना पड़ेगा। यह व्यक्ति इस समय मिट्टीमेंसे रंग निकालनेके काममें तनमनसे लगा था। इसको आशातीत सफलता भी हुई है। इसने प्रायः सभी रंग मिट्टीमें-से निकाले हैं। मैं नीलको देखकर हैरान हो गया। यहाँसे घूमता फिरता कृषि देखता अपने निवास-स्थानपर लौट आया। संक्षेपमें यहाँकी शिक्षा विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न व्यावसायिक कार्योंमें निपुण बना देती है। यहाँपर उच्च शिक्षा, जिसे कालेजकी शिक्षा कहते हैं, नहीं दी जाती। इस विद्यालयका उद्देश्य जनताको सांसारिक कार्योंके योग्य बनाना मात्र ही है। यहाँ मनुष्यके हाथ व मन दोनोंको शिक्षा दी जाती है। यहाँसे निकले हुए पुरुष वा स्त्रियाँ अपनी जीविका भली भांति कमा सकती हैं और मानसिक शिक्षाके कारण मन भो सुखी रख सकती हैं। यहाँकी सभी इमारतें विद्यार्थियोंने बनायी हैं। विद्यालयके लिये अन्न, साग-पात, फल-फूल, सभी कुछ विद्यार्थी ही इसी भूमिपर उपजाते हैं। इससे स्वतंत्र बननेकी भारी शिक्षा यहाँ मिलती है, व जीविका भी चलती है, यह एक नयी बात मुझे मालूम हुई है। इस प्रकारकी शिक्षाका प्रबन्ध भारतवर्षमें भी होना चाहिये। यहाँ सबको कार्य करना पड़ता है। जो दिनमें कार्य करते हैं वे रात्रिमें पढ़ते हैं, जो दिनमें पढ़ते हैं वे रात्रिमें कार्य करते हैं। अपने देशमें वृन्दावनका प्रेम महाविद्यालय कुछ कुछ इसी ढंगपर है, किन्तु वहाँ रोजी कमानेका ऐसा अच्छा सिलसिला नहीं है जैसा यहाँ है। अब मैं नीचे इस संस्थाके संवत् १९६९ के विवरणका छायानुवाद देता हूं। यद्यपि यह विवरण बहुत स्थान व समय ले लेगा किन्तु उपयोगिताकी दृष्टिसे इसका लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

संवत् १९३७ में व्यवस्थापक सभाने इस संस्थाको संस्थापित किया। उस समय दो सहस्र रुपये सहायता भी शिक्षकोंके वेतनके लिये देना निश्चय हुआ इसका नाम टसकेजी नार्मल इण्डस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट रखा गया। पहले पहल यह स्कूल एक पुराने गिरजाघरमें जो इसके लिये किरायेपर लिया गया था संवत् १९३८ के २० आषाढ़ (४ जुलाई १८८१) को खुला। इस समय इसमें १ शिक्षक व ३० विद्यार्थी थे। व्यवस्थापक सभाने इसके लिये स्थानका कुछ प्रबन्ध नहीं किया। संवत् १९४१ में
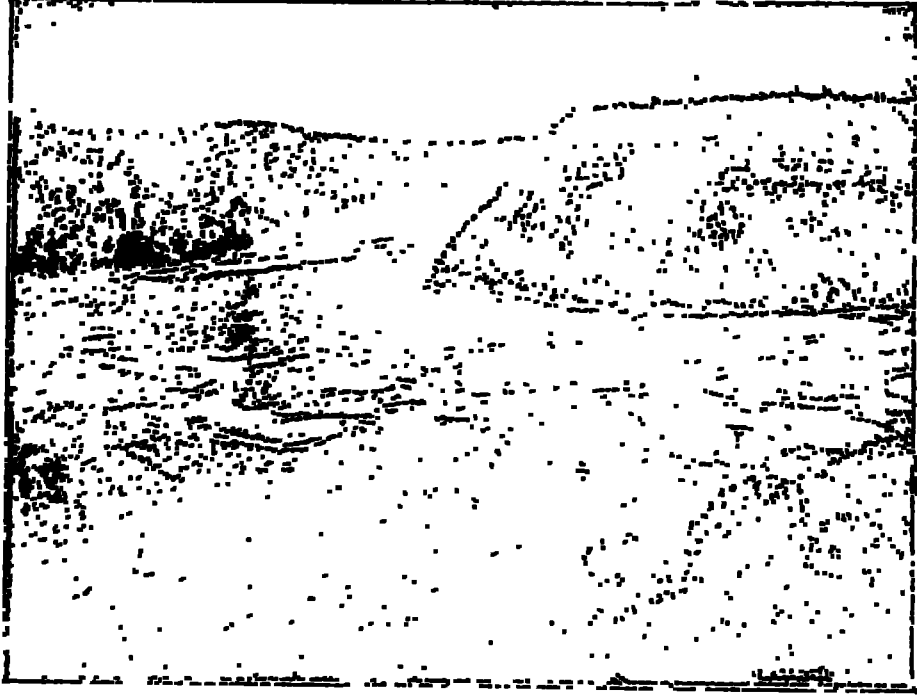
व्हर्लपूल रैपिड, नियागरा (पृष्ठ ८५)

सहायताकी रकम दो हजारसे तीन हजार डालर कर दी गयी। संवत् १९५० में संस्था उपयुक्त नामसे पुष्ट की गयी व इसकी रजिस्ट्री भी हो गयी पर प्रथम वर्षमें ही वर्तमान स्थान—१०० एकड़ जमीन तीन छोटे छोटे गृहोंके सहित—काले लोगोंके उत्तरीय प्रान्तवाले सफेद मित्रोंने खरीद दिया।

इस समय कुलकी जन-संख्या दो हजार है जिसमें १९३ शिक्षक व अन्य कार्यकर्त्ता तथा उनके अपने बाल-बच्चे सम्मिलित हैं। इसके जन्मकालसे संवत् १९६९ पर्यन्त यहाँसे ९ हजार विद्यार्थी पूरी अथवा अधूरी शिक्षा पाकर निकल चुके हैं व अच्छी तरहसे अपना जीवननिर्वाह कर रहे हैं, इनमेंसे अधिकांश या तो शिक्षकका कार्य कर रहे हैं या कारीगरीका। संवत् १९६९ में नार्मल तथा इण्डसट्रियल विभागोंमें नियमित दाखिला १६४५ था। इस संख्यामें ३६ प्रान्तों व २१ भिन्न भिन्न देशोंके विद्यार्थी शामिल हैं। इनमेंसे १०६७ लड़के व ५७८ लड़कियाँ हैं किन्तु उपयुक्त संख्यामें निम्नलिखित असाधारण विद्यार्थियोंकी संख्या नहीं गिनायी गयी है।

(१) २३० शिशुशालाके
(२) १५० ग्रीनवुड व टसकेजीके नगरनिवासी रात्रिशालाके
(३) १५ रात्रिकी बाइबिल कक्षाके
(४) ४० सन्ध्याकी पाकशालाके
(५) ४९ गर्मियोंके धार्मिक उपदेशक वर्गके
(६) ३०५ गर्मियोंके शिक्षक वर्गके
(७) १४७२ कृषिशालामें अधूरा पाठ लेने वाले

यदि ये सब संख्याएँ साधारण संख्यामें सम्मिलित कर ली जावें तो वर्षके अन्दर शिक्षा प्राप्त करने वालोंकी संख्या बढ़कर ३७५६ हो जावेगी। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि १६४५ साधारण विद्यार्थियोंमेंसे केवल १०० को छोड़ बाकी सभी छात्रशालामें निवास करते व वहीं भोजन करते हैं।

इस पाठशालामें विद्यार्थियोंकी अधिक संख्या दक्षिणी अटलाण्टा प्रान्तों जैसे अलबामा, जिआर्जिया, मिसिसिपी, टेक्सस, फ्लौरिडा व दक्षिणी करोलिना इत्यादिसे ही आती है। प्रान्तोंके नाम विद्यार्थियोंकी संख्याके अनुसार दिये गये हैं।

विद्यालयकी सम्पत्तिमें २३४५ एकड़ भूमि व १०७ छोटे बड़े भवन शामिल हैं। इन्हीं भवनोंमें निवासस्थान, छात्रशाला, पाठशाला, दूकानें तथा कारखाने व कृषिशाला इत्यादि हैं। इस समस्त भूमि, मकानों, तेजारती सामानें, जानवरों व निजकी वस्तुओंका एकजाई मूल्य इस समय १२९५२१३ डालर अर्थात् ३८,८५,६३९ रुपये है। इस धनराशिमें १९९१० एकड़ भूमिका मूल्य, जो अभी नहीं बिकी है, सम्मिलित नहीं है। कांग्रेसने ढाई लाखकी लागतकी २५५०० एकड़ भूमि दी थी, उसीमेंकी यह है। इसमें स्थायी पूंजी भी शामिल नहीं है। (इसके देखनेसे प्रतीत होता है कि यदि हिन्दू या मुसलमान विश्वविद्यालय चाहें तो इतना साज व सामान १५ लाखके व्ययसे एकत्र कर सकते हैं क्योंकि अपने यहाँ मजूरी सस्ती है, और स्वदेशी वस्तुएँ भी अपेक्षाकृत सस्ती हैं। हाँ नगरोंमें जमीनका दाम कुछ अधिक अवश्य लगेगा जिसके लिए यदि ५ लाख और रख लिया जाय तो सब मिलाकर २० लाखमें चार हजार विद्यार्थियोंके

पढ़ानेका सामान एकत्र हो सकता है, बत्तीस लाख बैंकमें सूदके लिये रखा जा सकता है ।)

इस पाठशालाके प्रबन्धका भार १९ सदस्योंकी एक सभापर है। सदस्योंमेंसे ८ अलबामा व शेष देशके अन्य भिन्न भिन्न नगरोंमें रहते हैं, ६ न्यूयार्क, २ मासाचसेट, २ इलिनोइस व १ पिनसिलवैनियामें। इनमेंसे न्यूयार्कके ५ व अलबामाके १ इन ६ सदस्योंकी एक अन्तरंग सभा धन रखनेका प्रबन्ध करती है।

इस समय स्थायी पूजी १८७१६४७ डालर अर्थात् ५६१४९४१ रुपये मात्र है इसमेंसे ३८ हजार डालरकी एक रकम श्रीमती मेरी ई. शा देवीकी रियासतसे मिली है जो न्यूयार्क निवासी एक रंगीन महिला हैं।

टसकेजी विद्यालयके स्नातकोंने प्रथम प्रथम संवत् १९४७ में इस स्थायी कोषकी स्थापना की थी। यह विद्यालयको स्थायी बनानेके निमित्त किया गया था। इसका नाम 'ओलिविया डैविडसन फण्ड' रखा गया था। यह प्रथम महिला मुख्याधिष्ठाताके स्मारक रूपमें हुआ था जो उस समय स्त्री-शिक्षा विभागकी 'डीन' थीं। इस राशिको पूरा होनेमें पूरे १० वर्ष लगे अर्थात् संवत् १९५७ में जाकर यह एक हजार डालर अर्थात् ३ हजार रुपये हुई। (जरा गौर कीजिये कि इनमें कितना धैर्य्य है।) इस बीचमें और कार्य बराबर जारी रहे और स्थायी निधिकी वृद्धि धीरे धीरे होती गयी। एक महाशयने एक बार ही ५० हजार डालर दे दिया। आपका शुभ नाम कालिस पी. हंटिंगटन* था। १९५६-५७ में इसकी वृद्धिके लिए विशेष यत्न किया गया और सफलता भी प्राप्त हुई अर्थात् राशि ६२,२५३-३९ से बढ़कर १५२, २३२-४९ तक पहुंच गयी किन्तु काफी वृद्धि १९६० में ही हुई जब एण्ड्रू कारनेगी महाशयने ६ लाख डालर एकमुश्त दे दिया। २५ वीं वर्षगांठके समय संवत् १९६२ में इसको दो और सहायतायें मिलीं। एक तो डेढ़ लाख डालरका बाल्डविन-फण्ड जिसे विलियम एच. बाल्डविनके मित्रोंने एकत्र किया जो अपनी मृत्युके समय तक इस संस्थाके एक सदस्य थे, व दूसरी, विद्यालयके पुत्रोंका दान जो एक हजार डालर था। संवत् १९६४ में अल्बर्ट विल्काक्सकी जायदादसे इसे २३१०७२ डालर और मिला।

इस समय पाठशाला चलानेका वार्षिक व्यय २७०००० डालर अर्थात् कोई ८१०००० रुपये होता है। इसकी प्राप्तिके लिये पाठशालाको अपने स्थायी कोष व अन्य आधारोंसे १२०००० डालरकी पूर्ण आशा रहती है। संवत् १९६८ में उपर्युक्त संख्यामेंसे १७०८७ डालर विद्यार्थियोंके शुल्कसे प्राप्त हुआ था। इस भांति प्रतिवर्ष डेढ़ लाख डालरकी प्राप्तिके लिये जनताकी उदारताका ही मुख जोहना पड़ता है।

इस समय इस पाठशालाको निम्न रकमोंकी बड़ी आवश्यकता है, (१) प्रति वर्ष ५० डालर एक विद्यार्थीकी वार्षिक वृत्तिके लिये—विद्यार्थी अपने भोजनका प्रबन्ध स्वयं मजदूरी द्वारा कर लेगा, (२) १२०० डालर स्थायी वृत्तिके लिये, (३) चलते खर्चके लिये किसी रूपमें सहायता, (४) स्थायी कोषकी वृद्धिके लिये कमसे कम ३० लाख डालर या लगभग ९० लाख रुपये, (५) ३० हजार धार्मिक मण्डप बनानेके लिये, (६) १५ हजार पुरुषोंके व्यावसायिक भवनकी पूर्त्तिके निमित्त, (७) ४०

* CollisP. Huntington

हजार पुरुषोंकी छात्रशालाके निमित्त, (८) ४० हजार स्त्रियोंकी छात्रशालाके निमित्त, (९) १५ सौकी ४ रकमें ४ शिक्षकोंके आवासके लिये और (१०) तीन हजारकी रकम एक साधारण भण्डारके लिये ।

व्यावसायिक विभाग

कृपिविभाग तथा स्त्री सम्बन्धी व्यवसायोंको सम्मिलित करके इस समय इस संस्थामें व्यवसाय सम्बन्धी भिन्न भिन्न ४० विषयोंकी शिक्षा दी जाती है।

रोजगारकी शिक्षा तीन विभागोंमें विभक्त है (१) कृपिसम्बन्धी, (२) औजार सम्बन्धी और (३) स्त्रियोंके योग्य व्यवसाय । हर एक विभागके लिये पृथक् पृथक् भवन व भवनसमूह हैं। कृपिशालामें प्रयोगशालाके अतिरिक्त प्रयोगक्षेत्र तथा अन्य ऐसे भवन हैं जहाँ जांचका कार्य होता है।

कृषिशाला

कृपिशालाका कार्य 'मिलबैंक कृपिभवन' में होता है जो संवत् १९६६ में २६ हजार डालरकी लागतसे निर्माण किया गया था । साधारण पाठके निमित्त जो दालान हैं उन्हें छोड़ इसमें प्रारम्भिक प्रयोगके लिये रासायनिक प्रयोगशाला भी है। यहाँपर एक संग्रहालय भी है जिसमें नाना भाँतिके फल-फूलों तथा विविध जीव-जन्तुओंका अच्छा संग्रह है। यहाँपर एक और भी जगह है जिसमें तीन सौ व्यक्तियोंके बैठनेका प्रबन्ध है। इस इमारतके निचले खण्डमें दूध व मक्खनघर है व एक कारखाना भी है जिसमें कृपिके यंत्रोंकी मरम्मत होती है। यहींपर एक और शिक्षाघर है जिसमें जीव-जन्तु सम्बन्धी शिक्षाका उत्तम प्रबन्ध है।

प्रथम प्रथम कृपिका व्यवसाय संवत् १९४० में प्रारम्भ किया गया था। यह व्यवसाय उस स्थानपर होता है जहां आज दिन फेल्प्स हाल, हंटिंगटन मेमोरियल हाल, व कैनिंग फैक्टरी स्थित हैं। इस समय यहाँकी कृपिकी भूमि प्रायः २३०० एकड़के लगभग है। इसमेंसे ८० एकड़में तरकारी बोयी जाती है, जिससे पाठशाला तथा ग्रामके निवासियोंको सब्जी और भाजी मिलती है। ८० एकड़में फलके बाग़ हैं, ८४० एकड़में मामूली कृपि होती है, १३०० एकड़ चरागाह व लकड़ी इत्यादिके लिये सुरक्षित है।

इस कृपिके सहारे बहुतसे जीव यहाँ पाले जाते हैं। दूध व घीके सम्बन्धके २२५ पशु हैं जिनमें साँड़, छोटे बाछे व दूध देने वाली १०७ गायें हैं। गतवर्ष (अर्थात् संवत् १९६८ में) मक्खन-घरमें ९१४९२ गैलन* दूध आया व यहाँ २१३२२ पाउंड मक्खन तैयार हुआ। सुअरखानेमें ५११ सुअर हैं व चिड़िया-खानेमें दो हजारसे अधिक मुर्गियाँ हैं। घोड़सालमें १७० घोड़े व खच्चर हैं जो पाठशालाके सब कार्य करते हैं। गत वर्ष इनसे ३६७२९ डालरकी आय हुई। उक्त वर्ष (संवत् १९६८) में कृपिका कार्य २५० विद्यार्थियों, ४२ मज़दूरों व १८ शिक्षकोंने मिल कर किया था।

*एक गेलन लगभग २७७ घन इञ्चकी हैसियतका माप है। एक पौंड लगभग आध सेरके बराबर होता है।

गतवर्ष निम्न प्रकारकी उपज हुई—५०० टन* हरी चरी व काँटा, १३००० बुशल शकरकन्द, ३५०० बुशल मक्की, ४००० बुशल जई, २६०टन सूखी घास; तरकारीके खेतसे—११५४५३ पाउण्ड शाक, १११६ झुप्पे गाजर, ४६५ बुशल प्याज, ५३ बुशल चुकन्दर, ३५८ बुशल भिन्न भिन्न प्रकारके सेम, २९१० बुशल टमाटो, ७०० बुशल गाँठगोभी व शलजम, ४१५ दर्जन हरी बाल, १००० खबूँजा, ५३६ बुशल आलू व २५८ बुशल मटर। तरकारीकी एकजाई कीमत ७९५० डालर हुई।

घासके मैदान व भिन्न भिन्न पेड़ों व फूलोंके बाग बनानेका कार्य सिखाना थोड़े दिनोंसे प्रारम्भ हुआ है। वृक्ष-विद्या संवत् १९५२ में प्रारम्भ की गयी थी, पुष्पविद्या संवत् १९६१ में प्रारम्भ हुई। यह एक मित्रकी उदारताका फल है जिसने कुछ धन इसी निमित्त दान किया था। एक दूसरा बाग संवत् १९६४ में बना जिसमें ४० हजार छोटे छोटे पौधे व ४ सौ सायेदार वृक्ष रोपे गये। गतवर्ष(संवत् १९६८)७०० झाड़ियाँ व पौधे रोपे गये, २४५०० वर्ग गज घासका मैदान बना, ४८०० वर्गगज सड़क व पगडंडियाँ बनीं व ४६७९ फुट नल व बरसाती पानीका पनाला भी बनाया गया।

इस समय यहाँ १२५०० आड़ूके वृक्ष, १४०००० स्ट्रावरीके पौधे,३८५० अंगूरकी लताएँ व १८५ अंजोर या गूलरके वृक्ष पाठशालाकी फूल-वाटिकामें हैं। एक वर्षके भीतर विद्यार्थियोंने १०१० वृक्ष व ७८०३ झाड़ियाँ यहाँ रोपीं व वृक्षोंका मूल्य मिलाकर ७३९२ डालरकी लागतकी मिलकियत अपने परिश्रमसे पाठशालामें जोड़ दी।

कृषिशालाके सम्बन्धकी प्रयोगशाला संवत् १९५३ में बनी थी। उसका निर्माण उस वर्षके कृषिशाला सम्बन्धी राष्ट्रके नियमके अनुसार हुआ था। ८ वर्षोंका फल एक निबन्धके रूपमें संवत् १९६२ में मुद्रित किया गया, जिसका नाम था "बञ्जर भूमिको उपजाऊ बनानेका ढंग"। इस निबन्धके सम्बन्धमें एक और निबन्ध मुद्रित हुआ जिसका विषय था "बलुई ऊँची भूमिपर कपासकी खेती"। इस निबन्धसे प्रकट होता है कि अलबामाकी निकृष्टसे निकृष्ट भूमिमें एक बेल (गाँठ) रूई प्रति एकड़ उपजायी जा सकती है जो इस प्रान्तकी उपजके हिसाबसे चौगुनी है।

कपासकी खेतीके सम्बन्धमें संवत् १९६२ से प्रयोग व परीक्षा जारी है। इस परीक्षाका उद्देश्य (१) उत्तम प्रकारकी कपास पैदा करना है जिसे समुद्र द्वीपीय कपास (सी आइलैण्ड काटन) कहते हैं, इसके रेशे बड़े व रेशमी होते हैं। (२) इस प्रकारकी जाति उत्पन्न करना जो बलुई भूमिमें खूब उपज सके।

यन्त्र सम्बन्धी व्यवसाय

यह कारखाना स्लेटर आर्म-स्ट्रांग स्मारक भवन † में, जहाँ औजार व यंत्रसम्बन्धी कला सिखायी जाती है, स्थापित है। यह भवन आटेकी कल, इञ्जनघर, यन्त्र-भवन व भण्डारके सहित ३७६५० वर्गफुट जमीन छेके हुए है। यहाँ निम्नलिखित भिन्न भिन्न विषयोंकी शिक्षा दी जाती है—(१) बढ़ईगिरी (२) लकड़ीका काम (३) मुद्रणकला (४) दर्जीगिरी (५) लोहारी (६) पहिया व चक्का ठीक करनेकी

*टन = २७¹⁄₄ मन †Slater-Armstrong Memorial Trades Building.

कला (७) साज बनानेकी कला (८) गाड़ी बनाना (९) पाइपका काम (१०) भाफ-का काम (स्टीम फिटिंग) (११) बिजलीकी रोशनी (१२) मकान व यन्त्र सम्बन्धी चित्रण कला (१३) कलईगिरी (१४) तसवीर बनाना व (१५) मापयंत्र व जूता बनाना। आरावर व ईंट पाथनेका काम अलग मकानोंमें होता है।

यहाँ जो पहिला भट्ठा तैयार हुआ उससे अलबामा भवन निर्माण हुआ था। ईंट पाथनेकी शिक्षा संवत् १९४० में ही प्रारम्भ हो गयी थी। यह यहाँकी दूसरी ही कला थी। प्रारम्भमें ईंट हाथोंसे ही पाथी गयी थी। ईंट पाथनेका प्रथम यन्त्र काठका बनाया गया था व घोड़ेके बलसे चलता था। इससे ८ हजार ईंटें प्रति दिन बनती थीं, इस समयके दो यंत्रोंमें प्रत्येकसे २५ हजार प्रतिदिन बनती हैं।

मेमारी व पलस्तर करनेका कार्य सिखाना संवत् १९४० में प्रारम्भ हुआ था। इस समय इस संस्थामें २९ भवन ईंटोंके हैं जिन्हें यहींके छात्रोंने बहुधा शिक्षकोंकी सहायतासे बनाया है सब कार्य—ईंट बनानेसे लेकर मकानोंके नक़शे तैयार करने व भवन-निर्माण करने तक—छात्रोंने ही किया है। संवत् १९६८ में नयी इमारत तथा मरम्मतके कार्यका व्यय ९५७१ डालर हुआ जिसका भार केवल इसी विभागने वहन किया।

लोहारीका काम प्रथमतः १२×१६ फुटके लकड़ीके मकानमें आरम्भ हुआ था। इस समय इस विभागमें १० निहाइयां चलती हैं व प्रतिवर्ष तीन हजार डालरका कार्य होता है। इसमें इमारती लोहेका सामान, गाड़ी व १२ सौ घोड़ोंकी नाल-जड़ाईका काम शामिल है।

बढ़ईगिरीका कार्य संवत् १९४१ में आरम्भ हुआ था व पूर्वमें यह काम जान एफ. स्लेटर बढ़ईके कारखानेमें होता था। खराद, महीन औजार व गाड़ी बनानेके कार्य यहाँ बादमें बढ़ाये गये हैं। इसके ज़रिये स्कूलकी मरम्मतका कार्य तथा स्कूलके सामान—कुर्सी, मेज़ इत्यादि—बनानेके कार्य सब यहीं होते हैं। यदि कारखाना न होता तो यह सामान बाहरसे मंगाना पड़ता। इस समय जितनी इमारतें इस संस्थामें हैं उनमें जो कुछ लकड़ीका काम है वह सब यहींके विद्यार्थियों द्वारा यहींके कारखानेमें किया गया है।

यन्त्रालयका कार्य संवत् १९४२ में प्रारम्भ हुआ था, दो पत्र पाठशालाके फायदेके लिये यहींसे छपते हैं। चार मासिकपत्र यहां छपते हैं व पाठशाला तथा निकटस्थ नगरके बहुतसे फुटकर कार्य भी होते हैं। इस विभागके कार्यका मूल्य संवत् १९६८ में १६२१७ डालर अनुमान किया गया है।

पाठशालाका आरा-घर संवत् १९४३में बनाया गया। उस समय पाठशालाके पास कई प्रकारकी अच्छी लकड़ियोंका वन था। खोजसे पता चला कि इसको काटकर बेचनेमें बड़ी बचत व फायदा होगा। संवत् १९६७में ७८ हजार फुट लकड़ी चीरी गयी, १५३५०० फुट लकड़ी छील कर दुरुस्त की गयी, १०५००० खराद बने और बहुत सा ईंधन चीरा गया।

प्रथम गाड़ी जो बनी उसे एक अनपढ़ फेयेट पू * ने बनाया था जो उस समय, संवत् १९४४ में, आरा-घरमें कार्य करता था। उस समय स्कूलको गाड़ीकी बहुत जरूरत थी पर खरीदनेको पासमें रुपया नहीं था। इस मनुष्यने कहा कि यदि

* Fayette Pugh.

स्कूल लोहा खरीद दे तो मैं गाड़ी बना दूंगा। यह गाड़ी, लोहेका काम छोड़ कर, यहीं एक बांझके पेड़के नीचे बनायी गयी थी व इसी आवश्यकतासे गाड़ी व पहियेके बनानेका कारखाना संवत् १९४५ में खुला। थोड़े दिनके बाद यही पहिया बनानेका कारखाना लोहारीके कारखानेकी मददसे बग्घी व गाड़ी बनाने लगा। तब गाड़ी बनानेका पूरा कारखाना संवत् १९४८ में खोला गया। कृषियंत्रोंकी मरम्मतके अतिरिक्त प्रतिवर्ष यहां बीस गाड़ियां बनती हैं। इनके अतिरिक्त लढ़िया व छकड़े भी बहुतसे बनते हैं। संवत् १९६८ में इस विभागमें १०६२ भिन्न भिन्न वस्तुएँ बनीं जिनकी कीमत ४७७२ डालर हुई।

कलईका खर्च संवत् १९४७ में इतना बढ़ गया कि अपने यहां इसका कारखाना खोल लेना सस्ता मालूम पड़ा। लूइस आदम नामक एक रंगीन जातीय पुरुष, जिसने पाठशालाके लिये टसकेजीकी प्राप्तिमें बड़ी सहायता दी थी, इस कार्यको करता था। जाँचसे पता चला कि वही आदमी कुलमें नौकर रखा जा सकता है जो लड़कोंको कार्यकी शिक्षा देगा, सब कार्य भी करेगा व इसके बदलेमें पुरानी मरम्मतपर जो व्यय होता था उससे कम ही उसे देना पड़ेगा। आदम महाशय मोचीगीरी भी जानते थे जिसके द्वारा उन्होंने पाठशालाको बड़ी सहायता पहुंचायी। इससे यही निश्चय हुआ कि इन्हें यहाँ रखकर ये सब कार्य छात्रोंको सिखाये जावें।

इस समय कलई विभागसे प्रायः ३ हज़ार पुराने व नये वर्तन तैयार होते हैं। बड़ी बड़ी इमारतोंकी छतके लिये यहीं टीन बनायी गयी है। संवत् १९६५ में प्रथम प्रथम जस्तेकी कलईके पत्तर मकानोंमें लगाना यहां प्रारम्भ हुआ।

जूतेकी दूकानमें ५३ जोड़े जूते नये बने, ६४ जोड़ोंकी ऊपरी मरम्मत हुई व २९ सौ जोड़ोंकी अन्य मरम्मत हुई। इसमें वर्षके भीतर १८ सौ डालरका कार्य हुआ।

साजकी दूकानमें संवत् १९६८में ३८ जोड़े साज बने, १२ दर्जन दहाने व ४ सौ अन्य साज सम्बन्धी पुरजे बने, २० गाड़ियोंकी पालिश हुई, १० उम्दा बग्घियोंके टप बने, १२ जोड़े परदे व गद्दियां बनीं। सबका मूल्य ३९६४ डालर मिला।

एक हटाया हुआ क्युपोला यंत्र (cupola) टसकेजीके निकटवर्त्ती एक सफेदोंकी पाठशालासे इसे दान मिला। इसीसे यहां यन्त्रशाला बनी। वाशिंगटन महाशय बहुत दिनोंसे यन्त्रशाला बनानेके विचारमें थे। इनके विचारकी पूर्त्तिके लिये ढालनेके सामानकी भी ज़रूरत पड़ी। यह विचार आप निकटस्थ स्कूलके कर्मचारियोंपर प्रकट कर चुके थे। निदान उन्होंने छोटा पुराना यंत्र हटाकर नया बड़ा अपने यहां बनाना चाहा, इसीसे यह छोटा यंत्र इनको दे दिया।

उस समय पाठशाला इतनी धनहीन थी कि उसे बारबरदारीके लिये भी धन देनेकी सामर्थ्य न थी। वाशिंगटन महाशयने तीन जोड़ी बैल भेजकर उस यंत्रको कच्ची सड़कसे उठवा मंगाया। उस समयसे पाठशाला अपने यहांके ढालनेके कार्य स्वयं करती है व आस पासके ग्रामोंका कार्य भी यहाँ होता है। यहाँ अन्य जनोंके दरवाज़े, चारपाई, भिन्न भिन्न यंत्र इत्यादि सभी चीजें बनती व ढलती हैं।

इस समय यन्त्रशाला, ढाल घरको छोड़कर, २८७० वर्ग फुट ज़मीन छेके हुई है। इस समय यहां १७ इञ्जन चलते हैं जिनकी संयुक्त शक्ति ८६१ घोड़ोंकी है। कई इञ्जनों-

के होनेसे शक्तिका व्यर्थ व्यय आजकल हो रहा है। इसके दूर करनेका यत्न किया जा रहा है। (अब यहां एक बड़ा इञ्जन बन रहा है जिससे यह दिक्कत दूर हो जावेगी।)

नलका कार्य, जो पूर्वमें यंत्रशालाके अन्तर्गत था, अब पृथक् कर दिया गया है। इस विभागने ९५४५ फुट गैस तथा ३०९३७ फुट पानीके नल लगाये हैं। इस विभागका कार्य संवत् १९६८ में ६१७९ डालरका हुआ।

इस समय ६ हजारसे अधिक बिजलीके लैम्प मकानों तथा सड़कोंपर लगे हैं। संवत् १९५५ में प्रथम प्रथम डाइनमो क्रय किया गया था व प्रथम प्रथम गिरजेमें बिजली लगायी गयी थी। इस समय ग्रीनवुड ग्रामके बहुतसे गृहोंमें बिजली लग गयी है व करीब २६ मील लम्बा तार इस समय रोशनीके लिये लगा है जिसकी देखभाल छात्र ही किया करते हैं।

रंगसाजी प्रथम प्रथम संवत् १९४८ में पृथक् सिखायी जाने लगी। पूर्वमें यह कार्य बढ़ईघर व गाड़ीखानेमें होता था। संवत् १९६८ में इस विभागने छोटे बड़े १२९७ कार्य किये। इसमें मकानोंका रँगना, दरवाजोंमें शीशा लगाना, साइनबोर्ड बनाना, गाड़ी, मेज, कुर्सी इत्यादिकी पालिश करना यह सब शामिल हैं।

दर्जीखानेमें संवत् १९६८ में २००० कार्य हुए। इसमें २७५ पूरे सूट शामिल हैं। छात्रोंकी पोशाक यहीं बनती है। इसमें ६५ छात्र कार्य करते हैं।

कृषिसम्बन्धी तथा यंत्र सम्बन्धी नक़शा बनानेका काम पहले अलग सिखाया जाता था। जबसे इसका एक पृथक् विभाग बन गया है तबसे कार्यमें बहुत उन्नति हुई है। अब यहां केवल मकानोंके ही नहीं किन्तु हर प्रकारके नकशोंका कार्य होता है। इसकी सहायतासे छात्रोंकी विचारशक्ति बहुत बढ़ गयी है व वे अपना कार्य अच्छी तरह करते हैं।

स्त्रियोंके सम्बन्धकी कला

जो कार्य यहां स्त्रियोंकी कलाके नामसे विख्यात है वह एक भवनमें है जिसका निर्माण संवत् १९५८ में हुआ था व जो डरोथी हालके नामसे विख्यात है। यहांपर धोबीखाना, पाकशाला, दर्जीघर व टोपी बनानेका कारखाना है। यहांपर दौरी, मोनी, चटाई, झाड़ू व साबुन भी बनता है। इमारतमें बढ़ती होनेके कारण जगह अधिक निकल आयी है, इससे पाकशाला बड़ी बनायी गयी है व पाकशिक्षा भली-भांति दी जाती है।

पहले तो छात्र ही पाक-क्रिया करते थे किन्तु अब परसनेका कार्य तो छात्र करते हैं पर पाक व गृह-प्रबन्धकी शिक्षा भिन्न स्थानमें दी जाती है।

संवत् १९६० से सब बालिकाओंको पाकक्रिया व गृह-प्रबन्ध-कला सिखायी जाती है। इस शिक्षाके पा लेनेके उपरान्त उन्हें एक मास तक छात्रों तथा शिक्षकोंके भोजनालयमें कार्य करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पाठशालाके पास एक और छोटा सा गृह है जिसमें ऊँची कक्षाकी लड़कियां अपना गृह-प्रबन्ध स्वयं करती हैं जिससे उन्हें उस कलाकी पूरी शिक्षा मिल जाती है। यह सब प्रबन्ध उन्हें थोड़ेसे धनमें ही करना पड़ता है जो उन्हें पाठशालासे ही दिया जाता है।

पोशाक बनाने व टोपी साजनेका कारखाना अभी थोड़े ही दिनोंसे खोला गया है और यह साधारण सिलाईके विभागके साथ ही जोड़ दिया गया है। इसका अभिप्राय कुछ छात्रोंके लिये व्यवसायका प्रबन्ध करना मात्र ही है। साधारण सिलाई-का कार्य मामूली अन्दरके कपड़ोंके लिये ही खोला गया था। गतवर्ष २७७९ अदद कपड़े साधारण सिलाईघरमें बने। टोपी-घरमें ४५० टोपियां बनीं। ६१५ तारके ढांचे व २०० भड़कीली टोपियाँ बनीं। जनाना विभागमें १४५ पूरी पोशाकें व १०७२ छोटे छोटे कपड़े व पोशाकें बनीं।

दौरी, मौनीका कारखाना एक संपादकके विचारसे उत्पन्न हुआ था। संवत् १९४४ में पाठशालाको गद्दोंकी ज़रूरत पड़ी। इस कसबेमें गद्दे नहीं मिलते थे। जो व्यक्ति उन्हें बनाता था वह मर गया था। निदान एक शिक्षक व एक छात्रने यह विचार किया कि हम लोग इसे स्वयं बनावेंगे। इस ख्यालसे उन्होंने एक पुराने गद्दे-को फाड़कर उसे देखा कि यह कैसे बना है। जब वे यह कार्य कर रहे थे उस समय उन्हें एक संपादकने देख लिया व अपने वृत्तान्तमें इस कार्यको 'मैट्रेस मेकिंग इण्डस्ट्री' (गद्दे बनानेका उद्योग) के नामसे पुकारा। बस उसीसे यहाँ यह विचार जारी होगया व यह कारखाना खुल गया। संवत् १९६७ में निम्नलिखित चीज़ें यहां बनीं—१४४९ झाड़ूएँ, १२५ गद्दे, ७० चटाइयाँ या फरश वगैरह, ४८४ पर्दे, १९३ टेबुलक्लाथ, २६३ बिछावनकी खोलियाँ, २०११ तकियाकी खोलियां, १२३ खिड़कीके पर्दे व ९९ भिन्न प्रकारके पर्दे। संवत् १९६७ में सब मिलाकर यहाँ २९७५ डालरका कार्य हुआ। पाठशालाकी तमाम धोलाईका कार्य पाठशालाके ही धोबी-घरमें लड़कियां करती हैं। १६ सौ आदमियोंके कपड़ोंकी धोलाईका काम मामूली काम नहीं है। वर्षमें १४३२०२३ कपड़े धोने पड़ते हैं।

साधारण पढ़ाई विभाग

पाठशालाका साधारण विभाग कालिस पी. हंटिंगटन स्मारक भवनमें स्थित है। यह भवन उपर्युक्त सज्जनकी पत्नीने अपने पतिकी स्मृतिमें बनवाया है।

यहाँके कुल छात्रोंके लिए साधारण शिक्षा आवश्यक अर्थात् अनिवार्य्य है। यहाँपर साधारण शिक्षाको औद्योगिक शिक्षाके साथ मिलानेका नियमित रूप-से यत्न किया जाता है। इस भाँति औद्योगिक विभागका कार्य केवल भार मात्र नहीं रह जाता किन्तु उसमें भी एक प्रकारका जीवन व उच्च उद्देश्य आजाता है। इस तरह दूसरी ओर जो सिद्धान्त साधारण विभागमें सिखाये जाते हैं उनका यथेष्ट प्रमाण तथा उनके वास्तविक उपयोगका ज्ञान औद्योगिक विभागमें प्राप्त हो जाता है।

साधारण विभागमें छात्रोंकी संख्या दिनमें पढ़नेवाली वा रात्रिमें पढ़नेवाली जमातोंमें विभक्त है। छात्रोंका दो-तिहाई भाग दिनमें व एक-तिहाई रात्रिमें पढ़ता है। रात्रिको छात्रोंका पाठकाल प्रति सप्ताह चार दिन ६-४५ से ८-३० तक व एक दिन ६-४५ से ८ तक है, और दिनके विद्यार्थियोंका सप्ताहमें तीन दिन ९-३० से १२ व १-३० से ४ तक पड़ता है। रात्रिके जो छात्र हृष्टपुष्ट व बुद्धिमान हैं वे मामूली दिनके

हंटिंगटन हाल (पृष्ठ १०४)

डरोथी हाल
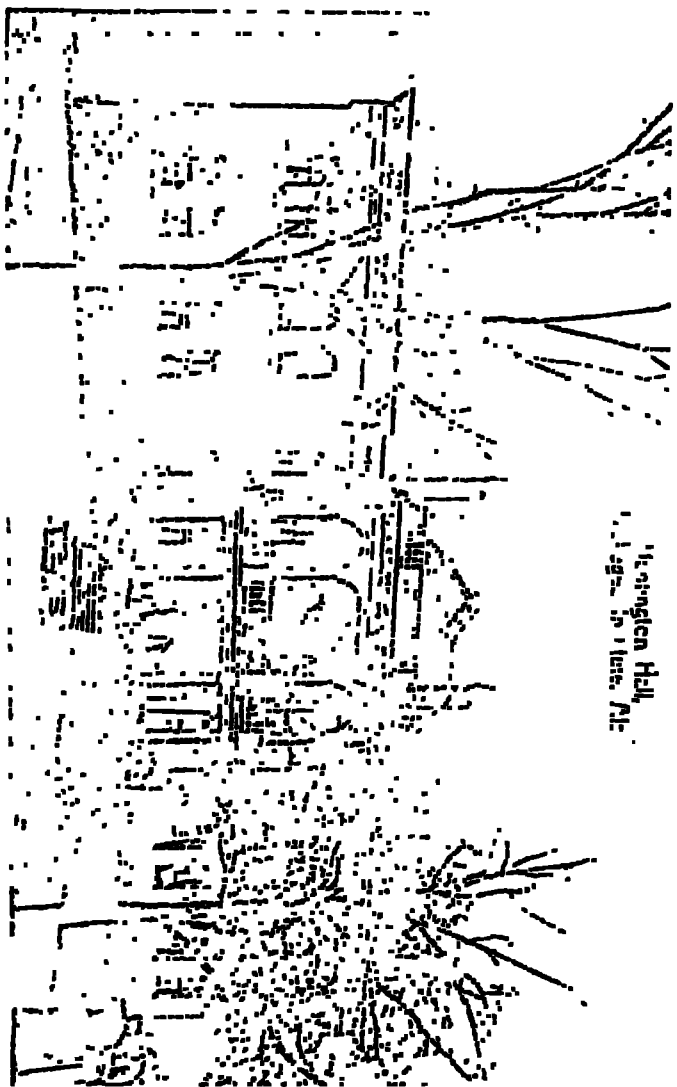
(पृष्ठ १०५)

विद्यार्थियोंकी अपेक्षा आधी उन्नति करते हैं। रात्रिकी पाठशाला उन छात्रोंके उपकारार्थ हैं जो दिनकी शालामें जो थोड़ा शुल्क लिया जाता है उसे भी नहीं दे सकते ।

दिनके छात्रोंको कपड़ेका खर्च छोड़कर व जो कुछ वे कमाते हैं उसे मिनहा देकर, प्रतिकाल (टर्म) के लिये जो प्रायः ९ मासोंका होता है, करीव ४५ या ५० डालर व्यय करना होता है। छात्रोंकी मजूरीकी उजरत उनके परिश्रम व कार्य-कुशलतापर निर्भर है। रात्रिके छात्र जो कुछ कमाते हैं उसमेंसे भोजनका खर्च काटकर बाकी उनके हिसावमें जमा हो जाता है। यह रकम उस समय उनके काम आवेगी जब वे दिनकी शालामें सम्मिलित होंगे ।

साधारण विभागके शिक्षकोंकी संख्या ५२ है। इसमें ११ अंग्रेज़ीके शिक्षक, ९ गणितके, ५ इतिहास व भूगोलके, २ विज्ञानके, १ शिक्षणशास्त्रका, २ हिसाब किताबके, ३ गायन व वाद्य विद्याके, १ शिशुशिक्षाका, १ नक़शा खींचने व लिपिका, १शारीरिक उन्नतिका, ३ पुस्तकालयमें, ७ शिशुशालामें व ४ विभागपतिके दफ्तरमें हैं।

शैशवावस्थाके छात्रोंके लिये साधारण शाला है। इस शालाके लिये कुल निवासी २५० डालर व कुल १००० डालर प्रति वर्ष देता है। इसके अतिरिक्त उसे ३५० डालरकी आय शुल्कसे है। संवत् १९५९ में एक उदार मित्रने इस शालाके लिये उपयुक्त भवन बनवा दिया। इसमें पाकशाला, भोजनशाला व शय्यागृह भी हैं जिनके आधारपर लड़कियोंको गृह-प्रवन्धकी शिक्षा दी जाती है। उसी प्रकार लड़कोंके लिये दस्तकारीका भी प्रवन्ध है। यहाँ भी शिक्षक कुलसे आते हैं। यह पाठशाला कुलकी निचली कक्षाओंके लिये छात्रोंको तैयार करती है ।

साधारण विभागके अन्तर्गत प्रति वर्ष गर्मियोंमें शिक्षणकला सिखानेका प्रबन्ध होता है। इसके द्वारा शिक्षकोंको अपनी योग्यता बढ़ानेमें बड़ी सहायता मिलती है। यह पाठशाला केवल ४ सप्ताह चलती है। इसमें सारे दक्षिणी प्रान्तों तथा कुछ उत्तरी प्रान्तोंके प्रायः ३०० शिक्षक आजाते हैं।

फेल्प्स बाइबिल पाठशाला

बाइबिल पाठशाला फेल्प्स साहबके भवनमें साधारण पाठशालाके सामने स्थित है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियोंको अंग्रेजी बाइबिलका पूरा ज्ञान कराना है जिसमें वे रंगीन जातिके अन्दर पुरोहित व उपदेशकका कार्य कर सकें। संवत् १९४९ से अबतक यहाँसे ६११ पुरुष व २९ स्त्रियोंने शिक्षा ग्रहण की है जिनमेंसे ८४ पुरुष व ६ स्त्रियोंने उपाधि पायी है।

रात्रिकी बाइबिल पाठशालासे निकटवर्ती ग्रामोंके उपदेशकों व पुरोहितोंको भी लाभ होता है। ये सप्ताहमें दो बार कभी कभी चार चार मील पैदल चलकर शिक्षा ग्रहण करने आते हैं।

इस शिक्षामण्डलमें एक अधिपतिके अतिरिक्त पाँच शिक्षक और हैं। इनके अतिरिक्त रंगीन जातिके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके विशेष उपदेशक भी यहाँ कभी कभी सम्प्रदायोंके वारेमें व्याख्यान देते हैं।

मेकनकाउण्टी मिनिस्टर असोसियेशनके प्रतिवर्ष ४ अधिवेशन यहाँ होते हैं,

जिससे विद्यार्थियोंको सामयिक प्रश्नोंका ज्ञान हो जाता है। यहाँके विद्यार्थी कृषकों-की सभामें भी सम्मिलित होते हैं। साथ ही भिन्न भिन्न अन्य कार्योंमें भी सम्मिलित होनेके कारण उन्हें जातिके सब प्रश्नोंका पता रहता है व उसकी आवश्यकताओंको भी जानते रहते हैं।

शिक्षकशालाके साथ गर्मियोंमें पुरोहितोंके लिये भी विशेष शाला खुलती है। इसका अभिप्राय ग्रामीण पुरोहितों तथा उपदेशकोंको उनके शिक्षाकार्यमें सहायता देना तथा उन्हें जाति-सेवामें उचित स्थान देना है।

शासन विभाग

शासनका सब कार्य शासन-भवनमें ही एकत्र है जिसमें प्रधान शासक व मंत्रीका कार्यालय है। कोषाध्यक्ष, शासकसभा, परीक्षक व सेनानायक और यामिक (पुलीस) विभागके कार्यालय भी इसीमें हैं। इसी भवनमें जो संवत् १९६१ में तैयार हुआ था डाकघर तथा छात्रोंकी कोठी भी है।

शासक सभाको पाठशालाके शासनका अधिकार प्राप्त है। इसका निर्माण शालाके प्रधान कर्मचारियोंसे होता है। इसके सभ्य निम्नलिखित अधिकारीगण हैं--प्रधान, कोषाध्यक्ष, व्यवसायनिरीक्षक, यान्त्रिक व्यवसायनिरीक्षक, प्रधानके मंत्री, कृषिविभागके संचालक, सेनानायक, बाइबिल शिक्षाके प्रधान, व्यवसाय-नायक, साधारण शिक्षा विभागके नायक, हिसाब किताबके परीक्षक, खेतोंके निरीक्षक, प्रमाणदाता, स्त्रीशालाकी प्रधान अध्यापिका व बालिका सम्बन्धी व्यवसायकी अध्यक्षा। संवत् १९५८ में कोठी भी यहाँ खोली गयी। इसका अभिप्राय छात्रोंको कोठियोंमें हिसाब किताब रखनेका अभ्यास कराना था व परोक्ष रीतिसे किफायत-सारी भी सिखाना था। संवत् १९६८ में यहाँकी जमा की हुई रक़म ५६२३८ रुपये थी जिसे १२५० असामियोंने जमा किया था।

परीक्षकके कार्यालयमें हर प्रकारके पाठशाला संबन्धी व्ययका हिसाब रहता है। हिसाब ५१ भिन्न भिन्न विभागोंमें विभाजित है। इसमें ४० भिन्न भिन्न कारीगरियों-का हिसाब भी सम्मिलित है जो पृथक् पृथक् रक्खा जाता है। सारे लेन-देनका हिसाब यहीं चुकता है। सब मिलाकर यह ६ लाखके निकट पहुंचता है। इस कार्यालयमें चार हज़ार लेखे पड़े हैं जिनमेंसे १५०० छात्रोंके हैं। जाँच करने वाले महाशय हिसाब किताबके शिक्षकका कार्य भी पाठशालामें करते हैं व ज़ाँच करनेका विभाग छात्रों-को अधिक पक्का हिसाबी बननेका भी अवसर देता है।

व्यवसाय विभाग

इस विभागका सम्बन्ध सब लोगोंसे है। इसीके द्वारा शाला, शिक्षकों तथा कुलके लिये सारी वस्तुएं खरीदी व फिर बेची जाती हैं। शालामें प्रत्येक दिन ४०२७ भाग भोजन परसा जाता है, इसका मूल्य सूखे सीधेके लिये प्रत्येक भागपर साढ़े छः आने पड़ता है। एक समयकी रसोईमें निम्न भांति सामग्री लगती है–९५ गैलन कहुवा, ३५० पाउण्ड शाक, ७५ गैलन सतालू, १२० गैलन दूध, ४५ पाउण्ड मक्खन, २०

पृथ्वी प्रदक्षिणा

राक केलर हाल (पृष्ठ १०६)

गैलन सीरा, ३०० रोटियाँ, ५६०० टुकड़े मक्की की रोटीके, २२बुशल शकरकन्द व करीब ३७५ पाउण्ड मांस जो भिन्न भिन्न जन्तुओंका होता है। इस विभागको कितना कार्य्य करना होता है इस विवरणसे मालूम हो जायगा ।

औषधालय

यह विभाग संवत् १७४९ में खुला था, किन्तु १९५८ तक इसके भिन्न भिन्न विभागोंको एक मन्दिरमें एकत्र करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, अब ऐंड्रयूज़ स्मारक औषधालय ५० हजारकी लागतसे बन रहा है। इसके बन जाने पर प्रत्येक विभागके लिये यथेष्ट जगह प्राप्त हो जायगी व विस्तार व प्रसारके लिये भी कोई असुविधा न होगी। यह औषधालय प्रधान वैद्यके निरीक्षणमें है, सहायताके लिये और भी कई स्त्री तथा पुरुष कर्मचारी हैं। संवत् १९५१ से अब तक ७४ धाइयां यहांसे शिक्षा पाकर निकल चुकी हैं। इसमें शिक्षाकी अवधि ३ वर्ष है व प्रवेशके पूर्व यह समझा जाता है कि छात्र साधारण पाठशालाका शिक्षाप्राप्त व्यक्ति है।

स्फुट व्यवस्थाएँ

शालाके अतिरिक्त शिक्षण विभाग भी है। इस विभागका साधारण शाला-में होना कठिन था। दिन दिन इसकी वृद्धि होती जाती है। इसके कार्यका भी संक्षेपमें वर्णन कर देना उचित होगा।

१—जनताके विचार-स्रोतको बदलना। यह कार्य नीग्रो कान्फरेन्स द्वारा होता है।

२—जनताको अपने खेतमें प्रवृत्त कराना और उसे उत्तम रीतिसे कृषि-कार्य-की उत्तेजना देना व बालकोंको भी कृषि-कार्यमें उत्साहित कराना। यह कार्य कृषि सम्बन्धी साधारण शिक्षा तथा प्रदर्शन द्वारा किया जाता है। इसके लिये कृषि सभायें बनी हैं।

संवत् १९४९ के फाल्गुनसे वार्षिक नीग्रो कान्फरेन्सका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ व प्रथम वर्षमें ही ४०० कृषक इसमें सम्मिलित हुए। दिनों दिन इसकी उन्नति होती गयी यहां तक कि आज इसमें सारे दक्षिणी प्रान्तोंसे लोग आकर सम्मिलित होते हैं। अब इसका कार्य बढ़कर दो दिनमें समाप्त होता है। प्रथम दिन कृषकोंको दिया जाता है व दूसरा दिन छात्रों तथा शिक्षकोंको। इससे अब कान्फरेन्सके दो विभाग हो गये—एक कृषकोंका, दूसरा कार्यकर्त्ताओंका।

इसके अतिरिक्त नाना प्रकारसे भिन्न भिन्न रूपमें यह संस्था जनताकी दशा सुधारनेका कार्य कर रही है। इसके साथ साथ सैनिक शिक्षाका भी प्रबन्ध है जिसमें सब छात्र सैनिक तथा शिक्षकगण नायक रूपसे मिलकर पूर्ण सेना बनाते हैं व कुलमें यही पुलोस तथा चौकीदारीका कार्य भी करते हैं। चरित्र-सुधार तथा साम्प्रदायिक शिक्षाका भी यथेष्ट प्रबन्ध है, इसके अन्तर्गत गिरजा, युवक तथा युवती समाज और अन्य व्यवस्थायें भी हैं।

पुस्तकालय

कारनेगी महाशयकी कृपासे पुस्तकालय २० हजारकी लागतसे संवत् १९५९ में बनकर तैयार हो गया था। इस समय इसमें १९ हजार पुस्तकें हैं।

मैंने इस संस्थाके विवरणमें बहुत सी जगह ले ली व इसे विस्तारसे लिखने-का साहस किया। इसका कारण यह है कि मुझे यह शिक्षा-संस्था बहुत अच्छी लगी व मैं चाहता हूं कि अनुभवी पुरुष इस ढंगकी संस्थाओंसे अपने देशको भर दें। इस संस्थामें प्रधान गुण ४ हैं—(१) साधारण शिक्षाके साथ व्यवसाय तथा जीविका सम्बन्धी शिक्षाका होना, (२) व्यवसायोंके सहारे पठन-समयमें भी छात्रोंकी जीविकाका प्रबन्ध होना जिसके द्वारा निर्धनसे निर्धन छात्रको भी शिक्षाका लाभ होना सम्भव हो गया है, (३) बालकों व बालिकाओंकी आपसकी हिचक दूर होनेसे पवित्र व साफ़ जीवनका बनना व गृहसे अलग रहनेपर भी गृहके सभी उत्तम प्रभावोंका समावेश व सच्चे गुरुकुलकी झलक व (४) परिश्रम द्वारा थोड़े धनसे थोड़े ही समयमें महान् कार्य्योंका हो जाना।

मैं चाहता हूं कि इससे हिन्दू मुसलमान विश्वविद्यालय, भिन्न भिन्न गुरुकुल, देशी संस्थाएँ तथा प्रेम महाविद्यालय उपयोगी बातोंका पता लगा, उन्हें कार्यमें लगावें। देश व समाजके लिये अच्छा होता यदि हिन्दू विश्वविद्यालय अपनेको इस ढंगपर बनाता। हमें इस समय निपुण लोहार, दर्जी, मेमार, व्यवसायी तथा भिन्न भिन्न यन्त्रकला व कृषकोंकी जितनी आवश्यकता है उतनी दूसरोंका धन लड़ा कर सत्यानाश कराने वाले वकीलों तथा सफेद-पोश बाबूओंकी नहीं है। किन्तु हिन्दू विश्वविद्यालयके विधान देखनेसे तो यही पता लगता है कि वह संस्था भी बस बाबू व वकील बनानेकी कलमात्र होगी। ईश्वर हमें बुद्धि दे कि हम अपनी वास्तविक आवश्यकताको समझें व उसे पूर्ण करनेमें दत्तचित्त होकर लगें।

———

आठवाँ परिच्छेद ।

न्युआर्लियन्सके कारखाने ।

टस्कजीसे विदा होकर मैं न्युआर्लियन्सकी ओर चला। रात्रि भरकी यात्राके बाद दूसरे दिन प्रातः काल नगरके निकट जा पहुंचा। यहाँ प्रकृतिदेवीकी रंगशालामें दूसरी जवनिका गिरी हुई थी, उत्तरकी प्रचण्ड शिशिर वायु यहाँ नहीं थी, हिमकणसे भी पृथ्वी स्वेत वस्त्र-भूषित न थी व न शीतकी क्रूरतासे वृक्षगण ही नंगे थे। यहाँ सुन्दर सरस वसन्तका समागम था। ऋतुराजकी अगवानीके लिये वृक्षगण नहा धो, कोमल कोमल नवदलोंका हरित वस्त्र पहिन कर तैयार थे। कहीं कहीं एक प्रकारके विशेष वृक्ष लाल कुसुमोंसे सुसज्जित नव वधुओंकी भांति देख पड़ते थे, पृथ्वीपर भी हरी घासका सुन्दर गलीचा बिछा था।

कोयलें भी कुहुक कुहुक कर ऋतुराजके आनेका सन्देशा पहुंचा रही थीं, प्रातः मन्द समीर भी धीरे धीरे पथिकोंके चित्तको आमोदित करनेके लिये चल रहा था। ६ मासके निष्ठुर, कठोर शीतके उपरान्त वसन्तके आगमनसे चित्तपर क्या प्रभाव पड़ता था इसके वर्णनकी शक्ति केवल कवियोंके वाक्य अथवा चतुर चितेरेकी कलममें ही होती है। मेरे ऐसे नीरस लेखकोंके गद्यमें उसका स्वाद ढूंढ़ना केवल प्रमाद व भूल है।

धीरे धीरे गाड़ी जङ्गलसे होती हुई नगरमें पहुंच गयी व चारों ओर ऊंची ऊंची चिमनियाँ, धुआँ व अटारियां देख पड़ने लगीं। एक बार तो यही भ्रम हुआ कि काशीसे कलकत्ते तो नहीं आ गया किन्तु तनिकमें ही भ्रम दूर हो गया व एक ठंढी सांस भरकर गाड़ीसे उतर पड़ा। स्टेशनपरसे विक्टोरियापर बैठ होटलमें पहुंचा। थोड़ी देर बाद सामान भी आ गया। अब यहाँ शीत कम होनेके कारण भारी कपड़े असह्य हो गये। इससे कपड़े उतार खूब स्नान किया और दूसरे हलके कपड़े पहिन भोजनगृहमें गया। यहाँ लोगोंने अचम्भेसे देखना प्रारम्भ किया। कारण यह था कि यहां—दक्षिणी प्रदेशमें—रङ्गकी बड़ी घृणा है। होटलोंमें मेरे जैसे काले मनुष्य नहीं आने पाते। हम विदेशी थे इसीसे उतरने पाये थे। यही उनके अचम्भेका कारण था। थोड़ी देरमें कानाफुसकीसे सबको पता चल गया कि ये विदेशी जन्तु हैं। बस सबकी निगाह हटकर अपने अपने कार्यकी ओर चली गयी। मैंने इस उपर्युक्त बातका कई बार भिन्न भिन्न प्रसङ्गोंमें उल्लेख किया है। पाठक महोदय यह न समझें कि मैं व्यर्थ ही एक ही बातको दोहरा कर उनके अमूल्य समयको नष्ट करता हूं। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि मैं अपने देशवासियोंपर भली भांति यह प्रकट कर दूं कि भारतके बाहर देवता नहीं बसते, संसारमें सर्वत्र मनुष्योंका ही वास है और सभी स्थानोंमें रागद्वेषकी मात्रा बराबर है।

यह नगर संयुक्त राष्ट्रके दक्षिणी छोरपर है और विशाल नद मिसिसिपीपर स्थित है। इस नगरको प्रथम प्रथम स्पेन देश-निवासियोंने बसाया था पर अब यहाँ भी नवीन यांकी–स्थान (Yaukee-sthan) की झलक देख पड़ती है। यह नगर तीन भागोंमें विभक्त है—नवीन, पुरातन तथा व्यवसाय खण्ड। नवीन भागमें साफ़ सुथरी सड़कें, उत्तम साफ़ हवादार मकान, गृहोंके साथ उद्यान तथा वाटिकाएं भी हैं। यहां खजूर व ताड़के वृक्षोंकी बहुतायत है। नगरका यह भाग देखनेमें बड़ा ही हृदयग्राही है। पुराना भाग मैला है, मकान भी पुराने ढङ्गके हैं। इस भागमें प्रायः पुराने स्पेनिश व उनकी वर्णसंकर संतान ही निवास करती है।

अपने देशके पुराने मुसलमानी नगरों–फैजाबाद, जौनपुर इत्यादि-को देखनेसे इसका कल्पित चित्र मनमें अंकित हो सकता है। व्यवसाय खण्ड अथवा मण्डी तो ऐसी गन्दी है कि जिसका ठिकाना नहीं। कलकत्तेके बड़े बाज़ारमें वर्षाके उपरान्त जो दृश्य होता है वही यहाँ भी है। इस गंदगीका विशेष कारण यह है कि इस नगरकी भूमि मिसिसिपी नदीकी सतहसे नीची है। नदीके किनारे बांध बाँधकर नदीका जल भीतर प्रवेश करनेसे रोका गया है। इसी कारण बारिशका जल बहाकर निकालनेमें कठिनाई पड़ती है। यह कठिनाई तथा गरीबी नगरकी गन्दगीके प्रधान कारण हैं। अभी हालमें ही सरकारी सहायतासे यहाँकी नागरिक सभाने सुविस्तृत सण्डास (ड्रेनेज) बनाया है जो सब पानी तथा मैलेको बहाकर ले जावेगा और मुहानेके पास विशेष यन्त्रसे सब जल इत्यादि नीचेसे उठी नदीमें डाल दिया जावेगा। यहाँके लोगोंका विश्वास है कि थोड़े दिनोंमें ही यह गन्दगी यहांसे दूर हो जायगी।

अमरीकाके सब प्रधान नगरोंमें घूमकर नगर दिखानेके लिये विशेष यात्रा–संस्थाएं हैं। मैंने भी एक संस्थासे ठीक कर यात्राके लिये रवाना हुआ। मैंने इस यात्रामें कई प्रसिद्ध वस्तुएं देखीं जिनमें रोमन कैथलिक गिरजा तथा शुतुर्मुर्गखाना विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। गिरजेके भीतर जानेसे मालूम होता था कि किसी देवमन्दिरमें आये हैं। बीचमें माता मेरीकी गोदमें महात्मा ईसाकी मूर्ति थी। एक ओर महात्मा ईसा सूलीपर चढ़ाये गये थे, दूसरी ओर अन्य मूर्तियाँ थीं। प्रतिमाओंके आगे छोटी बड़ी भिन्न भिन्न प्रकारकी मोमबत्ती जल रही थी। एक ओर धूपदानीसे धूपकी सुगन्ध उठ रही थी। अपने मन्दिरमें जल व पुष्प होते हैं यहाँ ये न थे, और सब बातें वैसी ही थीं। संसारमें प्रायः सर्वत्र ही—प्राचीन मिश्र, यूनान, नवीन रोम तथा नयी दुनियाके पुराने निवासी माया लोगोंमें भी—मूर्ति-पूजाके चिन्ह मिलते हैं। बेबिलोनिया व चैलडिया तो देखे नहीं किन्तु पुस्तकोंमें वहां भी प्रतिमा-पूजाका हाल पढ़नेको मिलता ही है। मुसलमान धर्मने प्रतिमा–पूजाका प्रचण्ड खण्डन किया है पर क़ाबे शरीफ़में "संगअस्वद" को अभी तक हाजी लोग चूमते हैं व चरणामृत लेते हैं। फिर क़ाबे शरीफ़की ओर मुख करके नमाज़ अदा करना भी जाहिर करता है कि ये लोग भी खानः खुदाको पाक मानते हैं। हम आर्यसमाजी लोगोंने भी जो मूर्ति-पूजाका खंडन करते हैं अपने मंदिरोंमें स्वामी दयानन्दकी तस्वीर रखना प्रारम्भ कर दिया है, कुछ लोग तस्वीरको माला इत्यादि

भी पहिनाने लगे हैं, सम्भव है कुछ दिनोंमें मूर्ति भी बनने लगे। इन बातोंको देख सुन भ्रम होने लगता है कि प्रतिमापूजन (सिम्बल वर्शिप) मानव प्रकृतिका स्वाभाविक धर्म तो नहीं है। यह हो सकता है कि वह वास्तविक उपासनाका ढंग न हो किन्तु मानव मनोगति उस ओर अधिक झुकती सी जान पड़ती है।

शुतुर्मुर्ग खानेमें १५ दिनसे लेकर ६०वर्ष तकके पुराने शुतुर्मुर्ग देखे। पाश्चात्य देशकी महिलाएं इस पक्षीके परोंको टोपी इत्यादिमें खोंसनेके लिये बड़े चावसे खरीदती हैं। ये दुष्प्राप्य होनेके कारण अधिक मूल्यमें बिकते हैं। इसी कारण इस देशके गर्म स्थानोंमें व्यवसायियोंने इनके कई कारखाने बड़े व्ययसे खोल रखे हैं। प्रति वर्ष एक पक्षी प्रायः सौ सवासौ पर देता है, एक एक परका मूल्य दो ढाई डालर होता है व इसी प्रकार अण्डे भी एक एक डालरको बिकते हैं।

इन कारखानोंमें बहुतसे दर्शक भी इस विचित्र पक्षीको देखने आते हैं। यहाँ एक प्रसिद्ध श्मशान भी है जहाँ मनुष्य गाड़े नहीं जाते किन्तु एक प्रकारके चबूतरेमें रखे जाते है। यात्रीलोग इसे देखनेके लिये भी प्रायः आते हैं।

मि० एडविन ई० जड* महाशय इस नगरके वाणिज्य-व्यवसायके कर्मचारी हैं। इनके नाम वाशिंगटनके प्रधान कार्यालयसे मैं पत्र लाया था। पत्र पाकर आपने मुझपर विशेष कृपा की व बड़े सौजन्यसे पेश आये। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि इस देशके कर्मचारीगण बड़ी ही सज्जनतासे पेश आते हैं। अपने देशकी तो बात ही न्यारी है, वहाँ तो कलक्टरोंकी कोठीमें घंटों धूपमें सूखनेके बाद प्रभुके दर्शन होते हैं। फिर भी हजूर कहते कहते मुख दर्द करने लगता है। साहब बहादुर "वल, तुम अच्छा है," "कुछ काम है" "अच्छा सलाम" बस इतना ही कह बहुत लोगोंको टाल देते हैं। इंगलैण्डमें भी भारत-सचिवके सहकारी मंत्रीके पास मैं गया था। आपने बात तो शराफतसे की किन्तु दोही मिनटमें बस टाल दिया। किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ सभी संयुक्तराष्ट्रनिवासी राष्ट्रपतिसे उसी भांति मिल सकते हैं जैसे अपने देशमें कोई अपने ऊंचे मातहतसे मिलता हो। यहाँके राष्ट्रपति जनताके नौकर हैं, प्रजाके प्रभु नहीं। मैं यहाँके सचिव-मण्डलके तीन व्यक्तियोंसे मिला था। सभी बड़ी सुजनतासे मिले, घण्टों बातें कीं और अनेक प्रकारसे सहायता की। यहाँ आप जिससे चाहें मिल सकते हैं। दर्शनके पूर्व पगड़ी पहरने, जूता उतारने, हातेके बाहर गाड़ी छोड़ने व धूपमें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। अस्तु, इच्छा प्रकट करनेपर आप हम लोगोंको घाट दिखाने ले गये। यहाँ विस्तृत व्यापारके कारण घाट बहुत लम्बा है। १५ मीलकी लम्बाईमें घाट ही घाट हैं। करीब ८ मील लम्बे घाटोंपर टीनकी छाजन पड़ी है। नाना प्रकारके द्रव्य यहाँसे आते जाते हैं। क्युवा आदिसे इस देशमें केला बहुत आता है, प्रायः प्रत्येक दिन केलोंसे लदे जहाज आते हैं, उनके उतारनेके लिये एक विशेष प्रकारका यन्त्र है। जिस प्रकार राजपूतानेमें कहीं कहीं जल उठानेके लिये मालाकार यन्त्र है, यह यन्त्र भी उसी प्रकारका है किन्तु इसमें आधुनिक ज्ञानका पूरा प्रयोग किया गया है। माला घूमा करती है, जहाजके ऊपर घारोंको मनुष्य मालाकी गोदमें रखते जाते हैं व नीचे दो आदमी उन्हें उतारते जाते हैं। कहते हैं कि १२ घंटेमें प्रायः ५ सहस्र घारें

* Mr. Edwin E. Jodd.

जहाजसे उतार रेल गाड़ियोंमें बन्द करदी जाती हैं। केलेके लिये विशेष प्रकारकी गाड़ियां बनी हैं जिनमें केलेकी घारें लटका दी जाती हैं। हम इन घारोंको प्रायः दो घंटे तक देखते रहे, फिर नावपर चढ़कर नदीकी सैर करने चले। १५ मील तक नदीमें एक ओरसे दूसरी ओर गये, घाटोंकी शोभा बड़ी ही अच्छी थी। नगरके छोरपर दो रमणियोंने जापानी बंगले बनवाये हैं, उन्हींमें वे दोनों बहिनें निवास करती हैं। ये बंगले बड़े ही सुन्दर हैं, जी चाहता है इन्हें निरन्तर देखा करूं। लौटती बार जहाज़ मरम्मत करनेका कारखाना देखा। एक बहुत बड़ा १५ टनका यन्त्र है जिसे पानीमें डुबा देते हैं। डूबनेके बाद जहाज़ इसपर आता है तब यह जहाज़ समेत फिर उठकर ऊपर चला आता है। जहाज़का सारा भाग पानीके ऊपर आजानेपर कारीगर लोग जहाँ चाहें वहाँ जाकर यथेष्ट मरम्मत कर सकते हैं। इस समय एक जहाज़की मरम्मत हो रही थी व दूसरेकी मरम्मतका प्रबन्ध हो रहा था अर्थात् यन्त्र पानीके भीतर जा रहा था। इसे भीतर जाने व फिर उठनेमें तीन घंटे लगते हैं।

दूसरे दिन उन्हीं महाशय जडके साथ चावलकी मिल देखने गया। मिलके अधिकारियोंने बहुत आगापीछा करनेके बाद इधर उधर दिखा बाहर निकाला। चावलकी मिलमें तीन क्रियायें होती हैं, पहले धान तोड़ चावल अलग किये जाते हैं, फिर चावलके कण साफ किये जाते हैं, अन्तमें चावलोंपर पालिश की जाती है। यह अन्तिम क्रिया व्यर्थ ही है किन्तु खरीदारोंके लिये इसका होना आवश्यक है। यहां प्रधानतः तीन प्रकारके चावल होते हैं—(१) होण्डुराज (२) बुलूरोज व (३) जापान। होण्डुराज सबसे उत्तम प्रकारका चावल है, यह पतला व लम्बा होता है, जापान मोटा व नाटा और बुलूरोज इन दोनों जातियोंका संकर है।

मैंने यहांका प्रसिद्ध चीनीका कारखाना देखना चाहा था किन्तु जड महाशयके प्रयत्न करनेपर भी कारखानेके मालिकोंने देखनेकी आज्ञा नहीं दी, कारण यह था कि उनको जड महाशयने हमारे भारतीय होनेकी बात बता दी थी।

शामको यन्त्र बनाने वालोंका कारखाना देखा पर यहाँ भी कुछ अधिक देखनेको नहीं मिला। इसके उपरान्त मिठाईका कारखाना देखा। यहाँकी अधिकांश मिठाइयां केवल शक्करकी हैं और कुछ चाकलेटकी होती हैं जो एक प्रकारके फल-का चूर्ण है। इसका रंग लाल कत्थेकी तरहका व ज़ायका कसैला होता है।

ईस्टरके त्योहारके लिये यहाँ भी चीनीके खरगोश व अन्य जन्तु बनते थे जैसे दीवालीके अवसरपर अपने यहां हाथी घोड़े बनते हैं।

नवाँ परिच्छेद ।

शिकागो ।

न्यू आर्लियन्ससे मैंने शिकागोके लिये प्रस्थान किया । उसी सुन्दर वनमेंसे होकर फिर चला । यहांकी शोभाका पुनः वर्णन व्यर्थका पिष्टपेषण है । दिनभर, रात्रिभर व पुनः एक बजे तक लगातार रेलमें चलनेके उपरान्त शिकागो पहुंचनेपर निर्दिष्ट स्थानमें जाकर ठहरा ।

यह नगर बड़ा विशाल है, इस देशमें इसके बराबर केवल एक ही नगर—न्यूयार्क—है जिसका कुछ वर्णन पूर्वमें किया जा चुका है । इतने बड़े शहरका वर्णन देखनेके दो मास बाद करना केवल याददाश्तके भरोसे हो सकता है । यहाँकी इमारतें भी बड़ी ऊंची ऊंची हैं किन्तु न्यूयार्कका मुकाबिला होना कठिन है । यहाँ सवारीके लिये ट्रामवे व इलिवेटेड रेलवे है । न्यूयार्ककी भाँति यहाँ अण्डरग्राउण्ड नहीं है । यहाँकी गाड़ीमें इतनी भीड़ रहती है कि सुबह-शाम प्रायः खड़े खड़े ही आना जाना पड़ता है । अब यहाँकी नागरिक सभा सुरङ्ग द्वारा भी मार्गका प्रबन्ध करनेका विचार कर रही है । यहाँकी नाली व पानीकी कल विश्वकर्म्माकी चातुरी व अगाध शिल्पविद्याका प्रमाण है । इस नगरके बीचसे एक नदी बहती है जिसको शिकागो नदी कहते हैं । इस नगरका सण्डास इसी नदीमें होकर बहता था । पूर्वमें इस नदीका जल मिचिगन झीलमें गिरता था, किन्तु अब उसी झीलमेंसे नगरके पीनेका जल आता है इस कारण उसमें सण्डासका गिराना अनुचित जान संवत १९५७ में ४,३०,००,००० डालर अर्थात् १२,९०,००,००० रुपयेकी लागतसे एक नहर बनायी गयी जिसने इस नदीकी स्वाभाविक धाराको झीलकी ओरसे हटा ६० मील बाहर ले जाकर और दो नदियोंमें गिराते हुए अन्तमें मिसिसिपी नदीमें मिला दिया है । अब यह नहर या नदी २१ फुट गहरी है जिससे इसके द्वारा सण्डासके अतिरिक्त नावोंका गमनागमन-कार्य भी होता है । इस नदीको साफ रखनेके लिये तीन लाख घनफुट पानी प्रत्येक मिनट इस विशाल झीलमेंसे लाया जाता है । यह सब पानी जहां गिरता है वहां एक कृत्रिम प्रपात बनाकर विद्युत् शक्ति भी उत्पन्न की जाती है ।

जलका कारखाना इससे भी विचित्र है । झीलमें किनारेसे चार मील दूर झीलकी सतहके नीचेसे पक्की सुरङ्ग बनाकर वहांका पानी नगरमें लाया जाता है । नगरमें सुरङ्गके भीतरसे पंप द्वारा पानी खींचकर ऊपर लाया जाता है । इस प्रकार जलको साफ करनेकी आवश्यकता नहीं होती, जल स्वयं शुद्ध और उत्तम है । क्या अपने देशमें नागरिक सभा जल व नलका ऐसा प्रबन्ध करनेके लिये कुछ करती है ? कहते लज्जा आती है कि काशीमें पानी व सण्डासका इतना बुरा हाल है कि जिसका ठिकाना नहीं । सण्डासके कारण गङ्गाजीका जल भ्रष्ट हो गया है । यदि ऐसा ही हाल

रहा तो कुछ दिनोंमें नहाना भी कठिन हो जावेगा। क्या काशीकी नागरिकसभा सोच समझकर कोई प्रबन्ध करेगी ?

शिकागोमें मैंने बहुत चीजें देखीं किन्तु सबका वर्णन करना कठिन है, कुछ एकका वर्णन नीचे दिया जाता है।

दर्शकोंको यहांका बूचड़खाना अवश्य देखना चाहिये। मांसाहारीक हृदयमें भी यहां आनेसे दया व घृणा उत्पन्न हो जाती है, वैष्णवोंकी तो कथा ही न्यारी है । हजारों पशु यहां नित्य मारे जाते हैं। उनका सब संस्कार हो जानेपर मांस डब्बोंमें बन्द हो बाहर चला जाता है । मैं केवल एक दृश्यका वर्णन करूंगा। मैं बिजलीसे प्रकाशित एक लम्बे दालानमें दुर्गन्ध व चारों ओर मांसके ढेरमें जा खड़ा हुआ। थोड़ी देरमें दो मनुष्य छुरी ले खड़े हुए। एक विशेष यन्त्र द्वारा पिछले पैरोंके सहारे लटकी हुई एकके पीछे एक भेड़ोंकी कतार आने लगी। एक मनुष्य उनका गला काटता जाता था, दूसरा गर्दनपर हाथ रख व मुख पकड़ उनका गला तोड़ देता था। वहांसे छटपटाती वे दूसरी ओर चली जाती थीं जहां उनके पैर तोड़कर व पेट काटकर पैरोंके चमड़ेको भी चीर देते थे। तीसरी जगह उनका खाल उतार ली जाती थी, चौथी जगह पेटकी अंतड़ी निकाली जाती थी और एक विशेष लकड़ी लगा उनकी कमर सीधी कर दी जाती थी; आगे उनके पांव व सिर अलग कर लेते थे। फिर दूसरी जगह पेटकी निकली झिल्लीसे उन्हें लपेट दिया जाता था । यह हत्याकाण्डका अन्तिम दृश्य था। इसके बाद उनकी जांच होती है। जो खराब, रोगी या कम उम्रके जानवर होते हैं उनका मांस डाक्टरके आदेशसे अलग कर दिया जाता है। यदि डाक्टरी मुलाहिज़ा पहिले ही हो जाया करेतो कितने निरपराध पशुओंके प्राण बच जायँ। यहांपर रुधिरसे लेकर नख व बाल पर्यन्त काममें लाये जाते है। सुअरोंका चिल्लाना छोड़कर और कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता।

यहां प्रायः भेड़, सुअर व गौका वध होता है। मैंने भेड़ों व सुअरोंका वध होते देखा। मैंने नाना प्रकारकी और व्यवस्थाएं भी यहां देखीं—जैसे चर्बीसे मक्खन बनानेका कारखाना, बालोंके साफ करनेका कारखाना, मांसको डब्बोंमें बन्द करनेकी कला तथा हिमकोठरी जहां मांस जमाकर रखा जाता है। इस कारखानेका नाम स्टाक-याड्र्स* है। इस कारखानेमें ५०० एकड़ ज़मीन है, २५ मील लम्बी चरनी व २० मील लम्बी पानीकी नादें हैं; और यहां ७५ हजार गौओं, तीन लाख सुअरों, ५० हजार भेड़ों व ५ हजार घोड़ोंके रखनेकी जगह है। सालमें यहाँ ३०, ४० लाख गौएं, ७०, ८० लाख सुअर, ४०, ५० लाख भेड़ें व १ लाख घोड़े आते हैं। इनका मूल्य ९७५० लाख रुपयेके निकट होता है। इनमें तीन-चौथाई गौओं व सुअरोंका मांस बाहर भेजा जाता है। यहांपर ३० हज़ार मनुष्य प्रतिदिन कार्य करते हैं व यहाँकी वस्तुओं—टीनमें रखे हुए मांस, खाद, गोंद, नकली मक्खन (बटराइन) इत्यादि—का मूल्य ९६०० लाख रुपयेके क़रीब होता है। इस कारखानेके भीतर बैंक व होटलके अतिरिक्त अखबार भी निकलता है। इस कारखानेके लिये ३० ट्रेनें चलती हैं व कारखानेके भीतर २४५ मील रेलकी सड़क है, इसीसे इसके विस्तारका पता लग सकता है।

*Stock Yards
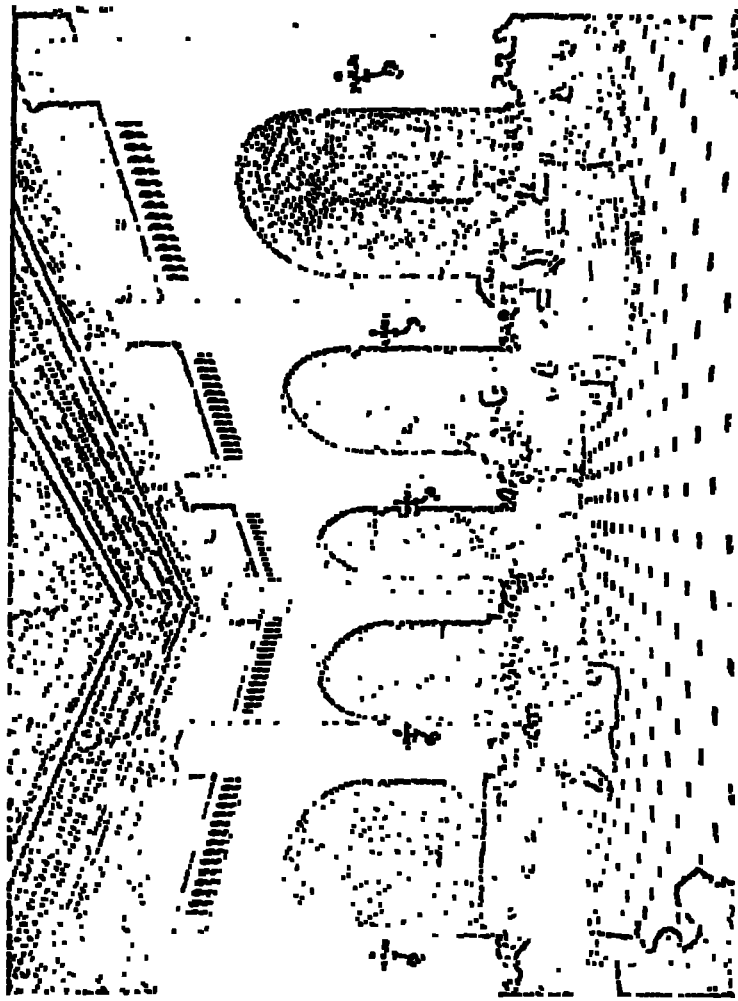
फर्स्ट नैशनल बैंक. शिकागो (पृष्ठ ११५)

यहाँ मैं एक लोहेका कारखाना भी देखने गया था। यहाँपर लोहेकी मिट्टी गलाकर लोहा बनाते हैं, लोहेसे रेल तथा चद्दरें बनाते हैं। मैंने शहतीरोंका बनना देखा, किन्तु रेल व चद्दरका कारखाना उस दिन बन्द होनेके कारण मैं नहीं देख सका। बहुत दिन हुए पाठशालामें लोहा बनानेकी रीति रसायनशालामें पढ़ी थी, उसीको यहाँ देखा। देखनेसे बहुत बातें समझमें आ गयीं। लौटती बार रास्तेमें रेलपरसे ही सीमेंट (अंगरेज़ी मिट्टी) का कारखाना भी देखा। आधुनिक शिल्प तथा यन्त्र-विद्यामें इसका बहुत प्रयोग होता है। इसका बनाना भी बड़ा सरल है। देशमें इसके लिये शीघ्र कारखाना खोलना परमावश्यक है।

यहां एक बड़ा बैंक–फर्स्ट नेशनल बैंक—भी देखा। यहांके उपसभापति आरनल्ड महाशयने हमें सब वस्तुएं खूब अच्छी तरह दिखायीं। अमरीकन बैंकमें एक विचित्र बात देखनेमें आयी। अपने यहां जिस प्रकार अधिक दिनके लिये रुपया बैंकमें रखनेसे सूद अधिक मिलता है वैसा यहां नहीं है। यहां कम दिनमें अधिक सूद मिलता है। यदि तीन मासके लिये दो रुपये सैकड़े व्याज मिलेगा तो एक मास या दो सप्ताहके लिये ३ या ४ सैकड़े मिलेगा। थोड़े धनपर यहां सूद नहीं मिलता, उलटे रखवाई देनी पड़ती है।

अपने देशमें जमींदारी अथवा कारखानोंमें धन लगाना आधुनिक कोठीवालोंके नियमके विरुद्ध समझा जाता है किन्तु यहां यह सराफेका प्रधान काम समझा जाता है। हिसाब-किताब रखनेका भी यहां उत्तम प्रबन्ध है, भूल-चूक तथा चोरी इत्यादिकी सम्भावना बहुत कम रह गयी है। यहां चेक, रसीद व हुण्डियोंपर स्टाम्प लगानेकी भी आवश्यकता नहीं है। चूंकि यहां थोड़ा रुपया बैंकोंमें जमा करनेमें दिक्कत है इससे प्रधान प्रधान बैंकोंमें बड़ी बड़ी लोहेकी कोठरियोंमें छोटे छोटे बहुतसे सन्दूक रहते हैं जिन्हें किरायेपर लेकर लोग अपना रुपया हिफाजतके लिये रखते हैं।

यहां एक प्रकारका नाच भी देखा जिसे "कूची कूची" कहते हैं। इसमें युवा लड़कियोंको नङ्गा करके नचाते हैं जिसका जनतापर बड़ा ही अनुचित प्रभाव पड़ता है। इस प्रकारके नाचोंकी जगहोंके पास ही अन्य प्रकारकी बुराइयोंकी भी सुविधा है। ये जगहें नगरके प्रधान भागमें जैसे डीयरबार्न सड़क इत्यादिपर हैं। यहीं बड़ी बड़ी नाटक-शालायें भी हैं। इन जगहोंका नाम इन भलेमानसोंने "ओरिएण्टल डांस" रख छोड़ा है।

इस देशमें आनेपर इन्हें अवश्य देखना चाहिये जिसमें इनकी सभ्यताके खोख-लेपनका पता लगे। शिकागोमें और भी अनेक वस्तुएं देखी थीं पर अधिक समय बीत जानेसे उनकी याद नहीं रही।

दसवाँ परिच्छेद ।

मोरमन सम्प्रदाय ।

शिकागोमें एक मासके करीब रहकर मैंने पश्चिमकी ओर प्रस्थान किया पांच दिन लगातार चलनेके उपरान्त लासएंगलीज़ नगरमें पहुंचा। बीचमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। हां "राकी पहाड़" को पार करते समय बहुत अच्छे पहाड़ी दृश्य देख पड़े, बाकी रास्ता तो प्रायः निर्जन स्थान था, पेड़ पत्तोंका नामोनिशान भी नहीं था। केवल स्टेशनोंके निकट कुछ वृक्ष देख पड़ते थे। रायल गार्ज नामक दर्रेमेंसे पार होते समय बड़ा ही मनोहर दृश्य देख पड़ा। दोनों ओर बड़ी ऊंची ऊंची पहाड़ियां और बीचमें एक पतली नदी है, इसी नदीके किनारे किनारे रेलगाड़ी दौड़ती जाती है। इस रास्तेका पता लगाना, फिर रेल बनाना—दोनों ही बातें परिश्रमकी पराकाष्ठाकी सूचना देती हैं। राकी पहाड़को पार करनेमें पूरे चौबीस घंटे बीत गये। इसके बीचमें भिन्न भिन्न धातुओंके कारखाने हैं। तांबेका कारखाना रेलके रास्तेमें ही मिलता है। यहाँसे गुज़रकर प्रसिद्ध साल्ट-लेक नगरमें गाड़ी बदलनी पड़ती है। यह नगर "मोरमन" चर्चके लिये विख्यात है। यह एक प्रकारका ईसाई सम्प्रदाय है जो अन्य सम्प्रदायोंसे अनेक बातोंमें विभिन्न है। इसका पूरा वृत्तान्त जाननेके लिये 'चेम्बर्सस इन्साइक्लोपीडिया'के ७ वें खण्डमें ३१० पृष्ठपर 'मोरमन' शब्द देखिये। उसका सार मात्र यहां दे दिया जाता है।

"संवत् १८७७ में न्यूयार्कके निकट मैनचेस्टर ग्राममें जोज़ेफ स्मिथ नामक एक बालक रहता था। वह १४ वर्षकी अवस्थामें धर्मकी ओर झुका। उसकी प्रवृत्ति धार्मिक प्रचारकी ओर बढ़ी किन्तु उस समयके ईसाई सम्प्रदायोंमें परस्पर इतना मतभेद था कि वह बिचारा घबरा सा गया कि किसका ग्रहण और किसका त्याग किया जाय। इस मानसिक उद्वेगके उपरान्त वह ध्यानलीन हो परमात्मासे ज्ञान-प्राप्तिके लिए प्रार्थना करने लगा। प्रार्थनाके उत्तरमें उसे ध्यानमें ईश्वर व उसके पुत्र ईसाके दर्शन मिले। उन्होंने उसे बताया कि सब प्रचलित सम्प्रदाय दोषयुक्त हैं। अन्य ध्यानोंसे उसे यह पता चला कि सच्ची बाइबिल पुनः उसीके द्वारा संसारमें लायी जायगी व ईश्वरके पुत्र मसीहका पवित्र धर्म फिरसे संसारमें स्थापित होगा। इस प्रकार फिरसे ईश्वरका राज्य स्थापित किया जावेगा और वह कभी भी लुप्त न होगा। उसे ध्यानमें उस जगहका पता भी बताया गया जहां उसे अमरीकन निवासियोंका पुराना इतिहास व सच्चा बाइबिल स्वर्णपत्रोंपर लिखी मिलेगी। यह जगह अण्टोरि-योमें पालमिरा पर्वतके पश्चिमकी ओर चार मीलपर थी। संवत् १८८४ के ६ आश्विनको (२२ सितम्बर सन् १८२७) एक फरिश्तेने वह पुस्तक लाकर उसे दी। यह ८ इंच लम्बी
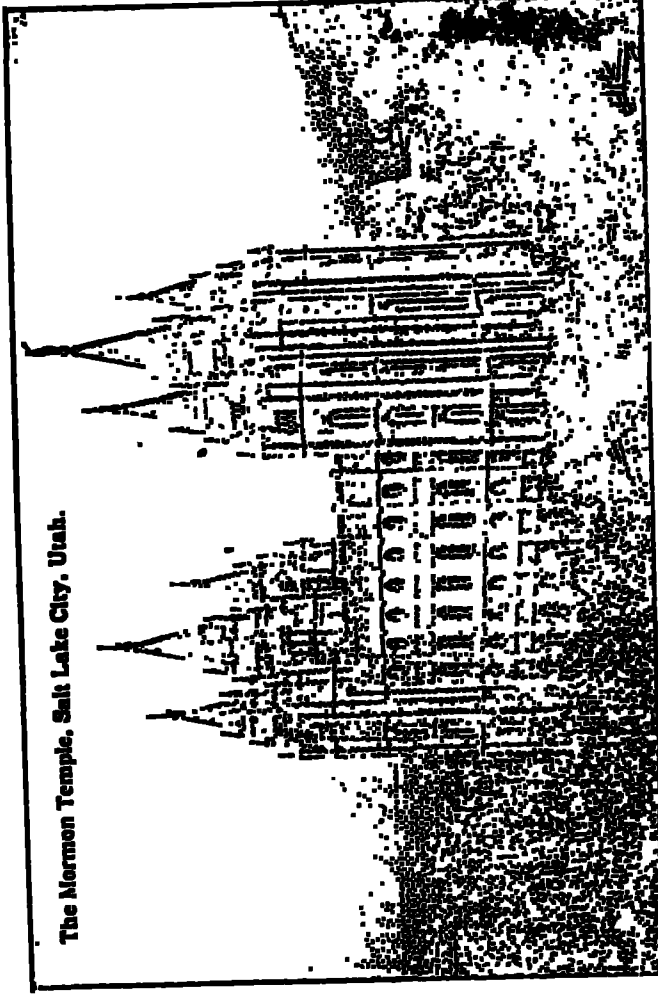
मोरमन सम्प्रदायका मन्दिर

(पृष्ठ ११८)

व ७ इंच चौड़ी धातु-पत्रोंपर लिखी हुई ६ इंच मोटी पुस्तक थी। पुस्तकका कुछ भाग खुला था, बाकीपर मुहर लगी हुई थी। यह एक विचित्र भाषामें लिखी थी जिसे मोरमन लोग "संस्कृत मिश्री" (रिफार्म्ड इजिप्शियन) भाषा कहते हैं। इसी पुस्तकके साथ "उरिम व थमिम" भी प्राप्त हुए। ये एक प्रकारके चश्मे थे जिनकी सहायतासे स्मिथ महाशयने इस पुस्तकका आशय समझा व अंगरेजी भाषामें उसका अनुवाद किया। इसीका नाम "मोरमनकी पुस्तक" है। यह प्रथम बार संवत् १८८७ में छपी थी। अभी तक इसका अनुवाद डेन, फरासीसी, जर्मन, इटाली, वेल्श, स्वीडीश, डच, हवाइयन, समोन, मोरी, तुरकी, हिबरु व हिन्दुस्तानी भाषामें हो चुका है।

संवत् १८८६ के प्रथम ज्येष्ठको "जान दि बैपटिष्ट" ने इनके सामने प्रकट हो इनके और आलिवर काउडेरीके ऊपर हाथ रखा व इन्हें पवित्रकर "अरोनिक" (Aaronic) की पदवी दी। इसी संवत्में पीतर, जेम्स व जॉनने भी प्रकट हो इन्हें "मेलकीज़ेडेक (Melchizedek) की बड़ी पदवी प्रदान की। संवत् १८८६ के २३ चैत्रको यह नया सम्प्रदाय छः सदस्योंसे बनाया गया। यह सम्प्रदाय परमात्माकी आज्ञासे स्मिथ महाशयने न्यूयार्कके फेयेट (Fayette) ग्राममें स्थापित किया था।

धीरे धीरे इस सम्प्रदायकी वृद्धि होती गयी और सामयिक सम्प्रदायोंने इसके अनुयायियोंको बहुत तंग भी किया। ये लोग मिज़ूरी (Missouri) व इलिनोइस (Illinois) से निकाल दिये गये। स्मिथ महाशय तथा उनके भाई हिरम (Hyrum) को लोगोंने संवत् १९०१ में मार भी डाला किन्तु धर्मकी आग न बुझी, वह दिनों दिन बढ़ती ही गयी। इस समय इसके अनुयायियोंकी संख्या ३४६००० है व ६ गिरजे हैं जिनमें सबसे बड़ा साल्टलेक नगरमें है। इनके प्रधान विश्वास, जो और सम्प्रदायोंसे नहीं मिलते, ये हैं—

(१) ये परमेश्वर तथा उसके पुत्र मसीह व पवित्र आत्मापर विश्वास करते हैं।
(२) मनुष्योंको अपने कर्मोंका फल मिलेगा, आदम व हौआके पापोंसे मनुष्योंको दण्ड नहीं दिया जायगा।
(३) मसीहकी कुर्बानीसे सारे मनुष्य मात्रको मुक्ति प्राप्त होगी, शर्त केवल मसीहपर विश्वास लाना मात्र है। वह विश्वास (क) मसीहपर एतबार (ख) पश्चात्ताप (ग) पानीमें पूरा डूबकर बपतिसमा लेना (बैपटिज्म बाइ इमरसन) व (घ) पवित्र आत्माकी प्राप्तिके लिये सिरपर हाथ रखना (लेइंग आन आव हेंड्स फार दि गिफ्ट आव होली घोस्ट) है।
(४) बाइबिलका वह हिस्सा जिसका ठीक अनुवाद हुआ है और मोरमनकी पुस्तक ईश्वर-कृत है।
(५) ये पुरानी, नयी व आगे होनेवाली आकाशवाणियोंमें विश्वास रखते हैं।
(६) इसराइल लोग फिरसे एकत्र होंगे व ज़ियोन (नया जेरुसेलम) अमरीकामें बनेगा, मसीह फिर संसारमें मानवतनमें आकर राज्य करेंगे व पृथ्वीका नया कलेवर होगा जिससे यह वैकुण्ठके तुल्य पवित्र हो जावेगी।
(७) ये पुरुषोंके अनेक विवाहमें विश्वास करते हैं। इनके मतमें विवाह सर्वदाके लिये होता है, तिलाक नहीं हो सकता। मृत्युके बाद

स्वर्ग या नरकमें भी पुरुष-स्त्री पति-पत्नीकी तरह रहेंगे। प्रत्येक मनुष्यको अपने विश्वासके अनुसार ईश्वराराधना करनेका अधिकार है, दूसरोंको उसमें जबरदस्ती दखल देनेकी जरूरत नहीं

इसी सम्प्रदायका मंदिर इस नगरमें विशेष देखने योग्य वस्तु है। यह नगरके मध्यमें स्थित है। यहाँपर एक विशाल सभामंडप है जो २५० फुट लम्बा, १५० फुट चौड़ा व ७० फुट ऊंचा है। यह देखनेमें कछुएकी पीठसा मालूम होता है। इसके भीतर १२ हज़ार मनुष्य कुर्सियोंपर बैठ सकते हैं। यह ऐसी कारीगरीसे बना है कि एक सिरेपर सुई गिरायी जाय तो उसका शब्द दूसरे सिरेपर सुन पड़ता है। यह बात हमारी पथ-प्रदर्शक युवती रमणीने प्रत्यक्ष करके दिखायी थी। मंदिर इसके पूर्व भागमें बना है। यह पत्थरकी एक विशाल इमारत है किन्तु इसके भीतर वही जा सकता है जो मोरमन धर्म मानता है और इसके अलावा पुजारियों तथा अन्य धर्माधिकारियोंको जिसके पवित्र चरित्रका पता हो। यह इमारत २१० फुट ऊंची है व ऊपर मोरोनी देवदूतकी सुनहली मूरत है। यहांपर और इमारतें भी हैं। एक लाट "सीगल" समुद्री पक्षीके स्मारकरूपमें बनी है। कहा जाता है कि जब मोरमन लोग यहाँ आकर बसे तो एक प्रकारके कोट उनके खेतोंको खाकर नष्ट करने लगे। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि मनुष्य लोग हताश हो गये और समझ लिया कि हम भूखों मर जावेंगे क्योंकि अन्न-प्राप्तिका दूसरा साधन न था। अकस्मात् नभोमण्डल इन पक्षियोंसे भर गया जिन्हें देख वे और दुःखी हुए किन्तु उन पक्षियोंने कीट-पतंगोंको खा लिया और स्वयम् चले गये। इस घटनाको मोरमन लोग ईश्वरी कृपा व करामत बताते हैं। इसी घटनाका स्मारक रूप यह लाट खड़ी की गयी है।

इस मंदिरके अतिरिक्त लवण झील तथा कई इमारतें भी दर्शनीय हैं पर समयकी कमीके कारण मैं इन्हें नहीं देख सका। इस झीलमें २५ सैकड़े नमक है अर्थात् १०० बालटी पानी लेकर सुखानेसे २५ बालटी नमक निकलेगा। यह झील ८० मील लम्बी व ३० मील चौड़ी है।

नगरके बीचमें एक फौवारा है, उसके चारों ओर चार मूर्तियां बनी हैं, उनमेंसे एक यहांके प्राचीन निवासी रक्तवर्ण इण्डियनकी है। यह मूर्ति मुझे बहुत परेशान कर रही है। इसके गलेमें जनेऊकी तरह एक रेखा बनी है। समझमें नहीं आता कि यह क्या है। मैंने सैनडियागो प्रदर्शनीकी एक तस्वीरमें भी ऐसा ही चिन्ह देखा था। डाक्टर हिवेटसे जो यहांके प्रधान आर्कियालॉजिस्ट थे पूछनेपर विदित हुआ कि इनकी पुरानी सभ्यताका नाम "माया" है। मैंने हिवेट महाशयसे पूछा कि क्या यह "माया" शब्द हिन्दुओंके 'माया' शब्दसे और यह चिन्ह जनेऊसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता? उक्त महाशयने जनेऊ कभी नहीं देखा था। मेरे बतानेपर एक प्रकारके सोचमें पड़ गये और कहा कि यह समस्या पहले नहीं उठी थी, मैं इसपर विचार व अनुसन्धान करूंगा।

आवश्यकता है कि अपने देशके विद्वान् मिश्र, यूनान, रोम, बैबिलोन, चैलडिया, व यहाँ आकर पुरानी किन्तु स्तनक सभ्यताओंका पता लगानेमें समय व्यतीत करें। पाश्चात्य देशके वैज्ञानिक इस कार्यमें बड़ा ही परिश्रम कर रहे हैं।

साल्ट लेककी यात्रा (लौनकी झील) (पृष्ठ ११८)
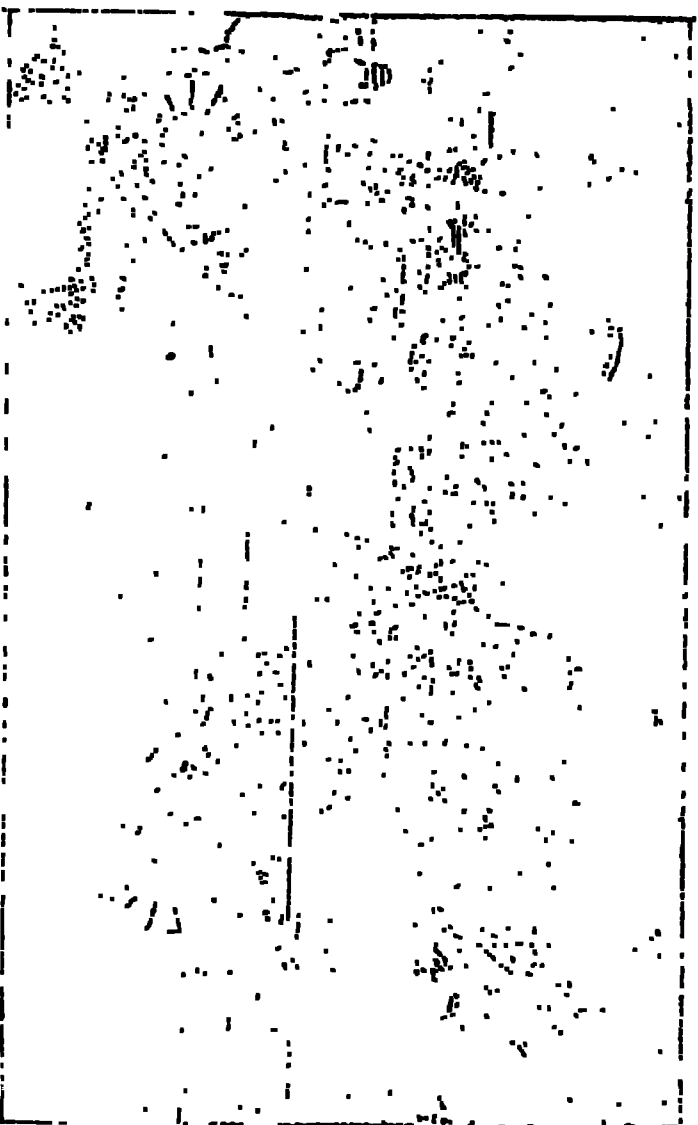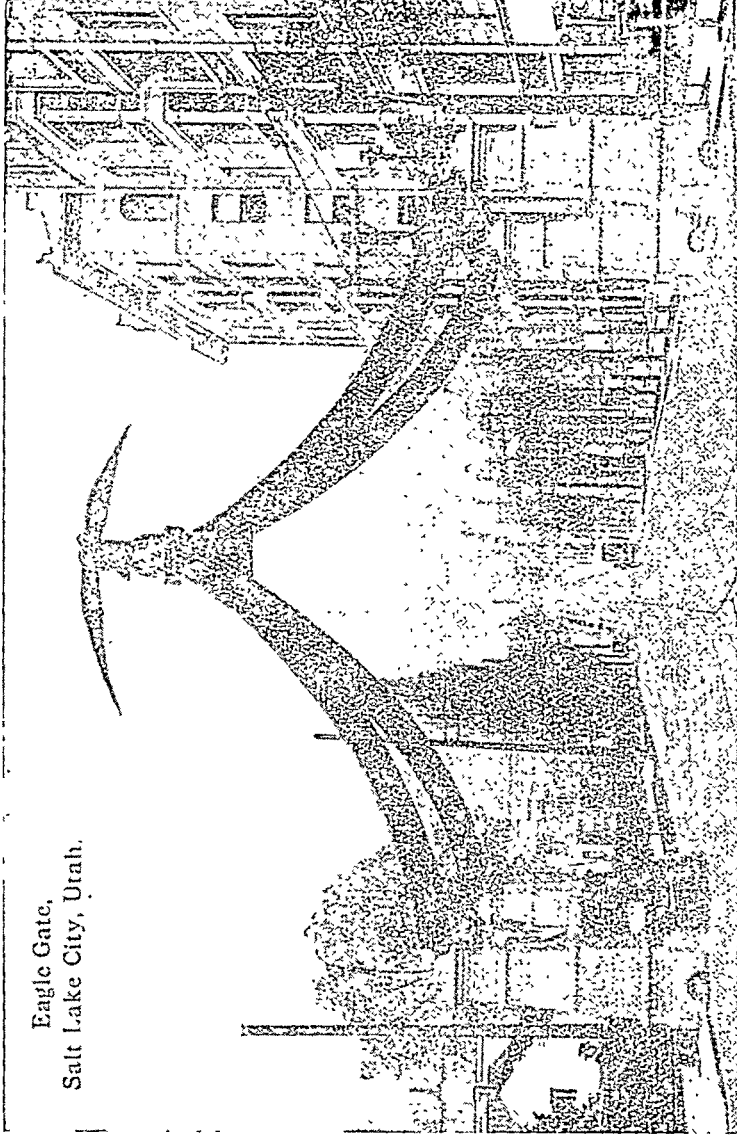
सात्टलेकका ईगिल गेट़ (पृष्ठ ११८)

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

लासएंगलीज ।

साल्टलेकसे मैं लासएंगलीज़के लिये रवाना हुआ। रात्रिभर सोकर उठा तो मालूम हुआ कि मानो वर्द्धवान पहुंच गया। बंगाल व यहाँमें फर्क इतना ही था कि बंगालमें ताड़ व खजूरके ऊंचे ऊंचे वृक्ष भी देख पड़ते हैं, यहाँ ये नहीं थे—यहाँ अधिकतर नारंगीके वृक्ष थे; यह यहाँकी प्रधान खेती है। मीलोंतक अंगूरके खेत भी फैले हुए थे। यहाँ सालमें केवल फलोंसे करोड़ों रुपयोंकी आमदनी है। फलोंमें नारंगी, सेव, नासपाती, सताल्‌ व अंगूर प्रधान हैं। उन वृक्षोंसे जो पृथ्वी बची थी वह घास, गेहूं, जौ और जईके पौधोंसे भरी थी। इस भूमिको "सुजला, सुफला, मलयज शीतला, शस्यश्यामला" कहना पूर्ण शोभा देता है। यहाँकी वसुन्धरा निश्चय ही रत्नगर्भा है। यदि अमरीकाकी उपमा एक सुँदरीसे दें तो कैलिफोर्नियाको मरकतकी मणि कहना होगा। धीरे धीरे हमारी गाड़ी स्टेशनपर पहुंची। मैं उतर कर अपने निर्दिष्ट होटलमें पहुंचा। वहाँ नहा धो अपने चिरकालसे बिछुरेहुए मित्र पंडित केशवदेव शास्त्रीकी खोजमें चला, उनसे मिलकर विशेष आनन्द अनुभव किया।

यहाँ बस शहरके बाहरका मनोहर हरा दृश्य विशेष दर्शनीय है। आठ मासके बाद पृथ्वी हरी देखनेमें व भारी कपड़े उतार हलके कपड़े पहिननेमें जो आनन्द आता था उसका लिखना कठिन है। नगरसे प्रायः १२ मील बाहर समुद्रका किनारा है, वह देखने योग्य है। यहाँ पहले पहल स्त्री-पुरुषोंको साथ स्नान करते देखा। यह एक विचित्र दृश्य था जिसके देखनेसे आंखें नहीं अघाती थीं।

दूसरे दिन यहाँसे सैनडियागो प्रदर्शनी देखनेके लिये चला गया। खेद है कि इस समय मेरे पास प्रदर्शनीका हाल विस्तारसे लिखनेके लिये मसाला नहीं है। सानफ्रान्सिस्कोकी प्रदर्शनीका विस्तृत हाल आगे दिया हैं, अतः इसकी आवश्यकता भी नहीं है। पर इस प्रदर्शनीको सानफ्रांसिस्कोकी प्रदर्शनीने ग्रहण लगा दिया हो ऐसा भी नहीं है। इसकी छटा न्यारी है। बहुतसी चीज़ें जो यहाँ देखीं वे सानफ्रांसिस्कोमें नहीं देख पड़ीं।

यहाँ सर्वप्रधान कैलिफोर्निया भवन है। इसमें यहाँके पुराने निवासियोंकी सभ्यताका बचा बचाया चिन्ह एकत्र है।

माया सभ्यताके दुर्गमन्दिरकी मूर्तियों व ग्रामोंके खेलौनोंको देखनेसे, जो यहां बनाकर रखे हैं, दर्शकोंके हृदयमें उस विचित्र सभ्यताके प्रति, जिसे स्पेन निवासियोंने अपनी द्रव्य व भूमिकी लोलुपतासे धर्मके नामकी आड़में नष्ट भ्रष्ट कर डाला, विशेष
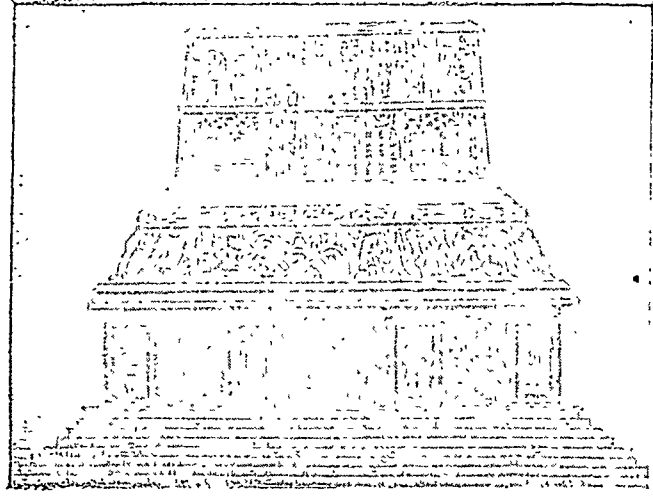
क्रासका मन्दिर ।

श्रद्धाका भाव उत्पन्न होता है । उसके नष्ट होनेपर आह भरनी पड़ती है । न जाने क्यों ईसाई व मुसलमान धर्मोपदेशक जहां गये वहाँ उन्होंने सिवा बिगाड़के कोई भला काम नहीं किया। बन्दरोंकी भांति तोड़ना फोड़ना, बनी चीज़ोंका बिगाड़ना, बस यही उनका काम था। इसी भवनके दरवाजेपर पत्थरकी दो तस्वीरें बनी हैं, एकमें पुरानी सभ्यताका राज्याभिषेक दिखाया है, दूसरीमें स्पेन देशवासियोंका आगमन । इन तस्वीरोंको देखनेसे ही मालूम हो जाता है कि स्पेन निवासी डाकू, लुटेरे, कज्ज़ाकोंकी भांति क्रूर, पापी व
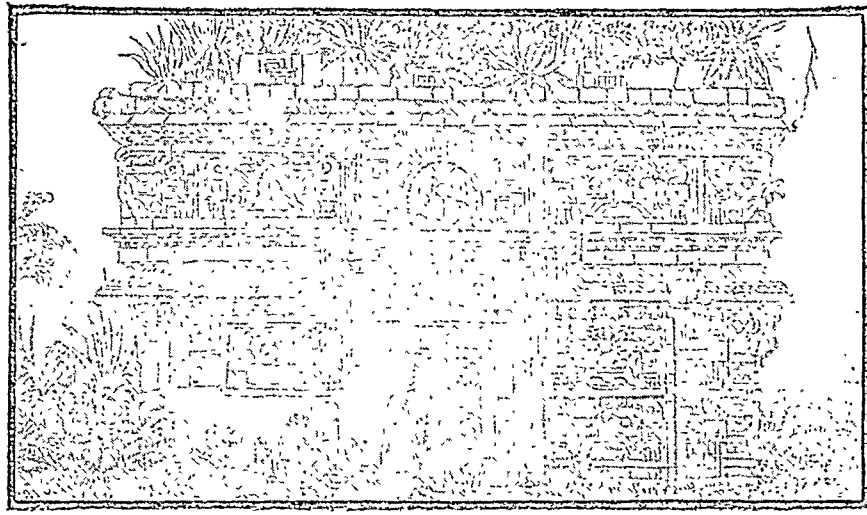
अक्समालकी इमारत ।

भयानक पशु मालूम पड़ते हैं, व पुराने निवासी सभ्य मनुष्य । इमारतोंके नक़शों, चित्रों व मूर्तियोंके देखनेसे यह साफ मालूम होता है कि यह सभ्यता बड़े ऊंचे दर्जेको

सानडियागो प्रदर्शिनी [पृ० ११९]

मय जातीय चित्र और लिपि

पहुंच चुकी थी। डाक्टर हिवेटने इनकी धर्म-पुस्तक भी दिखायी जो मिश्री हायरोग्लिफिक (चित्रलिपि) के सदृश थी। इसकी तीन पुस्तकें इस समय वर्तमान हैं—दो मैड्रिड व एक बर्लिनमें। जो पुस्तक मैंने देखी थी वह मैड्रिडकी पुस्तककी नक़ल है। अभी इसको सफलता-पूर्वक पढ़नेकी कुंजी नहीं मिली, मिलनेसे इसके बारेमें बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगा। हिवेट महाशय ईसाइयोंकी मूर्खतापर अफसोस करते थे और कहते थे कि इन मूर्ख कट्टर मजहबी लोगोंने संसार-का बड़ा ही अपकार किया है। जहां जहाँ इनके मनहूस क़दम गये वहांकी सभ्यताका सत्यानाश हो गया।

फ्रिस्कोकी प्रदर्शिनी तथा मेक्सिको ग्राममें पुरानी मेक्सिको सभ्यताके बहुत कुछ चिन्ह अभीतक मौजूद हैं। पक्षियोंके रंग-बिरंगे परोंसे वहाँ चित्र बनानेकी कला व मोमकी मूर्त्ति बनानेकी कला बहुत ऊंचे आसनपर पहुंच गयी थी। इसके अलावा सैनडियागोकी प्रदर्शिनीमें रेड इण्डियन लोगोंका ग्राम देखने योग्य है। यह ठीक उसी प्रकारका है जैसे पञ्जाबी ग्राममें मिट्टीकी छत वाले व सुन्दर लीपे-पोते घर होते हैं। इन्हें देख आंसू निकल पड़े। पहिले तो यूरोपीय दुष्टोंने इन लोगोंको शिकार खेल खेल कर मार डाला और अब जब इनका सत्यानाश कर इनके धन-धान्य व पृथ्वीको चुरा स्वयं मालिक बन गये तो इनको तमाशेके लिये जुगा रखा है। इस ग्राममें मकी, मिरचा व गोहरियोंकी माला भी पंजाबकी भांति घरोंके बरामदेमें सूखनेको लटकायी गयी थीं। ये बिचारे रोटी भी हमारी ही तरह हाथसे बनाते हैं व उसे "टोटी" कहते हैं। यहां अनेक चीज़ें देखीं जिनका पूरा वर्णन करना असंभव ही है।

लासएंगलीज़के सम्बन्धमें तीन वस्तुओंका और जिक्र करना आवश्यक है—

(१) कैफिटेरिया—यह एक विशेष प्रकारकी खानेकी दूकान है । पूर्वमें भी ऐसी दूकानें हैं किन्तु मैंने इन्हें यहां ही देखा । इस नगरमें इनकी बड़ी चाल है । यहां दस्तूर यह है कि आप गृहमें जायँ तो वहां एक बड़ी लोहेकी किश्ती, एक मुख पोंछनेका रूमाल, चांकू-कांटा व चिम्मच उठा लें । सामने भोजनकी दूकान है, जो पदार्थ रुचें उन्हें थालीमें रख लें । अन्तमें एक लड़की सब वस्तुओंको देखकर मूल्यका टिकट दे देगी । अब आप बीचमें बैठ भोजन करें, फिर जाते समय दाम दे दें । इसमें सफाई व सस्तापन दोनों हैं । अपने यहां हलवाईकी दूकानोंमें भी ऐसा प्रबन्ध हो तो बड़ा उत्तम हो व बहुत सुविधा हो जावे ।

(२) मूव्हिंग पिक्चर बनानेका कारखाना—इसका भी यहां बड़ा विस्तार है । कारखानेमें हाथी-घोड़े, बाग-बगीचे, नदी-नहर, नाव-जहाज सभी कुछ हैं । कहानीके अनुसार पात्रोंको खड़ाकर तस्वीर उतारते हैं । जिस दिन मैं उसे देखने गया था उस दिन एक तुर्की कहानीकी तस्वीर उतर रही थी । तुर्की पोशाकमें बहुतसे मनुष्य घोड़ोंपर चढ़े अभिनय कर रहे थे व तस्वीर उतारने वाले विशेष यन्त्र द्वारा तस्वीर ले रहे थे ।

(३) यहां मैंने एक धार्मिक थिएटर देखा जिसको "मिशन प्ले" कहते हैं । इसमें उस समयका दृश्य दिखाया है जब कि प्रथम प्रथम स्पेन निवासी पादरी सेण्ट गब्रैलने समुद्र तटस्थ ग्राममें आकर कैलिफोर्नियामें धर्म-प्रचार करना आरम्भ किया था । धर्मोपदेशकोंके साथ सेना भी थी। धर्मका प्रचार लालच, धोखा व जबरदस्तीसे किस प्रकार किया जाता था उसका दृश्य इस अभिनयमें खूब देखनेको मिलता है । अनायास ही इससे उनकी सारी कूटनीतिका पता चल जाता है । इसका प्रभाव ईसाइयोंपर क्या होता होगा सो तो नहीं कह सकता, मेरे हृदयपर जो पड़ा वह ऊपर वर्णित है ।

इसी नगरमें एक मगरोंकी बस्ती देखी, यहां मगर रखे हुए हैं । अण्डे बच्चे से लेकर ३०० वर्षके पुराने मगर हैं । यहां उन्हें मारकर उनके चमड़ेकी वस्तु बनाकर बेचते हैं व लोगोंको दिखाते भी हैं । यहां बड़ा ही मनोहर व शिक्षाप्रद सबक़ मिला । यहीं प्रथम प्रथम मिर्चका वृक्ष देखा । यह आमके बराबर होता है और पत्ती नीमके सदृश हरी व छोटी होती है–पत्ती भी खानेमें मिर्चके स्वादकी होती है । फलपर एक प्रकारका छिलका होता है जैसे पपीतेके बीजपर ।

अमरीकाका राष्ट्रीय खेल 'बेसबाल' भी यहां ही देखा । यह खेल बड़ा ही रोचक है । यह एक पतले मुद्गरके से डंडेसे खेला जाता है । खेल मेरी समझमें भली भांति नहीं आया पर देखनेमें क्रिकेटसे अच्छा मालूम पड़ता है ।

लास एंगलीनमें मगरकी सवारी

[पृ० १२२]

बारहवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

सानफ्रान्सिस्को ।

एक सप्ताह लासएंगलीज़में व्यतीतकर सानफ्रांसिस्को पहुंचा। यहां नारमण्डी नामक होटलमें निवास किया। पूर्वके दो सप्ताह प्रदर्शनी देखने तथा पुस्तकोंको ठीक कर घर भेजनेमें लगा दिये। प्रदर्शिनीका वृत्तान्त आगे लिखा है। प्रदर्शनीके अतिरिक्त यहां क्लिफ, वर्कले व आकलैंड देखने योग्य स्थान हैं।

क्लिफ गोल्डेनगेटके निकट है। यह जगह सानफ्रांसिस्को बन्दरगाहके मुहानेपर है जो संसारमें सबसे अच्छा बन्दरगाह कहा जाता है। यह चारों ओर पहाड़ीसे घिरा हुआ है इससे यह स्वाभाविक रीतिसे ही हवा तूफानसे बचा रहता है। इस क्लिफपरसे समुद्रका दृश्य बड़ा ही मनोहर देख पड़ता है। इसके ठीक सामने कोई दो सौ गजपर जलसे उठा हुआ एक पहाड़ीका टीला है। उसपर हर समय सील नामी जल-जन्तु खेला करते हैं। उनको देखनेसे जी नहीं ऊबता।

इस नगरमें आते ही दिल्ली-निवासी एक वणिक् भाईसे साक्षात्कार हो गया। आप बड़े साहसी हैं। आठ वर्ष पूर्व आप अपने पिताके जीवनकालमें यहां विद्योपार्जनके लिये आये थे। दो वर्ष हार्वर्ड विद्यालयमें पढ़नेके उपरान्त स्वास्थ्य अच्छा न रहनेसे घर लौट गये। घर जानेके थोड़े काल बाद आपकी माता व पिताका परलोक-वास हो गया। आपके तीन छोटे भाई व दो बहिनें हैं। पिताके देहान्तके उपरान्त आपके मनमें फिर अमरीका लौट अपने भाई व बहिनोंको शिक्षित करनेका विचार उत्पन्न हुआ। घरमें बात प्रकट करनेसे कुटुम्बके लोग आपत्ति करते, कमसे कम बहिनों व छोटे भाइयोंका आना तो असम्भव हो जाता क्योंकि इनकी अवस्था अभी छोटी थी, इससे हमारे नायकने भाई बहिनोंसे सलाहकर यहां आनेका निश्चय कर लिया। एक दिन आबू जानेके बहाने घरसे निकल पड़े। आबूमें इनके पिता नौकर थे इससे वहां इन्हें भी जीविकाका सहारा था। यह बहाना चल गया और हमारे नायक जहाजपर रवाना हो गये, किन्तु कालकी विचित्र गति है। जो कुछ धन लेकर निकले थे वह व्यय हो गया। रोजगारके विचारमें भी यह सफल नहीं हुए। इससे इनका हाथ तङ्ग हो गया। इन्हें यहां आये पांच वर्षसे अधिक हो गये। अब तीनों बड़े भाई कामकर धन कमानेका यत्न करते हैं व बहिनों व छोटे भाइयोंको पढ़ाते हैं।

सबसे छोटा भाई मातृभाषा बिलकुल भूल गया है। वह अमरिकन लड़कोंकी भांति फर्राटेसे अंग्रेज़ी बोलता है। छोटी बहिन भी मातृभाषा भूल गयी है, वह भी अंग्रेज़ी खूब बोल सकती है। इन छः भाई बहिनोंका विचार उच्च है, स्वदेश-प्रेम रग रगमें कूट कूटकर भरा है। बहिनें डाक्टरीकी उच्च शिक्षा प्राप्तकर देश-सेवा करना चाहती हैं। ईश्वर इनके मनोरथको सिद्ध करे। हमारे देशमें ऐसे मनुष्योंकी संख्या अधिक

होने लगे तो देशके दिन फिर शीघ्र ही सुधर जावें। मैंने डेढ़ महीने इनके यहां दाल-रोटी खायी। परदेशका दुःख बिलकुल भूलसा गया, छोटे भाइयों व बहिनोंसे तो सगे भाई व बहिनसा प्रेम हो गया। चलते समय उनके व मेरे नेत्र भी भर आये थे। इस देशके इस प्रान्तमें अपने देशी भाइयोंकी संख्या बहुत है। मुसलमान, सिक्ख आदि प्रायः सभी प्रान्तके लोग हैं, किन्तु इनमेंसे अधिक मज़दूरी पेशाके व अशिक्षित हैं, खासकर सिक्ख भाई, जो बड़ी जटा रखते हैं, साफा बांधते हैं व प्रायः गन्दे रहते हैं। इसीसे इनके विरुद्ध यहां बड़ा बुरा ख्याल फैल गया है। आवश्यकता है कि पढ़ेलिखे सज्जन आकर इन्हें सुधारें। इनको आमदनी काफी है, यदि थोड़ी शिक्षा व विचार इनमें आ जावे और ये सफाईसे रहने लगें तो बड़ा ही उपकार हो।

वर्कलेका विश्वविद्यालय इस देशमें छात्रोंके लिहाज़से बहुत बड़ा है। यहाँ छः हज़ारसे अधिक छात्र हैं, अपने देशके भी दस पाँच विद्यार्थी यहाँ हैं। आबोहवा व सुन्दरताके लिहाज़से यह देहरादूनकी भांति है। हमारे यहां भी पहाड़ी जगहोंमें, जहाँका जलवायु अच्छा हो और रास्ता भी सुगम हो जिसमें विद्यार्थी व शिक्षक एक कुलकी भांति रहें, ऐसे शिक्षालयोंकी आवश्यकता है। किन्तु आजकलके शिक्षकोंसे शिक्षाका काम नहीं चलेगा। छात्रोंके उत्तीर्ण होनेपर इनकी तो छाती फटती है, खुशी नहीं होती। इस देशमें रामकृष्ण मिशन बड़ा काम कर सकता है। न्यूयार्कके बोस्टन व फ्रिस्कोमें हिन्दू स्वामी लोग भी धर्मका प्रचार करते हैं किन्तु आवश्यकता है स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थके सदृश त्यागी व विद्वान् महाशयोंकी जो कि हिन्दू धर्मका सिक्का संसारमें बैठा दें। देशके भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये व उच्च कोटिके विद्वानोंको यहाँ प्रचारार्थ भेजना चाहिये जो हठ व आग्रह छोड़ निष्पक्ष बुद्धिसे वास्तविक ज्ञानका प्रचार करें।

यदि भारतीय धर्मका बाहर प्रचार करना है तो बाहरके प्रचारकी दृष्टिसे उपयोगी पुस्तकोंकी रचना भी होनी चाहिये। सत्यार्थप्रकाश जैसी पुस्तकोंसे भलाई-की जगह बुराई होनेकी अधिक सम्भावना है क्योंकि वह पुस्तक विदेशियोंके लिये नहीं लिखी गयी थी।

लूथर बर्बैंक* एक बड़े वैज्ञानिक पुरुष हैं। आप फलफूल व वनस्पति विद्याके पण्डित हैं। आपने अनेक फलोंका संस्कार कर उन्हें उत्तम बना दिया है। नागफनीके कांटेको दूर कर उसे पशुओंके खाने योग्य बनाया है। इसी भांति अनेक फूलोंका तथा वृक्षोंका भी आपने संस्कार किया है।

मैं इनके बागको देखने गया था किन्तु ये बड़े व्यवसायी हैं, अपने भेदको प्रकट नहीं करना चाहते क्योंकि उसीसे इन्हें धन प्राप्त होता है। इस कारण ये अपनी बड़ी प्रयोगशालाको किसीको नहीं देखने देते। मैंने इनकी छोटीसी बगिया देखी जिसमें नागफनी व दो एक और पौधे देखने योग्य थे, बाकी कुछ भी नहीं था।

अपने देशसे इस देशमें बहुत पदार्थ आते हैं और यहांसे भी जाते हैं। भविष्यमें

---

*Luther Burbank.

वर्कलेका ग्रीक थियेटर [पृ० १२४]

लूथर वर्बंक [पृ० १२४]
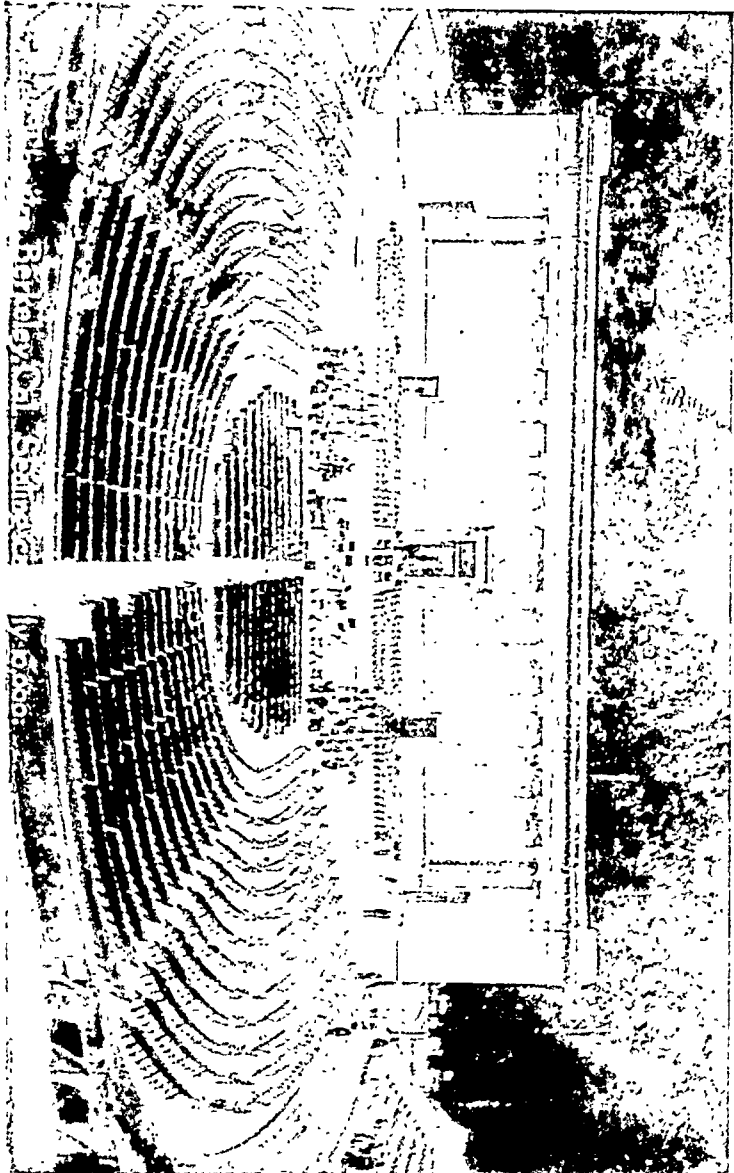
इसके बढ़नेकी बड़ी सम्भावना है किन्तु इस समय वह लेन देन सीधे नहीं होता, तीसरेके द्वारा होता है जिससे लाभका बड़ा अंश बीच वाले खा जाते हैं। केवल न्युआर्लियन्समें भारतसे वर्षमें करीब २० लाखके बोरे आते हैं। वहांसे भी मशीनें तथा अन्य वस्तुएँ जाती हैं व जा सकती हैं। यदि अपने देशके व्यवसायी जहाज़ चार्टर कर यह लेनदेन सीधे प्रशान्त महासागरकी राह करने लगें तो बड़ा लाभ हो। मैं कलकत्तेके व्यवसायियोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया चाहता हूं।

अमरीकाके बारेमें मुझे अपने देशवासियोंको बहुत कुछ बताना है किन्तु योग्यता न होनेसे यह कार्य अभीतक बराबर रुकता रहा। जब तक ऐसा नहीं कर सकता तब तक मैं यही कहूँगा कि अध्यापक विनय कुमार सरकारकी पुस्तक 'वर्तमान जगत्'का हिन्दीमें अनुवाद होना चाहिये। यदि यह कार्य हो जावे तो बड़ा ही उत्तम हो। हिन्दीके लेखक व पत्र इस ओर ध्यान दें।

तेरहवाँ परिच्छेद।
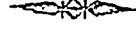
पनामा पैसेफिक प्रदर्शनी।

इस पनामा पैसेफिक प्रदर्शनीके गुणानुवाद आज कितने दिनोंसे पढ़ व सुन रहे थे आज उसीके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह क्या है, कैसी है, कितनी बड़ी है इसके वास्तविक रूपका ज्ञान ऐसे भाइयोंको कराना जिन्होंने कभी भारतके बाहर पैर नहीं रक्खा है मेरे जैसे अल्पबुद्धिवालेकी लेखनीसे होना सम्भव नहीं है। किन्तु जिन भाइयोंने संवत् १९६० की बम्बई वा संवत् १९६२ की कलकत्ते अथवा संवत् १९६७की प्रयागकी प्रदर्शनी देखी है वे यदि यह अनुमान कर लें कि इन प्रदर्शनियोंसे कोई आठ वा दस गुनी अधिक भूमिपर सैकड़ों विशाल भवनोंमें नाना प्रकारकी अद्भुत वस्तुएं, जिन्हें मनुष्यकी बुद्धिने सिरजा है, एकत्र की हुई हैं तो कदाचित् इस प्रदर्शनीके कुछ अंशका अनुमान उन्हें हो जायगा।

एक बड़ा भारी अन्तर हमारे यहांकी प्रदर्शनियोंमें और यहांकी प्रदर्शनीमें यह है कि हमारे यहां प्रदर्शनी तमाशेकी जगह है। वहां लोग तमाशा देखने व दिल बहलाने जाते हैं। साथ ही अपनी जिन कारीगरियोंको छिपा रखना चाहिये, उन्हें वे इस भाँति प्रदर्शित करते हैं जिससे अन्य देशीय अनुभवी चालाक व्यापारी इनके रहस्य व गोपनीय बातें देख और समझ लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने देशसे यन्त्र द्वारा वैसी ही वस्तु सस्ती, चाहे उतनी पायदार व अच्छी न हो, बना भेजते हैं और हमारा रोजगार मार देते हैं, क्योंकि हमारे देशमें न तो किसी प्रकारकी रुकावट है और न अभी तक पेटेण्ट द्वारा ही पुराने ढंगके कारीगरोंने फायदा उठाया है। इससे हमारे देशमें अभी प्रदर्शनियोंका समय नहीं आया। मेरा अभिप्राय इससे निर्माणके ढंगकी प्रदर्शिनीका है जैसी दिल्लीमें संवत् १९६८ के दरबारके समय हुई थी।

इन देशोंमें अधिकतर दर्शक, जो प्रदर्शनियोंमें जाते हैं किसी विशेष ध्यानसे जाते हैं। पहिले अपना समय वे अपनी अभीष्ट वस्तुके देखने, उसके प्रत्येक अंगके समझने व उस पर अच्छी तरहसे मनन करनेमें व्यतीत करते हैं। फिर इसके उपरान्त भिन्न भिन्न प्रकारके चित्तबहलावके सामानसे मनोरञ्जन भी करते हैं। इस प्रकारके मनोरञ्जनके सामानकी भी यहाँ बहुतायत रहती है। उनमेंसे अनेक बातें बड़ी ही शिक्षाप्रद होती हैं।

आज मैं ५० सेण्ट अर्थात् १॥) रुपया देकर भीतर गया। सामने रत्नधरहरे (जिउएल टावर) की शोभा देखकर चकित रह गया। यह धरहरा बहुत ऊँचा और

प्रदर्शनीका पनोरमा
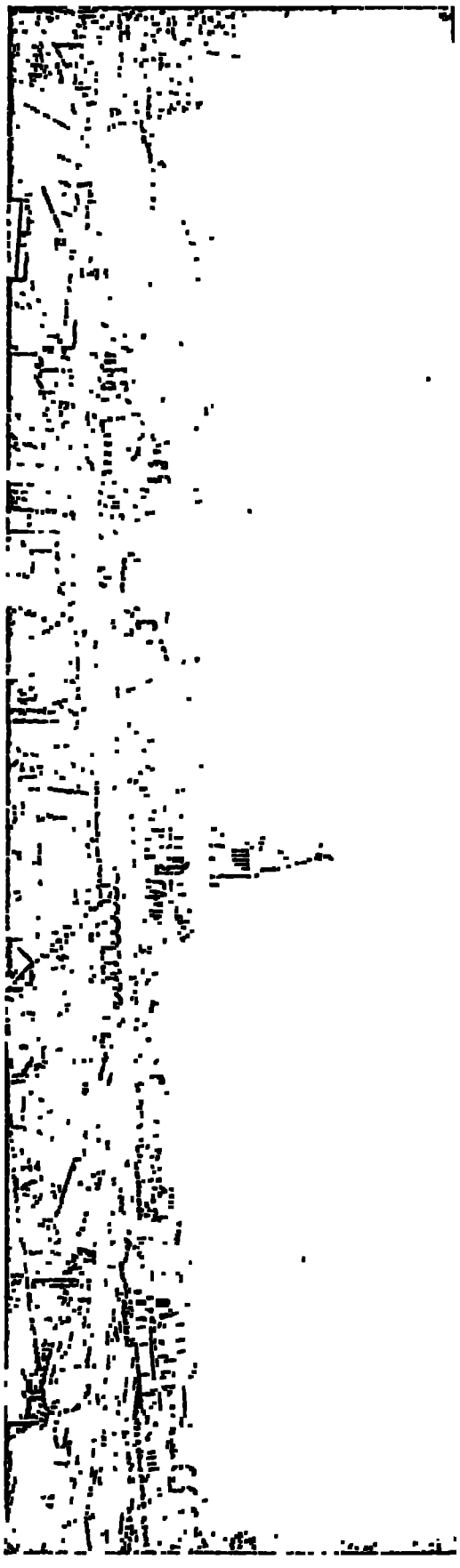
(पृष्ठ १२६)
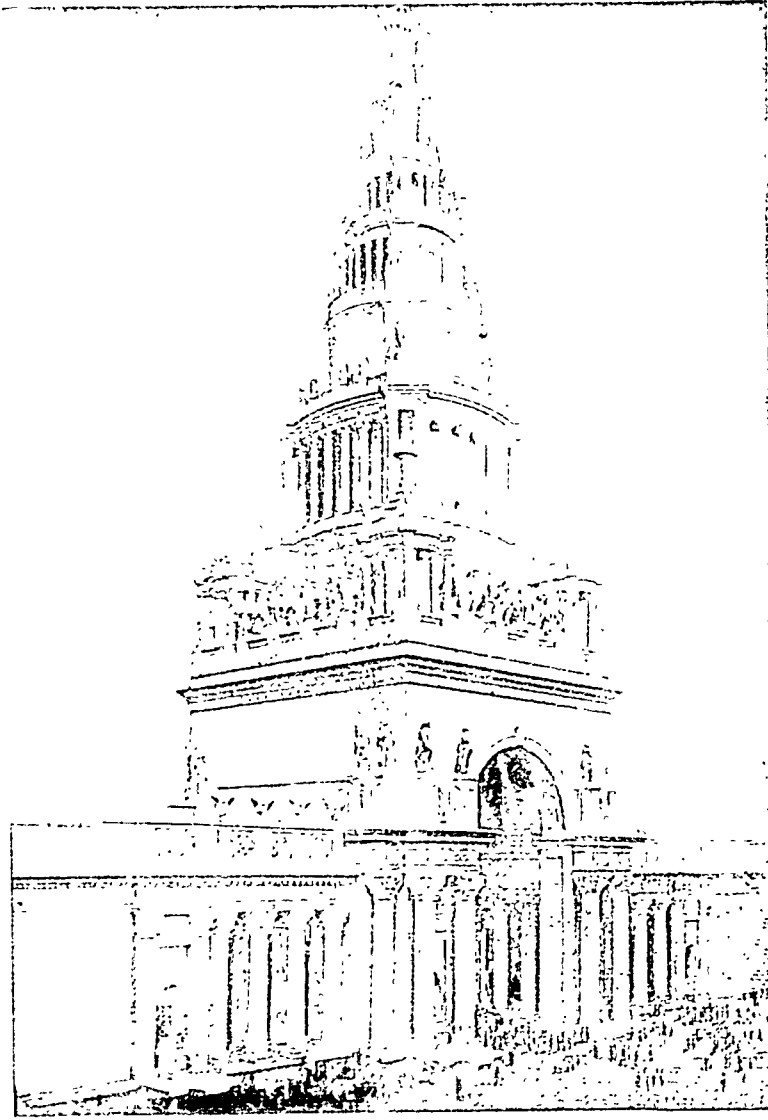
रत्न-बरहरा ।

खूबसूरत बना है। इसपर चारों ओर नाना रंगके शीशेके टुकड़े हीरेके कमलका भांति कटे, करोड़ोंकी संख्यामें, जड़े हुए हैं। इनपर सूर्य भगवानकी रश्मियोंके पड़नेसे इतनी चमक होती है कि इनपर आँखोंका ठहरना कठिन है। इसकी शोभा रात्रिके कृत्रिम विद्युत्-प्रकाशमें अकथनीय है। इसका अनुमान मनचले लोग कर सकते हैं किन्तु इसका लिखना कठिन है। इसकी शोभा देखनेके बाद मैं एक गाड़ीपर चढ़ा जो यहाँपर हर १० मिनटपर चलती रहती है। इसपरसे सारी प्रदर्शिनीकी परिक्रमा कर मैं विश्वकर्माके मनुष्यरूपी अद्भुत जन्तुके उत्पन्न करनेकी शक्ति देख चकित होता रहा और हृदयमें उस विश्वकर्माकी उपासना भी करता रहा।

यह प्रदर्शिनी समुद्र तटपर बनी है इसलिये जब मैं पिछली ओर गया तो यहाँ एक युद्धपोत खड़ा था। उसके देखनेको मन चला तो वहाँसे एक दूसरा १॥) रुपयाका टिकट ले व एक छोटी नौकापर चढ़ मैं वहाँ जा पहुँचा। यह संयुक्तप्रदेशका "आरेगॉन" नामक युद्धपोत है जो यहाँ दर्शकोंके लिये रक्खा गया है। यह १९ वीं शताब्दीमें अमरीका व स्पेनसे जो लड़ाई हुई थी उसमें लड़ भी चुका है। इसमें १२ इंच मुँहकी चार तोपें हैं व अनेक अन्य छोटी बड़ी तोपें भी हैं किन्तु यह अब पुराना व दूसरी श्रेणीका पोत समझा जाता है।

मेरा ख्याल था कि उसे भले प्रकारसे देख सकूंगा किन्तु मेरा विचार ग़लत निकला। यहाँ भीतर नीचे जानेकी आज्ञा नहीं थी। खैर, एक नाविक सैनिकके साथ जाकर ऊपरसे ही मैंने तोप इत्यादिको देख लिया।

यहाँ एक और नया अनुभव प्राप्त हुआ। यूरोप, तथा अमरीकामें सभीको जो थोड़ा बहुत भी कार्य करे कुछ देना पड़ता है जिसे यहाँ टिप व भारतवर्षमें इनाम कहते हैं व उसीका नामान्तर रिशवत भी है। यद्यपि कोई यहाँ मांगता नहीं किन्तु यदि दिया न जाय तो मनुष्य नीची निगाहसे देखा जाता है व दूसरी बार यदि फिर उसी व्यक्तिसे कार्य पड़े तो दिक्कत भी उठानी पड़ती है। खैर, इसी ख्यालसे मैंने इस नाविकको भी कुछ देना चाहा किन्तु उसने लेनेसे यह कहकर इनकार कर दिया कि ऐसा करनेसे मुझे गोली मार दी जायगी। यह मेरे लिये एक नया अनुभव इस देशमें था क्योंकि यहाँ पैसा देनेसे हर प्रकारका काम कराया जा सकता है व पैसेके लेनेसे कोई भी इनकार नहीं करता।

इसे देख हम लौट आये। अब सन्ध्याके चार बज गये थे। आज मैं अन्य चीज़ोंको देखना मुलतवी कर तमाशेकी ओर चला। तमाशे यहाँ नाना प्रकारके हैं जिनका कोई अन्त नहीं है किन्तु उनमेंसे अधिकांश ऐसे हैं जो कामोत्तेजक व नरनारियोंके, अधिकतर पुरुषोंके, मनमें क्षोभ उत्पन्न करानेवाले हैं अर्थात् उनमें किसी न किसी प्रकारसे स्त्रियोंके लावण्य तथा इनकी आकर्षणशक्तिका प्रयोग किया गया है। नंगी तस्वीरों व नंगी व अर्द्धनंगी औरतोंके प्रदर्शनका तो अन्त ही नहीं है। हर प्रकारके नाच व तमाशेमें यही उद्योग होता है कि स्त्रीके किसी न किसी अंगको नंगा करके दिखाना। यहाँपर दर्शकोंका जमघट लगा रहता है और इस महल्लेको यदि हम इन्द्रका अखाड़ा कहें तो अनुचित न समझना चाहिये। यहाँ सचमुच परियोंका जमघट ही रहता है। यदि यहाँ भूल कर देवर्षि नारद भी आजायँ तो अपनी तपस्याका कुछ अंश बिना खोये नहीं लौटने पावेंगे।

हम लोग यहाँ बड़ी देर तक घूमते रहे। मिश्रियों व हवाइयोंके तथा एक दो प्रकारके और नाच देखे, पानीमें डुब्बी लगानेवाली स्त्रियोंका तमाशा देखा। इन सबको देखते भालते पनामा खाल (पनामा केनल) के पास आये। यह पनामा खालका एक छोटे परिमाणका पूरा नकशा है--अर्थात् यदि आप वायुयानपर चढ़कर दो मील ऊपर चले जावें तो वहाँसे पनामा खालको देखनेमें जैसा दृश्य देख पड़ेगा वैसा दृश्य यहाँ दिखाया गया है। सब कल, पुर्जे, दर्वाजे, फाटक, बाँध, नदी, झील, समुद्र, पहाड़ी सभी कुछ देख पड़ता है। इसके सम्बन्धमें एक और विलक्षण बात है। इसके देखनेके
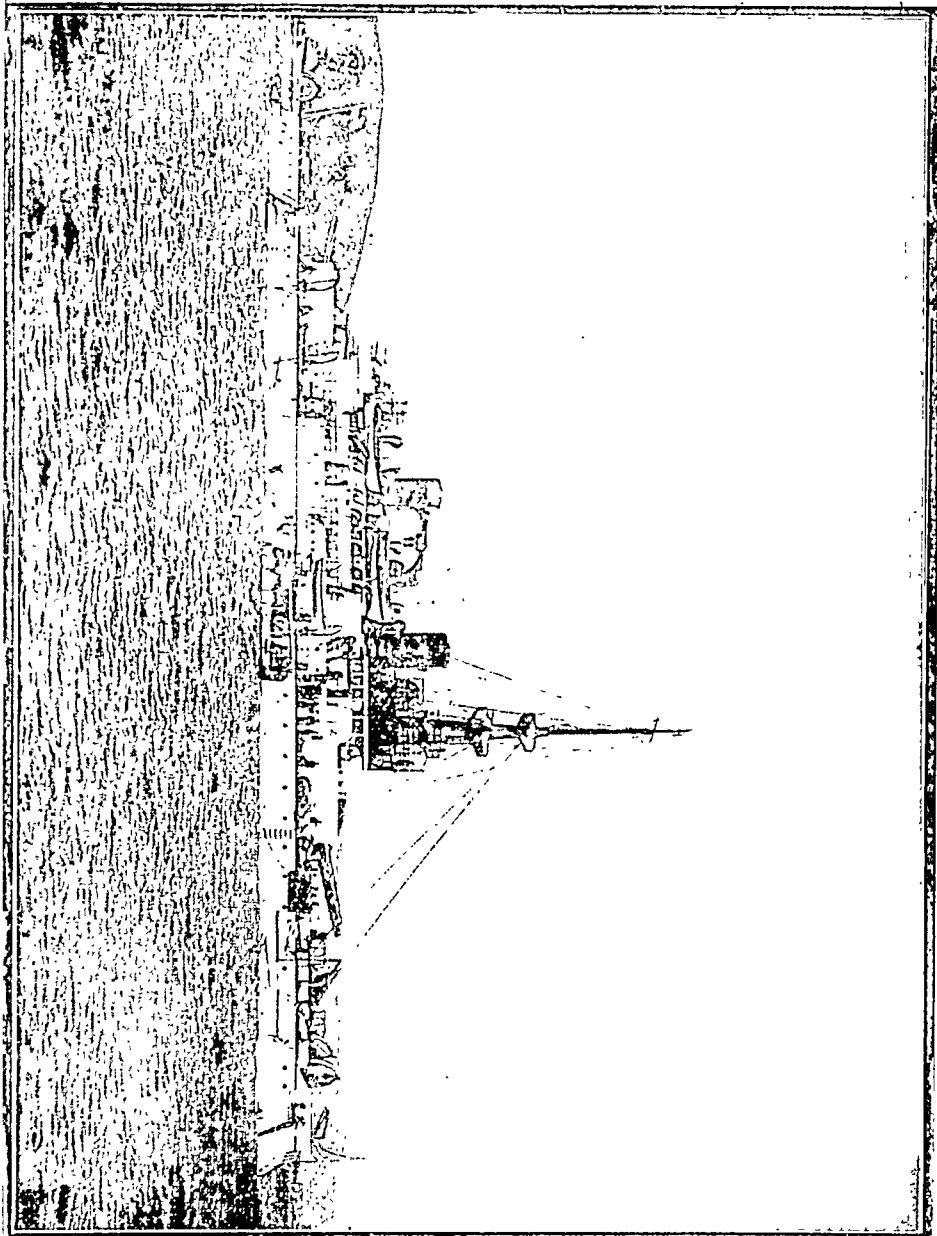
आरेगान नामक युद्धपोत (पृष्ठ १२८)
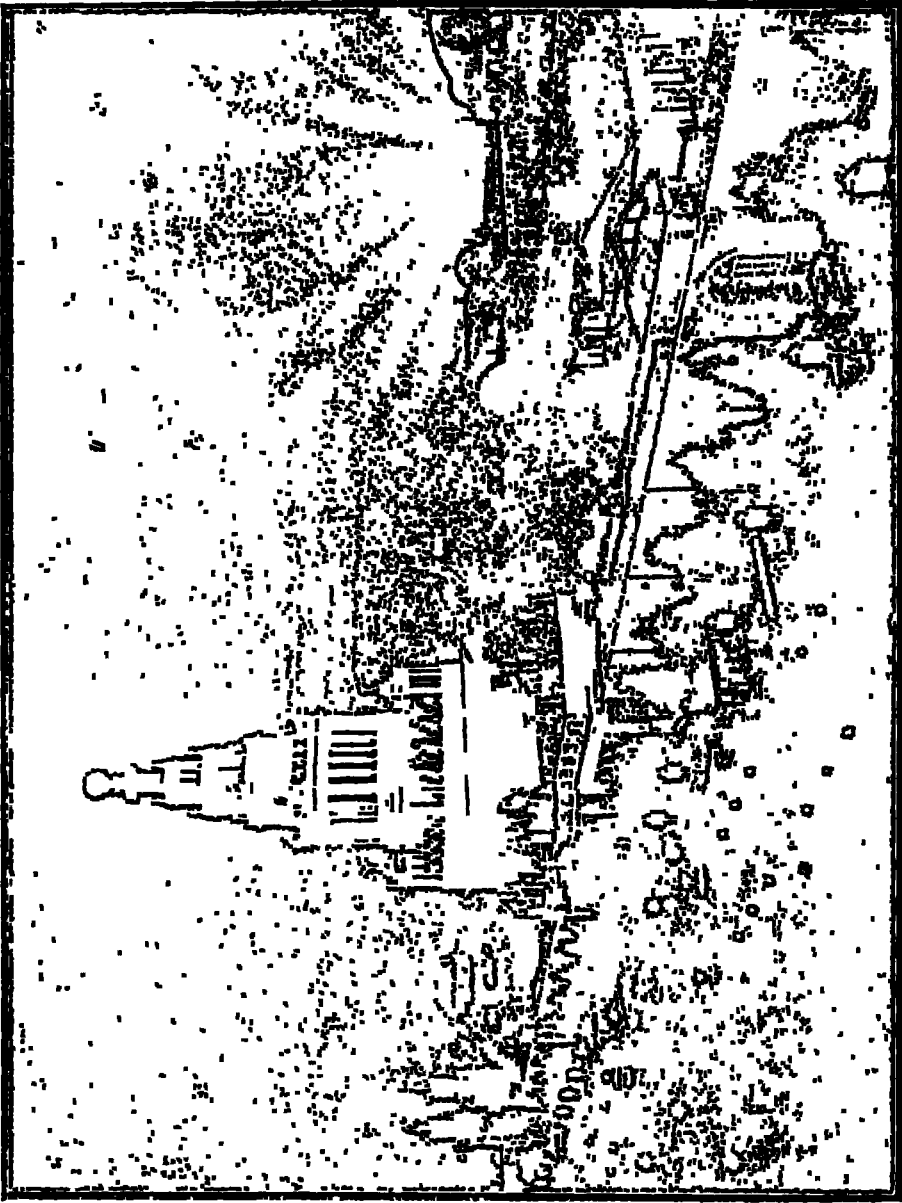
विद्युत् प्रकाशमें प्रदर्शनीका दृश्य

(पृष्ठ १२७)

लिये करीब दो हजार कुर्सियाँ एक परिधिमें रक्खी हुई हैं, दर्शक उनमेंसे एकपर बैठ जाता है व सामने पड़े हुए यन्त्रको कानमें लगा लेता है। यह कुर्सियोंवाला चक्र पनामा खालके चारों ओर आपसे आप घूमता है और यन्त्रद्वारा दर्शकको हर एक बातका विवरण सुन पड़ता है। जो मनुष्य जहाँ बैठा होता है उसे वहींकी बात सुनायी पड़ती है। यह कौतुक ४० भिन्न भिन्न ग्रामोफोनोंके जरिये विशेष विद्युत् यन्त्रकी सहायतासे किया गया है। इसे देखकर आश्चर्य करते हुए व साधारण रात्रिकी शोभा देखते हुए हम आठ बजे वहाँसे लौट आये।

× × × ×

आज मैं प्रदर्शनीमें आते ही भीतरी दृश्य देखनेके लिये चला। प्रथम मैं नाना प्रकारकी दस्तकारियोंके भवनमें गया। यहाँपर अनेक वस्तुए देखने सुननेकी हैं। नाना प्रकारकी चीजें किस प्रकार बनती हैं वृहत्रूपसे उनका प्रदर्शन यहाँ किया गया है। सब वस्तुओंके ठीक रीतिसे लिखनेके लिये बहुत समय व बुद्धि दरकार है। किन्तु मुझमें दोनों बातोंका अभाव है इसलिये मैं उन्हींको संक्षेपमें लिखूंगा जो मुझे विशेषरूपसे लिखने लायक जँची। मुझे यहाँ दो वस्तुएँ बहुत अच्छी लगीं, एक सोनेके तबकका कारखाना, दूसरी एक जौहरीकी दूकान।

सोनेके तबकके कारखानेमें बस केवल यही कथनीय है कि वह ठीक उसी प्रकार हथौड़ोंसे कूटकर बनता है जिस प्रकार उसे काशीमें बनाते हैं अर्थात् सोनेके टुकड़ोंको विशेष प्रकारसे बने हुए चमड़ेकी तहोंमें रखकर ऊपरसे हथौड़ेसे कूटते हैं।

जौहरीकी दूकान बहुत बड़ी थी। नाना प्रकारके रत्न व मणियाँ यहाँ थीं। मैंने सुन रक्खा था कि मोती कई रंगके होते हैं किन्तु मैंने सिवा सफेदके और रंगोंके नहीं देखे थे। यहाँ मैंने सच्चे मोती पाँच रंगके देखे अर्थात् सफेद, काले चमकते हुए आबनूसके रंगके, काले पालिश किये हुए लोहेके रंगके, लाल कत्थई रंगके व गुलाबी। इन्हें देख मैं चकित रह गया व देर तक देखता रहा। यहींपर एक और मोती देखा जो लगभग एक इंच बड़ा होगा किन्तु सुडौल व आबदार नहीं था, वजनमें यह २२४॥ ग्रेन था। इसका मूल्य २५ हज़ार डालर अर्थात् ७५ हज़ार रुपये कुछ अधिक नहीं जान पड़ा, क्योंकि मैंने कोई मटर बराबर एक मोतीको एक लाख कई हज़ारको बिकते हुए सुन रक्खा है।

वालथम कम्पनीकी घड़ियोंको भी इसी विभागमें बनते देखा। यहाँपर पेंच (स्क्रू) इतने महीन बनते हैं जिन्हें देखनेके लिये आतशी शीशेकी आवश्यकता पड़ती है। इनके डोरे इंचके हजारवें हिस्सेसे छोटे होते हैं। किस प्रकार ये घड़ीमें लगाये जाते हैं यह और अधिक रहस्यकी बात है।

यहाँ घूमते घूमते एक पारसी सज्जनसे मेरी मुलाकात हो गयी। आपने स्वयं पहिले मुझसे गुजराती भाषामें बात करना प्रारम्भ किया। मैंने उन्हें हिन्दीमें उत्तर दिया। बात करनेसे मालूम हुआ कि आपकी दूकान लन्दन व मुम्बईमें है और आप यहाँ एक दूकान खोल रहे हैं। आपका नाम महाशय एम० जे० भंगारा है। आप एफ० जे० भंगारा कम्पनीके प्रतिनिधि या मालिक ही हैं। इनसे मिलकर दुःख व सुख दोनों हुए। सुख तो यह हुआ कि हमारे लोग भी अब कुछ कुछ कर रहे

हैं। किन्तु दुःख इससे हुआ कि अपनी हीन अवस्थाकी याद बेमौके आगयी। इस बड़ी प्रदर्शनीमें हमारा नामोनिशान ही नहीं है।—ठीक कहा है "पराधीन सुख सपनेहु नाहीं" या यों कहिये "मोहफिल उनकी साक़ी उनका, आंखें अपनी बाकी उनका"

यहांसे यन्त्रभवन (पैलेस आफ मैशिनरी) में गया। इसे देख अक्ल चकरा गयी, नाना प्रकारके यन्त्र यहाँ थे जिनका समझना भी मेरे लिये कठिन था। मैं थोड़ी देर इधर उधर घूमता रहा, फिर सेनाविभागकी ओर गया। यहाँ भिन्न भिन्न भाँतिकी बन्दूकें, तमंचे, गोली, बारूद, जहाज, सुरंग, टारपीडो, सबमैरीन इत्यादिके छोटे छोटे नमूने देखता रहा। सबसे बड़ा तोपका गोला, जो १६ इंच मोटी नलीवाली तोपसे दागा जाता है, देखकर अक्ल गुम हो गयी। यूरोपीय युद्धकी भयंकरताका दृश्य आँखोंके सामने आगया। यह गोला १६ इञ्च मोटा कोई एक या सवा गज लम्बा ठोस लोहेका है। इसका वजन २४०० पाउण्ड अर्थात् कोई २९ मन है। इसके दागनेके लिये धूमरहित ६६६.५ पाउण्ड अर्थात् ८ मन सवा पाँच सेर बारूद लगती है। ज़रा इसकी भयंकरताका ख्याल तो कीजिये !

यहाँ नाना प्रकारकी सड़कोंके नमूने देखे। मिट्टीसे लेकर आजकलकी पिचकी सड़कों तकके नमूने यहाँ हैं। प्रायः इन देशोंमें (अमरीका व इङ्गलैण्डका मुझे अनुभव है) तीन प्रकारकी सड़कें अधिक बनती हैं, एक लकड़ीकी ईटोंको पिचसे जमा कर, दूसरी पत्थरके टुकड़ोंको पिचसे जमाकर, तीसरी पत्थरकी ईटोंको पिचसे जमा कर। इन तीनोंमें धूल नहीं होती। पहिले दो प्रकारकी सड़कें बड़ी उत्तम, चिकनी व चमकदार होती हैं, इनपर पानी छिड़कनेकी जरूरत भी नहीं होती। तीसरे प्रकारकी सड़कें ऊबड़-खाबड़ होती हैं, वे केवल उन नगरोंमें बनती हैं जहाँ व्यापार अधिक होता है व जहाँ भारी भारी गाड़ियाँ चलती हैं। इन देशोंमें गर्द आपको कहीं नहीं दिखायी देती। म्युनिसिपैलिटीका यह प्रथम कर्तव्य है कि सड़कें गर्दसे रहित हों क्योंकि आजकल गर्द ही बीमारीका घर समझी जाती है। बस आज इन्हीं घरोंको देखनेमें साँझ हो गयी।

× × × ×

आज मेरे साथ मेरे एक मुलाकातीकी दो छोटी बहिनें व एक भाई प्रदर्शनी देखने गये थे। चूंकि ये मेरी ही देखभालमें गये थे इससे मेरा अधिक समय इन्हींमें लग गया, तिसपर भी शिक्षाभवन व भोजनगृह थोड़ा थोड़ा देखा।

शिक्षाभवनमें बहुत वस्तुएँ देखनेकी हैं। यहाँपर शिशुपालन-विभागमें बहुतसी बातें हमारे जाननेके योग्य हैं जिनके बारेमें मैं पृथक् अनुसन्धान कर रहा हूं, आशा है कि मुझे इसमें सफलता होगी।

यहाँ मैं घूमता हुआ फिलीपाइन द्वीपके शिक्षाविभागमें आया। यहाँके चित्रोंको देखकर चकित रह जाना पड़ा। यह देश अमरीकावालोंके पास अभी थोड़े दिनोंसे आया है। संवत् १९४७ के बाद ही यहाँपर अमरीकावालोंका शासन प्रारम्भ हुआ है किन्तु इतने ही थोड़े दिनोंमें यहाँपर शिक्षामें आशातीत उन्नति हो गयी है और इस देशको अब बहुत कुछ स्वराज्य भी मिल गया है। इस देशकी जनसंख्या ८० लाख है, इसमेंसे २० प्रति सैकड़े मनुष्य इस अल्प समयमें ही साक्षर हो गये हैं। यहाँपर प्रति १०० बालकोंमें ४० या ४५ बालक पाठशालाओंमें जाते हैं। इस छोटी आबादीमें

सबमेरीन्ज आन दि ज़ोन (पृष्ठ १३०)

कोर्ट आफ दि यूनिवर्स
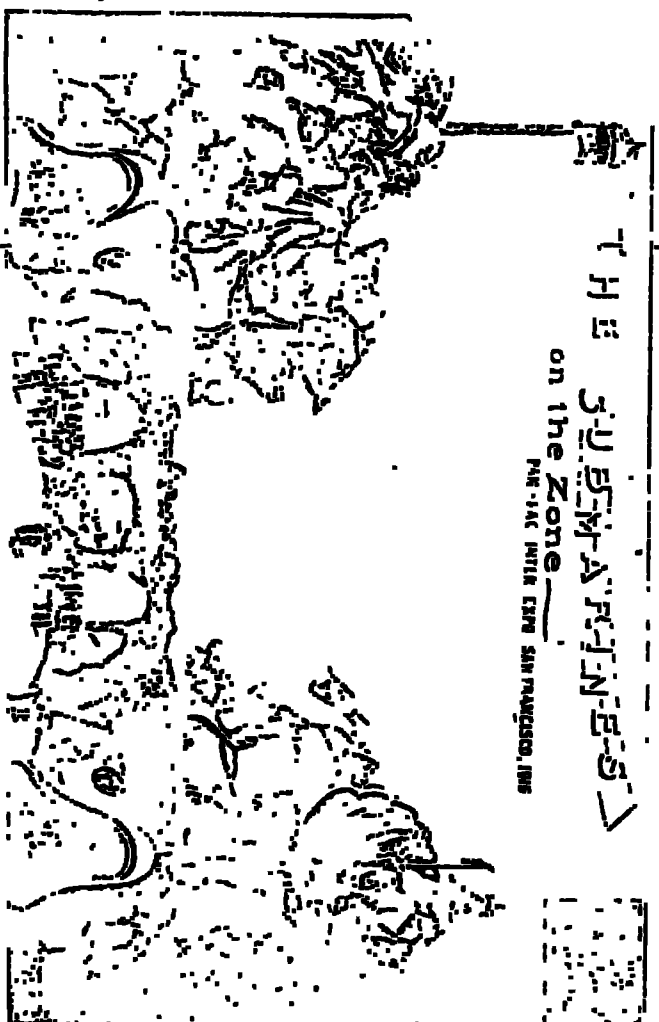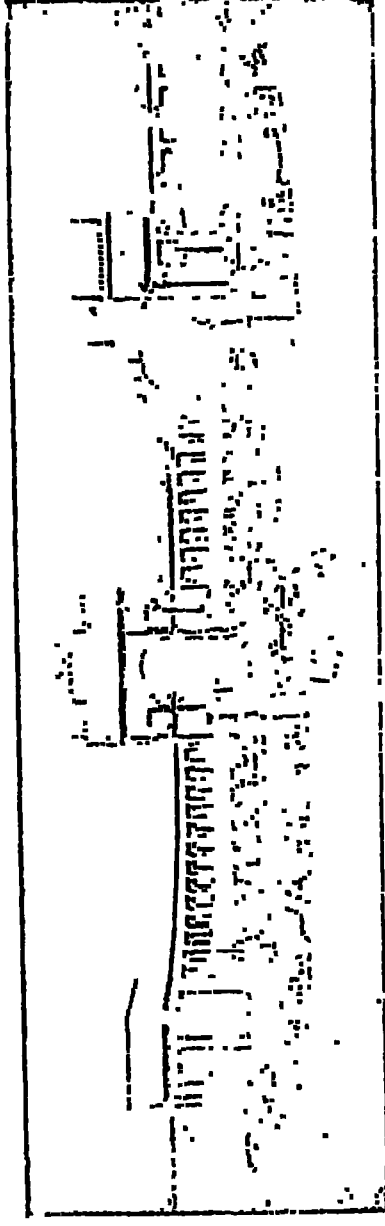
(पृष्ठ १३१)

भी ४१७५ पाठशालाएँ हैं व यहाँका राष्ट्र अपने राष्ट्र—करकी आयका १७वाँ अंश शिक्षामें व्यय करता है। इन ऊपरके अंकोंसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

भोजनशालामें भी एक अद्भुत दृश्य देखा। वहां एक आटा पीसनेवालेकी दूकान है जिसने विज्ञापन देनेके लिये एक विलक्षण तरकीब निकाली है अर्थात् भिन्न भिन्न देशके लोगोंसे वह अपनी अपनी पोशाकमें अपना अपना भोजन आटेसे वहाँ बनवाता है। वहींपर एक हमारे भारतीय भाई भी पूरी बनाते हैं। पकौड़ीके लिये यहाँ भीड़ लगी रहती है व हज़ारों अमरीकन उसके बनानेकी तरकीब प्रति दिन यहाँ खड़े होकर पूछते हैं और पकौड़ी खाकर मगन होते हैं। यदि यहाँ उत्तम हलवाईकी दूकान खोल दी जाती तो हमारे देशके भोजनोंका बड़ा ही प्रचार होता ।

× × × ×

आज मैंने ज़रा अच्छी तरह शिक्षाभवनकी छानबीन की। यहाँ सहस्रों ऐसी वस्तुएं हैं जिनके अंक मालूम करने और यहाँ लिखनेकी आवश्यकता है किन्तु अभी मैं यह नहीं कर सका, आशा है कि आगे चलकर करूंगा।

जापानने जो आशातीत उन्नति गत पचीस वर्षोंमें हर प्रकारसे की है उसका ब्योरा देख चकित रह जाना पड़ता है। स्वतन्त्र देश किस प्रकार उन्नति कर सकते हैं यह इससे भलीभाँति प्रकट होता है।

यहाँपर हो भिन्न भिन्न ईसाई सम्प्रदायोंकी दूकानें भी लगी थीं। कोई बीस तो मैंने देखीं। किन्तु इन सम्प्रदायोंकी संख्या सैकड़ों तक पहुंची हुई है। इन्हें देख मुझे अपने यहाँके सम्प्रदायोंपर जो आक्षेप होते हैं उनका स्मरण आगया। यदि रोमन कैथलिक व प्रोटेस्टेंट, प्रेस्बिटीरियन व क्रिश्चियन, सायन्सचर्च व अन्य अनगिनती सम्प्रदायोंके ईसाईमतावलम्बी सबके सब जनसंख्यामें ईसाई कहे व समझे जाते हैं तो बेचारे हिन्दू, सिक्ख, जैन आदिको एक व्यापक हिन्दू नामसे पुकारनेमें क्या आपत्ति है सो मेरी समझमें नहीं आती। हाँ, अन्तर केवल यही है कि "ज़बरदस्तकी जोरू सबकी माँ व कमज़ोरकी जोरू सबकी भाभी होती है।"

मदिरासे जो हानि होती है वह भी यहाँ खूब अच्छी तरहसे नाना प्रकारके चित्रों व अंकोंसे प्रदर्शित की गयी है—एक जगहपर इसी कोटिमें चाह व कहवेकी भी गिनती की गयी है। ये पदार्थ भी स्वास्थ्यको हानि पहुंचानेवाले बताये गये हैं। सुर्ती, तमाखू, चुरट, सिगरेट महाराजकी भी खूब दुर्दशा है। जापानियोंने तो बीस वर्षसे कम उमरवालोंके हाथ इन वस्तुओंका बेचना भी नियमविरुद्ध बताया है। प्रतिवर्ष इस नियमके द्वारा लोगोंको जो दण्ड मिला है उसका लेखा भी दिया हुआ है। मैं अपने यहाँके नवीन शिक्षित समुदायका ध्यान इस ओर आकृष्ट कराया चाहता हूं, व बढ़ती हुई चाहको रोकना चाहता हूं पर मैं क्या कर सकूंगा! "होइहै सोइ जो राम रचि राखा" खैर।

यहाँसे निकल मैं रत्न-धरहरेके भीतरसे होकर चला तो संसारचक्र (कोर्ट आफ यूनिवर्स) के भीतरसे गुजरा। यहाँपर दो ओर दो प्रकारकी सभ्यताकी मूर्तियाँ हैं। एक ओर प्राच्य सभ्यता व दूसरी ओर पाश्चात्य। प्राच्य सभ्यतामें बीचमें हाथीपर सवार भारत, फिर ऊँट व घोड़ोंपर अन्य देश दिखाये गये हैं। इनके नीचे अंगरेज़ीमें कुछ लिखा

है उसे मैं पढ़ने लगा। जब पढ़चुका तो अन्तमें कालिदासका नाम आया जिसे पढ़कर हर्ष व विषादसे रोमाञ्च हो आया। अंगरेजीमें यह लिखा हुआ था—

The moon sinks yonder in the west
While in the east the glorious sun
Behind the Herald dawn appears
Thus rise and set in constant change
These shining orbs and regulate
The very life of this our world

यहाँसे होता हुआ मैं तमाशेगाहमें पहुंचा। यहाँपर आज दो तमाशे देखे, एक विख्यात जेनरल स्काटका "दक्षिण ध्रुवकी यात्रा व वहाँ ही उनका लोप हो जाना," दूसरा, "ईसाइयोंकी पैदाइशकी पुस्तकके अनुसार सृष्टिका सृजन"। ये दोनों तमाशे किस योग्यता व किस सफाईसे तैयार किये गये हैं इसका अन्दाज़ा देखनेसे ही लगता है।

स्काटका जहाज़ कैसे लन्दनसे चलकर डोवरके पाससे गुजरता है, फिर किस भांति अटलाण्टिकके तूफानमें होता हुआ अमरीकाके पाससे गुजरता हुआ दक्षिणी ध्रुवके बरफीले मैदानमें पहुंचता है। वहाँ किस तरह ये लोग स्लेजोंपर रवाना होते हैं—बरफीले तूफानका दृश्य व अन्तमें स्काटका वीरोंकी भाँति भूख, प्यास व जाड़ेसे जान देना इत्यादि आँखोंके सामनेसे गुजरता है। यह सब तस्वीरोंके द्वारा नहीं किन्तु विचित्र कारीगरीसे किया जाता है जिससे सच्चा दृश्य सामने आता है।

सृष्टिभवनमें भूगर्भशास्त्रका तत्व भलीभाँति दिखलाया गया था। पहिले ब्रह्माण्डको वाष्पके रूपमें दिखाया, फिर जलवृष्टि करके पृथ्वीको जलसे ढाँक दिया, फिर ज्वालामुखी द्वारा पृथ्वी धीरे धीरे जलमेंसे उठी, फिर सूर्य, चन्द्रमा—ईसाइयोंके मतानुसार—बने, फिर वनस्पतियाँ उगीं, फिर जलचर, नभचर, भूचर बने। सबके अन्तमें बाबा आदम व हौवा बने। अन्तमें ईश्वर मेहनतसे थक कर आराम करने चला गया। इन सबके दिखानेमें विज्ञानसे बड़ी सहायता ली गयी थी।

× × × ×

आज प्रदर्शनीमें घुसते ही साधारण कलाकौशल-भवन (पैलेस आफ लिबरल आर्ट) में घुसा। यहाँ नाना प्रकारके यन्त्र व अन्यान्य नाना प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह है। इस देशमें दूकानपर सौदा बेचने व बैंकोंमें हिसाब रखनेके लिये अनेकानेक यन्त्र बने हुए हैं जिनमें हिसाब-किताब बड़ी उत्तमतासे रक्खा जा सकता है। ये यन्त्र प्रायः समस्त दूसरी भाषाओंके अंकोंमें मिलते हैं पर भारतीय अंकोंका नामोनिशान नहीं है। इसे देखता हुआ मैं एक जगह पहुंचा जहाँ 'लेखा' (लेजर) बनानेकी मशीन थी। यह बैङ्क व व्यापारियोंके बड़े कामकी है। फर्ज कीजिये आपके यहाँ 'क' के ५००) रुपये जमा हैं, अब वह आपसे तीन बारमें दो दो सौ करके छः सौ रुपये लेता है। जब आपकी रोकड़से इस यन्त्रद्वारा लेखा बनाया जायगा तो आपसे आप दो रकमोंके लिखनेके उपरान्त यह मशीन बन्द हो जायगी जिससे आपको तुरन्त पता लग जायगा कि इस खातेमें रकम ज्यादा ली गयी है। आपको जब यह मालूम होगया तब आप एक दूसरा पेंच दबा कर यन्त्र चलावें तो

पर्वीग जातियोंका समुदाय
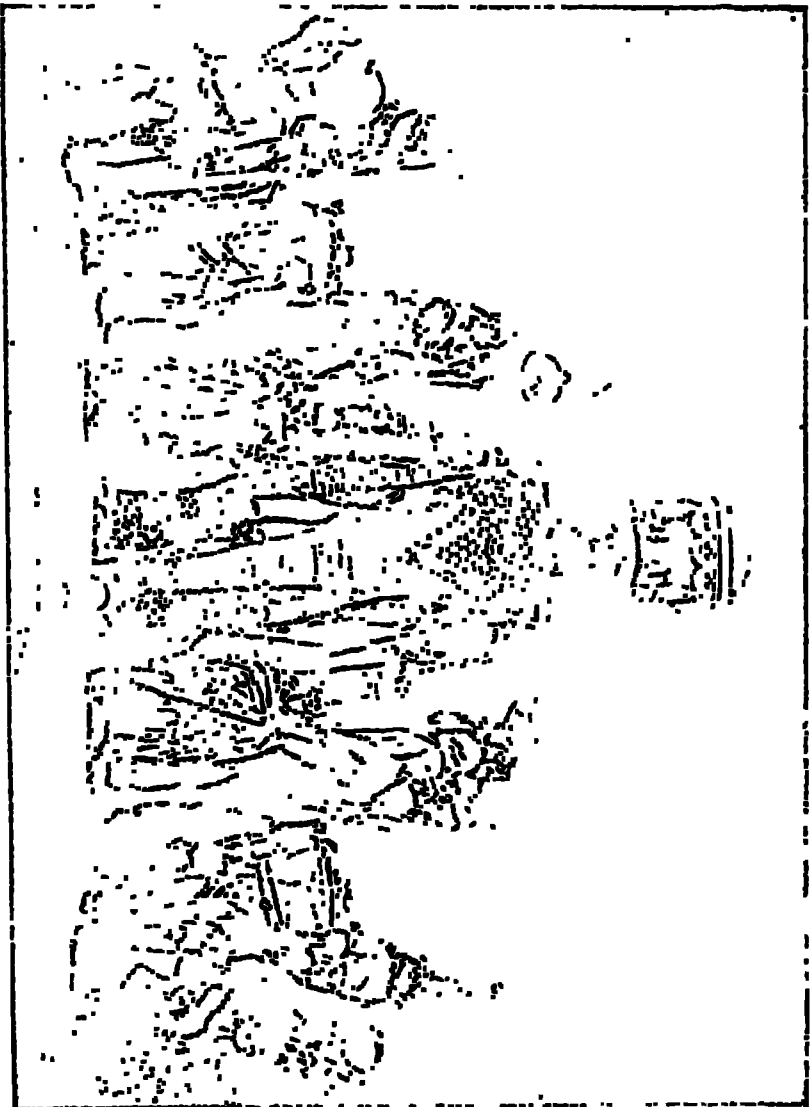
(पृष्ठ १३२)
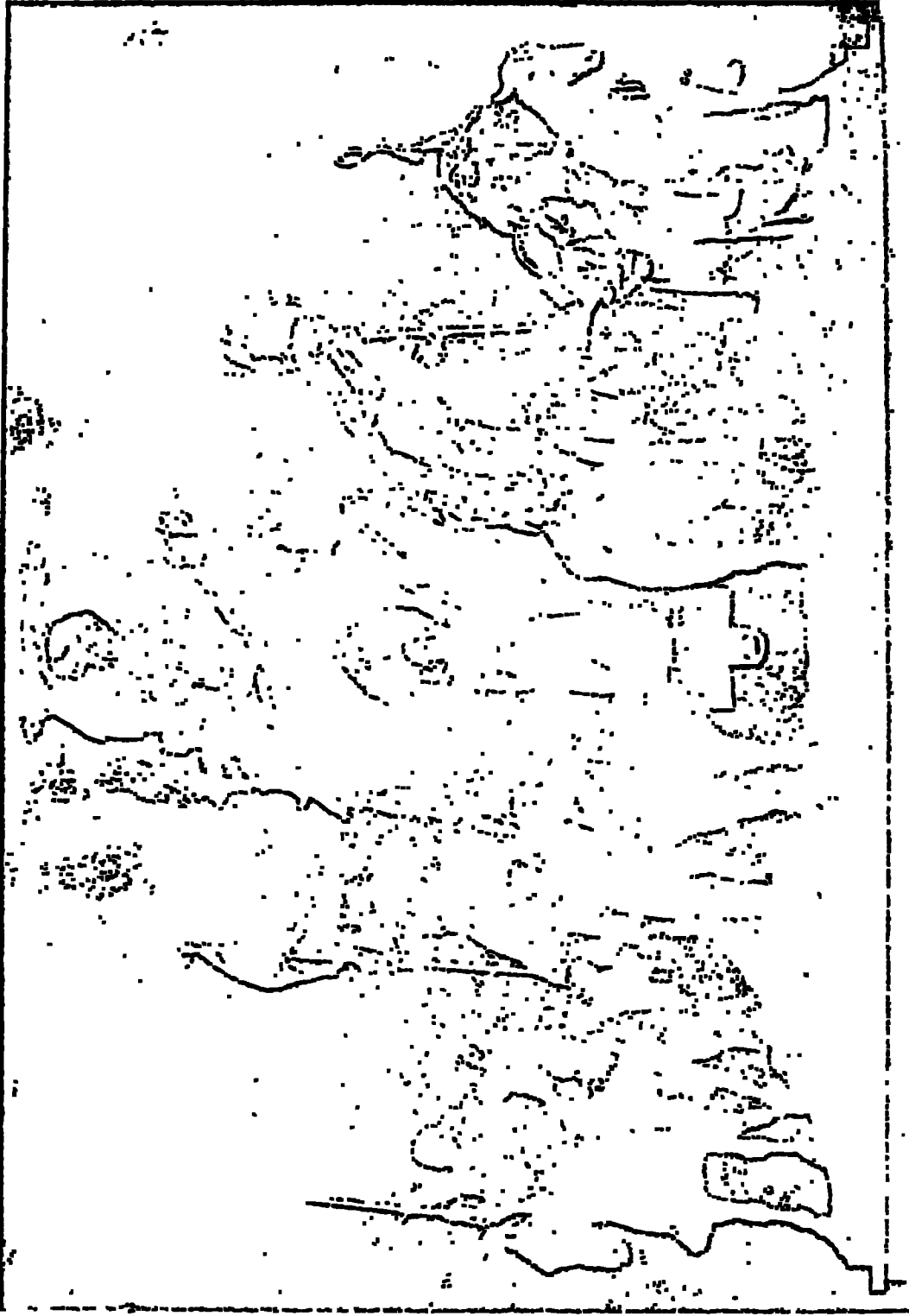
वह चलने लगेगा और रोकड़ बाकीके खातेमें ऋण दिखा देगा। इस यन्त्रद्वारा जो लेखा बनता है उसमें ४ खाने होते हैं। (१) कलकी रोकड़ बाकी (२) नाम (३) जमा (४) आजकी रोकड़ बाकी। आप मशीन चलाते जाइये, यहाँ आपसे आप सब काम होता जायगा। जोड़ बाकी सब शुद्ध शुद्ध आपसे आप मशीन कर देगी। आप चाहे जोड़ने या बाकी निकालनेमें भूल भी जायँ पर यह मशीन नहीं भूलती। इसी प्रकार इसी मशीनसे चिट्टा भी बनता है। आप लेखेके सब खातोंकी नाम-जमाकी रकमें छापते जाइये, अन्तमें एक पेंच घुमाते ही सब जमाकी रकमोंका एकमें व नामकी रकमोंका दूसरेमें जोड़ व फिर उसकी रोकड़ बाकी झट छप जायगी।

एक दूसरी मशीन जोड़नेकी है। फर्ज कीजिये आपको सौ रकमें जोड़नी हैं। आप मशीनपर सब रकमें छापते चले जाइये, अन्तमें पेंच दबाते ही सबका जोड़ शुद्ध शुद्ध आना पाई सहित नीचे छप जायगा। इन सब यन्त्रोंके कारण इस देशके कारोबारमें भूलचूक तथा बेईमानीकी बहुत कम गुन्जाइश रह जाती है।

मर्दुमशुमारीके लिये भी एक मशीन बनी है किन्तु वह भलीभाँति मेरी समझमें नहीं आयी। इसी प्रकार वोट देनेके लिये भी एक मशीन है जिसके द्वारा वोट-लेने वाला बेईमानी करके वोट इधर उधर नहीं कर सकता। यह ज़माना यन्त्रोंका है, सारे कार्योंके लिये आजकल यन्त्र बन रहे हैं। ऐसा ज्ञान होता है कि कुछ दिनोंमें मनुष्य हाथसे काम करना भूल जायँगे, वे बिना यन्त्रोंके कुछ कर ही न सकेंगे। अब भी जो कार्य हमारे देशके बढ़ई व लोहार हाथोंसे करते हैं वह कार्य यहाँवाले बिना यन्त्रके नहीं कर सकते, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

यहाँसे होता हुआ, नाना प्रकारके बिजलीके यन्त्रोंको देखता हुआ, मैं अंडरवुड टाइपराइटर कम्पनीकी दूकानपर पहुंचा। इस कम्पनीने गजब ही कर दिया है। केवल इसी प्रदर्शनीमें विज्ञापनके लिये तीन लाखकी लागतकी एक टाइपराइटर मशीन बनायी है। यह मशीन क्या है मशीनोंकी परदादी है। इसका वज़न सिर्फ १४ टन अर्थात् कुल ३७१ मन है। इसका डीलडौल मामूली यन्त्रोंसे १७२८ गुना बड़ा है। यह २१ फुट चौड़ी व १५ फुट ऊँची है किन्तु इसपर काम बड़ी शीघ्रतासे होता है। इसके हरफ कोई तीन इंच बड़े होते हैं। यहाँवाले विज्ञापन देनेमें बड़ा धन लगाते हैं। इसका प्रभाव भी अच्छा होता है। इसी दूकानपर दर्शकोंका जमघट लगा रहता है। दर्याफ्त करनेसे इसके पास भी हिन्दीके टाइपराइटरका पता नहीं चला।

यहांसे होता हुआ मैं फिर शिक्षाभवनमें घूमता घूमता एक कोनेमें जा पहुंचा। वहां कुछ पुस्तकें एक आलमारीमें लगायी हुई थीं, उन्हें देखने लगा। थोड़ी देरमें पता लगा कि यह "कारनेगी इन्स्टिट्यूशन आफ वाशिंगटन" नामक संस्था है। धीरे धीरे मालूम हुआ कि आधुनिक समयके अमरीकन धनकुबेरने तीन बार करके २ करोड़ २० लाख डालर अर्थात् कोई ६ करोड़ ६० लाख रुपयेका दान देकर यह संस्था बनायी है। इसके द्वारा विज्ञानवेत्ता नये सिरेसे सारे ज्ञानभंडारको परख रहे हैं व उसमें वृद्धि करनेके कार्यमें लगे हैं। इसी संस्था द्वारा एक दूरबीन बन रही है जो १८ मासमें तैयार हो जायगी। यह संसारकी सब दूरबीनोंसे बड़ी होगी।

अभीतक सबसे बड़ी दूरबीन ६० इञ्च व्यासके शीशेकी है। यह १०० इञ्च व्यासके लेन्सकी होगी। इसके द्वारा कैसे कैसे कार्य होंगे इसका अनुमान किया जा सकता है। इस संस्थाके अन्तर्गत ४ विभाग हैं (१) शासन विभाग (२) विज्ञान अनुशीलन विभाग (३) व्यक्तिगत अनुशीलन विभाग (४) मुद्रण विभाग। संसारमें जितने प्रकारके ज्ञानस्रोत हैं सभीके लिये यहाँ नलिकाएँ लगी हैं। नीचेकी नामावलीसे आपको उसका कुछ दिग्दर्शनमात्र हो जायगा—

१. डिपार्टमेण्ट आफ एक्सपेरिमेण्टल इव्होल्यूशन (प्रयोगात्मक विकासका विभाग)
२. ,, आफ बोटनिकल रिसर्च (वनस्पतिशास्त्र संबन्धीखोजका विभाग)
३. ,, आफ एम्ब्रियोलाजी (भ्रूणतत्व–शास्त्र सम्बन्धी विभाग)
४. ,, आफ मैरीन बायोलाजी (समुद्र-सम्बन्धी जीव-विज्ञानका विभाग)
५. ,, आफ टेरेस्ट्रियल मैगनेटिज्म (पार्थिव चुम्बक सम्बन्धी विभाग)
६. ,, आफ मेरिडियन एस्ट्रॉमेट्री
७. ,, आफ एकानामिक्स एण्ड सोशियालाजी (अर्थशास्त्र तथा समाज शास्त्र सम्बन्धी विभाग)
८. ,, आफ हिस्टारिकल रिसर्च (ऐतिहासिक खोज सम्बन्धी विभाग)
९. ,, न्युट्रिशन लेबोरेटरी (पुष्टि सम्बन्धी प्रयोगशाला)
१०. ,, जिओफिज़िकल लेबोरेटरी (पृथ्वीकी प्राकृतिक शक्तियोंके सम्बन्धकी प्रयोगशाला)
११. ,, माउण्ट विलसन सोलर आब्ज़रवेटरी (माउण्ट विलसन वेधशाला)

यह तो मैंने ऊपर मोटे तौरपर नाम गिनाये हैं किन्तु एक एकके भीतर अनेक अनेक शाखाएँ और प्रतिशाखाएँ हैं। इसका नाम है ज्ञानकी पिपासा। हा! हमारे देशमें प्रतिदिन करोड़ों व्यक्ति त्रिकाल सन्ध्या करते हुए पवित्र सावित्रीमन्त्र द्वारा जगन्नियन्तासे ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं किन्तु वे कोरी प्रार्थना करके ही चुप रह जाते हैं, कार्य कुछ नहीं करते।

जगदीशचन्द्र बसुके लिये भारतीयोंसे अपनी निजकी एक प्रयोगशाला बनाते नहीं बनती जिसमें केवल १०। १५ लाखका काम है। क्या राजा महाराजा, जो पचास पचास लाख चन्दा दे डालते हैं, सब मिलकर दो चार करोड़ रुपये एकत्र कर एक सर्वाङ्गपूर्ण विद्या-मन्दिर बनानेमें नहीं लगा सकते? न जानें क्यों बड़े बड़े राजा लोग अपनी अपनी रियासतोंमें युनिवर्सिटियाँ नहीं बनाते जिनसे विद्याका खूब प्रचार हो।

इस उपर्युक्त संस्थाने अभी तक भिन्न भिन्न विषयोंकी २२२ पुस्तकें मुद्रित की हैं जो सारीकी सारी बड़े बड़े दिग्गज विद्वानोंके द्वारा लिखी गयी हैं।*

---

* पुस्तकोंकी विषय-सूची यह है—

1 Classics of International Law   2 Astronomy and Mathematics
3 Chemistry and Physics   4 Terrestrial Magnetism
5 Engineering   6 Geology
7 Paleontology   8 Archæology
9 History and Bibliography   10 Literature

पैलेस आफ़ फ़ाइन आर्ट (पृष्ठ १३२)
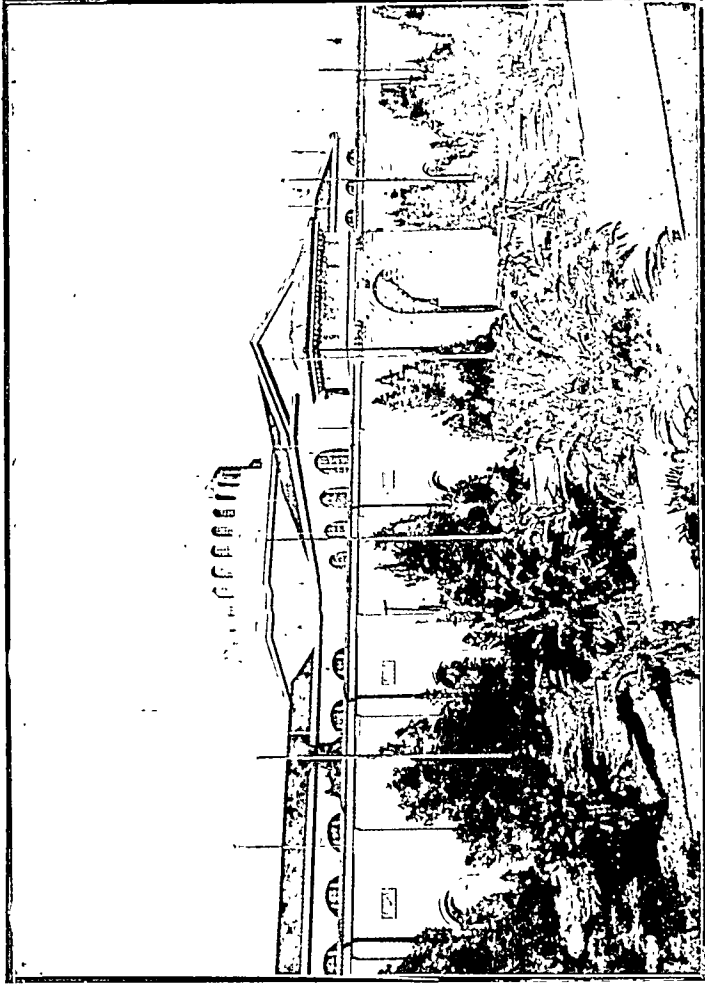
साधारण कला—कौशल भवन

(पृष्ठ १३२)

विषय सूचीसे आपको इसका पता लग जायगा कि यह संस्था क्या कर रही है।

यहाँसे होकर मैं फिर जापानी गृहमें पहुंचा व वहाँसे कुछ अंक संग्रह किये जिन्हें यहाँ देता हूं। जापानका भारतसे १०, १५, २३, ६३८ डालरका व्यापार है। इसमेंसे जापान भारतसे ८, ६५, ८६, ९३१ डालरका कच्चा माल मंगाता है व भारतको १, ४९, ३६, ७०७ डालरका बना हुआ माल भेजता है। संवत् १९२५ से जापानियोंकी वृद्धिका प्रारम्भ हुआ है। उस समय जापानका व्यापार डेढ़ करोड़ आयात व दो करोड़ ४० लाख निर्यातका था। संवत् १९५७ में बढ़कर आमदनी ४२० करोड़ व रफ्तनी ३०० करोड़ हो गयी और अब १९७० में आमदनी १०८० करोड़ व रफ्तनी ९६० करोड़ है। उपर्युक्त लेखेसे साफ ज्ञात होता है कि जापानने गत ४६ वर्षोंमें अपने व्यापारको ३॥ करोड़से बढ़ाकर २०४० करोड़का कर लिया है। यानी पाँच सौ तिरासी गुना अधिक बढ़ा लिया है। इतने ही समयमें हमने क्या किया है उसके अंक भी यदि मिलें तो पता लगे किन्तु मोटी दृष्टिमें इतने ही समयके आधे कालमें केवल भूख प्याससे तड़पकर २ करोड़ २० लाख मनुष्य मर गये, अस्तु।

यहांसे मैं "वर्ल्डस ऐंड नेशनल वीमेन्स क्रिश्चियन टेम्परेन्स यूनियनमें" गया। वहाँसे जो अंक संग्रह किये वे नीचे दिये जाते हैं--

निम्नलिखित पाँच वस्तुओंका व्यवहार करनेसे नशा होनेका भय नहीं हैं। जिंजर एल, सार्सापेरिला, वैनिल्ला सोडा, रैस्पबेरी आदि।

मादक द्रव्योंमें उष्णताको छोड़ भोजनके और कोई गुण विद्यमान नहीं हैं। इसलिये और भोजनके पदार्थोंका यदि मादक द्रव्यवाली वस्तुओंसे मुकाबला करना हो तो केवल उष्णताके आधारपर ही हो सकता है। अब आपको नीचेके अंकोंसे यह पता लगेगा कि यदि कोई व्यक्ति १० सेंट (पाँच आने) के भिन्न भिन्न पदार्थ खरीदे तो उसमें निम्न भांति उष्णता पायी जायगी। यह माप कैलोरीमें* दिया गया है, कैलोरी उतनी उष्णताको कहते हैं जो एक ग्राम जलके तापको एक अंश बढ़ा दे।

आटा	९७०५
जईकी दरिया	३४४०
साबूदाना	३४४०
शर्करा	३१००
सेमका बीआ	२६६६
रोटी	२४३०

11 Philology
12 Folk Lore
13 Embryology
14 Index medicus
15 Nutrition and other subjects of Allied Interest.
16 Experimental Evolution, Variation and Heredity.
17 Stereochemistry Applied to Biology
18 Botany
19 Climatology and Geography
20 Zoology

*Calorie.

सूखी मटर	...	...	...	२०१५
चावल	...	...	..	१७२८
आलू	...	...	...	१५००
किशमिश	...	...	...	१३३७
मेनई	...	...	...	११९०
मकईके टुकड़े (कौर्न फ्लेक्स)			...	८४२.५
सेव	...	...	...	७३३
मोटा बिस्कुट	...	...	...	६५०
ह्विस्की	...	...	...	१६१.४
काकटेल	...	...	...	१५९.५
बीयर	...	...	...	१३८
ब्रांडी	...	...	...	११६
वाइन	...	...	...	९३
शैम्पेन	...	...	...	२१.७
स्किम मिल्क (मठा)		...	...	४६०
लैम्ब चोप		...	...	४४०
अंडे	...	...	...	२६२
मुर्गी	...	...	...	२०९
मछली	...	...	...	१८९
मटा मांस	...	...	...	१८७
मूंगफली	...	...	...	१४५०
सूअरका मांस	...	...	...	१०८२
मक्खन	...	...	...	९८०
पनीर	...	...	...	९७५
दूध	...	...	...	६२०
मलाई	...	...	...	५६५

नीचेकी तालिकामें आपको भिन्न भिन्न प्रकारकी मदिरामें मादक पदार्थ एल्कोहलकी प्रति सैकड़े मात्रा मालूम होगी।

बीयर	...	...	...	५ सैकड़ा
एल	...	...	...	७ ,,
पोर्टर	...	...	...	७ ,,
हार्ड सैडर	...	...	...	६ ,,
फ्रूटवाइन	...	..	...	८ ,,
शैरी	...	..	...	८ ,,
मस्कटल	...	...	...	८ ,,
शैम्पेन	...	...	...	१० ,,
सैनटर्न	...	...	...	१२ ,,

शेरी	...	...	...	१४	,,
पोर्ट	...	...	...	१४	,,
वरमथ	...	...	...	१५	,,
क्यूड़ी म्यूथी	...	...	...	३२	,,
काकटेल्स	...	...	...	३५	,,
बिटर्स	...	...	...	४६	,,
कीमनल	...	...	...	४२	,,
रम	...	...	...	४५	,,
ब्रांडी	...	...	...	५०	,,
जिन	...	...	...	५०	,,
ह्विस्की	...	...	...	५०	,,
वोडाका	...	...	..	५०	,,
एब्सिंथ	...	...	...	६०	,,

इनको देखता हुआ बाहर निकल आया, फिर तमाशेगाहमें पहुंचा और अन्य वस्तुओंको देखता रहा। 'इन्हाल्प्रशन आफ ड्रेडनाट्स' (ड्रेडनाट नामक लड़ाऊ जहाजके विकासका दृश्य) तथा ग्रेण्ड कैनियन आफ एरीज़ोना'—इन दोनोंमें भी बड़ी योग्यतासे कार्य किया गया है। बड़े ही महत्त्वके दृश्य हैं—एकमें जहाजी लड़ाई सामने होती दीख पड़ती है व दूसरेमें महान् अमरीकन दर्रेका दृश्य है। अमरीकामें चार वस्तुएं बड़े महत्त्वकी हैं। नियागरा फाल्स, यलोस्टोन पार्क, ग्रैंड केनिअन आफ अरीज़ोना, यसोमाइट वेली। किन्तु ये इतनी, इतनी दूर हैं कि इनका देखना कठिन है। मैंने केवल नियागराको ही देखा है।

× × × ×

आज मैंने कृषि-भवन, खानोंके भवन, व गाड़ी रेल इत्यादिके भवन व जानवरोंका घर इत्यादि चीजें देखीं। इन भवनोंमें जानवरोंके भवनको छोड़ कर कोई विशेष बात उल्लेख योग्य न थी।

कृषिमें नाना प्रकारके अन्न व घासोंके नमूने थे व तरह तरहके कृषि-सम्बन्धी यन्त्र थे पर हमारे कामके कोई भी न जँचे। मुझे यहाँ निम्नलिखित वस्तुएँ अच्छी लगीं—जुआर, बोड़े व सेमकी किस्में, हाथीचिंघाड़का रेशा व एक प्रकारकी घास जो बालोंकी जगह गद्दोंमें भरी जाती है। मशीनोंमें दूध दूहनेका यन्त्र अच्छा लगा। इस यन्त्र द्वारा एक मनुष्य एक घंटेमें प्रायः २५ गायोंका दूध आसानीसे दुह सकता है। इसकी कीमत कोई एक हजार रुपये होगी तिसपर बिजलीकी शक्तिकी आवश्यकता भी पड़ेगी। यहाँ पर नाना प्रकारके कृषि-सम्बन्धी और यन्त्र भी थे पर सब इतने बड़े व पेचीदा थे कि उनका उपयोग करना अभी हमारे यहाँ असम्भव साही दीख पड़ता है।

यहाँसे खानोंके भवनमें गया। नाना वस्तुओंकी खानें देखीं। ये बड़ी सुन्दरतासे बनायी गयी थीं। खनिज वस्तुओंको किस प्रकार साफ करते हैं, यह भी दिखाया गया था पर जितनी वस्तुओंकी आवश्यकता इस भवनमें है उतनी नहीं है।

यहाँकी प्रदर्शनी व भारतकी प्रदर्शनीमें एक अन्तर यह भी देख पड़ा कि जिस प्रकार भारतवर्षकी प्रदर्शनियोंमें कलाकौशलके गोपनीय रहस्योंको खोलके दिखा देते हैं वैसा यहाँ नहीं करते। मुझे एक भी जगह यह नहीं दीख पड़ा।

गाड़ी व रथ-भवनमें नाना प्रकारकी सवारियोंका समूह था किन्तु पनडुब्बी नाव व विमान न थे। यहाँ पर दो वस्तुएँ देखने योग्य थीं। एक मोटरगाड़ीका कारखाना, यहाँ मोटरके भिन्न भिन्न भागोंको जोड़कर गाड़ी बना रहे थे, व दूसरा एक नये प्रकारका इञ्जन। इसमें यह खूबी थी कि बाइलर इत्यादिक सब पीछे थे व इञ्जन तेलका था। हाँकनेवालेके लिये जगह सामने हैं जिसमें वह सड़क परकी रुकावटोंको भली-भाँति देख सकता है व रातको भी एक मील तककी दूरी पर आदमी दीख पड़ सकता है जिससे खतरा कम होगया है। भारतवर्षके इञ्जन अगर उलटे कर दिये जायँ तो वे जैसे दीख पड़ेंगे यह वैसा दीख पड़ता है।

पशुशालामें गौएँ ऐसी देखीं जैसी जिन्दगीमें कभी नहीं देखी थीं। एक एक गौ मन मन भर दूध देनेवाली देखी, उनके थन जमीन में छू जाते थे। वे बहुत बड़े व दूधसे भरे थे। ये गौयें प्रायः १०००) रुपयोंके लगभग मूल्यकी थीं। यहीं पर एक बड़ा साँड़ देखा। साँड़ोंकी भारतवर्षमें इतनी कमी होती जाती है कि जिसका ठिकाना नहीं। अब शहरोंमें अच्छे साँड़ बरदानेको नहीं मिलते जिससे गोसन्तान दिन दिन छीजती जाती है। इस ओर हमें ध्यान देना चाहिये। घोड़े भी यहाँ ऐसे ऐसे देखे जिसका ठिकाना नहीं। इन देशोंमें पशुओंके पालने व उनकी नस्लको बढ़ाने और उनकी सन्तानको सुखी रखनेके लिये नाना यत्न किये जाते हैं। विज्ञानवेत्ता लोग रात दिन अपनी खोपड़ी इन बातोंमें खपाया करते हैं। भारतवर्षमें झूँठी दयाका ढकोसला मात्र रह गया है। गायने जहाँ ज़रासा दूध कम देना शुरू किया, बस वह ब्राह्मणके घर भेजी गयी। ब्राह्मण विचारा न मालूम उसे कैसे रक्खेगा। बड़े बड़े नगरोंमें भी साड़ोंके लिये कोई बन्दोबस्त नहीं है। घोड़ोंके खेत तो अब दिन बदिन कहानी होते जाते हैं। जहाँ कभी एकसे एक अच्छे घोड़े उत्पन्न होते थे वहाँ अब गदहे भी नहीं पैदा होते।

अमरीकाकी जिस वस्तुका मुकाबला भारतकी वस्तुसे करते हैं उसीमें यहाँ अवनति दीख पड़ती है। क्या भगवान् इस देशका नाशही देखना चाहते हैं? यदि यही इच्छा है तो क्या चारा, किन्तु प्रभो! फिर सिसका सिसका न मारो, एकही बार वसुन्धराको आज्ञा दो कि मातृभूमि हमें अपने उदरमें लोप कर ले।

अब मुझे प्रदर्शनीकी और बहुतसी वस्तुओंका संक्षिप्त विवरण आपको सुनाना है। आज मैं चित्रशाला व अन्य कारीगरियोंके भवनमें घूमता रहा। यहीं चित्रोंको देख कर बड़ा आनन्द आया। नाना प्रकारके उत्तम उत्तम चित्र यहाँ हैं किन्तु मुझे सबसे अधिक चीनी चित्र अच्छा लगा। मुझे इन चित्रोंको गौरसे देखते देख कर एक चीनी सज्जनने जो यहाँके प्रबन्धकी देखभालमें थे मुझसे पूछा कि क्या आपको चीनी चित्र रुचते हैं। मैंने कहा "हाँ" तब उन्होंने और बहुतसे चित्र भीतरसे निकाल कर दिखाये जिनकी शोभा देखते ही बनती थी। ५०० साल पुराने चित्र ऐसे जान पड़ते थे कि मानों चितेरेकी कलमसे अभी निकले हों। यहाँ पर बहुत सी शीशियाँ देखीं जो

चौड़ी बनायी हुई थीं किन्तु उनके मुख इतने छोटे थे कि उनमें एक इन्चके आठवें हिस्सेकी मोटाईकी पेन्सिल जा सकती थी। किन्तु चतुर चितेरेने इन शीशियोंके भीतरी ओर ऐसे उत्तम चित्र बनाये थे कि बस देखते ही बनता था। यहीं पर चीनी बने हुए हाथी दांतके गेंद देखे जो गोलाईमें शायद २॥ से ३ इन्च होंगे किन्तु कार्य-कुशल कारीगरने इनमें एकके भीतर एक २८ तहें काटी थीं व प्रत्येक तह पर उमदा जाली बनी थी। यह कार्य भारतमें भी बनता है। मैंने इसे दिल्लीमें तथा काशीके प्रधान रईस बाबू माधवजीकी कोठीमें देखा है। आपके यहाँ शतरञ्जके मुहरोंमें यह कारीगरी है पर उनमें कितनी तहें हैं सो मुझे स्मरण नहीं हैं। जो हो, यह कारीगरी प्राच्य देशवालोंकी ही मिलकीयत है। इसे पाश्चात्य देशवाले कमसे कम अब तो नहीं ही कर सकते। यहीं पर तमाशेगाहके एक तमाशेका भी ज़िक्र कर देना उचित है। ज़ोनमें एक तमाशा 'साइक्लोरोमा बैटिल आफ गेटिज़बर्गके नामसे' प्रसिद्ध है। यह इस देशके अन्तर्राष्ट्रीय युद्धका एक दृश्य है। एक गोल मण्डपमें ४०० फुट लम्बा ५० फुट चौड़ा एक लड़ाईका चित्र लगाया हुआ है, उसीको दर्शक देखते हैं। चित्र कैसा है, यह लिखना कठिन है। बड़े गौरसे देखने पर भी यह जानना कि चित्र कहाँ पर प्रारम्भ होता है असम्भव है। इस चित्रके बनानेमें बड़ी कारीगरी है। सारा चित्र जीवितसा प्रतीत होता है। चित्रमें कई योजन लम्बा चौड़ा मैदान बना है जिसे देख अचम्भा होता है व चितेरेकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। दृष्टान्तके लिये मैं थोड़ा सा हाल लिखता हूं। एक जगह दो मनुष्य एक जख्मीको लिये जाते दिखाये गये हैं। इनमें दोनों आदमी चित्रमें हैं, जख्मी आधा चित्रमें है आधी मूरत है, किन्तु यह जानना कि मूरत कहाँ खतम हुई व चित्र कहाँ प्रारम्भ हुआ, बड़ा दुष्कर है। एक जगह रथ है जिसका आधा पहिया तो सचा है व आधा चित्रमें है। एक कुआँ है, आधा सचा आधा चित्रमें। उसपर एक लकड़ीकी बाल्टी है जो आधी सची व आधी चित्रमें है। इसी प्रकार अन्य बहुत ही विचित्र विचित्र घटनाओंको यहाँ मूर्ति तथा चित्रों द्वारा मिलाकर दर्शाया गया है जिससे दर्शकोंपर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। मैंने मार्सेल्सकी चित्रशालामें बहुतसे उत्तम उत्तम चित्र देखे थे जिनमें बाज़ बाज़ दस लाख पाउण्ड अर्थात् १॥ करोड़ रुपयेकी कीमतके थे। ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दनमें भी बड़े अनमोल चित्र देखे थे किन्तु मेरी निगाहसे (मेरी निगाह इन विषयोंसे बिलकुल ही अनभिज्ञ है, इस कारण वह किसी अङ्गमें भी प्रामाणिक नहीं समझी जा सकती) इस चित्रके मुकाबिलेमें वे अद्भुत चित्र हेच जँचते थे।

इसके उपरान्त मैंने एक दिन इन महलोंकी फिर परिक्रमा की थी। मुझे एक जगह, संसारमें कहाँ कहाँ व कितना कितना सोना खानोंमें मिलता है इसके अंक देख पड़े थे, सो मैं पाठकोंके विनोदार्थ यहाँ उद्धृत करता हूं। संवत् १९७० में सारे संसारकी खानोंमेंसे १२५०.५४ घन फुट सोना प्राप्त हुआ जिसका मूल्य ४५,२१,३३,४४६ डालर हुआ (एक डालर प्रायः ३ रुपयेके बराबर समझना चाहिये)। अब मैं नीचे देशोंका नाम व सोनेकी औसत और मूल्य देता हूं।

देशोंके नाम	सोनेकी तौलका परता कुलको १०० मान कर ।	मूल्य डालरमें
ट्रांसवाल	४० फी सैकड़ा	१८,०८,१२,७२०
आस्ट्रेलेशिया	११.३ ,,	५,२०,६८,७२०
रोडेसिया	३.१ ,,	१,४१,८६,०४०
कैनेडा	२.९ ,,	१,३२,७६,१२०
भारतवर्ष	२.७ ,,	१,२०,६६,१२०
वेस्ट अफ्रिका	१.८ ,,	८१,७४,७००
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	१९.४ ,,	८,७८,१६,९६०
रूस	५.५ ,,	२,४८,६५,०८०
मेक्सिको	४.५ ,,	२,०१,४८,९२०
अन्यदेश	८.६ ,,	३,८७,२०,०००

उपर्युक्त अङ्कोंसे आपको पता लगेगा कि संसारके सब भागोंमें सोनेकी जितनी उत्पत्ति हुई उसका २.७ भाग भारतवर्षमें प्राप्त हुआ। क्या आप जानते हैं कि यह कहाँ होता है? यदि न जानते हों तो जान लीजिये कि यह मैसूर राज्यमें प्राप्त होता है। अभी तक सोना यहाँ ऊपर बालूमें मिला हुआ मिलता था। उसे बटोर धो व गलाकर सोना प्राप्त किया जाता था। अब थोड़े दिनोंसे ऊपरका सोना समाप्त हो गया, इससे नीचे खोदके प्राप्त करनेकी आवश्यकता पड़ी। अब सोना पानेके लिये भी इस निर्धन देशमें यन्त्रोंके लिये धन नहीं मिला वा ऐसा कहिये कि लोग इसके लिये भी धन लगानेको तैयार नहीं हैं। इसलिये इस कार्यके निमित्त सात समुद्र पार विलायतसे धन आया। अब जो सोना निकलता है राजा साहबको कुछ रजाईका देकर विदेशी धनियोंके जेबमें जाता है। इसीको दरिद्रताकी पराकाष्ठा कहते हैं। दरिद्रोंके हाथ लगानेसे इसी प्रकार सोना राख हो जाता है व भाग्यवानोंकी छुई मिट्टी भी सोना बन जाती है।

इन महलोंके अतिरिक्त, जिनका वर्णन संक्षपसे ऊपर किया गया है, अन्य भिन्न राष्ट्रोंके भी पृथक् पृथक् गृह निर्माण हुए हैं। उनमेंसे कितने खुल गये हैं, कितने अभी बन रहे हैं। मैंने जितने देखे हैं उनका दिग्दर्शनमात्र यहां कराये देता हूं।

कैनेडा—यह अङ्गरेज़ोंका उपनिवेश है व ठीक संयुक्त राष्ट्रके उत्तरमें पृथ्वीकी छोर तक फैला हुआ है। यह केवल नाममात्रके लिये ब्रिटिश साम्राज्यमें है। इससे ब्रिटिश साम्राज्यके केन्द्रस्थलको एक कौड़ीकी भी आमदनी नहीं है प्रत्युत इङ्गलिस्तान को ही उलटे साम्राज्यसचिवका वेतन देना पड़ता है। हाँ, यहाँ भी वाइसराय अथवा सम्राट्के प्रतिनिधि रहते हैं। किन्तु इन्हें नवाबोंके अधिकार नहीं हैं। यहाँ प्रजा की राष्ट्रसमिति है व इसीके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकारका अधिकार है। इन देशवासियों को अपने धनपर अधिकार है। वे प्रत्येक वर्ष कररूपसे जो धनराशि राष्ट्रकोपमें देते हैं, उसे स्वयं ही अपने ही देशमें अपने ही लिये व्यय करते हैं। दूसरोंको उसमेंसे एक कौड़ी भी लेनेका अधिकार नहीं है। इसी कारण इतना शीतप्रधान देश होकर भी यह प्रतिदिन आशातीत उन्नति कर रहा है। अपने पड़ोसी राष्ट्रको उसी उन्नतिके दिखानेके लिये यहाँ भिन्न भिन्न प्रबन्ध हुए हैं। उसकी उन्नति व उसके

पनामा प्रदर्शनीका दृश्य (पृष्ठ १४०)

यहाँ उत्पन्न हुए पदार्थ किस भाँति यहाँ दर्शाये गये हैं, उनका पूरा ब्योरा देना यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु थोड़ा सा तो लिखना ही चाहिये। उदाहरणस्वरूप कृषिविभागको लीजिये। उसमें देशमें जो जो वस्तुएँ उपजती हैं सभी दिखायी गयी हैं। यहाँ तक कि करीब २०० प्रकारकी भिन्न भिन्न घासोंके नमूने यहाँ एकत्र किये गये हैं और उनमेंसे किन घासोंके दाने मनुष्योंके खानेके काममें आ सकते हैं, यह भी दिखाया गया है। यहाँपर वे घासें भी अच्छी तरह रखी हुई पायीं जो भारतवर्षमें पशुओंको भी नहीं खिलायी जातीं। यहाँपर मनुष्यने ज्ञानकी वृद्धिके लिये विज्ञानसे कितनी सहायता ली है यह प्रत्यक्ष देख पड़ता है। हमारे यहाँ लोग इसी भ्रममें पड़े हैं कि परमेश्वरने हमको ही सृष्टिके आदिमें वेदोंमें भर कर सारा ज्ञान दे दिया है, जिसे चुपचाप टुकुर टुकुर हम देखा करते हैं। या बहुत हुआ तो कुछ तोतोंकी भाँति रट कर दोहरा लेनेमें ही बहादुरी समझते हैं। पर दूसरे देशवाले प्रतिदिन सृष्टिके गुप्त भंडारमेंसे कुछ न कुछ मनुष्योपयोगी ज्ञान परिश्रम द्वारा निकाला करते हैं और अपने तथा दूसरोंके जीवनको सुखकर बनाते हैं। इसीका नाम सच्ची तपस्या अथवा ज्ञानपिपासा, वेदोंका वास्तविक अध्ययन वा विज्ञानकी खोज है।

कृषिकी भाँति तरह तरहके फल-फूलोंका तथा अन्य खनिज पदार्थों व पशु-पक्षियोंका भी खूब प्रदर्शन किया गया है। इस देशमें जंगल बहुत है इससे यहाँ लकड़ी बहुत पैदा होती है। इसलिये लकड़ीके भिन्न भिन्न उपयोगोंका भी प्रदर्शन यहाँ भली भांति कराया गया है। अभी थोड़े दिन पूर्व यहाँ कागज़ोंके कारखाने बहुत कम थे। किन्तु थोड़े दिनोंमें ही यहाँ ५१ कारखाने केवल लकड़ीके गुद्दे (पल्प) बनानेके बन गये और यह समझा जाता है कि थोड़े दिनोंमें यह देश कागज़के कारखानेमें सब अन्य देशोंसे बढ़ जावेगा। इसका कारण उपर्युक्त लकड़ीकी बहुतायत व धन-विभाग तथा कलाकौशल जाननेवालोंकी अधिकता है। यहाँ एक विशेष प्रकारके पशु होते हैं जो लकड़ीका गूदा निकाल अपना गृह निर्माण करते हैं। बस इसीको देख इसका पता लगा है कि उस विशेष प्रकारके काष्ठसे कागज़ बनानेका अत्युत्तम गूदा बन सकता है। नीचे इस देशकी उन्नतिका लेखा दिया गया है

संवत् १९७० में धनकी उत्पत्तिका लेखा—

कृषि	५५२७७१५०० डालर	
जंगलात	१६१८०२०४९ ,,	
खनिज	१३६०४८२९६ ,,	
मछली इत्यादि	३३३८४४६९ ,,	[डालर = तीन रुपये दो आने]
गोधन	१२१०००००० ,,	
फल	२५०००००० ,,	
कुल जोड़	१०३०००६३१४ ,,	

व्यापारोन्नति सूचक लेखा डालरोंमें

	१९६९	१९७०
कुल व्यापार	८७४६३७७९४	१०८५२६४४४९
आमदनी	५५९३२५५४४	६८६६०४४१३
रफ्तनी	३१५३१७२५०	३७७०६८३५५
संयुक्त राष्ट्रसे व्यापार	४८८६७९७४१	६६२४३२९३७
ब्रिटिश साम्राज्यसे	३०७८४०८१६	३६१७५९०३६
ब्रिटिश संयुक्त राज्यसे	२६९०५४८४४	३१७६३५५८९

इस लेखेसे प्रकट है कि केवल एक वर्षमें २१०६२६६५५ डालरकी व्यापारमें वृद्धि हुई। कैनेडा व भारत दोनों ही ब्रिटिश साम्राज्यमें हैं किन्तु एकमें वृद्धि व दूसरेमें प्रायः कुछ नहीं इसका क्या कारण ? कारण स्वराज्य, स्वाभिमान, ज्ञान व परिश्रम है।

केलीफोर्निया महल-संयुक्त राष्ट्रके भिन्न भिन्न प्रदेशोंके भी संयुक्त महलोंके अतिरिक्त अपने अपने अलग अलग भवन बने हैं। इनमेंसे कुछमें तो विशेष प्रदर्शनी है, बाकी केवल दिखानेके हो लिये है। इनमेंसे केलीफोर्निक भवनमें विशेष रूपसे प्रदर्शनोका प्रबन्ध है। यहाँ इस प्रान्तके भिन्न भिन्न फल-फूल, अन्न, शाक-पात तथा खनिज पदार्थ व जन्तुओंको व उनको बनाने व ठीक करनेमें जिन यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है वे भी प्रदर्शित किये गये हैं।

इस भवनमें घुसते ही सामने एक विशाल वृक्षका तना देख पड़ता है। यह केलिफोर्नियाकी प्रधान लाल लकड़ीका तना है। यह वृक्ष बहुत बड़ा व मोटा तथा बड़ी आयुका होता है। इस वृक्षके दो टुकड़े यहाँ रक्खे हैं, दोनों भीतरसे पोले किये हुए हैं। भीतर जानेसे मालूम होता है कि रेलगाड़ीके पहिले दर्जेके डब्बेमें खड़े हैं। इसका मिकदार यों है, वृक्षकी उँचाई ३०० फुट, धड़की मुटाईका व्यास २० फुट, धड़का उचाई १५० फुट, जहाँसे प्रथम डाली निकली वहाँकी मुटाईका व्यास ८ फुट। इस लकड़ीके टेबुल, कठवत, कुर्सी व नाना प्रकारकी वस्तुए यहाँ बनती हैं। यहाँसे आगे बढ़नेपर नाना प्रकारके फल-फूल, कन्दमूल, , शाक-पात, अन्न व कदन्न, पशु-पक्षी, मछली तथा खनिज पदार्थ देख पड़ते हैं। इन देशोंमें मुरब्बा बनाने, फलोंको सुखाने तथा उनके विशेष पाक बनानेका बड़ा रिवाज़ है। इसी प्रकार तरकारी इत्यादिको भी काट व सुखा कर रखनेकी चाल है। इससे दो प्रधान उपकार होते हैं। एक तो हर मौसिम व देशमें भिन्न प्रकारके खाद्य पदार्थ जो उस मौसिम व देशमें नहीं मिलते, प्राप्त होते हैं, दूसरे मौसिममें वस्तुकी बहुतायतसे उनका मूल्य नहीं घटता और न वस्तु ही फेकनी पड़ती है। इससे देशके धनमें वृद्धि होती है। उदाहरण रूपसे भारतवर्षमें आम व लीचीके मौसिममें ये पदार्थ सस्ते भी मिलते हैं व सड़ कर फेंके भी जाते हैं, दूसरे मौसिममें रुपयेके एक भी नहीं मिल सकते, व देशके बाहर इनका दर्शन आँखमें अन्जन लगानेको भी नहीं होता। इसी प्रकार मौसिमके बाद जो लोग हरी मटर, गोभी व कचनार अथवा कटहलकी तरकारी खाना चाहें वे इन वस्तुओंको नहीं पा सकते। इसके विपरीत कैलिफोर्नियाकी नारंगी, तरकारी तथा अन्य प्रकारके फल-फूल सभी देशोंमें तथा सभी मौसिममें प्राप्त होते हैं। ये कुछ सूखे, कुछ विशेष प्रकारसे ताजे ही, टीनमें

'पृथिवी प्रदक्षिणा'

विशाल वृक्षका तना (पृष्ठ १४२)

बन्द किये हुए व कुछ बरफ द्वारा ज्योंके त्यों रक्खे हुए मिलते हैं। भारतवर्षमें काबुलसे सर्दा आना दुस्तर है, बिना काश्मीर गये गिलास व गोसः बागोंका स्वाद पाना असम्भव है। किन्तु केलिफोर्नियाके अंगूर, नाशपाती व नारंगी सभी सभ्य जगत्में प्राप्य हैं। इस लम्बे चौड़े बयानसे मेरा अभिप्राय यह है कि भारतवर्षमें इन तीन प्रकारके धन्धोंकी बड़ी आवश्यकता है (१) फल तथा भिन्न भिन्न तरकारियों-को टीनमें बन्द करके रखना (२) फल तथा तरकारियोंको इस प्रकारसे सुखा कर रखना जिसमें उनके स्वाद तथा खाद्य पदार्थकी उपयोगितामें अन्तर न पड़ने पावे (३) हिम कुंडोंद्वारा फल व तरकारीको ज्योंका त्यों ठंडा करके रखना जिसमें वे बिना सड़े देशके एक भागसे दूसरेमें तथा विदेशोंमें भेजे जा सकें व एक मौसिमके फल दूसरे मौसिममें मिल सकें। प्रथम दो उपायोंसे देशका धन बढ़ेगा तथा वस्तु छीजेगी नहीं। अन्तके उपायसे धनिकोंकी रसना-लोलुपताका सन्तोष होगा। इसके अतिरिक्त सूखी तरकारियोंकी उपयोगिता दिन दिन लड़ाईमें रसद एकत्र करानेमें तथा जहाज़ी सफरके कारण बढ़ती जाती है। इसमें जगहकी कमी होती है व वस्तुएँ प्राप्त भी होती हैं। इस देशमें इनके व्यवसायी कोट्यधीश बन गये हैं। इतना ही नहीं यहाँपर भोजन पकाकर टीनमें विशेष प्रकारसे बन्द करके चलान करनेका रिवाज बढ़ता ही जाता है। हेंज नामके व्यापारीने यहाँ इस व्यवसायको बदौलत एक पुश्तमें ही कई करोड़ रुपये कमाकर घरमें रख लिये हैं। यहाँके अमीर दूसरोंका गला काटकर रुपये नहीं बनाते किन्तु अपने परिश्रम व व्यापारसे धन एकत्र करते हैं। धन व्यापारसे बढ़ता है, आढ़त, व्याज व दलालीसे नहीं। भारतवर्षमें व्यवसाय व व्यापार (कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज़) नहीं है, केवल दलाली, सूदखोरी व आढ़त या बिचवइयेका काम है। उदाहरणस्वरूप कलकत्ते की "मुसद्दी गीरी" का ध्यान करिये जिसमें मलाई विदेशी उड़ाते हैं व देशियोंको छाछ मिलती है, ऊपरसे जोखिम भी उठानी पड़ती है।

यहाँ कितने ही प्रकारके यन्त्र भी देखे जिनमेंसे एकका ज़िक्र यहाँ किये देता हूं। यह छुटाई-बड़ाईके अनुसार फलोंको पृथक् करनेका यन्त्र है। एक कपड़ेके टेबुलपर दौरीमें भरकर कोई फल, जैसे सेव, नारंगी या नासपाती, लाकर डाल दिये जाते हैं। वहाँसे वे लुढ़ुक लुढ़ुक कर एक छोटेसे हाथकी भांति बने हुए कटोरेमें एक एक कर गिरते जाते हैं। इस कटोरेके साथ एक यंत्र ऐसा है जो फलको तौल लेता है। तौलके अनुसार आपसे आप विशेष कमानी घूम जाती है जिससे वह कटोरा फलको उछाल देता है। यन्त्र ऐसा है कि वह अमुक भारको अमुक दूरीपर फेंकता जाता है। उन दूरियोंपर थैलियाँ हैं जिनमें फल गिरते जाते हैं। इस भांति एक मनुष्य थोड़ी देरमें हज़ारों फलोंको पृथक् पृथक् कर लेता है। इस प्रकारसे छाटनेमें भूल की तो गुन्जाइश ही नहीं है। और काम भी सफाई व शीघ्रतासे होता है। इसी भांति फल सुखानेका यन्त्र है। इसमें फल काट कर थालियोंमें रख कर यन्त्रद्वारा एक कोठरीमें भेजे जाते हैं। कोठरीमें एक विशेष प्रकारसे सुखायी हुई हवा प्रविष्ट करायी जाती है जो फलोंमेंसे केवल जलांश खींच लेती है। अब किस फलमेंसे कितना जलांश निकालना चाहिये, यह रसायन शास्त्र द्वारा निश्चित होता है। इस प्रकार विशेष

फल या तरकारीमेंसे उतना ही जल निकाला जाता है जितनेके निकालनेसे फल या तरकारी खराब न हो। सूर्यकी किरणोंसे सुखानेमें स्वादमें फर्क पड़ जाता है, बाजी बाजी वस्तुएँ खराब हो जाती हैं; रँग भी बदल जाता है पर इस भांतिसे इसमें कुछ भी फर्क नहीं पड़ता।

हालैंडके गृहमें जावा, सुमात्राकी भिन्न भिन्न उन्नतियोंका प्रदर्शन किया गया है। कृषि व जलशक्तिका यहाँ विशेष प्रदर्शन है।

होनोलूलू-गृहमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मछलियाँ कुण्डोंमें जीवित दिखायी गयी हैं। ऐसे ऐसे विचित्र रँगोंकी मछलियाँ हैं कि यदि उनके रँगोंका चित्र बनाना हो तो चितेरेको अच्छा परिश्रम करना पड़े। यह देखने ही योग्य है।

तुर्की-गृहमें फारसी गलीचोंकी अच्छी दूकाने हैं। यहां अच्छे अच्छे गलीचे देखनेमें आये।

जापानियोंने अपना भवन निराला हीं बनाया है। पग पगपर चोरी, धोखेबाजी व जुवेकी बहार है। मैंने भी एक जगह फँस कर तीन रुपये खोये।

श्यामका गृह अभी बन रहा है। मैं उसे नहीं देख पाया। बाहरसे बड़ाही सुन्दर लगता है।

इनके अतिरिक्त तमाशेगाहसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओंका वर्णन ऊपर मैंने कहीं कहीं किया ही है। एक वस्तुका वर्णन यहाँ और करना है।

बच्चोंके सोनेका घर (इनफैण्ट इनक्यूबेटर) यह बड़ाही शिक्षाप्रद तथा उपयोगी तमाशा है। इसे तमाशा कहना भूल है। इसका उपयुक्त नाम विज्ञानशाला है। भारतवर्षमें जब बच्चे समयके पूर्व पैदा हो जाते हैं तो वे बहुधा मर जाते हैं। उनके फेफड़े तथा कलेजेमें आवश्यक शक्तिके न होनेके कारण वे भलीभांति रुधिर शुद्ध नहीं कर सकते। यह उनकी मृत्युका प्रधान कारण होता है। आपने नव-जात बालकको नीला पीला पड़ते देखा होगा, यह हमारे यहाँ भूत-प्रेतकी बाधा, व पूतना डाकनीके क्रोधके नामसे पुकारा जाता है। यथेष्ट उपचार न कर मूर्खोंसे झड़ाने-फुकानेमें व राखी-गन्डे बाँध कर विचारोंकी जान ली जाती है। मैंने पाँच सात बालकों को अपने घरमें ही इसी प्रकार मुरझाते देखा है। इस देशमें भी ऐसे बालक कोई १४ फी सैकड़े बचते हैं। किन्तु इस संस्था द्वारा जितने बालकोंकी देख-भाल होती है उनमेंसे फी सैकड़ा ८४ अब तक बचे हैं।

इस संस्थाका प्रधान स्थान न्यूयार्क है किन्तु इसकी चार शाखाएं भी हैं। यहाँ नवजात बालक जनमते ही लाये जाते हैं। यहाँ आते ही उनकी परीक्षा होती है, फिर साफ करके वे एक विशेष शीशेके सन्दूकमें रक्खे जाते हैं जिसमें साफ व नर्म कपड़ा बिछा रहता है। इस सन्दूकमें विशेष युक्तिसे सर्वदा सम ताप रक्खा जाता है, व विशेष यन्त्र द्वारा उत्तम साफ आक्सिजन युक्त वायुका प्रवेश होता है जिसमें बालकको सांस लेनेमें दिक्कत न हो। हर बालकके फेफड़ेकी शक्तिके अनुसार हवामें आक्सिजन मिलायी जाती है। ठीक समय व अवसरपर उत्तम परीक्षा की हुई स्त्रियोंका दुग्ध ठीक परिमाणमें इन्हें पिलाया जाता है। बस, यही इनके बचाने-का उपाय है। बालकोंके जीवनका मूलमन्त्र साफ हवा, साफ वस्त्र, शुद्ध दूध निश्चत

समयपर पिलाना मात्र है। अब आप उपर्युक्त विवरणसे अपने यहाँके नरकरूपी सौरी घरका मिलान कीजिये जहाँ गन्दे कपड़े, गन्दी हवायुक्त टूटे-फूटे गृहमें सबसे गन्दी कोठरी हो व जहाँ दुर्गन्धयुक्त अत्यन्त मलीन वस्तुओंका धुआं होता हो। मैंने अपने घरमें एकबार सौरीघरकी यह हालत देखकर अपनी पत्नीसे हंसीमें कहा भी था कि तुमलोग राक्षसी हो या देवी जो इस नरककुण्डमें से बच कर निकलती हो। मुझे दो दिन भी इसमें रहना पड़े तो मैं अवश्य बीमार पड़ जाऊं। भारतवर्षमें शिशुओंकी इस भयानक मृत्युकी संख्याके लिये सौरीघरकी गन्दगी व स्त्रियोंकी मूर्खता ही प्रधान कारण है।

इस तमाशेघरमें इस समय आठ बालक थे, सभी समयके पूर्व पैदा हुए थे। सबसे छोटा ६॥ महीनेमें पैदा हुआ था। वह यहां १४ दिनसे था। उसका भार केवल ३० आउंस अर्थात् १५ छटांक था। वह देखनेमें एक चूहेके बराबर था। इन देशोंमें विज्ञानवेत्ता एक ओर नाना प्रकारसे जीवनवृद्धि व धनवृद्धिमें लगे हैं और दूसरी ओर अस्त्र-शस्त्र बना हत्या व धन-नाशके उपाय भी करते जाते हैं जिसमें लीपपोत कर लेखा बराबर रहे।

इस प्रदर्शनीको देखनेवाला बिना इस परिणामपर पहुंचे नहीं रह सकता कि इस देशके निवासियोंमें अर्थात् पाश्चात्य सभ्यतामें कामोत्तेजक वस्तुओंकी बड़ी प्रधानता है। यहां पग पगपर नाना प्रकारसे स्त्रियोंकी सुन्दरताका दृश्य दिखाया गया है। कोई तमाशेकी जगह अथवा प्रदर्शनी ऐसी नहीं है जिसमें इस अंगकी पूर्ति न हो। इतने विषयासक्त होनेपर भी ये देश क्यों इतनी उन्नति कर रहे हैं, यह समझमें नहीं आता। इसी तमाशेगाहमें सैकड़ों ऐसी जगहें हैं जिनमें स्त्रियोंका रूप यौवन ही नहीं किन्तु अंग प्रत्यंग देखनेका भी बड़ा प्रबन्ध है।

इस प्रदर्शनीके बनानेका विचार प्रथममें आर० बी० होलके हृदयमें उठा था जो इस समय इस संघके उपप्रधान हैं। यह विचार संवत् १९६१ में ही उठा था। १९०६ में इसके लिये एक विशेष विधान बनानेके निमित्त सानफ्रेनसिसकोकी ओरसे वाशिंगटनमें प्रार्थना की गयी थी। संवत् १९६६ (१९०९) में इसके लिये २५०० प्रतिनिधियोंसे जो व्यवसाय संस्थाके प्रतिनिधि थे पत्रद्वारा सम्मति पूछी गयी। उन्होंने एक स्वरसे इसके पक्षमें सम्मति दी थी। इसके उपरान्त २१ मार्गशीर्ष १९६६ (७ दिसम्बर १९०९) को महती सभा हुई जिसमें सानफ्रानसिसको वालोंने इस कार्यके लिये ४०,९८,००० डालरका चन्दा किया। (३ फाल्गुन १९६७) १९११ को राष्ट्रपति टाफ्टने इस विधानपर अपने हस्ताक्षर किये। १९६८ के श्रावण में इसके लिये जगह नियुक्त हुई व २८ आश्विन १९६८ को राष्ट्रपति टाफ्टने जमीनमें खुदवाईका कार्य प्रारम्भ किया। प्रथम भवन यन्त्रशालाका कार्य २३ पौष १९६९ (७ जनवरी १९१३) को प्रारम्भ हुआ और भवन २७ फाल्गुन १९७० को तैयार हो गया।

इस प्रदर्शनीने ६२५ एकड़ जगह छेकी है। यह सानफ्रासिसकोकी खाड़ीके दक्षिणी छोरपर बनी है। यह ठीक स्वर्णद्वार (गोल्डनगेट) के भीतर है। कुल जगह २॥ मील लम्बी व आधे मील चौड़ी है। इसके दोनों बगलोंमें सरकारी किले हैं। खाईके पार ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ नीचेसे ऊपर तक घास व वृक्षोंसे हरी भरी

हैं। प्रदर्शनीके पीछे सानफ्रान्सिस्कोके नगरकी उँचाई है जिसने इस प्रदर्शनीको एक भाँतिसे प्राकृतिक रंगशाला बना रक्खा है।

प्रदर्शनी तीन भागोंमें विभक्त है। बीचका प्रधान भाग ११ महलोंसे सुसज्जित है। पश्चिमका किनारा प्रधान प्रधान विदेशियोंके भवनों तथा पशुशालासे युक्त है और पूर्वीयभाग तमाशेगाहसे भरा है। यह प्रदर्शनी इस समय ५ करोड़ डालर अर्थात् १५ करोड़ रुपयेकी लागतकी है। इसमेंसे ७५,००,००० डालर सानफ्रान्सिस्को नगरने दिया है। इसके सिवाय कैलिफोर्निया प्रान्तने ५०,००,००० और फ्रान्सिस्को नगरने ५०,००,००० विशेष कम्पनीके कागज़ द्वारा दिये हैं। ८०,००,००० भिन्न भिन्न प्रान्तों द्वारा प्राप्त हुए हैं। अपना अपना भवन निर्माण करनेमें कैलिफोर्नियाके जिलोंने ३०,००,००० दिये हैं १००,००,००० भिन्न भिन्न कनसेशनोंमें लगे हैं। विदेशी राज्यों द्वारा ५०,००,००० और विशेष व्यक्तियों द्वारा अपनी अपनी वस्तुओंकी प्रदर्शनीमें ६५,००,००० लगे हैं। ये अन्तिम बातें उस प्रदर्शनीकी महत्ता दिखानेके लिये लिखी गयी हैं।

चौदहवाँ परिच्छेद ।
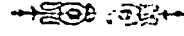
चीनी बस्तीका हाल ।

एक दिन मैं रात्रिको घूमनेके लिये निकला। अमरीकाके बड़े बड़े नगरों जैसे न्यूयार्क, शिकागो, सानफ्रान्सिस्को इत्यादिमें 'चाइना टाउन' नामकी चीनियोंकी बस्ती रहती है। यात्री लोग प्रायः इसे देखने जाया करते हैं। मैं भी इसे देखने चला। पहिले हमारा पथ-प्रदर्शक हमारी मंडलीको जिसमें कोई बीस मनुष्य थे, चीनी मन्दिरमें ले गया। यह सुविशाल देवमन्दिर भारतवर्षके ठाकुरद्वारोंके ढंगका है। तीसरे मञ्जिलपर एक कमरेमें बृहत् सिंहासनपर, जिसपर अत्यन्त उत्तम सोनेका काम किया हुआ था, एक विशाल मूर्ति रखी हुई थी। मूर्ति मनुष्यकी थी और उसके बड़ी लम्बी दाढ़ी थी। पासमें छोटे छोटे अन्य देव व देवियोंकी मूर्तियाँ थीं। सिंहासनसे हटकर आगे ऊंची वेदीपर धूप-दीप-नैवेद्य इत्यादि रखनेकी व्यवस्था थी। सिंहासनकी दाहिनी ओर एक नगाड़ा व बर्छोंके सदृश तीन आयुध रखे थे। बाईं ओर एक घोड़ा था।

मूर्तिको जगानेके लिये यहाँ भी आरम्भमें कुछ वाद्य होता है। पुजारी लोग यहाँ भी देवको हर प्रकारकी वस्तु चढ़ाते हैं। एक विशेष कागजपर अपने मनोरथ लिखकर देवताके सम्मुख उपस्थित करनेके पूर्व उसे एक अग्निकुण्डमें जलाते हैं। सारांश यह कि इस मन्दिरमें जानेसे प्राच्य रीति व रिवाज वैसे ही देख पड़ते हैं जैसे कि भारतके किसी मन्दिरमें दृष्टिगोचर होते हैं। हमारे दुर्भाग्यसे आज दिन जो कुछ प्राच्य है वह सभी बेहूदा समझा जाता है, सभी उसकी हँसी उड़ाते हैं। कहावत है कि "कमजोरकी माँ सबकी भाभी होती है"। उसकी हँसी उड़ानेमें कोई नहीं हिचकता। वही बात यहाँ भी देखी। चीन कमजोर है, उसके कोई माँ बाप नहीं है, इसीसे चीनियोंके मन्दिरमें जाकर सब लोग हँसी मजाक करते हैं। उनके देवार्चनकी सभी बातोंमें इन्हें अन्धविश्वास (सुपर्स्टिशन) दिखायी पड़ता है। किन्तु इन्हीं ऐश्वर्यके मदान्धोंको अपने गिरजेमें मामूली रोटीके टुकड़ेको ईसाका मांस समझनेमें व शराबको उनका लहू माननेमें ज़रा भी तकलीफ नहीं होती। गिरजेमें जाकर नास्तिक योर-अमरीका निवासी यात्री भी उस भाँति नहीं वर्ताव करता जिस भांति चीनी मन्दिरमें एक पादरी करता है। किन्तु जापानी मन्दिरोंमें ऐसा करनेका साहस किसी भी मनुष्यको न होगा क्योंकि उसके माई-बाप हैं।

यहाँसे बड़ा ही दुःखित होकर निकला। चीनी महल्लोंमें घूमते हुए मैंने भारतकी भाँति चकले भी देखे जहाँ वेश्याएँ अपना पेशा करनेके लिये बैठी थीं। योर-अमरीकामें वेश्याओं या व्यभिचारकी कमी नहीं है, प्रत्युत अधिकता ही है, किन्तु इंगलैण्ड व अमरीकामें चकले व वेश्याए नहीं हैं। यहाँ इस कार्यके लिये

दूसरी व्यवस्था है। अमरीकाके नगरोंमें 'सलून' या शराब पीनेकी जगहोंमें यह कार्य होता है। वहीं पुरुष व स्त्री दोनों जाते हैं। शराब बेचने वालेसे कह देनेसे ही सब प्रबन्ध हो जाता है। इन्हीं दूकानोंके पास बहुतसे छोटे छोटे होटल रहते हैं जिन्हें वस्तुतः चकला या अड्डा कहना चाहिये। पुरुष व स्त्री शराबकी दूकानसे उठकर यहीं चले जाते हैं। यहाँ उनके लिये मनोवांछित प्रबन्ध हो जाता है। इंग्लैण्डमें हज्जामोंकी दूकानपर नाखून काटनेके लिये जो लड़कियाँ होती हैं जिन्हें 'मैनीक्यूरर' कहते हैं वे प्रायः अच्छे चरित्रकी नहीं होतीं। वे इसी कार्यके लिये रखी जाती हैं। लन्दन तथा न्यूयार्कमें हज्जामोंके अतिरिक्त मैनीक्युरिंग (नाखून काटने) व मैसेजिंग* (मालिश करने) की हजारों दूकानें हैं। इन सबको इसी प्रकारका अड्डा समझना चाहिये। पर इन्हें कोई भी बुरा नहीं कहता और न ऐसी स्त्रियां समाजमें ही वैसी बुरी निगाहसे देखी जाती हैं जैसी कि हमारे देशमें वेश्याएँ देखी जाती हैं। मैंने तो इस देशकी ही पुस्तकोंमें यहां तक पढ़ा है कि इस देशमें १४ वर्षकी अवस्थाके बाद किसी पुरुष या स्त्रीको ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी समझना भूल है। यह विषय बड़ा ही गम्भीर है व बड़े ध्यानके साथ इसपर विचार करनेकी आवश्यकता है। मुझमें न इतनी बुद्धि है न अनुभव कि मैं ऐसे जटिल विषयपर अपनी कुछ सम्मति दे सकूँ। हाँ, इतना अवश्य कहूंगा कि विषयवासनाकी शक्ति इतनी प्रबल है कि इसका रोकना नारद ऐसे तपस्वी ब्रह्मर्षियोंसे भी नहीं बन पड़ा। फिर यदि सृष्टिके प्रारम्भसे ही सारी पृथ्वीपर किसी न किसी रूपमें वेश्यायें थीं, चाहे वे हूर पुकारी जाती थीं या अप्सरा, तो आज बेचारी इन स्त्रियोंने क्या अधिक पाप किया है कि समाजमें इनकी इतनी बेकदरी हो। मैं दृढ़ताके साथ यह कहनेको तैयार हूं कि यदि संसारमें किसी प्रकार गणना करना सम्भव हो तो उन लोगोंकी संख्याकी अपेक्षा जो सच्चरित्र हैं ऐसे नरनारियोंकी संख्या अधिक पायी जावेगी जिनका सम्बन्ध एकसे अधिक नारियों और नरोंसे है। इतना ही नहीं, दुश्चरित्र पुरुषोंकी संख्या दुश्चरित्रा स्त्रियोंसे कहीं अधिक मिलेगी। फिर क्या कारण है कि कुचाली पुरुष तो अच्छे समझे जावें किन्तु बिचारी स्त्रियाँ वेश्याओंके नामसे दूषित की जावें। मैं अधिक न कह कर इतना ही कहूंगा कि इस सम्बन्धमें मुझे पाश्चात्य न्याय प्राच्य अन्यायसे अधिक भाता है। अस्तु, चीनी बस्तीकी और भी अनेक वस्तुएं देखता हुआ मैं घर लौट आया।

---

* Manicuring and massaging.

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

अमरीकासे प्रस्थान।

लन्दनको छोड़े आज ठीक छः मास हुए। इतना समय अमरीकामें बिताकर अब अमरीकन नावपर जापानके लिये प्रस्थान किया। अभी नावको छूटे एक घंटा भी नहीं बीता था कि इसका अनुभव होने लगा कि मैं योर-अमरीका छोड़ प्राच्य दिशाकी ओर जा रहा हूं। जिस प्रकार भारतसे चलते समय नावपर भारतीय व अरबी खानसामे, नाविक व खलासी देखे थे उसी प्रकार यहाँ चीनी देख पड़े। जिस प्रकार भारतसे चलते समय जहाजके भोजनालयमें अंगरेज लोग हिन्दुस्तानियोंके साथ एक टेबुलपर भोजनके लिये नहीं बैठते उसी प्रकार यहाँ भी अमरीका निवासी श्वेतांग देवगण काले एशियाई दैत्योंके साथ बैठना उचित नहीं समझते। जिस प्रकार भारतमें सब अच्छी जगहें श्वेतांग-प्रभुओंके लिये सुरक्षित रहती हैं उसी प्रकार यहां भी श्वेत देवताओंके लिये अच्छे बीचके टेबुल सुरक्षित रहते हैं। सुरारि रावणके वंशज जिस प्रकार देवताओंका यह पक्षपात नहीं सहन कर सकते थे उसी प्रकार आज दिन जापानी पीले दैत्य इसका सहन नहीं कर सकते किन्तु अभी उनमें अग्नि व वायु, इन्द्र व वरुणको पकड़ लंकामें लाकर काम करानेकी शक्ति नहीं है। इसी लिये जापानी लोग अमरीकन जहाजपर सफ़र नहीं करते। ये लोग प्रायः जापानी कम्पनीके जहाज़ोंपर ही सफ़र करते हैं।

आज दो दिन प्रशान्त महासागरपर चलते बीत गये। यह सागर अपने नामकी मर्यादा भली भांति निबाह रहा है। समुद्र शान्त है। जलकी चद्दर भारत-सागरकी भांति शीशेके तख्तेके सदृश तो नहीं है, जरा जरा हिलकोरे उठते हैं, पर इसे चैत्र मासकी गंगासे अधिक अधीर नहीं कह सकते। मन्द मन्द वायु चल रहा है। मैं एक अमरीकन यात्रीके बगलमें खड़ा हुआ सूर्यके अस्त होनेका दृश्य देख रहा हूं। अहा, क्या ही सुन्दर दृश्य है! अभी सूर्यकी तेज किरणोंके सामने निगाह नहीं ठहरती थी, पर एक ही पलमें सूर्यका आग उगलता हुआ गोला समुद्रके निकट आ गया मानों गर्मीसे घबराकर जलमें स्नान किया चाहता है। यह क्या! यह तो सच-मुच ही समुद्रमें कूद पड़ा। वह देखो आधा जलके भीतर भी चला गया, अब तो पूरी डुबकी मार ली। नहीं सूर्य तो पृथ्वीसे १३ लाख गुना बड़ा है भला वह कहाँ समुद्रमें नहा सकता है। वह पृथ्वीके घूम जानेके कारण आड़में चला गया, किन्तु जान ऐसा ही पड़ता है मानों समुद्रमें गोता ही मारा हो।

थोड़ी देरतक बादलोंमें लाल-पीला काला रंग रहा पर धीरे धीरे यह भी कालिमामें लुप्त हो गया। जहाज़के सामने, ठीक जहाँ मैं खड़ा था वहीं, आकाशमें द्वितीया-का चन्द्र उग पड़ा जिसकी शोभा देख काशिराज, ताण्डव नृत्यके कर्त्ता, नटराज स्वयम्भूके भालका बालशशि याद आ गया। थोड़ी देर मन उसी ओर लगा रहा पर इसका भी अन्त हो गया। यह भी अगाध निशाकी गोदमें मुख छिपा कर सो रहा।

मैं भी यहाँसे हटा और नीचेकी ओर चला, पर आ पड़ा पीछेकी ओर । खुले डेकपर क़नातके पीछे आलोक देख पड़ा । मैं नीचे उतर कर उधर बढ़ा तो क्या देखता हूं कि वहाँ बहुतसे चीनी नाविक व यात्री एकत्र हैं और वहाँ खूब जोर-शोरसे दीपावली मची है । छक्के पंजेकी आवाज़ आ रही थी । भीड़के भीतर घुसकर देखा व पूछा तो मालूम हुआ कि चीनियोंके मनोरञ्जनार्थ जहाज़के कप्तानकी आज्ञासे सभी अमरीकन जहाज़ोंपर जूआ होता है । कभी कभी प्रथम श्रेणीके यात्री भी यहाँ आ कर फँस जाते व कुछ गँवा बैठते हैं । सुना गया है कि एक यात्री एक दिनमें छः सौ रुपये हार गया ।

प्रथम श्रेणीके यात्रियोंमें भी जूएकी कमी नहीं है । यहाँ भी धूम्रपानके कमरेमें खूब जूआ होता है व संगमें वारुणी भी उड़ती जाती है । संसारकी यही लीला है; वायज़की दाल दुनियामें नहीं गलती । उपदेशकगण चिल्लाया ही करेंगे और संसार कानमें तेल डाले अपनी राह चलता ही जावेगा ।

आज रविवार है । कल ही इसकी घोषणा हो चुकी थी; अब दस बज गये । यात्री लोग पुस्तकालयके कमरेमें बैठे हैं । नौकरने प्रार्थना व भजनकी पुस्तिकाएं लाकर रख दीं । एक ओर ऊंचे टेबुलपर कपड़ा डाल एक मोटी बाइबल रख दी गयी । यात्रियोंमें तीन पादरी थे, वे आये । उन्होंने प्रार्थना करायी, भजन गाये, फिर कुछ उपदेश किया, चढ़ावा एकत्र किया । फिर लोग अपना अपना काम करने लगे । थोड़ी देरके लिये यह पुस्तकालय गिरजा बन गया था, अब फिर मामूली पुस्तकालय बन गया ।

कुछ देरके बाद एक पादरी एक पुस्तक यात्रियोंको बाँट गये । मुझे भी एक मिल गयी । इसका नाम है—'टूरिस्ट डाइरेक्टरी आव क्रिश्चियन वर्क इन दि चीफ सिटीज़ आव दि फार ईस्ट, इण्डिया ऐंड चाइना'* । इस पुस्तकपर छापाखानेका नाम नहीं छपा है सिर्फ यह लिखा है--प्रेजेण्टेड बाइ दि कमिटी आन दि रिलिजस नीड्स आव ऐंग्लो-अमेरिकन काम्युनिटीज़ आव एशिया, आफ्रिका ऐंड साउथ अमेरिका । †

मैंने उसे उलट पलटकर देखना प्रारम्भ किया । ८३ पृष्ठके आगे इसमें भारतके सम्बन्धका हाल लिखा है । लेखकने बड़ी कृपा करके हमारे सभी स्कूलों व कालिजोंको ईसाइयोंकी संस्थाएं बताया है । कलकत्तेमें निम्नलिखित संस्थाएँ ईसाई संस्थाएँ बतायी गयी हैं-प्रेसिडेन्सी कालेज, संस्कृत कालेज, रिपन कालेज, बंगवासी कालेज-- काशीका हिन्दू कालेज भी ईसाई संस्था है । इतना ही नहीं आपने और भी बहुत कुछ लिखा है । ८३ पृष्ठपर कहा गया है ‡—

"भारतमें क्रिस्तान धर्मकी स्थापना जिस आन्दोलनका परिणाम है उसके प्रवर्तनका श्रेय विलियम केरी नामक एक अदने पादरीको प्राप्त है । ... ... देशी भाषा बंगलामें प्रथम समाचारपत्र निकालनेका एवं हिन्दू स्त्रियों तथा लड़कियों-

* Tourist Directory of Christian Work in the Chief Cities of the Far East, India and China.

† Presented by the Committee on the Religious needs of Anglo-American Communities of Asia, Africa and South America 1913.

‡ " To a humble Baptist minister William Carey belongs the honour of inaugurating a movement which has resulted in the establishment of the Christian Religion in India.........To these mission-

की शिक्षाके प्रथम उद्योगका श्रेय इन्हीं पादरियोंको प्राप्त है। ... ...
इन्होंने उनके कई महत्त्वपूर्ण नैतिक और राजनीतिक सुधारोंमें भी सहायता दी है।

"वर्तमान समयमें जितने विद्यार्थी (युवक तथा बच्चे) विद्याध्ययन कर रहे हैं उनका दशमांश प्रोटेस्टेण्ट मिशन स्कूलोंमें ही शिक्षा पा रहा है।"

"गत तीस वर्षोंमें ईसाइयोंकी संख्या तिगुनीसे भी अधिक बढ़ी है।"

"सामूहिक आन्दोलन—सारे समाजका अपने पुराने धर्म-विश्वासको छोड़कर ईसाई मत ग्रहण करना—गत वर्षोंकी एक विशेष महत्त्वपूर्ण घटना है।"

उपर्युक्त बातें इस प्रकार झूठ-सच मिला कर छापी गयी हैं कि उनमेंसे झूठका निकालना बग़ैर जानकारीके नहीं हो सकता। हमारे ईसाई भाइयोंको धर्मके नामसे झूठी बातोंका प्रचार करनेमें लज्जा आनी चाहिये। पर पाश्चात्य देशोंमें मिशन (धर्मोपदेश) भी एक प्रकारका विशेष रोज़गार है, और रोज़गारमें बग़ैर सच-झूठ बोले पैसा नहीं मिलता। इसीलिये विचारे पादरियोंको अपना पेट पालनेके लिये झूठ भी बोलना पड़ता है और भोले भाले नर-नारियोंको फुसलाकर धन एकत्र करना पड़ता है। ऐसा न करें तो काम ही न चले। फिर या तो मिशन त्यागना पड़े या भूखों मरना पड़े।

अब हम लोग हवाई द्वीपके निकट आ गये। जिस प्रकार दूरसे अदनकी पहाड़ियाँ सूखी सूखी देख पड़ती थीं उसी प्रकार ये भी नजर आयीं। जहाज घूमकर भीतर गया। हम लोग होनोलूलूमें उतरे। यहाँ उतरते ही मालूम हो गया कि पाश्चात्य देश छोड़कर अब प्राच्य देशमें आ गये। आज़ादीकी जगह गुलामी, अमीरीकी जगह ग़रीबी, ऊँची ऊँची अट्टालिकाओंकी जगह छोटे छोटे मकान दृष्टिगोचर होने लगे। किरायेकी गाड़ी कर हम लोग शहरके बाहर 'आइनाहाऊ' नामक होटलमें जा उतरे। भोजनका प्रबन्ध भी साधारण था—उसमेंसे शाकपात निरामिष पदार्थ निकालना कठिन था, इससे केवल रोटी आलू व दूधपर गुजारा करना पड़ा।

रात्रिभर कोकिलकी 'कूक' सुनता हुआ घरकी याद करता रहा। प्रातः काल पक्षियोंके गान तथा 'अरुण-शिखा-धुनि' सुन कर उठा। उठते ही रसाल व चम्पाके प्रसूनोंसे अठखेलियाँ करके मन्द वायु घरमें आने लगा। मैं उठकर नित्य कार्यसे निपट नीचे गया। यहाँ सभी प्रकारके भारतवर्षके वृक्ष देखनेमें आये। बड़ी देरतक आमके पेड़के नीचे खड़ा उसे प्रेमभरी दृष्टिसे देखता रहा। वृक्षने मेरा प्रेम देख एक फल भी टपका

---

aries is due...........the first vernacular newspaper printed in Bengali and the first attempt at education for Hindu girls and women.........They aided in the accomplishment of other important moral and political reforms."

" About one-tenth of all the children and youth under instruction at the present time are in Protestant mission schools."

" The Christian population has more than trebled during the past thirty years."

"A notable feature of recent years has been the mass movements, entire community's turning from their ancient faiths to Christianity."
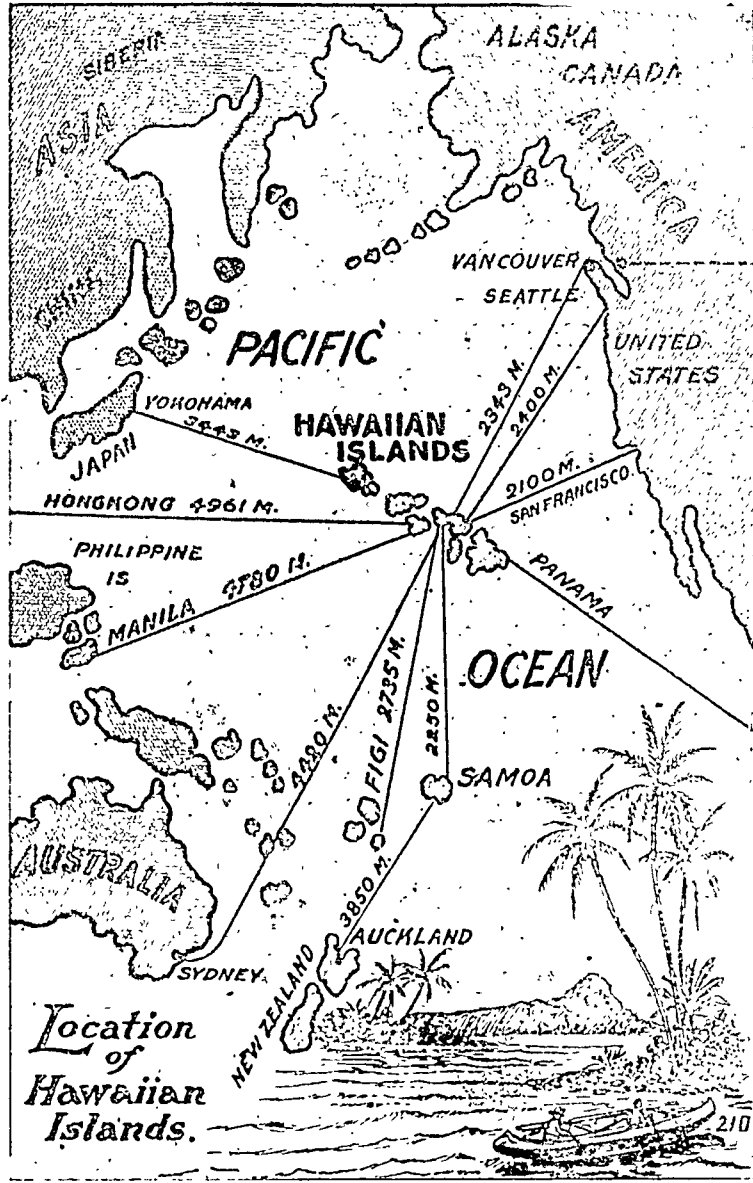
हवाई द्वीपकी स्थिति ।

दिया जिसे लेकर मैं बड़ी चाहसे खाने लगा। थोड़ी देरमें एक नारियल भी पेड़परसे गिरा। उसे भी मैंने उठा लिया और तोड़कर खा गया। चिरसंगिनी चींटियोंका भी मिलाप यहाँ हुआ। मारे प्रेमके जब तक मैं चला नहीं आया वे टेबुलसे हटी ही नहीं। मकड़ी व जाले भी यहाँ देखे। कहाँ तक कहें, ऐसा कुछ भी नहीं था जो यहाँ न देखा हो। अपराह्न तक यहाँ दिन काट तीन बजे हिलोकी ओर ज्वालामुखीके दर्शनको चला।
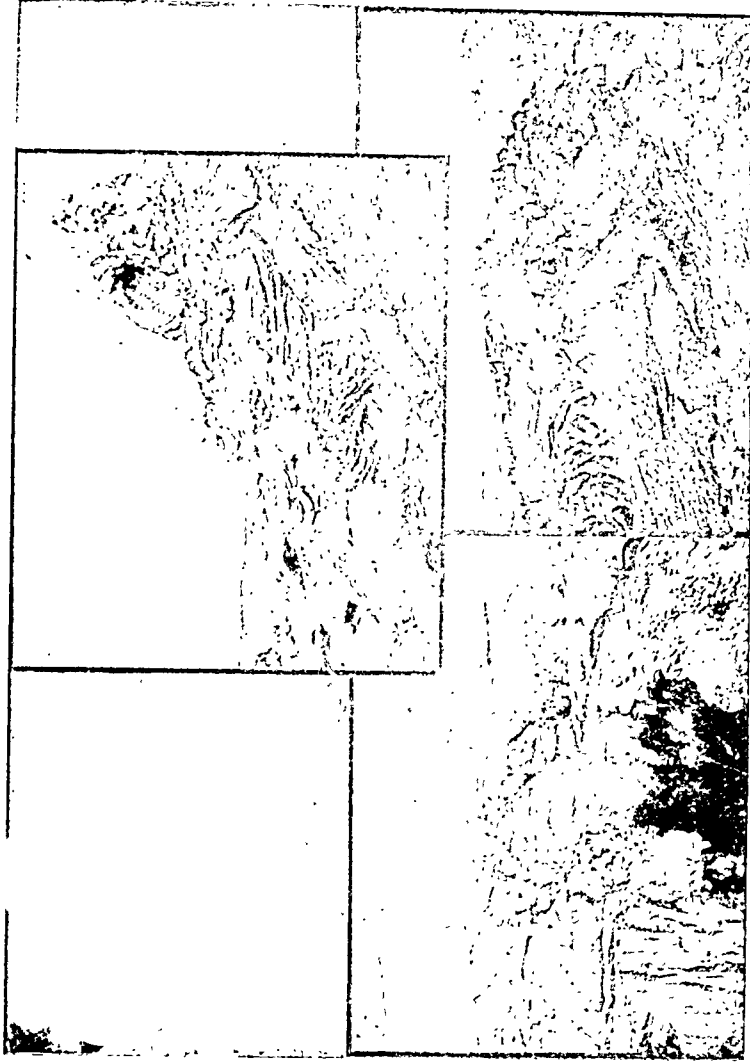
ज्वालामुखी निर्गलित पदार्थ

(पृष्ठ १५२,१५५)

हवाई द्वीपकी कुमारी । नाना प्रकारके आमोद-प्रमोद, मछली पकड़ना (पृष्ठ १५३)

सोलहवाँ परिच्छेद।

हवाईका ज्वालामुखी पर्वत।

ज्येष्ठ मासकी ८ वीं तारीख(२२मई) को ३ बजे संध्याके समय होनोलूलू बन्दरसे 'मोनालिया' जहाज़पर चढ़ 'हिलो'के लिये प्रस्थान किया। यह नगर हवाई द्वीपमालाके हवाई नामी द्वीपपर स्थित है और होनोलूलूसे, जो ओआहू (Oahu) द्वीपपर है और इस द्वीपमालाका केन्द्रस्थल (राजधानी) भी है, प्रायः एक मील है। जहाज़को यहाँ आनेमें १६ घंटे लगते हैं। इस हवाई द्वीपका क्षेत्रफल ४०७५ वर्ग मील है व यहां ५५३८२ मनुष्य रहते हैं। इस द्वीपपर यात्री लोग 'कीलामाऊ' ज्वालामुखीके दर्शन करनेके लिये आते हैं। प्रकृतिके अपूर्व रूपोंमें पृथ्वीके गोलेपर इसे अत्यन्त विचित्र कहना अनुचित न होगा। यह रूप क्या है, इसके दर्शनोंके लिये यात्री किस भाँति आते हैं, प्रकृतिने इस अपने सर्वोत्तम रूपके मन्दिरके रास्तेको कैसा विलक्षण व मनोहर बनाया है–इन्हीं बातोंका दिग्दर्शन यहाँ कराया जायगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल आँख खुलते ही जहाज़परसे पर्वतमाला देख पड़ने लगी। हमारा छोटा जहाज द्वीपके छोरसे प्रायः एकाध मीलकी दूरीसे ही तेजीके साथ अपने निर्दिष्ट स्थान हिलो बन्दरकी ओर चला जा रहा था। बन्दर भी इस समय देख पड़ने लगा था पर वहां पहुंचनेमें अभी घंटे आधे घंटेकी देर थी। मैं झटपट बिस्तरेसे उठा और नित्य-क्रियासे निपट एवं कपड़े पहिन कलेवा करने चला गया। भोजनालयमेंसे कुछ खा पीकर असबाब सम्हाल जहाज़की छतपर आया। अब जहाज़ बिलकुल बन्दरके समीप आगया था,थोड़ी देरमें यह बन्दरपर जा लगा। मैं भी अपना बोरिया-बसना सम्हाल जहाज़परसे उतर हवा-गाड़ीपर सवार हुआ। यह गाड़ी मुझे नगरके बीचमेंसे लेकर चली। इस छोटेसे नगरमें भी साफ-सुथरी सड़क व पक्की बढ़िया पटरी देख स्वराज्यके प्रभावका ध्यान हो आया। यह नगर क्या एक छोटासा कसबा है जिसमें २२५४५ मनुष्य रहते हैं। मकान सब साफ़ अच्छे प्रायः लकड़ीके बने हैं–यहाँ उत्तम उत्तम दूकानें हैं, बैंक है, दैनिकपत्र भी यहाँसे निकलता है। गिरजाघर, मन्दिर, स्कूल तथा उत्तम साफ हरित उद्यानोंसे नगर रमणीक जान पड़ता था। एक उद्यानमें लड़कोंके खेलनेका प्रबन्ध था। यहां कई प्रकारके झलुये तथा अन्य कई ढंगके जी-बहलावके सामान थे––अनेक बालक तथा बालिकाएँ आमोद-प्रमोदमें समय व्यतीत कर रही थीं। इसे देख सभ्यताके इस निर्भ्रान्त सिद्धान्तकी याद आ गयी कि जीवित जातियाँ, जो संसारमें उन्नति करना चाहती हैं, अपनी सन्‍को हृष्ट-पुष्ट बनाने, उनके दिल, दिमाग़ तथा शरीरको एक सा उन्नत तथा करनेमें आगा-पीछा नहीं करतीं। वे शिक्षा व स्वास्थ्यपर धन व्यय करना रखनेसे अच्छा समझती हैं, इसीलिये बालकोंकी उन्नतिपर व्यय किया

बोये धान्यकी भाँति फूलता फलता तथा दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। यह सत्य है कि बालकोंकी उन्नति देश व जातिकी उन्नति है इसी लिये किसी नगर वा देशकी पाठशालाको उस जातिकी गर्मी व जीवनका मापक यन्त्र कहें तो अनुचित न होगा। अनुभवी लोग केवल पाठशालाको ही देख कर जातिकी अवस्थाका पता लगा लेते हैं।

इस छोटेसे कसबेमें भी मोटरोंकी भरमार थी। एक दूकानमें टाइप राइटर व दूसरीमें बाइसिकिल भी देख पड़ी। यहाँ अधिकांश मनुष्य जापानी ही थे। बहुतसे वर्णसंकर भी होंगे। इस द्वीपमालाको यदि जापानका उपनिवेश कहें तो अनुचित न होगा, इसी कारण इसपर जापानका दाँत लगा है।

नगरके भीतरसे घूमता हुआ मैं अब नगरके बाहर चला आया। यहाँका सौन्दर्य-वर्णन करना असम्भव है। यहाँकी भूमि ऐसी उर्वरा है कि जिसका ठिकाना नहीं। एकके ऊपर एक वृक्ष, पौधा, फलफूल मानों गिरे पड़ते हैं। पथिकोंको जिस प्रकार बंगालमें वनस्पतिकी अधिकता देख पड़ती है उसी प्रकार यहाँ भी देख पड़ी। प्रायः वृक्ष, लतागुल्म भी उसी जातिके हैं जैसे कि बंगालमें हैं। आम, अमरूद, ताड़, केला, गुलाचीन, कनैल तथा भारतवर्षके और भी अनेक वृक्ष देख पड़े। इनके अतिरिक्त पहाड़ी जगहोंमें जो लता-गुल्म, सुम्बुल व फर्न देख पड़ते हैं उनकी तो यहाँ अत्यन्त ही बहुतायत है, सड़कको छोड़ और सब भूमि इन्हींसे भरी हुई मिलती है।

ये कृषिप्रधान द्वीप हैं। यहाँकी प्रधान उपज ईख व अनन्नास है। ईख यहाँ बड़ी उत्तम होती है। इसकी कई जातियाँ हैं किन्तु प्रायः सभी लाल गन्ने हैं और प्रायः १॥ इंचसे २ इञ्च तक मोटे व बड़े लम्बे होते हैं। चीनीका कारखाना देखनेके उपरान्त इसका विवरण विस्तारसे लिखूंगा, अभी इतना ही कहदेना अलम् है कि यहां उत्तम चीनी बनानेका व्यय ५० डालर फी टन पड़ता है—अर्थात् कोई १५० रुपये व्यय करनेसे २७ मन चीनी तैयार होती है। इस मोटे हिसाबसे कोई ५॥) मन चीनी पड़ी। यह ईखसे तैयार की हुई चीनीका परता है। अमरीकामें इस समय चीनीका भाव ९० डालर टनके लगभग है अर्थात् १०) मन। इस हिसाबसे ४॥) रुपये मन फायदा हुआ किन्तु यहाँसे अमरीका तक ले जानेका भाड़ा भी इसमें जोड़ना होगा।

अनन्नास भी काट छील कर टीनमें बन्द किया जाकर बाहर भेजा जाता है। रास्तेमें हमें प्रायः इन्हीं दो पदार्थोंकी खेती देख पड़ी। कहीं कहीं अंगूरकी लता भी देख पड़ी। यहां भारतवर्षके सदृश लतामें ही अंगूर लगते हैं। पर कैलिफोर्नियामें अंगूरकी लता नहीं होती, वहां जमीनपर ही छोटे छोटे वृक्षोंमें अंगूरके खोशे लगते हैं। थोड़ी दूर आगे चलनेके बाद कृषिक्रमका अन्त हुआ किन्तु सड़कके दोनों ओर सघन वन ही वन देख पड़ता था, बीचमेंसे हमारी गाड़ी चली जाती थी। वनमें जंगली वृक्षों व लता-गुल्मोंकी बहुतायत थी जैसा कि ऊपर लिख आये हैं। प्रायः दो घंटे [illegible]नेके बाद ११ बजे मैं 'किलाऊ'* ज्वालामुखीके पास पहुंच गया व "[illegible]नो हाउस" नामक होटलमें उतरा। स्नान इत्यादिसे निपट भोजन कर बाहर [illegible]या देखता हूं कि चारों ओर जगह जगह पर पृथ्वीमेंसे धुआँ निकल रहा

* [illegible]ilauea.

किलाऊ ज्वालामुखीका दृश्य [पृ० १५४]

है, मालूम पड़ता था कि जंगलमें आस पास यात्री उतरे हों व रसोई बना रहे हों किन्तु बात कुछ और ही थी। यह पृथ्वीके भीतरसे—प्रकृतिकी रसोईसे—धुआँ निकल रहा था जो वस्तुतः भाफ थी। इसे देखता हुआ मैं एक बालू मैदानमें पहुंचा। किन्तु यहां कुछ देख नहीं पड़ा। गाड़ी वालेसे पूछा, भैया यहाँ क्यों लाये हो? उसने उतरनेको कहा व ले जाकर दो तीन गड़हे दिखाये। ये गड़हे झावेंके सदृश पत्थरोंके थे, पूछनेसे ज्ञात हुआ कि एक समय, कुछ दिन हुए, ज्वालामुखीसे गले हुए पदार्थ बहकर इस सारे मैदानमें भर गये थे। जितने वृक्ष यहाँ थे उन्हें १० फुट तक द्रवित पदार्थोंने अपने गर्भमें ले लिया था। समय पाकर जले हुए पेड़ोंकी राख व कोयला यहाँसे निकल गया, अब केवल पेड़का साँचा रह गया है। इन गड़होंको पेड़का साँचा* कहते हैं। इन्हें देख मैं होटलकी ओर लौटा। बीचमें गन्धकके गड़होंके निकट पहुंचा। यहाँ गन्धक जमा हुआ था व बहुत गड़होंमेंसे भाफके साथ भी निकल रहा था। एक जगहसे मैं गन्धक निकालने लगा किन्तु भाफ वहाँ इतनी उष्ण थी कि हाथ जल गया, फिर भी मैंने थोड़ा सा गन्धक निकाल ही लिया।

संध्याके चार बजे ज्वालामुखी देखने चला। मोटर गाड़ीने मुझे ज्वालामुखीके तटपर पहुंचा दिया। यह एक बड़ा भारी गह्वर प्रायः एक मीलके घेरेका है व गहिरा भी ५०० फुटसे कम न होगा। यह बिलकुल धुएंसे भरा था। कुछ देख नहीं पड़ता था, केवल "खच पच खच पच" आवाज आती थी। मेरे साथी पहिलेसे यहाँ आ गये थे। मैंने पूछा कि क्या ज्वालामुखी यही है? उन्होंने उत्तर दिया, ठहरो अभी देख पड़ता है। थोड़ी देरमें धुआँ हटा तो जो कुछ देखा उससे चकित हो गया। कल्पना कीजिये कि एक बड़े भारी तालावमें, जैसे रामनगरमें महाराजका तालाव, गला हुआ सोना या लोहा भरा हो और वह "खुदबुद खुदबुद" चुरता हो, बस यही यहाँ भी था। सतहके ऊपर शीघ्र शीघ्र काली मलाई जम जाती थी जो पल पलपर फटती थी व सावनके काले मेघमें जिस प्रकार भूलभुलैयाँकी रेखाके समान विद्युत्-प्रकाश होता है वही समा यहाँ भी था। कभी कभी जब सारीकी सारी मलाई फट जाती थी तब सारा तालाव उबलता हुआ देख पड़ता था। यहाँसे जो भाफ या धुआँ उठ रहा था उसमेंसे गन्धककी बड़ी तेज महक उठ रही थी और नाक-आँखमें भरती जाती थी तथापि यहाँसे हटनेका जी नहीं चाहता था। घंटों तक यही दृश्य देखता रहा, फिर यहीं, अग्निकुण्डके तटपर, सन्ध्योपासन कर घर लौटा। रास्तेमें कई और ठंढे ज्वालामुखी देख पड़े जिनमें काले जमे हुए पदार्थके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस ज्वालामुखीसे निकले हुए गले पदार्थोंसे एक बड़ा मैदान डेढ़ कोस लम्बा एक कोस चौड़ा भरा था। यह पदार्थ देखनेमें जली ईंट अर्थात् झावेंके सदृश है या यों कहिये कि सोना चाँदी गलानेके उपरान्त सोनारकी घरिया भीतर जिस प्रकारकी हो जाती है उसी प्रकारका यह सारा पदार्थ था। रात्रिको चन्द्रदेवके अस्त होनेके उपरान्त इस गह्वरके ऊपरका सारा धुआँ रक्तवर्ण देख पड़ने लगा। सारा मैदान धुँधुआती हुई अग्निके प्रकाशसे धीमे धीमे लाल रंगसे रंग गया। इस दृश्यको भी देखकर मैंने शयन किया।

---

* Tree mould.

प्रातःकाल उठकर यन्त्रशालामें गया जो इसी होटलके निकट है। यहाँ भूकम्प-मापक-यन्त्र देखा जिसका अँगरेजी नाम साइसमोग्राफ़* है। ये आले एक ठोस पक्के चबूतरेपर रखे रहते हैं जो नीचे पहाड़ या ठोस चट्टानपरसे निर्मित होता है। इसमेंसे एक डोरीके सहारे एक और लम्बा यन्त्र लटकता है। सामने एक गोल ढोल रखी होती है जो घड़ीके सहारे घूमती है। पृथ्वीके भीतर ज़रा सा भी धक्का लगनेसे जो कम्पन होता है उसकी लहर आगे-पीछे, दहिने-बायें, ऊपर-नीचे प्रत्येक दिशामें जाती है व प्रायः संसारमें सभी जगह उसका असर होता है किन्तु उसका अनुभव बड़े सूक्ष्मयन्त्रके बिना नहीं हो सकता। यह यन्त्र उस कम्पनसे काँपने लगता है किन्तु लटका हुआ लम्बा यन्त्र स्थिर रहता है व एक बालके सदृश सुईसे गोल ढोलपर जिसके ऊपर विशेष धुआँ लगा कागज़ होता है एक विशेष रेखा बनाता जाता है। इसी रेखासे वैज्ञानिक लोग इसका पता लगाते हैं कि भूकम्पका केन्द्र यन्त्रालयसे कितनी दूर तथा किस ओर है। इसीके साथ आन्दोलन करने वाली शक्तिका भी पता लगाते हैं। यहाँ एक चित्र देखा जिसमें संवत् १९६२ के दार्जीलिंग वाले भूकम्पका लेख टोकियो-जापानकी यन्त्रशालामें लिखा गया था। यहाँके अध्यापकसे पूछनेसे ज्ञात हुआ कि संसारमें कहींपर भी भूकम्प आवे, यह यन्त्र उसका पता लगा लेगा। इस विशेष यन्त्रका आविष्कार जापानियोंने किया है ऐसा मुझे बताया गया। किन्तु जर्मनों व रूसियोंने पीछेसे इसकी बहुत कुछ उन्नति की है। इस समय सबसे उत्तम यन्त्र रूसी है। यहाँ यह भी बताया गया कि इस यन्त्रके आविष्कारसे भूगर्भ-विद्या वालोंका यह सिद्धान्त कि भूगर्भ अभी द्रवित अवस्थामें है, बदल गया है। अब वे उसे ठोस समझने लग गये हैं क्योंकि द्रवित पदार्थमेंसे इस प्रकार धक्केकी लहर नहीं चल सकती। यह वैज्ञानिकोंकी सत्यप्रियता है कि वे सचाईको माननेके लिये हर समय तैयार रहते हैं, सम्प्रदायियोंकी तरह नहीं कि बाइबिल, कुरान या वेदमें लिखी होनेके कारण असम्भव बात भी सत्य ही है। इनमें हठधर्म नहीं है, यदि होता तो सच्चे ईश्वर-ज्ञानकी प्राप्ति भी दुस्तर हो जाती। असलमें निर्भ्रान्त ज्ञानका नाम ही 'वेद' है और इसीके आविष्कर्त्ता सच्चे वेदोंके द्रष्टा ऋषि हैं।

यहाँसे लौट चलनेकी तैयारी की कि इतनेमें होटलकी पुस्तकपर कुछ विचार लिखनेको कहा गया। मैंने कलम उठा अपनी गंवारी देशी भाषा व असभ्य देवनागरी अक्षरोंमें निम्नलिखित छोटासा विचार लिख दिया। हमारे साहब हिन्दू लोग हँसेंगे कि यह अजब उल्लू है कि हवाईद्वीपमें भी हिन्दीमें लिखता है, भला इसे पढ़ेगा कौन ? किन्तु उन्हें अलमोड़ा, बदरिकाश्रम इत्यादि, या अन्य किसी जगह ही सही, योर-अमरीका† निवासियोंको अंगरेजी, जर्मन, फरासीसी भाषाओंमें लिखते देख हँसी नहीं आती, उलटे उनकी नक़ल कर वे स्वयम् अंगरेजीमें लिखने लग जाते हैं। इसीका नाम है पराधीनताकी छाप।

"यह बड़े आनन्दका विषय है कि मुझे संसारके भिन्न भिन्न देशोंके देखनेका सौभा-

---

* Seismograph.

† (Eur-America = Europe and America = Western people—योर-अमरीका, योरप व अमरीका = पाश्चात्त्य देशनिवासी).

ग्य प्राप्त हुआ है। हिलोके "पेली" नामी ज्वालामुखीके दर्शनसे मुझे वह आनन्द प्राप्त हुआ जो 'नियागरा'के जलप्रपातके दर्शनोंसे हुआ था। इस प्रकार प्रकृतिके भिन्न भिन्न रूपोंके दर्शनसे मनोविकासमें कितनी सहायता मिलती है कहना दुस्तर है। पाश्चात्य सभ्यता व गौरवमें यह देश-विदेश-भ्रमण बहुत सहायक हुआ है। मेरी यह बड़ी इच्छा है कि पूर्वीय देशनिवासी भी दिन प्रति दिन अधिक अधिक संख्यामें देश-विदेश-की यात्राको निकलें। हिन्दुओंके जीवनमें देशाटनका बड़ा भाग है और वह कर्तव्य भी समझा जाता है। यदि यही भाव भारतकी चहारदिवारीके बाहर भी भारतनिवासियों-को ले जावे तो क्या ही उत्तम हो। मैं इस होटलमें बड़े सुख व आरामसे रहा, यहाँ हर प्रकारकी सुविधा थी।

हस्ताक्षर—
१० ज्येष्ठ १९७२

होटलसे चल जहाज़की ओर रवाना हुआ। रास्तेमें एक जगह कटहलका वृक्ष देखा जिसमें कटहल फले थे, तोड़कर तरकारी बनानेका जी चाहा पर मनको रोक चला गया। रास्तेमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। जहाज़के किनारे यात्रियोंकी भीड़ लगी थी, अधिकांश जापानी यात्री ही देख पड़ते थे। ये लोग अपनी पोशाकमें थे, फूलों तथा पत्तोंकी माला पहिने हुए थे। जहाज़के नीचे चटाई बिछा बिछाकर बैठते थे। इन्हें देख द्वारका जाने वाले जहाज़पर हिन्दू यात्रियोंका चित्र आखोंके सामने आ गया। प्रस्थानके समय आबालवृद्ध-वनिता सभी लोग रोकर घड़ी घड़ी झुक झुक जुहार करते थे, इसे देख मुझे भी अपने इष्ट मित्रोंसे मुम्बईसे विदा होते समयका दृश्य याद आ गया। आँखोंमें जल भर आया, मुशकिलसे तबीयत रोक जहाज़के ऊपर जी बहलाने चला गया। किसी विशेष घटनाके बिना ही हम होनोलूलूमें आज फिर लौट आये।

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

होनोलूलूमें चार दिन ।

हिलो अर्थात् ज्वालामुखीके दर्शनोंसे लौटनेके उपरान्त इस होनोलूलू नगरमें प्रायः चार दिन तक ठहरा । इस बार नगरके बीचमें बैसडेल होटलमें रहा । यहाँ डेढ़ डालर ४॥) रुपये प्रति दिन किराये पर अच्छा कमरा मिला था । इन चार दिनोंमें एक चीनीका कारखाना, अक्वेरियम् अर्थात् मछली घर, संग्रहालय (म्यूजियम) व पुस्तकालय देखे जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे करता हूं—

चीनीका कारखाना।

इस द्वीपमालाकी खास कृषि या यों कहिये कि प्रधान जीविकाका सहारा चीनीसे है । प्रायः सभी कारखाने बड़े व विस्तृत रीतिपर बने हैं व सभीमें धनका प्रधान अंश अमरीकानिवासियोंकी जेबमेंसे आता है, इसी कारण आयका भी विशेषांश उन्हींके जेबोंमें जाता है । किन्तु इस पर भी मजदूरीका भाग हवाई देशनिवासियोंको ही मिलता है ।

हवाई देशनिवासियोंकी कोई विशेष जाति हो, ऐसा न समझना चाहिये क्योंकि अब यहाँपर कई जातियां बस गयी हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

हवाईअन	२६०४१
एशियाटिक हान	३७३४
पोर्टोरिकन	४८९०
अन्य काकेशियन	१४८६१
जापानी	७९६७४
हबशी व उनके संकर	६९५
काकेशियन हान	८७७२
पोर्चुगीज	२२३०३
स्पेन निवासी	१९९०
चीनी	२१६७४
कोरियन	४५३३
अन्य	२७३६
	१९१९०९

उपर्युक्त तालिका देखनेसे आपको ज्ञात हो गया होगा कि १९१९०९ मनुष्यों-में हवाई बेचारे २६०४१ ही रह गये हैं अर्थात् कुल जनसंख्यामें १३·५ फी सैकड़े उनकी संख्या है । यहाँ जापानियोंकी संख्या बहुत बढ़ रही है । इस समय भी उनकी

संख्या ७९६७४ है अर्थात् कुल जनसंख्यामें ४१.५ फी सैकड़े। जिस प्रकार यह संख्या बढ़ रही है उससे संयुक्त राष्ट्रको भय होता है कि कुछ दिन बाद यह द्वीपमाला जापानी मनुष्योंसे भर जावेगी। तब कदाचित् जापान इसे अपना उपनिवेश बताकर इसपर अपना अधिकार जमाना चाहेगा। इस द्वीप तथा संयुक्त राष्ट्रमें यदि आप किसीसे बातें करें तो आपको पता लग जावेगा कि अमरीका व जापानमें उसी भांति स्वाभाविक शत्रुता है जैसी कि युद्धकालमें जर्मनी व इंग्लिस्तानमें दीख पड़ती थी। अथवा कुछ और पहिले फ्रांस व इंग्लिस्तान में थी। यह देखकर कि युद्धके दिनोंमें जापानने त्रिमूर्ति मित्रदलका साथ दिया था, इस भ्रममें पड़ना भूल है कि जापान व त्रिमूर्ति मित्रदलका स्वार्थ एक ही है। वस्तुतः इस संसारमें कोई भी किसीका मित्र नहीं है। निस्स्वार्थ मित्रता केवल स्वप्न मात्र है। "सुर नर मुनि सबकी यह रीती, स्वारथ लागि करैं सब प्रीती"। इङ्गलैण्डके चिरशत्रु फ्रांन्सका इङ्गलैण्डका पक्ष लेकर लड़ना क्या यह दिखाता है कि फ्रान्सके हृदयसे इङ्गलैण्ड-निवासियोंका बैर मिट गया? कदापि नहीं। जब तक इङ्गलैण्डकी राजधानी लन्दनके हृदयमें ट्रफलगर स्क्वायर विद्यमान है तब तक क्या इङ्गलैण्डनिवासी उस दिनको भूल सकते हैं जिस दिन सौ वर्ष पूर्व वाटरलूके मैदानमें इङ्गलैण्डका सितारा आसमानमें चमका था व फ्रान्सके नसीबका चांद सेण्ट हेलिनाके टापूमें इङ्गलैण्डके प्रताप-सूर्यके प्रकाशमें मन्द पड़कर मुर्झा गया था? कदापि नहीं।

इसी प्रकार रूसका भी जो कि इङ्गलिस्तानका स्वाभाविक शत्रु है व जिससे एक न एक दिन यदि लड़ाई हो जाय तो आश्चर्य नहीं उस समय इंग्लैण्डका साथ देना केवल स्वार्थकी सिद्धिके लिये ही था।

यदि जर्मनीको ही लीजिये तो क्या देख पड़ता है कि इस देश व इङ्गलिस्तानमें बड़ा एका है, आधे अंगरेज़ोंकी रगोंमें ट्युटन रुधिर प्रवाहित है। इङ्गलैण्डका राजवंश भी हनोवर घरानेके नाते जर्मन ही है। स्वयम् इंग्लैण्डके सम्राट् व जर्मन कैसर फुफेरे भाई हैं। अभी संवत् १९२७ में ही छिपे छिपे व उसके पूर्व नेपोलियनके मुकाबिलेमें खुल्लम खुल्ला इङ्गलिस्तानने जर्मनीको मदद दी थी। इतना ही नहीं इंग्लैण्डने जहाँ पहिले कभी कभी तुर्कीकी मदद भी की थी वहाँ आज वह उसके साथ शत्रुका सा व्यवहार करता है।

ऊपरकी बातोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि इस मित्रता व शत्रुताकी तहके नीचे कोई भारी भेद छिपा है। वह क्या है, सुनिये---सत्रहवीं शताब्दीमें स्पेनके शशिको ग्रहण लगनेके उपरान्त राजनीतिक सत्ताके आकाशमें केवल दो देदीप्यमान नक्षत्र रह गये---एक फ्रान्स, दूसरा इङ्गलैण्ड। संवत् १८७२ में जब कि नेपोलियनका भाग्य मन्द हुआ और वह पकड़ कर सेण्ट हेलिनाके टापूमें भेज दिया गया तबसे नभोमण्डलमें केवल इङ्गलिस्तानका भाग्य-चन्द्र द्वितीयाके वक्र शशिकी भांति शोभायमान हुआ बढ़ते बढ़ते यह चन्द्र पूर्ण कलाको प्राप्त हो गया। संसारमें प्रसारका जितना स्थान था सबमें इसकी ज्योत्स्ना छा गयी। सौ वर्ष पर्यन्त इसने संसारपर हुकूमत की। बढ़ते बढ़ते इस देशका व्यवसाय इतना बढ़ा कि संसारमें कोई भी देश इसके मुकाबिलेकी ताब न ला सका। भारतकी सुवर्ण-भूमिने इस देशको मालामाल कर दिया।

इधर यह होता ही था कि दूसरी ओर नये पौधेका बीजारोपण हो गया। फ्रेडरिक दि ग्रेट, तथा बिस्मार्कके प्रभावसे प्रशियाकी छोटी छोटी रियासतें मिलकर जर्मन साम्राज्यके रूपमें संगठित होने लगीं। संवत् १९२८ में फ्रान्सपर विजय प्राप्त कर व उसीकी बदौलत हर्जानेकी बड़ी राशि पाकर यह राज्य बढ़ने लगा। इङ्गलैण्डकी देखादेखो इसे भी अपने व्यवसायके बढ़ानेका चसका लगा और जहां इङ्गलैण्ड एक प्रकार विभव व शक्तिके नशेके कारण जमुहाईसा ले रहा था वहाँ यह नवीन देश अपने सारे बल व मानवशक्तिका प्रयोग कर अपनी वृद्धि करने लगा, यहाँ तक कि इसकी वृद्धिने संसारको चौंधिया दिया और इङ्गलैण्डकी भी आखें खोल दीं। जिसे कल इङ्गलैण्डने पीठ ठोंक कर खड़ा किया था वही आज प्रतिद्वन्द्विता करने लगा, यही संसारकी लीला है।

जिस प्रकार अफरीका व एशियाके पश्चिमी भागको इङ्गलिस्तान अपनी मिलकीयत समझता है और वहाँकी हाटमें किसी अन्यका जाना उसे अखरता है, उसी प्रकार दक्षिणी अमरीका व प्रशान्त महासागरके द्वीपोंमें तथा चीनमें अमरीका अपना सिक्का जमाना चाहता है और अपने व्यापारका प्रसार चाहता है।

संसारके भाग्यसे जापान अफीमचियोंकी पंक्तिसे अलग हो कर दूसरे एशियाइयों को अंगडाई लेते हुए छोड़ कर पीठ झाड़-पोंछ उठ खड़ा हुआ है और कहने लगा है कि संसार पर सफेद मनुष्यों अर्थात् योर-अमरीकनोंका ठेका नहीं है, उन्हें ईश्वरके यहाँसे संसारको गुलाम बना रखनेका पट्टा नहीं मिला है। किन्तु आज यह कहनेसे ही काम नहीं चलता क्योंकि कहनेको तो चीन, हिन्द, फारस सभी कहते हैं पर इनकी सुनता कौन है। हाँ, जापानने अवश्य अपनी बात सुनानेके लिये बड़े बड़े मेगोफोन बनाये हैं जिनके द्वारा शब्दकी गति बढ़ जाती है और उसे बधिर भी सुनने लगते हैं।

यह मेगोफोन जहाज तोप व बन्दूक है और विज्ञानकी वह कला है जिसके द्वारा एक मनुष्यमें दूसरोंकी हत्या करनेकी शक्ति बढ़ जाती है। इसी वैज्ञानिक हत्याकी शक्तिसे जर्मनी अकेला संसारकी तीन बड़ी शक्तियोंसे भिड़ गया था। खूनकी देवीको खून ही अच्छा लगता है, पानीसे उसकी प्यास नहीं बुझती। इसी प्रकार संसारकी पाशविक शक्तिके सामने फिलीसफी या दार्शनिक विचारोंका काम नहीं है, नहीं तो पड़े पड़े भारत व चीनको खूब फिलासफी बघारना आता है। दर्शनोंसे पण्डितोंके यहाँ अब भी ताकके ताक भरे रहते हैं। एक एकके यहाँ कई गदहोंके बोझके बराबर ये पुस्तकें मिलेंगी किन्तु "खग जाने खग ही की भाषा। ताते उमा गुप्त करि राखा"। क्रुपकी तोपकी भाषाके सामने शान्तिपाठकी भाषा निरुपयोगी है। इसको जापानने भलीभाँति समझ लिया है, इसीसे "मरता क्या न करता" के सिद्धान्तके अनुसार उसने फिलासफीको तिलाञ्जलि दे वैज्ञानिक हत्याकाण्डकी भाषा सीखी है। जिस प्रकार व्याधको अपने शिकारके हाथमें धनुष बाण देख क्रोध आता है, उसी प्रकार इस भाषाको योर-अमेरिकासे अतिरिक्त जातिको सीखते देख तथा रणविद्यामें उसका नैपुण्य देख योर-अमरीका जापानपर क्रोधित है। इन दोनों देशोंके बीच युद्ध छिड़ जाना कुछ भी आश्चर्यजनक न होगा। योर-अमरीकानिवासी शीघ्र ही इस काँटेको निकाल फेकना चाहते हैं, यह तो स्पष्ट ही है। देखें भविष्यमें क्या होता है।

मुझे खेद है कि मैं चीनीके कारखानेका ब्यौरा बताते बताते न जाने क्या क्या बक गया, कृपाकर पाठकगण मुझे इस बेकार बकवादके लिये क्षमा करेंगे।

हवाईके चार प्रधान द्वीपोंमें सब मिलाकर १९७१ के सालमें ७१७०३८ टन अर्थात् १९६६०१२६ मन चीनी तैयार हुई। इस छोटीसी द्वीपमालामें, जिसमें दो लाखसे भी कम मनुष्य रहते हैं अर्थात् काशी नगरसे भी जहाँकी जनसंख्या कम है, वहाँ चीनीके ५५ कारखाने हैं व डेढ़ करोड़ मनसे अधिक चीनी बनती है। यह सब उन्नति गत १५ सालसे भी कममें हुई है।

जिस कारखानेको देखने मैं गया था उसमें प्रारम्भसे लेकर अन्ततक सब कार्य वहीं होता है। इसकी ओरसे ऊखकी अपनी खेती होती है जिससे यह कारखाना सात मास तक चलता है। खेतोंमें २००० मनुष्य काम करते हैं किन्तु कारखानेमें केवल ८२ मनुष्योंसे ही सब काम हो जाता है, यह यन्त्रकी सहायतासे सम्भव होता है।

जो महाशय मुझे इस कारखानेको दिखा रहे थे,वे पहिले मुझे एक जगह ले गये। यहाँपर मोटी मोटी ऊखोंसे लदी गाड़ियाँ थीं, ऊपरसे एक लोहेकी सिकड़ी, जिसमें काँटे निकले थे, मालाकी भाँति घूमती जाती थी और दोनों गाड़ियोंपरसे एक संग ऊख उतार कर जमीनपर फेंकती जाती थी। यह ऊख जलीसी जान पड़ती थी। मेरे प्रश्न करनेपर बताया गया कि पत्ती हटानेके लिये ये जलायी जाती हैं। मैंने पूछा कि क्या इस भाँति जलानेसे चीनीमें नुकसान नहीं पहुंचता, जवाब मिला कि हाँ चीनीमें भी नुकसान होता है व पत्तियाँ जल जानेसे जो खेतमें नहीं पड़तीं उससे खेत भी कमज़ोर होते हैं पर पत्तियोंके नोचनेकी बनिस्बत जलानेमें जो नोचवाईकी मजदूरी बच जाती है उससे नुकसानकी बनिस्बत लाभ अधिक ही रहता है।

ऊख रेलगाड़ियोंसे एक विशेष लोहेके चौड़े पटरेपर गिरती है। जब एक खास तौलकी ऊख नीचे गिर पड़ती है तब यह पटरा सब ऊखोंको लेकर विशेष यन्त्र द्वारा ऊपर चलता है, वहाँसे ऊख कोल्हूमें गिरती है। यह कोल्हू तीन मोटे मोटे लोहेके बेलनका होता है। बीचमें एक जगह चाकुओंका बेलन है। पहिला बेलन इन्हें तोड़ देता है, दूसरा इनमेंसे रस निकाल देता है, फिर चाकुओं वाला बेलन इन्हें काट देता है, अन्तिम बेलन रहा सहा रस भी निकाल लेता है। खोई दूसरी ओर सूखे भूसेकी भाँति निकलती है। यहाँपर यह सीधे इञ्जनमें कोयलेकी भाँति झोंक दी जाती है। पर इसका कागज़ भी बन सकता है। गो इसका कागज़ बहुत चिमड़ा नहीं होता तिसपर भी मोटा कागज या दफ्ती इसकी बहुत उत्तम बन सकती है।

ऊखमें यहाँ १०० में प्रायः १५ या १६ भाग चीनीका होता है। पेराईके बाद खोईमें एकसे कुछ अधिक भाग चीनीका रह जाता है जिसके निकालनेका यदि यत्न किया जावे तो आयसे व्यय अधिक पड़े।

रस यहाँ छाना जाता है व तौलकर पकने जाता है, पकानेके बाद—(यहाँपर मुझे दिखाने वालेने साफ साफ नहीं बताया,)—इसमें कदाचित चूना मिलाते हैं जिससे वह कुछ साफ़ हो जाता है, फिर पकाकर उसे लाल शक्करकी भाँति बना लेते हैं। बहुतसे कारखाने बस इसी लाल शक्करको ही चालान कर देते हैं। योर-अमरीकामें प्रायः पाकके काममें यही आती है। पर इस कारखानेमें इसे साफ़ करते हैं।

साफ़ करनेके लिये यह फिर गलायी जाती है। गलानेके उपरान्त हड्डीके कोयलेमेंसे यह छानी जाती है और गन्धकका धुआँ भी इसे दिया जाता है जिससे इसका रंग सफेद हो जाता है। फिर यह पकाकर गाढ़ी राबके सदृश बनायी जाती है। फिर हादी महाशयके सेण्ट्रीफ्यूगल मशीनके सदृश मशीन द्वारा राबमेंसे जूसी अलग कर ली जाती है। तब वह विशेष मशीनसे सुखा कर बोरोंमें भर बाहर भेजनेको तैयार होती है। रससे लेकर चीनी बनने तक एकसे कम भाग चीनीका और नष्ट होजाता है अर्थात् १०० मन गन्नेमें प्रायः १६ मन चीनीका भाग होता है पर चीनी कोई १४ मन तैयार होती है अर्थात् २ मन कुछ खोईमें, कुछ चोटेमें नष्ट हो जाती है। खोईवाली तो बरबाद जाती है पर चोटेवाली शराब बनानेके काममें आती है।

जहाँ तक मुझे दर्याफ्त करनेसे मालूम पड़ा सब दे लेकर कारखानेवालोंको अन्तमें एक आने प्रति सेर फ़ायदा होता है। यह कम नहीं है। मुझे खेद है कि मैंने अपने देशमें कभी इसका पता नहीं देखा है किन्तु समझमें नहीं आता कि हमें इसमें नुकसान क्यों होगा। नुकसानका कारण केवल एक ही मालूम पड़ता है अर्थात् बड़े कारखानोंका न होना। यहाँके कारखानोंके पास अपने खेत हैं, अपने चीनी व शराबके कारखाने हैं, और अपनी आढ़तमें चीनी बिकती है। यदि हम भी ऐसा ही करें तो अवश्य फायदा हो।

हमारे यहाँकी ऊखें बहुत पतली होती हैं। इसका कारण यह है कि खेतोंमें खाद नहीं पड़ती, यदि ऊखकी पत्ती भी खेतमें डाल दी जावे तो खेतको काफी खाद मिल जाय। ऊखकी जाति बनानेके लिये अच्छा बीज लेना चाहिये और उसे वैज्ञानिक रीतिसे बोना, खाद देना व सींचना भी चाहिये। यह सब उसी समय हो सकता है जब कि आधुनिक कुप्रथा मिटे अर्थात् किसानोंके पास अधिक भूमि हो जिससे उन्हें यथेष्ट उपचारके लिये काफी धन लगानेकी योग्यता हो।

यह दो प्रकारसे हो सकता है। एक तो आजकलकी ज़मींदारीकी प्रथा दूर होनेसे अर्थात् या तो ज़मींदार रहें ही नहीं या ज़मींदार स्वयम् ही कृषक बन जावें, जो दूसरी रीतिपर पहिली ही बात हो जावेगी। दूसरे, कृषक लोग एक होकर समवाय समिति बना कर परस्पर सहयोग करें।

एक मनुष्यके जोतमें बहुत भूमिके आ जानेसे अथवा जमींदारोंके स्वयम् खेतिहर बन जानेसे देशवासियोंका नुकसान नहीं वरन् लाभ ही होगा क्योंकि अधिक मनुष्य उसी खेतमें जिसे वे जोतते थे व सब झंझट उठानेपर भी पेट भर अन्न नहीं पाते थे अब नयी अवस्थामें मज़दूरकी भांति कार्य करेंगे व झंझटसे बचेंगे, सांझको मज़दूरी लेकर आनन्दसे दिन काटेंगे। दूसरी ओर खेतिहर भी अधिक भूमिके होनेके कारण खाद व कुएँ इत्यादिके लिये अधिक धन खर्च कर सकेंगे, जिसके कारण खेती वर्षापर निर्भर न रहेगी। अभी जो बेदखल होनेके डरसे छोटे छोटे किसान खेतोंको अधिक उपजाऊ बनानेमें पैसा नहीं लगाते क्योंकि वे नहीं जानते कि हमारा अधिकार कब तक खेतपर बना रहेगा, सो डर भी उपर्युक्त युक्तिसे मिट जावेगा। ज़मींदारके स्वयम् खेतिहर हो जानेपर उसे बेदखल करने वाला कोई नहीं रह जावेगा।
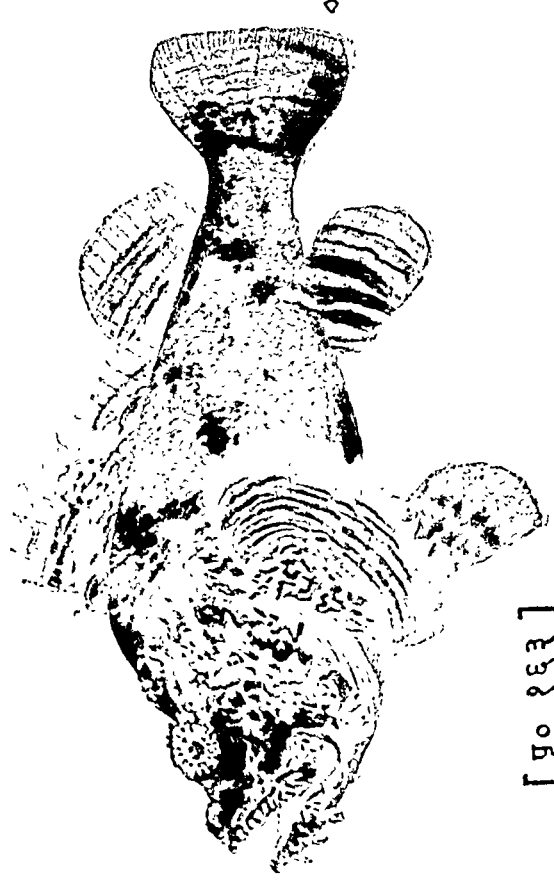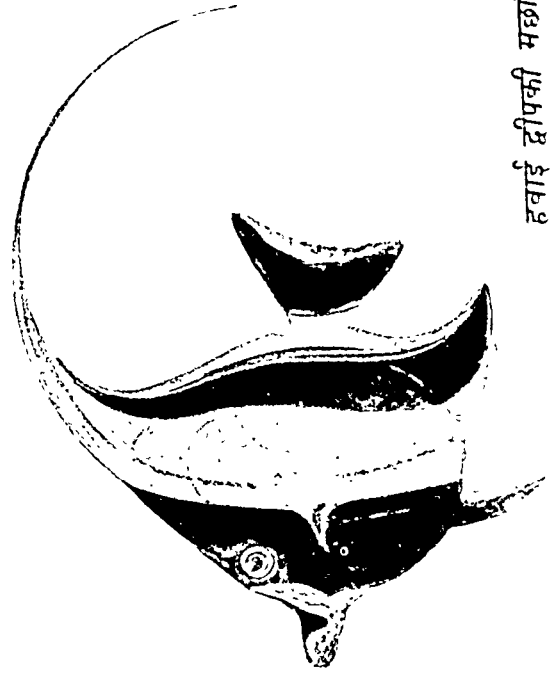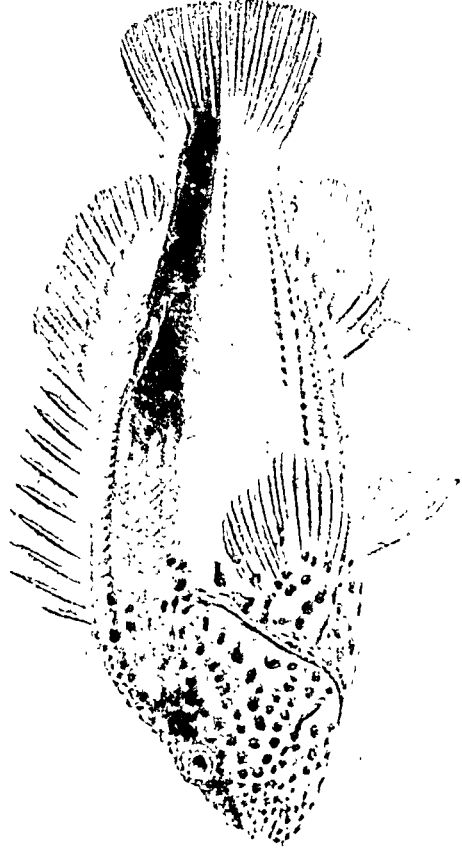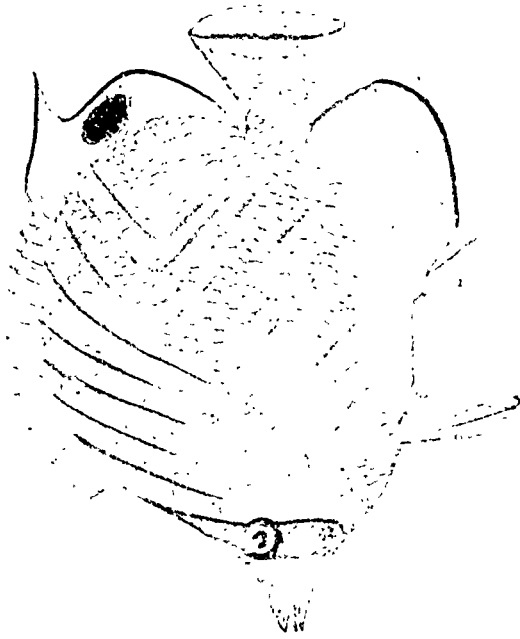
हवाई द्वीपकी मछलियां

[पृ० १६३]

नये यन्त्रोंके प्रयोगसे मनुष्योंकी आवश्यकता अवश्य घटेगी पर इसीके साथ यन्त्रोंके दर्शन मात्रसे अन्य औद्योगिक मार्ग खुल जावेंगे ।

केवल कृषिपर निर्भर रहने वाला देश संसारमें जीवित नहीं रह सकता । वस्तुको उपजा कर उसे कामके लायक बनाना भी उपजानेवालेका ही काम है। यदि ऐसा न होगा तो मलाई दूसरे मार ले जावेंगे व छाछ हमें मिलेगी जैसा कि अभी होता है।

जूट हम उपजाते हैं पर वस्त्र बुनते हैं दूसरे, रुई हम पैदा करते हैं पर कपड़े दूसरे बनाते हैं, तेलहनके लिये हम खेतोंमें मरते हैं पर तेल पेरते हैं अन्य लोग, इसी कारण हम गरीब हैं, दीन हैं, दुखी हैं, पेटभर अन्न हमें नहीं मिलता, कहत, प्लेग, मरी इत्यादि बीमारियाँ सदा सताये रहती हैं। यहां अमरीका व हवाई में ६) रुपये रोज़ मजूरी मजूरोंको मिलती है। भारतवर्षसे जो भाई मजूरीके लिये यहाँ आये हैं उन्हें भी इतना ही मिलता है। ३) रुपये रोज खाते हैं, बाकी बटोरते हैं। भारतवर्षमें अढ़ाई रुपये महीने भरमें मिलता हैं। यह क्यों? क्या हम मनुष्य नहीं हैं? नहीं, हैं तो मनुष्य, लेकिन सोते हैं जागते नहीं और अपना काम दूसरोंसे करा उनका पेट भरते हैं, खुद भूखों मरते हैं।

ऊख पेरनेमें अच्छा कोल्हू न होनेसे बहुतसा रस खोईमें रह जाता है। फिर तुरन्त रस पका गुड़ या राब न बना लेनेसे रस खट्टा हो जाता है जिससे चीनीको जगह चोटा अधिक पड़ता है। ये सब दिक्कतें अधिक धनके व्ययसे कारखानेका सब प्रबन्ध एक जगह करनेसे दूर हो सकती हैं जिसका केवल मात्र उपाय भारतकी जीवन-प्रणालीको बदलना ही है।

मत्स्यभवन (एक्वेरियम)

यह मत्स्यालय कपियोलानी उद्यानमें वैकेकी सागर तटके निकट बना हुआ है—नगरसे यह प्रायः अढ़ाई कोस दूर है किन्तु ट्रामगाड़ी इसके द्वारके सामनेसे ही होकर गुज़रती है। इस कारण नगर-निवासियों अथवा यात्रियोंको यहाँ आने जानेमें कोई असुविधा नहीं होती। संवत् १९६१ में इस मत्स्यभवनको महाशय चार्लस् एम्. कुक व उनकी पत्नीने महाशय जेम्स बी. कासेलकी दी हुई भूमिपर बनवा दिया था। इसमें मत्स्योंको एकत्र करनेका तथा उनकी देखभालका व्यय हानोलूलू रेपिड ट्रस्ट कम्पनी, चलाती है।

इस इमारतके निर्माणमें ६०००० रुपये व्यय हुए थे किन्तु इसमें बराबर वृद्धि होती रहती है। यह सप्ताहके सभी दिनोंमें दर्शकोंके लिये खुला रहता है। दर्शक २५ सेण्ट देनेसे भीतर जाकर प्रकृतिके अद्भुत रहस्यका दर्शन कर सकता है।

हवाई द्वीपके निकटवर्ती समुद्रमें प्रायः चार सौ भिन्न भिन्न प्रकारकी मछलियाँ प्राप्त हैं। इनमेंसे अनेक तो बड़े विलक्षण रूपकी हैं। इनके रङ्गको देखकर मनुष्य को चकित ही रह जाना पड़ता है। अत्यन्त सुन्दर सुन्दर रङ्ग, विचित्र विचित्र स्वरूप व मानव-विचार-शक्ति जितने भिन्न भिन्न आकारोंका मेल बना सकती है सभी यहाँके समुद्रकी मछलियोंमें विद्यमान हैं। इन जलचरोंमें स्वरूपकी जितनी ही विभिन्नता है उतना ही अधिक रङ्गोंका मेल भी है। इनके रूप-रङ्गका वर्णन करना कठिन है। इन्द्रधनुषमें कोई भी ऐसा रङ्ग नहीं है जो यहां न पाया जाता हो अथवा यों कहिये चतुर चितेरे जितने रङ्गोंके मिलानेकी शक्ति रखते हैं सभी यहाँ पाये जाते हैं। इन मीन-कुण्डोंको

देखनेसे यह मालूम होता है कि इन जन्तुओंको किसी कारीगरने चित्रित किया है किन्तु चित्रण इतना विचित्र, उत्तम, व कठिन है कि उसकी नकल करना अच्छे अच्छे मुसौवरोंके लिये कठिन ही नहीं असम्भव है। केवल लाल, पीले, नाले, काले, बूटादार, कई रङ्ग तथा विलक्षण प्रकारके चित्रोंसे सुसज्जित कहनेसे ही काम नहीं चलेगा। असलमें बिना उनको देखे उनका अनुमान कराना कठिन है।

मैंने यहाँ प्रायः दो सौ भिन्न भिन्न प्रकारकी मछलियोंके दर्शन किये। इनका जो प्रभाव मनपर पड़ा उसका उल्लेख नहीं हो सकता।

संग्रहालय (म्यूज़ियम)

पाश्चात्य सभ्यताकी यह विशेषता ह कि सभी नगरोंमें वहाँके पुरातन रीति-रिवाज, चाल-ढालको भली भांति समझने तथा दूसरोंको लुभानेके लिये बड़े बड़े संग्रहालय बनाये जाते हैं जिनमें वहाँकी सब वस्तुएँ एकत्र करके रखी जाती हैं।

इस छोटेसे नगरमें भी एक संग्रहालय है जिसके निरीक्षक पण्डितवर टी. ब्रिगम एस सी. डी. महोदय हैं-आप इसी संस्थाके सम्बन्धमें एक बार सारे संसारकी यात्रा कर चुके हैं और एक पुस्तक भी उसी सम्बन्धमें आपने लिखी है।*

संग्रहालयमें इस द्वीपमालाके सम्बन्धकी सभी वस्तुएं संगृहीत हैं। पुराने देवता, मन्दिर व बलिदानके स्थान, मकानोंके नकशे, भोजन बनानेकी रीति व पदार्थ, कपड़े-लत्ते, फल-फूल, जलचर-नभचर, पशु-पक्षी इत्यादि इत्यादि।

मुझे विशेष कर इनके कपड़े बहुत अच्छे लगे। यह एक विशेष प्रकारके वृक्ष की छाल भिगोकर पीटकर बनाये जाते थे। काठके नकशेदार बेलनों द्वारा यह छाल धीरे धीरे पीटी जाती थी जिससे यह बढ़ कर कागजकी भांति हो जाती थी। फिर इसपर पत्तोंके रंगसे बेलबूटे बनते थे। पानीमें काम आनेके लिये इनमेंसे कुछ कपड़े विशेष प्रकारकी मोम लगाकर मोमजामें बना लिये जाते थे। गर्म कपड़े इतने गर्म होते थे कि उन्हें ओढ़कर बरफमें घूमनेसे भी ठंड नहीं लग सकती।

राजाओंके लिये यहाँके लोग एक विशेष प्रकारका वस्त्र पक्षियोंके परोंको एक वस्त्रपर सटाके बनाते थे। ये वस्त्र बड़े परिश्रम, तथा समयके व्ययसे और अनेक पक्षियोंके परोंसे बनते थे। यहाँ ऐसे बहुतसे वस्त्र हैं। निरीक्षक महाशयने बताया कि ये वस्त्र चार चार हजार रुपये दे देकर खरीद करके यहाँ एकत्र किये गये हैं। ये विचित्र और विलक्षण हैं और देखनेमें बड़े सुन्दर लगते हैं।

हवाइयन हिस्टारिकल सोसायटीके एक व्यक्तिसे भी वार्तालापका अवसर मिला। आपका शुभ नाम डब्ल्यू. डी. वेस्टर महाशय है, आपसे भी इस द्वीपके निवासियोंके बारेमें बहुत कुछ मालूम पड़ा। नीचे लिखी दो चार बातें और बताकर मैं इस द्वीपमालाका वृत्तान्त समाप्त करूँगा। इस द्वीपमालाके द्वीपोंके नाम, उनका क्षेत्र फल तथा जन-संख्या यह है--

---

* इस पुस्तकका नाम है Occassional Papers of The Bernice Panahi Bishop Museum of Polynesian Ethnology and Natural History Vol. V-No 5—Report of a Journey Around the world to study matters relating to Museum, 1912

		जन संख्या	क्षेत्रफल
हवाई	...	५५३८२	४०१५ वर्गमील
माउई	...	२८६२३	७२८ ,,
ओआहू	...	८१९९३	५९८ ,,
काउआई	...	२३७४४	५४७ ,,
मोलोकाई	...	१७९१	२६१ ,,
लानाई	...	१३१	१३९ ,,
नीहाउ	...	२०८	७३ ,,
काहूलावे	...	२	४४ ,,
मिडवे	...	३५	... ...

ज़रा इस छोटेसे द्वीप-पुञ्जमें शिक्षाका प्रसार व पाठशालाओंकी संख्या देखिये ।

पाठशाला	संख्या	शिक्षक			विद्यार्थी		
		स्त्री	पुरुष	जोड़	स्त्री	पुरुष	जोड़
सर्वसाधारणकी	१६८	५७१	१४२	७१३	१२३७५	१४६१५	२६९९०
व्यक्तिविशेषकी	५१	२०६	१०१	३०७	२७३९	३५५९	६२९८
	२१९	७७७	२४३	१०२०	१५११४	१८१७४	३३२८८

अब विचार कीजिये कि काशीके नगरसे छोटी जनसंख्या वाले द्वीपमें २१९ पाठशालाएँ १०२० शक्षक, व विद्यार्थी ३३२८८ हैं। जनसंख्यापर १७ फी सैकड़े का औसत पड़ा अर्थात् यहां सभी बालकोंको पाठशालाओंमें जानेका अवसर मिलता है, इसीसे यहाँ इतनी उन्नति है ।

यहाँके व्यापारका हाल भी सुनिये। संवत् १९७१ में यहाँसे मालकी रफ्तनी ४१५९३८२५ डालरकी हुई व आमदनी ३२०५५९७० डालरकी अर्थात् इस देशने माल अधिक भेजा व मंगाया कम। बाकी रुपये घरमें आये जिससे देश धनी हुआ ।

मोटी मोटी वस्तुएँ ये हैं--

लाल शक्कर ३२१०६०११ डालरकी
सफेद चीनी १०७९९०९ ,,
फल व मेवा ४७८३५८३ ,,

अन्य वस्तुए छोटी छोटी हैं। (डालर-लगभग तीन रुपये दो आने)

राष्ट्रीय करसे यहाँकी आय ३९२५१८७ डालर संवत् १९७१ में हुई व व्यय ४२६२८६३ हुआ अर्थात् आयसे व्यय अधिक हुआ, यह आश्चर्यकी बात नहीं है। सभी जीवित देशोंमें ऐसा ही होता है। जनतापर कर उतना ही लगाया जाता है जितना साधारण व्ययके लिये आवश्यक होता है। विशेष व असाधारण व्ययके लिये क़र्ज़से काम चलाया जाता है।

११६
११८
१२०
१२२
१२४
१२६
१२८
१३०
४४
४२
४०
३८
३६
३४
३२
म ङ्गो लि या
मुकद्न
लिआओयांग
पीकिंग
अन्तुंग
डायरन
पोर्टआर्थर
हिलियो
स्यूल
फूसन
नागासाकी
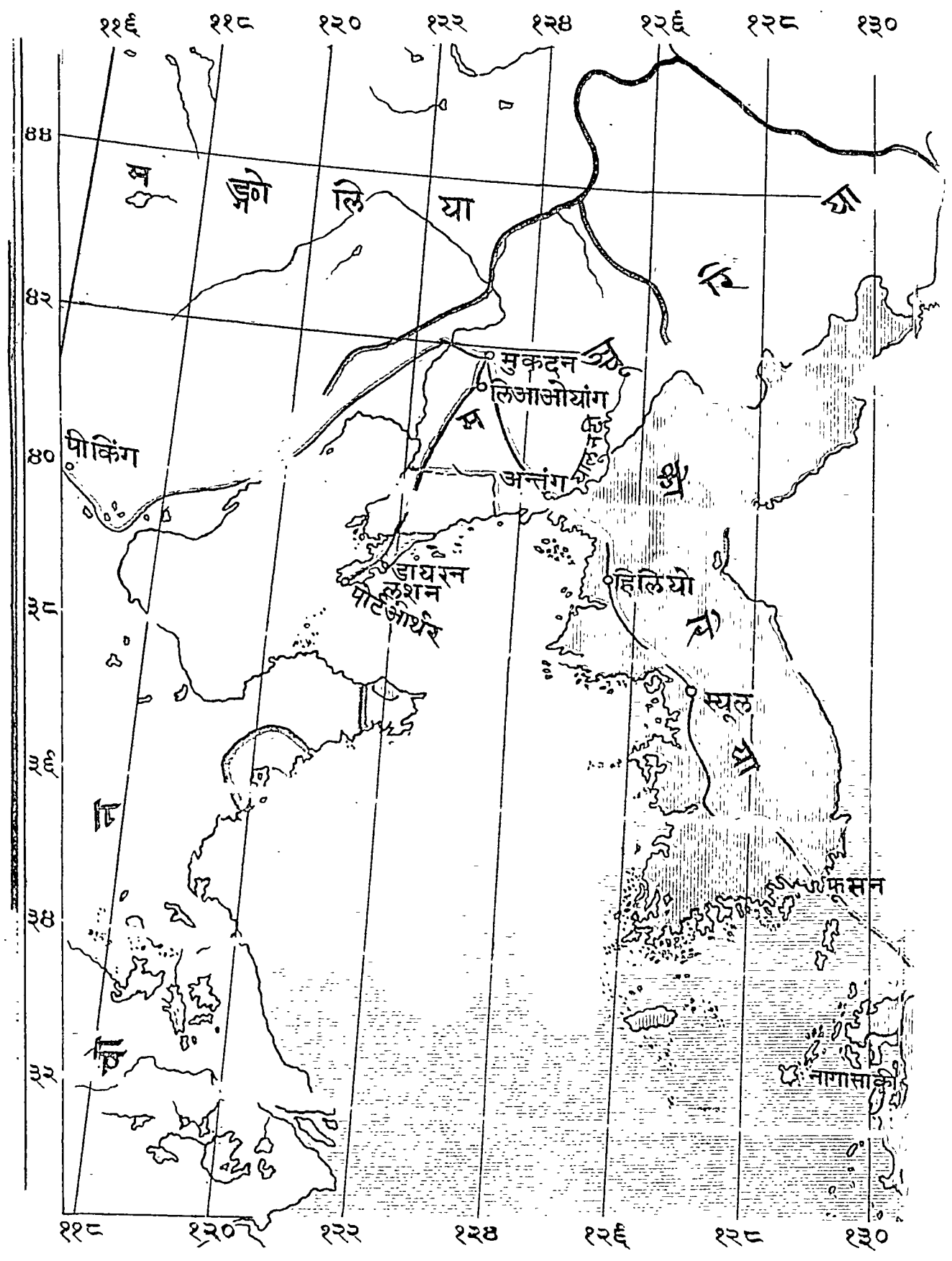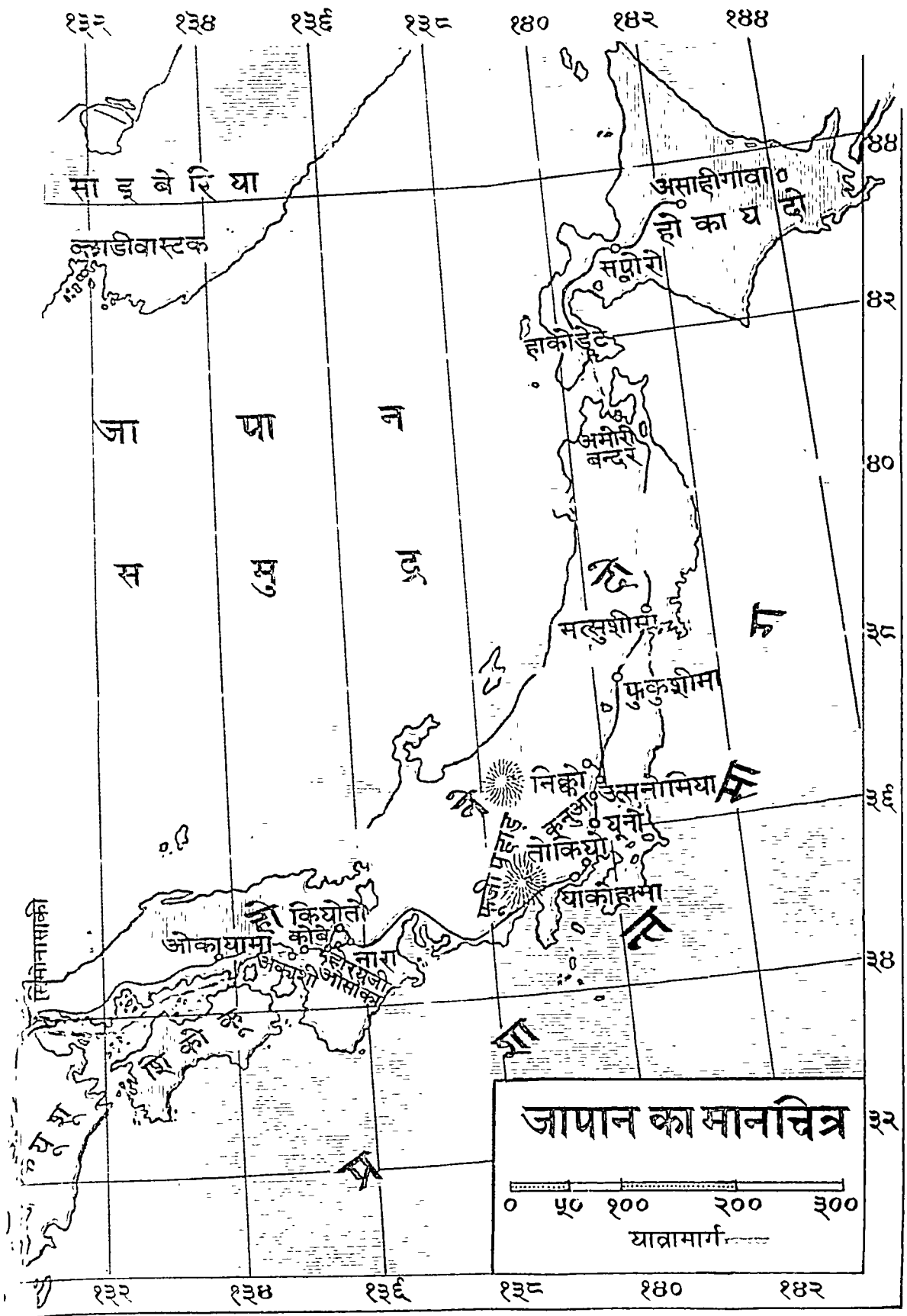
बङ्गालआर्ट इरिजो प्रि: लि: कलकत्ता।

तृतीय खण्ड—जापान ।

पहिला परिच्छेद।

नवीन एशियाका स्वाधीन शिशु।

यूरोप-अमरीकाके अन्तिम हवाई द्वीपको भी छोड़ यद्यपि हम नित्य ही पश्चिमकी ओर आगे चले जाते हैं तो भी पहुंचेंगे पूर्वमें। वस्तुतः पृथ्वी जैसे गोल पदार्थमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कुछ भी नहीं है, किन्तु संकेतके लिये चीन, जापान तथा इनके निकटस्थ द्वीपपुञ्ज, भारत, अफ़गानिस्तान, फारस, अरब और मिश्र इत्यादिको पूर्वीय देश तथा इनके अतिरिक्त सभीको जहां योर-अमरीकाका प्रभाव पहुंचा है पाश्चात्य देश समझ लेना चाहिये।

वैसे तो कहीं भी खड़े होकर विचारिये तो जिस ओर सूर्य प्रातःकालमें उदय होता है उस ओरके देश पूर्व दिशामें होंगे और जिधर सायंकालमें सूर्य अस्त होगा उस ओरके देश पश्चिम दिशावाले देश होंगे। किन्तु आजकलकी बोलचाल-में ये 'प्राच्य' और 'पाश्चात्य' शब्द एक प्रकारके सांकेतिक शब्द बन गये हैं और इनका अर्थ बहुत लोगोंने यह समझ रक्खा है कि जहां जहांकी सभ्यतामें सांसारिक वस्तुओंका प्रभाव न पाया जाकर केवल आध्यात्मिक विचारोंका ही प्रभाव मिले उसे प्राच्य समझना और जहांका सामाजिक जीवन केवल सांसारिक उन्नति या विभवसे प्रेरित होकर चले उसे पाश्चात्य समझना चाहिये। यह समझते हुए बहुतोंका मत है कि वर्त्तमान देशोंमें प्राच्य शब्दसे केवल भारतका ही ग्रहण हो सकता है, अन्य चीन, जापान, प्राच्यकी अपेक्षा पाश्चात्यके अधिक निकट हैं। उन्हें प्राच्य समझना भूल है। केम्ब्रिजके एक विद्वान् महाशय, जी० लाउ'स डिकिन्सन-ने अपनी 'एप्पीयरेन्सेज़' नामकी पुस्तकमें इसपर बड़ा वितण्डावाद खड़ा किया है। इस पुस्तकका निचोड़ पुस्तकके ऊपरवाले कागजपर इन शब्दोंमें लिखा गया है—

"इस पुस्तकमें जिन लेखोंका समावेश किया गया है उनमें उन स्मृतियों और प्रभावोंका वर्णन है जिनका अनुभव अमरीका, भारत, चीन और जापानमें परिभ्रमण करते समय हुआ था। अन्तिम लेखमें लेखकने यह इङ्गित किया है कि भारतीय सभ्यतामें जीवनका जो अर्थ किया गया है वह पश्चिमी सभ्यताके आदर्शसे बिलकुल भिन्न है, और (इस दृष्टिसे) सुदूर पूर्वके अन्य देश अवश्य ही भारतकी अपेक्षा पश्चिमके अधिक सन्निकट हैं। भारतीय आदर्शको उन्होंने 'चिरस्थायी धर्म'की और पश्चिमी आदर्शको 'सामयिक धर्म' की संज्ञा दी है।"*

---

*"This book comprises a series of articles recording impressions and recollections gathered in the course of travels in America and India, China and Japan. In a concluding essay, the author suggests that the civilization of India implies an outlook on life fundamentally

इस प्रकारके निराधार विचारोंके फैलानेमें अङ्गरेजी लेखक और विचारवेत्ता क्यों अपना समय लगाते हैं, इसे समझनेके लिये थोड़ा विचार करनेकी जरूरत है

थोड़े दिन पूर्व यह माना जाता था कि आधुनिक योर-अमरीकाके विचारानुसार सुशासनकी शक्ति प्राच्य देशोंमें नहीं है। प्राच्य संसार केवल इसी विचारमें मग्न रहता है कि 'मरनेके उपरान्त हमारी आत्माका क्या होगा' इत्यादि। उसे यह विचार स्वप्नमें भी नहीं सताता कि दूसरोंको मारकर उनका राजपाट छीननेके लिये प्रथम किस प्रकारके गोली-गोले, बारूद, तोप तमञ्चे और बन्दूक इत्यादिको बनाना चाहिये, पश्चात् किस प्रकार एक दूसरेको गाली-गलौज देकर झूठा साबित करना चाहिये। इसलिये जिस प्रकार माँ-बाप बच्चोंको आपसमें लड़कर एक दूसरोंको हानि पहुंचानेसे रोकते और उनका शासन करते हैं तथा उन्हें हानिकारी मार्गसे बचाते हैं उसी प्रकार संसारके मां-बाप ये योर-अमरीका-निवासी प्राच्य देशोंकी भलाईके लिये उनपर शासन करना अपना अधिकार समझते हैं और जिनपर उनका शासन नहीं हैं उनके सब कामोंमें बड़े भाईके तुल्य दखल देना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इन्हीं सब विचारोंके कारण ये लोग यह भी नहीं चाहते कि इन देशोंमें उन सब सिद्धान्तोंका प्रचार हो जो मनुष्योंको स्वतंत्ररूपसे विचार करनेके लिये प्रेरित करते हैं और उन्हें स्वाधीनता देवीके उपासक बनाते हैं।

संवत् १९५१ में चीनपर विजय पाकर जापान 'अर्द्ध शिक्षित' बन गया और संवत् १९६२ में रूसको हरानेके बाद वह प्रथम श्रेणीकी शक्तियोंमें गिना जाने लगा। जल-सेनाको भी इङ्गलैंडकी जल-सेनाके आधारपर और स्थल-सेनाको जर्मनीकी स्थल-सेनाके आधारपर बनाकर उसने अपनी शक्ति अच्छी बढ़ा ली है तथा केवल अपने ही घर-की रक्षाके लिये नहीं वरन् घमण्डी योर-अमरीकाकी शक्तियोंको भी सहायता देने-की सामर्थ्य अपनेमें सञ्चय कर ली है, यहाँतक कि युद्धके दिनोंमें मित्रत्रयको जापानसे मित्रता होनेका वास्तविक गर्व था और रूस तो कई बातोंमें केवल जापानकी ही सहायतासे जर्मनीसे लड़ रहा था। यदि जापान गोली-बारूद और तोप-बन्दूक आदिसे रूसकी मदद न करता तो बेचारे रूसकी और भी दुर्गति हो जाती। एक बार मैंने पढ़ा था कि जापानसे मदद जानेमें थोड़ा विलम्ब हुआ तो रूसी सेनाको बन्दूकोंके मुकाबिलेमें लोहेकी छड़ोंसे और संगीनोंके बदले डंडोंसे लड़ना पड़ा था।

चीनने भी संवत् १९६८ में अपनी पीनकसे करवट ली, और वह एक हाथ मार 'मञ्चु' जैसे विदेशी राजाओंको निकाल प्रजातन्त्र राज्य बन बैठा। किन्तु आपसमें मेल न होनेके कारण और कतिपय पुरुषोंमें व्यक्तिगत अभ्युदय और उत्थानकी इच्छा न्यून रह जानेके कारण कण्टकोंसे अभी तक पूर्णतया बाहर नहीं निकला है। वहाँके प्रजातन्त्र राष्ट्रकी जान तराज़ूके पलड़ेपर इधर उधर लटक रही है। अभी यह निश्चय रूपसे कहना कठिन है कि यह नवशिशु पनप कर कब तक प्रौढ़ होगा। पर जो कुछ हो

different from that of the civilization of the west; and that essentially the other countries of the far East are nearer to the West than to India. The Indian attitude he calls that of the religion of Eternity, and the western attitude that of the religion of Time"

योर-अमरीका-निवासियोंका यह कथन कि सुशासनकी शक्ति प्राच्य देशोंमें नहीं है, इन उपर्युक्त घटनाओंसे भ्रमपूर्ण ही देख पड़ता है।

अब इस युक्तिको सार्थक रखनेके लिये दूसरी युक्ति खोजनी पड़ी। बस इसी दूसरी युक्तिके समर्थनके लिये ही डिकिन्सन महाशय जैसे विद्वानोंने 'एप्पीयरेन्सेज' जैसी पुस्तकोंका लिखना प्रारम्भ किया है। यह तो हुई योर-अमरीका वालोंके विचारों-की बात। अब स्वयम् प्राच्य देश वाले अपने विषयमें क्या सोचते या कहते हैं, सो भी सुन लेना उचित है। फिर विद्वानों और उभयपक्षकी बातें जान लेनेके उपरान्त अपनी सम्मति स्थिर करना विचारशील पुरुषोंका कर्त्तव्य होगा।

प्राच्य विद्वानोंकी सम्मतिमें "प्राच्य सभ्यता" की व्याख्या इस प्रकार होगी— "प्राच्य सभ्यता उस सभ्यताको कहते हैं जिसके फलसे समाजपर बाह्य जगत्के प्रभाव-के साथ साथ अन्तर्जगत्का प्रभाव भी पड़े अर्थात् जहाँ एक ओर समाजमें सांसारिक उन्नति और विभवकी आकांक्षा प्रबल रूपसे तरंगित हो वहाँ दूसरी ओर आत्मोन्नति और ब्रह्मविद्याकी लहर भी मनुष्यके जीवनमें हिलोरें मारती हुई पायी जावे;" क्योंकि उनका विश्वास है कि जिस प्रकार ईंट पत्थरकी इमारतके लिये चट्टानपर नींव डाली जाती है, बालूपर नहीं, उसी प्रकार मानवरूपी सामाजिक इमारतके लिये भी आध्यात्मिक-अन्तर्जगत् रूपी चट्टानपर सांसारिक बाह्य इमारतको खड़ा करना पड़ेगा।

मैं और देशोंका हाल तो नहीं जानता पर मुझे भारतका हाल थोड़ा बहुत मालूम है, इसलिये कहना ही पड़ता है कि भारतनिवासियोंको केवल पीनकबाज दार्शनिक मात्र ही समझना नितान्त भूल है अथवा स्वार्थकी चरम सीमा है।

अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें यूरोपमें "भाफ" द्वारा शक्ति-प्राप्तिकी युक्ति अचानक प्राप्त हो गयी। उसके पूर्व भारत हर प्रकारकी कला और विज्ञानमें यूरोपका शिक्षागुरु था, यह किसी व्यक्तिसे भी छिपा नहीं है। इसके विषयमें यदि अधिक जानना हो तो अध्यापक विनयकुमार सरकारकी पुस्तक "पाज़िटिव्ह बैकग्राउण्ड आफ हिन्दू सोशियालाजी" और पण्डितवर आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ सीलकी पुस्तक 'दि फिज़िकल साइन्सेज़ आफ दि हिन्दूज़' पढ़िये।

देखिये अध्यापक सरकार इस विषयमें अपनी पुस्तकमें क्या लिखते हैं—

"हिन्दू जीवन और हिन्दू विचारके असामान्य (अलौकिक) और पारलौकिक अंगपर अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। गत शताब्दीमें यह मान लिया गया है, और प्रमाणित कर दिया गया है तथा लोगोंका यह विश्वास भी हो गया है कि भारतीय सभ्यता, चाहे संगठित उद्योग और राजनीतिके जमानेके पूर्वकी भले ही न हो, फिर भी इतना तो ज़रूर है कि वह इन विषयोंके प्रति निरपेक्ष है और उसका एकमात्र लक्षण अत्यधिक विरक्ति एवं अत्यधिक धार्मिकता ही है जिसे संसारकी, शरीरकी तथा विषय-वासना रूपी दैन्यकी उपेक्षा करनेमें ही आनन्द आता है।

"इससे अधिक असत्य और क्या हो सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओंने अपने जीवनके आदर्शमें अतीन्द्रियात्मक बातोंको ही विशेष महत्त्व दिया है, फिर भी उन्होंने प्रवृत्तिमूलक (प्रकृत) आधारकी अवहेलना कभी नहीं की। प्रत्युत ऐसा कहना चाहिये कि भारतीय सभ्यताके इतिहासमें प्रवृत्तिमूलक, ऐहिक

और भौतिक वस्तुओंके द्वारा ही अलौकिक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक बातें प्रदर्शित की गयी हैं। उपनिषद्, वेदान्त तथा गीता ऐसे कमज़ोर दिमाग़ वाले और निःशक्त मनुष्योंकी कृतियाँ न थीं जिनका जीवन अक्षम और असाध्य-रोग-पीड़ित व्यक्तियोंकी अनाथशालामें बीता हो।

"हिन्दूने इस पृथ्वीको घृणाकी दृष्टिसे कभी नहीं देखा, प्रत्युत वह इहलोककी और परलोककी बातोंका सन्तत और समान रूपसे ध्यान रखते हुए इस पार्थिव जगत्की अच्छी अच्छी वस्तुओंका उपभोग करनेके लिये एवं इस हरीभरी भूमिको सुशोभित करनेके लिये समुत्सुक रहा है।"*

यह योर-अमरीकाकी उन्नति जो आज दिन देख पड़ती है केवल १५० वर्षके परिश्रमका फल है। यदि मुझसे कोई पूछे कि तुमने भी ऐसी उन्नति क्यों नहीं कर ली, क्या तुम्हारा किसीने हाथ पकड़ा था—तो मैं उत्तर दूंगा, हाँ मेरा हाथ ही पकड़ा नहीं वरन् हथकड़ियोंसे जकड़ा है। क्योंकि स्वाधीन जापानने वही सब उन्नति ५० वर्षोंमें ही अपनेमें ग्रहण कर ली है। इसी कारण इस भागका नामकरण जिसमें जापानका विवरण रहेगा, मैंने " नवीन एशियाका स्वाधीन शिशु " किया है।

---

*"The transcendental and other-worldly aspect of Hindu life and thought have been made too much of. It has been supposed, proved and believed during the last century that Hindu civilization is essentially non-industrial, and non-political, if not pre-industrial and pre-political, and that its sole feature is ultra-asceticism and over-religiosity which delight in condemning the world, the flesh and the Devil"

Nothing can be further from the truth. The Hindu has no doubt always placed the transcendental in the fore-ground of his life scheme, but the Positive Background he has never forgotten or ignored. Rather it is in and through the positive, the secular, and the material that the transcendental, the spiritual and the metaphysical have been allowed to display themselves in Indian culture-history. The Upanishads, the Vedanta, and the Gita were not the works of imbeciles and weaklings brought up in an asylum of incapables and a hospital of incurables.

The Hindu has never been a 'scorner of the ground' but always true to the 'Kindred points of heaven and home,' has been solicitous to enjoy the good things of the earthly earth and beautify this 'orb of green'

दूसरा परिच्छेद ।

जापानी जहाज कंपनी ।

होनोलूलूसे मैं जापानी कम्पनी "टोयो किशेन कैशा" के "टिनियो मारू" जहाज़पर चढ़ कर रवाना हुआ।

बन्दरसे जहाजके छूटनेका समय सन्ध्याके पाँच बजे था किन्तु मैं होटलसे तीन बजे ही विदा हो यहाँ आ गया था। जहाजपर आते ही ऐसा मालूम पड़ा कि मैं योर-अमरीकाको छोड़ किसी भिन्न जगत्में आ गया। इस जहाजमें तीन दर्जे हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय। जो जहाज यूरोपसे अमरीका आते जाते हैं उनमें प्रायः दो ही दर्जे होते हैं। अमरीकन कम्पनीके जहाजोंमें तो दोसे अधिक दर्जे होते ही नहीं। हिन्दुस्तान और यूरोपके बीच जो जहाज चलते हैं उनमें भी तीन दर्जे होते हैं।

तीसरे दर्जेमें प्रायः वे ही यात्री जाते हैं जो ग़रीब हैं। उन्हें अपना बिस्तरा वगैरह ले चलना पड़ता है और मामूली तरहसे जमीनपर बिस्तरा डाल सोना-बैठना होता है। इस प्रकारकी यात्रा अब आधुनिक समयमें विभव-प्राप्त योर-अमरीका निवासीगण नहीं करना चाहते, इसलिये योर-अमरीकाके देशोंमें जो जहाज आते जाते हैं उनमें ये निकृष्ट दर्जे जिनमें पशुओंकी भांति मनुष्योंको चलना होता है, नहीं रहते।

अभी तक योर-अमरीकामें एक साल तक नंगे पैर, टाँगें खुली हुई, जमीनपर जहाँ तहाँ पड़े हुए हों ऐसे मनुष्योंको देखनेका अवसर नहींके बराबर ही था, क्योंकि ये असभ्यताके लक्षण समझे जाते हैं। हाँ, खेलोंमें तथा स्त्रियोंके सम्बन्धमें इस नियममें ढीलापन अवश्य देखा गया था, जैसे फुटबाल इत्यादि खेलनेके समय जब जाँघिया पहिना जाता है तब ठेहुनेके ऊपर जाँघ खुली रहती है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें तो यह एक प्रकारका हुनर समझा जाता है कि स्त्री अपना कितना शरीर खुला रख सकती है। घुटनेके ऊपर कन्धे तक हाथ, बगल, आधी पीठ और छाती खुली रखना तो लावण्यका चिह्न है।

नहाते समय भी स्त्री पुरुष बारीक जाँघिया और बनियाइन पहिन कर सर्व-साधारणमें नहाते नहीं लजाते, खैर।

किन्तु यहाँ और बात थी। यहाँ भारतवर्षकी नाईं पैजामा पहिने, जाँघिया पहिने, बिना मोजेके जहाँ तहाँ लोग कुर्सी या जमीनपर लेटे हुए मिले। तात्पर्य यह कि लोग यहाँ योर-अमरीकाकी नाईं कपड़ेके नियमकी जकड़बन्दीसे मुक्त मिले।

थोड़ी देरमें यात्रियों तथा उनके सम्बन्धियोंकी भीड़ होने लगी। देखते देखते जहाज भर गया। स्वतन्त्रतासे जापानी लोग इधर उधर घूमने लगे।······स्वतन्त्र जातिमें भय नाम मात्रका भी नहीं होता। स्वाधीन जापानियोंको इसी प्रकार किसीसे भी भय करनेकी आवश्यकता नहीं है, और न उन्हें कोई आंख ही दिखा सकता है।

थोड़ी देर बाद पहिली घण्टी बजी, बस यात्रीगण अपने अपने सम्बन्धियोंसे मिलने लगे, कोई कोई सिर नवाकर प्रणाम करते थे, फिर मलिन मन हो कभी कभी प्रेमाश्रु भी बहाते थे। इसी प्रकार आधे घण्टेमें सब बिदाई हो गयी। दूसरी और तीसरी घण्टी जल्दी जल्दी बजी, बस फिर नावकी सीढ़ी उठा ली गयी। बाद डाकके थैले आये सो क्रेन द्वारा उठा लिये गये। ठीक पाँच बजे जहाज खुल गया। थोड़ी देर तक वही पुराना दृश्य दिखायी देता था। लड़के पानीमें पैसेके लिये दौड़ रहे थे। पैसा फेंकनेसे गोता लगा अथाह जलमें नीचे बैठनेके पूर्व ही बीचमेंसे उसे ले आते थे। भारतवर्षमें भी यमुनाके ऊपर जो पुल प्रयागमें है उसपर भी यह दृश्य देखा जाता है।

देखते देखते जहाज दूर निकल आया, जलका रंग फिर प्रगाढ़ नील हो गया। किनारेका दृश्य दूर होनेके कारण दीखना बन्द हो गया। जहाज वेगसे पश्चिम दिशाकी ओर चला। थोड़ी देरमें सूर्य भी दिन भरके थके मांदे ठंढे जलमें गोता लगा गये। चारों ओर अन्धकारका राज्य विराजमान हो गया, श्याम जलराशिमें केवल जहाज और लहरोंके हिलकोरेका शब्द सुन पड़ता था, बाकी सब नितान्त शून्य और निर्जन था।

आज जहाज़पर चले तीसरा दिन है। सन्ध्याको ब्यालूके उपरान्त जो समाचारपत्र मिला उसीके साथ साथ एक और विज्ञापन था कि आज ऊपरकी छतपर धूम्रपानवाले कमरेके सम्मुख नाट्य दृश्य दिखाया जायगा।

इसके पूर्व कि मैं इस नाटकका हाल सुनाऊँ मुझे जहाज़ी समाचारपत्रोंका हाल सुनाना चाहिये। एकाध बार देशमें भी सुना था कि जहाज़ोंपर प्रतिदिन समाचारपत्र मिलते हैं पर कभी देखे न थे। इङ्गलैण्डसे अमरीका आते समय थोड़ी बहुत खबर विज्ञापनके पटरोंपर लिखी हुई मिलती थी किन्तु उसे समाचारपत्र कहना उचित नहीं है। जब मैंने अमरीकासे जापानके लिये प्रस्थान किया तब अमरीकन जहाज़पर समाचारपत्र देखे। ये मासिकपत्रके रूपमें बहुतसी किस्से-कहानियोंके साथ प्रतिदिन निकलते थे। इनका मूल्य १० सेण्ट अर्थात् पाँच आने प्रति संख्या लेने वालेको देना पड़ता था। कहानियोंके अतिरिक्त इनमें दो पृष्ठ सामयिक समाचारके भी होते थे जो टाइप यन्त्रसे छपे रहते थे। ये समाचार कुछ तो बेतारके तार द्वारा आये समाचार होते थे और कुछ नाना प्रकारकी दिल्लगी-मज़ाक तथा जहाज़पर होनेवाली अन्य घटनाओंसे भरे रहते थे।

जापानी जहाज़पर भी इसी भाँति प्रतिदिन समाचारपत्र छपते थे पर इनमें दिल्लगी-मज़ाक इत्यादि नहीं थे, ये केवल बिना तारके तार द्वारा आये समाचार ही होते थे। इनका पत्र दो पृष्ठोंका छपा हुआ होता था। बेतारका जो तारयन्त्र जहाज़ोंपर होता है वह इतना बलिष्ठ नहीं होता कि डेढ़ हज़ार मीलसे अधिक दूरके समाचारोंका आकर्षण कर सके इसलिये जब कि हमारा जहाज़ दोनों ओरके छोरसे डेढ़ हज़ार मीलके फासलेसे दूर हो गया तब दो तीन दिनतक समाचारोंका मिलना भी बन्द हो गया था।

ब्यालूके उपरान्त हम सभी लोग ऊपर धूम्रपानवाले कमरेमें जा बैठे। जहाज़में
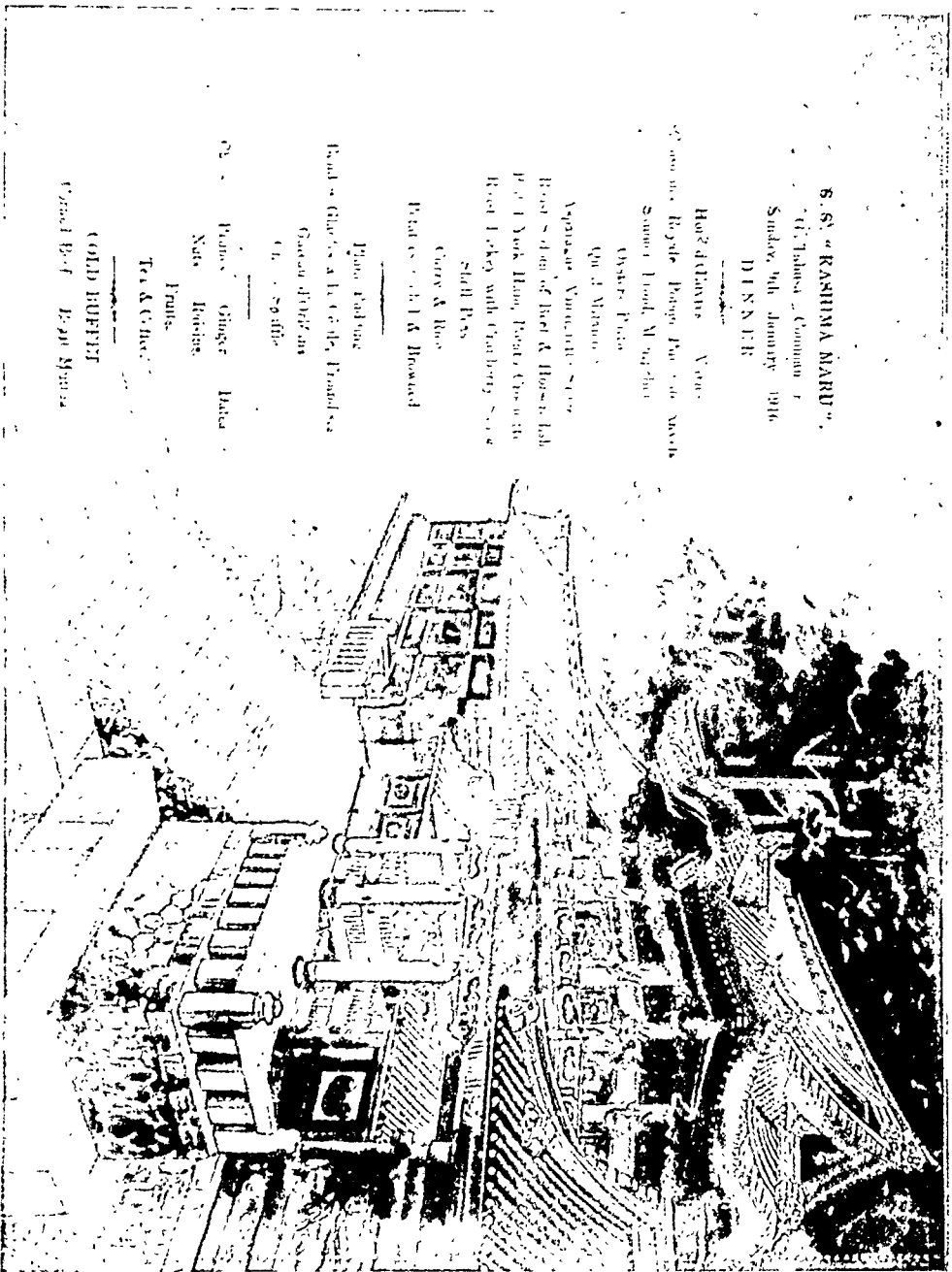
आनेके बाद मुझसे कई सज्जनोंसे मुलाकात हो गयी थी। उनमें एक फरासीसी बैरन थे जो बड़े ही सुशील जान पड़ते थे। ये मुझसे बड़ा ही स्नेह करने लगे और मेरे साथ बैठनेको उत्कण्ठित रहा करते थे। इनके साथी एक अंग्रेज़ महाशय भी थे जो चीनमें रोजगार करते मालूम पड़े। ये बड़े ही बकवादी थे और इनकी ज़बान कभी बन्द नहीं होती थी। ये प्रायः जर्मनोंकी बुराई किया करते थे और साथ साथ अपनी तारीफोंका पुल बाँधा करते थे। मुझे भारतनिवासी समझ सब बातोंमें मुझसे हुँकारी भरानेका भी इनका इरादा रहता था पर मैं प्रायः मौन रहना ही उचित समझता था।

इन्हीं लोगोंसे बातें हो रही थीं कि नाटकका घंटा बजा, हमलोग बाहर निकले। जहाज़की छतपर विद्युत्-प्रकाश-मालाका तोरण बाँधा गया था, रंगशाला-लाका मञ्च भी बना था पर इसमें वे बातें नहीं पायी जाती थीं जो योर-अमरीकाके जहाज़ोंपर ऐसे समयमें होती हैं। खैर, थोड़ी देरके बाद घंटी बजी।*

जवनिका उठी, एक मदारी सामने आकर जादूके खेल दिखाने लगा। खेल वे ही सब पुराने थे पर सफाई अधिक थी और करनेका ढंग निराला था।

जादूका खेल हो जानेके बाद दो अंकोंके एक दृश्यका अभिनय किया गया किन्तु इसका प्रभाव दर्शकोंपर उतना भी नहीं पड़ा जितना कि भारतवर्षमें भाँड़ोंकी नकल जैसे छोटे अभिनयोंमें होता है। दो तीन घंटे चहल-पहल रहनेके बाद यह दृश्य समाप्त हुआ।

एक दिन नाच भी हुआ था पर श्वेतांग नरनारी जापानी जहाजपर उस आज़ादी व स्वाभाविक स्वतन्त्रतासे नहीं रहते देख पड़ते थे जैसे कि अटलाण्टिक सागरके जहाज़पर या होनोलूलूसे पहिले देखे जाते थे। मैंने तो यह पहले भी सुना था पर अब इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। हिन्दुस्थानसे स्वेज़-नहर तक और इधर हिन्दुस्थानसे चीन-सागर या जापानके इस तरफ होनोलूलू तक इनका व्यवहार दूसरी भांतिका होता है। स्वेज़-नहर पार होनेके पूर्व जो अंग्रेज़ एक विलक्षण भाव धारण किये रहते हैं जिससे वे बड़े घमण्डी साबित होते हैं और मानवसमाजसे अलग रहना पसन्द करते हैं, यहांतक कि स्वयम् आपसमें भी आज़ादीसे नहीं मिलते, नहर पार होते ही वे ही अंग्रेज बिलकुल बदल जाते हैं। एक अज्ञात दर्शकको ऐसा ज्ञात होने लगेगा मानों ये दूसरे ही मनुष्य हैं। जादूकी भांति उनकी बोल-चाल, रहन-सहन, तौर-तरीका सभी बदल जाता है।........उन्हें बात-चीत, हंसी मज़ाक, वैर-मित्रता सभी करते अच्छा लगता है। ठीक ऐसा ही इस तरफ भी होनोलूलूके इस पार और उस पार मैंने देखा है।

भला ऐसा क्यों? यह इसलिये है कि इन्हें एशियामें अस्वाभाविक अभिनय करना पड़ता है। जो गुण वा अवगुण इनमें नहीं हैं उन्हें भी कर दिखाना होता है। यहां इन्हें यह दिखाना पड़ता है कि हममें स्थानीय मनुष्योंसे कुछ अधिकता है। जबतक यह दिखावा होता रहेगा तबतक उनका यह दावा कि हम संसारके स्वाभा-

*जापानी लोग घंटीकी जगह काठकी दो पटरियोंको बजाते हैं।

विक स्वामी हैं चलेगा । . इसीलिये उन्हें एशियाई जलवायुमें आते ही कुछ असामाजिक (अन-सोशल) जन्तुसा बनना पड़ता है ।......, सारांश यह कि संसारमें मित्रता, सौहार्द, सफाई, ईमानदारी व खुले बर्तावसे जो फल प्राप्त होता है वह स्थायी, मीठा, सुस्वादयुक्त और उत्तम होता है किन्तु इसके प्रतिकूल जो फल वैरभाव, असज्जनता, पर्देके भीतर बेईमानी व दगाबाजीसे प्राप्त होता है वह न तो स्थायी ही होता है और न मीठा ही वरन् उसका स्वाद कटु होता है और उसका जहरीला असर बहुत दिनों तक बना रहता है ।

यह एक प्रत्यक्ष बात है कि आजदिन अमरीका और जापानमें ऊपरका मेलमिलाप तो वैसा ही है जैसा कि लड़ाईके पूर्व इङ्गलिस्तान और जर्मनीमें था पर सतहके नीचे ये जातियाँ एक दूसरेके खूनकी प्यासी हो रही हैं ।......यह दशा क्यों है ? केवल उसी भ्रान्त, अप्राकृतिक और छद्मपूर्ण भावके कारण जो योर-अमरीका वालोंने अन्य मनुष्योंके प्रति धारण कर रक्खा है ।

मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि वह जाति जो बराबर यह कहती रही है कि 'ब्रिटेन निवासी गुलाम कभी न होंगे' तथा जिसके विचारवान् लोग यह कहते आये हैं कि "स्वराज्यका बदला अच्छे शासनसे नहीं हो सकता",* दूसरी जातियोंमें इस स्वाभाविक मानव-इच्छाको क्यों नहीं देखती ? आजदिन योर-अमरीकाके सारे विचारवान् लोग यही सोच रहे हैं कि कोई ऐसा यत्न निकालना चाहिये जिससे कि संसारसे युद्धकाण्ड बन्द हो जाय और इसीको सामने रखकर नाना प्रकारके विलक्षण विचार भी प्रकट किया करते हैं। किन्तु इन भले मानुसोंको इस जटिल समस्यापर विचार करते समय योर-अमरीकाके बाहरके मनुष्योंका विचार ही नहीं रहता । ये कभी इस बातके सोचनेका कष्ट ही नहीं उठाते कि जबतक संसारमें एक कमज़ोर दूसरा ज़बर्दस्त, एक अधीन दूसरा स्वाधीन, एक विजित दूसरा विजेता, एक प्रशासित दूसरा शासक, एक भूखा, नंगा, दीन, दूसरा पेट भरा, कपड़ा पहिने और इसके अतिरिक्त विलासके लिये भी धन रखता हुआ संसारमें मौजूद रहेगा तबतक संसारमें सुख और शान्तिका विकास नहीं हो सकता । पर इनके हृदयमें तो यह बात आती ही नहीं और आवे भी कैसे ? पेट भरा क्या जाने भूखेकी पीर ? फजूल खर्च वाला क्या जाने निर्धनकी आवश्यकता ? जो कभी पराजित न हुआ हो वह क्या जाने पराजित जातिकी लज्जाका भाव ? जिसने कभी पराधीनता न भोगी हो वह क्या जान सकता है कि पराधीन जातिके लोग किस प्रकार पराधीनताको देखते हैं । सच है " जाके पाँव न फटी बिवाई सो जाने का पीर पराई ।"

मेरी तो समझमें यही आता है कि संसार इसी भाँति न जाने कबसे चला आता है और इसी भांति चलता रहेगा । इस संसारचक्रमें शान्ति नहीं मिलेगी, यहां अशान्तिका ही राज्य रहेगा । एक जबरदस्त, दूसरा कमज़ोर होता ही रहेगा । जो जबरदस्त होगा दूसरोंको दबाना चाहेगा और दबावेगा भी । थोड़े समय तक ऐसा

---

*"Good government is no substitute to the government by the people themselves"

ही होता रहेगा। जब दबावका भार सीमोल्लंघन कर जायगा तब एक धड़ाका होगा। भार फट कर टूक टूक हो इधर उधर गिर पड़ेगा, फिर थोड़े दिन शान्ति रहेगी, पर यही क्रम फिर चलेगा। धीरे धीरे फिर कोई जबरदस्त और दूसरा जेरदस्त होगा। कुछ समय तक फिर दबाव बढ़ेगा, अन्तमें फिर धड़ाका होगा। इस संसारचक्रका रोकना असम्भव है। यह संसार-कर्त्ताके विचारके विरुद्ध है, इसीलिये इसकी मीमांसा नहीं हो सकती।

तीसरा परिच्छेद।

—:o:—

जापानी कुश्ती

आज फिर सायंकालको भोजनके समय विज्ञापन मिला कि आज कुश्ती इत्यादि होगी। स्थान वही धूम्रपानालयके सामने। ऊपर जाकर देखा तो विचित्र ही समा था। चारों ओर खंभे खड़े करके ऊपर एक चौकोर अखाड़ा बना हुआ था। अखाड़ेमें मिट्टीकी जगह घास भरी हुई थी और दो अंगुल मोटी चटाईके गद्दे बिछे थे। अखाड़ेके बीचोबीच थोड़ीसी मिट्टी महादेवकी पिण्डीकी तरह रक्खी हुई थी, उसके ऊपर नमक छिड़का था। दो कोनोंमें अखाड़े-के बाहर पानीसे भरी हुई दो बाल्टियां रक्खी थीं। पानीकी बाल्टीके पास ही खाली बाल्टी भी रक्खी थी। खम्भेमें एक चौकोर काठके पात्रमें बूका हुआ नमक लटका-या हुआ था। थोड़ी देर बाद दंगलका समय हो जानेपर अखाड़ेके बाहर चटाइयों-पर पहलवान लोग आ विराजे। इनका रूप देखने लायक ही था। जाँघियेके ऊपर लंगोट बांधे, नंगेबदन ये लोग यहां आ डटे। हिन्दुस्तानी होते तो साहब लोग असभ्य कह कर उठ जाते पर ये ठहरे जापानी, भला किसकी मजाल है कि इन्हें आंख दिखा सके। थोड़ी देर बाद काठके टुकड़े बजानेका संकेत हुआ। एक मनुष्य एक पंखो लेकर आया। पहिले एक दलके सामने फिर दूसरे दलके सम्मुख उसने पंखीके पीछे मुख छिपा बांसकी तिलियोंके छेदके भीतरसे लड़नेवालोंका नाम पुकारा। नाम पुकारने ही शोर मचा। योद्धाजो उठे, वहीं अखाड़ेमें लंगोट कसा, फिर अपने अपने दलकी ओर घड़ेसे थोड़ा थोड़ा पानी पी लिया। ज़रा ज़रा नमक खाकर अखाड़ेमें आ उतरे। सम्मुख आनेके पूर्व ज़मीनमें पैर पटक पटक अंगड़ाई ले अपने शरीरको ढीला कर लिया। अब पैर फासलेपर कर दोनों हाथ भी ज़मीनपर रख एक दूसरे-के सम्मुख आ जमे। एक तीसरा पुरुष रस्सीके एक झब्बेको ज़मीनपर लटका कर थोड़ी देर ताकता रहा, फिर कुछ बोला, बस दोनों आपसमें गुथ गये। अभी हाथ मिलाते पांच सेकण्ड भी नहीं हुए थे कि एकका जानु पृथ्वीसे छू गया, बस दोनों अलग हो गये। सारे दर्शक व पहलवान चिल्ला उठे। पहिलेके क्रमानुसार फिर भिड़न्त हुई। तीन बारकी भिड़न्तमें दो बार जीतनेवाला जीता हुआ समझा जाता है। हार केवल किसी अंगके ज़मीनपर लग जानेसे ही समझी जाती है।

दस जोड़ोंकी कुश्ती आधे घंटेमें समाप्त हो गयी। हमारे यहाँके पहलवानोंकी तरह प्रायः यहां भी टोनाटनमन होता है। नमकको कोई हाथकी पीठपर रखकर, कोई कानी उंगलीसे, कोई किसी अन्य प्रकार खाकर टोना करते हैं। किसी किसीने तो अखाड़ेमें जा और मुखमें पानी भर अपनी बाँहोंपर फुहारा छोड़ लिया। मुझे तो यह रीति बड़ी ही असभ्य जान पड़ी किन्तु अमरीकन लोग इसपर भी हँसते रहे। अन्तमें

मुझे भी यह मालूम हो गया कि सभ्यता या असभ्यता केवल मनगढ़न्त है, अर्थात् ज़बरदस्तकी सभी बातें सभ्यतापूर्ण समझी जाती हैं और कमजोरोंकी असभ्यतापूर्ण ।

कुश्ती हो जानेके बाद लकड़ी और पटा प्रारम्भ हुआ । लड़ाके लोग मुखपर बड़ा भारी बाँसका चेहरा बाँध कर लड़ने आये। छातीभी बड़े मोटे गद्दे से सुरक्षित थी, लकड़ी लम्बे बाँसकी बनी हुई थी और खेलनेवाले दोनों हाथोंसे उसे थाम कर लड़ते थे। वे लड़नेके समय शोर भी करते जाते थे, जीत-हार मेरी समझमें कुछ भी नहीं आयी। केवल ऐसा ज्ञात हुआ कि मारके स्थान निश्चित हैं। वहाँ मारने न मारनेसे ही हार-जीत होती है, अन्यथा नहीं।

लकड़ी और पटा हो जानेके बाद, जुजुत्सु प्रारम्भ हुआ। यह हमारे यहाँकी कबड्डीसे कुछ मिलता जुलता खेल है। अखाड़ेमें एक आदमी आता है, तुरन्त ही प्रतिद्वन्द्वी भी आता है। एक क्षणमें ही एक दूसरेको गिरा देता है। उसके गिरते ही दूसरा आदमी दौड़ पड़ता है और लड़ने लगता है। फिर उसकी हारके बाद तीसरा दौड़ जाता है। लड़ाईका कोई अन्त नहीं है। शायद एक आदमी दोको एक साथ ही आगे पीछे हरा दे तो हार-जीत समझी जाती हो। इसके बाद तलवारका नाच हुआ सो भी बच्चोंके खेलसा ही प्रतीत होता था।

इन सबको देखकर तथा प्रदर्शनीमें नाना देशोंके खेल-तमाशोंको तथा नाच-रंगमें अमरीकनोंकी रुचि देखनेसे यह मालूम पड़ता था कि यदि कोई हिन्दुस्थानी संस्था एक 'वाडेविले' तैयार करके अमरीका लावे तो लाखों रुपये बना ले जाय । हाँ, बात केवल यही है कि चुनाव उसे प्रथम श्रेणीका करना होगा । उत्तम गाने बजाने व नाचनेवाले, उत्तम पटा बनैठी खेलनेवाले, उत्तम पहलवान व छूरीबाज़, उत्तम निशाना लगानेवाले इनका एक दल ज़रा तड़क-भड़क साजोसामानसे आवे तो ५० हज़ार खर्च करके अमरीकासे दस पाँच लाख बना ले जाना बाएँ हाथका खेल है। केवल ऊपरका आडम्बर ठीक अमरीकन स्टैण्डर्डका होना चाहिये । मिठाईलालकी वीणा, मदनमोहनका पखावज, प्यारे साहब मौजुद्दीनका गाना, कालका, बिन्दा तथा देवी प्रसादका नाच या इनसे तालीम पायी हुई युवती गणिकाओंका नाच, काशीके बीबी हटियाके अखाड़ेके पेंच व बेतकी कसरत या मलखम्भ, लखनऊ या ग्वालियरके पटेबाज़ोंके खेल, काशीकी छूरी चलानेमें प्रवीणता, राना सुलतान सिंहकी निशानेबाज़ी, अध्यापक गणपतिके जादूके खेल, अध्यापक राममूर्तिके बलकी परीक्षा ये ऐसी बातें हैं कि यदि इनका संग्रह किया जाय व अमरीकन ढंगसे विज्ञापन देकर ये अमरीकामें प्रदर्शित की जायँ तो बड़ा लाभ हो सकता है ।

इसमें केवल धनोपार्जन ही नहीं होगा वरन् भारतका माथा भी जगत्में ऊँचा हो जायगा। विश्वशक्तिका सद्व्यवहार होगा, संसार जान जायगा कि भारतमें भी अनेक प्रकारके हुनर हैं, वहाँ केवल भेड़ चराने वाले गड़रिये ही नहीं रहते। पाश्चात्य देशोंमें हुनरकी क़दर है । जिसके लिये हमारे देशमें एक पैसा भी न मिलेगा उसीके लिये अमरीकामें सैकड़ों रुपये मिल जाएँगे व नाम विलचेमें मिलेगा। हाँ, वहाँ जाने भरकी ज़रूरत है।

भारतवर्षमें बंगालके बाहर कितने जने रवि बाबूको जानते हैं? पर अमरीकामें

बच्चे भी उनके नामसे परिचित हैं, उनकी बँगला पुस्तकें अथवा उनके अनुवाद लाखोंकी संख्यामें बिक चुके हैं। भारतकी कितनी भाषाओंमें गीताञ्जलिका अनुवाद हुआ है ? पर योरअमरीकाको सभी सभ्य भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया है और केवल अमरीकामें गीताञ्जलिकी १६ लाखसे अधिक प्रतियाँ एक वर्षके भीतर बिक चुकी हैं जिससे कमसे कम २५ लाख रुपयेका लाभ पुस्तकके लेखकको हुआ होगा। इसे कहते हैं विद्यानुराग और गुणोंका आदर करना। इसी प्रकार कुछ दिन हुए किपलिंगकी तूती बजी थी। उनकी भी पुस्तकें लाखोंकी संख्यामें बिकीं। हमारे प्रान्तमें भी यदि कोई माईका लाल सूरदासके पदोंका, कबीरकी उपदेशपूर्ण कविताका और भारतेन्दुके नाटकोंका उत्तम विद्वत्तापूर्ण भाषान्तर करे व विज्ञापन द्वारा उसकी चर्चा अमरीकामें फैला दे तो उसका भी यथेष्ट मान हो और साथ साथ देशका मस्तक भी ऊँचा हो।

जबसे मैं बाहर आया हूं तबसे मुझे पद पदपर यह बात ज्ञात होती है कि भारतके विषयमें संसारमें नितान्त अन्धकार है। भारत क्या है, उसका इतिहास क्या है, उसके काव्य, चित्र, मूर्तियाँ क्या हैं, उसमें शिल्प-विज्ञान व कला कितनी है, उसमें रसिकता, साहस, वीरता, उद्दण्डता कितनी है इसका परिचय संसारको कुछ भी नहीं है, जो कुछ है भी वह स्वार्थियों द्वारा विकृत रूपमें ही दिया गया है। यह देखते हुए इसकी बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है कि हमारे देशवासी सभी देशोंमें नाना प्रकारसे भ्रमण करें व देशके हरएक पहलूपर प्रकाश डालें। इसके अतिरिक्त अंगरेज़ी, जर्मन, फरासीसी, स्पेनिश, तुर्की, फारसी, अरबी, जापानी व चीनी भाषाओंमें उत्तम पुस्तकें या मासिकपत्र छापे जायँ जिनमें देशकी सभी बातोंका वृत्तान्त हो। वे पत्र सस्ते दामों या मुफ्तमें भिन्न भिन्न देशोंमें बाँटे जायँ, अच्छे अच्छे पुस्तकालयोंमें भेजे जायँ जिससे भारतके विषयमें जो अन्धकार फैल रहा है वह दूर हो। किन्तु यह करे कौन ? भारतवर्षमें कितने आदमी हैं जो बी० ए०, एम० ए० अथवा वकालत व डाक्टरीके अतिरिक्त कुछ और जानते हों? पर बिना इसके कुछ हो भी नहीं सकता। हे नवीन भारत ! यदि तुम्हें सभ्य जगत्की पंक्तिमें बैठना है तो संसारकी भिन्न भिन्न भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करो। उनमें क्या है, उसे अपने देशकी भाषामें लिखकर अपने देश भाइयोंको बताओ और तुम्हारे घरमें जो सम्पत्ति है उसे संसारके बाज़ारोंमें परखनेके लिये भेजो, इसके बिना काम नहीं चलेगा।

कहाँतक कहें, एक बात हो तो कहते भी बने, हमारे यहाँ तो सभी ओर अन्धकार है—कितने आदमी भारतके बाहर निकलते हैं व उनमेंसे कितने इङ्गलिस्तानको छोड़ अन्य देशोंमें जाते हैं ? हाँ, अशिक्षित कुली अवश्य अमरीकामें मिलते हैं पर वे देशका मुख ऊंचा नहीं कर सकते। देखो, केवल जापानमें संवत् १९७१ में १८०१४ यात्री भिन्न भिन्न देशोंसे आये—३३९९ अंगरेज़, ३७५६ अमरीकन, ८०५ जर्मन, ३६१ फरासीसी, ३०७५ रूसी, ६०३० चीनी, ५४ इटैलियन, ९६ आस्ट्रियन, ८९ डच, १७ बेलजियन, ६६ स्पेनिश, ३२ नारवेवाले, ४७ स्वीडन निवासी, १८ स्विस, ७८ पोर्तुगाली, २४ डेनिश, १४ तुर्की, ४ स्यामी, ४९ अन्य देश निवासी; भारतीयोंका पता ही नहीं। भला, ऐसी अवस्थामें यदि संसार हमें असभ्य समझता है तो

इसमें किसका दोष है ? देशके बाहर निकलनेसे अपनी भी आँखें खुलती हैं और दूसरोंकी भी। पर अभी तो हम पीनक लेते हुए बनावटी धर्मके गड्ढेमें पड़े निर्वाण खोज रहे हैं। संसारकी चिन्ता किसको है ? भला हो प्लग और अकालका कि ये हमें जगा रहे हैं। इसीका नाम ईश्वरीय कोड़ा है, यदि इसे भी खाकर हम न जागें तो ईश्वर ही मालिक है।

मैं चाहता हूं कि भारतके नवयुवक भाई नौकरीको तिलाञ्जलि दें। वकालत करके दूसरोंको लड़ाकर आप तमाशा और मज़ा न लूटें वरन् व्यापार व कलाकौशलकी ओर झुकें, भिन्न भिन्न देशोंमें कोठियाँ खोल व्यापार बढ़ावें, इसी बहाने देशदेशान्तरको देखें भी। पहिले भी हमारे यहाँ यही होता था, अब भी जीवित देशवाले यही करते हैं, और यदि हमें भी जीवित रहनेकी इच्छा है तो यही करना होगा।

× × × ×

आज मुझे जहाज़पर चले चार दिन हो गये। आज मेरे हिसाबसे अंगरेज़ी मास जूनकी पहली तारीख़ थी पर भोजनगृहमें जाकर देखा तो सामग्री पत्रपर २ जून छपा है। मैं भौंचकसा हो गया कि यह क्या बात है। जेबसे पञ्चांग निकाला तो वहाँ भी वही पहली तारीख निकली। मैं घबड़ा गया और टेबिलसे उठ 'परसर'के पास गया, उनसे पूछा तो यह मालूम हुआ कि आज हमारे जहाज़ने १८० अक्षांश पश्चिमकी ओर पार किया है। इसी कारण एक मितीकी हानि हुई है। बस, मेरी समझमें सब समस्या आ गयी। मैं हँसता हुआ वहाँसे लौट आया। जो बात एण्ट्रेन्स क्लासके प्राकृतिक भूगोलमें पढ़ी थी वह सब ठीक ठीक देखनेमें आयी।

मैं इस विषयको पाठकोंको भी समझाना चाहता हूं। यह विषय ज़रा जटिल है। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार इसे स्पष्ट करनेकी चेष्टा करूंगा पर यदि फिर भी स्पष्ट न हो तो पाठकवृन्द किसी प्राकृतिक भूगोलमें इसे पढ़कर समझनेका यत्न करें।

१—सुजान पाठकोंको बतानेकी आवश्यकता न होगी कि पृथ्वीका गोला नारंगीके सदृश गोल है। अब यदि इसकी लंबी फाँकें करें तो प्रत्येक भागको अक्षांश कहेंगे और बड़ी फाँकें करें तो उन्हें ध्रुवांश कहेंगे। हमें यहाँ अक्षांशकी ही आवश्यकता है। ये फांकें केवल मानसिक विचारके लिये ही हैं। पूरे भूगोलको ज्योतिषियोंने ३६० अक्षांशोंमें बांटा है। अब पृथिवीके किसी स्थानसे प्रथम रेखा खींच उसे शून्य कहकर आगेकी रेखाओंकी संख्या एक दो क्रमशः होगी। इस समय योरअमरीकाके ज्योतिषियोंने यह प्रथम रेखा लन्दनमें ग्रीनविचसे मान ली है, इस कारण ग्रीनविचके पूर्वकी रेखाएं पूर्वी अक्षांशके नामसे और पश्चिमी रेखाएं पश्चिमी अक्षांशके नामसे विदित हैं। प्रशान्त महासागरके मध्यमें जापानसे कोई १००० कोस पूर्वसे जो रेखा जाती है उसका नाम १८० रेखा है।

२—आपको यह भी ज्ञात होगा कि पृथ्वी अपने ध्रुवपर प्रति दिन एक बार चक्कर लगाती है, इसी चक्करको एक दिनरात्रि कहते हैं। पृथ्वी पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूमती है, इसीसे सूर्य पश्चिम चलता देख पड़ता है।

३—अब चूंकि पृथ्वी ३६० अक्षांशोंमें विभाजित है और ये ३६० अक्षांश २४

घण्टोंमें मोटी तरहसे सूर्यके सम्मुख घूम जाते हैं इससे १ अक्षांशको सूर्यके सम्मुख घूमनेमें चार मिनट लगते हैं।

४-अब अनुमान कीजिये कि आप पूर्वसे पश्चिमकी ओर जा रहे हैं व आपका जहाज एक अक्षांश रोज चलता है। अब आप इस बातकी ओर ध्यान दीजिये कि आपका जहाज ५ अक्षांशपर है और आपकी सूर्य-घड़ीके हिसाबसे १२ बजे हैं तो ० अक्षांशपर, यदि आप पूर्वके अक्षांशपर होंगे तो, उस समय ११-४० बजा होगा और यदि आप पश्चिमके अक्षांशमें होंगे तो १२-२० बजा होगा। अब इसी प्रकार जब आप १८० अक्षांशमें होंगे व वहाँ १२ बजे दिनका समय होगा तो ० अक्षांशमें १२ बजे रात्रिका। अब यदि आप पूर्वसे चलकर १८० अक्षांशमें पहुंचे हैं और आपके यहाँ शनिवारको १२ बजे दिनका समय है तो ० अक्षांशपर शुक्रवारको १२ बजे रात्रि रहेगी व यदि आप पश्चिममें चलकर १८० पर पहुंचे हैं तो ० अक्षांशपर १२ बजे शनिकी रात्रि होगी।

इस भाँति यदि आप बराबर चलते जायं व पृथिवी-प्रदक्षिणा करके ० अक्षांश-पर पहुंच जायँ तो आपकी गणनाके अनुसार पूर्वकी ओर चलकर पहुँचनेमें आप ० अक्षांशपर शुक्रके १२ बजे दिनको पहुंचेंगे व पश्चिम चलकर आपको रविवारके १२ बजे दिनमें पहुंचनेका भ्रम होगा।

इसी भ्रमको मिटानेके लिये १८० अक्षांशपर जब यात्रियोंका कोई जहाज पहुं-चता है तब यदि वह पूर्वकी ओर जाता हो तो एक दिनकी वृद्धि व पश्चिमकी ओर जाता हो तो एक मितीकी हानि कर लेते हैं। ऐसा करनेसे कोई भ्रम नहीं पड़ता।

जापानी जहाजपर और कोई विशेष घटना नहीं हुई। दो दिन सागर क्षुब्ध हो उठा था, तरङ्गमालाका वेग बढ़ गया था, जहाज भी मतवाले हाथीकी भाँति डोलने लगा था पर यहाँ वह गति नहीं हुई थी जो अटलाण्टिक महासागरमें हुई थी। वहाँ तो गजब था, जान पड़ता था कि जहाज अभी डूब जायगा। यहाँके तूफानसे एक ही ओर जहाज हिलता है अर्थात् आगे पीछे डगमगाता नहीं, इस कारण अधिक तकलीफ नहीं होती। हम १० दिनमें होनोलूलूसे याकोहामा पहुंच गये। यह सफर आनन्दसे ही बीता।

चौथा परिच्छेद।

—:०:—

स्वाधीन एशियाकी गोदमें।

जिस भूमिको देखनेकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी आज उसके दर्शन होनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। प्रातःकाल उठनेके उपरान्त ज्ञात हुआ कि जहाज खड़ा है, खिड़कीसे बाहर मुख निकाल कर देखा तो अनुमान ठीक निकला। जहाज याकोहामाके घाटके बाहर पहुंच गया था, पर अभी वह घाटके भीतर नहीं घुसा था, बाहर ही समुद्रमें लंगर डाले खड़ा था। मैं भी शीघ्र नित्यक्रियासे निपट कपड़े पहिन छतपर आ गया। दूरसे घाटकी शोभा देखने लगा। सान फ्रान्सिस्कोमें प्रकृतिने खाड़ीके बाहर पहाड़के 'गोल्डन गेट' बना दिये हैं अर्थात् पहाड़ इस भांतिसे आ गये हैं कि खाड़ीके भीतर जानेका जो मार्ग है वह छोटा दरवाजासा बन गया है। यह दरवाजा रण-विद्याके अनुसार भलीभांति सुरक्षित किया गया है। घाटपतिकी आज्ञाके बिना कोई जहाज भीतर-बाहर नहीं आ जा सकता। किन्तु यहाँ याकोहामामें प्रकृतिने आक्रमण-रक्षाकी यह सुविधा नहीं उपस्थित की थी, इसलिये जापानको अपनी रक्षाके लिये कृत्रिम उपायका अवलम्बन करना पड़ा। इन लोगोंने करोड़ों रुपये लगा कर दूरसे बाँध बाँधकर इस कार्यका निर्वाह किया है। बाँधके बीचमें एक सुविशाल द्वार है, बस इसी राहसे नाव भीतर बाहर आ जा सकती है। द्वारके नीचे सुरंग इत्यादि लगा कर इसकी रक्षा की गयी है। शत्रुका जरा भय होनेसे ही नाव सुरंग द्वारा ध्वंस की जा सकती है।

घाटके बाहर बांधके परली ओर बड़े बड़े युद्धपोत खड़े देख पड़े। दिल उत्साहसे भर रहा था, पल पलकी देर भारी होती जाती थी पर अपना कोई बस नहीं चलता था।

थोड़ी देरमें डाक्टर महाशय आये। प्रथम श्रेणीके सभी यात्री भोजनालयमें बुलाये गये। जहाजके 'परसर'ने केवल सबकी गिनती मिला लेनेके बाद कहा कि बस आप लोग पधारिये, कार्य हो गया! मैंने अपने मनमें सोचा कि यह अच्छी डाक्टरी परीक्षा है, डाक्टर महाशयका मुख भी नहीं देखा और परीक्षा हो गयी। होनोलूलूमें यात्रियोंके हाथकी हथेली देखी गयी थी व अमरीका पहुंचते समय न्यूयार्कके घाटके निकट डाक्टर महाशयने आँखें देखी थीं, किन्तु यहाँ तो डाक्टरका मुख-दर्शन भी न हुआ। खैर!

अब हमारा जहाज़ चला और थोड़ी देरमें घाटके भीतर किनारेपर जा खड़ा हुआ। यहाँ किनारेपर हजारों आदमियोंकी भीड़ थी। कुछ अपने इष्ट मित्रोंसे मिलने आये थे, कुछ कुली थे और कुछ अन्य लोग। टामस कुकका मनुष्य पहिले ही नावपर आगया था और मेरा असबाब सम्हाल कर अपने निरीक्षणमें ले चुका था।

थोड़ी देरके बाद मैं भी जहाज़परसे उतरा और घाटके भीतर जाकर मैंने माल असबाब चुंगीवालोंको खोल कर दिखाया। यहाँ, मिश्रमें तथा मारसेल्समें सभी-जगहोंमें माल-असबाब खोल कर देखा जाता है। यहाँ और फ्रांसमें केवल इस बातकी जाँच हुई थी कि पासमें सिगार, सिगरेट या तम्बाकू तो नहीं है। मिश्र और न्यूयार्कमें सभी वस्तुओंपर जो खर्चकी नहीं हैं चुंगी देनी पड़ती है।

चुंगीके कामसे फुरसत पा बाहर निकला। नगरपर दृष्टि पड़ते ही हवाई किला गिरकर चकनाचूर होगया। जिस प्रकार न्यूयार्क पहुंचनेपर बादलोंसे ऊपर निकली हुई ऊलवर्थ व सिंगरकी हवेली देखी थी और नगरमें प्रवेश करनेपर सभी बड़े बड़े मकान व सड़कें आदमियोंसे खचाखच भरी देखी थीं वह हाल यहां नहीं था। यहां घाटके बाहर होते ही मैदान मिला। दूरपर झोपड़ियोंकी बस्ती देख पड़ी। इधर उधर दो चार रिक्शाएँ देख पड़ीं†।

दूरपर ट्रामगाड़ी भी धीमी धीमी चलती देखी गयी। पुल पार होते ही मैले पानीकी एक छोटासी नहरमें बहुतसी छोटी बड़ी नावें भी देखीं। जान पड़ता था कि कलकत्तेके कालीघाटपर खड़ा हूं।

यदि इसका ख्याल छोड़ दिया जाय कि इस नगरमें ३,९४,३०० मनुष्य हैं और यह नगर रूसका गर्व खर्ब करनेवाले जापानका प्रधान बन्दरगाह है तो इसकी तुलना आज़मगढ़ जैसे क्षुद्र शहरोंसे करनी होगी।

आगे चला तो और विलक्षण दृश्य देखनेमें आया। पतली पतली गली, दोनों तरफ कच्ची नाली, नालीमें कीच व पानी भरा हुआ बजबजा रहा था। तरीके कारण दीवारोंपर काई लगी थी और छोटे छोटे पौधे भी उगे थे। इधर उधर जो मकान देख पड़े उनमें मनुष्य चटाई बिछाये जमीनपर बैठे अँगेठीसे तम्बाकू पीते व काम करते नज़र आये। बाहर गलीमें भी लोग बैठे देख पड़े। सोचता विचारता मनमें कुढ़ता हुआ मैं आगे चला जाता था और मनही मन कहता जाता था कि हा राम! इनमें कौनसे ऐसे गुण हैं जो हममें नहीं हैं? फिर ये क्यों इतने बढ़े चढ़े हैं कि आज जगत्में इनकी तूती बोलती है। पासमें एक पुलीस वालेको गुजरते देख मेरा स्वप्न टूटा। उसकी कमरमें तलवार लटक रही थी। बस उसीने सारा स्वप्न भंग कर दिया। एक बार ध्यानमें आ गया कि यह स्वतन्त्र जाति है। यहाँ आबालवृद्ध-वनिता सब तलवार बांधते हैं। फिर तो सभी बातें स्पष्ट समझमें आगयीं और उन्नतिका रहस्य खुल गया। स्वतन्त्रता देवी तुझे सादर प्रणाम! अस्त्ररूपी दुर्गे! तुम्हें भी प्रणाम! तुम दोनों मिल कर सभी कुछ करनेकी शक्ति रखती हो।

अब मेरी रिक्शा टामस कुकके कार्यालयके बाहर पहुंच गयी। मैं भी वहां जाकर अपने कार्यसे निपट कर रेलवरकी ओर चला। रेल-घरपर कुकके मनुष्यने पहिलेसे ही गाड़ी और असबाबका प्रबन्ध कर रक्खा था। मैं जाकर गाड़ीमें बैठ गया और मनही मन विचारने लगा कि जो नगर अभी संवत् १९११ में जब कामाडोर

† यह एक प्रकारकी दो पहियोंकी गाड़ी है जिसको एक आदमी खींच कर चलाता है, ठीक उसी प्रकारकी जैसी कि शैलनिवासी महाशयोंने शिमलेमें देखी होगी।

पेरी यहां आया था मामूली मनुष्योंका ग्राम था, वह आज संसारका एक विशाल बन्दरगाह कैसे बन गया। अन्तरात्माने कहा उसी प्रकार जिस प्रकार संवत् १८१४ का मुर्शिदाबाद आज उजड़ गया और उसी समयका मामूली नगर लन्दन आज संसार का प्रधान नगर हो उठा। क्या आज किसीको इसका विश्वास होगा कि संवत् १८१४ में मुर्शिदाबाद उस समयके लन्दनसे पांचगुना बड़ा था और क्लाइव उसे देखकर उसकी उन्नति और उसके विभवपर ऐसा मुग्ध हो गया कि उसके मुंहसे लार टपक पड़ी थी। इन्हीं महाशय क्लाइवका यह कथन है कि मुर्शिदाबादके सामने लन्दन एक नाचीज़ ग्राममात्र है। संसारका यही हाल है। जो कल राजा था आज रंक है; जो कल बर्बर था वह आज संसारका शिरोमणि है; आज जिसके आगे संसारके बड़े बड़े राजा सिर झुकाते हैं कल उसके वंसमें भी कोई नामलेवा रहेगा कि नहीं सो कौन जाने? ठीक ही है "एक लख पूत सवा लख नाती, सोइ रावण घर दिया न बाती।"

मैं अपने विचारोंमें ही मग्न था कि गाड़ी चल दी, मैं भौंचक्का हो इधर उधर ताकने लगा। स्टेशनका दृश्य तिरोभूत होनेके बाद जान पड़ने लगा कि हमारी रेल सियालदह स्टेशनसे डायमण्ड हार्बरकी ओर जा रही है। वैसी ही छोटी छोटी झोपड़ियाँ, वे ही धानके खेत, उसी प्रकार सिर पर पत्तेकी बड़ी टोपियाँ पहिने खेतिहर खेतोंमें काम करते हुए दिखायी दिये। फर्क इतना ही था कि झोपड़ियां जरा साफ सुथरी देख पड़ती थीं। काम करनेवाले मनुष्योंके शरीरोंपर साफ कपड़े देख पड़ते थे और हाथमें औजार भी अच्छे जान पड़ते थे।

यहां भी गाड़ियोंमें वही चार दर्जे हैं। तीसरे दर्जेमें यहां भी ठसाठस भीड़ रहती है। स्टेशनोंपर यहां भी पीठपर बच्चोंको बांधे हाथ या कन्धे पर असबाब लटकाये स्त्रियाँ इधर उधर गाड़ीमें चढ़नेको दौड़ती हैं। पोर्टमेंटो, सूटकेस, ट्रंक हैंड-बैग इत्यादि यहां नहीं देख पड़े। यहां असबाबकी श्रेणीमें अधिकांश गठरी व गठरोंके ही दर्शन मिले। हैट, बूट, कोट, पतलून चुरुटधारी गिटपिट करते हुए, गरीबों-को धक्का दे आगे निकल जाकर कुलियोंको गाली देनेवाले साहब या बाबू जातिके जन्तु यहां नहीं दीख पड़े। प्रायः यहाँ सभी बड़े छोटे अपने जापानी, कियमोनों ही पहिने हुए देखे गये। यह एक प्रकारका लम्बा चोंगा या मिश्रियोंके डालावियाकी भांतिका पहिनावा है। अधिकांश लोगोंके पैरोंमें एक प्रकारकी खड़ाऊं थी और बहुतोंके जापानी सीकोंकी चट्टियाँ थीं। माथा खुला था या सीकोंको अंगरेज़ी टोपीसे सुशोभित था। भाषा सभी जापानी ही बोलते थे। यह स्वदेशी या सादापन देख जातिकी महत्ताका प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया। देखते देखते टोकियो आ पहुंचा। यहांकी सुविशाल इमारतें योर-अमरीकाके ढंगपर बनी हुई हैं।

स्वाधीन जापानका संक्षिप्त इतिहास।

जो कुछ नीचे लिखा जाता है वह योर-अमरीकाके मतके अनुसार श्रीयुत मरेकी जापान विषयक हैंडबुकसे उद्धृत किया गया है। कतिपय जापानी लोगोंका मत इससे कुछ भिन्न है जिसका ज़िक्र अन्यत्र फिर कभी होगा।

जापानी जातिके प्रारम्भिक इतिहासके सम्बन्धमें नितान्त अन्धकार है। उस समयका पता भी ठीक ठीक नहीं लगता जब कि यह जाति इस द्वीपमें आकर बसी।

इस जातिका विश्वस्त इतिहास विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीके बाद प्रारम्भ होता है। उस समय सारा देश मिकादो उपाधिधारी राजाके शासनमें था। यह राजवंश अपनी उत्पत्ति सूर्य देवीसे बताता है जिसे यहांकी भाषामें "अमाटेरासू" कह कर पुकारते हैं।

राजवंशका शासन प्रायः समस्त देशपर था। केवल उत्तरका कुछ भाग "एनो" नामकी जातिके अधीन था। इस समय यहां चीनी सभ्यताका प्रचार प्रारम्भ हो चुका था और यहाँकी असभ्यता धीरे धीरे दूर हो रही थी। इस सभ्यताके प्रचारक बौद्ध धर्मके भिक्षुक लोग कोरियासे यहाँ आये थे। उस समयके बादका इतिहास मोटी तरहसे अमीर, उमराव तथा राजाओंके एक दूसरेके बाद चढ़ने-उतरनेका हाल है। ये लोग यद्यपि मिकादोको प्रधान दैवीपुरुष मानते थे पर वस्तुतः राजपाटकी बागडोर इन्हीं उमरावोंके हाथमें थी।

विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीके मध्यमें 'पुरातन' एक-शासकपद्धति बदलकर 'सामन्त' पद्धतिके रूपमें आगयी अर्थात् राजाके हाथसे प्रधान शक्ति निकल उमरावोंके हाथमें आ गयी। इन उमरावोंमेंसे "मिनामोटो" घरानेका 'योरीटोमो' नामका जमींदार अपने बाहुबलसे अपना सिक्का जमाकर सबका सरदार बन बैठा।

इसने "शोगून"की उच्च उपाधि भी धारण कर ली। इस शब्दका अर्थ लैटिन भाषाके इम्परेटर अर्थात् 'आदेशक' सा है। इस प्रकार दुहरी शासन-प्रणालीका जन्म हुआ जो प्रायः संवत् १९२४ तक बनी रही। इस शासनकालके समयमें मिकादो नाममात्रका राजा था और "कियोतो" नामकी पुरानी राजधानीमें एक प्रकार कैदसा था (ठीक अवस्था वैसी ही थी जैसी आज दिन नैपालमें है)।

राजाके हाथमें कुछ अधिकार नहीं था, सब अधिकार शोगूनके हाथमें था और ये अपने अनेक सामंतों और अस्त्र-शस्त्रधारी बबुआओं व ठाकुरोंके सहित भरे पूरे राज्य-कोषको ले नयी राजधानीमें जापानके पूर्वमें बैठे देशका शासन करते थे। यह राजधानी पहिले "कमाकूरा" में फिर "येदो" में थी। अन्तके समयमें जब कि 'मिनामोटो' घरानेके शोगून शासन कर रहे थे उस समय वास्तविक अधिकार इनके हाथसे भी निकलकर 'होजो' घरानेके ठाकुरोंके हाथमें चला गया था। इस प्रकार वास्तविक शासनका क्रम तेहरा हो गया था।

'होजो' घरानेका शासन इस बातसे चिरस्थायी हो गया है कि उस कालमें मंगोल जातिके "कुबलई खाँ"ने जापान फतह करनेको जो बेड़ा भेजा था उसे उन्होंने मार हटाया था। उसी समयसे आज तक किसी भी शत्रुकी हिम्मत जापानको विजय करनेकी नहीं हुई। यह समय १३वीं शताब्दीका था।

'होजो' घरानेसे भी अधिकार निकल "अशिकागा" घरानेके शोगुनोंके हाथमें चला गया। यह शासन-काल संवत् १३९४ से १६२१ तक रहा। इस समय शिल्प अर्थात् सभी प्रकारकी उत्तम कलाओंका मान बढ़ा व राज्यद्वारा उनका संरक्षण भी हुआ।

सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें देशमें प्रायः अराजकताकी प्रधानता रही । इस समय "नोबुनागा" व "हिदयोशी" जो दोनों शोगुन न थे, अपने बाहुबलके कारण एक दूसरेके बाद प्रधान अधिकारी बने ।

"हिदयोशी"ने यहाँतक हाथ बढ़ाया कि १६४८ में कोरियाको जीत लिया । चीनकी विजयका भी विचार वह कर ही रहा था कि १६५४ में मृत्युने उसे धर दबाया, उसके मनका मनसूबा मनमें ही रह गया ।

"हिदयोशी"के प्रधान सेनापति "टोकुगावाईमासू"ने "हिदयोशी"की मृत्युके उपरान्त "शेकीगाहारा"की प्रधान विजयके बाद जो उसे संवत १६५६ में प्राप्त हुई थी जापानको अपने अधिगत कर लिया । अन्तमें संवत १६७१ में ओसाकामें उसने अन्य सब पट्टीदारोंको हरा कर एक शोगुन वंशकी स्थापना की जिसका अधिकार १९२४ तक बना रहा । इस वंशने प्रायः २५० वर्षतक निष्कंटक राज्य किया ।

इस वंशने इसके फलको निष्कंटक प्राप्त करनेके मिस ईसाई पादरियोंको देशमे निकाल बाहर किया और विदेशी व्यापारियोंका भी देशमें आना बन्द कर दिया । केवल नागासाकोमें किसी किसी विदेशीको आनेकी आज्ञा थी । सिवाय डचोंके और किसी यूरोपियन जातिको यहाँ व्यापारका अधिकार नहीं था व डच भी देशके भीतर नहीं घुसने पाते थे । यह एक प्रधान कारण था कि यह छोटासा टापू इनके दाँतसे बच गया ।

अन्तमें संवत् १९०९ में अमरीकाके राज्यने कमोडोर पेरीकी अध्यक्षतामें एक बेड़ा भेजा और जापानसे इस एकान्तवासके सिद्धान्तको जबरन त्यागनेके लिये कहा ।

इस अन्तिम धक्केने शोगुनकी भीतरसे खोखली शक्तिको आखिरी धक्का पहुंचाया, जिसने ऊँटकी पीठ तोड़नेमें तृणके अन्तिम मुट्ठेका कार्य किया । शोगुन-की शक्तिका इससे ह्रास हो गया व अपने डूबनेके साथ वह जापानी माध्यमिक कालकी सभ्यताके तन्तुओंको भी घसीट ले गयी ।

इसका फल यह हुआ कि एक ओर तो शासनकी लगाम मिकादोके हाथमें आ गयी व दूसरी ओर योर-अमरीकाकी सभ्यताका प्रभाव सभी प्रकारके विचारोंमें फैल गया । इसका प्रभाव यह हुआ कि सारा जापानी साम्राज्य आधुनिक विचारोंसे प्रेरित हो नवीन विचारोंको ग्रहण कर अजेय बन गया ।

यही नहीं कि दर्बारने योर-अमरीकाकी राहो-रस्म अख्तियार कर ली बल्कि प्रशिया (जर्मनी) की पद्धतिके अनुसार जापानमें संवत् १९४५ में प्रजातन्त्र राज्य भी स्थापित हो गया और १९४६ में प्रथम 'डायट'की बैठक भी हो गयी । अब इसका अधिवेशन प्रति वर्ष होता है ।

इस कालमें जापानके वाणिज्य-व्यवसायकी भी असाधारण उन्नति हुई है और नये ढंगसे सेनाके सुधार व जल-सेनाकी नवीन रचनासे जापानकी शक्ति भी बढ़ गयी है यहां तक कि रूसको पराजित करनेके बाद आज यह प्रथम श्रेणीकी शक्तियोंमें गिना जाने लगा है ।

जापानने निम्नलिखित भिन्न भिन्न देशोंपर भी अपना अधिकार जमा लिया है--लूचूद्वीप, फारमुसा, कोरिया व मंचूरिया ।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

स्वाधीन एशियाकी राजधानीमें प्रवेश ।

आज ज्येष्ठकी २५ तारीख है। कोई चौदह मास पूर्व अर्थात् २५ चैत्रको पराधीन एशियाके छोर मुम्बई नगरको छोड़ा था। आज स्वाधीन एशियाकी राजधानी तोकियोमें प्रवेश किया है। मुम्बई छोड़ते समय प्यारे स्वदेश तथा बन्धुबान्धवों और इष्ट-मित्रोंको अन्तिम प्रणाम करते हुए आँखोंमें विषादसे आँसू आ गये थे। दूर तक जहाज़परसे ताजमहल होटलकी पताका दिखायी देती थी। तोकियोमें प्रवेश करते समय स्वदेशकी समता देख तथा देशको स्वाधीन पाकर हर्षके अश्रु आँखोंमें भर आये।

तोकियोमें मुम्बईकी सी ऊँची ऊँची अटारियाँ नहीं हैं और न हाटबाटमें ही उतनी भीड़ रहती है। जोड़ी, चौकड़ी व मोटर गाड़ियोंसे भी यहां दबनेका डर नहीं है क्योंकि वे दिखायी ही नहीं पड़तीं। यहाँके लोग सीधे-सादे, देशी कपड़े पहिने व पैरमें पौला पहिने, खटखट शब्द करते कीचड़से भरी सड़कोंपर इधर उधर घूमते हैं। यहाँ रात्रिमें सड़कों और बाजारोंमें मुम्बईका सा प्रकाश भी नहीं होता। यहाँ चौपाटी व अप्पोलो बन्दरका भी दृश्य नहीं है। फिर क्या है? है स्वतन्त्रता, स्वराज्य व स्वाधीनता। मनुष्योंके माथे ऊँचे हैं। उनमें अपनी शक्तिपर विश्वास है। उनकी आँखोंसे मनुष्यत्व टपकता है। वे देखनेसे ही जीवित, जागरित जातिके तन्तु मालूम पड़ते हैं। वे भूखसे क्षुब्ध, कालसे पीड़ित तथा प्लेगसे डरे हुए नहीं जान पड़ते। दूसरोंके प्रति उनमें सम्मानके भावकी कमी नहीं है। उनमें क्लैब्य एवं दैन्यका नितान्त अभाव है। मकान, झोपड़े, राजप्रासाद सभी यहाँ खपड़ोंसे छाये हुए ग्रामीण दृश्य जैसे दिखायी देते हैं, पर उनके भीतर सफाई रहती है। इन आनन्दपूर्ण स्थानोंमें ऋद्धि-सिद्धि भरी पूरी रहती है। उनके भीतर रहने वाले पढ़े-लिखे आत्मगौरवधारी मनुष्य हैं। सारांश यह कि यहाँ वह वस्तु है, वह स्वाभाविक प्रकाश है, कि यदि एक ग्रामीणको भी अचेत कर भारतसे यहाँ लाकर सचेत कीजिये, तो वह भी सचेत होते ही, साँस लेते ही, वायुकी गन्धसे आंखें खुलते ही, आकाशके दर्शनमात्रसे ही, कह उठेगा कि मेरे हाथ-पैरकी बेड़ियाँ कहाँ गयीं? हे स्वाधीनता देवीके मन्दिर तोकियो नगर! तुम्हें नमस्कार है।

उपर्युक्त ध्यानमें निमग्न होकर मैं स्टेशनसे रिक्शापर सवार चला आता था। ज्योंही मेरी रिक्शा गाड़ी एक बड़े मकानके सामने खड़ी हुई त्यों ही मेरा ध्यान भङ्ग हुआ। जिस गृहके सामने मेरी रिक्शा रुकी वह यहाँका प्रधान वासगृह "सुकीजी सियोकेन" होटल था। मेरे उतरते ही एक दरबानने आकर जोहार करनेके उपरान्त मेरे हाथसे छाता व फोटोका कैमेरा ले लिया। उसके साथ मैं भीतर गया, वहाँ एक पुस्तकपर नाम लिखनेके बाद मुझे एक कमरा दिखाया गया। मैं उसमें जाकर

सियोकन होटल. सूकीजी टोकियो (पृष्ठ १८८)
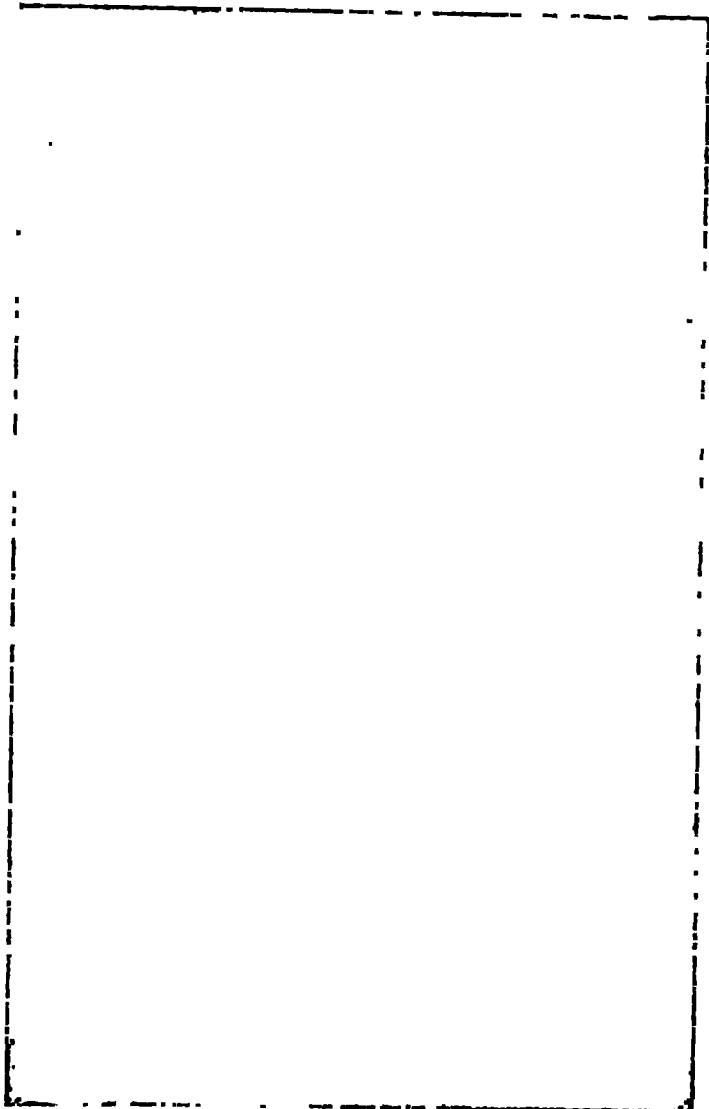
कपड़े उतार थोड़ी देर विश्रामके लिये बिस्तरपर लेट गया । घंटे भरके उपरान्त कपड़े बदल कर नीचे उतरा ।

अब भाषाकी समस्या उपस्थित हुई। यद्यपि यहांपर अंगरेज़ी जाननेवाले कर्मचारी हैं, पर वे इतनी अंगरेज़ी नहीं जानते कि उनसे भली भांति बातचीत की जाय। सौभाग्य अथवा दुर्भाग्यसे हमारे देशमें शिक्षा विदेशी भाषा द्वारा होती है। इससे यदि ऐसा कहा जाय कि भारतीय पढ़े-लिखे मनुष्य अपनी मातृ-भाषाकी अपेक्षा अंगरेज़ी अधिक जानते हैं तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि बहुतेरे तो ऐसे भी हैं जिन्हें अपनी भाषा भी नहीं आती। मैं भी इसी श्रेणीका एक नराधम हूं। इससे अबतक इङ्गलैंड और अमरीकामें मुझे इसका ध्यान भी नहीं आया था कि मेरी भाषा देशवासियोंकी भाषासे भिन्न है। देशमें मैं यही जानता था कि मुझे अंगरेज़ी लिखना बोलना नहीं आता व देशकी रीतिके अनुसार यह ठीक भी है पर यहां इङ्गलैंड व अमरीकामें प्रायः प्रति दिन यह सुन सुन कर कि "आपने अंगरेज़ी कहां सीखी, आप तो इसे बड़ी सफाईसे बोलते हैं" मुझे कुछ अभिमान सा हो आया है। इसका कारण यह है कि यहांके बड़े बड़े अध्यापक लोग भी जो विदेशी भाषाके शिक्षकका कार्य करते हैं, विदेशी भाषा सफाईसे नहीं बोल सकते। इससे उनको विदेशी भाषाके सीखनेकी कठिनाई याद है। यदि उनके सामने कोई विदेशी उनकी भाषा भली भांति बोले तो उन्हें आश्चर्य होता है; यदि वे इसका रहस्य जान जायँ तो उनका भ्रम दूर हो जाय। यदि उन्हें मालूम होजाय कि पांच वर्षकी अवस्थासे लेकर बीस वर्षकी अवस्था तक तोतेकी भांति हमें राम राम ही रटना पड़ता है तो उन्हें इसका विस्मय इससे अधिक न होगा जितना एक मनुष्यको पालतू तोतेको राम राम कहते सुनकर होता है।

पर यहां जापानमें स्थिति भिन्न है। यहांके लोग अंगरेज़ी विदेशियोंके साथ कार्यके मिस सीखते हैं। शायद कोई कोई अध्यापक साहित्यके प्रेमसे भी विशेषरूपसे अंगरेजी सीखता होगा। इससे उन्हें स्वाभाविक रूपसे अंगरेजी बोलनेमें कठिनाई होती है। इन्हें अपना मतलब समझानेके लिये टूटी-फूटी भाषामें बोलना पड़ता है। किन्तु किसी न किसी भांति काम निकल ही जाता है। यहां पहुंचनेके बादसे ही थोड़ी थोड़ी वर्षा आरम्भ हो गयी थी। इससे साँझ तक घरमें ही रहना पड़ा। पांच बजे बाहर जानेका इरादा किया। होटलके क्लर्क महाशयसे एक रिक्शा मंगानेके लिए कहा और उनसे अनुरोध किया कि वे मुझे शहरकी सैर करा लानेके लिए रिक्शावालेसे कह दें।

रिक्शा आयी और मैं सवार होकर चला। रिक्शावाला आम सड़क छोड़ गलियोंमेंसे होकर चला। गलियां कैसी थीं यह कहना कठिन है। छोटे छोटे खपड़ेके मकान, गलीके दोनों ओर गन्दे पानीकी खुली नालियोंकी बदबूसे जो कुछ होता है, सभी मौजूद था। उसपर तुर्रा यह कि रिक्शावाला एक बात भी नहीं समझता था।

थोड़ी देरमें एक मन्दिरके पास पहुंच मैं रिक्शासे उतर पड़ा। जिस प्रकार लखनऊके चौकमें शामको सवारी नहीं जाती, वही हाल यहांका भी था। दोनों ओर दूकानें थीं। राहमें यात्रियोंकी बड़ी भीड़ थी; खैर मैं किसी तरहसे मन्दिर तक पहुंचा,

मन्दिर बन्द था, बाहरसे ही भक्तगण नमस्कार करते थे। मैं भी थोड़ी देर इधर उधर चक्कर लगा कर लौटा और रिक्शापर सवार हो गया। अबकी मैं "जोशीवाड़ा" पहुंचा। यह तोकियोका चकलाघर है। इसे लन्दनकी पिकाडली समझना चाहिये भेद यही था कि यहां वेश्याएं उसी नाममें झुण्डकी झुण्ड मकानोंमें सज धज कर बैठी थीं पर पिकाडलीमें सभी घूमनेवाली स्त्रियाँ रंडीके ही कामके लिये अपना शिकार खोजती फिरती हैं। मुम्बईकी सफेद गलीसे भी इसका मुकाबिला किया जा सकता है। जगह साफ थी और यहांकी और सभी बातें भी सुथरी थीं। मैंने रिक्शावालेको यहांसे फ़ौरन होटल लौटनेके लिये कहा। पर एक बार इसे देखनेकी इच्छा हुई। रिक्शा गाड़ी भीतर गयी, मैं चारों ओर घूम फिर कर बाहर आया। यह जगह काशी-की कुञ्जगलीकी भांति खिड़कीबन्द है। एक ओरसे ही भतर जानेकी राह है, भीतर अनेक गलियां है। इसकी सजावट मनोहारिणी है।

लौटकर होटलमें भोजन किया और आजका दिन समाप्त हुआ।

यह जोशीवाड़ा तोकियोका प्रसिद्ध स्थान है। इसके विषयमें "दि नाइटलेस सिटी" अर्थात् "रात्रिहीन नगर" नामकी एक पुस्तक है। इसके देखनेसे यहांका सब रहस्य मालूम होता है।

आज मैं घरसे कुछ गर्मीके कपड़े खरीदने और बंकसे रुपये लेनेके लिये निकला। पहिले "मितसुकोशी" की दूकानपर पहुंचा। यह सुविशाल दूकान अमरीकाके ढाँचेपर बनी है। वहींके सदृश इसका नाम भी "डिपार्टमेंट स्टोर्स" है। दरवाजेपर पहुंचते ही एक मनुष्यने हमारे जूतेपर कपड़ेकी खोली पहिना दी। यहां जापानमें आप किसी मनुष्यके घरमें जूता पहिने नहीं जा सकते। यहांका दस्तूर ठीक भारतवर्ष-कासा है। जमीनपर चटाईका फ़र्श होता है। उसीपर लोग बैठते हैं। भीतर जानेके लिये जूता उतारना होता है। वही इन्तज़ाम इस बड़ी दूकानमें भी है। इसके भीतर भी हर प्रकारकी वस्तु मिल सकती है। यहां भी ऊपर नीचे जानेको 'लिफ्ट' व चल-ती हुई सीढ़ियां हैं। ऐसी सीढ़ियाँ प्रथम मैंने लन्दनमें देखी थीं। सीढ़ीपर आप खड़े हो जाइये, वह आपको ऊपर लेकर चली जायगी।

इस दूकानसे होकर मैं बंकमें गया। दर्याफ्त करनेसे मालूम हुआ कि यहाँ चलते खातेमें हिसाब तो खोल लेंगे, पर चेक काटनेकी इजाज़त नहीं मिलेगी। खैर, मैं रुपये ले यहाँसे भी रवाना हुआ।

इसके बाद मैं 'मारूजन' नामी विख्यात पुस्तक विक्रेताके यहाँ पहुंचा। यह यहाँकी पुस्तकोंकी प्रसिद्ध दूकान है। यहाँ सब भाषाओंकी पुस्तकोंके भिन्न भिन्न विभाग हैं। यूरोपीय भाषाओंकी सभी उत्तमसे उत्तम पुस्तकें यहाँ मिलती हैं। इतिहास, दर्शन, राजनीति, साहित्य, गणित, रसायन, शिल्प आदि सभी विषयोंकी उत्तम उत्तम पुस्तकोंका सदा प्रकाण्ड संग्रह मौजूद रहता है। भारतवर्षमें एक भी ऐसी दूकान नहीं है जहाँ ऐसी उत्तम पुस्तकोंका इतना बड़ा संग्रह हो। कलकत्तेकी 'थैकर स्पिंक' और बम्बईकी सबसे बड़ी दूकान भी इसके मुक़ाबिलेमें तुच्छ है। इसका मुक़ाबिला लन्दनके 'टाइम्स बुक क्लब'से हो सकता है। इस दूकानके देख-नेसे ही यहाँके विद्यानुरागका पता लगता है। भिन्न भिन्न देशोंकी नूतनसे नूतन

योशीवाडा, तोकियो [पृ० १६०]

पुस्तकें आपको यहाँ इच्छानुसार मिल सकती हैं। इससे यहाँ ज्ञान समयके पीछे नहीं पड़ता। अभी अमरीकामें श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बारेमें वसन्तकुमार रायने एक नयी पुस्तक लिखी है। मैं जबतक वहाँ था तबतक वह छपी भी न थी किन्तु वही पुस्तक यहाँ मौजूद मिली। मुझे एक सप्ताह जो होनोलूलूमें लगा उतनेमें ही वह पुस्तक यहाँ आयी भी और बिककर समाप्त भी हो गयी। मुझे हाथ मलकर चुप ही रहना पड़ा। भारतवर्षमें अंग्रेज़ीकी नवीन पुस्तकोंको विलायतसे मँगाना पड़ता है। अन्य भाषाओंकी तो बात ही क्या है! मुझे बीसों बार थैकरने जवाब दिया है कि "पुस्तक भांडारमें नहीं है, कहिये तो मँगा दें।"

भारतवर्षमें दो बातोंकी बड़ी आवश्यकता है। एक तो विदेशी भाषाओंकी शिक्षा देने वाली पाठशालाओंकी जहाँ केवल भिन्न भिन्न देशोंकी भाषा सिखानेका प्रबन्ध हो और दूसरी ऐसे पुस्तक-भाण्डारोंकी जहाँ नवीनसे नवीन और उत्तमसे उत्तम पुस्तकें मिल सकें। यह अन्तिम अवस्था उस समय तक नहीं आ सकती, जबतक ऐसी पुस्तकोंकी माँग न बढ़े अर्थात् जबतक जनताकी रुचि उत्तम पुस्तकोंके पढ़नेकी ओर न हो। इसके लिये शिक्षाके क्रममें असाधारण उलट-फेर होनेकी परमावश्यकता है। इस समय हमारी शिक्षा केवल बाबू बनानेकी कल है। इसलिये वास्तविक शिक्षा प्रदान करनेका क्रम जबतक न चलाया जायगा तबतक ये सब बातें, बनमें रोनेके समान व्यर्थ ही हैं। इसलिये देशके नेताओंका कर्त्तव्य है कि व्यर्थके बकवादको और 'भिक्षां देहि' की नीतिको छोड़, विद्या-प्रचारके काममें लगें। शिक्षा भी आधुनिक रीतिके अनुसार उन सब विषयोंमें होनी चाहिये, जो एक ओर पेट पालनेके लिये वैशेषिक हो और दूसरी ओर ज्ञानवृद्धिके लिये भी उत्तम हो। उनका माध्यम मातृभाषा हो। सिवा इसके काम ही नहीं चल सकता। प्रचलित परीक्षा-प्रणाली भी बदलनी होगी। परीक्षा ज्ञानका अन्दाज़ा करनेके लिये होनी चाहिये, विद्यार्थियोंको फेल करनेके लिये नहीं। पर इसको करे कौन? अपने अधीन हो तब न सुधार हो?

छठवाँ परिच्छेद ।

तोकियो नगरकी सैर

आज घूम कर नगर देखनेके विचारसे एक दोभाषियेको बुलवाया । आपका नाम "चोजीरो निरीकी" है । बातचीत करनेसे मालूम हुआ कि आप पहिलें भी अन्य भारतीयोंके साथ दोभाषियेका कार्य कर चुके हैं । जब श्रीमान् बड़ौदा नरेश यहां पधारे थे, तब भी आपने श्रीमान्‌के दोभाषियेका कार्य किया था ।

दोभाषियेके आनेके उपरान्त गाड़ीका प्रबन्ध किया गया । गाड़ी आजाने पर होटलसे नगर देखनेके लिये चला । आज इन्द्रदेवकी कृपा थी । आकाश मेघाच्छन्न था । श्रावणकी नाईं वर्षाकी भी झड़ी लगी थी पर आज वर्षा मूसलधार न थी केवल टिपटिपवा ही था किन्तु सड़कोंपर कीचड़के कारण यहाँके नर-नारी पदारोही-गणने "गीता" (नीची खड़ाऊं) छोड़ "अशीदा" (ऊँचे पौले) की शरण ली थी। सभी-के पाँवमें यही विराज रहे थे। वर्षासे बचनेके लिये कोई हाथोंमें "अमागासा" (जापानी बरसाती छाता) और कोई "कोमोरीगासा" (मामूली योरअमरीकाके सदृश छाता) लगाये थे । बहुतसे गाड़ी खींचनेवाले या और काम करने वाले बिचारे धानके पुआल-की घोघी और टोपी ओढ़े वर्षासे अपना शरीर बचा रहे थे । आज रमणियोंके हाथमें भी सुन्दर "कोमोरीगासा" या "सिंगासा" (धूपका छाता) न था, उन्होंने भी मामूली "अमागासा"का सहारा लिया था । दोभाषियेने बताया कि ये सभी छत्र कागज़के बनते हैं।

जापानियोंने कागज़ बनानेमें बड़ी उन्नति की है । इन्होंने एक प्रकारके कागज़-का फीता बनाया है । यह बड़ा मज़बूत होता है । इससे रस्सीका काम लिया जाता है । यह इतना मज़बूत है कि जल्द नहीं टूटता । सुना है कि इन लोगोंने एक प्रकारका कागज़ बनाया है, जो न तो पानीमें गलता है, न आगमें ही जलता है । अब ये इस कागज़की पनडुब्बी नाव बनाने वाले हैं । यदि यह बात ठीक है तो इससे पनडुब्बी नावकी कलामें असाधारण परिवर्तनकी सम्भावना है ।

घरसे निकलते ही हम चश्मेकी एक छोटीसी दूकानपर पहुंचे । तख्तपर चटाई बिछाकर दूकानदार बैठे थे । चारों ओर अलमारियोंमें चश्मे और चक्षु-सम्बन्धी तरह तरहकी चीजें सजाकर रक्खी हुई थीं । दूकान बहुत सुथरी थी । मेरा चश्मा देखकर ही दूकानदार महाशय सब बातें समझ गये । न मैं उनकी बात समझा और न वे मेरी ; ताहम सब काम हो गया और हम आगे बढ़े । जिस तालके लिये कलकत्तेमें 'लारेन्सको' कमसे कम १५ रुपये देने पड़ते, वही यहाँ ७॥) को मिला। अमरीकामें भी इसका उतना ही मूल्य देना पड़ा । भारतमें ये विदेशी व्यापारी सभी चीज़ोंका दाम दूना, तिगुना लेते हैं, कारण यह है कि हमें अपने भाइयोंपर ,विश्वास नहीं है । हम इनके यहाँ अपनेको लुटवाने जाते हैं । हमारे भाई भी ज़रासे फ़ाय-देके लिये उलटी-पुलटी या खराब वस्तु बेचकर अपना नाम खराब कर लेते हैं ।

यहाँसे हम राजप्रासादकी ओर चले । यह राजप्रासाद पहिले पहल इआसू शोगूनेटके कालमें संवत् १६४६ में बना था । उसी समय शोगूनोंने मिकादोके हाथसे

राजप्रासाद

(पृष्ठ १९२)

The Cherry Blossoms at Uyeno park, Tokyo. 上野公園ノ桜 [東京名所]
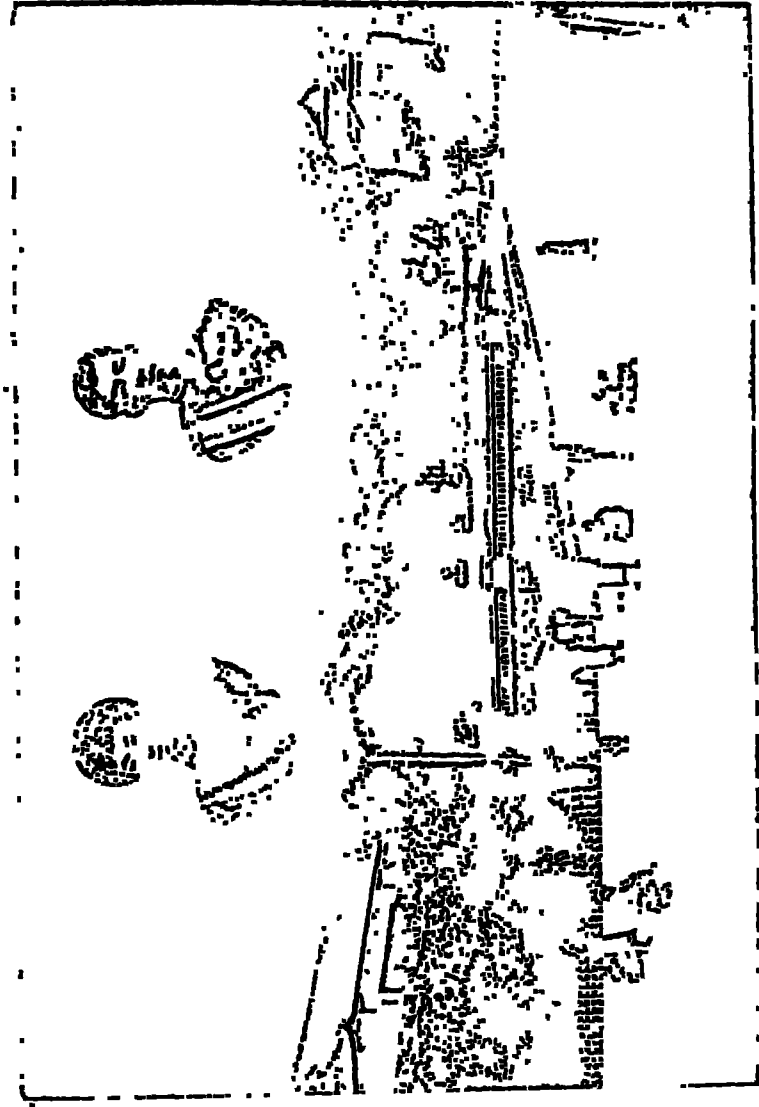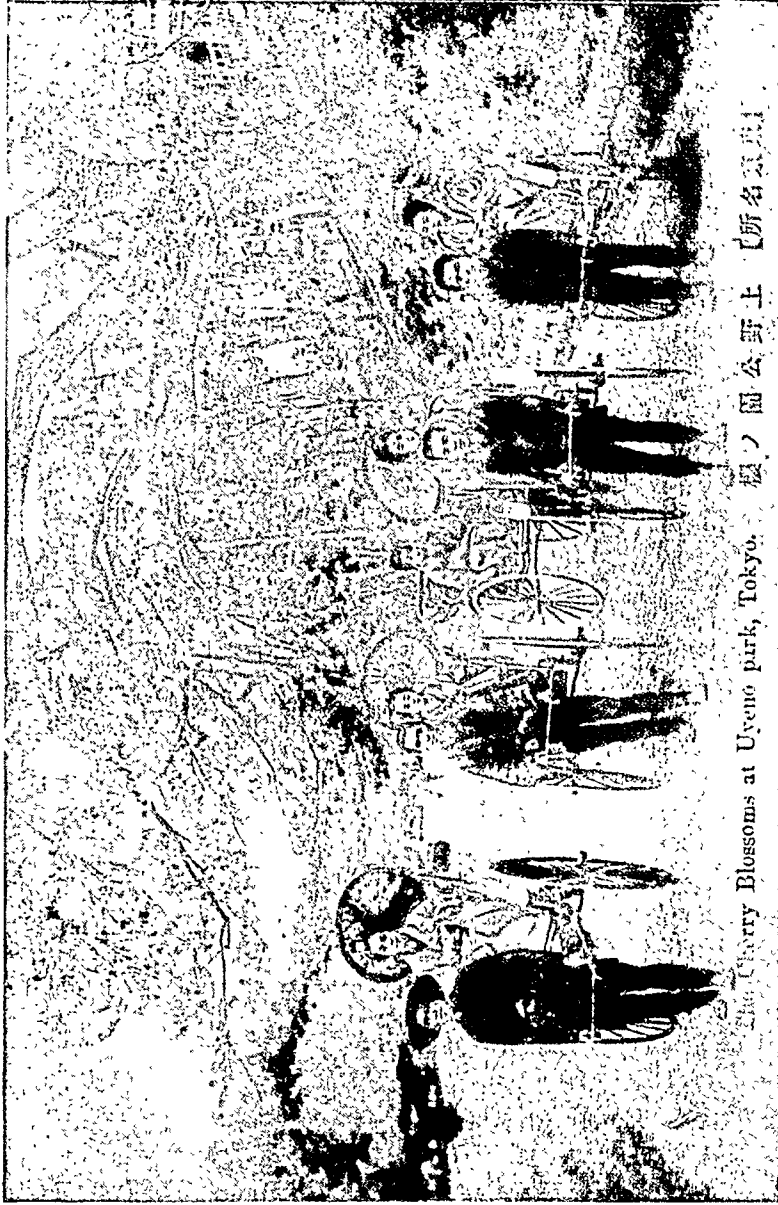
पद्मकाष्ठके कुसुमोंका दृश्य [पृ० १६३]

अधिकार लिया था किन्तु अधिकारको चिरस्थायी रखनेके लिये उन्हें नये स्थानमें रहना पड़ा। मेरी समझसे यह उनकी स्वतन्त्रता और सत्ताका कारण था। जिस प्रकार बंगाल व फैजाबाद और लखनऊमें रहनेके कारण वहाँके नव्वाब लोग दिल्लीकी मुगलिया सल्तनतसे एक प्रकारसे स्वाधीन हो गये थे उसी प्रकार इन शोगूनोंने भी मिकादोसे स्वतन्त्र रहनेके लिये 'कियोतो' छोड़ 'ईदो'को अपनी राजधानी बनाया। यही ईदो आजदिन तोकियोके नामसे प्रसिद्ध है और यहाँकी वर्तमान राजधानी है।
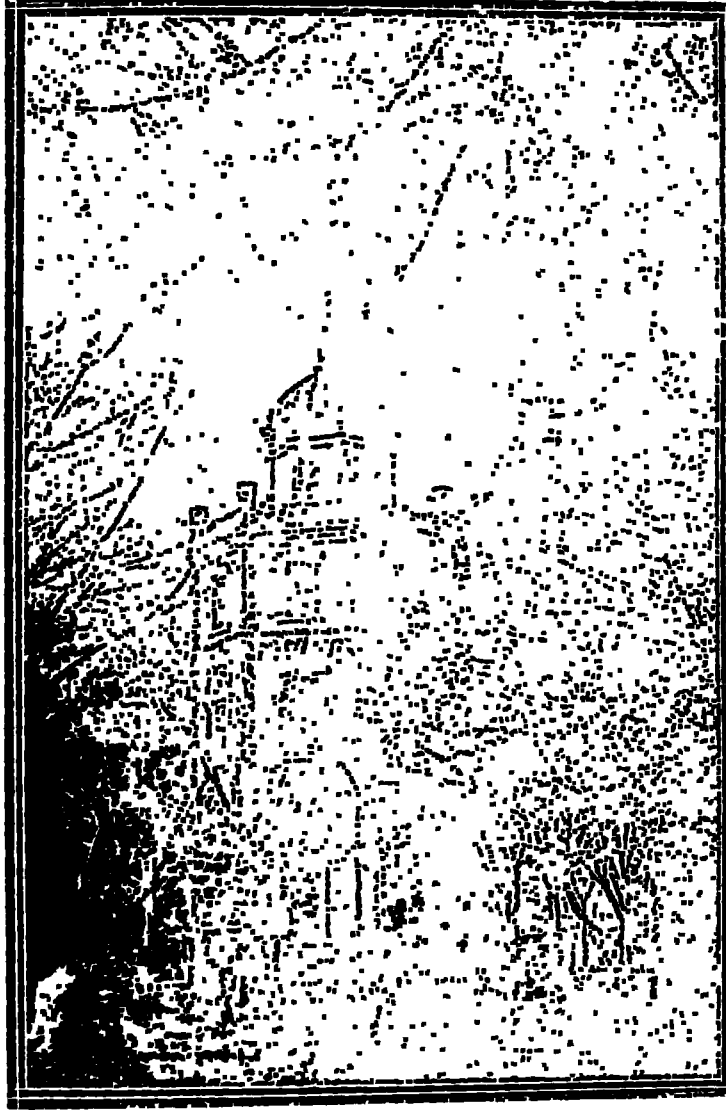
अतागो पहाड़ी।

पूर्वसमयमें सभी देशोंमें प्रायः राजप्रासादके चारों ओर खाइयाँ हुआ करती थीं। हमारे यहाँ भी यही रिवाज़ था और अब भी है। यहाँ भी राजप्रासाद तीन खाइयोंसे घिरा था, जो अभीतक मौजूद है। हम इस समय भीतरी खाईके पाससे गुजर रहे थे। यह राजमहल बाहरसे नहीं देख पड़ता, भीतर जाकर देखनेकी आज्ञा नहीं है।

यहाँसे चलकर हम 'अतागो' पहाड़ीपर पहुंचे। यह जगह बड़ी ही रमणीक है। जिस प्रकार चित्रकूटमें 'हनूमान' शिलापरसे मनोहर दृश्य दिखायी देता है, वैसा ही यहाँसे भी देख पड़ता है। वसन्तमें यहाँ दर्शकोंका खूब जमघट रहता है। पद्माकाष्ठ (चेरी ब्लासम) के कुसुमोंको देखनेके लिये यहाँ बहुत लोग आया करते

हैं। यहाँ पद्मके अनेक वृक्ष हैं। इनकी शोभा वसन्तमें मनोहारिणी होती होगी। मैं तस्वीरोंकी सहायतासे इसका अनुमान मात्र कर सका हूं। हाँ, आज यहाँ भारतवर्षके पावसकी छटा थी। चारों ओर हरे हरे वृक्ष पत्तोंसे भरे थे। झीनी झीनी बूँदें पड़ रही थीं। इधर उधर झूलनेके लिये झलुए भी पड़े थे। सभी वस्तुएँ श्रावणकी छटा दिखा कर हृदयको मुग्ध कर रही थीं। अहाहा! पावस ऋतुने मानों यहाँ अपना राज्य ही जमा लिया था।

यहाँ चनारके वृक्ष (मेपिल) भी बहुतायतसे हैं। इनकी छटा खिजांमें दर्शकोंको मुग्ध करती है। इन चनारोंकी तारीफ़में फ़िरदौसीने काश्मीर-वर्णनमें बड़ा ही उत्तम काव्य किया है।

यहींपर पहाड़के ऊपर शिन्तोका बड़ा ही उत्तम मन्दिर है। मन्दिरके भीतर कोई मूर्ति अथवा प्रतिमा नहीं है। उपासक लोग पहिले मन्दिरके बाहर भरे टंकेसे पानी लेकर हाथ, मुख धोते हैं और फिर मन्दिरके निकट आकर बाहरसे ही प्रणाम करते हैं। इस मतके अनुयायी जापानमें प्रायः सभी बाल-वृद्ध-वनिता हैं। अन्य मत ग्रहण करनेपर भी उपासनाके निमित्त लोग यहाँ आते हैं। यहाँ एक प्रकारकी वीर-पूजा या अपने देश तथा कुलके मृतजनोंकी पूजा होती है। शिन्तो धर्मको यदि हम पितृपूजा या वीरपूजा कहें तो अनुचित न होगा।

जिस प्रकार हमारे देशमें राम, युधिष्ठिर, कृष्ण, हनूमान इत्यादिके नामोंका स्मरण आते ही प्रत्येक हिन्दूका हृदय प्रेम व सत्कारके भावोंसे भर जाता है, उसी भांति यहां भी पुराने मिकादोके नामसे भक्तिका सञ्चार होता है। जिस प्रकार हम अपने श्रद्धाभाजन पुरातन वीरोंको ईश्वरका अंश मान अपने हृदयको उनका मन्दिर बनाते हैं उसी प्रकार यहां भी मिकादोको सूर्यका वंशज समझ ईश्वरके तुल्य उसका मान करते हैं। यह भाव संसारमें जहां कहीं मानव जातिके प्राणी रहते हैं वहाँ सर्वत्र पाया जाता है। अभी तक संसारमें किसी जातिने ईश्वरका वास्तविक पता नहीं पाया है। यह भी कोई दृढ़तासे नहीं कह सकता कि आया ऐसा कोई व्यक्तिविशेष है भी। स्वयं वेद भगवान् भी "नेति नेति" की आड़में शरण लेते हैं। वैज्ञानिक लोग आ आ कर प्रथम कारणपर रुक जाते हैं। वह क्या है, कहां है, कबसे है, इसका पता लगानेमें मानव-बुद्धि नहीं चलती। हाँ, कोई 'नहीं' कोई 'हाँ' कह देता है किन्तु सभी देशों तथा समयोंमें मनुष्योंकी यह प्रवृत्ति रही है कि अपने पूर्वजोंके गौरवका वे इतना मान करते हैं कि जब तक उन्हें ईश्वरी सिंहासनपर नहीं बैठा देते तब तक उन्हें सन्तोष नहीं होता और यह भाव जिन जिन जातियोंमें जितना प्रबल है उतना ही वह उन्हें देशके प्रेममें निमग्न करता है।

जापानमें देशभक्ति चरम सीमापर क्यों पहुंची है? यहां 'यामातो' सभ्यता-की रग रगमें स्वदेशप्रेम क्यों भरा है? प्रत्येक लड़ाकेके हृदयमें 'बुशीदो' भाव क्यों लहरा रहा है? यदि इसे जानना हो तो यहांकी सामाजिक व धार्मिक लहरका ज्ञान प्राप्त करना होगा और उस समय आपको विदित हो जायगा कि इसका कारण वही वीरपूजा है जिसकी लहर राजपूतोंके हृदयोंमें लहरा रही थी। वीर प्रतापने क्यों अपनी जान शिवालक पहाड़ियोंमें घूम घूम कर दी थी? क्या उन्हें पत्थर व मिट्टीसे प्रेम

शिवापार्कमें शोगूनका मंदिर (पृष्ठ १९५)
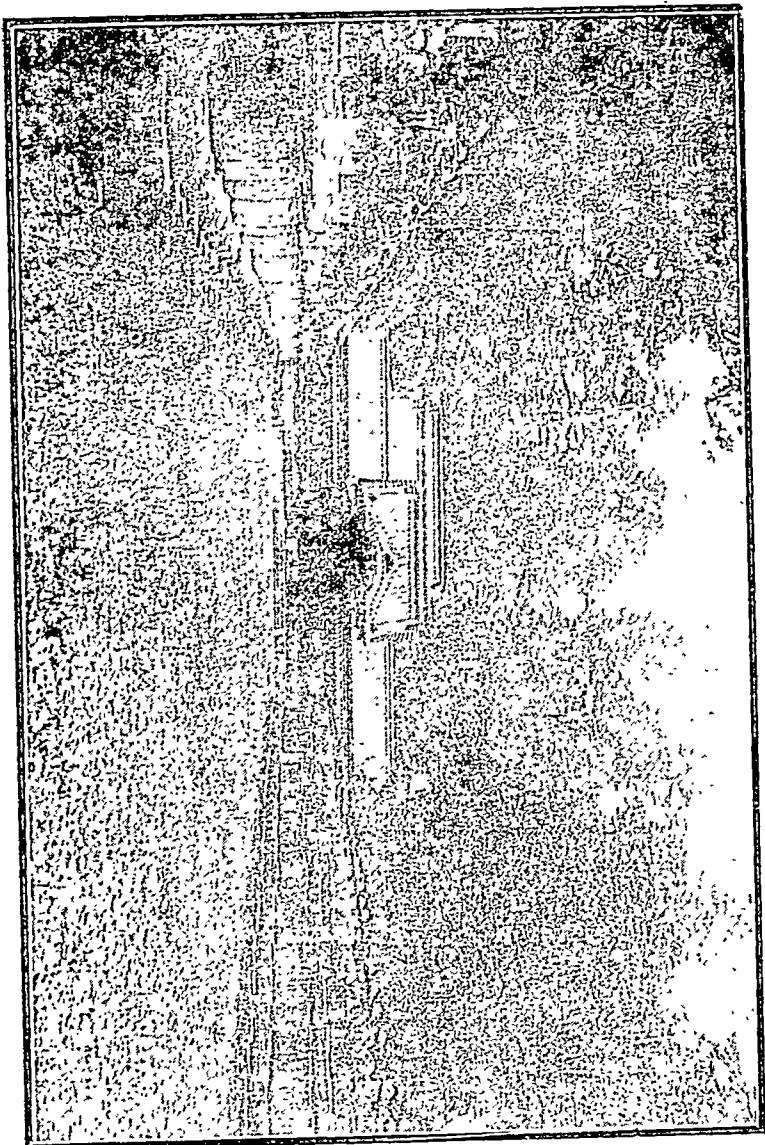
नानको शिला मूर्ति (राजप्रासादमें) (पृष्ठ १९६)

था ? नहीं, वरन् उन्हें उस सूर्यवंशकी लाज व उसके गौरवका लिहाज था जिसके वे अंग थे, उन्हें राजा राम व रघुकुलके नामकी लाज थी और वही उन्हें वन वनमें पत्ते चुनवाती थी। उन्हें मर जाना मंजूर था, पर यह नहीं भाता था कि रामके वंशज विदेशियोंके गुलाम कहलावें।

यही भाव सती पद्मिनीके साथ जल मरनेवाली उन वीर क्षत्राणियोंके हृदयको भी तरंगित करता था जिनकी चितासे आज दिन भी सहृदय भारतके सच्चे बालकोंको अग्निकी ज्वाला निकलती दिखायी देती है, और न जाने कब तक दिखायी देगी।

वीर जापानियोंके भाव भी उसी प्रकारके हैं। भारतमें इनको भली भांति जाननेकी बड़ी आवश्यकता है।

यहांसे हम 'सेगाकूजी' के मन्दिरमें आये। यह "४७ रोनीकी समाधि" के नामसे प्रसिद्ध है। अहा! यहां आते ही व यहांका वृत्तान्त सुनते ही चित्तौर व राजपूतानेकी एक एक बात याद आगयी। इनका वृत्तान्त यहां लिख देना उचित है। अठारहवीं शताब्दीके मध्यमें "किरायोशीहीदा" व "असानोनगानोरी" दो "डेमियो" थे। किरायो असानोसे कुछ बड़ा था। इनकी आपसमें चखाचखी चली आती थी। अन्तमें किरायोने असानोको मार डाला। असानोके वीर सिपाही "समुराई" जो "रोनी" के नामसे विख्यात थे, अपने प्रभु अथवा सरदारके वधका बदला लेनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हुए। इन्होंने संवत् १७५९ के २५ माघको 'ओईशी योशीयो' का नायकतामें 'किरा' के महलपर धावा कर दिया और अपने मालिककी हत्या करनेवालेको मार डाला। फिर वे उसका मस्तक काट अपने प्रभुके समाधिस्थानपर ले आये। उन्होंने पहले मस्तकको एक कूपपर धो डाला। यह कूप अभी विद्यमान है। फिर अपने प्रभुकी समाधिपर उसे समर्पण किया। इसके उपरान्त उन्होंने हँसते हँसते अपनेको अधिकारियोंके हाथमें सौंप दिया। उन्हें अधिकारियोंने प्राण-दण्डकी आज्ञा दी। इसको उन्होंने प्रफुल्ल मनसे स्वीकार कर लिया व वीर क्षत्रियोंकी नाईं सूलीपर न मर कर अपने हाथोंसे 'हाराकीरी' कर ली (हाराकीरी अपने हाथों अपना पेट चीर कर मरनेका नाम है)। इन्हीं वीरोंकी समाधि यहां है, और यह बड़ी प्रसिद्ध है। बाल-वृद्ध-वनिता सभी यहां आकर अगियारी देते हैं। मेरा भी हृदय भक्तिसे इतना भर उठा था कि मैंने भी श्रद्धा और भक्तिसे यहांपर धूप जलायी। यहांपर हर एक जापानीके हृदयमें वही भाव उठता होगा जो चित्तौरके किलेमें पद्मिनीकी चितापर राजपूतोंके हृदयमें उठता है। अहा! कैसा क्षात्रधर्म है, कितनी ऊंची प्रभु-भक्ति है। यही सब बातें हैं जो जापानी बालकोंको प्रभु और देशपर न्योछावर हो जानेको बाध्य करती हैं।

इन वीरोंकी समाधियोंके दर्शनके उपरान्त हम "शिवा" पार्कमें गये। यह जगह "जोजूजी" सम्प्रदायके बुद्ध मन्दिरके लिये प्रसिद्ध है। यहां संवत् १९३३ तक इस सम्प्रदायका प्रधान मन्दिर था। इसके बाद वह अग्निमें भस्म हो गया किन्तु उसका बड़ा फाटक जो शायद संवत् १६७९ में बना था, अभी तक मौजूद है। इस मन्दिरके फिरसे निर्माणकी व्यवस्था हो रही है।

बुद्ध सम्प्रदायके उक्त मन्दिरके अतिरिक्त यहाँपर 'तोकुगावा' वंशके 'शोगूनों' की समाधियाँ बहुतसी हैं। प्रधानतः दूसरे शोगून और उसकी दोनों रानियोंकी समा-

धियाँ देखने योग्य हैं। ये विशाल भवनोंके भीतर बनी हैं। ये भवन बड़ी ही सुन्दर कारीगरीसे बनाये गये हैं। लकड़ीकी मूरतोंके बनानेमें हद दर्जेकी कारीगरी दिखायी गयी है, काश्मीरकी तरह यहांका लाखका काम भी विशेष प्रशंसनीय है। जापान इस कार्यमें अपनेको दक्ष समझता है और इन मन्दिरोंकी कारीगरी इसका सबसे उत्तम नमूना है। इसे देखकर कारीगरीकी निपुणता और कलाकी उन्नतावस्थामें ज़रा भी शक नहीं होता। यहांके सिंह और व्याघ्रके चित्रोंको देख कहना पड़ता है कि इन्होंने इन जन्तुओंको कभी देखा नहीं था, कारण इन्हें देख उग्रताका बोध होता है सही; पर बाघ और सिंह पहिचाने नहीं जाते।'

स्वयम् 'शोगून'की समाधिमें अस्थिपात्र एक पत्थरके कमलके भीतर रक्खा है। यह कमल बहुत बड़ा और दर्शनीय है। इन समाधियोंके अहातेमें पत्थरोंकी लालटेनें रक्खी हुई हैं, जिनसे मथुराके विश्रामघाटकी तुलना व मिश्र देशक लुकसरके मन्दिर-के मेढ़ोंकी कत्तार याद आजाती हैं।

यहाँपर कपूरका पेड़ देखा, इस वृक्षकी पत्ती जामुनकी पत्तीके सदृश होती है। पत्तीमें कपूरकी सुगन्धि आती है और उसे खानेसे मुख कपूर खानेके समान ठंडा हो जाता है। फारमुसा द्वीपमें कपूरका बड़ा काम होता है। चीनमें कपूरकी लकड़ीकी मंजूषाएं बनती हैं जिनमें वस्त्र रखनेसे फिर उनके कीड़ोंसे चाटे जानेका भय नहीं रहता। अभी तक कपूर, वृक्षको काट कर, लकड़ीसे निकाला जाता था जिससे वृक्षोंकी संख्या दिनों दिन घटती जाती थी, पर अब सुना है कि पत्तोंसे कपूर निकालनेके उपायका भी ज्ञान प्राप्त हो गया है। यदि यह बात ठीक है तो बड़ा ही लाभ होगा। कपूरकी मांग संसारमें कितनी है इसके बतानेकी आवश्यकता नहीं है। इतनी उपयोगी वस्तुके प्रसारकी भी बहुत आवश्यकता है।

जर्मनी भी विचित्र देश है। वहांके वैज्ञानिक विचित्र विचित्र वस्तुएं रसायन-की सहायतासे बनाते हैं। नकली नील बनाकर हमारे व्यापारका सत्यानाश जिस प्रकार किया गया वह देशवासियोंपर विदित ही है। ये लोग नकली रंग बनाते हैं, नकली कपूर बनाते हैं, यहां तक कि शीशेको मुलायम बनाकर उसका वस्त्र तक बुनते हैं। अब सुना है कि नकली अंडोंके बनानेकी भी तैयारी हो रही है, और कुछ बन भी गये हैं। वे विज्ञानकी बदौलत जो न कर डालें सो ही थोड़ा है। सरस्वती-की महिमा अपार है।

यहाँसे हम राजकुमारके महलके पाससे होकर निकले। बीचमें परलोकवासी महाराजकी रानीका भवन था। आपका भी परलोकवास विगत वर्ष संवत् १९७१ में हो गया। आप वर्त्तमान नरेशकी माता न थीं। वर्त्तमान नरेश महारानीके गर्भसे नहीं उत्पन्न हुए थे, आपकी पूजनीय माता विवाहिता रानी न थीं। यहाँ यह बुरा नहीं समझा जाता, वंश चलानेके लिये राजा और अन्य लोग भी ऐसा सम्बन्ध कर लेते हैं। हमारे यहाँ भी तो ऐसी ही प्रथा थी।

राजकुमारका प्रासाद आधुनिक रीतिपर बड़ा विस्तृत बना है। वास्तवमें यह वर्त्तमान महाराजके निवासके लिये बना था, जब कि आप कुमार थे। अब इसमें राजकुमार रहते हैं। देखनेसे यह बिलकुल लन्दनके बकिंघम महलके नमूनेपर बना
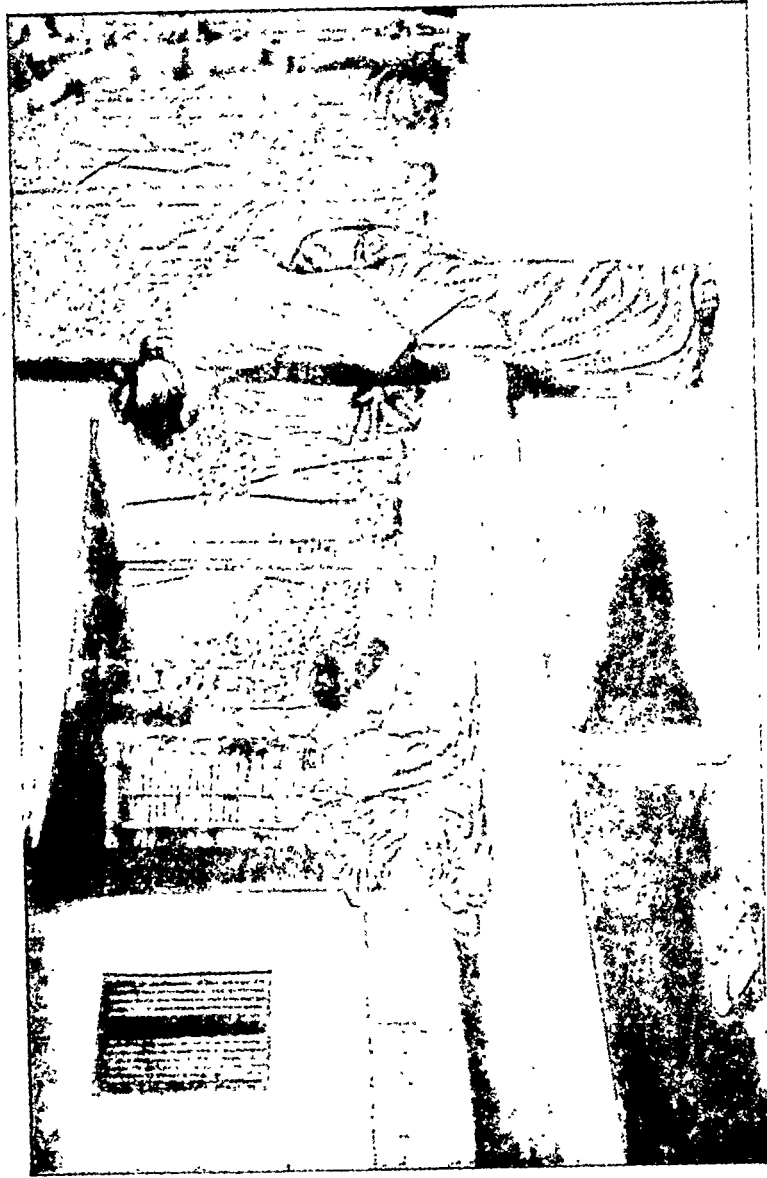
जापानमें प्रणाम करनेका ढंग

[पृ० २९३]

हुआ सा मालूम पड़ा। पर मेरे दोभापियेने कहा कि वास्तवमें यह फ्रांसके राजमहलकी भांति बना है।

अब दो बज गये थे, हमलोग एक जापानी उपहारगृहमें भोजनार्थ गये। यहाँकी नौकरानियाँ हमें एक सुन्दर साफ कुटीरमें ले गयीं। यह बड़ा ही सुहावना छोटासा बंगला था, सब कुछ लकड़ीका ही बना था। दरवाजे सभी काठके थे, शीशेकी जगह कागज लगे थे, जापानियोंके घरोंमें यही रिवाज है। इस बैठकेके चारों ओर बरामदा भी था। यह बैठका वृक्षों और झाड़ियोंके बीचमें एक प्रकार छिपा सा था। इस समय पानी बरस रहा था, ऐसे समयमें यहाँ कैसी शोभा थी, सो कहना कठिन है। पावस ऋतुका पूरा आनन्द आता था। बैठनेका प्रबन्ध चटाइयोंके फर्शपर था जिसपर एक चौखूटी छोटी गद्दीपर बैठना होता है, यही रिवाज़ यहाँ सभी घरोंमें है। बैठना भी यहाँ दोजानू होकर चाहिये, पलथी मारकर बैठना असभ्यताका द्योतक समझा जाता है।

हमारे बैठनेके उपरान्त नौकरानीने माँजे हुए पीतलके साफ और उत्तम डब्बेके ढँकनेके सदृश कटोरेमें पानी लाकर रख दिया। हाथ धोकर जब हम भीतर बैठे तो सिगरेट और एक लकड़ीकी छोटी सी सन्दूकची जिसमें एक पुरवे जैसे पात्रमें राखके बीचमें एक आगका अंगार और बाँसकी पुपली थी, नौकरानीने ला रखी। यह आग सिगरेट जलानेके लिये थी और पुपली थूकनेके लिये। सभी वस्तुएं साफ और सुथरी थीं। राख भी हाथसे दबाकर बड़ी साफ बनायी हुई थी।

थोड़ी देर बाद जापानी चाय आया। यह एक प्रकारकी बहुत हलकी चाय होती है। रंग नीबूके छिलके सा होता है। इसमें दूध या शक्कर नहीं डाली जाती। सब जापानी घरोंमें आगन्तुकोंको पानकी जगह चाय दी जाती है। चायके साथ एक प्रकारका लम्बा सेवकी भांति चावलोंका बना हुआ बिस्कुट भी आया। यह जापानी था, इसमें अण्डेका लेश नहीं था और न चर्बीसे ही इसका मार्जन हुआ था। इसका स्वाद अच्छा था, हमने इसीपर पहिले हाथ साफ किया।

अब भोजन आया। नौकरानियां जब जब आतीं जातीं तब तब दोजानू बैठ ज़मीनपर सिर नवा कर जुहार करती थीं। यह यहां सभी घरोंमें रिवाज है। आप किसीके घर जाइये, सभी जगह गृहस्वामिनी आपको इसी भांति आदर और सत्कारके सहित प्रणाम करेगी। जापानकी सभी बातें हमारे प्यारे देशकी याद दिलाती हैं।

भोजन एक काठकी किश्तीमें था, यह काठकी किश्ती भी लैकरके कामकी थी। किश्तीमें छोटे बड़े लकड़ीके प्यालेमें भोज्य पदार्थ थे। मुझे मूली, कमरखका अचार व अदी, अंगूरी, बैंगनकी कलौंजी जिसमें मूंगफलीका स्वाद था, खीरा और भात मिला, फिर मांगनेपर आलू भी मिले। खानेके लिये लकड़ीकी दो लम्बी लम्बी सींकें थीं। मैं उनसे नहीं खा सका इसलिये हाथसे ही खाने लगा। जापानी दोभापियेके लिये इन वस्तुओंके अतिरिक्त मछलीका पानीदार रस्सा और कच्ची मछली भी थी, जिन्हें वे बड़े ही स्वादसे खाते थे। मुझे जापानी भोजनमें अधिक स्वाद नहीं मिला, यहांकी भाजियोंमें मीठा डालते हैं व तिल या अन्य दोदल्ले नाजकी बुकनी भी डालते हैं।

यह एक विचित्र बात है कि प्रत्येक देशके गाने व भोजनकी प्रथा निराली है। सुरीली आवाज़के लिये कान व सुस्वादु भोजनके लिये रसना पृथक् पृथक् बनी है। उसे ठीक कर अपना अभ्यास बदलनेमें समय लगता है। मुझे योर-अमरीकाके भोजनके प्रति रुचि पैदा करनेमें चार माससे अधिक लगे थे, गानेमें अब भी स्वाद नहीं मिलता। जिन गानोंको सुन कर वहाँके निवासी मुग्ध हो जाते हैं, वही मेरे कानोंमें टंकोरसे जान पड़ते थे। हमारे मधुर स्वर व सुस्वादु भोजन भी योर-अमरीका वालोंको अच्छे नहीं लगते, यह स्वाभाविक हा है।

भोजनके उपरान्त हम सैनिक-संग्रहालयमें गये। यह एक बड़े उद्यानके भीतर है। यहाँपर शिन्तो सम्प्रदायका एक विशाल उपासना-गृह है। यहां कभी कभी स्वयम् सम्राट् भी उपासनाके निमित्त आते हैं। सभी सैनिकोंको सेनामें भरती होनेके समय यहां शपथ लेनी पड़ती है। इस मन्दिरके साथ प्राचीन व अर्वाचीन योद्धाओं-के नाम लगे हैं। इन्हें लोग बड़ी श्रद्धा और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। यहां सैनिक दंगल और खेलकूद भी होती है।

यहींपर सैनिक-संग्रहालय है। भवनके बाहर संवत् १९५१ के चीनी युद्ध व १९६१ के रूसी युद्धमें प्राप्त कुछ भग्न तोपें रक्खी हुई हैं। नयी व पुरानी सभी प्रकारकी तोपें यहां हैं। भीतरके पहिले कमरेमें नाना प्रकारकी छोटी बड़ी पीतल व अष्टधातुकी तोपें व कडाबीनें शोगूनोंके समय तककी भी रखी हैं। दूसरे कमरेमें आधुनिक तोपें और बन्दूकोंके नमूने धरे हैं। सारे सभ्य जगत्‌में जिस प्रकारकी बन्दूकें काममें आती हैं, सभी यहाँ हैं। फिर दूसरे स्थानमें पुराने समयकी तलवारें, तीर, कमठे, भाले, जिरहबख्तर तथा मुखपरके चेहरे आदि धरे हैं। सभी देशोंमें पुराने सम-यमें युद्धके अवसरपर भयानक चेहरोंके पहिननेकी चाल सी मालूम होती है। दूसरी जगह भिन्न भिन्न पोशाकें धरी हैं। पराक्रमी सेनापतियोंके चित्र भी यहां रक्खे हैं। एक स्थानमें भूतपूर्व वीरशिरोमणि सेनापति नियोगी और उनकी पत्नीकी वे पोशाकें उनकी कृत्रिम मूर्तिपर पहिनाकर धरी हैं, जिनमें उक्त दम्पतीने अपने प्रिय सम्राट्‌की मृत्युके पश्चात् 'हाराकीरी' की थी। इन दोनों मूर्तियोंके हाथमें वह खड्ग व छूरा भी है जिससे उन्होंने अपनी अपनी हत्या की थी। मामूली मनुष्य इसे एक प्रकारकी हत्या ही समझेगा किन्तु सहृदय मर्मज्ञ इसे प्रगाढ़ प्रेमकी चरम सीमा समझेगा। नियोगीको आत्महत्या करनेके लिये उसी भावने मजबूर किया था, जिसने मजनूकी मृत्युपर लैलाको, फरहादके मरनेपर शीरीको तथा जूलियटकी मृत्युपर रोमि-योको अपने अपने प्रेमपात्रोंपर मरमिटनेको बाध्य किया था। सच्चा प्रेम अजीब बला है, वह जिसको हो जाता है उसे बावला कर देता है। जो हिन्दू ललनायें अपने मृत-पतिके साथ सती होती थीं उनके ऐसा करनेका कारण भी वही अस्वाभाविक प्रेमकी प्रबल मात्रा ही थी। आज दिन भी सच्ची सतीका होना बन्द नहीं हुआ है। हां, जबरदस्ती स्त्रियोंको पतिके साथ जलानेकी कुप्रथा बन्द हो गयी है, पर सच्ची व्यथावाली प्रेममयी सतियां आजदिन भी किसी न किसी प्रकार जल ही मरती हैं।

यहां वर्णनके लायक बहुत वस्तुएं हैं। भारतवासियोंको अन्य देशोंमें जहां जहां अवसर मिले वहां वहां कमसे कम सैनिक-संग्रहालय अवश्य देखना चाहिये। उसके
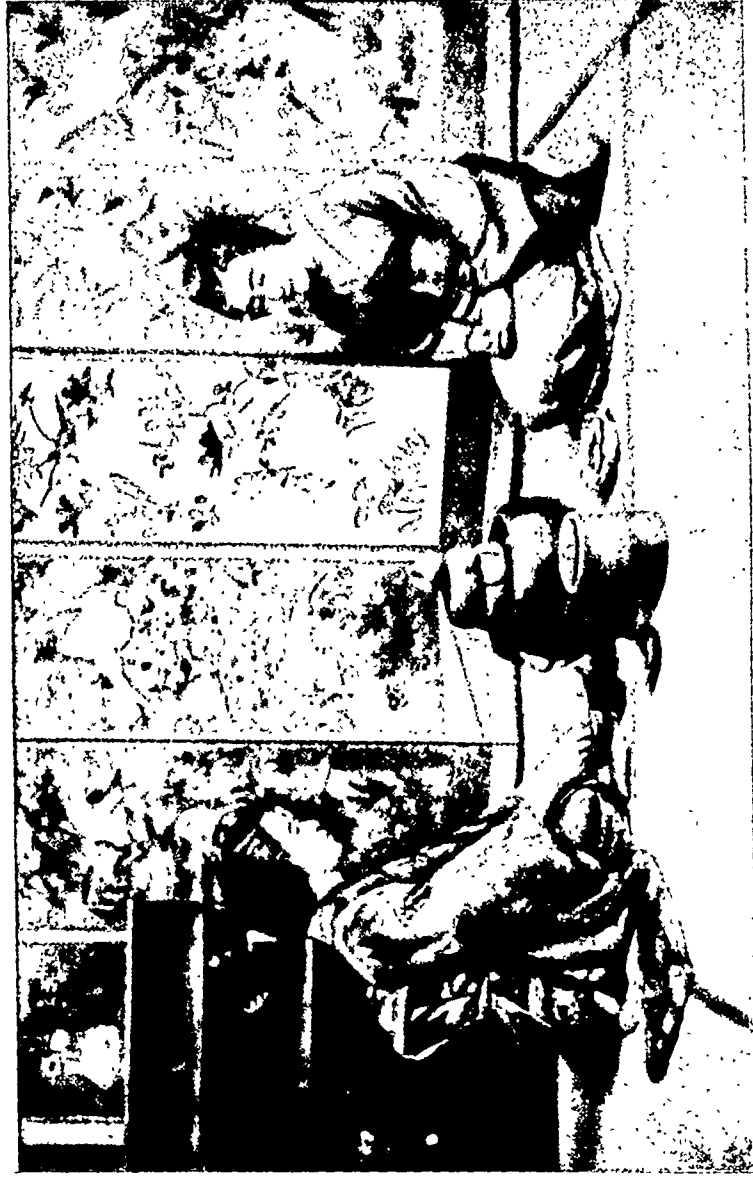
जापानमें भोजन करनेका ढंग

[पृष्ठ-१९९]

देखनेसे मनुष्यके हृदयकी भीरुता दूर होती है। उसे मालूम होता है कि अस्त्र व शस्त्र-विद्यामें भी १०० वर्ष पूर्व भारत कहींसे कम न था। यदि गत ५० वर्षोंकी आशातीत उन्नति थोड़ी देरके लिये दूर रख दी जाय तो भी भारतीयोंसे लोहा लेना संसारके मनुष्योंको कठिन हो जाय, किन्तु हां, हमारे यहां संघशक्तिकी न्यूनता अवश्य थी।

यहांसे निकल हम एक प्रदर्शनीमें गये जहां गृहप्रबन्धकी वस्तुएं प्रदर्शित थीं। जापानी घरोंमें जिन जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है तथा उन्हें श्रेष्ठतर और सुखकारक बनानेके लिये जो जो वस्तुएं आवश्यक हैं वे सभी यहां प्रदर्शित की गयी थीं। किस प्रकार पाक बनाना चाहिये, किस प्रकार घरको सुन्दर रखना चाहिये, शिशुका पालन-पोषण, चिकित्सा, लाड़-प्यार, उपदेश व शिक्षा किस भांति होनी चाहिये सभी यहां दिखलाया गया है। सीना, पिरोना व नाना प्रकार-की अन्य कलाओंका प्रदर्शन किया गया है। सूक्ष्म कलाओं (फाइन आर्ट्स) का भी यहां अच्छी तरह प्रदर्शन है। नृत्य, वाद्य, गान, चित्रलेखन, ईकाबाना (फूलोंके सजानेकी कला) इत्यादि सभी यहां दिखाये गये हैं। प्रायः कुल सामान आधुनिक ही है पर उसे रखने या सजानेका तरीक़ा स्वदेशी ही है, यही यहाँकी विशेषता है। सामाजिक रूपसे जापानी आँतें इतनी सशक्त हैं कि वे विदेशी भोजनको पचाकर अपने अंगका भाग बनानेमें समर्थ हैं। यहां सभी वस्तुएं स्वदेशी बनाकर उपयोगमें लायी गयी हैं।

बड़े बड़े पुस्तकालय छप्परोंमें हैं। बड़ी बड़ी वैज्ञानिक उद्योग-शालाओंमें भी खड़ाऊं पहिनकर ही जापानी लोग अपना काम कर लेते हैं। बिजलीकी रोशनी भी उन्होंने अपने छप्परसे छाये हुए मकानोंमें ही कर ली है। ऊँची ऊँची शिक्षा भी यहाँ उन्हीं बाँसकी जाफरीसे घिरे छप्परों तले होती है, जहाँ पहिले होती थी। १२ वर्ष योर-अमरीकामें भ्रमण करके भी जो पण्डितगण यहाँ लौटे हैं वे भी घरमें तथा बाहर अपना 'किमोना' व 'गीता' ही पहिनते हैं, घरमें भी फ़र्शपर बैठते हैं व सींकसे भात-मछलीका भोजन करते हैं तथा अपने इष्ट मित्रोंसे पूर्वकी भाँति ही मस्तक नवाकर मिलते हैं। हमारे देशकी नाईं नहीं कि ए० बी० सी० पढ़नेके साथ ही गिट पिट शुरू हुई। तीसरी कक्षामें पहुंचे, बस हैट-बूट धारण करने लगे और चुरुट मुँहमें रख फक फक धूम्र फेंकते चलने लगे। विलायतमें तीन वर्ष रह बैरिस्टरी करके लौटे, बस पितासे "वेल टोटाराम हाऊ डू यू डू" कहना प्रारम्भ किया। घरसे तुलसीका चौरा खोद फेंका, तख्त वगैरह निकाल दिये। तुलसीकी जगह करोटन, फर्शकी जगह टेबुल-कुर्सी, ब्राह्मण रसोइयेकी जगह बावर्ची, पवित्र निरामिष आहारके स्थानमें चौप मटन प्रारम्भ हुआ। अच्छे सीधे सादे बाबूजी बाबू साहब बन बैठे। इसे भोजन पचाना नहीं उलटी खाना कहते हैं। जापान देशभक्त है। वहाँके निवासियोंको स्वदेशमें प्रेम है, बाहरी उन्नतिकी वस्तुओंको अपना कर वे उनसे सुख लूटना जानते हैं। भारत गुलाम है, इसे 'स्व' के नामसे ही घृणा है, दूसरोंके किये हुए वमनमेंसे दाना निकाल खाता है जिससे शरीरमें विष फैल कर नाना प्रकारकी व्याधियाँ होती हैं। यदि भारतको उन्नति करनी है तो उसे घमण्ड छोड़ जापानको गुरु बनाना होगा। जिस प्रकार यह देश विदेशकी वस्तुओंको लेते हुए भी अपनी चालको नहीं छोड़ता, वही हमें भी करना होगा।

सातवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

तोकियो नगरकी कुछ और बातें ।

आज प्रातःकाल ही सब कार्यसे निवृत्त होकर मैं दोभाषियेके साथ फिर नगर देखने चला। प्रथम यहाँका गोला देखने गया। यह ठीक (काशीके) विश्वेश्वर गञ्ज, त्रिलोचन अथवा (प्रयागके) कीटगञ्जके सदृश है। यहाँ भी बोरोंमें नाना प्रकारकी चीजें रखी थीं, बाहर दिखानेके लिये भी दौरियोंमें भरे सामान रखे थे, एक प्रकारकी लाल अरहर, कई प्रकारके और दोदल्ले जिन्हें यहाँ "बीन्स" के नामसे पुकारते हैं देखे। सफेद व काले तिल, मडुआ, ककुनी, जईका चूड़ा व और कई प्रकारके अन्न देखे, किन्तु गेहूँ, यव, दाल, चना, यहाँ नहीं देख पड़े। उरदी व मूँग योर-अमरीकामें भी नहीं देख पड़ी थी, वहाँ मसूर तो देखी थी पर यहाँ वह भी नहीं देखी। दाल खानेका रिवाज़ शायद अफगानिस्तान, फारस व अरबमें होगा, पर योर-अमरीका, जापान व चीनमें भी वह नहीं है। योर-अमरीकामें अधिकतर मांस और यहाँ मंगोल देशमें भात व मछली खानेका रिवाज़ है।

यहाँसे हम लोग सब्ज़ीमण्डीमें गये। यह तो दशाश्वमेध (काशी) की सट्टीके बराबर भी नहीं है। ज़मीनपर तरकारियोंका ढेर लगा है, ज़मीनपर ही लोग बैठे बेच भी रहे हैं। बहँगी व ठेला गाड़ीपर लदी तरकारियाँ बिक रही हैं। योर-अमरीकाकी साफ़ दूकानें, बेचनेकी गाड़ियाँ, शीशेके सन्दूक आदि यहाँ नहीं थे। तरकारीमें लम्बी लम्बी मूली, आदी, कई प्रकारके मूल, जिन सबका एक ही नाम 'पोटेटो' विदेशियोंको बताया जाता है, मिलते हैं। भंसीड़, अरुईके पत्ते, कई प्रकारके शाक, बैगन व खीरे और कई प्रकारकी सेम व मटर भी देखी। परोरा, तरोई या अन्य प्रकारकी फलने वाली तरकारियाँ यहां देखनेमें नहीं आयीं और न योर-अमरीकामें ही देखी थीं। हाँ, यहाँ गोभी व करमकल्ला, पियाज व लीक भी देखी।

यहाँसे जलसेना-विभागके संग्रहालयमें आये। जिस प्रकार स्थलसेना-विभाग-के संग्रहालयके बाहर चीनी व रूसी युद्धसे लाये हुए बहुतसे पदार्थ रखे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी हैं। यहां भी कई प्रकारकी जहाज़ी तोपें टूटी हुई बाहर पड़ी हैं। कई प्रकारकी पनडुब्बी नावोंकी भग्न अस्थियां भी यहां पड़ी हैं। जहाज़ोंको उड़ाने वाली नाना प्रकारकी माइनें भी यहाँ हैं।

भीतर पुराने ज़मानेकी नावोंपरकी तोपें, कई प्रकारके छोटे बड़े 'टारपीडो नल', पुराने जहाज़ोंके टुकड़े आदि यहाँ धरे हैं। बीचके सहनमें आधुनिक तोपें, कई नलियोंकी छोटी छोटी तोपें, मशीनगन, कई प्रकारके 'टारपीडो', किलों व सामुद्रिक मोर्चेबन्दीके नकशे आदि हैं। मरोंमें बिजलीकी रोशनीके नाना प्रकारके यन्त्र रखे हैं। तन्तुरहित विद्युत्समाचार भेजनेके यन्त्र, विद्युत् द्वारा 'माइनें' उड़ानेके
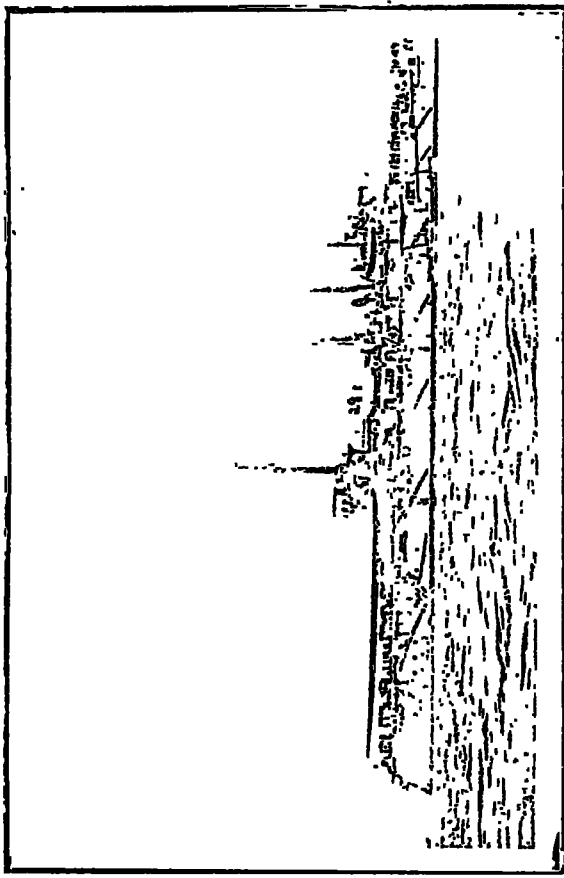
'असाही' नामका जापानी लडाऊ जहाज (पृष्ठ २०१)
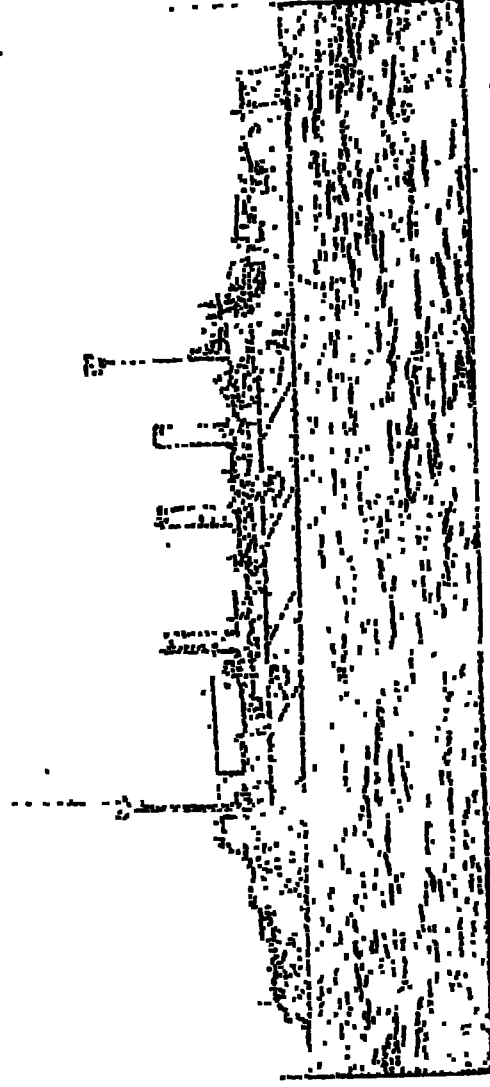
अजूमा, प्रथम श्रेणीका क्रूजर (पृष्ठ २०१)

यन्त्र, विद्युत् द्वारा सांकेतिक बातचीत करनेके यन्त्र, जहाज़ किस स्थानपर है, यह जानने व जहाज़ किस ओर जा रहा है, यह बताने वाले दिशा-ज्ञानके यन्त्र भी कई प्रकारके देखे।

तरह तरहके युद्ध-पोतोंके छोटे छोटे नमूने भी दिखायी दिये, ड्रेडनाट, सुपर ड्रेडनाट, वार शिप्स, क्रूज़र, टारपीडोबोट, माइन स्वीपर, डिस्ट्रायर आदि सभी प्रकारके नमूने यहाँ धरे हैं। पोर्ट आर्थरका एक विशाल नमूना भी बना है। "तोंजो" नामके किसी बड़े ही चतुर चितेरेके बनाये हुए रूसी युद्धके समयके कई चित्र भी यहाँ देखे।

आगे नाना प्रकारके गोले, गोली, बारूद, गनकाटन, डाइनामाईट, बमगोले, साथ-ही बारूद तथा अन्य स्फोटक पदार्थ बनानेके मसाले भी यहां रखे हैं। मोटे पतले नाना रूपके रस्से भी यहां हैं। यहींपर एक रस्सा स्त्रियोंके केशका बना हुआ रखा है जिसे रूसी युद्धके समय एक महिलाने अनेक स्त्रियोंसे बाल मांग कर बनाया और नौसेना-विभागको भेंटमें दिया था। आगे छुरे, छुरियां, बन्दूकें, तमंचे, बर्छे, भाले आदि और पुराने ज़मानेके युद्ध-पोतके नकशे भी धरे हैं। एक जगह एक बड़ा भारी विमान भी रखा है जिसने जर्मनोंकी लड़ाईमें शत्रुओंको हराया था।

ऊपरी खण्डमें एङ्गलो-जापानी प्रदर्शनीमें नौसेना-विभागकी जो वस्तुएँ प्रदर्शित हुई थीं वे धरी हैं। इनके अतिरिक्त कई प्रकारके पदक और इसी ढंगके सम्मान-सूचक उपहारकी वस्तुएँ धरी हैं। एक कमरेमें सम्राट्का झण्डा भी धरा है, यह उत्तम जरीके कामका है।

यहाँसे निकलनेके उपरान्त मैं जापानी दूकानोंकी सैर करने चला। पहिले यहाँकी नामी रेशमकी दूकानपर पहुंचा, इस दूकानका नाम 'एस नीशीमुरा' है। यह १० यमाशीटा-चो कियोवाशी-कू तोकियोंमें है। यह बड़े ठाटबाटसे सजी है। यहाँपर रेशमके ऊपर सूईके कामसे बढ़िया तस्वीरें बनायी जाती हैं। हर प्रकारके रंगीन रेशमसे ये बनती हैं। मैंने अनेक ऐसी तस्वीरें यहाँ देखीं पर उनमें दो तस्वीरें बड़े ही मार्केकी देखीं; एक तूफानी समुद्रकी लहरोंका दृश्य था, दूसरा फूजी पहाड़का। काम क्या था, अचम्भा था। चितेरेकी कलमसे इतना साफ चित्र बनना बड़ा ही कठिन है। जान पड़ता था कि हूबहू तूफानी समुद्र सामने लहरा रहा है। काम देखते हुए इसका दो हजार दाम कुछ भी अधिक नहीं जान पड़ा। दूसरी तस्वीरका मूल्य भी ७०००) बताया गया। वह भी इसकी निछावर मात्र है। इस कार्यकी यहाँ बड़ी चर्चा है। सभी अमीर, गरीब इसकी कदर करते हैं। इससे यहाँ इसकी असाधारण उन्नति हुई है। दूसरे प्रकारके काममें रेशम व सूतके गलीचेकी तरह काट कर तस्वीर बनाते हैं। पहिले तस्वीर बिनी जाती है, फिर सूत काट दिये जाते हैं, जिससे वह महीन बिनावट-के गलीचे सी प्रतीत होती है। उसमें बहुत ही बारीक कामकी तस्वीर रहती है। इसका भी रिवाज बहुत है पर ये सस्ते काम हैं, उतने महँगे नहीं; इसीसे इसकी अधिक बिक्री होती है।

यहाँसे मैं एक मीनेके कारखानेमें गया। यह काम भी बड़ा उत्तम है। लाल, गुलाबी, हरे, पीले, नीले आदि सभी रंगोंका मीना यहाँ करते हैं। प्रायः तांबेके पात्र-

को मीनेसे बिलकुल ढँक देते हैं। छोटे छोटे पात्र १५ या २० रुपयोंमें मिलते हैं। भारतवर्षमें जिस प्रकार सोने चांदीपर मीना होता है, ठीक उसी भाँति यहाँ भी होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि भारतवर्षमें सोनेकी वस्तुओंको खोद कर उसमें नक़शा बना उन गड्ढोंमें मीना भर कर उसे बनाते हैं, यहाँ पात्रपर पतले तारको बैठा कर नकशा बनाते हैं व तारसे बने गड्ढेमें मीना भरते हैं। काम बड़ा साफ़ व पसन्दके लायक है। इसके बड़े बड़े पात्र भी होते हैं। अंगरेज़ीमें इसका नाम क्लायज़नी* है।

यहाँसे हम "कलचर पर्ल" के कारखानेमें गये। यह यहांका एक विचित्र रोज़गार है। इसके बारेमें जरा विस्तारसे लिखनेके लिये मैं क्षमाका प्रार्थी हूं।

संसारमें क्या भारत, क्या मिश्र, क्या यूनान, क्या रोम, प्रायः सभी जगहोंके लोगोंका थोड़े दिन पूर्व-तक यह विश्वास था कि मोतीकी उत्पत्ति एक विचित्र रूपसे होती है। सभी समझते थे कि स्वातीकी अपने अपने ढंग और प्रकारकी बूंदें सीपके मुखमें पड़ जानेसे उसमें मोती उत्पन्न हो जाता है अर्थात् वही जल-बिन्दु गोल मोतीके रूपमें परिणत हो जाता है; पर आधुनिक समयमें वैज्ञानिक आविष्कारोंने इस धारणाको निर्मूल सिद्ध कर दिखाया है। यह विचार अब कवियोंकी कल्पनामात्रसे अधिक मान्य नहीं है।

वैज्ञानिकोंने मुक्ताकी उत्पत्तिका जो रहस्य वैज्ञानिक रीतिसे बताया है वह बड़ा ही शिक्षाप्रद, सीधा सादा व स्वाभाविक है। वैज्ञानिक लोग यह भी कहते हैं कि हर प्रकारकी सीपोंमें मोती उत्पन्न हो सकता है, उसके लिये विशेष प्रकारकी सीपकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु मोतीका ढंग व आब उसी प्रकारके रंग व आबका होगा, जिस प्रकारके रंग व आबकी सीप होगी। अब रहा रूप, उसकी व्याख्या ज़रा और बतानेके बाद होगी।

मोतीकी उत्पत्तिके बारेमें वैज्ञानिकोंकी खोजसे यह मालूम हुआ है कि जब सीपके मुखमें बालूके कण व अन्य कोई बहुत सूक्ष्म पदार्थ चले जाते हैं, जिनमें भिन्न प्रकारके सूक्ष्म जन्तु, दर्याई वनस्पतिके कण वा इन्हीं सीपियोंके छोटे अण्डे होते हैं, तो कभी कभी यह सीप उस पदार्थ विशेषको, जिसके द्वारा वह अपने छिलकेको बनाती है, इस वस्तु विशेषपर भी लगाने लगती है और यही समय पाकर उत्तम मोतीके रूपमें हो जाती है।

अब यदि यह पदार्थ गोल हुआ तो मोती भी गोल होता है, यदि लम्बा हुआ तो मोती लम्बा होता है। सारांश यह कि यह जिस रूपका होता है, मोती भी उसी रूपका बनता है। यदि यह पदार्थ सीपके छिलकेसे सटा रहे तो मोती 'बैठकी' बन जाता है।

इस वैज्ञानिक मुक्ताका जीवन-रहस्य जाननेके उपरान्त बहुतसे लोगोंने मोती बनानेका उद्योग किया। चीनमें नदियोंकी सीपसे मोती बनाया भी गया, पर वह बड़े ही पतले छिलकेका बना। जर्मनी, फ्रांस व बर्मामें भी इसका उद्योग हुआ पर सफलता अभी पूर्णरूपसे किसीको भी प्राप्त नहीं हुई।

जापानमें एक 'मीकीमोतो' महाशयने इसमें असाधारण सफलता प्राप्त

* Cloisonne
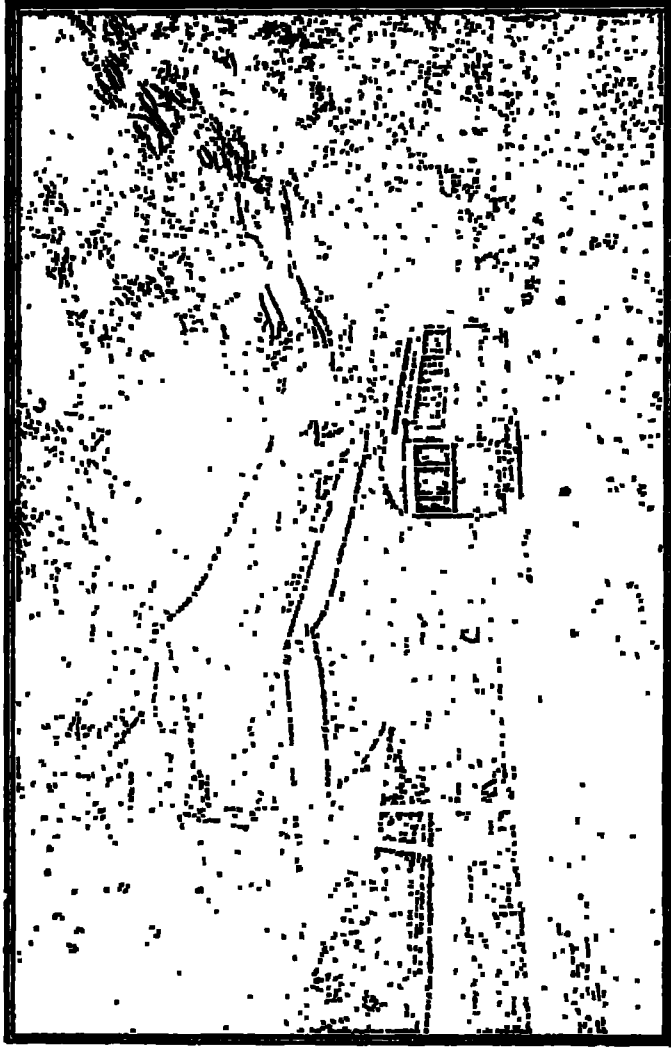
शिवापार्कमें जोजूजीका मंदिर (पृष्ठ १९५)

की है। आपने सोनी बनानेमें सफलता ही प्राप्त नहीं की है, वरन् आप उसे बाज़ारमें बेच भी रहे हैं।

आपने तोकियो विश्वविद्यालयके जीवविज्ञानके अध्यापक "मित्सकूरी" व अध्यापक "किशीनाऊ" की सहायता व अपनी तपस्यासे अपने संकल्पको पूर्ण किया है।

प्रधान "आसे" तीर्थ-स्थानसे छः कोस दूर एक "अगो" नामी समुद्रका हिस्सा है। यह उत्तम मुक्ताओंके लिये प्रसिद्ध है। वह जलराशि कोई छः कोस लम्बी व तीन कोस चौड़ी बड़ी ही शान्त जगह है। यहां जलकी गहराई भी १२-१५ गजसे अधिक नहीं है। इसके निकटसे ही प्रशान्त-सागरके वड़वानलका गरम जल बहता है, इससे इस जगह सीपें बहुतायतसे रहती हैं।

अब मोती उत्पन्न करनेके लिये प्रति वर्ष जुलाई-अगस्त (श्रावण) मासमें जहांपर सीपके बहुतसे अण्डे दिखायी देते हैं, वहां पत्थरके बड़े बड़े ढोंके डाल दिये जाते हैं। थोड़े ही समयमें उन पत्थरोंके सहारे बहुतसी सूक्ष्म सीपियाँ चिपक जाती हैं, किन्तु ये जगहें प्रायः छिछले पानीमें होती हैं। इस लिये यदि यहां ये सीपियां रहने दी जायं तो शीतकालमें जलके ठंडे होनेसे ये मर जायेंगी इसलिये ढोंके गहिरे पानीमें हटा दिये जाते हैं और जब ये सीपें तीन वर्षकी हो जाती हैं तब पानीमेंसे निकालकर इनमें छोटे छोटे मोतीके दाने या सीपके गोल टुकड़े मुख खोलकर डाल दिये जाते हैं और फिर ये सीपियां धीरेसे समुद्रके भीतर रख दी जाती हैं। यहां ये चार वर्ष तक रहने दी जाती हैं, बादमें जब निकाल निकाल कर ये काटी जाती हैं तो इनमेंसे वे पूर्व डाली हुई वस्तुएं मोती बनी हुई निकलती हैं।

यह दूकान इसका काम बहुत चला रही है। जाने हुए संसारमें अपने ढंगका यह निराला ही कारखाना है। यहांके मोती गोल, लम्बे, बैठकीदार सभी प्रकारके होते हैं व आब-तावमें भी बहुत तोफ़ा होते हैं। इनका रंग सीपके रंगपर निर्भर है। मूल्यमें स्वाभाविक मोतियोंसे इनकी कीमत कोई चौथाई होती है। फ्रांसमें इनकी बहुत खपत है। इन्हें झूठे मोती नहीं समझना चाहिये, ये वास्तवमें सच्चे मोती ही हैं; अन्तर केवल इतना है कि इन्हें पलुआ मोती व साधारण मोतियोंको जंगली मोती कहना चाहिये।

यहाँपर यह भी लिख देना उचित है कि हिन्दुओंके मतानुसार, जिसका पता शुक्रनीतिसे लगता है, मोती मछली, साँप, शंख, वराह, वांस, सीप व हस्तीमेंसे प्राप्त हो सकता है। उसी ग्रन्थसे यह भी जाना जाता है कि प्राचीन समयमें भी सिंहलद्वीप-निवासी कृत्रिम मुक्ता बनाते थे, जिसकी परीक्षाके लिये रासायनिक क्रिया करनी पड़ती थी। इसके बारेमें विस्तारसे जानना हो तो अध्यापक विनयकुमार सरकारकी लिखी पुस्तक "पाजिटिव बैक ग्राउण्ड आफ हिन्दू सोशियालाजी" पढ़िये।

यहाँसे हम मध्याह्नका भोजन कर "राजकीय संग्रहालय" (इम्पीरियल म्यूज़ियम) में गये। यह आधुनिक रीतिके एक बड़े विशाल भवनमें स्थित है। हम पहिले सूक्ष्म-कला-भवनमें गये। यहाँ प्रायः चीनी चीजें ही अधिक दिखायी दीं। ऊपरके तलेमें, जहाँ चित्रोंके रखनेकी जगह है, केवल चीनी चित्र देख पड़े। पूछनेसे मालूम हुआ

कि जगहकी तंगीसे कुल चित्रोंके संग्रहको लटकानेका यहां स्थान नहीं है, इससे जितनी जगह है उतने हो चित्र प्रदर्शनार्थ यहां रक्खे जाते हैं; बाकी दूसरे सुरक्षित स्थानमें रक्खे हैं।

प्रति मास इस प्रदर्शनीके चित्र बदल दिये जाते हैं। यहाँ बहुत सी और भी उत्तम वस्तुएँ हैं, खास कर पुराने उत्तम चीनीके बर्तन। इनके अतिरिक्त अकीक, संगमर्मर व बिल्लौरके भी उत्तम खिलौने यहाँ हैं। इस विभागमें प्रायः चीन देशसे आये हुए पदार्थोंकी ही प्रधानता है।

हम यहाँसे अन्य विभागोंमें गये। जो सब वस्तुएं संग्रहालयोंमें रखने योग्य होती हैं वे यहाँ भी हैं। जो चन्द वस्तुएं यहाँ मुझे विचित्र देख पड़ीं वे ये हैं—

(१) अमरीकाके यूकोन क्वानोड राज्यसे लाया हुआ एक हाथीका दाँत, जिसकी लम्बाई ६ गज व मोटाई ९ इन्चके व्यासकी है। (२) बहुत बड़े बड़े शालग्रामोंके कीड़े जो प्रायः वजनमें १० सेरसे भी अधिक होंगे। (३) एक मुर्गा जिसकी पूछ १४॥ फुट लम्बी है।

यहाँसे मैं सुमीदा नदीके तटपर घूमनेके लिये गया। इस ओर अंगरेजी ढंगके बहुतसे बंगले देखनेमें आये। पूछनेसे ज्ञात हुआ कि तोकियोका यह भाग विदेशियोंके लिये अलग किया हुआ है। इसे 'कनसेशन लैण्ड' कहते हैं। यह अवस्था प्रायः संवत् १९५७ तक रही। इसी समय एक्स्ट्रा टेरिटोरियल कचहरियाँ उठायी गयीं व यह बस्ती भी टूटी। इसके पूर्व विदेशी अपराधी अपने अपने देशके नियमानुसार अपने देशी-न्यायाधीशोंके ही न्यायालयोंमें विचारार्थ उपस्थित किये जाते थे। उनके अपराधोंका विचार जापानी न्यायालयोंमें नहीं होता था। इससे यह सूचित है कि १५ वर्षके पूर्व तक अभिमानी योर-अमरीकानिवासी जापानको अपने बराबरका राज्य नहीं मानते थे। चीनकी अब भी यही अवस्था है। वहाँ जापानी अपराधी भी चीनी न्यायालयमें नहीं लाया जाता। इसीका नाम है "कमजोर होना पाप करना है।"

× × × ×

आज प्रातःकाल हम अध्यापक 'ताकी'के पास गये। आप तोकियो विश्वविद्यालयमें सूक्ष्म शिल्पके इतिहासके अध्यापक हैं। इस विषयकी गद्दी इस विश्वविद्यालयकी विशेषता है। योर-अमरीकामें जर्मनीको छोड़ शायद यह विषय साहित्य-विभागमें अनिवार्य रूपसे अन्य किसी जगह नहीं पढ़ाया जाता।

आप "कोक्का" नामका मासिकपत्र भी सम्पादित करते हैं। यह पत्र अंगरेजी व जापानी भाषामें प्रति मास निकलता है। अंगरेजी संस्करणका आदर फरासीसी देशमें अधिक होता है। फरासीसी लोग सूक्ष्म शिल्पके बड़े प्रेमी हैं। मैं ऊपर कहीं लिख आया हूं कि फ्रान्सके मारसेल्स नगरमें जो चित्रोंका संग्रह देखा था वह अपूर्व था। इसमें बड़ा व्यय करके चित्र एकत्र किये गये हैं। बाज बाज चित्र दस लाख पाउण्ड मूल्यके हैं, जो कि डेढ़ करोड़ रुपयेके बराबर है।

आपने एक पुस्तक दिखायी जिसे आपने सम्पादन करके अभी छपवाया है। "काउण्ट ओतानी" महोदयने तुर्किस्तानमें भ्रमण कर जो बहुतेरी भग्न मूर्तियाँ व चित्र बटोरे हैं, उनके छायाचित्र इसमें दिये गये हैं। ये मूर्तियाँ उस समयकी हैं, जब यहां
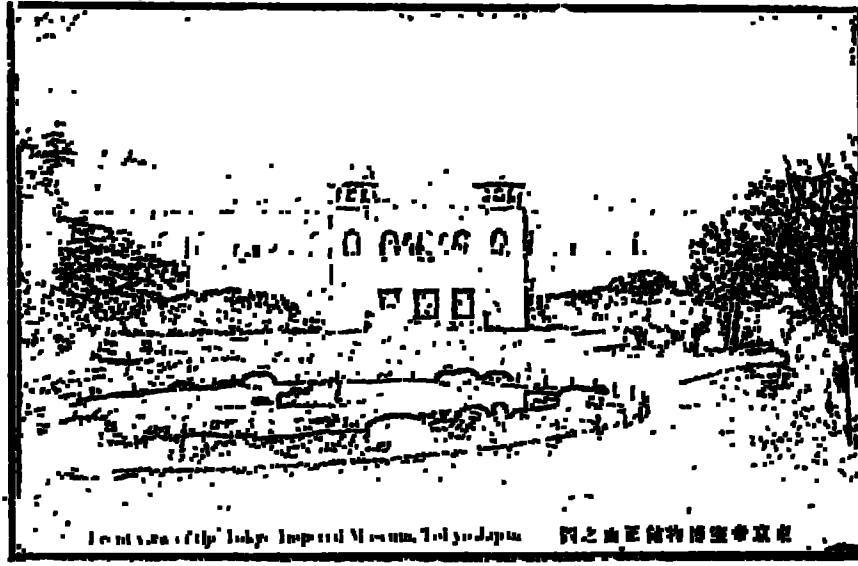
राजकीय संग्रहालय, तोकियो (पृष्ठ २०३,०४)
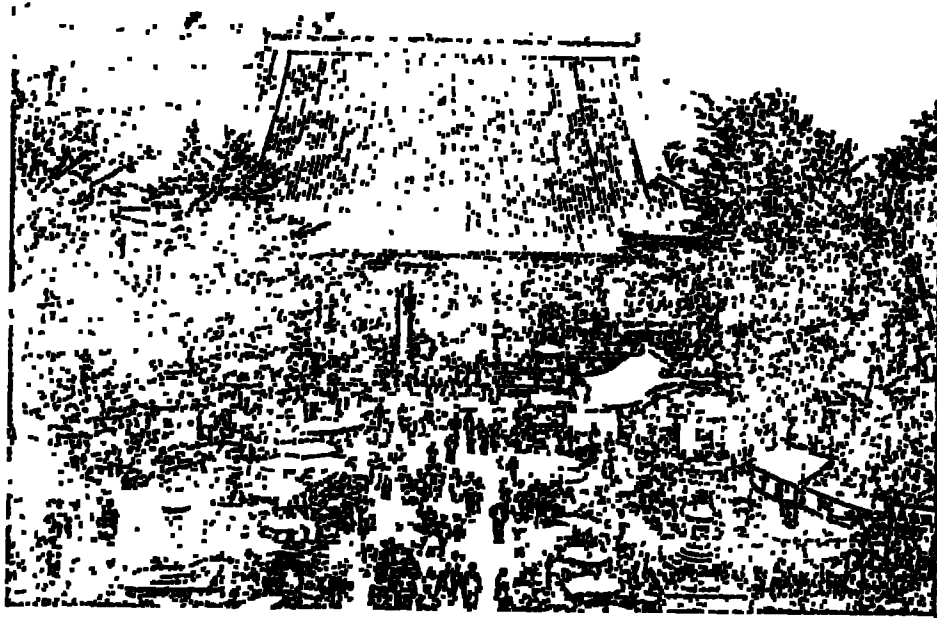
सुमीदा नदीके पास, आसाकुसा पार्कमें क्वाननका मन्दिर (पृष्ठ २०४)

क्वाननके मन्दिरमें फ्यूडो (बुद्धिके देवता) की मूर्ति (पृष्ठ २०४)

भगवान् बुद्धदेवका मत प्रचलित था। अहा! उसे देख अपने पुरातन गौरवका चित्र आँखोंके सामने खिंच आया व एक बार शरीर गद्गद हो उठा, किन्तु तुरन्त ही अपनी आधुनिक अवस्थाका ध्यान आते ही आँखोंमें अश्रु आगये व चेहरा लज्जासे लाल होकर पीला पड़ गया।

एक समय था जब कि हिन्दू-सभ्यता पुष्पपुर (पेशावर) से होती हुई गान्धार (कंधार व काबुल) व तुर्किस्थान तक फैली हुई थी। उसी ओरसे बुद्धदेवका पवित्र धर्म तिब्बत, चीन होते हुए कोरिया व फिर जापानमें पहुंचा। इन तस्वीरों-को देखनेसे ज्ञात होता है कि मानो ये तस्वीरें सारनाथमें निकली हुई मूर्तिकी हैं। कहा जाता है कि तुर्किस्तान व एशिया भूखण्डका अधिकांश भाग इस प्रकारकी मूर्तियोंसे भरा पड़ा है। उन प्रदेशोंमें घूमकर यदि कोई विद्वान् खोज करे तो हमारी प्राचीन सभ्यताके विषयमें बहुत मसाला प्राप्त हो सकता है। वहाँ केवल मूर्तियां व चित्र ही नहीं किन्तु बहुतसी पुस्तकें भी उन देशोंकी भाषाओंमें मिल सकती हैं जिनके अवलोकनसे समयकी अधिकतासे भूले हुए इतिहासका भी बहुत पता चल सकता है। काउण्ट ओतानी महाशयने भारतके पश्चिमोत्तर छोर तथा तुर्किस्थानमें कई बार भ्रमण किया है और वहांसे बुद्धधर्मके बारेमें बड़ा मसाला इकट्ठा किया है। काउण्ट महाशयकी इच्छा बुद्धधर्मकी खोज करनेकी है किन्तु हमारे प्राचीन इतिहाससे उसका इतना घना सम्बन्ध है कि कभी कभी उसपर भी बड़ा प्रकाश पड़ता है। हाँ इतना ज़रूर है कि घुमावका मार्ग है। सीधा मार्ग हमारे देशके विद्वानोंका इन प्रदेशोंमें जाकर स्वयं ही भारतके सम्बन्धमें वस्तुओंको खोज करना है, ऐसा होगा तब कुछ फल निकलेगा, पर यह होगा कैसे? इसके लिये कई बातोंकी आवश्यकता हैं, जैसे (१) उन देशोंको आधुनिक व प्राचीन भाषाका ज्ञान, फिर अपने देशकी पाली व संस्कृत भाषाका ज्ञान प्राप्त करना (२) हर प्रकारकी असुविधा व आफत सहते हुए उत्साहपूर्वक काम करना (३) धनकी सहायता मिलना। ये सब कार्य राज्यकी सहायताके बिना नहीं हो सकते।

बंगालमें जो नवीन चित्रण-शिल्पकी चाल चली है 'ताकी' महाशयके यहाँ उसके भी चित्र देखे। बातोंसे मालूम हुआ कि जापानके सूक्ष्म शिल्पपर इस नवीन प्रथाका बहुत प्रभाव पड़ा है व जिस प्रकार आजकल यहाँ योर-अमरीकाकी भिन्न भिन्न प्रथाओंपर चल कर चित्रण-शिल्पका साधन हो रहा है, उसी प्रकार कुछ नव-युवक चितेरे इस आधुनिक भारतीय चित्र-कलासे भी प्रेरित हो इसका प्रभाव अपने चित्रोंपर डाल रहे हैं।

'ताकी' महाशयने यह भी कहा कि छः सौ वर्ष पूर्वकी राजपूत चित्रण-प्रणालीका जो प्रभाव चीनी चित्रोंपर पड़ा था वह आज तक साफ साफ मालूम पड़ता है। इससे ये बातें दिखायी देती हैं कि एक समय हम केवल उन्नत ही नहीं थे वरन् हमारा उदाहरण बाहरके लोग भी भली भाँति ग्रहण करते थे।

यहाँपर आपने एक काष्ठके साँचे (वुडब्लाक)से उत्तम चित्रोंके छापनेका कारखाना खोल रक्खा है। एक एक चित्रको प्रायः १०० बार छापना पड़ता है। जिस तरह हमारे यहाँ एकके बाद दूसरा कागज़ रख 'साभी' बनायी जाती है उसी प्रकार ये

चित्र भी एकके बाद दूसरे ठप्पेसे छप कर तैयार होते हैं। नन्दलाल बोस व अवनीन्द्र-नाथ ठाकुरके कई चित्र यहाँसे ही छप कर निकले हैं। बाज बाज चित्र संवत् १९६४ के पूर्व छप कर यहाँसे गये थे। इस कारखानेको देख जैसा अचम्भा हुआ उसका क्या वर्णन करूं! एक छोटेसे दालानमें १५,२० मनुष्य गर्मीके कारण नंगे बैठे काठके ठप्पोंसे चित्र छाप रहे थे। मसी भरने व छापनेका कार्य सभी हाथसे ही होता था। सिखाने वाले महाशय भी एक वृद्ध सज्जन थे। यह देख कर मालूम हो गया कि जो काम बन जानेपर बड़ा महान् देख पड़ता है वह वास्तवमें बड़ी साधारण रीतिसे सम्पादित हो सकता है। यदि कोई उत्साही सज्जन यह कार्य आरम्भ करें तो जयपुर व लखनऊके छीपीवालोंको थोड़ासा सिखा देनेसे ही यह काम चल सकता है, किन्तु हमारे यहाँ तो कुएंमें ही भाँग पड़ी है; वहाँ तो सिवा बी० ए०, एम० ए० हुए कुछ आ ही नहीं सकता। काशीके मूलाराम चितेरेकी तस्वीरें कोई रईस नहीं खरीदेगा गो वे उत्तम भी हों, पर कलकत्तेमें विदेशी दूकानोंमें जाकर ये लोग सड़े चित्रोंके दाम हजारों रुपये खुशीसे दे आवेंगे। क्यों? इसी लिए कि मूलारामके यहाँ जवाहिर राखमें छिपा है, व कलकत्तेकी दूकानोंपर गो है वह काँचका ही पर साफ सुथरा करके रक्खा है। किन्तु जब तक राजा बाबुओंकी रुचिमें अन्तर न पड़ेगा व वे हुनरमन्द होकर हुनरकी खोज न करेंगे तब तक हमारा शिल्प उन्नत नहीं हो सकता। यह सत्य है "गुन ना हिरानो गुन ग्राहक हिरानो है"। देशमें गुणी हैं, पर उनके ग्राहक नहीं हैं। ग्राहकोंके उत्पन्न होते ही गुणी इस प्रकार कोने अन्तरोंसे निकलने लगेंगे जैसे वर्षाके उपरान्त पृथ्वीमेंसे वनस्पतिके अंकुर निकलते हैं।

मित्सुकोशीकी दूकान व सड़क (पृष्ठ १९०)
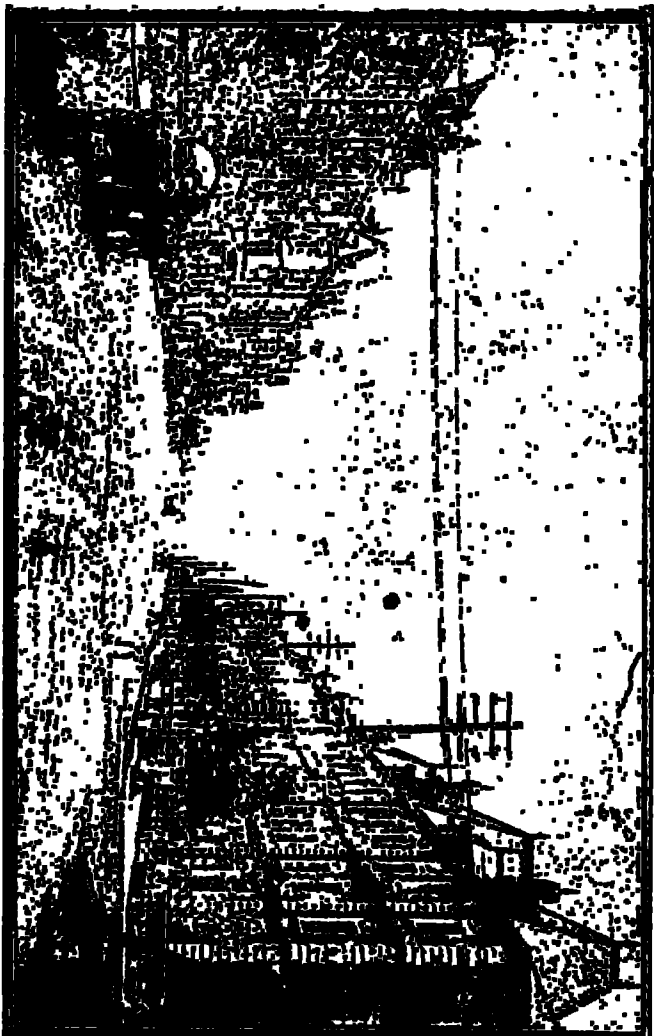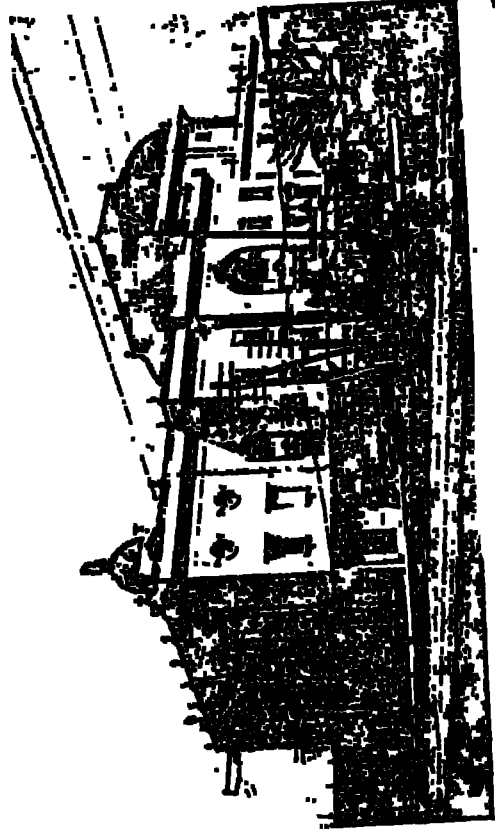
इम्पीरियल थियेटर (पृष्ठ २०७)

आठवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

जापानी नाटक ।

आज हम तोकियोका इम्पीरियल थिएटर देखने गये। यहाँ एकके बाद एक करके चार अभिनय होनेवाले थे, पर हम लोग दो अभिनय देखकर ही चले आये। पहिला खेल "वेश्या व समुराई" और दूसरा "कुहारू व जीही" था। दोनोंमें ही प्रेमका प्रदर्शन था। प्रेमपात्री दोनोंमें गणिकाएं थीं, पर प्रेमका भाव अच्छा दिखलाया गया था।

आज कल भारतवर्षमें नाटकका नाम लेते ही कई बातोंका भाव एक साथ मनमें उत्पन्न हो जाता है। यहां आधुनिक समयमें यह बताना कि नाटकमें गान व नाच कोई आवश्यक बात नहीं है, इनके बिना भी नाटक सब अंगोंसे पूर्ण हो सकता है, बड़ा कठिन है। भारतवर्षमें नाटकोंमें गाने व नाचनेका इतना अधिक रिवाज़ बढ़ गया है कि इनके आधिक्यके कारण वास्तविक नाटकका प्रभाव ही बदल जाता है। प्रायः दर्शकगण भी मधुर तान व सुन्दर नटियोंके दर्शनार्थ ही नाटक देखनेके लिये पधारते हैं। उन्हें नाटकसे क्या शिक्षा मिलती है, नाटककी भाषा व कथाका पूर्वापर सम्बन्ध कैसा है, नाटकमें वास्तविक साहित्य कितना है, ... इत्यादि बातोंसे बहुत कम सरोकार रहता है। यदि नाटकसे गाना व नाचना निकाल दिया जाय तो उसमें उनके मनोरंजनार्थ कुछ भी बाकी नहीं रह जाता।

योर-अमरीकामें नाटककी प्रथा बिलकुल ही निराली है। यहां जिन्हें नाच या गान देखना व सुनना होता है वे "नृत्यशाला" में जाते हैं। इन नृत्यशालाओंमें प्रायः नाच, गान व भद्दी नकलें ही अधिक हुआ करती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य खेल-तमाशे भी होते हैं। वास्तविक नाटक दो विभागोंमें विभक्त है—

(१) एकको यहाँ "अपेरा" कहते हैं। यह उर्दूके कवि "अमानत"के लिखे हुए नाटक "इन्द्रसभा" की भांति होता है, जिसकी चाह भारतवर्षमें आजसे १५-२० वर्ष पूर्व अधिक थी। इसमें सभी गाने रहते हैं। पात्रोंकी साधारण बातचीत भी गानमें ही होती है। इस प्रकारके नाटक योर-अमरीकाके प्रायः सभी बड़े बड़े नगरोंमें होते हैं। पर यहां अंगरेज़ी भाषाकी अपेक्षा जर्मन व इटैलियन भाषाके अभिनय ही अधिक अभिनीत होते हैं।

(२) दूसरे प्रकारके नाटक, जिन्हें यहाँ "थियेटर" कहते हैं, प्रायः सभी प्रधान नगरोंमें आधी आधी कोरीसे भी अधिक हैं। जनताकी भीड़ इन्हींमें अधिक होती है। ये भिन्न भिन्न प्रकारके व पृथक् पृथक् रुचिके होते हैं। दर्शक अपनी रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न नाटकोंमें जाते हैं। योर-अमरीकामें कोई भी नगर ऐसा नहीं है जिसकी आबादी दस हजार होनेपर वहां एकाध नाटक व कई 'बायस्कोप' न हों। इन चलती-फिरती तस्वीरों द्वारा मनोरंजनकी प्रथा पाश्चात्य देशोंमें बहुत बढ़ती जा रही है।

यहाँ बायस्कोप बड़े सस्ते होते हैं और प्रायः दिन रात बराबर तमाशा दिखाया करते हैं। जरा सी फुरसत मिलते ही लोग चार पांच पैसे खर्चकर घंटे आध घंटे मन बहला कर चले आते हैं।

यहांके नाटकोंमें गान व नाचका तो नाम ही नहीं रहता और न अस्वाभाविक एवं विचित्र कपड़ोंका ही। ये नाटक प्रायः देश व समाजकी सामयिक अवस्थाका ही दृश्य अधिक दिखाते हैं। सामाजिक कुरीतियों, राजनीतिक हलचल तथा इसी प्रकारके अन्य सामयिक दृश्योंकी ही यहां प्रधानता रहती है। कभी कभी ऐतिहासिक व अन्य देशीय नाटक भी होते हैं। ये सभी नाटक बहुत सीधी भाषामें लिखे जाते हैं। विचारशैली भी गूढ़ नहीं होती। इनके अभिनयोंमें सारी शक्ति इस बातपर व्यय होती है कि पात्र ऐसा स्वाभाविक नाटक करे कि दर्शकोंपर तमाशेका सा प्रभाव न पड़कर वास्तविक जीवनका सा ही प्रभाव पड़े।

यहां नाटक ८ बजे प्रारम्भ हो कर १०॥ बजे समाप्त हो जाते हैं। सभी खेलोंमें प्रायः दोसे तीन अङ्क और दृश्य भी होते हैं। घड़ी घड़ी यवनिका गिराने व दृश्यके बदलनेकी आवश्यकता नहीं होती। जो एक-दो दृश्य होते हैं वे ऐसे हूबहू बनाये जाते हैं कि भारतवासी भाइयोंको समझाना बड़ा कठिन है। विज्ञानने इसमें बड़ी सहायता की है। वैज्ञानिक ढंगसे रंगमञ्चपर सच्चा दृश्य दिखाया जाता है, पर इसकी अधिक आवश्यकता विदेशी व ऐतिहासिक खेलोंमें ही होती है, जहां विदेशी दृश्य वा प्राचीनताको वर्त्तमान रूपमें परिवर्तित करना पड़ता है।

परन्तु जापानी नाटकोंमें ये आधुनिक बातें नहीं हैं। यद्यपि जिस नाटकमें मैं गया था उसका भवन बड़ा ही सुन्दर तथा आधुनिक योर-अमरीकाके नमूनेपर बना है, तो भी नाटकका दृश्य उतना अच्छा नहीं था। वह प्रायः वैसा ही था जैसा कि भारतवर्षमें तीसरी श्रेणीके नाटकोंमें होता है। मुझपर इस नाटकका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

यहां यह लिखना आवश्यक है कि भारतवर्षमें भी नाटकोंकी रुचि बदलनी चाहिये। एक तो नाटकका समय ऐसा होना चाहिये कि रात्रि भर जागरण न करना पड़े। दूसरे, नाटक इतना ही बड़ा हो कि अजीर्ण न हो जाय। ६ या ७ घंटे तक लगातार नाटक देखना अजीर्णके बराबर ही है। फिर नाटककी कथा ऐसी होनी चाहिये जिससे बाल-वृद्ध-वनिता सभी उसे देख सकें, उसमें सामयिक जीवनका इतना भाग हो कि जिससे मनुष्यके स्वभाव व चरित्रपर प्रभाव पड़े व साथ ही साथ रोजमर्रेकी कुरीतियोंके दोष भी प्रगट हो जायं। उदाहरण स्वरूप 'भारतेन्दु' जीकी "प्रेमजोगिनी" अथवा "भारत दुर्दशा", गिरीश बाबूके 'प्रफुल्ल', 'हरनिधि' व 'विषाद', डी० एल० रायके 'विरह' व मनमोहन बाबूके 'संसार' आदि नाटकोंका उल्लेख किया जा सकता है। यदि ऐसे ही नाटक खेले जायं तो उनके प्रभावसे बहुत कुछ सामाजिक सुधार होसकता है। किन्तु लेखकोंको इसका ध्यान रखना चाहिये कि दर्शक यह न समझें कि अमुक बात सुधारके लिये लिखी या खेली जा रही है, अर्थात् उसकी मात्रा इतनी ही होनी चाहिये जितनी दालमें हल्दी। देशमें नाटकोंके गृह अधिक होने चाहिये। नाटकमण्डलियोंकी संख्या भी नितान्त कम है, यह शोचनीय

"किरा" पर धावा (पृष्ठ १९५)

पञ्जुरी समाधिराज घातकके भिक्षा समर्पण (पृष्ठ २६५)
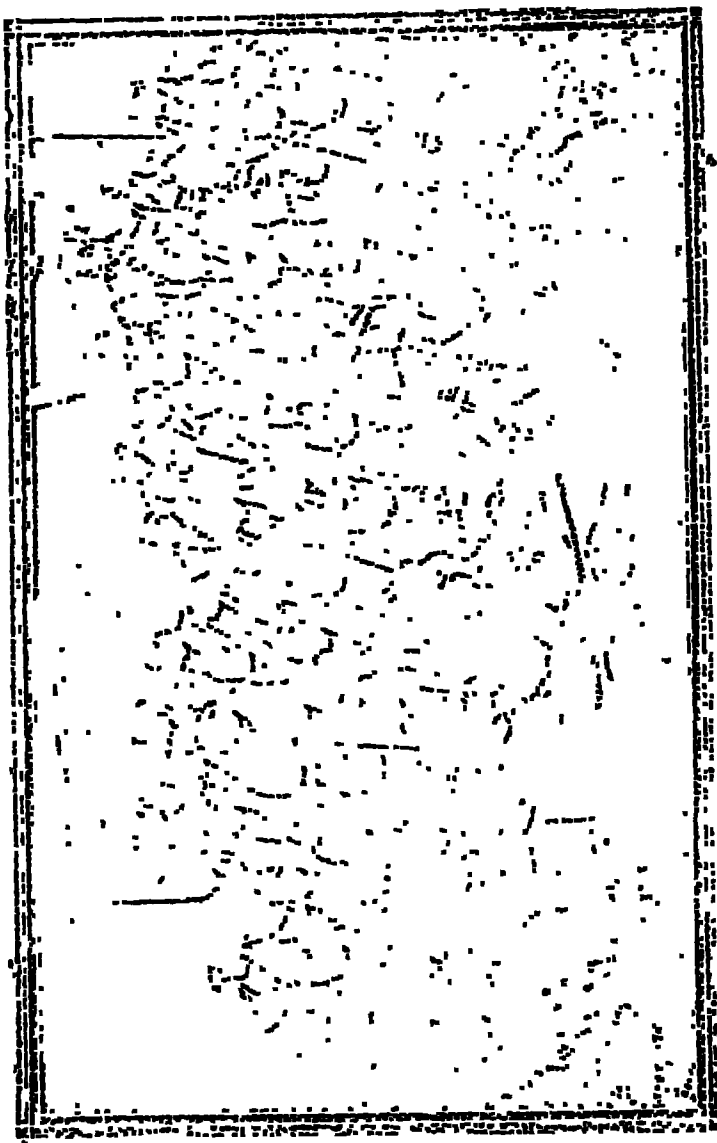
है। नाटकोंके अतिरिक्त 'रासमण्डली' 'यात्रा' 'गम्भीरा' इत्यादिकी भी प्रथा बढ़ानी चाहिये व उनमेंसे भी अश्लील व अत्यन्त शृङ्गारप्रधान खेलोंकी संख्या घटाकर उन्हें सामाजिक जीवनका अंग बनाना चाहिये। इनके अतिरिक्त वेश्याओंके घरपर जाकर मुजरा सुननेकी जो रीति है उसके स्थानमें ऐसी नाट्यशालाएं बनायी जायं जहां जाकर ये नृत्य व गान सुनानेका कार्य कर सकें और गन्धर्व-विद्याकी वृद्धिके साथ साथ कुरीतियोंकी कमीमें भी सहायक होसकें।

× × × ×

अध्यापक हिराइ।

आज मध्याह्नमें अध्यापक "हिराइ"के दर्शनार्थ उनके गृहपर गये. आप "कियो" विश्वविद्यालयमें अंगरेज़ी साहित्यके अध्यापक हैं।

वयोवृद्ध होनेपर भी आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर है। आप विचारवान् हैं और पुस्तकोंके बड़े व्यसनी हैं। आपने प्राचीन जापानी इतिहास व साहित्यका बहुत मनन किया है। आप उन कतिपय जापानी विद्वानोंमेंसे एक हैं, जो जापानी जाति व भाषा-की उत्पत्तिके सम्बन्धमें यूरोपवालोंसे सहमत नहीं हैं। आपके विचारमें जापानियोंके पूर्वज चीनी नहीं हैं और न आप अपनी भाषाको ही चीनी भाषासे निकली हुई मानते हैं। आपका सिद्धान्त है कि जापानियोंका प्राचीन देश भारत है। इसके समर्थनमें आप बड़ी ही विचित्र बातें कहा करते हैं--(१) आप कहते हैं कि जापान-का पुराना नाम "यामातो" संस्कृतके "यमकोटि" शब्दका रूपान्तर है। (२) भाषाके सम्बन्धमें आपका कहना है कि जापानी भाषा आर्यभाषाओंकी नाईं है। जापानी भाषा-के व्याकरणसे आप इसका प्रमाण देते हैं। आप बताते हैं कि जापानी क्रियावाचक धातुओंकी विभक्ति उसी प्रकारकी है जैसी आर्य भाषाओंकी। चीनी भाषामें यह बात नहीं है, इसलिये आपका कहना है कि जापानी भाषाकी जननी चीनी भाषा नहीं, प्रत्युत आर्यभाषा है।

इसके प्रमाणमें आपने एक पञ्जरिका लिखी है। यह सन् १९०५ (संवत् १९६१)में "शिकोरन" पत्रके फरवरी (माघ-फाल्गुन)के अंकमें क्रोड़पत्रके रूपमें निकली है। इसमें सैकड़ों शब्दोंका मिलान संस्कृत व फारसीके शब्दोंसे किया गया है। उनमेंसे कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं--

जापानी	आर्यभाषा	अर्थ
अमे	आप	जल वा वर्षा
अमा	अमी	मीठा
हना = पुष्प	वन	जंगल
हाता = झंडा	पताका	झंडा

यह विषय बड़ा जटिल है। आपका कार्य इस विषयपर एक नयी रोशनी डाल-ता है। भविष्यके विद्वान् शब्द-शास्त्रवेत्ता इसकी ओर खोज करेंगे तब ठीक पता लगेगा। भारतीय विद्वानोंको भी इस ओर ध्यान देना चाहिये।

नवाँ परिच्छेद ।

जापानका महिला विश्वविद्यालय ।

आज मैं सवेरे ही सब कामसे निपट श्रीमान् "जिनजो नरूसे" महाशयके दर्शनार्थ चला। आप तोकियो नगरके महिला-विश्वविद्यालयके प्रधान हैं। आपकी अवस्था इस समय ६० वर्षके लगभग है। जब आप केवल १७ वर्षके थे तभीसे आपका हृदय देशोद्धारकी ओर लगा और उसी समयसे आपने अपना सारा जीवन स्त्री-शिक्षाके महत्त्वपूर्ण कार्यमें लगा दिया। कहते हैं कि स्त्रीशिक्षाका जो प्रचार आज दिन जापानमें है, उसके जन्मदाता नरूसे महाशय ही हैं।

'जोशीडाईगाक्को' (जोशी-स्त्री, डाई-महा, गाक्को-विद्यालय) नामका जो महिला-विश्वविद्यालय तोकियो नगरमें है, उसके जन्मदाता, पोषक, पालक तथा संचालक आप ही हैं। गत १५ वर्षोंमें इस एक ही स्त्री-शिक्षाके केन्द्रने सामाजिक अवस्थामें जो परिवर्तन किया है वह आश्चर्यजनक व अकथनीय है। समाजसुधारमें स्त्रियोंकी शिक्षा कैसा प्रभाव डाल सकती है, इसका पता इस संस्थाके देखनेसे खूब चलता है।

आपके त्याग, देश-प्रेम, समाज-सुधारकी चेष्टा आदिका मुकाबला लाला हंसराज, लाला मुंशीराम, लाला देवराज इत्यादिसे किया जा सकता है। अन्तर इतना ही है कि जापानमें नरूसे महाशयको राजदरबारसे भी सहायता मिलती थी और भारतवर्षमें केवल जनताके सहारे ही काम करना पड़ता है।

संसारमें सभी जगह न जानें क्यों स्त्री-शिक्षाका कार्य बहुत दिनोंके बाद प्रारम्भ हुआ है। सभी जगह लोगोंका विचार यह था कि क्या स्त्रियाँ पढ़कर डिप्टी बनेंगी? परन्तु यह लचर संसारके विद्वानोंसे नहीं देखी गयी व यह प्रश्न अन्य देशोंमें अब हल हुआ ही समझना चाहिये, यद्यपि यह सत्य है कि उन्नत अमरीका व इङ्गलैण्डमें भी स्त्रीजातिके लिये उच्चशिक्षाका प्रबन्ध हुए अभी बहुत समय नहीं बीता है।

संवत् १९३२ के पूर्व प्रसिद्ध केम्ब्रिज विद्यालयमें स्त्रियोंकी शिक्षाका यथोचित प्रबन्ध न था, उसी संवत्में केम्ब्रिज व अमरीकाके स्मिथ व वेलेसली कालेज, स्त्रियोंकी उच्चशिक्षाके लिये खुले। इसी समय हमारी श्रद्धाके पात्र नरूसे महाशय भी इस चिन्तामें निमग्न थे कि अपने देशको किस प्रकारसे उन्नत दशामें देखें। यह विचार उस समय आपके हृदयमें इतने वेगसे उठा था कि आपको रात्रिमें सोना भी कठिन हो गया था। भगवान्‌की लीला अपरम्पार है। ऐसी बहुतसी बातें जो किसी समय अन्धकारके गर्भमें सर्वथा छिपी रहती हैं, सहसा प्रकट होकर साधारण बुद्धि वाले मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देती हैं। देखिये, न जाने कितनी बार चूहा मूर्तियोंपरसे केवल चावल ही नहीं खा जाता बल्कि कभी कभी शालग्रामकी बटिया भी बिलमें उठा ले जाता है, पर दर्शकोंको मूर्तिके निर्जीव होनेका ज्ञान नहीं होता, किन्तु एक

जापानी महिलाकी वेशभूषा [पृष्ठ-२९३]

बालक इस घटनासे चौंक उठता है व संसारमें हलचल मचा देता है, उसी प्रकार यहाँ भी हुआ। तोकियोकी गली गलीमें गेशाओं या वेश्याओंके अड्डे व 'जोशीवाड़े' (चकले) देख बड़े बड़े जापानियोंका ख्याल जिस ओर नहीं गया, उस ओर इस १७ वर्षके बालक नरूसेका ध्यान कोबीके एक छोटे होटलके नाचके कारण गया। नरूसे महाशय जब अपने ध्यानमें मग्न होकर चिन्ता-सागरमें गोता खा रहे थे, उसी समय चन्द मौजी लोग रण्डियोंके साथ ऊपरके तलेमें मौज कर रहे थे। इस विचक्षण बालकको उसी समय यह ध्यान आया कि यदि स्त्रियोंकी शिक्षाका यथोचित प्रबन्ध हो तो यह कुरीति व कलंक देशसे दूर हो जाय। बस फिर क्या था, आप तन-मन-धनसे इस कार्यमें लग गये व गत ४० वर्षोंके कठिन परिश्रमसे देशको उन्नतिके शिखरपर चढ़ा दिया। नरूसे महाशय उस मण्डलीमेंसे एक हैं, जिसने ४० वर्ष पूर्व जापानकी अवस्थापर आँसू बहाये थे व उसकी उन्नति करनेका बीड़ा उठाया था।

आपने बहुत समय सोच-विचारमें नहीं गंवाया और न यह विचार छोड़ ही दिया। आपने भारतीय पीनकबाजोंकी तरह "स्कीम" तैयार करनेमें ही १० वर्ष नहीं बिता दिये, किन्तु आप एकदम कमर बाँध कार्य-क्षेत्रमें कूद पड़े। दूसरे ही वर्ष संवत् १९३३ में आपने ओसाका नगरमें, जो इस देशका दूसरा बड़ा नगर है, "बैकाजोगोक्को" नामकी एक पाठशाला खोल दी। यह संस्था आज दिन भी ईसाई धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रीशिक्षाकी प्रसिद्ध संस्था है। संवत् १९४० में आपने एक और पाठशाला नीगाता नगरमें खोली, जो जापानके प्रधान द्वीपकी उत्तरी सीमाके निकट है।

पच्चीस वर्ष हुए जब कि देशमें योर-अमरीकाकी नकलके विरुद्ध एक प्रचण्ड आन्दोलन उठा था। भारतके स्वदेशी आन्दोलनकी भाँति—जो सभी विदेशी वस्तुओं, चाल-ढाल, व्यवहार, सभ्यता इत्यादिके विरुद्ध था—इसका नाम "नीपन शुगी" था। यह आन्दोलन बढ़ती हुई नकलके विरुद्ध उठा था, पर कतिपय पुराने विचारवालोंने अच्छा मौका पा स्त्री-शिक्षाके ऊपर व्यक्तिगत आक्षेप भी प्रारम्भ कर दिये, किन्तु इससे नरूसे डिगनेवाले नहीं थे, विरोधने आपके हृदयकी आगको और भी धधका दिया। आप अमरीकामें जाकर स्त्री-शिक्षाके प्रश्नपर अधिक शिक्षा प्राप्त करनेकी धुनमें लगे। संवत् १९४७ में आप अमरीका गये और वहाँ आपने इस प्रश्नपर खूब मनन किया।

विदेशसे लौटनेके उपरान्त उच्च स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें आपके विचार स्पष्ट व प्रौढ़ हो गये थे। आपने उन सिद्धान्तोंको भी भलीभाँति सोच कर स्थिर कर लिया था, जिनपर आपको चलना था।

लौटनेके उपरान्त आप कुछ दिनों तक ओसाकाकी पाठशालामें प्रधान रहे, पर विचारोंको कार्यमें परिणत करनेका अवसर न मिलते देख आपने वह पद त्याग दिया और अपने मनमें यह ठान लिया कि एक विद्यापीठके खोले बिना काम न चलेगा। यही लक्ष्य सामने रख संवत् १९५२ में आपने "स्त्री-शिक्षा" नामकी एक पुस्तक लिख डाली। इसमें स्त्रियोंको उच्च-शिक्षा देनेकी आवश्यकतापर प्रत्येक दृष्टिसे प्रकाश डाला गया था। आपने इस कार्यके सम्बन्धमें भ्रमण करना व सम्मति लेना भी प्रारम्भ किया। आपके परिश्रमसे थोड़े ही दिनोंमें बड़े बड़े लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हो गया।

उस समय चीन-जापान-युद्धके कारण रुपयेकी कमी थी, इसलिये बहुतेरोंका विचार हुआ कि कुछ दिनोंके लिये यह कार्य शिथिल कर देना चाहिये, किन्तु कार्यके महत्त्व व आवश्यकताके कारण बहुमतसे यही निश्चय हुआ कि कार्यका रोकना उचित नहीं। बस नरूसे महाशयने दिन-रात परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। आपके तीन वर्षके दिन-रात्रिके परिश्रमका यह फल हुआ कि आपने दो लाख पचीस हज़ार रुपये जमा कर लिये। यह काम १९५६ के चैत्रमें समाप्त हो गया था। कार्यकारिणी समितिके अधिवेशनमें यह निश्चय हुआ कि १९५७ के चैत्रमें विद्यालय प्रारम्भ कर दिया जाय। इस निश्चयको कार्यमें परिणत करनेके निमित्त दो अन्तरंग सभाएँ बनायी गयीं, एकके जिम्मे इमारतोंका व दूसरेके जिम्मे शिक्षा-प्रणाली स्थिर करनेका काम सौंपा गया।

इस समय नरूसे महाशयने जो निवेदनपत्र छापकर देशमें बाँटा था, उसमेंसे कुछ अंशको यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा। आप कहते हैं—"हम लोग स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें जिन सिद्धान्तोंका अवलम्बन करना चाहते हैं वे ये हैं:—(१) स्त्रियाँ गाय, बकरी या यन्त्र नहीं, मनुष्य हैं; इसलिये उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो मनुष्योंके लिए उपयोगी हो। (२) स्त्रियाँ पुरुषोंकी दासियाँ नहीं हैं; इसलिए उनकी शिक्षामें इसका विचार करना उचित नहीं कि वे पुरुषोंकी गुलाम बनायी जायँ। उनकी शिक्षा उस सिद्धान्तके अनुसार होगी कि वे स्वतंत्र जीवन-संग्रामके लिए कटिबद्ध हो सकें। (३) स्त्रियाँ भी मानव-समाजकी अंग हैं, इस लिये उनकी शिक्षाका विचार उस सिद्धान्तसे होगा जिससे मानव-समाजकी जीवन-यात्रामें सुखकी वृद्धि हो। बहुत विचारके उपरान्त हमारा यह विश्वास हो गया है कि जो शिक्षा इस समय देशमें स्त्री-जातिको दी जाती है, वह इस सिद्धान्तसे प्रेरित है कि स्त्री-जाति एक विशेप प्रकारका औज़ार अथवा यन्त्र है, इसलिए स्त्रियोंको जो शिक्षा दी जाती है वह इस विचारसे कि वे किसी प्रकारसे दूसरोंके कामके लायक बनायी जायँ अर्थात् वे ऐसी बनायी जायँ कि यन्त्रकी भाँति उनसे पुरुष काम ले सकें। उनके शिक्षणमें यह विचार बिलकुल त्याग दिया जाता है कि वे भी मनुष्य हैं व समाजकी एक अंग हैं इसलिए उन्हें भी पुरुषोंकी तरह शिक्षा देना परम आवश्यक है। इसके विरुद्ध हम लोगोंका यह विश्वास है कि स्त्रियोंको मानव-समाजका उपयोगी अंग बनानेके लिये उन्हें साधारण व उच्च शिक्षा देनी नितान्त आवश्यक है। हमारे इस कथनका मतलब यह है कि स्त्रियोंकी शिक्षा प्रथम इस विचारसे होनी चाहिये कि वे स्वतन्त्र व्यक्ति व मनुष्य प्राणी हैं, साथ ही उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि उससे उनकी मानसिक व शारीरिक उन्नति हो, अर्थात् शिक्षा द्वारा उनकी प्रत्येक शक्तिका विकास हो जाय, और वे अपनी जीवन-यात्रामें अपने स्वत्व व अधिकार, धर्म व कर्तव्य समझकर बुद्धिपर भरोसा करती हुई मनुष्योंकी भाँति जीवन-निर्वाह कर सकें व किसी दूसरेका मुख जोहनेकी उन्हें आवश्यकता न रहे। किन्तु स्त्री-शिक्षाका केवल यही लक्ष्य नहीं है और हम यह भूल नहीं कर सकते कि स्त्रियाँ अपनी शारीरिक बनावट व समाजसे, जिसमें उन्हें रहना है भिन्न प्रकारकी बन जायँ। गृहस्थ धर्मका पालन सहज नहीं है, इसके लिये किन किन गुणोंकी

आवश्यकता है उन्हें सुनिये—उन्हें सच्चरित्र होना होगा, उन्हें अपने शरीरको हृष्ट-पुष्ट रखना होगा और उपयोगी कलाओंका भी परिचय प्राप्त करना होगा।

"किन्तु इन्हींसे स्त्री-शिक्षाके लक्ष्यका अन्त फिर भी नहीं होता, क्योंकि स्त्री गृह-पत्नीके अतिरिक्त समाज व जनताकी भी एक अवयव है इसलिये उसकी शिक्षा इस प्रकार होनी चाहिये जिसमें उसे सदा यह स्मरण रहे कि मेरा जीवन जाति तथा देशके जीवनमें सम्मिलित है व मेरे प्रत्येक मानसिक, वाचिक व कायिक कार्योंका फल सारी जातिके अभ्युदय व अधःपतनमें बड़ा योग देता है जिसका वह एक अंग या अवयव है। इसलिए इस विचारजालके उपरान्त जिस परिणामपर हम पहुंचे हैं वह यह है—(१) उनकी शिक्षा इस लक्ष्यसे होगी कि वे मनुष्य व मानव जातिकी एक अवयव हैं (२) उनकी शिक्षा इस विचारसे भी होगी कि वे स्त्रियाँ हैं व उन्हें जीवनमें भद्रपत्नी व बुद्धिमती माता बनना पड़ेगा। (३) उनकी शिक्षामें इसका ध्यान भी रक्खा जायगा कि वे जातिकी एक अंग है जिसमें उनका ध्यान इस ओर बराबर रहे कि चाहे वे कितनी ही साधारण प्रणालीका जीवन व्यतीत करती हों, पर उनका प्रत्येक कार्य जातिको ऊपर उठाने व नीचे गिरानेमें सहायक होता है।

"इसलिए उपर्युक्त कथनका विचार रखते हुए हमारा उद्देश्य एक सर्वव्यापी संस्थाका गठन करना है, जिसमें शिशु-शिक्षासे लेकर स्नातकों तककी शिक्षाका प्रबन्ध हो, जिसमें कथित सिद्धान्तोंको हम कार्यमें परिणत कर सकें।"

श्रीयुत जिनजो नरूसे।

इतने दिनोंके परिश्रमके उपरान्त ७ वैशाख संवत् १९५७ में यह विद्यालय खुल गया । खुलनेके समय, इसके पास जो भूमि व भवन थे, उनका हिसाब यह है—

१. कुल भूमि— ५५२० सूबोंकी

२. भवन— ७०७.५० सूबोंके

दो भवन, जिनमें शिक्षा दी जाती थी	२९८.७५ सूबोंके	
तीन भवन, जिनमें आठ छात्रालय थे	२७७.७५ ,,	
दो गृह, अध्यापकोंके लिये	५१.५० ,,	
सागर पेशा	७९.५० ,,	
योग	७०७·५०	

[एक सूबा = ३.९ वर्ग गज]

प्रथम प्रथम शिक्षाके ये विषय प्रारम्भ किये गये हैं (क) विद्यालय विभागमें १. गृह-कर्म-विज्ञान २. जातीय साहित्य ३. अंगरेज़ी साहित्य। (ख) निम्न कक्षामें अंगरेज़ीकी पढ़ाईका प्रबन्ध हुआ। (ग) पाठशाला विभागमें उच्च शिक्षाकी पाठशाला स्थापित हुई।

पहिले पहिल स्त्री-छात्रोंकी संख्या ५१० थी। उनका ब्यौरा इस भाँति है—

विद्यालय विभागमें।

गृह-कर्म-विज्ञान	९१	अंगरेज़ी शिक्षा-विभाग	३७
जातीयसाहित्य	८४	उच्च शिक्षा-विभाग	२८८
अंगरेज़ी-साहित्य	१०		५१०

शिक्षकोंकी संख्या उस समय इस प्रकार थी—

(१) प्रधान अध्यापक	२
(२) विद्यालय विभागके अध्यापक	३० (२५ पुरुष, ५ स्त्रियाँ)
(३) उच्च शिक्षाकी पाठशालाओंके अध्यापक	१८ (७ पुरुष, ११ स्त्रियाँ)
लेखक व रोकड़िया	३
	५३

जिस विवरणमेंसे मैंने उपर्युक्त बातें उद्धृत की हैं वह संवत् १९६९ का है। उसमें उस समयके दिये हुए अंक इस भाँति हैं— *

१९६९ में विद्यालयकी अवस्था।

अध्यापकमण्डल

संचालक समितिके सदस्य	२१
अधिष्ठाता	१
विद्यापति	१
विद्यालय विभागके अध्यापक	४९
सहायक अध्यापक	८
पाठशालाके शिक्षक	३४
प्रारम्भिक पाठशालाके शिक्षक	१०
शिशुशालाके शिक्षक	६
	१३०

छात्रगण

गृह-कर्म-विज्ञान	१४३	उच्चशिक्षाकी पाठशाला	४८९
साहित्य-विभाग	२७	प्रारम्भिक शिक्षा-शाला	११७
अंगरेज़ी-विभाग	३४	शिशु-शाला	५२
शिक्षणविज्ञान-विभाग	१२५		६५८
	३२९	कुल जोड़	१०६९
अंगरेज़ी-विभाग	१३		
साधारण विभाग	६९		
	८२		

* यह उन्नति विद्यालयने केवल ११ वर्षोंमें की है।

छात्रालयमें इस समय ४२१ विद्यार्थिनियाँ निवास करती हैं। अबतक स्नातिका विद्यालयसे १२४३ स्नातिकाएं निकल चुकी हैं व उच्चशिक्षाकी पाठशालासे ८९६।

इस समय शिक्षाके विषयोंका पाठ्य क्रम नीचे लिखे अनुसार है।

- जापान-महिला-विश्वविद्यालय।
  - विश्वविद्यालयकी शिक्षा
    - स्नातक शिक्षाक्रम [शिक्षाका समय पूरे तीन वर्ष तक]
      - १. गृहकर्म-विज्ञान
      - २. साहित्य
      - ३. अंगरेजी साहित्य
      - ४. विज्ञान
    - विश्वविद्यालय विभाग [शिक्षाका समय तीन वर्ष]
      - १. गृहकर्म विज्ञान
      - २. साहित्य
      - ३. अंगरेजी साहित्य
      - ४. अध्यापकोंके योग्य शिक्षा—
        - १. गणित पदार्थ विज्ञान
        - २. जीवविज्ञान, खनिजविद्या
        - ३. गृहकर्म-विज्ञान
        - ४. गृहोपयोगी कला
    - प्रिपेटरी (तैयारी) की शिक्षाका पाठ्यक्रम
      - १. साधारण शिक्षा [शिक्षाका समय एक वर्ष]
      - २. अंगरेजी साहित्य [,, दो वर्ष]
  - सम्बद्ध पाठशालाओंकी शिक्षा
    - १. उच्च पाठशालाकी शिक्षा [शिक्षाका समय पाँच वर्ष]
    - २. प्रारम्भिक पाठशालाकी शिक्षा [,, छः वर्ष]
    - ३. शिशु पाठशालाकी शिक्षा [तीन वर्षसे पाँच वर्ष तकके बालकोंके लिए]

उपर्युक्त तालिकाका ब्योरा भी यहाँ दे देना उचित है ।

(क) उपर्युक्त विद्यालयके चारों विभागोंमें अनिवार्य शिक्षाके विषय ये हैं—

(१) सदाचार या नीतिविषयक ।

(२) साधारण सदाचार ।

(३) आत्म-तत्त्व-विज्ञान ।

(४) अध्यापकोंके योग्य शिक्षा ।

(५) अंगरेज़ी ।

(६) व्यायाम ।

(ख) गृहकर्म-विज्ञान-विभागमें विशेष शिक्षाके विषय ये हैं—

१. अनिवार्य—प्राणिधर्मगुण-विज्ञान, आरोग्यशास्त्र, पदार्थ-विज्ञान व रसायनशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र, गृहव्यवस्था, पाक-विद्या, जापानी भाषा व शिशु-पालन ।

२. वैकल्पिक विषय—प्राकृतिक इतिहासका प्रयोग, यूरोपीय इतिहास, सूक्ष्म-शिल्पका इतिहास, शासनप्रणाली, साधारण विज्ञान, शिष्टाचार, उद्यानशास्त्र, सीनापिरोना इत्यादि

३. अधिक विषय—दर्शनशास्त्र, दर्शनका इतिहास, चीनी साहित्य, जापानी साहित्य, गन्धर्व-विद्या, चित्रणकला ।

(ग) साहित्य विभागमें विशेष शिक्षाके विषय—

१. अनिवार्य—साधारण इतिहास, सभ्यताका इतिहास-जापान व विदेशोंका, जापानी भाषा, जापानी साहित्य, चीनी साहित्य व शिशु-पालन ।

२. वैकल्पिक विषय—पाकशास्त्र, गन्धर्व-विद्या, चित्रण-विद्या ।

(घ) अंग्रेजी साहित्य-विभागमें विशेष विषय ये हैं—

१. अनिवार्य विषय—अंगरेज़ी भाषा, अंगरेज़ी साहित्य, जापानी भाषा, पाक-विद्या, शिशु-शिक्षा ।

२. वैकल्पिक विषय—दर्शन, दर्शनका इतिहास, चीनी भाषा, शारीरिक आरोग्यशास्त्र, सूक्ष्मशिल्पका यूरोपीय इतिहास, वनस्पतिशास्त्र और पाक-विद्या ।

३. अधिक विषय—पदार्थ - विज्ञान व रसायनशास्त्रका विनियोग, शासन-प्रणाली व साधारण विज्ञान, गन्धर्व-विद्या, चित्रणकला ।

(च) अध्यापकोपयोगी शिक्षा-विभागके विशेष विषय—

१. गणित, पदार्थ-विज्ञान व रसायनशास्त्रके अनिवार्य विषय, अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोण मिति, भौतिक व रसायनशास्त्र, गृहप्रबन्ध-शास्त्र, शिशुशिक्षा ।

२. जीवशास्त्रके अनिवार्य विषय—वनस्पति-शास्त्र, प्राणिशास्त्र, प्राणि-धर्म-गुणविज्ञान, आरोग्यशास्त्र, खनिज-शास्त्र, गृहप्रबन्धशास्त्र व शिशु-विनियोग ।

३. गृह-प्रबन्ध-विज्ञान-विभागके अनिवार्य विषय—भौतिकशास्त्र, रसा-

यनशास्त्र, बीजगणित, रेखागणित, गृहप्रबन्ध-शास्त्र, पाकविद्या, प्राणिधर्मगुण-विज्ञान, आरोग्यशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र, जापानी भाषा ।

४. गृह-प्रबन्ध-कला विभागके अनिवार्य विषय—गृह-प्रबन्ध, पाक-विद्या, पदार्थविज्ञान व रसायनका विनियोग, सीनापिरोना, शारीरिक व आरोग्यशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र व जापानी भाषा ।

५. उपर्युक्त चार विभागोंमें सबके लिये अनिवार्य विषय, शिक्षा-विधि व पाठशालाप्रबन्ध है ।

६. उपर्युक्त चार विभागोंमें विशेष विषय जापानी भाषा व गन्धर्व-विद्या हैं । पाठशाला विभागमें सभी विषय अनिवार्य हैं, उनका विवरण इस भाँति है—

१. उच्च-शिक्षा-विभाग—उपयोगी सदाचार, जापानी भाषा, अंगरेज़ी भाषा, इतिहास, भूगोल, गणित, पदार्थविज्ञान, गृहप्रबन्ध-विज्ञान, सीना, चित्रण, गन्धर्व-विद्या व व्यायाम ।

२. प्रारम्भिक शिक्षा-विभाग—साधारण सदाचार, जापानी भाषा, अंकगणित, जापानी इतिहास, भूगोल, भौतिक, चित्रण, गान, दस्तकारी, सीना व व्यायाम ।

३. शिशुशालामें—प्रकृति-पाठ, दस्तकारी, खेलकूद, गाना व बातचीत ।

इनके अतिरिक्त इस विद्यालयमें कई सभा-समितियाँ हैं, जिनके द्वारा कोई ५० प्रकारके भिन्न भिन्न विषयोंकी सहज ही शिक्षा मिलती है । इनमें नाना प्रकारकी खेलकूद, वक्तृता व कतिपय विषयोंपर वादविवाद करना भी है । सबका वर्णन करनेसे विषय बहुत बढ़ जायगा । इतना विस्तार भी केवल "जालन्धर-कन्या-महाविद्यालय" और देशकी अन्य संस्थाओंके विचारार्थ किया गया है । यदि भावी विद्यालयोंको स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धकी संस्थाएँ खोलनी हों तो उन्हें इस विद्यालयका ध्यान रख इसमेंसे भी मसाला एकत्र करना चाहिये ।

इस विवरणमें विद्यालयके आय-व्ययका लेखा नहीं दिया गया है इससे उसका पूरा हाल देना कठिन है, किन्तु जो कुछ मसाला है उसका वर्णन किया जाता है—

विद्यालय खोलनेके समय समितिके पास थे	१५०००० यन
एक वर्ष बाद श्रीमती महारानीने दिये	२००० यन
मोरीमूरा महाशयने दान दिये	९०००० यन
[मोरीमूराका दान जापानमें सबसे बड़ा है, इससे बड़ा दान किसी एक व्यक्तिने अभी तक नहीं दिया है ।]	
अन्य सज्जनोंने दिये	१००००० यन
दो वर्षके उपरांत बैरन फुजीताने दिये	२५००० यन
बैरन शिबुसावाने दिये	२६००० यन
	कुल ३९३००० यन ।

यह रकम छः लाख रुपयोंके बराबर है । इतने कम धनसे जो कार्य यहाँ हो रहा है वह बड़ा ही सराहनीय है । किन्तु इतने कम धनमें इतना बड़ा कार्य कैसे हो

जापानमें आंखमिचौनीका खेल [पृष्ठ-२९३]

सकता है, इसकी खोज करनेसे अद्भुत बातोंका पता चलता है। (१) यहाँ इमारतों-में धन बहुत कम व्यय किया जाता है, प्रायः सब इमारतें मामूली सलईकी लकड़ीसे ही बनायी जाती हैं। इस विद्यालयमें भी ऐसी ही व्यवस्था है। (२) दूसरा महान् कारण यह है कि यहाँ अध्यापक व शिक्षक ब्राह्मण प्रकृतिके हैं। उन्हें सम्मान अधिक किन्तु द्रव्य कम मिलता है। जो लोग जापानमें विश्वविद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर विदेशमें पाँच वर्ष शिक्षा ग्रहण करनेके बाद स्वदेश लौटकर शिक्षा-विभागमें काम करना चाहते हैं, उन्हें १५० यन अर्थात २२५) रुपयेसे नौकरी आरम्भ करनी पड़ती है। इम्पीरियल यूनिवर्सिटीमें भी ३७०० यनसे अधिक वार्षिक किसी को नहीं मिलता, जो लगभग ४६०) रुपये मासिकके बराबर है।

विदेशी अध्यापकोंको यहाँ भी अधिक वेतन मिलता है, पर उनकी संख्या दालमें नमकके बराबर है, शायद कुल शिक्षा-विभागमें दससे अधिक विदेशी न होंगे। हमारे देशके शिक्षकोंको—विशेषतः विदेशसे शिक्षाप्राप्त शिक्षकोंको—इस ओर ध्यान देना चाहिये। हिन्दुओंके यहाँ विद्या बेचना महान् पाप है, किन्तु निर्वाहके लिये पुरस्कार-स्वरूप लेना भी समयके प्रभावसे अनुचित नहीं है। इस सम्बन्धमें प्राचीन ढंगके विद्वानोंकी प्रणाली बड़ी सराहनीय, श्रद्धास्पद व अनुकरणीय है।

इस विद्यालयमें जाने और इसे देखनेसे विशेषतः इसकी सादगीका बड़ा प्रभाव पड़ता है। छात्रालयमें भी टेबुल कुर्सीकी ज़रूरत नहीं। वहाँ भी स्वदेशी चालसे ही एक एक कमरेमें पाँच पाँच छः छः लड़कियाँ जापानी चटाईपर बैठती हैं। जापानके शिक्षा-प्रचारकोंने समझ लिया है कि शिक्षा देनेके लिये, यहाँ तक कि उच्च शिक्षा देनेके लिये भी, ईंट-पत्थर व संगमर्मरसे बनी इमारतोंकी ज़रूरत नहीं है। उसी प्रकार कोट-पतलून, हैट-बूट पहिनकर गाड़ीमें चलनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। ये समझते हैं कि उच्चसे उच्च शिक्षा भी काठ व मिट्टीके बने साधारण गृहोंमें दी जा सकती है। शिक्षक लोग कीमोनो पहिन कर भी वैसी ही शिक्षा दे सकते हैं जैसी अंगरेज़ी पोशाकमें। फिर ये गरीब देशका धन इन फालतू बातोंमें व्यर्थ बर्बाद नहीं करना चाहते। इसीसे इन्हें शिक्षाके प्रचारमें धनकी कमी उतनी नहीं होती, जितनी हमें होती है। यदि हमारे यहाँ भी वैसे ही मकानोंमें शिक्षा दी जाय, जिनमें छात्रगण दिनका अधिक भाग अपने घरोंमें बिताते हैं, साथ ही यदि शिक्षक लोग भी उतनेही धनसे अपना काम चला लें जितनेमें उनके अन्य भाई चलाते हैं, तो जितना द्रव्य हम इन फ़ज़ूल ईंट-पत्थरोंमें खो देते हैं उतनेमें एकही जगह तीन पाठशालाएं बन सकती हैं।

मैं यह सिद्धान्त भी मानता हूं कि पढ़ाईके लिये स्थान साफ-सुथरे व हवादार होने चाहिये। इसको मानते हुए भी यही कहना पड़ता है कि खपड़ेसे छाये हुए मिट्टीके मकान, जिनमें खिड़कियां काफी हों—ईंट पत्थरोंके मकानसे किसी अंशमें कम साफ नहीं, वरन् अधिक साफ रह सकते हैं। किन्तु इससे बढ़कर मुझे एक बात यह भी कहनी है कि इस समय हम पेड़के नीचे खुले मैदानमें व शहरकी गन्दी गलीके अँधेरे मकानके पायखानेमें भी बैठ कर पढ़ना, न पढ़नेसे अच्छा समझते हैं। "आरत काह न करै कुकर्मू" पेटमें जब क्षुधा लगती है, भूखसे जब त्रिलोक सूझ पड़ता है,

तो सड़ा बासी तो दूर रहे, लोग दूसरोंके वमन किये हुए पदार्थसे भी टुकड़े उठाकर खा लेते हैं, उस समय मोहनभोगकी नहीं सूझती। मैं इस बातका माननेवाला हूं कि मूर्ख रहनेकी अपेक्षा खराबसे खराब शिक्षा भी अच्छी है। दोनों आंखें फोड़नेकी अपेक्षा अगर एक आंख बच जाय तो अच्छा ही है। "लड़का जीवै नकटा ही सही" भारतवर्षमें शिक्षाविभागके कड़े नियम बड़े ही अनुपकारी हैं। वे शिक्षाकी जड़ पर कुल्हाड़ चलाते हैं, कुश उखाड़ जड़में मठा डालते हैं। शिक्षा-विभागके प्रवर्त्तकोंसे मेरी प्रार्थना यह है कि कृपा कर आप सुधार मत कीजिये। आपका सुधार हमारे लिये दुःखदायी प्रतीत होता है, आप कृपा करें। हिन्दुस्तान इङ्गलैण्ड नहीं है, उसके बराबर होनेमें अभी देर है।

दसवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

श्रीमती यजीमा देवी ।

आज प्रातःकाल ही सब कार्योंसे निवृत्त होकर मैं श्रीमती "यजीमा" देवीके दर्शनार्थ गया । 'आप जापान वीमेन्स क्रिश्चियन टेम्परेन्स यूनियन' की प्रधान व्यवस्थापिका हैं । आपका मकान खोजनेमें बड़ा समय लगा, भाषाके अज्ञानके कारण गूँगों बहिरोंकी भाँति इशारेसे पूँछना पड़ता था, बड़ी देरमें एक अंगरेज़ीदाँ मिले, तब उन्होंने कृपाकर घरका पता बताया ।

श्रीमती यजीमा देवी ।

आपने पहिलेसे ही एक दूसरी रमणीको बुला रक्खा था, जो उक्त सभाकी एक सदस्या थी । आप अंगरेज़ी खूब बोलती थीं, पर शीघ्रतासे बोलनेका अभ्यास

आपको नहीं था। आपने १२ वर्षतक अपने पतिके साथ अमरीकामें निवास किया है, आपके पति वहाँ व्यवसाय करते थे।

आपका घर भी अन्य जापानी घरोंकी भांति ही था। भारतवर्षमें जिस प्रकार ईसाईके घरमें जाते ही मालूम हो जाता है कि हम किसी ईसाई भाईके घरमें आये हैं, वैसा यहां नहीं है। कारण हमारे यहां ईसाई भाई धर्मके साथ साथ चाल-ढाल, व्यवहार व सभ्यता भी बदल डालते हैं व एक पुश्तके बाद तो उनका नामतक बदल जाता है। इससे वे एक प्रकारके नये समाजमें चले जाते हैं, किन्तु यहां ऐसा नहीं है। यहां धर्मके साथ चाल-ढाल, रहन-सहन व सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलती। इससे केवल देखकर यह पता लगाना कि अमुक ईसाई है, अमुक बौद्ध है या अमुक शिंन्तो है, कठिन ही नहीं, असम्भव है। कई जापानी भाइयोंसे पूंछनेपर ज्ञात हुआ कि इस देशके किसी मनुष्यका धर्म मृत्युके उपरान्त उसकी अन्त्येष्टि क्रियासे जान पड़ता है। कुछ अंशोंमें हमारे ग्रामीण मुसलमान भाइयोंका भी यही हाल है। उन्हें या उनके घरोंको बाहरसे देखनेसे पता नहीं चलता कि ये हिन्दू हैं या मुसलमान। योर-अमरीका प्रभृति देशोंमें तो लोगोंका धर्म केवल गिरजेमें जानेपर ही मालूम होता है। योर-अमरीकामें भी सामाजिक रहन-सहनमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंमें भेद नहीं है, हां, केवल यहूदियोंका खानपान भिन्न प्रकारका है।

मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि जापानमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंमें विवाह भी हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें पत्नीको पतिका धर्म ग्रहण करना होता है। हमारे यहां भी कई सम्प्रदायोंमें ऐसी ही चाल है। काशीमें अग्रवालोंके यहां जैन-वैष्णवमें विवाह होता है, विवाहके बाद पत्नी, पतिके धर्मको स्वीकार कर लेती है। क्या ही अच्छा होता, यदि यह व्यवस्था भारतवर्षमें राष्ट्रीय हो जाती। हम जानते हैं कि सम्राट् अकबरकी सम्राज्ञी जोधाबाई हिन्दू धर्मको मानती थीं और अब भी कितने ही राजा महाराजाओंके महलोंमें मुसलमान, ईसाई व अंगरेज जातिकी रानियाँ हैं, अतः यदि राष्ट्रको ढीला करनेवाला यह कठिन धार्मिक बंधन टूट जाता, तो बड़ा उत्तम होता। जिस देशके रहनेवाले केवल धार्मिक विचारसे आपसमें लड़ा करते हैं व उसके सामाजिक जीवनरूपी सरोवरमें धार्मिक बाधाएं भीतकी तरह खड़ी होकर उन्हें आपसमें मिलने नहीं देतीं, वह देश किसी प्रकारसे भी सुखी नहीं रह सकता। यदि संसारमें सभी जगह भिन्न भिन्न मत वाले साथ साथ एक ही समाजके अङ्गस्वरूप होकर रह सकते हैं तो भारतमें ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं हो सकती?

क्या भारतके अधिकांश मुसलमान उन्हीं ऋषियोंकी सन्तान नहीं हैं, जिनके वंशज हिन्दू हैं? क्या भारतके मुसलमानोंको गंगा या यमुना उसी प्रकार शीतल जल नहीं पिलातीं, जिस प्रकार हिन्दुओंको? क्या मुसलमानोंकी खाक उसी सरजमीन हिन्दमें नहीं दबायी जाती, जिसमें हिन्दुओंकी? क्या हिमालयकी हिमसे लदी चोटियाँ मुसलमानोंको ठण्ढी हवा नहीं पहुंचातीं? यदि इन प्रश्नोंका उत्तर 'हाँ' हो तो फिर मुसलमान भाई बतावें कि उन्हें राम व कृष्णकी अपेक्षा दारा व रुस्तम, नौशेरवाँ व कैकूबादसे अधिक प्रेम क्यों है? गंगा व यमुनाकी अपेक्षा उन्हें दजलासे क्यों अधिक दिलचस्पी है? भारत-भूमिको अपनी जननी जन्मभूमि मानते हुए भी वे क्यों अरब

व तुर्कीसे ज्यादा पैवस्तगी दिखाते हैं ? हिमालयसे कोहेकाफ क्यों उन्हें अधिक भाता है ? क्या उन्हें हिन्दुओंकी बुतपरस्तीसे इतना आज़ार पहुंचता है कि अपने भाईको गले न लगा कर, अपनी माँसे मुहब्बतका रिश्ता तोड़, किसी दूसरी औरतको माँ व उसके बच्चोंको भाई कहना ज्यादा पसन्द आता है ?

मैं अपने हिन्दू भाइयोंसे भी यही प्रश्न करूंगा कि क्या कबीर व चिश्तीको हम अपना पथ-प्रदर्शक नहीं मानते ? क्या फैजी, अबुलफ़ज़ल, नासिख, दाग़, गालिब व अमीर आदि भी अपने मनोहर काव्यसे हमारे देशको वैसाही ऊँचा नहीं करते, जैसा बाण, भवभूति, कालिदास, वाग्भट्ट, सूर व तुलसी करते हैं ? क्या केवल इसी कारणसे कि वे अरबी अक्षरोंमें लिखे हैं, हम अपने चार शताब्दियोंके साहित्य-रत्नको फेंक देंगे ? क्या हम बृहस्पतिको देवताओंके गुरु नहीं मानते जिनके शिष्य चारवाक्य एक नवीन दर्शनके कर्त्ता थे ? क्या बुद्धदेवकी गणना विष्णुके दशावतारोंमें कट्टरसे कट्टर हिन्दू नहीं करता ? क्या आज दिन भी करोड़ों हिन्दू कबर नहीं पूजते ? बहराइचमें बालेमियाँके मजारपर मन्नत नहीं मानते ? मुहर्रमके दिनोंमें ताजियोंपर शर्बत व मटरकी मालाए नहीं रखते ? क्या सरयूपारके कतिपय सरयूपारीण ब्राह्मणोंके घरोंमें बालेमियाँके निशान तले यज्ञोपवीत व विवाह नहीं होता ? फिर क्या आज दिन भी यूरोपनिवासी खुशी खुशीसे विश्वनाथके मन्दिरमें सबूट नहीं आने पाते ? क्या गोरे सिपाहियों और अन्य अंगरेजोंके लिये देशमें लाखों गौओंकी हत्या नहीं होती ? क्या कलकत्ता, बंबई आदि बड़े बड़े नगरोंमें हिन्दुओंके घरोंमें ही गौओंकी दुर्दशा ही नहीं प्रत्युत उनकी क्रूर हत्या नहीं होती ? फिर क्यों एक अदूरदर्शी औरंगजेबके जुल्मोंको तुम नहीं भूल जाते ? क्यों चन्द नासमझ मुतअस्सिब जाहिल मौलवियोंकी नासमझी पर तुम इतने बिगड़ते हो कि पशुओंके खातिर मनुष्योंके कहीं कहीं एक कोखसे उत्पन्न हुए भाइयों-के खून बहानेके लिये तैयार हो जाते हो ? ऐ हिन्दू मुसलमानो ! कब तक तुम आपस-में लड़ा करोगे ? क्या तुम्हें नंगी, भूखी सिरखुली रोती हुई मां पर तरस नहीं आता ? खुदाके लिये, रामके लिये, परमेश्वरके लिये, जरा अपनी हालत देखो, लड़ते लड़ते क्या बन गये । जरा तो होश संभालो व देखो कि जमाना तुम्हारी इस चाल पर थूँकता है व तुम अपनी ही 'डेढ़ चावलकी खिचड़ी' पकाये जाते हो ।

यह सब कहनेका मेरा अभिप्राय यह था कि मज़हब या धर्म मनुष्यकी निजी सम्पत्ति है । उसका सम्बन्ध केवल आत्मा व परमात्मासे है । उसे सांसारिक झगड़ोंमें डालना, उसकी पवित्रता व गौरवको अपवित्र व कलंकित करना है । धर्मको सामाजिक चाल-ढाल, रीति-रिवाज़, रहन-सहन व खान-पान, शादी-विवाहके कीचड़में डालना कहाँ तक उचित है, यह विद्वान् लोग भलीभांति समझते हैं । संसारमें जिन जिन जातियोंने सांसारिक उन्नति की है, मज़हब व दुनियाँको अलग रख करके ही की है । दोनोंको एकमें मिला कर पञ्चामृत बनानेका परिणाम वही होता है, जो अरबों, तुर्कों, चीनियों व हिन्दुओंका महाभारतके पश्चात् हुआ था ।

इन बातोंमें मुख्य विषय छूट गया । अब पुनः उसकी ओर झुकते हैं । हमने यजीमा देवीके घरको मामूली जापानी घरोंकी भाँति पाया और उनके बतलानेके बाद मालूम हुआ कि वे ईसाई मतकी हैं ।

इस समितिने अपना नाम 'मद्यनिवारिणी समिति' रक्खा है, पर इसका काम केवल जापानी रमणियोंमें मद्यपानकी कुप्रथाका ही दूर करना नहीं हैं क्योंकि वस्तुतः यह कुप्रथा यहाँ है भी नहीं, यहाँ तक कि जिन रमणियोंने विदेशी सभ्यता ग्रहण कर ली है, उनमें भी शायद यह कुरीति इस दर्जेको नहीं पहुंची है।

इस समितिका प्रधान कार्य एकसे अधिक विवाहका रोकना, सुरैतिन रखनेकी प्रथाका उठाना व रंडियोंकी संख्या घटाना ही है। यह संस्था, इस समय आगामी नवम्बर मासमें होनेवाले राज्याभिषेकके अवसरपर 'गेशाओं'के नाच-रंगके बन्द करनेके लिये कठिन परिश्रम कर रही है। सभी विचारशील सज्जन इस कार्यके लिये आपको साधुवाद देंगे।

आपने यह भी बतलाया कि इस संस्थाकी शाखाएं सारे देशमें फैली हुई है। सदस्योंकी संख्या कोई ३००० है। योर-अमरीकामें ऐसी संस्थाएँ जो जो काम किया करती हैं, यहां भी प्रायः वे ही कार्य किये जाते हैं। इसने एक "एम्प्लायमेंट ब्युरो" (नौकरी ढूंढनेवाली) संस्था भी खोल रक्खी है, जो कम उम्रकी लड़कियोंको काम खोज देती है, जिसमें वे कुचाल व कुसंगतिमें पड़ जानेसे बच जाती हैं। कार्य बड़ा ही उत्तम है व आप स्वयम् बड़ी श्रद्धा, भक्ति व त्यागसे सब काम करती हैं। पूछनेसे यह भी ज्ञात हुआ कि इस समितिमें ईसाइनोंके अतिरिक्त अन्य मतावलम्बिनी स्त्रियां भी सदस्य हैं। उनकी संख्या फी सैकड़े दस है। जो इस समितिमें सदस्य बनती हैं वे पीछे उसके अच्छे प्रभावसे ऐसी मुग्ध हो जाती हैं कि अपना धर्म भी बदल डालती हैं। इसकी व्यवस्था ठीक उसी प्रकारकी है, जैसी भारतवर्षके वाइ० एम० सी० ए० व वाइ० एम० डबल्यू० ए० की है।

यहाँ एक और प्रश्न उठता है। उसे मैं पाठकोंके सामने रखना उचित समझता हूं जिसमें वे भी इसका विचार कर अपनी अपनी सम्मति निर्धारित कर सकें।

संसारमें कोई ऐसा देश नहीं व कोई ऐसा समय भी नहीं जान पड़ता, जिसमें वेश्याएँ न रही हों। हिन्दुओंके पुरानेसे पुराने ग्रन्थोंमें भी अप्सराओंके नाम व उनके कामोंका उल्लेख है। प्रायः एकसे अधिक विवाह करनेकी प्रथा भी प्रमाणस्वरूप मिलती है, एक स्त्रीके एक समय ही एकसे अधिक पति होते थे, इसकी भी चर्चा कहीं कहीं है।

मुसलमानी मतमें तो बिहिश्तमें हूरोंका जिक्र है। कई विवाहोंकी बात तो दूर रहो 'मुताह' भी जायज़ है।

इसका पता नहीं चलता कि ईसाई धर्म भी यूरोपमें आनेके पूर्व एकसे अधिक विवाहका खण्डन करता था या नहीं। दस-बीस वर्षके पूर्व तक अमरीकाके 'मोरमन' सम्प्रदायके ईसाई एकसे अधिक विवाह किया करते थे। अब भी ऐसे कुछ लोग हैं जिनके एकसे अधिक स्त्रियाँ हैं।

योर-अमरीकामें वेश्याओंकी कमी नहीं, वहाँ सुरैतिन रखनेकी प्रथा भी अप्रचलित नहीं, साथ ही "मिष्ट हृदय" प्रथाके कारण युवक-युवतियोंको अपने मनके हौसले निकालनेमें भी कोई कठिनाई नहीं, यहाँ तक कि—पाठक क्षमा करेंगे—भारतीय दृष्टिसे योर-अमरीकामें कोई ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी नहीं समझी जा सकती, किन्तु इससे यह ध्वनि नहीं निकलती कि वहाँके लोग दुराचारी हैं। सदाचारके नियम, गणितके

पृथ्वी प्रदक्षिणा

ध्रुवनिवासी रीछ (न्यूयार्ककी जन्तुशालामें) (पृष्ठ ५६ व २२५)
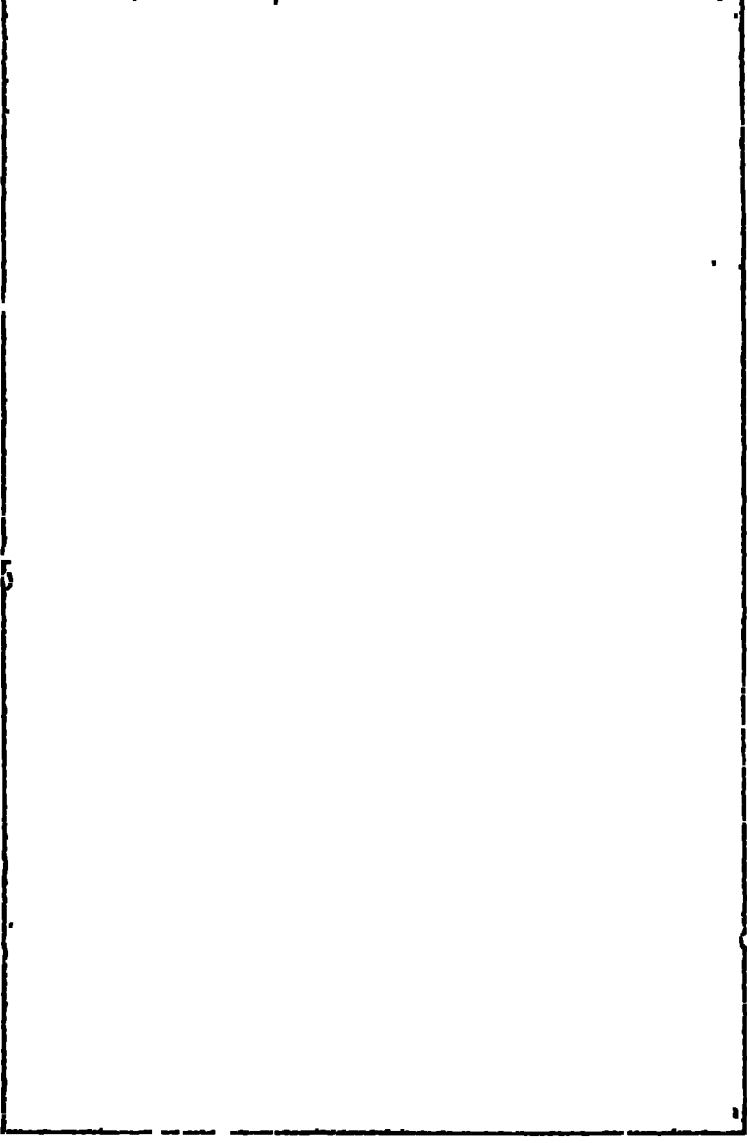
नियमोंके से अटल तो नहीं हैं। वे देश, काल व समयके अनुसार बदला करते हैं। एक देशके सदाचारके नियमोंके साथ दूसरे देशके सदाचारके नियमोंको मिलाना, न मिलनेपर नाक-भौं चढ़ाना और वहाँवालोंको दुराचारी कहना वैसी ही भूल है, जैसी भारतमें 'भ्र वी' रीछ व भारतीय समुद्रमें 'सील' न मिलनेसे नाराज होना व बंगालमें गेहूं न होनेसे उसे निकम्मी जमीनका देश मानना तथा भारतके किसी भागमें सुपारी-नारियल न होनेसे उसे खराब समझना है।

सदाचारका अर्थ ही देश, काल व समाजके नियमोंका पालन करना है। भारतवर्षमें ही किसी समयमें गान्धर्व विवाह और स्वयंवर होते थे। आज यदि वह प्रथा चलायी जाय तो सभी उसे खराब कहेंगे।

इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए यदि देखा जाय तो सुरैतिनोंका रखना जापानमें बुरा नहीं समझा जाता था, फिर समझमें नहीं आता कि ईसाई भाई क्यों इसके विरुद्ध आन्दोलन करते हैं। ईसाई लोग स्वयम् यह नहीं करते, वरन् योर-अमरीकाके पादरियोंसे प्रेरित होकरके ही ऐसा किया करते हैं। इसलिये मैं योर-अमरीका-निवासियोंसे यह प्रश्न करता हूं कि क्या वे यह आन्दोलन इस ख्यालसे करते हैं कि यह रीति बुरी है, इसे दूर करना चाहिये? क्या वे हिन्दू ख्यालके अनुसार ही इसे बुरा समझते हैं कि विना विवाहके स्त्री-पुरुषका संग होना महापाप है? यदि यह ठीक है तो उन्हें प्रथम अपने देशमें "मिष्ट हृदय", कोर्ट-शिप तथा तिलाक इत्यादिकी प्रथाओंका विरोध कर घोर आन्दोलन उठाना चाहिये। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी नीयतमें फर्क होनेका सन्देह होता है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

—:०:—

जापानके खेल-तमाशे ।

सन्ध्याके समय मैं कुश्ती देखने गया । कुश्तीके लिये तोकियोमें एक बहुत बड़ा मण्डप बना है, जहाँ प्रायः दंगल हुआ करते हैं । इस मण्डपमें बीस सहस्रसे अधिक दर्शकोंके बैठनेका स्थान है । मण्डप गोल बना है, गुम्बज़की छत काँचकी होनेसे प्रकाश खूब आता है । मण्डपके बीचमें अखाड़ा बना हुआ है, पर चारों ओर चार खण्डोंमें नीचे-ऊपर दर्शकोंके बैठनेका स्थान है । बैठनेका प्रवन्ध चटाईके फर्शपर है । बीच बीचमें लकड़ी लगाकर ये स्थान चार चार आदमियोंके बैठने योग्य बनाये गये हैं । मण्डपमें खाने-पीनेकी सब चीजें भी मिलती हैं ।

भारतवर्षकी तरह यहाँ भी पहलवान लोग अपने अपने शागिर्दोंके साथ गोल बाँधकर अकड़ते चलते हैं । पहलवान लोग विशेष प्रकारके बाल रखकर तेल आदिसे उन्हें साफ रखते हैं । कुश्तीका ब्योरा मैं पहिले ही लिख चुका हूं । इसका क्रम कुछ विशेष नहीं है, अखाड़ेके बाहर पैर पड़ जानेसे ही हार मान ली जाती है । दंगलके समय यहाँ खूब भीड़ होती है । प्रायः मण्डप भरा रहता है । दर्शकोंमें सैनिकोंकी संख्या भी अधिक होती है ।

जापानके पहलवान ।

इसके बाद हम 'जुजुत्सू' देखने गये। यह एक ऐसे लम्बे चौड़े कमरेमें होता है, जिसमें चटाईका गद्दा बिछा रहता है। जो जगह देखने गये वह जुजुत्सूकी पाठशाला है। इसमें प्रायः तीन वर्षोंकी शिक्षा दी जाती है। यह भारतवर्षकी कुश्तीके समान ही है। इसमें भी नाना प्रकारके पेंच, जैसे लंगी, धोबी-पछाड़, कमर-तेगा, सवारी कसना इत्यादि व सभी प्रकारके ढंग सिखलाये जाते हैं। इस प्रकारकी पाठशालाएं लड़के व लड़कियों, दोनोंके लिये ही होती हैं। इनमें बहुतेरे छात्र शिक्षा पाते हैं। यदि हम भी अपने यहाँके अखाड़ोंमें छुरी चलाना, कुश्ती लड़ना, लकड़ी, पटा, बाना, बनेठी, अलोजर्व, रूमाली इत्यादिका प्रचार अधिक फैलावें तो देशमें पुरुषत्वकी वृद्धि हो। जिस प्रकार योर-अमरीकाके भिन्न भिन्न नगरोंमें बन्दूकका निशाना लगानेके लिये "शूटिंग-गैलरियाँ" बनी हैं, वैसी यहाँ भी बननी चाहिये। यदि सरकार "आर्म्स ऐक्ट" उठाले व विना रोक-टोकके लोगोंको हथियार रखनेकी आज्ञा दे दे तो बड़ा उपकार हो। इससे देशमें डाकू, चोर व हिंसक पशुओंसे लाखों निरपराध जीवोंकी रक्षा होगी और साथ ही देशकी रक्षाके लिये पुरुषोंको कमी भी न रहेगी।

× × ×

"नो-नृत्य"

आज हम लोग यहाँका प्रसिद्ध नाटक देखने गये, इसे "नो" कहते हैं। यह इस देशके स्वदेशी ढंगका प्राचीन नाटक है। इसकी तुलना भारतवर्षके रास, स्वाँग, यात्रा व गम्भीरा आदि पुराने ढंगके मनबहलावके खेलोंसे हो सकती है।

यहाँके पुराने खेल प्रायः नाटकोंके लिये लिखे गये हैं। इनके खेलनेके समय यवनिकाकी आवश्यकता नहीं होती। ये प्रायः दिनके समय बड़े मकानमें ही खेले जाते हैं। अनुमान कीजिये कि तीन ओर दालान और बीचमें चौक है। दालानोंमें लोगोंके बैठनेका प्रबन्ध है व चौकमें दालानसे एक गज ऊँचा लकड़ोंका रङ्गमञ्च बना है। रङ्गमञ्चकी बाईं ओर ११,१२ आदमी दोजानू हो, बैठ कर भारतवर्षकी रामलीलाओंमें रामायण पढ़नेवालोंकी तरह कुछ गाते हैं। उनसे हट कर तीन मनुष्य बैठकर भिन्न भिन्न बाजे बजाते हैं। नाटकके पात्र कभी कभी सादे व कभी कभी नाना प्रकारके चेहरे पहिनकर आते हैं। खेलका प्रभाव अच्छा ही पड़ता है।

उस दिन हमलोगोंने दो खेल देखे, एक 'माताका खोये हुए पुत्रके लिये विलाप करना' और दूसरा 'डायमियो राजाका अपने समुराई या सिपाहियोंके साथ बाहर जाना'। पहिले खेलमें स्त्रीका वेश चेहरा लगाये हुए एक पुरुषने लिया था। खेलका स्थान निर्जन वन व समय रात्रिका होना चाहिये था, पर यहाँ न वनका ही दृश्य था, न रात्रिका ही। जिस प्रकार रासलीलामें कुञ्जगली व रात्रिका अनुमान कर लिया जाता है, वैसा ही यहाँ भी था। घंटे भरके विलापके बाद वनके देवताने उसे लड़का देकर प्रसन्न किया। इसके बाद माता वनदेवके प्रशंसापूर्ण गान गाकर पुत्रको लेकर चली जाती है।

दूसरे खेलमें उक्त राजा राहमें ठहर कर एक समुराईको शराब लानेको भेजता है। नौकर शराबकी दूकानमें पहुंच मदिरापानसे खूब मस्त होकर नाचता है। देर होनेके कारण डायमियो उसे ढूँढनेके लिये दूसरे समुराईको भेजता है परन्तु उसकी भी वही

गति होती है, दोनों मिल कर वहीं आनन्द मनाने लग जाते हैं। यहाँ शराबकी दूकान वगैरह कुछ भी नहीं दिखलायी जाती। सिर्फ नट शराब पीने आदिका नाट्य कर दिखाते हैं। दोनों ससुराइयोंको गायब होते देख डायमियो स्वयम् जाकर उनपर क्रोध प्रकट करते हुए साथ ले आता है।

संसारकी लीला विचित्र है। यह एक स्वाभाविक बात है कि अपनी अच्छी वस्तु भी खराब लगती है व दूसरोंकी खराब भी अच्छी। कारण यह है कि नित्य दृष्टिगोचर होने वाली चीजोंपर उतनी चाह नहीं रहती, परन्तु दूसरोंकी वस्तुओंका अनुभव प्रयासके बाद होता है, इसलिये वे वास्तवमें अपनी वस्तुओंसे कहीं खराब होने पर भी अच्छी जँचती हैं। वही रास व रामलीलाएँ जिन्हें मैं देशमें रह कर खराब समझता था व लोगोंको उनके देखनेसे मना करता था, आज विदेशमें साल भर घूमनेके बाद अच्छी मालूम होने लगीं। योर-अमरीकाके 'पेजेण्ट' व जापानके 'नो' नाच व स्वांग देखनेके बाद भारतवर्षकी रामलीला, रास व यात्रा बहुत अच्छी जान पड़ती है।

मेरा यह दृढ़ विश्वास होता जाता है कि यदि अधिक अधिक लोग विदेश-यात्राके लिये आवें तो वह मायाका जाल शीघ्र ही नष्ट हो जाय, जिसके वशीभूत होकर हम अपनी सब बातें व अपने आपको निकम्मा समझ बैठे हैं। संसारमें सभी स्थानोंपर मनुष्य ही बसते हैं, देवता नहीं—सभी सांसारिक संस्थाएं मानवी हैं, दैवी नहीं। योर-अमरीकाकी जो उन्नत अवस्था दिखायी दे रही है वह केवल एक सौ वर्षोंके प्रभावसे ही है। जापानने इसे केवल ४० वर्षोंमें ही अपना लिया है। यदि आत्मश्लाघा न समझी जाय तो मैं कह सकता हूं कि भारतवासी यही उन्नति दस वर्षोंमें कर सकते हैं, सिर्फ अवसर मिलनेकी देर है।

यहाँसे उठकर हम सुमिदा नदीकी सैर करनेके लिये तीन तीन पैसे देकर नावपर सवार हुए। यह एक मामूली बजड़ा था, किन्तु बनावट लम्बी व सँकरी थी। भीतर बेंचें लगी थीं जिनपर ३०,४० मनुष्योंके बैठनेका स्थान था। इसीमें एक छोटी पनसुइया भी लगी थी, जिसमें छोटासा एंजिन बैठाया हुआ था। वह इसे खींचता था। यह सुमिदा नदीमें इधरसे उधर १०,१२ मीलका चक्कर लगाता है। नदीके दोनों किनारोंपर थोड़ी थोड़ी दूरीपर खड़ा होकर यात्रियोंको चढ़ाता उतारता भी जाता है। तोकियोमें ट्रामगाड़ीपर पांच पैसे लगते हैं पर यह नाव तीन पैसेमें ही यात्रियोंको लेजाती है।

प्रायः हर प्रकारकी नावोंमें छोटे छोटे एंजिनोंसे काम लिया जाता है। इसीका नाम है "संसारके ज्ञानको अपनाना"। भारतवर्षमें अग्निबोट या मोटर बोटका नाम लेते ही समझा जाता है कि कोई बहुत भारी वस्तु है। यहाँ सभी जगह ये छोटी छोटी पनसुइयां भक भक करती दौड़ती फिरती हैं। यदि काशीमें हज़ार पांच सौ लगा कर ऐसे ३, ४ एञ्जिन मामूली डोंगियोंमें लगा लिये जायँ तो आरपार तथा रामनगरसे राजघाट आने जानेमें बड़ी सुविधा होगी। हज़ार रुपयेका अच्छा एञ्जिन पत्थरसे लदी ३, ४ नाव भलीभाँति चुनार, मिर्जापुरसे खींच कर ला सकता है व बरसातमें भी नावोंको बड़ी आसानीसे खींचकर तरखेके विरुद्ध ऊपर ले जा सकता है। यदि कोई उत्साही पुरुष लाख दो लाख लगा कर एक व्यवसाय खोले तो कलकत्ते व इलाहाबादके बीचमें एक नावका

रास्ता खुल सकता है, जिसके द्वारा रेलके बनिस्बत आधे मूल्यपर यात्री आ जा सकते हैं व माल भी सस्तेमें पहुंच सकता है। हां, रेल कम्पनियोंको यह अच्छा नहीं लगेगा, क्योंकि उन्हें देशमें व्यवसाय बढ़नेसे नहीं किन्तु अपना जेब भरनेसे सरोकार है। योर-अमरीका व उन्नत इङ्गलैंडमें भी जलस्रोत व छोटी छोटी नदियाँ जो तीन चार गजसे अधिक चौड़ी नहीं हैं, एक जगहसे दूसरी जगह माल लेजानेकी राहें समझी जाती हैं—इङ्गलैंडमें नावोंमें रस्सी बाँध कर उन्हें किनारेपरसे घोड़े भी खींचते ले जाते हैं। इस प्रकार जमीनपर जितना बोझ आठ घोड़े नहीं खींच सकते उतना ही बोझ एक घोड़ा आसानीसे पानीमें खींच सकता है।

अमरीकामें भिन्न भिन्न रेलवे कम्पनियों व जहाज कम्पनियोंकी प्रतिस्पर्द्धाके कारण मनमाना किराया रखना असम्भव है। पर भारतवर्षमें क्या है? मनमाना घर-जाना जितना चाहा किराया रख लिया। मेलों-ठेलोंपर यात्रियोंको जो तकलीफ होती है व मामूली समयमें भी तीसरे दर्जेके यात्रियोंको जो यातनाएं सहनी पड़ती हैं, उनसे किसीको कुछ सरोकार ही नहीं। रेल-कर्मचारी यात्रियोंको मारते हैं, गाली देते हैं, धक्के देते हैं, नाना प्रकारके अपमान कर उन्हें दुःख देते हैं, मानो वे ही सर्वेसर्वा हों। पहिले तो उनके खिलाफ़ कोई बोलता ही नहीं, यदि कोई बोले तो उसकी सुनवाई नहीं होती। इससे जिसे मन आता है वही दो लात लगा देता है। यदि हम भी मनुष्योंकी भाँति एक शब्द भी कुवचन बोलनेवालेको एक थप्पड़ लगा कर मुंह तोड़ना सीख जायं तो हमें भी सम्मानकी दृष्टिसे लोग देखने लगें। सच है, संसारमें शक्तिको ही सब अधिकार है। मेरा तो ख्याल है कि यदि ये रेलकम्पनियां देशभाइ-योंके अधिकारमें आ जायं व भिन्न भिन्न कम्पनियां खुल जायं तो ये एक दूसरेके मुकाबिलेमें अच्छा प्रबन्ध करनेकी कोशिश करें। इससे जनताका उपकार होगा। किन्तु इसके पूर्व जल-मार्गको पुनः काममें अधिक अधिक लानेका उद्योग होना चाहिये, इसका उपयोग न करना शक्तिको मुफ्तमें फेंकना है। बहता हुआ उपयोगी जल एक शक्ति है, नदी बनी बनायी उत्तम सड़क अथवा रेल-पथ है, जो बिना किसी अन्य व्ययके, बिना सड़कके पीटे या रेल बिछाये ही गाड़ीका मार्ग बन सकती है। इससे कम व्यय और आरामसे यात्री एक जगहसे दूसरी जगह आ जा सकते हैं। इस ओर न ध्यान देकर गरीबोंकी गाढ़ी कमाईका धन रेलकी सड़कोंमें मुफ्तमें बर्बाद करना कोई बुद्धिमानी नहीं, वरन् अदूरदर्शिता व अर्थशास्त्रका अज्ञान दिखाना है। पर कहे कौन?

बारहवाँ परिच्छेद।

--:०:--

कागजके कारखाने।

आज हम लोग कागज़के कारखानोंको देखने चले। पहिले सरकारी मिल देखने गये। यह तोकियोसे कोई दस मील दूर है। यहां गवर्नमेंटके कामके लिये कई प्रकारके कागज़ बनते हैं। नोट तथा डाकके स्टाम्पका कागज़ लकड़ीके कुट (पल्प, लुगदी) का बनता है। यह कुट कुछ बाहरसे आता है, कुछ हुकैदोसे। सिवा इसके लिखने पढ़नेके लिये फुल्सकेप इत्यादि हर प्रकारके कागज़ धानके पुआलसे बनते हैं। धानके पुआलमेंसे पहिले ठुट्ठीको निकाल कर जब उसमें एक भी दाना नहीं रह जाता तब उसे मशीनसे बारीक कर लेते हैं। इसके बाद सोडा (सोडियम बाई कारबोनेट)मिलाकर उसे पानीमें भापसे १२ घंटेसे अधिक तक पकाते हैं। इससे उसके रेशे सब गल पच जाते हैं। फिर उसे धोकर उसमेंसे सोडा निकाल लेते हैं, फिर धोअनसे सोडा निकाल लिया जाता है, क्योंकि इस देशमें सोडा कम मिलता है। उस समय उसका रंग दफ्ती जैसा मैला और पीला होता है। दफ्ती बनानेके लिये यह कुट और कई मशीनोंमें पतला होकर कागज़ बनानेके रोलरोंपर चला जाता है। किन्तु अच्छा सफेद कागज़ बनानेके लिये 'ब्लीचिङ्ग पाउडर'से इसमेंके रङ्गको निकाल देते हैं, फिर जरा नीलकी दवाई दे खूब सफेद बना लेते हैं। इस भांति कई यन्त्रोंमें घूमता फिरता यह कुट खूब पतला होकर तैयार हो जाता है। कागज़की मशीनमें बहुतसे रोलर होते हैं। अब यह कुट पानीमें मिलाकर एकदम पानीकी तरह पतला बना लिया जाता है। रोलरोंपर एक मोटा ऊनी कम्बल नीचे ऊपर घूमता चला आता है। इसपर एक जगह यह पानी छन कर अन्दाजसे गिरता जाता है व कुट ऊपर रह जाता है। यह कुट दूसरे रोलरसे दबनेपर सब पानी त्याग देता है। दो तीन रोलरोंमें घूमनेके बाद यह इतना जम जाता है कि धीरेसे हटाया जा सकता है। इसके बाद यह दूसरे रोलरमें दबाया जाता है व गरम रोलरोंपर होकर जानेसे इसका सब पानी सूख जाता है। अन्तमें यही कागज़ बनकर यन्त्रकी दूसरी ओरके एक अन्य रोलरपर लपेटा जाता है। बाद इच्छानुसार काट काटकर इसके ताव बनाये जाते हैं।

पुराने सूती कपड़ोंका भी कागज़ बनता है। भारतवर्षमें लखनऊमें एक कम्पनी बनी है, वह 'बैव' घास ही खोजनेमें लगी है। मैं उसका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया चाहता हूं कि उसे धान तथा कोदो आदिके पुआलसे भी कुट बनानेकी परीक्षा कर देखनी चाहिये कि इसका प्रयोग भारतमें भी सम्भव है या नहीं।

यहांसे लौटकर भोजन करनेके उपरान्त मैं 'योन्दो' महाशयके साथ 'ओजी' नामके स्ट्राबोर्ड बनानेके कारखानेको देखने गया। यहां भी कागज़ बनानेकी वही रीति है, जो ऊपर कही गयी है। अन्तर केवल कागज़के प्रकारमें है। 'ओजी' कारखाना प्रायः अखबार तथा वस्तुओंको लपेटनेके लिये घटिया कागज़ ही अधिक बनाता है

व 'स्ट्राबोर्ड' का कारखाना केवल दफ्ती बनाता है। दफ्ती बनानेका यन्त्र कागज़के यन्त्रसे दूना बड़ा होताहै। इसमें वेलन भी बहुत से होते हैं। मामूली कागज़ बनानेके समय कागज़का पानीमें मिला एक प्रकारका रस वेलनोंके ऊपरके कम्बलपर गिरता है, किन्तु दफ्तीके बनानेमें इस रसके ऊपरसे कम्बल खिंचा चला जाता है। कम्बल स्वयम् रसको उठा लेताहै। पूर्वमें दफ्तीकी मुटाई पोष्टकार्डकी दूनी मुटाईसे अधिक नहीं होती थी, किन्तु अधिक मोटी दफ्ती बनानेके लिये २,३,४ या अधिक गीली दफ्तियाँ एक पर एक रखकर दबावसे मोटीकर लेते हैं।

दफ्ती बनानेमें प्रायः धानका पुआल ही काममें आता है। इसके बनानेमें विज्ञानकी अधिक आवश्यकता नहीं, केवल धन व हिम्मत चाहिये। भारतवर्षमें प्रायः हज़ारों टन (टन प्रायः २७ मनका होता है) दफ्तियाँ खर्च होती हैं। यदि भारतवर्ष-में इसका कारखाना खोला जाय तो सिवा लाभके हानिकी सम्भावना नहीं देख पड़ती।

यहांसे होकर मुझे 'यन्दो' महाशय "तोकियो मियांसू कबूशीकी कैसा होसिय-री वर्क" में ले गये। यहां सूती, ऊनी तथा रेशमी गंजी फ़िराक आदि सभी चीज़ें बनती हैं। इस प्रकारके कारखानोंमें यह कारखाना प्रथम श्रेणीका है, पर इमारतके लिहाज़से भारतवर्षके बड़े जुलाहोंके मकानसे भी बड़ा नहीं है। बुननेकी प्रायः सभी मशीनें गोल सूईकी हैं। मशीनें कुछ अमरीकन व कुछ जापानी हैं। इनसे काम बहुत अच्छा होता है। भारतवर्षमें जाड़ोंमें जो रूईदार गञ्जियां बिकती हैं वे बुननेके बाद एक विशेष यन्त्र द्वारा खिंची हुई होती हैं। इसी तरह भारतवर्षमें सस्ते दामोंमें बिकनेवाले विलायती कम्बल बनते हैं।

तेरहवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

गन्धर्व-विद्यालय ।

आज मैं दोपहरको यहांका प्रसिद्ध गन्धर्व-विद्यालय देखने गया। यहां सब मिल कर कोई तीन चार सौ छात्र हैं। इनमें बालिकाओंकी संख्या बालकोंसे अधिक है। शिक्षा गाने व बजानेकी दी जाती है, नाचनेकी नहीं; किन्तु सबसे विचित्रता यह है कि गान व वाद्यकी शिक्षा योर-अमरीकाकी रीतिपर ही दी जाती है। यद्यपि बोल जापानी हैं, तथापि राग-रागनी, सुर व ताल यूरोपीय हैं। पूर्ण शिक्षाके लिये ४ या ५ वर्ष लगते हैं।

अब कठिन समस्या यह है कि एक देशवालेको दूसरे देशवालेकी गान-विद्या अच्छी नहीं लगती। गुणियोंको छोड़कर यदि साधारण व्यक्तियोंको देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि एक देशका मनुष्य दूसरे देशका गाना नहीं पसन्द करता। उदाहरणके लिये भारतवर्षको ही ले लीजिये। हम समझते हैं कि हमारा गाना संसारमें श्रेष्ठ है। पर अपना दही तो सभीको मीठा लगता है, यदि दूसरेको भी वह मीठा लगा तो वह वास्तवमें मीठा समझा जायगा, किन्तु कान, नाक, आंख व जीभमें यह सिद्धान्त नहीं लगता। इसमें प्रायः व्यक्तियोंकी रुचि भिन्न है, तिसपर दो देशोंकी रुचिमें कितना अन्तर है यह तो देखने ही पर ज्ञात होता है। देखिये घीका बघार हमें बड़ा प्रिय मालूम होता है पर ब्रह्म देशके रहनेवालोंको इसकी इतनी दुर्गन्ध लगती है जिसका कोई ठिकाना नहीं। धनियांकी चटनी हमें बड़ी प्रिय लगती है पर ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्हें उसकी गन्धसे उलटी होजाती है। हमारी तरकारीमें यदि कसाव हो तो हमें अच्छी नहीं लगती पर जापानी लोग उसे बड़े चावसे खाते हैं। यही हाल गानेका भी है। जो हमें बड़ा अच्छा लगता है, जिस विहागकी ध्वनिसे हम मस्त होजाते हैं, जो भैरव हमें आपेसे बाहर करदेता है, वही योर-अमरीका वालोंको कर्कश व दुःखदायी प्रतीत होता है। उसी प्रकार बाच, बेटोवेन, मोज़ार्ट, वैगनर* इत्यादि संगीतज्ञोंका मधुर पद, जिसे सुन योरअमरीकानिवासी मुग्ध होजाते हैं, जिसके गाये व बजाये जानेपर मजलिस करतलध्वनिसे गूंज जाती है, यदि भारतवासियोंके समाजमें बजाया जाय तो क्या प्रभाव डालेगा सो सभीपर विदित है। अभिप्राय यह है कि भिन्न भिन्न मनुष्योंकी रुचि भिन्न भिन्न है।

अब देखना यह है कि गानका प्रकार अथवा राग-रागनी एशियाभरमें प्रायः एक ही प्रकारकी है। फारसी व अरबी गानमें व भारतीय गानमें ज़रा भी अन्तर नहीं है। मिश्रमें भी जो गाने मैंने सुने थे वे मुझे बिलकुल भारतवर्षकेसे विदित होते थे।

---

*Bach, Beethoven, Mozart, Wagner.

पृथिवी प्रदक्षिणा

जापानी बालिकाओंका गायन तथा वाद्य (पृष्ठ २३२)

तेरहवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

गन्धर्व-विद्यालय ।

आज मैं दोपहरको यहांका प्रसिद्ध गन्धर्व-विद्यालय देखने गया। यहां सब मिल कर कोई तीन चार सौ छात्र हैं। इनमें बालिकाओंकी संख्या बालकोंसे अधिक है। शिक्षा गाने व बजानेकी दी जाती है, नाचनेकी नहीं; किन्तु सबसे विचित्रता यह है कि गान व वाद्यकी शिक्षा योर-अमरीकाकी रीतिपर ही दी जाती है। यद्यपि बोल जापानी हैं, तथापि राग-रागनी, सुर व ताल यूरोपीय हैं। पूर्ण शिक्षाके लिये ४ या ५ वर्ष लगते हैं।

अब कठिन समस्या यह है कि एक देशवालेको दूसरे देशवालेकी गान-विद्या अच्छी नहीं लगती। गुणियोंको छोड़कर यदि साधारण व्यक्तियोंको देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि एक देशका मनुष्य दूसरे देशका गाना नहीं पसन्द करता। उदाहरणके लिये भारतवर्षको ही ले लीजिये। हम समझते हैं कि हमारा गाना संसारमें श्रेष्ठ है। पर अपना दही तो सभीको मीठा लगता है, यदि दूसरेको भी वह मीठा लगा तो वह वास्तवमें मीठा समझा जायगा, किन्तु कान, नाक, आंख व जीभमें यह सिद्धान्त नहीं लगता। इसमें प्रायः व्यक्तियोंकी रुचि भिन्न है, तिसपर दो देशोंकी रुचिमें कितना अन्तर है यह तो देखने ही पर ज्ञात होता है। देखिये घीका बघार हमें बड़ा प्रिय मालूम होता है पर ब्रह्म देशके रहनेवालोंको इसकी इतनी दुर्गन्ध लगती है जिसका कोई ठिकाना नहीं। धनियांकी चटनी हमें बड़ी प्रिय लगती है पर ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्हें उसकी गन्धसे उलटी होजाती है। हमारी तरकारीमें यदि कसाव हो तो हमें अच्छी नहीं लगती पर जापानी लोग उसे बड़े चावसे खाते हैं। यही हाल गानेका भी है। जो हमें बड़ा अच्छा लगता है, जिस विहागकी ध्वनिसे हम मस्त होजाते हैं, जो भैरव हमें आपेसे बाहर करदेता है, वही योर-अमरीका वालोंको कर्कश व दुःखदायी प्रतीत होता है। उसी प्रकार बाच, बेटोवेन, मोज़ार्ट, वैगनर* इत्यादि संगीतज्ञोंका मधुर पद, जिसे सुन योरअमरीकानिवासी मुग्ध होजाते हैं, जिसके गाये व बजाये जानेपर मजलिस करतलध्वनिसे गूंज जाती है, यदि भारतवासियोंके समाजमें बजाया जाय तो क्या प्रभाव डालेगा सो सभीपर विदित है। अभिप्राय यह है कि भिन्न भिन्न मनुष्योंकी रुचि भिन्न भिन्न है।

अब देखना यह है कि गानका प्रकार अथवा राग-रागनी एशियाभरमें प्रायः एक ही प्रकारकी है। फारसी व अरबी गानमें व भारतीय गानमें ज़रा भी अन्तर नहीं है। मिश्रमें भी जो गाने मैंने सुने थे वे मुझे बिलकुल भारतवर्षकेसे विदित होते थे।

---

*Bach, Beethoven, Mozart, Wagner.

जापानी बालिकाओंका गायन तथा वाद्य (पृष्ठ २३२)

जापानी राष्ट्रीय गान भी यदि हमारे यहांके गानेसे उतना नहीं मिलता तथापि वह उससे उतना ही निकट है, जितना बादामी रंगसे पीला रंग है। पर यूरोपीय गानसे उसका अन्तर काले व श्वेतका है। इतना होनेपर भी ये लोग यूरोपीय गान किस प्रकार पसन्द करते हैं व उसे एक प्रकार अपने जीवनका अङ्ग बना रहे हैं यह समझमें नहीं आता। हां, केवल एक बात यह है कि जापानसरकारने यूरोपीय गान अपनी सेनामें रक्खे हैं, इसलिये वह चाहती है कि इनकी रुचि जनतामें भी बढ़े, किन्तु यह कहां तक संभव है, कहना कठिन है।

आज एक भारतीय भाईसे मुलाकात हुई, आप व्यवसायके लिये बाहर आये हैं। इसके पूर्व भी आप जापानमें कुछ दिन रह चुके हैं व कुछ दिन यूरोपमें भी आपने विद्योपार्जन किया है। आप जापानी भाषा लिखना व पढ़ना नहीं जानते; किन्तु जापानी भाषा इतनी साफ बोलते हैं कि स्वयं जापानियोंको भी आश्चर्य होता है। यह एक विलक्षण बात है कि भारतवासियोंको शब्द नकल करना इतना अच्छा आता है कि जिसका ठिकाना ही नहीं। वे जो भाषा बोलते हैं वह इतनी अच्छी बोल लेते हैं कि उस भाषाके बोलनेवालोंमें व उनमें कुछ अन्तर ही नहीं प्रतीत होता।

× × × ×

आज हम विख्यात पण्डित "सुबोची" के दर्शन करनेके लिये गये थे। आपका प्रिय विषय नाटक है। आपने यूरोपीय नाटकोंका अच्छा मनन किया है। जापानमें आप शेक्सपियरके अच्छे ज्ञाता समझे जाते हैं। अंगरेज़ीके द्वारा आपने प्रायः सभी देशोंके नाटकोंका रसास्वादन किया है। आप कालिदासके नामसे भी परिचित हैं। आपसे भिन्न भिन्न विषयोंपर बहुत देर तक बातें होती रहीं।

आप अंगरेज़ी साफ नहीं बोल सकते इस लिये आपने इङ्गलैण्डसे लौटे हुए अपने पुत्रको बुला लिया। वे वहां एक नाटक-मण्डलीमें दो वर्षों तक नाट्य-कला सीख रहे थे।

आपका विचार यहांकी नाटकमण्डलियोंको आधुनिक रीतिपर लानेका है। जापानमें अनुकरण करनेकी बड़ी प्रवृत्ति है पर ये लोग 'मक्षिका स्थाने मक्षिका'के सिद्धान्तपर अनुकरण नहीं करते वरन् जिस वस्तुको अनुकरणीय समझते हैं उसे अपने रंग-रूपमें ढालकर ऐसा स्वरूप देते हैं कि अपनी उपयोगिता न खोते हुए भी उसके रूपका ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि उसे पहिचानना कठिन हो जाता है अर्थात उसे इस ढंगसे अपना लेते हैं कि वह नकलीके बदले असली बन जाता है।
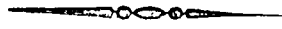
चौदहवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

तोकियोका व्यवसाय-विद्यालय ।

आज मैं तोकियोका "हायर टेकनिकल स्कूल" देखने गया था। यह पाठशाला कई पाठशालाओंको मिलाकर अपने वर्तमान रूपमें आयी है। "टोकियोकोटो कोगियो गक्को" तोकियो हायर टेकनिकल स्कूल, "शोक्को टोटेई गक्को" स्कूल आफ़ अपरेण्टिसेज़, "कोगियो कियोईन योशीजो" ट्रेनिंग इन्स्टिट्यूट आफ़ इण्डस्ट्रियल टीचर्स व "कोगियो होशूगक्को" स्कूल आफ़ सपलीमेंटरी इण्डस्ट्रियल एडुकेशन, नामक चार पाठशालाएं इसमें मिली हैं।

यह शिक्षालय जो इस समय शिक्षा-सचिवकी निजी देख-भालमें है पहिले पहल संवत् १९३८ में स्थापित हुआ था। उस समय इसका नामकरण "तोकियो शोक्को गक्को" हुआ था, किन्तु बहुतसे उलटफेर और परिवर्तनके उपरान्त संवत् १९४७ में इसे इसका वर्तमान रूप मिला। उसी समय इसका नामकरण भी तोकियो टेकनिकल स्कूल हुआ। किन्तु संवत् १९५८ के वैशाख मासमें इसका नाम पुनः बदला गया और तबसे यह अपने वर्तमान नामको धारण किये हुए है।

इस पाठशालाका अभिप्राय उस प्रकारकी मानसिक व औद्योगिक शिक्षा देना है जो उन लोगोंके लिये परम आवश्यक है जो किसी प्रकारके काम-धन्धेमें प्रवेश करना चाहते हैं।

इस पाठशालाकी शिक्षा प्रायः आठ विभागोंमें बँटी हुई है पर प्रत्येक विभागके शिक्षाक्रमके देखनेसे प्रतीत होता है कि किसी एक विभागमें शिक्षा ग्रहण करनेसे विद्यार्थीको ऐसे अनेक कामोंकी प्रत्यक्ष शिक्षा मिल जाती है जिससे वह अपना जीवन बड़े सुखसे बिता सकता है। उन विभागोंके नाम जिनमें पाठशालाका शिक्षाक्रम विभक्त है ये हैं—(१) अंगरेज़ी (२) जुलाहेका काम (३) सिरामिकस अर्थात् शीशे, चीनी व मिट्टी वगैरहके वर्तनोंका काम (४) रसायनका काम-धन्धेमें प्रयोग (५) विद्युत्कला। (६) विद्युन्मूलक रसायन अर्थात् बिजलीसे भिन्न भिन्न वस्तुओंको एक दूसरेपर चढ़ाना उतारना (७) वास्तुशास्त्र (८) गृह-निर्माण शास्त्र।

हर एक विभागमें तीन वर्षोंकी पढ़ाई होती है। शिक्षाका क्रम भी दो प्रकारका है—(१) वह शिक्षा जो प्रत्येक विभागमें समान है। (२) वह शिक्षा जो प्रत्येक विभागकी आवश्यकताके अनुसार उस विभागमें विशेष रूपसे दी जाती है।

(१) जो शिक्षा प्रत्येक विभागमें अनिवार्य है वह इन सर्वोपयोगी विषयोंकी है—(१) सदाचार (२) गणित (३) पदार्थ विज्ञान (४) हाथ द्वारा नकशानवीसी (५) यन्त्र द्वारा नक़शानवीसी (६) क्रियात्मक पदार्थ-विद्या -फिजिकल एक्सपेरिमेण्ट (७) व्यापार-सम्बन्धी अर्थशास्त्र (८) आरोग्यशास्त्र

(९) कारखानोंका निर्माण (१०) हिसाब किताब रखना (११) अंगरेज़ी भाषा व (१२) व्यायाम। इनके अतिरिक्त प्रथमके चार व छठें विभागमें रसायनशास्त्र भी पढ़ना पड़ता है।

जो विद्यार्थी इस शिक्षालयमें प्रवेश करना चाहता है, उसे माध्यमिक शालाओंकी उपाधि प्राप्त अथवा किसी अन्य औद्योगिक शिक्षालयमें जो कि इस शिक्षालय द्वारा प्रमाणित हो, पढ़ाई समाप्त किये हुए होना चाहिये।

यहाँ प्रवेश करनेके समय निम्न विषयोंमें प्रवेशिका परीक्षा देनी होती है। यह माध्यमिक पाठशालाओंकी शिक्षाके बराबर ही कठिन है। (१) अँगरेज़ी (२) गणित (३) पदार्थ विज्ञान तथा रसायन (४) नक़शानवीसी (दोनों प्रकारकी, यान्त्रिक व खाली हाथसे)।

अब यह देखना है कि इस शिक्षामें कितना समय लगता है और उससे कितना उपकार होता है। प्रारम्भिक शिक्षामें ६ वर्ष, माध्यमिक शिक्षामें ५ वर्ष व वैशेषिक शिक्षामें ३ वर्ष लगते हैं अर्थात् कुल मिलाकर १४ वर्षोंमें शिक्षा समाप्त हो जाती है। आपको मिडिल स्कूलके नामसे नहीं घबराना चाहिये। यहाँ मिडिल उत्तीर्ण विद्यार्थीकी जितनी शिक्षा होती है उतनी हमारे यहाँ एफ० ए० में होती है। यहाँ मातृभाषा द्वारा शिक्षा होनेसे छात्रोंका वास्तविक ज्ञान हमारे यहाँके एफ० ए० वालोंसे कहीं अधिक होता है।

हमारे यहाँ जो शिक्षा होती है उसमें मातृभाषाको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त न होनेका दोष तो है ही, साथ ही एक बातकी बड़ी कसर यह है कि शिक्षाका उपयोग क्या है यह भी हमें नहीं बताया जाता। इतिहास, भूगोल, गणित, रसायन, पदार्थ-विज्ञानादिके पाठसे हमें केवल कतिपय वैशेषिक शब्द कण्ठस्थ हो जाते हैं, किन्तु इसका तनिक भी पता नहीं चलता कि इन शास्त्रोंके ज्ञानको हम अपने जीवन-संग्राममें किस भाँति उपयोगमें लावें। इसका कारण यह है कि पहिले हमें विदेशी पारिभाषिक शब्द घोखने पड़ते हैं। फिर हमें उन भिन्न भिन्न विज्ञानोंके जिन्हें हम पढ़ते हैं जटिल सिद्धान्तोंपर माथापच्ची करनी पड़ती है। फिर कहीं अन्तिम अवस्थामें थोड़ा बहुत उन सिद्धान्तोंका प्रयोग बताया जाता है, बस यहीं हमारी शिक्षाका अन्त हो जाता है। यह अवस्था एम० ए० में आती है। पर इन वैज्ञानिक सचाइयोंका जीवनकी सांसारिक बातोंमें किस भाँति प्रयोग होता है, वह क्योंकर जीवनकी सामग्री एकत्र करने तथा उसे बढ़ानेमें सहायता देती हैं, यह हमें कहीं भी नहीं पढ़ाया जाता। इस विषयका नाम है 'अप्लाइड साइन्स" अर्थात् व्यावहारिक विज्ञान। हमारे भाग्यके कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता हमें इसे पढ़ानेकी आवश्यकता नहीं समझते। इसी कारण हमारे यहाँ इतने बी० ए०, एम० ए० होते हुए भी वे सिवाय क्लर्की व अन्य नौकरियोंके कोई स्वतन्त्र कार्य नहीं कर सकते। हाँ स्वतन्त्र कार्य जो हैं वे केवल वकालत व डाक्टरी हैं। वकालतमें विज्ञानका कितना काम पड़ता है यह वकील लोग भलीभाँति जानते हैं। इसीलिये मैं कहता हूं कि हमारी शिक्षापद्धति बड़ी दूषित है। उसके द्वारा मानसिक उन्नति तो अवश्य होती है पर उसका सम्बन्ध सांसारिक उदर-पोषणसे बहुत कम है। इसीलिये पढ़े-लिखे मनुष्योंकी तबीयत रोजगार धन्धोंमें नहीं लगती

क्योंकि उच्च शिक्षाके कारण उनकी तबीयत तो ऊंची हो जाती है, किन्तु उस ऊँची तबीयतके जोड़का धन्धा करनेकी शिक्षा उन्हें नहीं मिलती। ऊंचा ज्ञान किस प्रकार औद्योगिक व्यवहारमें लाया जाय यह हमारे शिक्षित भाई नहीं जानते। परिणाम यह होता है कि पैतृक रोज़गार-धन्धा त्याग वे वकालत या नौकरीकी शरण लेते हैं। इसके द्वारा वे अपना उदर-पोषण तो किसी न किसी प्रकारसे कर ही लेते हैं पर जनता व देशका वास्तविक उपकार कुछ नहीं कर सकते। उनके ज्ञानसे देशकी ऋद्धि-सिद्धिमें बढ़ती नहीं वरन् प्रति दिन कमी ही होती दीख पड़ती है। इसीसे यह कहना पड़ता है कि हमारी शिक्षाका प्रबन्ध हमारे हाथोंमें होना चाहिये। जब तक गैर-सरकारी शिक्षा अर्थात् राष्ट्रीय सिद्धान्तोंपर राष्ट्रोन्नतिके लक्ष्यको सामने रखकर शिक्षाका प्रचार तथा प्रसार भारतवर्षमें न होगा तब तक हमारी हीनावस्थामें परिवर्तन होना सम्भव नहीं है।

अन्य देशोंमें तथा जापानमें भी विज्ञानकी शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षाकी अवस्थामें दी जाने लगती है। प्रथमसे ही बालकोंको बताया जाता है कि अमुक वस्तुका प्रयोग किस प्रकार होता है। उदाहरण रूप मसीको ही लीजिये। यहाँ प्रथम बताया जाता है कि मसीका क्या उपयोग है अर्थात् लिखना। फिर कुछ दिन बाद बताया जाता है कि मसी कैसे बनती है अर्थात् "हर्रा, बहेरा, आँवला" इनको उबाल कर उसका पानी निकाल लो, उसमें थोड़ा कसीस डाल दो। बस वह बन जायगी। विद्यार्थी आप उसे बनाता है। बनानेके उपरान्त उसे खुद यह बात सूझती है कि त्रिफलेका पानी मैला लाल रंगका था या कसीस हरा हरा देख पड़ता था, किन्तु इनके मेलसे जो यह वस्तु बनी वह काली क्यों हो गयी। ऐसी शंका उठनेपर शिक्षक उसका सिद्धान्त बताता है। इसी प्रकार और समझिये अर्थात् क्रम यहाँ यह है कि प्रथम उपयोग, फिर तरकीब व अन्तमें सिद्धान्त बताये जाते हैं। हमारे यहाँ सीढ़ीके ऊपरी डंडेपर पहिले कूदके पहुंचना होता है, तब धीरे धीरे नीचे उतरना बताया जाता है। इसी कूद-फांदमें कितने लोग गिर पड़ते हैं और उनका अंग-भंग हो जाता है और बहुतसे हार कर परिश्रम ही छोड़ बैठते हैं। उदाहरणके लिये मैं यहाँ आपबीती कहानी सुनाता हूं। जब मैंने इण्ट्रेंस पास कर एफ० ए० में प्रवेश किया, तब विज्ञान पढ़नेका बड़ा उत्साह था, इससे भाषा, इतिहास आदि छोड़ मैंने गणित व विज्ञान ले लिया। प्रथम दिन विज्ञानकी कक्षामें जो सबक मिला वह यह था, 'मैटर इज़ इनडिस्ट्रक्टिबिल'—पदार्थका कभी भी क्षय नहीं होता अर्थात् पदार्थ अनश्वर है। सुननेमें तो यह तीन शब्दोंका छोटा सूत्र है पर इसके भीतर जो गूढ़ सिद्धान्त भरे हैं उनका पूरा तरह समझमें आना पूर्ण ज्ञानके उपरान्त ही संभव है। हमारे अध्यापक महोदयने पहिलेसे एक यन्त्र तैयार कर रक्खा था; उसमें एक मोमबत्ती थी और बहुतसे शीशेके नलके भिन्न भिन्न पदार्थ थे जो एक दूसरेसे जुटे हुए थे। सब तराजूके एक पलरे बराबर थे। अब आपने मोमबत्ती जला दी। देखते देखते मोमबत्तीका पलरा नीचे झुकने लगा। थोड़ी देरमें उसका वजन बहुत बढ़ गया। बस, आपने कह दिया कि देखा, जलनेसे मोमबत्ती घटी नहीं वरन् बढ़ गयी। फिर आपने और बहुत सी बातें बतायीं जैसे मोमबत्तीसे

निकली हुई हाइड्रोजन व कारबोनिक एसिडगैस किस प्रकार सोडे तथा एक अन्य पदार्थमें रोक ली गयी थी इत्यादि इत्यादि। इसी तरह दो सालतक भिन्न भिन्न गैसों तथा पदार्थोंकी व्याख्या पढ़ता रहा। भिन्न भिन्न एसिडोंमें क्या क्या पदार्थ हैं यह भी बताया गया, सारांश यह कि दो सालमें लेंट महोदयकी बनायी हुई केमिस्ट्री घोख डाली। दो वर्षके बाद परीक्षा हुई उसमें फेल हो गया। क्यों? इसलिये नहीं कि केमिस्ट्रीका ज्ञान नहीं था किन्तु इसलिये कि उत्तर लिखनेमें अंगरेज़ीमें व्याकरणकी भूलें व विलक्षण हिज्जेकी भूलें अधिक थीं। इसी प्रकार दो बार फेल होकर तीसरी बार रो पीट कर इम्तिहान पास किया और आगेकी शिक्षामें विज्ञानको तिलांजलि दे दी।

यहां ऐसा नहीं है। यहां जो बात पढ़ायी जाती है उसका उपयोग बताया जाता है, बनानेकी क्रिया बतायी जाती है। परिणाम यह होता है कि चाहे सिद्धान्त मालूम हो या न हो, विद्यार्थी शिक्षा समाप्त करते ही अपना ज्ञान काममें लाकर उससे धन कमाता है। उसने जो कुछ सीखा है उसे वह कार्यमें परिणत कर सकता है। हमें एम० ए० पास करनेके उपरान्त पढ़ाना हो तो भले ही प्रयोगशालामें एसिड बना कर दिखा सकते हैं किन्तु किसी कारखानेमें वही एसिड बनाना हो तो सब अक्की बक्की भूल जायगी और हाथपर हाथ धरकर बैठनेके सिवा हम और कुछ भी न कर सकेंगे, खैर।

यह शिक्षालय यहां बड़ा नामी शिक्षा-मंदिर है किन्तु इसका व्यय देखकर कहना पड़ता है कि व्यय कुछ भी नहीं है। इसकी इमारत तथा सामानपर कुल मिलाकर १५ लाख व्यय हुए हैं और इसका वार्षिक व्यय दो लाखके लगभग है किन्तु उसीके साथ शिक्षकोंकी संख्या ८८ है व विद्यार्थी ९७२ हैं।

× × × ×

आज मैं 'कोटारो मोचीज़ूकीसां' से मिलने गया था। आप दो बार राष्ट्रीय महासभाके सदस्य रह चुके हैं। आप एक ऐसे मासिक पत्रके सम्पादक हैं जिसमें धन तथा सम्पत्तिके बारेमें चर्चा रहती है। आप इंगलिस्तानसे समाचार मंगाने व वहांको यहांसे समाचार भेजनेका एक कारबार चलाते हैं। आप इस समाचारमंडलके स्वामी व सम्पादक दोनों ही हैं। आपने कई पुस्तकें जापानी व अंगरेज़ी भाषाओंमें भी लिखी हैं। आपकी एक पुस्तकका नाम 'जापान टुडे' (वर्तमान जापान) व दूसरीका नाम 'जापान एण्ड अमेरिका' (जापान और अमरीका) है। प्रथम पुस्तकमें जापानकी सब वस्तुओंका बड़ा उत्तम वर्णन है। इस पुस्तकको एक प्रकारकी "ईयर-बुक" कहना अनुचित न होगा।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

तोकियोके कारखाने ।

घड़ीका कारखाना ।

आज संध्या समय मैं अपने बन्धु भवानी साहबके साथ तोकियोका बृहत् घड़ीका कारखाना देखने गया । यह कारखाना जापानमें सबसे बड़ा घड़ीका कारखाना है । इसमें क्लॉक व जेबीघड़ी बनानेके दो पृथक् विभाग हैं । इसमें १३०० मर्द व औरतें काम करती हैं । ४८ मनुष्य घड़ी बनानेकी विशेष कला जानते हैं। इनमेंसे कई तो बाहर भी हो आये हैं । ६० लेखक व अन्य काम करने वाले हैं । यह कारखाना २००० क्लॉक और ३०० जेबी घड़ियाँ प्रतिदिन बनाकर तैयार करता है । क्लॉकोंमें अधिक संख्या मामूली टाइमपीसकी है, जिनमेंसे तीन-चौथाई भारतमें आती हैं और बड़े सस्ते दामोंपर बिकती हैं । यहाँकी घड़ियाँ विलायतमें भी जाती हैं । ये घड़ियाँ सस्ती होनेपर भी बहुत अच्छा समय देती हैं । सबसे उत्तम जेबीघड़ी चाँदीकी ३० रुपयोंकी है किन्तु काम देने व देखनेमें विलायती घड़ियोंसे कम नहीं है । यह कारखाना प्रायः १५ लाख रुपयोंकी लागतसे चल रहा है । छोटेसे प्रारम्भ कर धीरे धीरे यह बढ़ाया गया है । इस कार्यमें चतुर कारीगरोंकी आवश्यकता है क्योंकि सभी जगह महीन यंत्रोंसे काम लिया जाता है ।

कुछ दिन हुए बड़ौदेमें एक घड़ीका कारखाना खुला था किन्तु मालूम नहीं उसका क्या हुआ । मैंने कभी भी उस कारखानेकी बनी घड़ी नहीं देखी ।

कमी किस बातकी है ?

यहाँके भिन्न भिन्न कारखानोंके देखनेसे यह भलीभाँति मालूम हो गया कि भारतवर्षमें किसी कारखानेका बनना कठिन नहीं है । न धनकी कमी है और न आदमियोंको बाहर भेजकर काम सिखानेमें ही देर लगेगी, किन्तु कमी है असलमें शिक्षित काम करनेवालोंकी व संरक्षण-नीतिकी । संसारके किसी भी देशमें जबतक कि राजा-प्रजा दोनों साथ मिलकर उद्योग-धधोंकी वृद्धिमें हाथ न बटावें तबतक उनकी वृद्धि नहीं हो सकती ।

अब देखना यह है कि हमारे देश जैसे हीनावस्थावाले देशमें मुक्तद्वार व्यापारसे सिवा हानिके लाभ कैसे होना सम्भव है । केवल इतना ही नहीं वरन् इङ्गलैंडको छोड़ संसारमें और कहीं भी मुक्तद्वार व्यापारकी प्रथा नहीं है । जर्मनी और अमरीका भी जो व्यापारमें अंगरेज़ोंके प्रतिद्वन्द्वी हैं, अपने देशमें ६० फी सैकड़े तक बाहरसे आनेवाली वस्तुओंपर कर लगाते हैं* । कहाँतक कहा जाय । स्वयम् इङ्ग-

*नूतन वाणिज्य-करके अनुसार चाकू इत्यादिपर अमरीकामें तो १८४ फी सैकड़े तक आयातकर लगाया गया है ।

लिस्तानमें भी केवल १९१३ संवत्से मुक्तद्वार व्यापारकी प्रथा चली है। सो भी प्रथम विना रोकटोक देशमें अनाज मँगानेके लिये प्रारम्भ हुई थी। इसके लिये 'एण्टी कार्न ला' नामी प्रचण्ड आन्दोलन हुआ था जिसके अगुवा काब्डन और ब्राइट महाशय थे। यह घटना उस समय हुई थी जिस समय पील महाशय प्रधान सचिव थे जिससे उनका नाम इतिहासमें विदित है। किन्तु अभीतक भी इङ्गलिस्तानमें कांसरवेटिव दलवाले इस प्रश्नको नहीं छोड़ते। यह अनुमान होता है कि इस घोर संग्रामके बाद शायद इङ्ग-लिस्तानको मुक्तव्यापार बन्द करना पड़े।

ऐसी अवस्थामें हमारे गरीब देशको मुक्तद्वार व्यापारकी वेदीपर बलि देना कितना अन्याय है यह सभी बुद्धिमान लोग जानते हैं। इस कुप्रथासे केवल इङ्गलि-स्तानवाले नहीं किन्तु इङ्गलिस्तानके केदियोंको भी कितना लाभ होता है इसकी कथा किसीसे छिपी नहीं है। गरीब भारतकी प्रजा अपनी गाढ़ी कमाईसे सञ्चित की हुई किञ्चित् धनराशिको शिल्पमें उस समयतक लगानेके लिये तैयार नहीं हो सकती जबतक कि उसको इस बातका पूरा भरोसा न हो कि उसकी सम्पत्ति जोखिममें न पड़ जावेगी और यह भरोसा उस समय तक असंभव है जबतक कि हमारे बाजारमें उन देशोंसे माल आनेमें रुकावट न पैदा की जावे जहाँ सैकड़ों वर्षोंसे संरक्षण नीतिके कारण शिल्पकी इतनी उन्नति हो चुकी है कि वे माल सस्ता बना सकते हैं, इतना ही नहीं वरन् जहाँके व्यापारी इतने धनी हो चुके हैं कि उन्हें भारतीय हाट अपने हाथमें रखनेके लिये थोड़े दिनों लाखोंका नहीं यदि करोड़ोंका घाटा सहना पड़े तब भी घाटा सहकर भविष्यके लाभकी आशामें वे हाटको अपने हाथोंसे न जाने देंगे। केवल इसी कारण समय समयपर हमारा सूती कपड़े व चीनीका रोजगार मारा गया है और हम भिखारी बन गये हैं। इस विषयका सम्बन्ध इस भ्रमण-विवरणसे नहीं है इससे इसपर अधिक न लिख केवल इतना ही कहता हूं कि इस समय अवसर अच्छा है, एक बार देशके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक मुक्तद्वार व्यापारके परि-त्यागके लिये प्रचण्ड आन्दोलन मचाना चाहिये और इस समय जिस दिखाऊ संरक्षण-नीतिकी स्वीकृति भारतसरकारने दी है उसे वास्तविक बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

रबरका कारखाना।

रबरका काम संसारमें आजकल कितने ज़ोरोंसे चल रहा है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रायः कोई भी आधुनिक वस्तु विना रबरके नहीं देख पड़ती। बहुतसे लोग तो आधुनिक समयको 'रबर युग' नाम देते हैं यद्यपि वस्तुतः इसका नाम 'लोहयुग' ही ठीक है।

उन्नत जापान इस दौड़में भला क्यों संसारसे पीछे रहनेका? इसने थोड़े ही समयमें इस शिल्पकी भी खूब ही उन्नति की है। इस समय सरकारी अनुमानसे यहाँ प्रायः ४० लाखके लगभग मूलधन इस शिल्पमें लगा है। बहुतसे विदेशियोंने भी यहाँ कारखाने खोल रक्खे हैं।

मैं जिस कारखानेको देखने गया था उसका नाम 'तोकियो रबर मेनुफैकचरिङ्ग कम्पनी' है। इसमें कोई ५, ६ लाखकी लागत लगी है किन्तु इसने व्यवसायमें इतनी उन्नति की है जिसका ठिकाना नहीं। अब यहाँ बाइसिकल व मोटर गाड़ीके ट्यूब

विख्यात 'डनलप' टायरसे भी अधिक उत्तम बनते हैं व उससे सस्ते होनेके कारण विलायतके बाजारमें भी इनकी माँग है।

इस कारखानेमें हर प्रकारके पतले व मोटे रबरके नल, गाड़ियों व बाइसिकलोंके टायर व ट्यूब, पिचकारीके वाल्व, जर्राहीके दस्ताने, वाटर प्रूफ कपड़े, पानी रखनेकी थैलियाँ व इबोनाइटकी वस्तुएँ भी बनती हैं।

कच्चा माल यहां प्रायः फारमूसा द्वीपसे आता है किन्तु अन्य देशोंसे भी बहुत कच्चे मालका चालान यहाँ होता है जैसे लंका, आफ्रिका इत्यादिसे।

इस कारखानेमें ३५० आदमी काम करते हैं। ७ मनुष्य इस शिल्पका रहस्य जानने वाले हैं, दो मनुष्य रासायनिक क्रियाका काम करते हैं। प्रति मास कोई ४०५ मन कच्चा माल यहाँ लगता है। व्यवस्थापकोंने व्ययका व्योरा इस भाँति बताया था—साढ़े चार हजार मासिक मज़दूरी व ४५ हजार मासिक कच्चे माल तथा यन्त्रके छीजनेके खातेमें, व जमीनके भाड़े व धनके व्याज इत्यादिमें। यह कारखाना १॥ लाखकी पूँजीसे प्रारम्भ होकर इस समय ७ लाखकी लागतसे चल रहा है।

कच्चा माल दो प्रकारका होता है। एक जंगली बटोरा हुआ, दूसरा नियमित रीतिसे संचित किया हुआ। जंगली बड़े बड़े गोलोंसा होता है व नियमित मोटी अमावटसा बड़े बड़े पत्रोंकी तरह देख पड़ता है। पहिले जंगली रबरके टुकड़े काट काट पानीमें भिगो दिये जाते हैं व नियमित रबरके पत्रोंको भी पानीमें भिगो देते हैं, बाद दो बेलनोंके बीचमेंसे उन्हें खूब पेरते हैं, जिससे मिट्टी इत्यादि उनमेंसे निकल जाती है। फिर यह धोकर साफ किया हुआ रबर बड़े बड़े मोटे गरम बेलनों-के बीचमें दबाया जाता है जिससे गलकर यह एक प्रकारके सने हुए हलुवेके समान देख पड़ने लगता है। जब इसकी यह अवस्था हो जाती है तब इसमें एक विशेष प्रकारकी सफेद मिट्टी विज्ञान द्वारा निश्चित परिमाणमें मिलाते हैं। उसी समय इसमें रंग भी मिला देते हैं। तब सननेके उपरान्त यह रबर, जैसा कि हम देखते हैं, बन जाता है। इसके उपरान्त भिन्न भिन्न सांचों व यन्त्रों द्वारा अभीष्ट वस्तुएं बनायी जाती हैं। मैंने सब वस्तुओंको बनते देखा है।

इबोनाइट बनानेके लिये रबरमें गन्धक मिलायी जाती है, फिर उसे लोहेके सांचेमें बन्द कर गरम करते हैं जिससे गन्धक जलकर रबरके साथ मिल जाती है। यही पदार्थ ठंडा होनेपर इबोनाइट हो जाता है, फिर इसे खराद कर या सांचेमें दबा-कर भिन्न भिन्न वस्तुएं बना सकते हैं।

यहांकी रासायनिक प्रयोगशाला एक टूटी फूटी झोपड़ीमें है। वहाँपर केवल एक तीन पैरकी टेबिल, चन्द बोतलें, एकाध गैस जलानेके यन्त्र व दस बीस कांच-की नलियां पड़ी हैं। रासायनिक महाशयकी शकल देखकर भी यही मालूम पड़ेगा कि कोई कुली हैं किन्तु उनका काम हमारे रासायनिक बाबुओंसे, जो सदा टीमटाममें ही रहते हैं और जो बिना केम्ब्रिज विश्वविद्यालयकी रासायनिक शालामें सीखे काम ही नहीं कर सकते, कहीं उत्तम होता है। मेरे बन्धु भवानी साहब मुझसे कहते थे कि मैंने एक रासायनिक व्यक्तिको जो अभी विलायतसे लौटे हैं अपने यहां तांबेकी खान-के कामके लिये रक्खा है। भवानी बन्धुकी बातचीतसे यह भी विदित हुआ कि उक्त

महाशयने प्रारम्भिक प्रयोगशालाके लिये एक लाखके व्ययका चिट्ठा बनाकर दिया है जिसमें उन्होंने बढ़ई बुलाकर टेबिल बनानेका भी व्यय रक्खा है। उनका कथन है कि मैं काम करूंगा तो बावन तोला पाव रत्ती शुद्ध करूंगा नहीं तो करूंगा ही नहीं। व्यापारी लोग तो प्रारम्भिक अवस्थामें इतना धन केवल टीमटामपर नहीं व्यय कर सकते, इसलिये भवानी साहब उनको अपने साथ जापान लाये थे कि वे यहां काम देखें। यहां उनसे दो महीने तांबेकी खानपर रहकर काम सीखनेको कहा गया तो उन्होंने उसे भी स्वीकार नहीं किया क्योंकि वहां खानपर अंगरेज़ी भोजन व उत्तम धोबी नहीं मिल सकता था। लाचार हो उन्हें भारत बैरंग वापस करना पड़ा। यह है हमारे बाबू शिक्षितोंकी कथा।

चीनीका कारखाना।

आज मैं एक और चीनीका कारखाना देखने गया था। जापानमें ऊख नहीं होता और होता भी है तो बहुत कम किन्तु फारमूसामें इसकी खेती खूब बढ़ रही है और थोड़े दिनोंमें वह जावासे मुकाबला करेगी। इसलिये जापानवाले बाहरसे लाल शक्कर मँगाकर यहाँ चीनी तैयार करते हैं व उसे बेच कर फायदा उठाते हैं। जितने कारखाने यहाँ हैं सभी राबसे चीनी बनाते और सफेद चोनी चीन भेज कर खूब धन कमाते हैं। इस लाल शक्करका बहुत बड़ा भाग जावासे यहाँ आता है लेकिन तिसपर भी यहाँकी चीनी जावाका मुकाबला करती है।

जितनी चीनी यहाँ तैयार होती है उसका ब्योरा इस प्रकार है—

फारमूसासे ९४२७९००० किन* लाल शक्कर आती है व जावा इत्यादिसे १३६८-१३००० । साफ चीनी यहाँ २१३२६०००० किन तैयार होती है जिसकी कीमत ४४८०४००० येन जापान वाले पाते हैं।

जिस कारखानेको मैं देखने गया था उसमें तीन प्रकारकी चीनी व तीन चार प्रकारके चोटे व जूसी बनाते हैं।

इस कारखानेमें १५० आदमी काम करते हैं व १५० टन चीनी रोज तैयार होती है। १०० मन लाल शक्करसे ४० मन अच्छी व ३० मन दूसरी कोटिकी चीनी बनती है। कारखानेके व्यवस्थापकने बताया था कि जूसी व चोटा केवल ६ मन निकलता है जिसमें अच्छे प्रकारकी जूसो मुरब्बा बनानेके काममें लाते हैं व खराब चोटेसे शराब बनती है। तात्पर्य यह कि कोई वस्तु फेंकी नहीं जाती।

इसको देख मेरी समझमें नहीं आता कि झूंसीका चीनीका कारखाना क्यों बेचना पड़ा। उसीको जब बेग सदरलैंडवालोंने किरायेपर लिया था तब ६ महीनेमें ३६ हजार रुपयोंका लाभ उठाया था पर हम लोगोंके चलाये वह नहीं चल सका। इसमें दो कारण प्रधान मालूम होते हैं--(१) हमारी काम करनेकी अनभिज्ञता (२) मकान व यन्त्रपर बेहिसाब धन लगा दिया जाना जिससे लागत अधिक बैठ जानेसे ब्याज नहीं पोसाता।

जापान आदर्श है, अमरीका नहीं।

हमें उचित है कि हम अपनी भविष्य शिल्पोन्नतिमें उन्नत 'योर-अमरीका' की

*एक 'किन' साढ़े तीन पावके बराबर होता है।

आधुनिक अवस्थाका अनुकरण न करें। वह अवस्था सैकड़ों वर्षोंमें प्राप्त हुई है। हमें अपनी उन्नति करनेमें जापानसे पद पदपर शिक्षा ग्रहण करनी होगी और उसीका अनुकरण करनेसे हमारे उद्धारकी सम्भावना है। इसलिये हमें उचित है कि शिल्पकी शिक्षाके लिये भी हम अपने मनुष्योंको जापान अधिक भेजें। यहाँ शिक्षाके मिलनेमें भी सुविधा है और शिक्षाका व्यय भी साधारण है। शिक्षा ग्रहण करनेके लिये विश्वविद्यालयोंके ग्रेजुएटोंको भेजना बड़ी भूल है। इनका दिमाग़ इतना बिगड़ा हुआ रहता है कि ये लोग कुछ भी नहीं सीख सकते। आवश्यकता इस बातकी है कि व्यापारियोंके लड़के थोड़ी शिक्षा देकर और अपना काम सिखाकर बाहर भेजे जायँ जिसमें वे थोड़ेसे समयमें सब बातें सीख लें। बड़े व्यापारी स्वयं १०-५ आदमी लेकर यदि इस देशमें आवें तो अपने आदमियोंको इन कारखानोंको दिखा देनेसे ही लाभ हो सकता है। दूसरी बात यह है कि कम्पनियां न बना भिन्न भिन्न मनुष्य अपना अपना धन लगा कर यदि पृथक् पृथक् कारखाना खोलें तो उन्हें लाभकी अधिक-संभावना हो। काम खोलनेके पूर्व उन्हें विदेशमें घूम अपने मनोवांछित कामकी जाँच पड़ताल भी कर लेनी चाहिये, तब काम प्रारम्भ होनेसे हानि न होगी। सबसे अधिक ध्यान देनेकी बात यह है कि व्यवसाय-वाणिज्यको स्वदेश-प्रेमकी लहरसे अलग रखना चाहिये। ये दो पृथक् वस्तुएं हैं। इन्हें मिलानेसे दोनोंका अपकार होता है। व्यवसाय-वाणिज्य स्वदेश-प्रेमकी लहरमें बहनेसे स्थिर नहीं हो सकता। वह जब तक हानि व लाभका पूर्ण विचार करके नहीं किया जावेगा तब तक बराबर हानि उठानी पड़ेगी।

मोमबत्तीका कारखाना।

आज ही शामको मोमबत्तीके एक क्षुद्र कारखानेको देखने गया था। यह कारखाना एक खपरैलमें है। कारखानेमें जो यन्त्र काममें आते हैं, वे भी कारखानेवालेके अपने बनाये हुए हैं।

इस छोटेसे कारखानेमें, जिसमें ८, १० आदमी काम करते हैं, १० लाखकी मोमबत्तियां प्रति वर्ष बनती हैं। यहांकी मोमबत्ती इतनी अच्छी होती है कि उसकी मांग जापानमें सभी जगह है। सेना-विभागमें प्रायः यहींकी मोमबत्ती खपती है।

कारखानेमें एक छोटासा एञ्जिन है, जो भाफ बनाकर छोटे छोटे सांचोंको चलाता है। दो पात्र मोम गलानेके हैं। एकमें पैराफीन चर्वी गलती है व दूसरेमें जानवरोंसे प्राप्त चर्वी गलायी जाती है। तीसरे पात्रमें दोनों मिलाकर फिर एक सांचेमें डाली जाती हैं। सांचेमें बाहरसे ठंडा पानी डालकर बत्तियां ठंडी की जाती हैं। ठंडी हो जानेके उपरान्त वे निकालकर अलग रक्खी जाती हैं।

आजकल जो बहुत सफेद बत्तियां भारतवर्षमें मिलती हैं, वे पैराफीनकी होती हैं। उनमें एक बड़ा दोष यह है कि गर्मीसे गलकर वे टेढ़ी हो जाती हैं। यहां उनमें बहुत थोड़ी चर्वी मिला देते हैं जिससे टेढ़ी होनेका दोष निकल जाता है व बत्ती जलती भी अधिक समयतक है। पैराफीनमें कितना अंश चर्वीका होता है यह गुप्त रक्खा गया है, किसीको भी नहीं बताया जाता।

इस देशमें एक प्रकारका मोम वृक्षोंसे भी मिलता है। पहिले उसकी बहुत

बत्तियां बनती थीं पर अब वह कुछ कम काममें आता है, क्योंकि उसका रङ्ग खराब होता है; किन्तु उसमें रंग मिलाकर रंगीन बत्तियोंके बनानेका विचार अब यहाँ बढ़ रहा है।

दूसरे दिन एक अतर व साबुनके कारखानेमें गया था किन्तु कारखाना बन्द होनेसे कुछ नहीं देख सका।

× × × ×

आज मैं महाशय 'टोकोटोमी ईचीरो' से मिलने गया। आप यहांके विख्यात दैनिक पत्र "कोकूमिन शिमबुन" के सम्पादक हैं तथा उमरावोंकी सभाके सदस्य भी हैं। आप बड़े उच्च घरानेके हैं। आपके पिता तथा पितामह बड़े विद्याव्यसनी थे। आपको भी यह गुण पैतृक सम्पत्तिकी भांति मिला है।

प्रथम आपने संवत् १९४३ में "भविष्य जापान" नामी पुस्तक लिखकर प्रकाशित की थी, जिसमें डेमोक्रेटिक विचारकी बड़ी अच्छी व्याख्या की गयी थी। १९४४ में आपने "राष्ट्र मित्र" नामक एक मासिक पत्र निकाला जो कुछ दिनोंके उपरान्त बन्द हो गया। संवत् १९४८ से आप "कोकूमिन" नामक पत्रका सम्पादन करने लगे, जो अभी तक निकलता है।

आप "मतसूकाता-ओकामा" के मंत्रित्वकाल (संवत् १९५४) में स्वराष्ट्र विभाग (होम आफिस) में बड़े उच्च पदपर काम कर रहे थे। उस समय आपके पत्रपर बड़ा कटाक्ष होता था।

आप संवत् १९७० में अमरीका व यूरोपकी यात्रा भी कर आये हैं। आपने अपनी भाषामें बीसों पुस्तकें लिखी हैं जो सबकी सब बड़ी उपयोगी हैं। आपके पिता विख्यात 'यो कोई' महोदयके शिष्य थे। यह महाशय जापानके सभी बड़े लोगोंके गुरु थे, जो कि 'गिनरो'के नामसे विख्यात हैं। इन्हीं गिनरो लोगोंने भूतपूर्व जापान सम्राट्को नये रूपसे जापानकी उन्नति करनेमें सहायता दी थी।

यह सब प्रभाव टोकोटोमी महोदयपर पड़ा है। आपने बड़े प्रेमसे अपना पुस्तक-भंडार मुझे दिखाया। आपका पुस्तक-भंडार जापानमें प्रथम श्रेणीका है। जितनी पुरानी पुस्तकें आपके सरस्वती-भवनमें हैं उतनी अन्य कहीं भी जापानमें इकट्ठी नहीं मिल सकतीं। आपने लाखों रुपये इनके संग्रह करनेमें व्यय कर दिये हैं। जो धन इन्हें अपनी पुस्तकोंकी बिक्रीसे प्राप्त होता है, सभी इसमें लगा देते हैं। पुरानी जापानी, चीनी व कोरियन भाषाओंकी पुस्तकोंका यहाँ अपूर्व संग्रह है। हस्तलिखित व उसपर तस्वीर बनी हुई पुस्तकें भी इनके पास बहुत हैं। एक पुस्तकमें जापानके विख्यात ३६ कवियोंके चित्र हैं व उसमें उनके पदोंका भी कुछ संग्रह है। यह बड़ी ही पुरानी पुस्तक है। यहां बहुतसी पुरानी पुस्तकें चीनी भाषामें आयुर्वेद-सम्बन्धी भी हैं। आपका पुस्तकालय देखनेमें घंटा डेढ़ घंटा लगा। पुस्तकोंके अतिरिक्त नकशे व दस्तखत करनेको पुरानी मोहरें भी आपने एकत्र की हैं। इन मुद्राओंकी संख्या प्रायः तीन हजारसे अधिक है। इनमें बाज बाज हज़ारों वर्षकी पुरानी हैं। मुद्राओंमें चीनी, तिब्बती, कोरियन तथा तुर्किस्तानी भी हैं। आपके सौजन्य तथा सद्-व्यवहारसे चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

× × × ×

तोकियो विश्वविद्यालय ।

जापानमें शिक्षाका प्रचार बड़ी धूमधामसे हो रहा है। जापानकी जन-संख्या प्रायः छः करोड़ है। इतनेके ही लिये यहां ४ सरकारी विश्वविद्यालय हैं--(१) तोकियो (२) कियोतो (३) टांहूकू व (४) किमुशु। इनके अतिरिक्त १६ अन्य गैर-सरकारी विश्वविद्यालय हैं जिनमें (१) वसेदा विद्यालय (२) दोशीशा व (३) महिला विश्वविद्यालय विशेष महत्त्वके हैं।

तोकियो विश्वविद्यालयमें निम्नलिखित छः विद्यालय हैं।--(१) न्याय । (२) आयुर्वेद (३) वास्तु व शिल्प (४) विज्ञान (५) साहित्य व (६) कृषि।

राष्ट्रने इस विचारसे कि प्रत्येक वर्षकी आय-व्यय-गणनामेंसे इस विद्यालयका व्यय अलग रहे साढ़े चार करोड़की स्वतन्त्र निधि बनानेका विचार किया है जो धीरे धीरे बन रही है। यह विचार इस दृष्टिसे हुआ है कि वार्षिक व्ययके लिये इस संस्थाको २० लाख प्रति वर्ष मिला करे।

इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत सभी विद्यालय तोकियोमें ही हैं, इनमें छात्र-गणना इस भाँति है--

विद्यालयका नाम	शिक्षक-संख्या	छात्र-संख्या
न्याय	६०	२४२२
आयुर्वद	५६	८४६
वास्तुशास्त्र	७५	६६३
साहित्य	७८	४१४
विज्ञान	४६	१५५
कृषि	६९	७४०
जोड़	३८४	५२४०

जिस समय मैं इस देशमें पहुंचा था उस समय यहांके सभी विद्यालय गर्मीके लिये बन्द हो चुके थे इसलिये मैं इनको भलीभांति नहीं देख सका। किन्तु एक दिन जाकर मैंने विश्वविद्यालयके खनिज विभागको भली भाँति देखा था। इस विभागका व्यय प्रति वर्ष ४॥ लाख है व इसमें ५५० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

जापानी साहुकारा या सराफा ।

आज मैं बैरन "कोरिकियो टाकाशाही" से मिलने गया था। आप इस देशके सराफेके एक विख्यात ज्ञाता हैं। इस समय आधुनिक प्रथाकी जो महाजनी कोठियां (बैंक) यहां हैं एक प्रकारसे आप ही उनके जन्मदाता हैं। आपसे जो बातें ज्ञात हुईं उन्हें नीचे लिखता हूं—

आपका जन्म संवत् १९११ में हुआ। आप संवत् १९२४ में अमरीकामें शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भेजे गये। जिस अमरीकनकी देखभालमें आप यहांसे गये थे उसकी दुष्टतासे आपको कुछ मास तक दासत्वमें रहना पड़ा था। वहांसे आप दूसरे ही वर्ष लौट आये। संवत् १९३९ में आप कृषि तथा वाणिज्य-विभागमें एक पदपर नियुक्त हुए और धीरे धीरे डाइरेक्टरके पद तक पहुंच गये, किन्तु देशकी विख्यात स्वर्ण-खानकी धोखेबाज़ीके समय आपको वह पद त्यागना पड़ा।

थोड़े ही दिन बाद आपको 'बैंक आफ जापान' में एक पद मिला। कुछ दिनोंमें ही आप डाइरेक्टर बनाये गये और जापानके पश्चिमी प्रान्तका काम आपको सौंपा गया। संवत् १९५२ में आप यहांसे हटाकर 'याकोहामा स्पेसी बैंक'के उपसभापति बनाये गये। १९५४ में आप फिर जापान बैंकके उपनिरीक्षक नियुक्त हुए। फिर १९६७ में आप 'याकोहामा स्पेसी बैंक' के सभापति नियुक्त हुए. इस समय आप 'जापान बैंक' के उपनिरीक्षकका भी काम करते थे।

आप विदेशी ऋणकी व्यवस्था करनेको संवत् १९६१-१९६३ में राष्ट्रके अर्थ-प्रतिनिधि बनाकर अमरीका व इंगलैंडमें भेजे गये थे। १९६८ में आप 'जापान बैंक' के मुख्य निरीक्षकके पदपर काम करते रहे। १९७०–१९७१ में आपने अर्थ-सचिवका पद भी सुशोभित किया था।

आपसे बातचीत करनेमें यहाँके राष्ट्रीय सराफेका जो पता चला संक्षेपमें उसका वृत्तान्त इस भांति है—

संवत् १९२९ के पूर्व यहां राष्ट्रीय सराफेका कोई विशेष संगठन नहीं था। १९२९ में राष्ट्रीय सराफेकी 'विधि' घोषित हुई और उसी समय चार राष्ट्रीय कोठियां खुलीं। इनका विशेष कार्य दर्शनी हुंडियां (नोटों) के बदले स्वर्णमुद्रा देना था। किन्तु इस व्यवस्थाको कायम रखना थोड़े ही दिनोंमें असम्भव हो गया, कारण हुंडियोंकी संख्या अधिक होनेसे उनकी बाजार दर गिरी हुई थी, ऐसी अवस्थामें उनको स्वर्ण-मुद्रा देकर भुगतान करनेके बोझसे कोठियोंकी स्थितिमें संदेह होने लगा।

इसका एक विशेष कारण यह भी था कि उसी समय राष्ट्र-संचालकोंने, डाइमियों इत्यादिको जमींदारी स्वत्वोंको छोड़ देनेके बदलेमें जो दशमांश धन दिया था वह भी रोकड़ न देकर हुंडियोंमें ही दिया गया था। ये हुंडियां १७ करोड़ येन अर्थात्

साढ़े पचीस करोड़ रुपयोंकी थीं। इसी कारण हुंडियोंको संख्या रोकड़से कहीं ज्यादा बढ़ गयी व कोठियोंके दिवाला निकलनेका भय होने लगा। इस समय राष्ट्रने आर्थिक दशा सम्हालनेके लिये एक बड़ा ही उपयोगी नियम बनाया। यद्यपि यह नियम आर्थिक दृष्टिसे परराष्ट्रकी तुलनामें पुष्ट और उपयुक्त (साउण्ड) नियम नहीं कहा जा सकता तथापि राजा-प्रजाका हित एक होने व देशमें स्वराज्य होनेके कारण यह नियम बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके द्वारा देशके वाणिज्य-व्यापार, उद्योग-धन्धे आदिकी वृद्धि व उन्नति हुई और अधिक अधिक होनेकी सम्भावना भी है।

१९३६ में सराफेके विधानमें संशोधन किया गया। इस संशोधनसे विगड़ी हुई आर्थिक दशामें बड़ी सहायता मिली। इस संशोधनके मुख्य तीन अंग हैं,—(१) कोठियोंको रोकड़के बदले सरकारी हुंडियोंको ज़मानतमें रख कर अपनी दर्शनी हुंडियाँ चलानेकी इजाज़त देना, (२) इन दर्शनी हुंडियोंके बदलेमें सरकारी दर्शनी हुंडियाँ (सरकारी नोट) रोकड़की जगह देनेकी आज्ञा देना व (३) सरकारी दर्शनी हुंडियाँ सिक्केके बराबर समझी जानेकी आज्ञा देना।

इस नियम-संशोधनके द्वारा राष्ट्रके अन्तर्गत लेनदेन, व्यापार-वाणिज्य आदिमें बड़ी सुविधा हो गयी व बहुत सा कृत्रिम धन बाजारमें व्यापारके लिये प्रस्तुत हो गया।

राष्ट्रीय कोठियोंको इस नियमसे बड़ी सहायता मिली व उनकी लिखी दर्शनी हुंडियां रोकड़के बराबर ही समझी जाने लगीं। इससे कोठियोंकी संख्या बढ़ने लगी। थोड़े ही वर्षोंमें इनकी संख्या बढ़कर १५३ हो गयी।

व्यापारकी सुविधाको जरा साफ रीतिसे समझनेके लिये यह भी समझा देना उचित है कि सरकारने २५ करोड़की लम्बी मितीकी हुंडियां लिखी थीं। इन्हें कोठियां अपने पास गिरवी रखकर व्यापारियोंको अपनी दर्शनी हुंडियां दे देती थीं व सरकारी मितीदार हुंडियाँ सरकारी खज़ानेमें रख उनसे सरकारी दर्शनी हुंडियाँ लेकर अपनी हुंडियोंके बदलेमें मांगनेपर रोकड़ न देकर यही सरकारी हुंडियाँ देती थीं। ये सरकारी हुंडियाँ नकदीके बराबर ही देशमें समझी जाती थीं, इस प्रकार कोठियोंकी हुंडियाँ भी रोकड़के बराबर ही हो गयीं, इससे राष्ट्रका अन्तरीय व्यापार केवल हुंडियोंसे ही चलने लगा और रोकड़से सिर्फ विदेशी व्यापार चलता था।

देश और विदेशमें हुंडियोंकी साख बढ़ानेके लिये सरकारने १९३७ में नयी कोठियोंकी स्थापना रोक दी। सिवा इसके इन राष्ट्रीय कोठियोंको दर्शनी हुंडियों (नोटों) के लिखनेकी आज्ञा रोक कर केवल नवीन स्थापित सरकारी कोठी "बैंक आफ़ जापान" को ही यह अधिकार दिया। इससे दूसरी कोठियोंको इसकी अनुमति न रही।

इसी बीचमें राष्ट्रीय कोठियोंकी सनदें (चार्टर्स) भी समाप्त हो गयीं। फिर उन्हें सनदें नहीं मिलीं और वे राष्ट्रीय कोठियोंके पदसे नीचे गिरकर केवल साधारण कोठियाँ ही रह गयीं। इस प्रकार संवत् १९५६ के बाद पुराने सराफेके बचे-खुचे प्राचीन चिह्न भी मिट गये।

पहिले जापानी सराफा 'अमरीकन राष्ट्रीय बैंक प्रथा' व इंगलैंडकी 'स्वर्ण बैंक प्रथा' को मिलाकर बना था, किन्तु अब धीरे धीरे वह जर्मन तथा फरासीसी प्रथाकी ओर जा रहा है। सांराश यह कि अब बड़े बड़े नगरोंमें कोई भी ऐसी कोठी नहीं, जो सम्पत्ति व व्यापारी हिस्सों (स्टाक्स एण्ड शेयर्स) के लेन-देनका काम न करती हो। इनके अतिरिक्त सभी प्रान्तीय कोठियाँ गिरवी रखकर ऋण देनेके अतिरिक्त दस्तावेज़ी लेनदेन भी करती हैं।

१९७१ के अन्तमें जापानमें सब मिलाकर २१६९ कोठियाँ थीं, जिनमें खास प्रकारकी दर थी (जापान बैंक, याकोहामा स्पेसी बैंक, हाइपोथिक बैंक आफ़ जापान, बैंक आफ़ टैवान, कोलोनियल बैंक आफ़ होकैदो, इण्डस्ट्रियल बैंक आफ़ जापान, व ४६ प्रान्तीय हाइपोथिक बैंक), ६५७ सेविंग बैंक व १४६५ साधारण कोठियाँ थीं। इनके अतिरिक्त चोसेन बैंकको दो शाखाएं भी थीं।

इनकी सम्पत्तिका व्योरा इस भाँति है—ये रकमें १००० येनमें हैं।

संवत	जमा (बैलेन्सआफ डिपाजिट्स)	कर्जा-नाम (बेलेन्सआफ़ लोन्स)	हुंडियोंका लेनदेन	मुनाफा	हिस्सेदारोंको दिया गया
१	२	३	४	५	६
१९६३	१६९०५७०	७४९४७६	९४२८९१	८२२२६	७·९४ सै०
१९६४	१६७६१३६	८६८७५७	९३६५५५	८६७१२	७·८६ ,,
१९ ५	१४०८०३०	८३९०२३	८२७९३५	९४५०७	७·९८ ,,
१९६६	१५४३७७९	८६४२७२	८२५४२१	१०२५३५	९·५६ ,,
१९६७	१७७२२४०	९७२२०६	९९६३६८	१००१५५	७·७९ ,,
१९६८	१७४०७७६	११३८१५०	११४८९१४	१०३४१२	८·०४ ,,
१९६९	२०२५४९३	१३०६८२४	१२६५३७४	११६५६६	८·१० ,,

खास कोठियोंके चिट्ठेकी नकल भी यहाँ देता हूं।

यह चिट्ठा १९७० के अन्तका है। रकमें १००० येनमें हैं--

नाम	संख्या	मूलधन	संचितनिधि (R. F.)	हुंडी (बैंक नोट)	डिबेञ्चर
जापान बैंक	१	३७५००	२७९७०	३७१००२	...
याकोहामा स्पेसी बैंक	१	३००००	१९०५०	६७२०	...
हाइपोथिक बैंक आफ जापान	१	१६२५०	३६३४	...	१६९७९८
प्रान्तीय हाइपोथिक बैंक	४६	३८४३२	२८८७१	...	६८४२७
कोलोनियल बैंक आफ होकैदो	१	४५००	११२७	...	१४८२९
बैंक आफ टैवान	१	७५००	३२६०	१४४७२	...
इण्डस्ट्रियल बैंक आफ जापान	१	१७५००	...	...	५२२८१

नाम	जमा	नाम	हुंडी	मुनाफा	हिस्सेदारोंके अंश
जापान बैंक	१४९०४६	७२३२३	६२६०९	४८४४	१२·० सैकड़ा
याकोहामा स्पेसी बैंक	२०३६६३	७०८८४	३०३५०	३३७९	१२·० ,,
हाइपोथिक बैंक	१८५९	१७१२४०	१५१६	१२९६	१०·० ,,
प्रान्तीय हाइपोथिक बैंक	२७३६०	१९८५८७	८७०	४१९६	... ,,
कोलोनियल बैंक, होकैदो	५९८२	८८१७	७५२	३१५	९·० ,,
टैवान बैंक	४७३४५	१४२८५	३१८६६	७७३	१०·० ,,
इण्डस्ट्रियल बैंक	१२५०१	२७०१०	२०६८५	४८७	६·० ,,

जापान बैंक

इसकी स्थापना संवत् १९३९ में हुई थी। इसका मूलधन ३७५०००००० येन है। इस बैंकको १२ करोड़ येनकी दर्शनी हुंडियाँ (नोट), सोना व चाँदी रखकर, लिखनेका अधिकार है। यह हुंडी, सरकारी मितीदार हुंडी तथा साखवाले व्यापारियों-की हुंडियां रखकर लिखनेकी भी आज्ञा इसे है। इस बैंकको इन हुंडियोंपर नियमित संख्या तक सैकड़े १·२५ टैक्स देना पड़ता है। नियमित परिमाणसे अधिक हुंडियां लिखनेके लिये अधिकपर सैकड़े पीछे ५ कर देना पड़ता है।

याकोहामा स्पेसी बैंक।

यह १९३७ में स्थापित हुआ है। इसका अभिप्राय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी वृद्धि करना तथा विदेशी हुंडी, पुर्जे आदिका काम करना है। इसका मूलधन तीन करोड़ येन है। यह बैंक विदेशी हुंडियां खरीदकर उन्हें जापान बैंकके हाथ सैकड़े पीछे २ सट्टा लेकर बेच देता है। इस सट्टेकी संख्या प्रति वर्ष दो करोड़ येनसे अधिक नहीं हो सकती।

हाइपोथिक बैंक आफ जापान।

यह १९५३ में स्थापित हुआ है। इसका अभिप्राय थोड़े ब्याजपर लम्बी मुद्दतके लिये ऋण देना है, किन्तु यह मुद्दत ५० वर्षोंसे अधिक नहीं हो सकती। इसके द्वारा कृषि तथा शिल्पकी उन्नतिके लिये ऋण प्राप्त हो सकता है। इसका उद्देश्य कृषि व शिल्प सम्बन्धी उन कोठियोंको भी ऋण देना है, जो देशके प्रत्येक भागमें कृषि व शिल्पकी उन्नतिके लिये खुली हैं।

इस बैंकका मूलधन १७५०००००० येन है। इस बैंकको अधिकार प्राप्त है कि जब इसकी साधारण सम्पत्तिके चौथाई हिस्सेका धन प्राप्त हो जाय तो अपने मूल-धनकी दसगुनी लागत तकके डिबेञ्चर अर्थात् विदेशी हुंडियां लिखकर बेचे।

प्रान्तीय हाइपोथिक बैंक।

ये बैंक प्रत्येक जिलेमें एक एक हैं। (जापान ४६ जिलोंमें बंटा है, जिन्हें प्रिफे-क्चर कहते हैं)। इनका काम कृषकों तथा शिल्पकारोंको ऋण देकर कृषि तथा शिल्प-की उन्नतिमें सहायता देना है। प्रत्येकका मूलधन दो लाख येन या अधिक भी है।

कलोनियल बैंक आफ होकैदो ।

यह औपनिवेशिक कोठी होकैदो द्वीपमें मनुष्योंको बसाने तथा इस द्वीपकी उस सम्पत्तिको जो बेकार पड़ी है काममें लानेके लिये स्थापित की गयी है। इसकी स्थापना १९५७ में हुई है। इसका मूलधन ४५ लाख येन है। इसे अपने मूलधनसे पंचगुना डिबेन्चर बेचनेका अधिकार है।

जापानी बैंक बिलकुल सरकारी हैं। इनके प्रधान व उपनिरीक्षक सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं। याकोहामा स्पेसी बैंकके निरीक्षकको सरकारकी अनुमतिसे डाइरेक्टर नियुक्त करते हैं। जापान बैंकका संगठन बेलजियम बैंकके आधारपर हुआ है।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे भलीभाँति प्रकट होता है कि जापान सरकारने बड़ी जोखिम उठाकर देशके सराफेकी कोठियोंको सहायता दी है। खोज करनेपर यह भी ज्ञात हुआ कि ये कोठीवाल बड़ी ईमानदारीसे काम करते हैं। गत २५, ३० वर्षोंमें बेई-मानीके मामले प्रायः नहींके बराबर ही हुए हैं।

यहाँके औद्योगिक व हाइपोथिक बैंक वैसे ही काम करते हैं, जैसे हमारे यहाँ-के स्वदेशी बैंक कर रहे थे। विशेषतः यह काम पंजाबके "पीपुल्स" बैंकके ढंगपर होता है, अन्तर इतना ही है कि यहाँ ऐसी जाँच होती है कि धोखेबाजी तथा व्यक्ति-गत स्वार्थसिद्धिका अवसर बहुत कम मिलता है। इसीसे व्यापार व शिल्पकी वृद्धिके साथ साथ इन कोठियोंकी भी खूब उन्नति हो रही है।

सराफेके बारेमें हमारे देशके पढ़े-लिखे लोगोंमें बड़ा भ्रम है, कारण वे बिना अनुभवके अंगरेज़ी प्रथाकी लकीरके फक़ीर बन कर वहींका राग अलापते हैं। साधारणतः अपने देशमें यह सिद्धान्त माना हुआ है व अंगरेजी सराफेके थोड़े बहुत जानकार भी कहते हैं कि सराफ़ी कोठियोंका काम हुंडी पुर्जोंका लेनदेन ही है और उन्हें अपनी पूंजी दस्तावेजी मामलों तथा शिल्पकी उन्नतिमें न लगानी चाहिये। मतलब यह कि बैंक केवल व्यापार (कामर्स) को सहायता दें, शिल्प (इंडस्ट्रीज) को नहीं। यह सिद्धान्त धनी अंगरेजी बैंकोंका है पर इससे भारतकेसे निर्धन और शिल्परहित देशका काम नहीं चल सकता। भारतकी बात तो दूरकी है, उन्नत जर्मनी व फ्रांस तकने इस सिद्धान्तपर सराफेको जकड़बन्द नहीं कर रखा है।

देशकी उन्नति उसी समय हो सकती है जब राजा व प्रजा दोनों उसपर ध्यान दें व व्यर्थके नियमोंसे सराफेको जकड़ न डालें, हाँ सराफेपर सरकारको कड़ी नज़र रखनी चाहिये जिसमें संचालक निजके लाभार्थ जनताकी हानि न कर सकें।

जापानमें व्यवसायी कोठी (इण्डस्ट्रियल बैंक) को यहाँ तक सुविधा कर दी गयी है कि वह चाहे जिस शिल्प-मण्डलको बिना किसी ज़मानतके भी मकान बनाने तथा यन्त्र क्रय करनेके लिये ऋण दे सके। ऐसे ऋणके लिये संचालक शिल्प-मण्डलके सदस्योंकी योग्यता तथा प्रस्तावित कार्यके लाभालाभकी खूब जाँच कर लेते हैं।

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

विविध वृत्तान्त ।

जापानी उद्यान ।

आज मैं जापानके प्रधान मंत्री काउण्ट ओकूमाके निज गृहके साथ जो उपवन है उसे देखने गया था। अकस्मात् वहाँ आपसे भी मुलाक़ात हो गयी। आप बड़े ही सज्जन हैं। आपका जन्म संवत् १८९५ में हुआ और इस समय (१९७२ में) आपकी अवस्था ७७ वर्षकी है। यहाँपर आपसे कुछ बातचीत भी हुई।

काउण्ट ओकूमा।

आपको उद्यानका बड़ा शौक है, इसीसे आपका उपवन विशेष दर्शनीय है। आपने आर्किडका बड़ा ही सुन्दर संग्रह किया है। बागमें नाना प्रकारके सुन्दर पौधे लगे हैं। इस उद्यानमें भारतीय आम, जामुन व गुलाब-जामुनके वृक्ष भी दिखायी दिये।

जापानमें उद्यान-रचना एक विशेष हुनर है। यदि समूचे जापानको बागों-का देश कहा जाय तो कुछ भी अनुचित न होगा। तोकियो नगरके कुछ हिस्सोंको छोड़ कर समस्त जापान एक प्रकारकी सुन्दर वाटिका है। जापानी शिल्पकारोंने जितने नगर बसाये हैं, जितनी इमारतें बनायी हैं, सभीमें प्राकृतिक दृश्यकी सहायता ली है। योर-अमरीकाकी तरह यहाँके नगर प्रकृतिको उजाड़ कर नहीं वरन् प्रकृतिकी सहायता लेकर ही बनाये गये हैं। यहाँ प्रकृति तथा नागरिक जीवनमें विच्छेद नहीं, मिलाप है।

यह प्राकृतिक मेल वन-देवीकी पूजा और जंगल व नद–नालोंके प्रेमसे भली-भाँति प्रकट होता है। नगरोंके बीच बीचमें यहाँ सघन वन दिखायी देते हैं, यहाँके मानव-समाजपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। यहाँका एक भी मकान वाटिका-विरहित नहीं। यदि स्थानाभाव हो तो केवल गमलोंमें ही बौने वृक्ष लगाकर उन्हें मछलियों और पानीसे भरे एक कुण्डके चारों ओर रख एक प्रकारका प्राकृतिक दृश्य बना लेते हैं।

जब साधारण जनताका हाल ऐसा है तो राष्ट्रके प्राचीन कुलके प्रधान मन्त्रीके उद्यानका कहना ही क्या है। मोटे तौरपर यहाँ बहुतसे बड़े बड़े वृक्ष लगाकर एक प्रकारका वन्य दृश्य बनाया गया है। कुछ प्राकृतिक और कुछ कृत्रिम छोटे बड़े पहाड़ी टीले बनाकर जंगलको पहाड़ी दृश्य भी दिया गया है। इसमें भूल-भुलैयाँकी तरह एक नाला भी टेढ़ा सीधा बनाया गया है। यह कहीं गहरा और कहीं छिछला है। इसमें एक ओरसे पानी आता और दूसरी ओरसे बहकर निकल जाता है। इसपर लकड़ी और पत्थरके कई पुल भी बने हैं। देखनेसे यह सच्चा प्राकृतिक झरना ही जान पड़ता है। जगह जगह घासयुक्त मैदान भी बने हैं। इन ऊँचे नीचे और बीच बीचमें पत्थरके ढोंके निकले हुए मैदानोंमें ताड़के छोटे छोटे वृक्ष भी लगे हैं। इससे सारा दृश्य ही प्राकृतिक जान पड़ता है।

चीड़ तथा अन्य प्रकारके बौने पेड़ोंकी विशेषता यह है कि ये छोटे छोटे गमलोंमें रखे जाते हैं। ये देखनेमें यद्यपि बड़े बड़े वृक्षोंके सदृश दिखायी देते हैं, किन्तु असलमें बहुत छोटे छोटे होते हैं। इनमें कुछ वृक्ष पाँच पाँच सौ वर्षके पुराने भी होते हैं। काउण्ट महोदयने बाग दिखानेका विशेष प्रबन्ध करा दिया था इससे पूरा आनन्द मिला।

जापानका कायापलट।

जापानके कायापलटके सम्बन्धमें बहुतेरी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि राजाकी एक कलमसे यहाँके जाति-पाँति-सम्बन्धी सब भेद नष्ट हो गये। इस बातको अच्छी तरह समझनेके लिये नीचे कुछ विवरण दिया जाता है—

(१) जाति-भेद शब्दके उच्चारणमात्रसे जो भाव हिन्दुस्तानी, विशेषतः किसी हिन्दूके मनमें पैदा होता है, वैसा संसारमें कहीं भी नहीं होता। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि हमारा भाव खराब है या अच्छा किन्तु जापानमें क्या है यही बताना मेरा

अभिप्राय है। भारतमें एक जातिका आदमी दूसरी जातिवालेके साथ खान-पान व विवाहादि नहीं कर सकता । ऐसा रिवाज संसारमें शायद और कहीं भी नहीं है, कमसे कम योर-अमरीका व जापानमें तो नहीं है किन्तु यहाँ भेद है सिर्फ धन व शक्तिका । एक धनी निर्धनसे विवाह न करेगा, उसी प्रकार जो शक्तिशाली है वह शक्तिहीन मनुष्यको नीची निगाहसे देखता है, इससे वह भी उससे व्यवहारादि नहीं कर सकता।

(२) पुरातन समयमें यहाँके मनुष्योंमें तीन प्रकारके भेद थे—समुराई, चोनिन और इटा ।

समुराई—ये एक प्रकारके क्षत्री थे। इनका काम लड़ना भिड़ना था । इन्हें दो हथियार बाँधनेका अधिकार था ।

चोनिन—इस समुदायमें व्यवसायी, किसान, शिल्पजीवी इत्यादिकी गिनती होती थी। समुराइयोंके भेदसे ये दो शस्त्र नहीं बाँध सकते थे। जैसे नवाबी अमलमें मामूली जनता क्षत्रियोंके सामने तलवार नहीं बाँध सकती या मोंछोंपर ताव नहीं दे सकती थी, वैसी ही यहाँकी यह प्रथा थी।

इटा—इनकी गिनती एक प्रकारके चाण्डालोंमें होती थी। इनका काम पशुवध करना, चमड़ा सिझाना, दण्डनीय पुरुषोंको फाँसी देना इत्यादि था। इनसे लोग घृणा करते थे। इससे इनकी एक भिन्न जाति बन गयी थी।

(३) उस समय यहाँकी राज्य-पद्धति पुराने ढंगकी थी । सारा देश छोटे छोटे राज्योंमें बँटा था । छोटे छोटे राजा इनका प्रबन्ध करते थे । इन लोगोंने समुराइयोंको वेतनके बदले ज़मीन दे रखी थी । युद्ध-विग्रहमें ये अपने स्वामियोंको सहायता दिया करते थे। संसारमें प्रायः सभी जगह ऐसा ही नियम था।

महाराजाधिराज मिकादो अपनी राजधानी 'कियोतो' (साईकियो) में रहते थे। उन्हें प्रजा और राव-उमरावोंसे कर मिलता था । इसके सिवा उनकी कुछ अपनी भूमि भी थी, जिससे उनका व्यय चलता था ।

संसारकी रीतिके अनुसार यहाँके बली राव-उमराव भी निर्बलको दबा लिया करते थे। इससे प्रजा तथा राज-दर्बारमें उनका नाम अधिक हो जाता था। इसी तरहसे दो चार राव-उमराव प्रतिष्ठित कुलके बन गये थे।

संवत् १६६० में टोकुगावा कुलका "मेयासू" नामी एक सरदार अपने पराक्रमसे प्रतिद्वन्द्वियोंको हराकर सबसे बड़ा प्रतापी बना। मिकादोसे 'शोगून'की उपाधि पा इसने 'यदो' (आजकलके तोकियो) में अपनी राजधानी स्थापित की । मिकादोका प्रभाव अपने ऊपर न पड़नेके लिये इसने अपनी राजधानी 'यदो' मिकादोकी राजधानी 'कियोतो' से बहुत उत्तरमें बनवायी। थोड़े ही दिनोंमें इसके वंशज बड़े प्रतापी हुए और एक प्रकारसे ये ही देशके राजा बन बैठे । इससे मिकादो नाममात्रके राजा रह गये और सब शक्ति इन्हीं शोगूनोंके हाथ आ गयी ।

यह शक्ति १६६० से १९१५ तक शोगूनोंके ही हाथों रही। इसी समयमें

जापानकी हर प्रकारकी उन्नति हुई और मिकादोकी शक्ति बराबर घटती ही गयी। शोगूनके अमलको लखनवी नवाबीकी मिसाल देना अनुचित न होगा। इस जमानेमें रियासतोंके उमरावोंको "डाइमियों"की पदवी मिल गयी थी। डाइमियोंको थोड़ा बहुत निश्चित कर शोगूनको देना पड़ता था व वर्षमें ६ मास शोगूनकी राजधानीमें अपने थोड़े सैनिकोंके साथ रहना पड़ता था।

ये डाइमियों अपनी ज़मीन समुराई तथा किसानोंको बटवारेकी शर्तपर खेती करनेको देते थे। यह बटवारा धानका ही होता था। उस समय धान ही एक प्रकारका सिक्का (करेंसी) माना जाता था।

संवत् १९१० में जब अमरीकाने कोमोडोर पेरीको जापान भेजकर व्यवसाय-के अधिकार न देनेसे लड़नेकी धमकी दी, उस समय जापानके सामने कठिन समस्या उपस्थित हुई। उस समय शोगूनकी शक्ति घट गयी थी। इनके प्रतिद्वन्दी 'चौसू' व 'सत्सूमा'के भाइयोंने मिकादोको शोगूनके ओरसे खूब भड़का रखा था। इससे जब विदेशियोंने शोगूनपर दबाव डाला तब उन्होंने निरुपाय होकर मिकादोसे इसकी आज्ञा माँगी, पर उन्होंने कोई आज्ञा नहीं दी। इससे शोगून 'केकी' बड़े चिन्तित हुए। वे अपनी शक्तिको खूब समझते थे। वैसी अवस्थामें विदेशी शक्तिसे लड़ना उनके लिये असम्भव था। विदेशियोंकी सहायता लेकर शत्रुको दबाना वे इस दृष्टिसे घृणित समझते थे कि इससे देशके टुकड़े टुकड़े हो जायँगे और देश विदेशि-योंके चंगुलमें फँस जायगा और वैरियोंके साथ साथ अपने पैरमें भी दासत्व-श्रृङ्खला पड़ जायगी। इसलिये उन्होंने आत्माभिमानको छोड़ कियोतो पहुंच राजा मिकादोके पैरोंपर गिर अपनी सारी शक्ति उन्हें सौंप दी। पहिले पहल प्रतिद्वन्दी इसे चाल समझते थे, किन्तु अन्तमें उन्हें उनके उदार हेतुका विश्वास हो गया। इस त्यागको देखकर सभी देश-भक्तिकी उमंगसे मस्त हो गये और सब सरदारोंने अपने स्वत्व मिकादोको सौंप दिये।

यह स्वत्व कृषकोंसे आधी पैदावार लेनेका ही था। इसके त्यागसे १०,२० राव-उमरावोंकी जमीन्दारियाँ चली गयीं, किन्तु राज-कोषमें धनकी वृद्धि होनेसे देशकी राज्य-पद्धति बिलकुल नयी हो गयी।

इसीसे आज दिन भी एशियाकी आँखें पोंछनेके लिये जापान वास्तवमें स्वतन्त्र हैं। इस त्यागके लिये डाइमियोंको उनकी सम्पत्तिका दशांश धन दिया गया। इससे समुराइयोंकी शक्ति व घमण्ड नष्ट हो गया। अकबरके समय राजा टोडरमलने जमीन्दारोंसे सैनिक सहायताके बदले धन लेकर स्वयं सेना रखनेकी व्यवस्था की थी, वैसे ही यहाँके समुराई सैनिक-सेवासे छुड़ाकर कर देनेपर बाध्य किये गये व मिकादो अपने ख़र्चसे सेना रखने लगे। यही जापानका परिवर्तन व उदय है।

१८ वीं शताब्दीके दो चरणोंमें हमारे देशकी भी ऐसी ही अवस्था थी। यहाँके राजा स्वार्थ और घमण्डके वशीभूत होकर फरासीसी व अंगरेज़ी व्यापा-रियोंकी सहायता ले एक दूसरेसे कट मरे। इसका परिणाम जो हुआ वह सभीपर विदित है।

जमीन्दारी ।

आज मैं 'होत्ता' महाशयकी ज़मीन्दारीमें उनकी "कृषि-प्रयोगशाला" देखने गया था। उसी स्थानमें मुझे उपर्युक्त विषयका पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। आपने अपने खर्चसे यह "प्रयोगशाला" बनवायी है। इससे जनताके हितके सिवा उनका कोई स्वार्थ नहीं है। आप एक पुराने 'डाइमियों' खानदानके हैं। आपने भी अपनी ज़मींदारी छोड़ दी थी। इसके बदले आपको जो धन मिला था उससे आपने कुछ ज़मीन खरीद ली है।

आधुनिक व्यवस्थाको ज़मींदारी कहनेके बदले मामूली तरहसे मिलकियत कहना चाहिये। आजकल भूमिका जो मालिक होता है, उसे कर देना पड़ता है किन्तु यहां मालिक व किसानमें वह नाता नहीं जो भारतीय ज़मीन्दारों व रैयतोंमें है— यहां नाता है मकानदार व किरायेदारका। यहां किसान बेदखल नहीं किया जा सकता और न उतना लगान ही उसे देना पड़ता है। ज़मीन देनेके समय जितना तय हुआ हो उतना ही किसानसे ज़मीन्दारको मिलता है। इस भाड़ेको (कारण इसे मैं मालगुजारी नहीं कह सकता) वसूल करनेके लिये भी कोई अदालत नहीं है। नादेहन्दीकी अवस्थामें मामूली धन सम्बन्धी अदालतमें ही साधारण नालिश करनी पड़ती है।

पैदावार कम होनेसे ज़मीन्दारोंको पड़तेके अनुसार ही धन पानेका हक है परन्तु अधिक पैदावार होनेसे उन्हें अधिक पानेका अधिकार नहीं। उस समय पहिले करारके अनुसार ही उन्हें धान मिलता है। प्रायः यह करार पैदावारका आधा धान देनेका ही होता है। ज़मीन्दारका हिसाब नगदीसे नहीं, धानसे होता है परन्तु किसान चाहे तो उसे धान, या बाजार भावसे धानका मूल्य, दे सकता है।

उपर्युक्त वृत्तान्त बहुत खोज करनेपर मिला है, तथापि भाषा न जाननेके कारण मैं इसे बिलकुल बावन तोले, पाव रत्ती ठीक नहीं कह सकता।

× × × ×

व्यावसायिक बैंक ।

इसके विषयमें गत परिच्छेदमें विस्तारसे लिखा ही जा चुका है। किन्तु आज उक्त बैंकके प्रधानसे बातचीत करनेका अवसर मिलनेसे बहुतसी नयी बातें ज्ञात हुईं, उनका ब्योरा यों है—

इस समय इस बैंकने पांच करोड़ २२ लाखके 'डिबेञ्चर' जारी किये हैं। ये तीन प्रकारके यानी ४, ४।, ५, सैकड़े सूदके हैं। इनमेंके बहुत बड़े भागकी बिक्री विदेशोंमें भी हुई है। यह बैंक ऋण दिये हुए रुपयोंपर प्रायः आठ रुपये सैकड़ा सूद लेता है।

चिट्ठा देखनेसे मालूम हुआ कि यह बैंक हिस्सेदारोंको प्रथम व द्वितीय ऐसे दो मुनाफे देता है। प्रथम मुनाफा सैकड़े पीछे ५ और द्वितीय सैकड़े पीछे ३ का होता है। दोनों मिलाकर प्रति सैकड़े आठका लाभ समझिये। हिस्सेदारोंको इसमें कुछ बोलनेका स्थान नहीं रहता परन्तु बैंकको कभी कम मुनाफा हुआ

तो वह दूसरे मुनाफेको काटकर कम दे सकता है। इससे मुनाफ़ा घटानेके कारण जो साख घटती है, वह नहीं घटती। यह प्रथा बड़ी अच्छी है; भारतवर्षके देशी बैंकोंको भी ऐसा ही करना चाहिये।

इनके धनका बहुत बड़ा हिस्सा शिल्पकी उन्नति करनेमें लगा हुआ है। जमानतमें प्रायः कारखाने गिरो रक्खे जाते हैं।

छापाखाना।

आज 'यन्दो' महाशय मुझे एक छापाखाना दिखलानेको ले गये। यह यहांके सब छापाखानोंसे बड़ा है। इसका नाम है, 'हाकुबुंकोन' और इसके मालिक हैं महाशय 'ओहाशी शिंटारो'। मैंने आक्सफोर्डमें इङ्गलैंडके सबसे बड़े और सर्वोत्तम "क्लैरेण्डन" प्रेसको देखा था। यह भी यहां द्वितीय श्रेणीका प्रेस है।

इस छापाखानेमें अधिकतर कार्य मासिकपत्र और पुस्तक-प्रकाशनका होता है। कोई २२,२४ मासिक यहां छपते हैं। स्त्री-पुरुषोंको मिलाकर करीब १५०० मनुष्य यहाँ काम करते हैं। यन्त्रोंके चलानेके लिये ३५० घोड़ोंकी शक्तिका एञ्जिन है। रोज कोई १५०० रीम कागज़ छप सकता और डेढ़ लाख पुस्तकोंकी जिल्द बन सकती है।

इतना वृहत् कार्य इसलिये सम्भव है कि यहां पढ़नेवालोंकी संख्या बहुत अधिक है और एक एक पत्रकी लाखों प्रतियां छपती हैं। इसके सिवा एक ही छापाखानेमें अनेक पत्रोंके छपनेसे व सबके मालिक एक होनेसे पत्र सस्तेमें छप जाते हैं व कागज़ छपाई आदि भी उत्तम होती है। क्या भारतवर्षके प्रधान प्रधान मासिक-पत्रोंका एक संघ बनाकर उन्हें एक स्थानमें छपवाना सम्भव नहीं?

कलर प्रिंटिंग, डबल प्रिंटिंग, ज़िंक व इलेक्ट्रोप्लेटकी छपाई इत्यादि सभी कार्य इसमें होते हैं। चित्रोंके लिये ब्लाक भी यहीं तैयार होते और लिथोके पत्थर द्वारा भी सुन्दर छापे जाते हैं।

जापानी व चीनी 'सांकेतिक चिन्ह' (जिनको अक्षर कहना भूल है) एक ही हैं। इनके लिये भिन्न भिन्न प्रकारके कोई छः हज़ार टाइप बर्तने पड़ते हैं। छापनेके उपरान्त इनको पृथक् करना बड़ा कठिन है।

दिनों दिन संसारकी प्रवृत्ति कम समय व कम मेहनतमें अधिक कार्य करनेकी ओर होती जा रही है। कागज़की दो-तरफा छपाईका दूना समय व दूना श्रम बचानेके लिये डबल या रोलरकी छपाईका आविष्कार हुआ है। इस यन्त्रमें बहुतसे बेलन होते हैं। इन्हींपर छापनेके टाइप वृत्ताकार जमाये जाते हैं। तावके बदले बेलनपर लपेटे हुए १।२ मील लम्बे कागज़के थान काममें लाये जाते हैं। इसपरका कागज़ बेलनोंके बीचसे जाता व कागज़के दोनों ओर एक साथ ही छपाई हो जाती है। फिर यन्त्रके दूसरे भागमें ये कागज़ भँजकर चौपेती हुई पुस्तककी शकलमें गिरते जाते हैं।

इस यन्त्रालयमें रोशनाई लगाने, टाइपोंको साफ करने, कागज़को गीला करने तथा उन्हें भाँजकर काटने आदिके सभी काम यन्त्रोंसे ही होते हैं। इसीसे आधुनिक समयमें रोज एक एक पत्रकी लाख लाख प्रतियोंके पन्द्रह पन्द्रह संस्करण निकालना सम्भव हुआ है। यूरोपीय युद्ध प्रारम्भ होनेके बाद लन्दनमें मैंने एक एक पत्रके दिनमें पन्द्रह पन्द्रह संस्करण देखे हैं। ज्ञानप्राप्तिकी लालसा तथा व्यर्थ समय नष्ट न करनेकी

चरम सीमा यहीं दिखायी देती है। इन देशोंमें दिन भर अखबार पढ़ते पढ़ते नाकों दम आ जाता है पर सभ्य बने रहनेके लिये पढ़ना ही पड़ता है।

ऊनी मस्लिनका कारखाना।

यह एक बड़ा कारखाना है। भारतवर्षके शालकासा पतला केवल एक ही प्रकारका वस्त्र यहाँ बनता है। इसे यहाँ ऊनी मस्लिन कहते हैं। यह कारखाना 'किनीशीमा' महाशयकी देखरेखमें संघशक्ति द्वारा संचालित है। इसका मूलधन २० लाख येन है पर अबतक हिस्सेदारोंसे १६ लाख येन ही वसूल किये गये हैं। हिस्सेदारोंकी संख्या ३९० से अधिक है। इसको खुले अभी आठ वर्ष हुए हैं। यह कारखाना मुनाफेमेंसे पाँच प्रति शत यन्त्रके टूटने फूटने व घिसनेके लिये अलग रख लेता है। इसमें ४०० करघे व सूत कातनेके २२ चर्खे हैं। एक एक चर्खेमें ६३० तकुएं हैं।

इसमें कार्य करनेवालोंकी संख्या, जिनमें पुरुषोंकी संख्या सैकड़े पीछे २५ है, ग्यारह सौ है। दिन और रातमें काम करनेवालोंके दो दल हैं। यह कारखाना दिन रात चलता है। एक सप्ताहके बाद मज़दूरोंका समय बदल दिया जाता है। दोनों दलोंकी मज़दूरी बराबर है और रोज एक घण्टेकी छुट्टी मिलती है।

इस कारखानेमें खर्च होनेवाला प्रायः सब ऊन आष्ट्रेलियासे आता है। इसमें ८० नंबर तकका सूत भी काता जाता है, कपड़ेकी चौड़ाई एकहरी होती है। यह कपड़ा फुटकर ॥) गज़ बिकता है।

यहाँ बुना हुआ कपड़ा धोया जाता है और तब उसमें आलूकी माड़ी लगायी जाती है। जर्मनी व इंगलैंडमें इसकी माँग बहुत है। स्त्रियोंके किमोनो बनानेके लिये जापानमें भी इसकी बड़ी खपत होती है।

बैरन शिबुशावा।

बैरन शिबुशावाको आधुनिक उद्योग-धन्धेका कर्त्ताधर्त्ता कहना अनुचित न होगा। आप वृद्ध होते हुए भी दिन-रात कार्यमें लगे रहते हैं। आजकल आप "दाई इची गिको" (फर्स्ट नैशनल बैंक) के प्रधान हैं।

आपका जन्म संवत् १८९७ में हुआ था। इस समय आपकी उम्र ७५ वर्षकी है। आपने टोकुगावाकी अन्तिम नवाबीमें भी काम किया है। टोकुगावा प्रिंसके साथ आपने संवत् १९२४-२५ में यूरोपकी यात्रा भी की थी। राज्यक्रांतिके बाद आपको राजकोष-विभागमें एक बड़ा पद मिला था पर आपने १९३०में उसे त्याग दिया। तबसे आपने कोई सरकारी काम नहीं किया। १९५९ में आपने योर-अमरीका-की फिर यात्रा की। १९३० में संस्थापित आपका बैंक यहाँके सब बैंकोंमें पुराना है।

आपने कहा कि जापानमें शिक्षाप्रचारकी चर्चा "मेजी' के पूर्वसे ही प्रारम्भ हो गयी थी। राज्यक्रांतिके बाद 'मेजी युग' के प्रारम्भसे कलाकौशल और उद्योग-धन्धे-की चर्चा आरम्भ हुई। इसके लिये पहिले बैंक खुले और फिर रेलवे और जहाजी कम्पनियां खुलीं, यह प्रगति स्वाभाविक रीतिसे ही हुई है।

प्रथमारम्भमें धनकी आवश्यकता होनेके कारण आर्थिक दशाके सुधारके लिये सबसे पहिले बैंक स्थापित किये गये, फिर आवागमनकी सुविधाके लिये रेलें और जहाज़ी कम्पनियोंकी प्रतिष्ठा हुई।
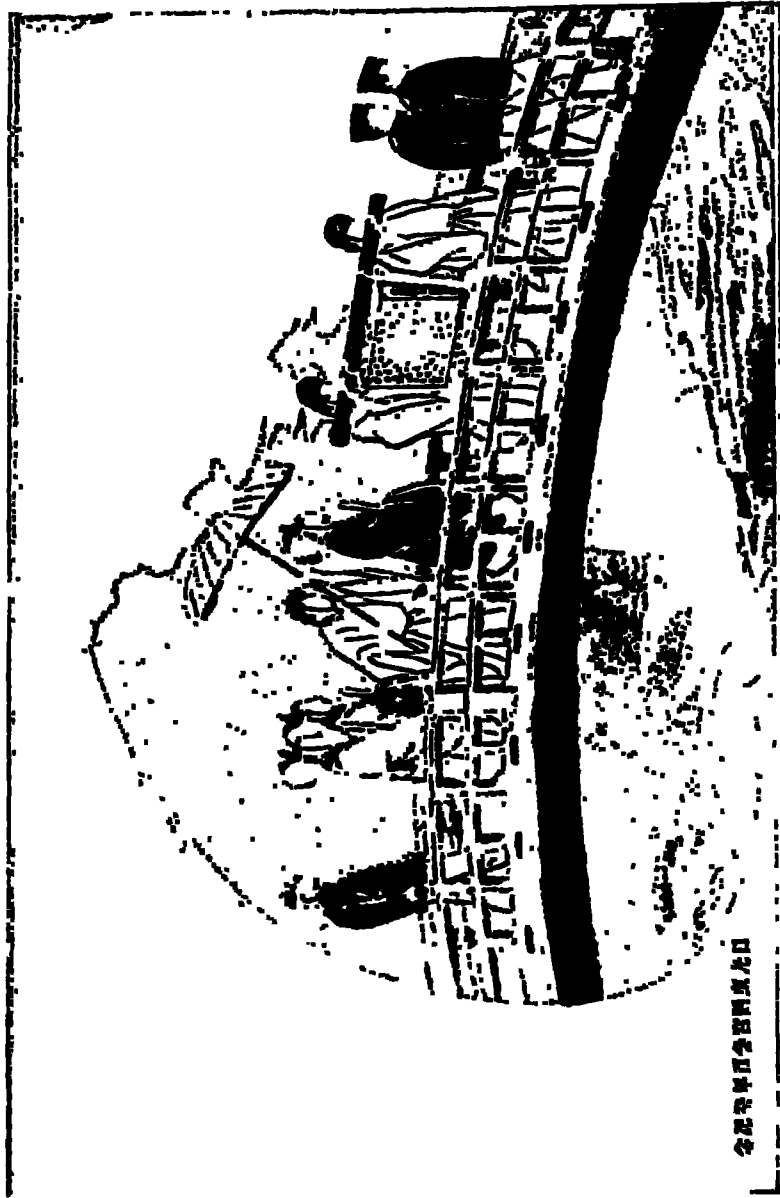
पवित्र पुलपर शाही जुलूस [पृ० २५८]

अठारहवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

निक्को-यात्रा ।

उत्तरीय जापानकी सैरके लिये आज प्रातःकाल मैं ९ बजे तोकियोके "युनो" स्टेशनसे रेलद्वारा निक्कोकी ओर रवाना हुआ। प्रचंड वेगसे रेल उत्तरकी ओर नदी, नाले, मैदान, पहाड़, समस्थली आदि पारकर समान स्थिरतासे जा रही थी। राहमें जापानकी विशाल "टोनोगावा" नदी भी मिली।

दो घंटेमें मैं "उत्सुनोमिया" स्टेशनपर पहुंच गया। यहांसे निक्को जानेके लिये दूसरी गाड़ीपर सवार हुआ। यहींसे निक्कोका दृश्य प्रारम्भ होता है। निक्कोमें प्राकृतिक व कृत्रिम सौन्दर्यका अनोखा मिलन हुआ है। इसीसे यहां यह कहावत प्रचलित है कि "जिसने निक्को नहीं देखा उसको 'किक्को' शब्दका उच्चारण नहीं करना चाहिये।" 'किक्को'का अर्थ विशाल, महान् व प्रभावशाली है। वस्तुतः निक्को है भी ऐसा ही। 'निक्को' किसी एक खास जगहका नाम नहीं है। यह तोकियोके उत्तर १०० मीलतक कूर्माचलकी भाँति फैले हुए एक पहाड़ी इलाकेका नाम है। किन्तु आजकल निक्कोका अभिप्राय "हाची इशी" व "इरीमाची" ग्रामोंसे है जहाँ प्रथम शोगून "इयासू" व उनके पौत्र "ईमित्सू" के समाधिमन्दिर बने हुए हैं। "उत्सुनोमिया" स्टेशनसे गाड़ीके आगे बढ़ते ही निक्कोके पहाड़ी शिखर दिखायी देने लगते हैं। इन पहाड़ियों-में कोई पहाड़ी पिरामिडकी नाईं दूसरी पहाड़ियोंसे अधिक ऊंची नहीं दिखायी देती, वरन् दूरसे नीची ऊंची शिखरमाला दीख पड़ती है। विख्यात कवि गोल्डस्मिथके शब्दोंमें यह "माउण्टिन वुडेड टु दि पीक" अर्थात् "चोटी तक वृक्षोंसे आच्छादित पर्वत-राशि" है। इसी सुन्दरताको बढ़ानेके लिये शोगूनोंने तोकियोसे निक्को जानेवाली सड़कपर ४० मीलतक चीड़ व देवदारुके वृक्षोंकी कतार लगायी है। अब ये वृक्ष बहुत मोटे हो गये हैं और गर्मीके दिनोंमें इनके द्वारा धूपसे लोगोंकी रक्षा होती है। प्राचीन समयकी होनेके कारण राह बहुत तंग है, यहाँ तक कि एक साथ दो गाड़ियां भी यहांपर नहीं आ जा सकतीं। फिर, सघन वृक्षोंके कारण अब यह चौड़ी भी नहीं हो सकती।

हमारी रेल, वृक्षयुक्त इस मार्गको कभी दाहिने व कभी बाएं छोड़ती हुई थोड़ी देरमें निक्को आ पहुंची।

अपना सामान निक्कोके होटलमें भेजकर मैं ट्रामगाड़ी द्वारा होटलकी ओर चला। बाजारसे कुछ दूर जानेके बाद ४० फुट चौड़े एक पहाड़ी नालेके पास जा पहुंचा। इसपर लकड़ीका एक सुन्दर पुल बना है परन्तु इसपर कोई चलने नहीं पाता। केवल प्रति वर्ष होनेवाले एक मेलेके समय समुराईके प्रतिनिधि इसके ऊपरसे पार

जाते हैं। कहते हैं कि यह पुल उसी स्थानपर बना है, जहां आठवीं शताब्दीमें "शो-दोशोनिन" नामक साधुने देवदूतकी सहायतासे इसे पार किया था। यह सेतु समाधिमन्दिरके साथ १६९५ में बना था व उस समय केवल शोगून ही इसपर चल सकते थे। १५५९ की बाढ़में बह जानेके कारण यह १९६४ में फिरसे बनवाया गया है।

लकड़ीका सुन्दर पुल।

रेल गाड़ी इसके निकटवर्ती दूसरे सेतुपरसे पार होकर होटल पहुंची। चारों ओर वृक्षोंसे आच्छादित यह होटल बड़ा ही सुन्दर है। थोड़ी देर विश्राम करके मैंने स्नान किया और भोजनके बाद अपनी कोठरीके बरामदेमें आ बैठा, इसी समय घने बादल घिर आये और खूब ज़ोरसे वृष्टि होने लगी; बिजली भी चमकने लगी। सामने ऊंचा पहाड़, नीचे नदी व बड़े बड़े वृक्ष थे। चारों ओर हरियाली ही दीख पड़ती थी। बिजलीकी चमक, मेघकी गड़गड़ाहट व मूसलधार वर्षाने दिलको हिला कर भारतवर्षकी याद दिलायी। कजलीकी सुहावनी तानें अकस्मात् कानमें पड़ने लगीं। वीणाकी झंकार भी सुनायी देने लगी। मानो कोई गा रहा हो "आयी कारी बदरिया घेरके। कारे कारे बादल बिजुली चमकै मेघ डरपावै भेरके।" क्षण भर इसका आनन्द लेता रहा किन्तु एक क्षणमें ही किसीके पदशब्दने सारा मज़ा स्वप्नवत् कर दिया। फिर वही विदेश दिखायी देने लगा। इतनेमें पथ-प्रदर्शकने आकर मुझसे चलनेके लिये कहा।
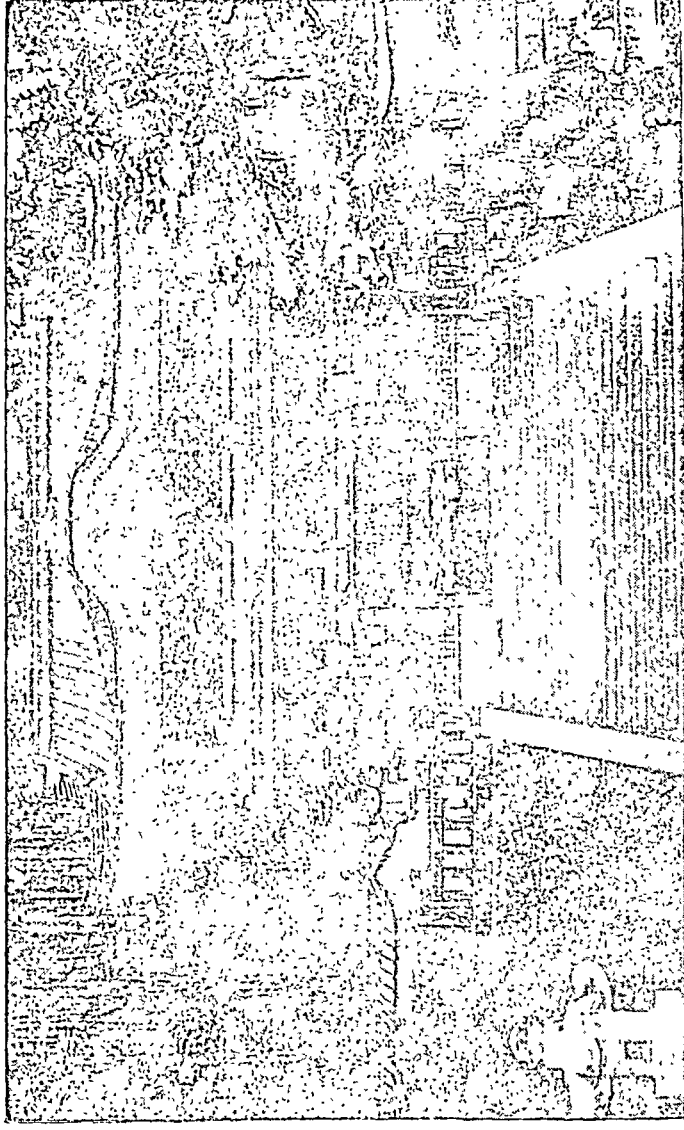
तृतीय शोगूनका मन्दिर

(पृष्ठ २५९)

होटलसे चलकर प्रथम मैं शोगून"इयासू"के समाधि-मन्दिरमें पहुंचा। इस मन्दिरको देखकर शाहेजहांकी याद आ गयी। चिरकालतक कीर्तिको जीवित रखनेके लिये शाहेजहांने अपनी प्रियतमा मुमताज़महलकी यादगारमें जैसे "ताज़महल" बनवाया, जैसे फरऊनोंने मिश्रमें 'पिरामिड' बनवाया, उसी तरह आत्म-गौरवको चिरस्थायी करनेके लिये प्रथम शोगूनकी इच्छाके अनुसार उनके पुत्रने १७ वीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें इस मन्दिरको बनवाया था।

इस मन्दिरके बननेके समय जापानकी काष्ठ-कला व ललित-कला बड़ी उन्नत दशामें थी। उस समय शोगूनका कोष भी धनसे परिपूर्ण था। इस लिये इस मन्दिरके निर्माणमें शिल्पकारोंकी चतुराई, धनकी विपुलतासे जहांतक सम्भव था, दिखलायी गयी है। यह मन्दिर सचमुच ही जापानी कारीगरीका जीवित नमूना है। वहां लैकरका काम देखते ही बनता है। लकड़ीकी नक़ाशीमें भी हद दर्जेकी कुशलता दिखलायी गयी है। इसमें नाना प्रकारके पक्षी इस सफाईसे बनाये व रंगे गये हैं कि देखकर चकित होना पड़ता है। मन्दिरमें बड़े बड़े दालान, बारहदरियाँ, साधुओंके रहनेके स्थान, पुस्तकालय आदि सभी बड़ी सुन्दरतासे बनाये गये हैं।

मन्दिरके बाहरवाले बड़े दरवाजेपर अति सुन्दर सुनहला काम है। इसका नाम 'योमोमोन' है। दरवाजेके दोनों ओर दो दिक्पाल खड़े हैं। इससे कुछ आगे कोरिया, हालैंड तथा लूचू द्वीपके दिये हुए घंटे व लालटेनें रक्खी हुई हैं। इनमें कोरियासे आया हुआ घंटा बहुत बड़ा है और इसमें बहुतेरे छेद हैं। देखनेसे मालूम होता है कि इसको दीमकने चाटा है परन्तु यह धातुका है, इससे दीमक नहीं चाट सकते, पर इसका नाम 'दीमकसे चटा हुआ घंटा' है।

हालैंडकी लालटेन भी बड़ी सुन्दर है। ये वस्तुएं साबित करती हैं कि उस समय केवल एशिया भूखण्डके राज्य ही नहीं वरन् यूरोपके राज्य भी जापानको खुश रखनेमें अपना हित समझते थे।

यहां अन्यान्य कई मन्दिर तथा तृतीय शोगूनका समाधि-मन्दिर भी दर्शनीय है परन्तु वृष्टिकी अधिकता व विलम्ब हो जानेके कारण उन्हें देखनेका अवसर नहीं मिला।

यहींसे लौटकर ट्रामपर सवार होकर मैं उसके छोरकी ओर चला। ट्राम बड़ी सुन्दर घाटीमेंसे जा रही थी। कोई पांच मील जानेके बाद इसका अन्त हुआ।

यहांसे पहाड़की चढ़ाई आरम्भ होती है। थोड़ी दूर जानेके बाद एक बड़ी झील मिली जिसमेंसे एक नदी निकलती है। इस झीलपर सैलानियोंने विश्राम-गृह बनवाये हैं। यह वस्तुतः बड़े आनन्दकी जगह है। ट्रामकी राहसे थोड़ी दूरपर ही तांबेका एक बड़ा भारी कारखाना है। यहाँसे प्रायः १२ मीलपर एक पहाड़में ताँबेकी खान है और वहींसे तांबा खोदकर यहाँ लाया जाता है। इस कारखानेमें तांबा गलाकर शुद्ध किया जाता है। समय न रहनेके कारण मैं इसे देख नहीं सका।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

मत्सुशीमाके लिये प्रस्थान ।

लिननका कारखाना ।

आज प्रातः काल मैं 'मत्सुशीमा' के लिये रवाना हुआ । रास्तेमें निकोसे दो स्टेशन आगे कनुआमें एक लिननका कारखाना है, उसे देखनेके लिये मैं उतर पड़ा ।

आयर्लैंडका लिनन बड़ा विख्यात वस्त्र है । आजकलके शौकीन इसी वस्त्रका कालर पहिनते हैं । मैंने इसके देखनेका प्रबन्ध बेलफास्टमें किया था, पर समर प्रारम्भ हो जानेसे मुझे उसका विचार छोड़ देना पड़ा था । परन्तु मैंने इसे कहीं न कहीं देखने-का जो पक्का विचार कर लिया था वह आज पूरा हुआ । यों तो बहुतसे पदार्थोंसे वस्त्र बनते हैं पर छालसे बना हुआ लिनन बहुत विख्यात है । यदि रूईके वस्त्रकी पीतलसे तुलना की जाय, तो लिननके वस्त्रकी तुलना स्वर्णसे करनी पड़ेगी ।

अब मुझे आपको बतलाना है कि यह लिनन कौन वस्तु है ? यह तीसीके पौधे-की छालसे तैयार होता है । जिस प्रकार सनईसे सन, पाटसे जूटका छिलका उतारा जाता है, उसी प्रकार उतारे हुए तीसीके छिलकेको लिनन कहते हैं । सन व जूटसे यह बहुत अधिक मूल्यका होता है ।

भारतवर्षमें लाखों मन तीसी उत्पन्न होती है पर मुझे मालूम नहीं कि यहां तीसीपरसे लिनन उतारा जाता है या नहीं । यदि न उतारा जाता हो तो इसे उतारना चाहिये । यदि अभी हम इसे कात न सकें तो कोई हर्ज नहीं, सिर्फ कच्चे मालकी तरह इसकी रफ्तनीसे ही बड़ा लाभ होगा । तीसी उत्पन्न होने वाले स्थानोंके जमी-न्दारों तथा व्यापारियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये ।

हमारे देशमें अन्य प्रकारके ऐसे अनेक पौधे व अन्नके पेड़ हैं, जिनसे छाल उतारी जा सकती है । उदाहरणके लिये अरहर, झाऊ आदिका उल्लेख किया जा सकता है । इस ओर औद्योगिक संस्थाओंको ध्यान देना और इनकी परीक्षा कर इन्हें बाजारमें लाना चाहिये । जबतक ये बिकने लायक न बनाये जायं, तबतक इनसे प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति व्यर्थमें बरबाद हो रही है । राष्ट्रीय दृष्टिसे यह हानि बहुत बड़ी है ।

लिनन सनकी भाँति कारखानेमें लाया जाता है । यहां उसको लोहेकी बड़ी बड़ी कंघियों द्वारा झाड़कर बराबर करनेके बाद कातना प्रारम्भ होता है । इसका सूत बहुत महीन कत सकता है क्योंकि इसके रेशे बहुत लम्बे और बारीक होते हैं । इसका सूत कपासके सूतकी अपेक्षा बहुत मजबूत होता है । धोनेसे यह बहुत अधिक सफेद होता है और इसमें चिकनाहट भी रहती है । इसका वस्त्र इच्छानुसार मोटा व पतला बन सकता है । यह कपड़ा, कपासके कपड़ेसे बहुत मजबूत व सुन्दर भी होता

है। देशवासियोंको इसके बनानेकी ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये, कारण अब तक यह उपयोगी सामान कूड़ेकी तरह व्यर्थ ही फेंक दिया जाता है। व्यवसायकी उन्नतिके बिना देशकी भलाई कैसे हो सकती है?

मत्सुशीमा-यात्रा।

लिननका कारखाना देखनेके बाद हमलोगोंने मत्सुशीमाके लिये प्रस्थान किया। गाड़ीमें एक घंटेका विलम्ब था इसलिये एक जापानी उपहारगृहमें जाकर मध्याह्नका भोजन कर लिया। गृहकी अधिष्ठात्रीने आसन बिछाकर सामने एक छोटी सी चौकी धर दी। हाथ धोनेके लिये वह एक बड़े कटोरेमें जल भरकर ले आयी, मैंने संकेतसे उसको बतलाया कि मैं इसमें हाथ नहीं धो सकता, तुम शुद्ध जल मेरे हाथपर डालो तो मैं हाथ मुख धोऊँ। उसने ऐसा ही किया। भोजनके समय वह पासमें बैठकर पंखा हाँकती रही। भोजनके उपरान्त जल, बरफ तथा स्थान व मेहनतके लिये हम उसको पाँच आने देकर वहाँसे चल पड़े।

जापानमें ६, ७ बड़े नगरोंको छोड़कर अन्य स्थानोंमें योर-अमरीका जैसे होटल नहीं हैं। कारण, आम तौरपर जापानी लोग देशी ढंगके भोजनालयों व बासों-को ही पसन्द करते हैं। वे ही उनके लिये स्वाभाविक और सुविधाजनक भी होते हैं। हाँ, उन बड़े बड़े नगरोंमें, जहाँ योर-अमरीका निवासियोंका अधिक आना जाना होता है, योर-अमरीकाके ढंगके होटल बने हैं। यह भी जापानी सरकारकी मेहर-बानी समझनी चाहिये, क्योंकि यदि वह भी उसी प्रकारका बर्ताव योर-अमरीका वालोंसे करना चाहती, जैसा वे एशिया-निवासियोंसे करते हैं, तो उसे मना करने वाला कोई भी नहीं था। इससे मेरा अभिप्राय यह है कि योर-अमरीकामें एशिया वालोंके लिये कहीं भी कुछ भिन्न प्रबन्ध नहीं है।

इन स्वदेशी भोजनालयोंमें भोजनका मूल्य देना पड़ता है पर चाय, स्थान व मेहनतके लिये कोई रकम नियत नहीं है। इसका देना आगन्तुककी इच्छापर निर्भर रहता है। हर एक व्यक्तिको कुछ न कुछ देना होता है, इसे "चढ़ाई" कहते हैं। योर-अमरीका वालोंने इसका नाम "टी-मनी" रखा है

यहाँसे रवाना होकर मैं रेलपर सवार हुआ। चारों ओर हरे हरे धानके खेत ही खेत दिखायी दे रहे थे। इनके सिवा अन्य वनस्पतियोंसे भरे स्थान और ऊँचे नीचे टीले भी दिखायी देते थे। हरियालीसे कहीं भी मिट्टी दिखायी नहीं देती थी। इस समय आकाश स्वच्छ नील वर्णका था। गर्मीके मारे तबीयत बे-हाल हो जाती थी। कहीं वायुका नाम तक नहीं था। पानी पीते पीते पेट फूल उठा तथापि प्यास बन्द नहीं हुई। इसलिये थोड़ी गरम गरम चाय मँगाकर पी, तब जरा प्यास रुकी। राम राम करते घंटे भरमें हम लोग "उत्सुनोमिया" स्टेशनपर आ पहुंचे। यहाँ गाड़ी बदलनी पड़ती है। यह स्टेशन बहुत बड़ा है। इसके प्लैटफार्मपर ठंढे जलसे भरा काँचका एक बड़ा कुण्ड बना है, जिसमें कृत्रिम पहाड़ बने हैं। इसमें लाल मछलियाँ और जलके पौधे भी हैं। इसके बाहर एक दर्जन नल लगे हैं, जिन्हें खोलकर लोग पानी लेते हैं। इस नवीन दृश्यको देख मैं बहुत देर तक मन बहलाता रहा।

जापानकी बड़ी बड़ी दूकानों व निवासस्थानोंमें कृत्रिम कुण्ड बनाकर उनमें जल

व मत्स्य रखते हैं। कहीं कहीं इनमें फव्वारे और छोटे बड़े पेड़ भी लगे रहते हैं। पुराने समयमें हमारे घरोंमें भी फव्वारे रहते थे और राजप्रासादोंमें छोटी छोटी नहरें बहा करती थीं, किन्तु अब वे बातें स्वप्नवत् हो गयीं। अब फव्वारोंके बदले घरोंमें आग जलानेकी चिमनियोंकी प्रथा चल पड़ी है। इसीका नाम है "भेड़ियाधसान"।

मैं यहाँसे मत्सुशीमाकी गाड़ीपर सवार हुआ। गर्मी अभी तक कम नहीं हुई थी। पाँच बजेके बाद आकाशमें कहीं कहीं बादलोंके टुकड़े दिखायी देने लगे और कुछ बयार भी चलने लगी। इससे जरा जीमें जी आया। इसी समय उपासनाका ध्यान आया। मुख धोनेके लिये हम कमरेमें गये। यहाँ एक अजीब लीला दिखायी पड़ी। इसमें पायखाना योर-अमरीका जैसा नहीं वरन् अपने देशकासा बना था। मुख धोनेकी व्यवस्था भी जापानी ढंगकी ही थी। योर-अमरीका वालोंके लिये बाज बाज गाड़ियोंमें काठका एक तख्ता रखा रहता है। आवश्यकता होनेपर मामूली पायखानेपर उसको रखकर उसपर बैठकर उनको काम चलाना पड़ता है। इससे यूरोपियनोंको वैसी ही असुविधा होती है जैसी हमलोगोंको अपने देशमें अंग्रेज़ी ढंगके पायखानोंसे होती है।

बड़े आनन्दसे सब कामोंसे निपट कर मैं बाहर आया और उपासनाके उपरान्त बाहरका मनोहर दृश्य देखने लगा। अब सूर्य अस्ताचलके निकट पहुंच चुके थे, उनकी अन्तिम लालिमा बादलोंपर पड़ रही थी। बादलोंके पीछे छिपकर बैठा हुआ बाजीगर भी बादलोंको नाना प्रकारका रूप देकर अपना करतब दिखाने लगा। अभी ऊँट था, फिर हाथी बन गया, देखते देखते एक बन्दरकी शकल आ गयी, सामने एक मोर भी दिखायी देने लगा। उसके माथेपर राजाका एक मुकुट आ गया। इतनेमें एक गृध्रने झपटकर मुकुट गिरा दिया और दोनों आपसमें गुथकर एक दूसरेमें विलीन हो गये। कुछ देरमें बादलमें भारतका मानचित्र सा दिखायी देने लगा। सूर्यकी अन्तिम रश्मिकी आभासे वह लाल था किन्तु क्षितिजके नीचे जानेसे वह हरा बन गया। देखते देखते मानचित्र दो मनुष्योंके रूपमें परिणत हो गया। जान पड़ता था कि इन दोनोंके हाथोंमें एक एक पताका है और दूसरे हाथ आपसमें मिले हैं। इतनेमें एक बड़े स्टेशनमें गाड़ीके पहुंचनेसे बादलोंका तमाशा समाप्त हो गया।

मनुष्यकी मानसिक शक्ति बड़ी प्रबल है। मनमें जैसा विचार आता है वैसी ही शकल सामने आ जाती है। रेलपर चलते समय पटरियोंमेंसे जो शब्द निकलते हैं उनको मनोगतिसे आप भैरवी, कान्हरा, सामकल्यान, विहाग आदि जो चाहें, वह राग समझ लें। जो राग आपके मनमें आवेगा उसीको वह शब्द गायगा। इसी भाँति बादलोंमें भी मानसिक शक्ति नाना प्रकारके रूप, रंग व चित्र बनाती व मिटाती है। यह अजीब जादू है, कुछ समझमें नहीं आता, अस्तु।

पौने नौ बजे हमारी गाड़ी निर्दिष्ट स्थानके निकट पहुंची। देखते देखते गाड़ी खड़ी हो गयी और मैं भी झट नीचे उतर पड़ा। होटलका आदमी मौजूद था, उसने सामान सम्हाल लिया। हम लोग भी रिक्शापर चढ़कर रवाना हुए। इस समय आकाशमें बादल छाये हुए थे, धीमी धीमी झीसी पड़ रही थी। जानेका मार्ग तंग था, दोनों
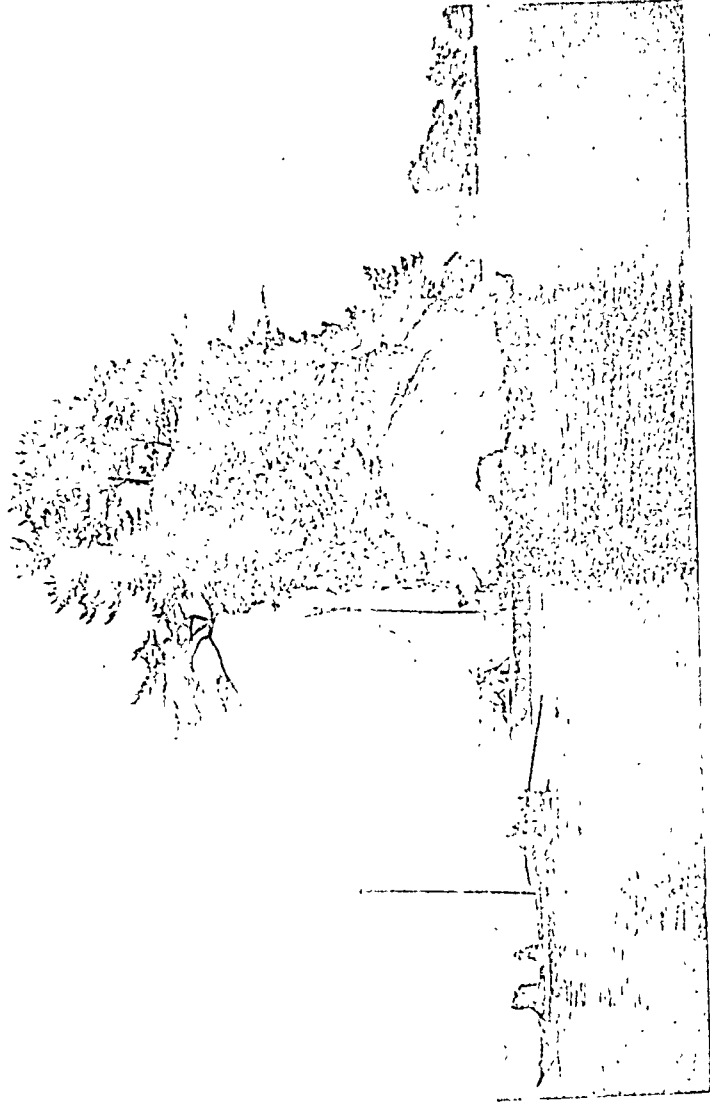
मत्सूशीमामें छोटी छोटी डोंगियोंका दृश्य (पृष्ठ २६३)

और खेतोंमें जल भरा था, कहीं कहीं ताल-तलैयाँ भी थीं। मार्गमें नितान्त अंधेरा था, केवल हमारी रिक्शाकी लालटेनका ही कुछ प्रकाश पड़ता था। कहीं कहीं इधर उधर जुगनू चमक जाते थे और कभी कभी दामिनी भी प्रकाश दिखलाती थी। खेतोंमें दादुरोंने भयानक शोर मचा रक्खा था। उनके टर टर शब्दसे कान फटे जाते थे। रास्ता ऊंचा नीचा होनेसे व अंधकारके कारण भय भी लगता था कि कहीं गाड़ी खींचनेवाला गड्ढेमें न गिरा दे, किन्तु यह भ्रममात्र ही था। थोड़ी देरमें हम लोग ग्राममें पहुंच गये। उस समय दूकानें बन्द हो गयी थीं, तथापि किसी किसीके भीतर कुछ कुछ उजाला था। कहीं कोई कुछ लिख रहा था, कहीं माँ बच्चोंको दूध पिला रही थी और कहीं लोग बैठे आपसमें बातें कर रहे थे। घरोंके सामने बाहर मैदानमें भी लोग चौकी बिछाये पड़े दिनके परिश्रमको मिटा रहे थे या इष्ट मित्रोंसे वार्तालाप कर अपना समय बिता रहे थे। बाजार पार कर हम लोग होटलके सम्मुख पहुंच गये। तोकियो होटलके एक पूर्वपरिचित कर्मचारीने हमारा स्वागत किया और भीतर ले जाकर हमें एक कमरा दिखा दिया। मैं दिन भरका थका माँदा था, बिस्तरपर जाते ही निद्राभिभूत हो गया।

सूर्योदयके बाद नींद टूटी, आँखें खोलकर देखा तो सामने दूर तक समुद्रतट दिखायी दिया। यह पल्ली समुद्रतटपर बसी है। यहाँ दूर तक समुद्र पृथ्वीमें घुस आया है। मीलों तक जल थोड़ा ही थोड़ा है व इसमें छोटे छोटे टापू भी बहुत से हैं। इनमें बहुतोंपर कुछ लोग रहते भी हैं, पर अधिकतर निर्जन ही हैं। चीड़के बड़े बड़े वृक्ष भी उनपर लगे हैं। छोटी छोटी डोंगियाँ पाल उड़ाती हुई इधर उधर घूमती और मछलियाँ पकड़ती फिरती हैं। यह स्थान दस पाँच दिन रह कर आनन्द करनेके योग्य है पर हमको समय नहीं था।

प्रचण्ड धूप होनेके कारण बाहर निकलनेका साहस नहीं हुआ। होटलमें बैठे बैठे ही समुद्रका मजा लेता रहा। दिन ढलनेपर जब धूप कम हुई, तब एक डोंगी कर घूमनेको गया। दो तीन घंटे तक इधर उधर घूमनेके उपरान्त होटलमें आया।

यदि ज़मीनके भीतर किसी प्रकारसे वृक्ष दब जाता है तो उसका काया-पलट हो जाता है। यदि दबाव व उष्णता अधिक हुई तो वह कोयला बन जाता है। उष्णता कम होनेसे बहुत समय बीत जाने पर वह पत्थर बन जाता है। ऐसे पत्थरोंके समूचे वृक्षोंके तने संग्रहालयोंमें बहुत दिखायी देते हैं। पत्थर होनेके पूर्व उनमें गुरुता बढ़ती है। ऐसे गुरुताप्राप्त वृक्षोंके तने जो पत्थर होनेके निकट पहुंच चुके हैं यहाँ बहुत हैं। यहाँ उनके पात्र बनाये जाते हैं जो बड़े चिकने व वजनदार होते हैं। परदेशी लोग इनको स्मारक समझ कर अपने देशोंमें ले जाते हैं। मैंने एक छोटी थाली लेनेका विचार किया था परन्तु उसका मूल्य १५) अधिक जान पड़ा, इसलिये उसको मैंने नहीं ख़रीदा।

शामको भोजन करनेके समय बहुत सी बालक-बालिकाएं बाहर इकट्ठी हुईं। उनकी ओर देखनेसे वे दूर भाग जाती थीं। मैंने ख्याल किया कि ये मुझको अजनबी समझकर मुझसे खेल कर रही हैं। कौतूहलसे मैं एक रोटीका टुकड़ा लेकर बाहर आया और उनको बुलाने लगा। उनमेंसे एक लड़कीने आकर रोटी ले ली, तब मुझे

मालूम हुआ कि ये बच्चे रोटी चाहते हैं। मैंने एक बड़ी रोटी लेकर उसके टुकड़े उन्हें बाँट दिये। रोटी देनेके समय आँखोंमें आँसू भर आये और एशियाकी दीनावस्थाकी याद आ गयी। मैंने स्वप्नमें भी यह कल्पना नहीं की थी कि जापानमें भी ऐसी ही दशा होगी। योर-अमरीकामें यह अवस्था कहीं भी नहीं दिखायी देती। जर्मनीके बारेमें तो यहाँ तक सुननेमें आया है कि निर्धन कुटुम्बको बालकोंके लिये राष्ट्र-कोषसे धन दिया जाता है। वहाँ कोई भी बालक रात्रिमें भूखा नहीं सोता। सुना है कि वहाँके राजाको जब यह समाचार मिल जाता है कि राज्यके सब बालकोंने भोजन कर लिया तब राजा स्वयं भोजन करते हैं।

बीसवाँ परिच्छेद।

—:०:—

होकैदो-यात्रा।

रात्रिको यहांसे प्रस्थान कर गाड़ीमें बैठ मैं समुद्रतटके लिये चला। आज रात्रिकी यात्रा थी, इससे मैंने सोनेकी गाड़ी ली थी। यहां भी अमरीकन ढंगकी सेजका रिवाज है, उसी भांति बिस्तर वगैरह सभी कुछ यहां मिलते हैं। मच्छड़ोंके कारण मसहरी भी सेजपर लगायी जाती है किन्तु उतना आराम यहां नहीं है, जितना अमरीकाकी सेज-गाड़ियोंमें होता है। वहांकी सेज यहाँसे अधिक चौड़ी होती है। फिर यहां केवल प्रथम श्रेणीके यात्रीको ही सेज मिल सकती है, किन्तु अमरीकामें केवल एक ही श्रेणी है और वहां जो चाहे ४॥) देकर रात्रिभर सेज-गाड़ीमें चल सकता है। हां, दक्षिण प्रान्तमें बेचारे निग्रो जातिवालोंको रुपये देनेपर भी सेज गाड़ीमें चलनेका अधिकार नहीं है, क्योंकि अमरीकावालोंको व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यका अभिमान है!

प्रातः काल मैं 'अमोरी' बन्दरपर पहुंच गया। यहाँ नित्य-क्रियासे निपटकर होकैदोके लिये अग्निबोटपर सवार हुआ और पांच घंटेमें उस पार पहुंचा। इस बन्दरका नाम 'हाकोडेट' है। यह बन्दर सैनिक स्थान है अतः यहाँ किलाबन्दी है और यह पर्वतके दामनमें बसा हुआ है। अभी रेलगाड़ीके आनेमें एक घंटेकी देर थी, इसलिये मैं नगरमें घूमनेको गया। इस नगरमें तस्वीर उतारनेकी आज्ञा नहीं है। यह नगर अच्छा व घना बसा हुआ है और यहां भी ट्रामगाड़ी चलती है। दूकानोंपर यहां लौकी भी देख पड़ी। सिंगापुरी कसेरूकी भांति एक मूल देख पड़ा, किन्तु यह रंगमें ऊपरसे हरा और खानेमें फीका था।

यहांसे अब रेलपर "सपोरो"के लिये रवाना हुआ। यहांपर एक कृषि-सम्बन्धी विद्यालय है, इसीको देखना मेरा लक्ष्य था। यह द्वीप अधिकतर पहाड़ी इलाकोंसे ही भरा है। यहां जनसंख्या बहुत कम है किन्तु खनिज पदार्थ अधिकतासे होते हैं। यहां जमीन भी बड़ी उर्वरा है। जापानी सरकार इस द्वीपको बसाना और इसकी सम्पत्तिको काममें लाकर अपनी सम्पत्ति बढ़ाना चाहती है।

जिन चार द्वीपपुञ्जोंसे जापान बना है उनमें प्रधान द्वीपका नाम "होनेदो" है। यह सबसे बड़ा है। दूसरेका नाम "होकैदो", तीसरेका "शिकोकू" व चौथेका "कियुशू" है।

होकैदोमें जनता कम है, इससे उसे बसानेके लिये नाना प्रकारके यत्न हो रहे हैं। यहां खास तौरपर एक बड़ा भारी कृषिविद्यालय खोला गया है। इसके सिवा यहां बैंक, रेलवे तथा और भी अनेक प्रलोभन हैं।

दोपहरको रवाना होकर कोई ११ बजे रात्रिमें मैं सपोरो पहुंचा। स्टेशनपर

कृषिशालाके प्रधान 'सेतो' महाशयके पुत्र मुझे लेने आये थे। वे मुझे "यमियातावा" वासेमें ले गये। यहां योर-अमरीकाके ढंगके वासस्थान नहीं हैं, इससे मैं जापानी वासेमें ठहरा, पर यहां भी दुर्भाग्यवश मुझे उस खण्डमें ठहरना पड़ा, जिसमें योर-अमरीका निवासियोंके ठहरानेका प्रवन्ध है। कहनेपर भी खाली न होनेके कारण जापानी स्थान नहीं मिल सका।

रास्तेमें संध्या समय एक स्टेशनपर यहाँके प्राचीन निवासी "आइनो" जातिके लोगोंको देखा। ये लोग अब केवल इसी द्वीपमें रह गये हैं। जिस प्रकार अमरीकामें कहीं कहीं रक्तवर्णके प्राचीन मनुष्य रक्खे गये हैं, वैसे ही यहाँ ये 'आइनो' रक्खे गये हैं। ये लोग दाढ़ी मूंछ व सिरके बाल बड़े बड़े रखते हैं। इनकी सूरत भी मंगोलोंकीसी नहीं है।

सपोरो पशुशाला।

आज प्रातःकाल सब कामोंसे निवृत्त हो कर मैं सरकारी पशुशाला देखनेके लिये गया, यह नगरसे कोई ६ मीलकी दूरीपर है। शालाके अध्यक्षने कृपा कर शालासे मेरे लिये गाड़ी भेज दी थी, उसीपर मैं वहाँ गया। वहाँपर एक कर्मचारीने बड़ी आवभगत कर मुझसे बातचीत करना आरम्भ किया।

इस शालामें गाय, भेड़ व सुअर आदि पशुओंपर परीक्षा होती है। इसके लिये सरकारको प्रति वर्ष ५० हज़ार येनका व्यय करना पड़ता है किन्तु आमदनी कुल २७ हज़ारकी ही है। यह शाला फायदेके लिये नहीं, किन्तु शिक्षाके लिये रक्खी गयी है। यहाँसे ग्रामीणोंको पशु उधार दिये जाते हैं।

यहाँ इंगलैंडके श्रॉपशायरसे भेड़ें व स्विटज़रलैंडके होलसटाईन प्रान्तसे गायें मँगायी गयी हैं। पहिले यहाँ ये पशु नहीं होते थे, अब इनके बढ़ानेका प्रवन्ध हो रहा है। इस समय यहाँ १३६ भेड़ें, २०७ गायें व १५ साँड़ हैं। भेड़ोंके पालनेका प्रयत्न इस देशमें ४० वर्षसे हो रहा है, किन्तु अभी इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

गो-पालनमें साँड़ोंका बड़ा भारी स्थान है। विना यथेष्ट साँड़ोंके गो-सन्तान नहीं बढ़ सकती, इसीसे योर-अमरीकामें साँड़ोंके लिये बड़ा यत्न किया जाता है। ४० गौओंके पीछे कमसे कम एक साँड़ होना आवश्यक है। ५ वर्षकी अवस्थाके उपरान्त साँड़ बढ़ानेके कामके योग्य होते हैं और १० वर्षकी अवस्थाके पीछे वे इसके पूर्ण उपयोगी नहीं रहते।

उसी प्रकार गायका पहिला बियान ३८ महीनोंपर होना चाहिये। १३ वर्षकी अवस्था तक गाय सन्तान पैदा कर दूध देती है, इसके बाद नहीं।

यहाँकी गौओंसे प्रति वर्ष प्रायः १२ हज़ार पाउण्ड या कोई १५० मन दूध होता है। यदि एक गाय बियानेके बाद आठ मास तक दूध दे तो यह पड़ता कोई १९ मन माहवारका होता है। दूधका यह परिमाण बहुत होता है, किन्तु गौओंके स्तन देख कर इतना दूध देनेमें कोई सन्देह नहीं जान पड़ता।

इनके दूधमें प्रायः सैकड़े पीछे ३.७ या १०० मनमें ३ मन २८ सेर घी निकलता है। यहाँ दूधको ५८ (फ) गर्मी पर महकर मरउत (क्रीम) निकलाते हैं। १० मन दूधमें १ मन

पृथिवी प्रदक्षिणा

सपोंगे पशुशाला — (पृष्ठ २६६)

पृथिवी प्रकम्पिता—

हाफ्लेडेटका दृश्य
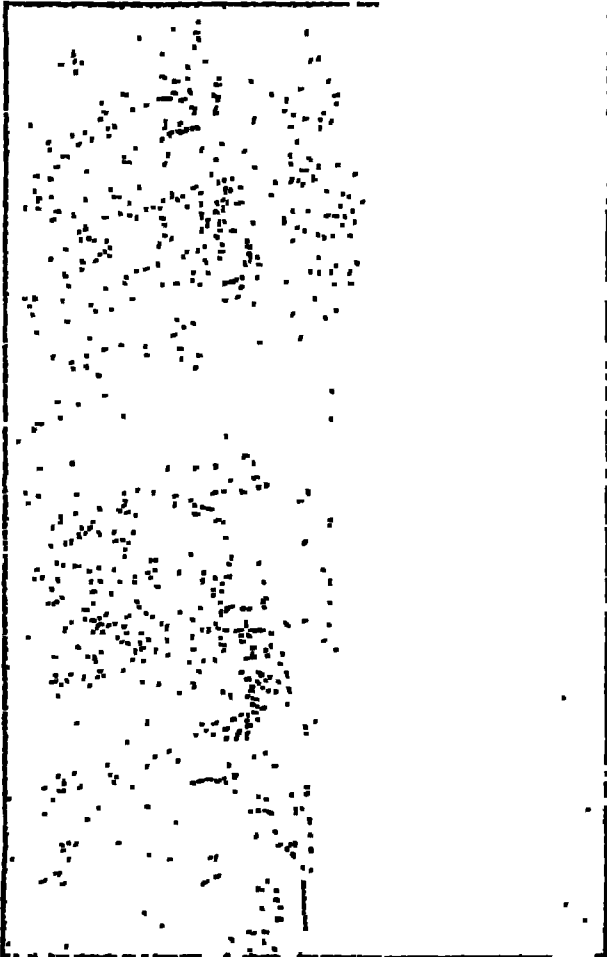
(पृष्ठ २६५)
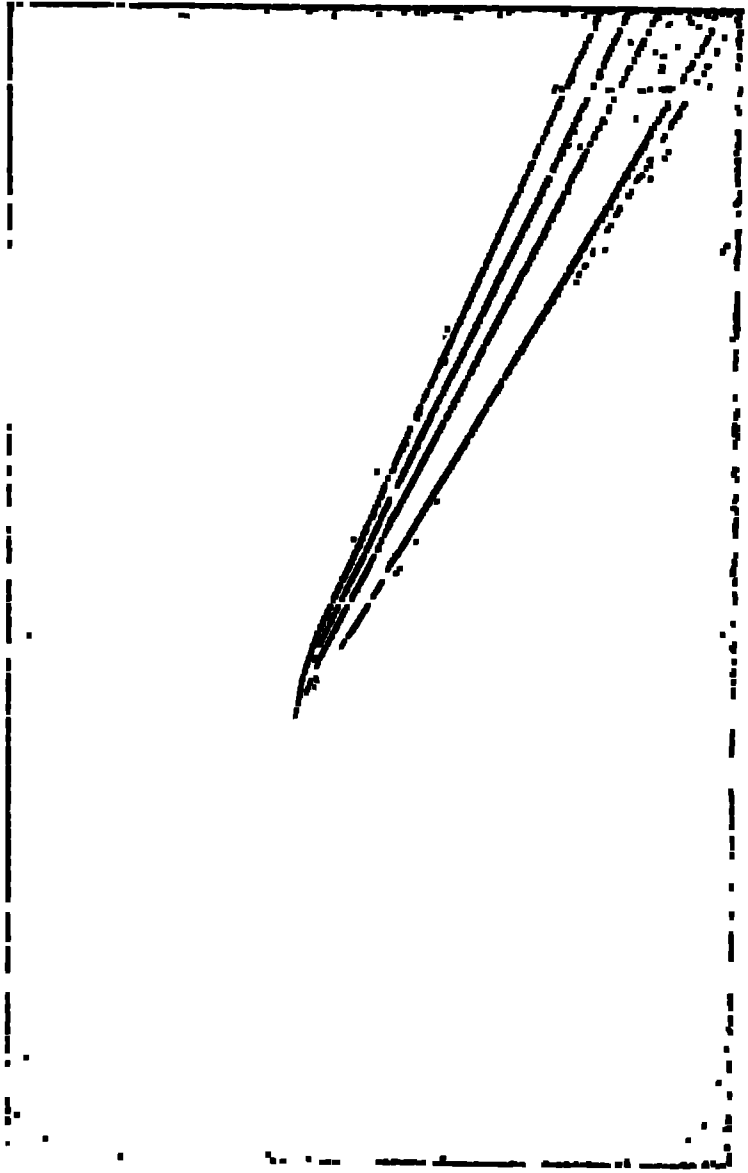
मक्खन व १०० मन मरउतसे २८ मन घी निकलता है। यहाँ मखनिया दूध अर्थात् लस्सी-का सूखा खोआ भी बनता है, पर यह अधिकतर बच्चोंके पिलानेके व्यवहारमें लाया जाता है। यहाँ भी पन्हानेके लिये बछड़े नहीं छाड़े जाते। दूधकी रवड़ी बनाकर टीनमेंकी हवा निकाल उसे रखनेसे वह बहुत दिनों तक रक्खी जा सकती है। वह भी यहाँ बनती है।

गौओंको कई प्रकारका अन्न काटकर यहाँ खिलाया जाता है। अन्न निकालकर केवल डण्ठेका भूसा खिलाना पशुओंके लिये पर्याप्त नहीं है। भारतवर्षमें भूसी व खली खिलायी जाती है, उससे भी काम चल सकता है। यहाँ पशुओंको भूसेके बदले घास खिलाते हैं, क्योंकि उसमें जीवनशक्ति अधिक रहती है। बरसातमें घास तथा अन्य प्रकारकी सब्जी काट कर गढेमें रख देते हैं और उसे बराबर पानीसे भर देते हैं। जब गड्ढा भर जाता है तो उसे मिट्टीसे पाट देते हैं। इस क्रियासे बिना खराबीके वर्ष भरके लिये हरी घास रक्खी जा सकती है। प्रयागमें यमुना मिशन कालेजके कृषिविभागमें भी चरी इसी प्रकार रक्खी जाती है।

भारतवर्षमें भी घी-दूध निरामिषभोजियोंका प्रधान खाद्य है परन्तु क्रमशः इसकी भयानक कमी होती जाती है। इस ओर राजा तथा प्रजा, दोनोंको ध्यान देना चाहिये। इसके लिये (१) अंगरेज़ी फौज़के लिये भारतमें गोहत्या बन्द-करनेका आन्दोलन होना चाहिये। यदि यह आन्दोलन यथेष्ट रीतिसे हो तो सर-कार अवश्य इस ओर ध्यान देगी। (२) साँड़ोंका यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिये। इसके लिये बाहरसे साँड़ मँगाकर गोवंशकी वृद्धिकी चेष्टा करना परमावश्यक है। (३) नगरोंके बाहर बड़ी बड़ी गोशालाएं बनानी चाहिये, जहाँ वैज्ञानिक रीतिसे गो-धन-प्राप्तिका प्रबन्ध किया जाय। (क) दूधसे मक्खन निकालनेके उपरान्त लस्सीका केवल दही न जमाकर उसकी (ख) रवड़ी बना टीनोंमें भरकर नगरों तथा विदेशोंमें चालान करना चाहिये। (ग) सूखा खोआ (मिल्क पाउडर) बनाकर टीनोंमें बन्द करके भी बाहर भेजा जा सकता है। इस प्रकार टीनोंमें बन्द होनेसे ये पदार्थ मही-नों तक नहीं बिगड़ सकते। यह रवड़ी तथा सूखा खोआ परिमित गर्म पानीके मिला-नेसे दूध व खोआ बनाकर फिर काममें लाया जा सकता है। (घ) गोबर व गोमूत्रको कंडे पाथ व फेंककर हानि न उठा उनको खादके काममें लाना चाहिये। उपर्युक्त रीतिपर गोशालाके चलानेसे बड़ा लाभ हो सकता है और जनताको अच्छा दूध-घी मिल सकता है। इससे व्यापारी भी अच्छा मुनाफा उठा सकते हैं। संसारमें जितने व्यापारी हैं, उन सबके नफेकी कुञ्जी यही है कि कच्चे मालका कोई भाग भी खराब न जाय। भारतवर्षमें घी निकालनेके बाद जो माठा बचता है, वह बेचा नहीं जाता, इसीसे घीमें लाभ नहीं होता और इससे लाचार हो व्यापारीको तेल व चर्बी नाना प्रकारकी वस्तुएं मिलाकर नफ़ा उठानेकी सूझती है।

कृषि-विद्यालय

यहाँसे लौटकर मैं अपने स्थानपर आया और सन्ध्याको कृषि-विद्यालयके प्रधान 'सातो' महाशयसे मिला। आपका जन्म संवत् १९१२ में हुआ था। आपने

१९३३ में विदेशी भाषाके स्नातक होकर सपोरो विद्यालयमें १९३७ तक विद्याभ्यास किया। फिर कृषि-सम्बन्धी नियमोंका (एग्रीकलचरल इकानॉमी) अध्ययन करनेके लिये आप अमरीका व जर्मनी गये। वहाँसे लौटनेपर आप 'सपोरो' में अध्यापक नियुक्त होकर संवत् १९५१ में प्रधानके पदपर विराजमान हुए। संवत् १९७१ में आप फिर अमरीका गये थे।

यहांसे मैं अध्यापक "यन्दो"से मिलनेके लिये गया। आप अभी नौजवान होने पर भी बड़े होनहार व्यक्ति हैं। आपने जो विषय लिया है, वह अनोखा है। उसका नाम 'सामुद्रिक वनस्पतिशास्त्र' है। आपने स्वीडेनमें रहकर इसका विशेष अनुभव किया है। यह एक नया शास्त्र है।

दूसरे दिन सवेरे मैं कृषि-विद्यालय देखने गया। इस विद्यालयमें ९३ अध्यापक और ८९३ छात्र हैं। २९ एकड़के विस्तारमें कालेजके भवन हैं, २५ एकड़में वनस्पति-उद्यान है, १५२९४ एकड़में ८ कृषि-शालाएं हैं व सरकारने इसके लिये २९७१६६ एकड़ जंगल दिया है। इसीकी आमदनीसे इसका काम चलता है।

विद्यालयकी प्रधान गद्दियोंके नाम ये हैं--

नाम विषय			गद्दियोंकी संख्या
कृषि	...	...	२
कृषि-सम्बन्धी रसायन	...	...	३
कृषि-सम्बन्धी पदार्थशास्त्र	...	...	१
वनस्पतिशास्त्र	...	...	२
जीव-शास्त्र	...	...	३
उद्यानशास्त्र (हार्टीकलचर)	...	...	१
जूटेकनी	...	...	२
कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्र तथा उपनिवेशन		...	१
वन्य-शास्त्र (फारेस्ट्री)	...	...	४
कृषि-सम्बन्धी टेकनालाजी	...	...	१
पशुचिकित्सा	...	...	२
फारेस्ट पॉलिटिक्स तथा फारेस्ट प्रबन्ध		...	१

मैंने यहांके पुस्तकालय और मत्स्य-संग्रहालयमें तथा इधर उधर भी घूमघाम-कर देखभाल की। यहां मिण्ट पुदीनेका नाम है। यह बिलकुल भारतवर्षके पुदीने-कासा ही होता है। गेहूंके डंठेसे छिलका उतारकर यहां एक प्रकारके रेशे बनाये जाते हैं।

मत्स्य-संग्रहालयमें नाना प्रकारके मत्स्य तथा सामुद्रिक वनस्पति व नाना प्रकारके अन्य सामुद्रिक पदार्थ रक्खे हैं। इसीमें मछली फँसानेके नाना प्रकारके जाल, अनेक प्रकारके यन्त्र, नावोंके नकशे व नमूने आदि रक्खे हुए हैं। सीप तथा ह्वेल मछलीकी हड्डियोंसे बनी हुई तरह तरहकी चीज़ें, मछलीका तेल, चर्बी तथा उसके चमड़ेके जूते व अनेक अन्य पदार्थ भी यहां हैं। सामुद्रिक वनस्पति यहां व चीनमें खायी जाती है। चीनमें इसकी रफ्तनी कर जापानको प्रतिवर्ष २५ लाख रुपयेका

पटुआके कामका दृश्य, होकायदो

(पृष्ठ २६९)

लाभ होता है। इस देशमें दूध तथा पानी जमानेके काममें आनेवाली घास, वस्तुतः घास नहीं, किन्तु सामुद्रिक वनस्पतिका लवाबमात्र है। इसीमें अनेक प्रकारकी लग्वी हुई मछलियाँ भी देखनेमें आयीं। ये सब यहां व चीनमें खायी जाती हैं।

इन्हें देखकर मैं घर लौटा व शामको वनस्पति-उद्यानमें संग्रहालय देखने गया। इसमें पुरानी आइनो जातिकी वस्तुएं रक्खी हैं। यहीं पुराने पत्थरकी तीरकी गांसी, छालके कपड़े, मिट्टीके बर्तन आदि भी दिखायी दिये। जान पड़ता है कि प्राचीन समयमें समस्त पृथ्वीपर एक ही प्रकारकी सभ्यता प्रचलित थी।

यहांसे रात्रिमें विदा होकर दो रात्रि तथा एक दिन लगातार सफ़र करनेके बाद मैं तीसरे दिन तोकियो वापस आया। सपोरो छोड़नेके पूर्व यहांका सबसे बड़ा लिननका कारखाना भी मैंने देखा। यहां लिननके धोये व कोरे सब प्रकारके वस्त्र देखनेमें आये।

पानीमें भिगोकर लिनन सुखा रहे हैं।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

—:०:—

कियोतोका वृत्तान्त।

दक्षिण जापान।

पिछले दो दिनोंमें कोई विशेष घटना नहीं हुई, केवल तोकियोमें बैठकर मैं श्रम मिटाता रहा। आज प्रातःकाल ही प्राचीन राजधानी 'कियोतो'के लिये प्रस्थान किया।

'कियोतो' जिसका जापानी नाम 'मियाको' है, आठवीं शताब्दीसे जापानकी राजधानी है। वैसे तो दिल्ली इससे बहुत पुरानी राजधानी है, किन्तु गत हज़ार वर्षों-के जल्द जल्द तथा अनेक उलट फेरोंके कारण व एकके बाद दूसरे हत्यारे व लुटेरोंके आक्रमणसे आज वह नगर पुरातन गौरवकी केवल श्मशान-भूमि-मात्र रह गया है। इधर उधर १६ वीं शताब्दीके बादके कुछ बचेखुचे राजप्रासाद भी दिखायी देते हैं। कौर-वोंके समयके इन्द्रप्रस्थका तो अब नामोनिशान बाकी नहीं है, हाँ दिल्लीसे १५ मीलपर मिट्टीकी एक दीवाल बाकी है, जिसको लोग कौरवोंका गढ़ बतलाते हैं। पृथ्वीराजके समयका भी केवल चिह्नमात्र ही लाटपर मिलता है, किन्तु यहां कियोतोमें प्रारम्भसे आजतक किसी हत्यारे आक्रमणकारीको पैशाचिक नृत्य करनेका अवसर नहीं मिला है। इससे सब कुछ ज्योंका त्यों है। सिर्फ गोल कड़ीकी इमारतें दो बार दावानलसे भस्म हो गयी थीं, किन्तु वे फिर वैसी ही बना दी गयी हैं। इससे यहां जानेपर आपको ऐसा नहीं ज्ञात होगा कि हम प्राचीन सभ्यताकी श्मशान-भूमिमें आये हैं। यहां हरे भरे जीवित स्थान जैसा ही अनुभव होता है। आज दिन भी यह स्थान बड़ी बड़ी कारीगरियोंका केन्द्र है। चीनीके बर्तन, रेशमकी कार्चोबीके काम, मखमली काम, रेशमकी रंगाई व छपाई आदि सबका घर यही है। जहां तोकियोमें आधुनिक जापान देख पड़ता है, वहाँ कियोतो प्राचीन, किन्तु जीवित जापानकी झलक दिखाता है। तीन दिन भी यहां ठहरना मनुष्यको जापानके पुराने गौरवका पता बतला देता है।

तोकियोसे हमारी रेल चली। दोनों ओर फिर धानके लहलहाते खेत दिखायी देने लगे। मनुष्य ताड़ व बांसकी बड़ी बड़ी टोपियां पहनकर खेतोंमें काम कर रहे थे। कहीं कहीं दूरतक रेलके दोनों ओर कमलोंसे भरी तलैयाँ दिखायी दे रही थीं। यह दृश्य भारतवर्षमें भी अब दुर्लभ हो गया है।

हमारी गाड़ी इस समय समुद्रतटके निकटसे ही जा रही थी। कभी कभी बाईं ओर समुद्र लहराता देख पड़ता था। समुद्र तटपर बालक-बालिकाएं कल्लोल करती, खेलती, कूदती, नहाती देख पड़ती थीं। सारा समा अत्यन्त मनोहर था।

दो घंटे चलनेके उपरान्त विख्यात पर्वत 'फूजी' दिखायी देने लगा। दुर्भाग्यवश इस पर्वतके शिखर उस समय मेघोंके मुकुटसे घिरे थे। इससे इसका सुन्दर मस्तक

सानजू सनगेनदोका मंदिर (पृष्ठ २७२)
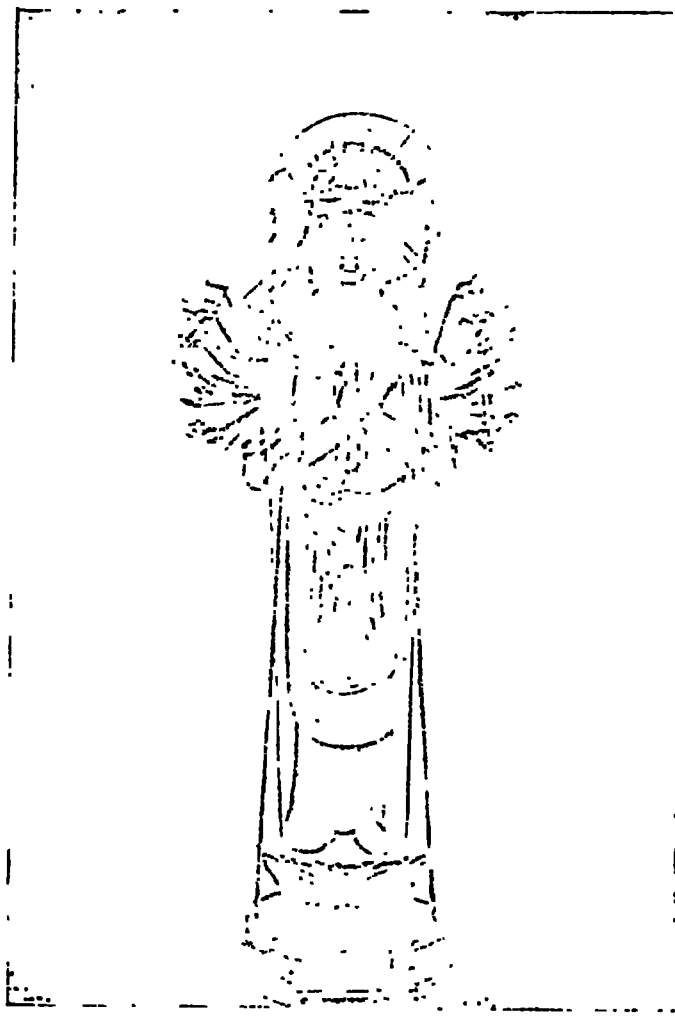
सहस्रबाहु क्वाननकी मूर्ति (पृष्ठ २७२)

नहीं देख पड़ा। यह पर्वत-शिखा चारों ओरसे गोल पिरामिडकी भांति आकाशमें डटी हुई है। इसकी ऊंचाई १२३९० फुट है। जापानमें इसका बड़ा नाम है। यहांके विख्यात कवियों व चितेरोंने अपनी अपनी कलामें इसका गुण-गान किया है। अब भी इसके बड़े बड़े सुन्दर चित्र तथा कार्चोबीके पर्दे बनते हैं।

जिस प्रकार बदरिकाश्रमके पर्वतोंपर वर्षमें हज़ारों आदमी नर-नारायणकी मूर्तियोंके दर्शन करनेके लिये नाना प्रकारके परिश्रम व कष्ट उठाकर जाते हैं, उसी प्रकार यहां भी फूजीकी चोटीपर "कोनोहाना साकुयाहीये" देवीके दर्शनार्थ हज़ारों आदमी आते हैं। यह मन्दिर शिन्तो पन्थका है। इसमें कोई प्रतिमा नहीं है, केवल दर्पण व एक प्रकारका विचित्र ढंगसे कटा हुआ कागज़, जिसको "गोहेइ" कहते हैं, रक्खा है। पूर्वमें इस पर्वतपर स्त्रियोंको जानेकी आज्ञा न थी, क्योंकि स्त्रियां अपवित्र समझी जाती थीं, किन्तु अब स्त्रियां भी जा सकती हैं।

घण्टे भरतक रेलपरसे इस पर्वतके दर्शन होते रहे, बादमें गाड़ीके आगे बढ़ जानेसे यह छिप गया। आज भी बड़ी सख्त गर्मी थी, किन्तु कोई चारा नहीं था। दिन भर चलनेके उपरान्त सन्ध्याको हमारी गाड़ी कियोतो पहुंची। मैं रेलसे उतरकर मियाको होटलमें आया और स्नान कर भोजन करनेके बाद फिर बाहर जानेके लिये तैयार हुआ।

मियाको होटल।

आज "गियोन" मन्दिरकी रथयात्राका अन्तिम दिन था। जब मैं रेलसे होटल जा रहा था, तभी मैंने खूब सजी हुई एक ट्रामगाड़ी देखी थी। दीपमालासे वह खूब सुशोभित थी। बाज़ारमें भी अधिक सजधज व रोशनी थी।

बाहर निकलनेपर सारा बाज़ार नरनारियोंसे ठसाठस भरा दिखायी दिया। रथ आनेका समय हो गया था। यह रथ मन्दिरसे आठ दिनोंतक बाहर था, आज

इसके लौटनेका दिन था। थोड़ी देरमें रथ आगया, सामने बहुतसे लोग लम्बे लम्बे बांसोंमें लालटेनें लटकाये हुए और फिर पीछे सैकड़ों मनुष्य रथको कन्धेपर उठाये हुए थे। ये विमानवाहक मज़दूर नहीं, किन्तु भले घरके नागरिक भक्तिसे ऐसा करने यहां आये थे। यहाँका समा बिलकुल वैसा ही था जैसा विजयादशमीकी रात्रिको काशीमें चित्रकूटकी रामलीलाका विमान उठनेके समय होता है, किन्तु यहां इसको रथयात्रा ही कहना उचित है; और है भी यह रथयात्रा ही।

× × × ×

आज प्रातःकालको कियोतो देखनेके लिये निकला तो पहिले राजकीय संग्रहालयमें गया। यहां नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र देखनेमें आये। बहुत सी भीमकाय पुरानी सूरतें भी यहां रक्खी हैं। तोकियोके संग्रहालयमें भी पुरानी जापानी तसवीरें दीख पड़ी थीं, किन्तु यहां इनका बहुत बड़ा संग्रह है।

काउण्ट मोतानीने तुर्किस्तानकी यात्रा कर जिन बहुतसी वस्तुओंका संग्रह किया है, वे सभी यहां देखनेमें आयीं। इनमें छोटी बड़ी बहुतसी भग्न मूर्तियां, दीवालोंपर लिखे हुए कितने ही चित्रोंके टुकड़े व नाना प्रकारकी अन्य वस्तुएं भी हैं।

इस संग्रहालयको देखनेसे बृहत्तर-भारतीय-मण्डलका ज्ञान होता है। जिस प्रकार आज सारे संसारमें योर-अमरीकाकी सभ्यताकी तूती बोल रही है, जहाँ सुनो वहां ही जर्मन 'कल्चर' शब्द कर्णगोचर होता है, उसी तरह एक समय ऐसा भी था, जब संसारमें भारतकी ही तूती बोलती थी। जिस समय भारतका ज्ञान, कला, शिल्प, दर्शन, विज्ञान, सूक्ष्मशिल्प, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी चर्चा संसारमें थी, उस समय अबके उन्नत यूरोपवाले जङ्गलों और कन्दराओंमें पशुओंकी भांति पत्तोंसे बदन ढाँक कर रहते थे। किन्तु अब वह दिन नहीं है, और समयके पलटनेसे संसारका पुराना गुरु भारत असभ्यता व अविद्याके अन्धकारमें पड़ा है।

भारत क्या था, भारतकी सभ्यता क्या थी, उसका प्रभाव कहाँ तक पड़ा था, बृहत्तर-भारतमंडलका क्या अर्थ है, इसके जाननेके लिये एशियायी देशोंमें चक्कर लगाना चाहिये; अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान, चीन, तिब्बत व जापानके जंगलोंकी खाक छाननी चाहिये। इन देशोंमें पद पदपर भारतके अच्छे दिनोंके चिह्न मिलते हैं। तुर्किस्तान इन चिह्नोंसे भरा पड़ा है, किन्तु हम अविद्याके ऐसे गड्ढेमें पड़े हैं कि हमें उनकी खोज करनेकी सुध तक नहीं है। हम चाहते हैं कि यह काम भी हमारे लिये कोई दूसरा ही करे। यह अकर्मण्यताकी चरम सीमा है।

यहांसे मैं "सानजू सनगेनदो" में गया। यह मन्दिर ३३३३३ देवताओंके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है (यह संख्या हिन्दुओंके तेंतीस कोटि देवताओंसे मिलती जुलती है)। किसी कालमें यहाँ "क्वानन" देवकी ३३३३३ मूर्तियां थीं। यह देवता क्षमाके अधिष्ठाता कहे जाते हैं।

यह मन्दिर संवत् ११८९ में 'टोवा' नामक राजाने बनवाया था। इसमें क्काननकी १००१ मूर्तियां रक्खी थीं; संवत् १२२२ में 'गोशिराकावा' महाराजने उतनी ही मूर्तियां इसमें और रखवायीं। १३०६ में यह मन्दिर सब मूर्तियोंके सहित भस्म हो गया; १३२३ में कमियामा राजाने इसको पुनः बनवाया व सहस्रबाहु "क्वानन" देवकी

हिगाशी होंगवांजाका मन्दिर (कियोतो)

[पृ० २७३]

१००० मूर्तियां इसमें स्थापित करायीं। यह मन्दिर ३८९ फुट लम्बा व ५७ फुट चौड़ा है। १७१९ में शोगून "इतसुना" ने फिरसे इसकी मरम्मत करायी।

इस समय पांच फुट ऊंची १००० मूर्तियां इसमें हैं। इन मूर्तियोंके प्रभा-मंडल-पर और छोटी छोटी मूर्तियां भी हैं। इन सबको मिलाकर गणना करनेसे ३३३३३ संख्याकी पूर्ति होती है। मन्दिरके बीचमें इसी देवताकी एक विशाल मूर्ति है। मन्दिरकी परिक्रमामें उत्तम उत्तम अनेक मूर्तियां धरी हैं। ये मूर्तियां, मूर्ति-निर्माण-कलाकी उत्तम आदर्श हैं।

इस मन्दिरके बाहर बहुत सी अन्य वस्तुएं भी बिकती हैं। काठके छोटे छोटे यन्त्र तथा बच्चोंके गलेमें व गृहोंमें लटकानेके लिए जगन्नाथजीके पट जैसे अनेक पट व अन्य नाना प्रकारके पूजाके चित्र भी बिकते हैं।

मन्दिरसे निकलकर बाहर एक विश्रामगृहमें जरा बैठकर विश्राम करनेके बाद जलपान किया। बगलमें एक तलैया थी, इसमें पुरइन व फूले हुए कमल खूब थे। कमलोंकी शोभा देखकर मन मुग्ध हो गया और मैंने दो तीन फूल तोड़वा लिये। कमलका नाम यहां "हसनो हेना" है। यह बुद्ध भगवान्‌का पवित्र फूल समझा जाता है।

यहांसे मैं "निशी होंगवांजी" मन्दिरमें गया। संवत् १६४८ में हियोशी शोगूनकी आज्ञासे "होंगवांजी" सम्प्रदायके बौद्ध अपना प्रधान स्थान कियोतोमें लाये, उसी समय यह विशाल मन्दिर बना। प्रधान फाटक अति विचित्र कारीगरीका जीवित उदाहरण है। इसपर गुलदाउदीके फूल व पत्ते इस खूबीसे काटकर बनाये गये हैं कि देखते ही बनता है। इसपरकी नक्काशी लोहेकी जालीसे घिरो हुई है, जिसमें पक्षी अपने घोंसले बनाकर इसे नष्ट न करें।

इस घेरेमें दो मन्दिर हैं, एक "होनदो" व दूसरा "कोदो या अभिदादो"। प्रधान मन्दिरका प्रधान सभामण्डप १३८ फुट लम्बा व ९३ फुट चौड़ा है। ज़मीन-पर ४७७ चटाइयां बिछी हैं। जापानमें सब घरोंका नाप चटाइयोंकी संख्यासे ही होता है। ये परिमित नापकी होती हैं। प्रायः इनका नाप ६ × ३ फुट होता है। कमरेमें कितनी चटाइयां हैं, यह बतला देनेसे कमरेके नापका पता चल जाता है। पुरा-तन रीतिके अनुसार प्रधान मण्डप "कियाकी" लकड़ीका सादा ही बना है, उसमें रंग नहीं लगाया गया है। प्रधान मण्डपके दोनों ओर २४ × ३६ फुटके दो दालान हैं। इस मन्दिरमें बुद्धदेवकी ध्यानावस्थित प्रतिमा है। इसे देखते ही जापानके वैभवकी मूर्ति सामने आ जाती है। इसके बगलका छोटा मन्दिर भी बड़ा और विशाल है। इन मन्दिरोंमें काठकी नक्काशीका काम बड़ा अपूर्व है। काठके मोटे मोटे खम्भोंको देखकर मनुष्यको चकित रह जाना पड़ता है।

यहांसे मैं निकटवर्त्ती 'हिगाशी होंगवाञ्जी' मन्दिरमें गया। यह मन्दिर निशा होंगवाञ्जीका एक पुछल्ला है। उसकी स्थापना १७४९ में हुई थी, किन्तु वर्तमान मन्दिर १९५२ में ही बना है। यद्यपि यहाँ यह कहावत प्रचलित है कि जापानमें बौद्धधर्मका ह्रास हो रहा है, किन्तु इस मन्दिरके निर्माणमें जो उत्साह व भक्ति यहाँकी जनताने दिखायी थी, उसका कुछ दूसरा ही अर्थ निकलता है। जनताके चन्देसे इसके निर्माणार्थ १५ लाखसे अधिक धन एकत्र हुआ था व लाखों मनुष्योंने

हिगाशी होंगवांजाका मन्दिर (कियोतो)

[पृ० २७३]

१००० मूर्तियां इसमें स्थापित करायीं। यह मन्दिर ३८९ फुट लम्बा व ५७ फुट चौड़ा है। १६१९ में शोगून "इतसुना" ने फिरसे इसकी मरम्मत करायी।

इस समय पांच फुट ऊंची १००० मूर्तियां इसमें हैं। इन मूर्तियोंके प्रभा-मंडल-पर और छोटी छोटी मूर्तियां भी हैं। इन सबको मिलाकर गणना करनेसे ३३३३३ संख्याकी पूर्ति होती है। मन्दिरके बीचमें इसी देवताकी एक विशाल मूर्ति है। मन्दिरकी परिक्रमामें उत्तम उत्तम अनेक मूर्तियां धरी हैं। ये मूर्तियां, मूर्ति-निर्माण-कलाकी उत्तम आदर्श हैं।

इस मन्दिरके बाहर बहुत सी अन्य वस्तुएं भी बिकती हैं। काठके छोटे छोटे यन्त्र तथा बच्चोंके गलेमें व गृहोंमें लटकानेके लिए जगन्नाथजीके पट जैसे अनेक पट व अन्य नाना प्रकारके पूजाके चित्र भी बिकते हैं।

मन्दिरसे निकलकर बाहर एक विश्रामगृहमें जरा बैठकर विश्राम करनेके बाद जलपान किया। बगलमें एक तलैया थी, इसमें पुरइन व फूले हुए कमल खूब थे। कमलोंकी शोभा देखकर मन मुग्ध हो गया और मैंने दो तीन फूल तोड़वा लिये। कमलका नाम यहाँ "हसनो हेना" है। यह बुद्ध भगवान्‌का पवित्र फूल समझा जाता है।

यहांसे मैं "निशी होंगवांजी" मन्दिरमें गया। संवत् १६४८ में हियोशी शोगूनकी आज्ञासे "होंगवांजी" सम्प्रदायके बौद्ध अपना प्रधान स्थान कियोतोमें लाये, उसी समय यह विशाल मन्दिर बना। प्रधान फाटक अति विचित्र कारीगरीका जीवित उदाहरण है। इसपर गुलदाउदीके फूल व पत्ते इस खूबीसे काटकर बनाये गये हैं कि देखते ही बनता है। इसपरकी नक्काशी लोहेकी जालीसे घिरी हुई है, जिसमें पक्षी अपने घोंसले बनाकर इसे नष्ट न करें।

इस घेरेमें दो मन्दिर हैं, एक "होनदो" व दूसरा "कोदो या अभिदादो"। प्रधान मन्दिरका प्रधान सभामण्डप १३८ फुट लम्बा व ९३ फुट चौड़ा है। ज़मीन-पर ४७७ चटाइयाँ बिछी हैं। जापानमें सब घरोंका नाप चटाइयोंकी संख्यासे ही होता है। ये परिमित नापकी होती हैं। प्रायः इनका नाप ६ × ३ फुट होता है। कमरेमें कितनी चटाइयाँ हैं, यह बतला देनेसे कमरेके नापका पता चल जाता है। पुरातन रीतिके अनुसार प्रधान मण्डप "कियाकी" लकड़ीका सादा ही बना है, उसमें रंग नहीं लगाया गया है। प्रधान मण्डपके दोनों ओर २४ × ३६ फुटके दो दालान हैं। इस मन्दिरमें बुद्धदेवकी ध्यानावस्थित प्रतिमा है। इसे देखते ही जापानके वैभवकी मूर्ति सामने आ जाती है। इसके बगलका छोटा मन्दिर भी बड़ा और विशाल है। इन मन्दिरोंमें काठकी नक्काशीका काम बड़ा अपूर्व है। काठके मोटे मोटे खम्भोंको देखकर मनुष्यको चकित रह जाना पड़ता है।

यहाँसे मैं निकटवर्त्ती 'हिगाशी होंगवाञ्जी' मन्दिरमें गया। यह मन्दिर निशी होंगवाञ्जीका एक पुछल्ला है। उसकी स्थापना १७४९ में हुई थी, किन्तु वर्तमान मन्दिर १९५२ में ही बना है। यद्यपि यहाँ यह कहावत प्रचलित है कि जापानमें बौद्धधर्मका ह्रास हो रहा है, किन्तु इस मन्दिरके निर्माणमें जो उत्साह व भक्ति यहाँकी जनताने दिखायी थी, उसका कुछ दूसरा ही अर्थ निकलता है। जनताके चन्देसे इसके निर्माणार्थ १५ लाखसे अधिक धन एकत्र हुआ था व लाखों मनुष्योंने

लकड़ी व मजदूरीसे इसकी सहायता की थी । विशाल शहतीरें मनुष्योंके बालोंके रस्सोंसे खींचकर चढ़ायी गयी थीं । ३ इञ्च मोटे व १५२ हाथ लम्बे २९ विशाल बरहे अभी तक यहाँ धरे हैं, जो भक्तिमती स्त्रियोंके माथेके केशोंसे बनाये गये थे। यह उन निर्धन स्त्रियोंको भेंट थी जो द्रव्यसे सहायता करनेमें असमर्थ थीं ।

यह मन्दिर शायद जापानमें सबसे बड़ा है । यह २३० फुट लम्बा, १९५ फुट चौड़ा व १२६ फुट ऊँचा है । इसमें ९६ विशाल स्तम्भ व छतपर १७५९६७ खपड़े लगे हैं । सहनमें आग बुझानेके लिये भीमकाय काँसेके फूलदानका सा एक पात्र है, जिसमेंसे हर घड़ी पानी बहा करता है । यह मन्दिर भी दर्शनीय है और इसकी शोभा वर्णनातीत है ।

रेशमका कारखाना ।

आज मैं यहाँके विख्यात रेशमके व्यापारीके साथ, जिनकी दूकानकी शाखा तोकियोमें देखी थी, रेशमका कारखाना देखने चला । आप पहिले मुझे जहाँ रेशमपर छपाई होती है, वहाँ ले गये ।

यहाँकी स्त्रियाँ नाना रंगकी चित्रकारी किये हुए रेशमके उत्तम किमोनो पहनती हैं । यह रेशम हाथसे धोया जाता है । भारतवर्ष, जयपुर, मथुरा तथा लखनऊके छीपीकार काठके ठप्पोंसे वस्त्र छापते हैं, पर यहाँ ऐसा नहीं है । यहाँ जिस प्रकार साँझीके कागज़ काटे जाते हैं, उसी प्रकार पानीसे न गलनेवाले मोटे कागज़के नकशों-को वस्त्रपर रख, रंग लगाकर कपड़ा रँगनेका काम होता है । उत्तम प्रकारके वस्त्रोंपर सब साँचे एकके ऊपर दूसरे रखकर रंग लगाया जाता है, इससे रंगाई उत्तम व बारीक होती है । यहाँ रंगमें भातकी माड़ी मिलाकर कपड़े रँगे जाते हैं । पहिले यहाँ वनस्पतियोंसे रंग निकाला जाता था, पर अब प्रायः जर्मनीका कृत्रिम रंग ही काममें लाया जाता है ।

मैं यहाँसे कार्चोबीका काम देखने गया । उस समय यहाँ ५, ६ मनुष्य काम कर रहे थे । जिस प्रकार भारतवर्षमें कपड़ेको लकड़ीकी चौखटमें कसकर कार्चोबी बनती है, उसी प्रकार यहाँ भी काम होता है, किन्तु यहाँका काम बड़ा महीन व अत्यन्त उत्तम होता है । इस समय एक मनुष्य एक शेर बना रहा था । यह प्रायः तीन माससे उसे बना रहा था । ऐसा नियम है कि महीन काम करनेवाले एकही टुकड़ेपर दिनभर काम नहीं करते, इसलिये वे एक साथ ३, ४ कामोंमें हाथ लगाते हैं । घंटे दो घंटेतक महीन काम करनेके बाद फिर मोटा काम करने लगते हैं, क्योंकि महीन काम देर तक नहीं किया जा सकता । यही अवस्था चित्रकारोंकी भी है । चित्रकार भी एक साथ ही कई चित्रोंको बनाना प्रारम्भ करता है । जब उसकी तबीयत होती है तभी वह कूची उठाकर एक चित्रपर दो एक हाथ फेर देता व फिर मोटा काम करने लगता है । जिस प्रकार उत्तम काव्य हर घड़ी नहीं बन सकता, उसी प्रकार चितेरों व कारीगरोंकी अवस्था है । रेशमके चित्र बनानेवाले, चितेरोंका काम भी भलीभाँति जानते व रंगसे भी चित्र बना सकते हैं । शेर बनानेवाले कारीगरने कहा कि मैं इस समय कूचीसे चित्र न बनाकर सूईसे चित्र बना रहा हूं । अबतक

निशी होंगवांजीका मन्दिर

(पृष्ठ २७३)

किकाकुजी स्वर्गमंडप
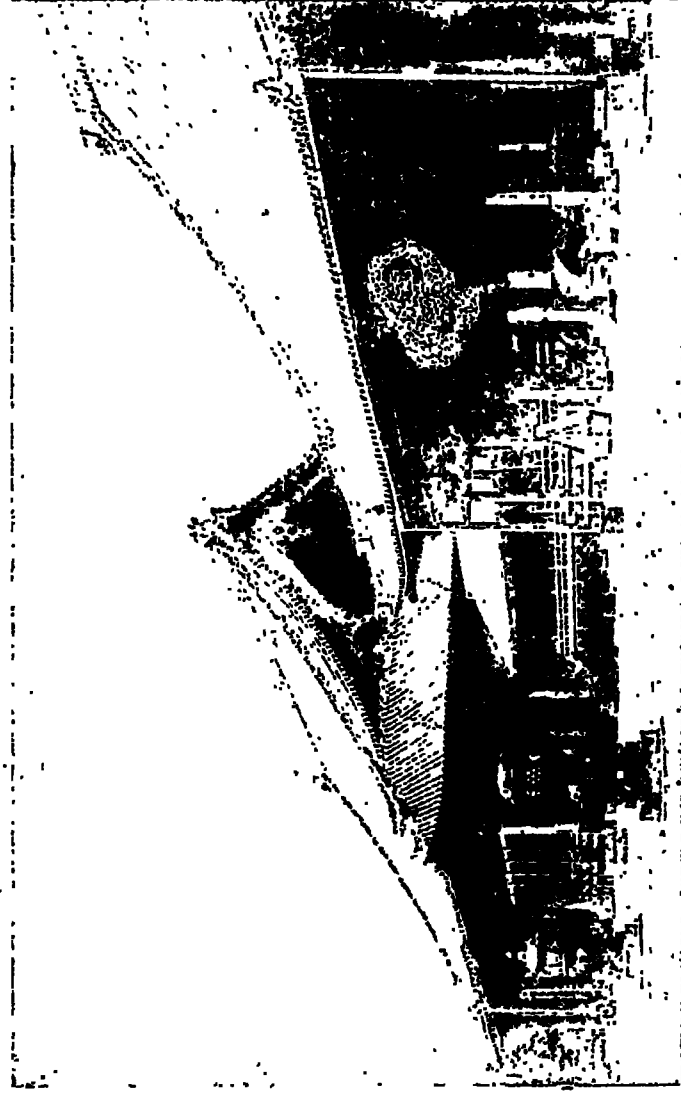
(पृ २७५)

चित्रका जितना अंश बन चुका था, वह बड़ा ही उत्तम था। जान पड़ता था कि मानो शेरकी खाल काटकर रख दी गयी है ।

रेशमकी खेती ।

यहाँसे मैं रेशमकी राजकीय पाठशाला देखने गया। वहाँ रेशमके कीड़ोंकी उत्पत्ति, पालन-पोषण और उनके तैयार होनेपर रेशम निकालनेके सम्बन्धकी सब बातें देखनेमें आयीं।

(१) आरम्भमें रेशमकी तितलियाँ एक सफेद कागज़पर काठके गोले और छोटे घरोंमें रक्खी जाती हैं। यहाँ ये हज़ारों अंडे देती हैं। ये अंडे पोस्तेके दानेके बराबर होते हैं। बहुतोंके भीतर लाल और बहुतोंके भीतर काला काला कुछ देख पड़ता है। तीन दिनोंमें ये अंडे फूट जाते हैं और इनमेंसे धीरे धीरे सूईकी आँखके सदृश कीड़े बाहर निकल आते हैं।

(२) इसके बाद इन कीड़ोंको धीरे धीरे दूसरे साफ कागज़पर झाड़ लेते और इन्हें बहुत बारीक कटी हुई शहतूतकी नर्म पत्तियोंसे ढाँक देते हैं। इन पत्तियोंको खाकर ये एक सप्ताहमें दो जौके बराबर और एक मासमें दो इञ्च लम्बे और चौथाई इञ्च मोटे हो जाते हैं।

(३) इसके बाद इनका भोजन बन्द कर दिया जाता है और ये कागज़के तख्तोंपर बने एक प्रकारके रबरके जंगलमें रख दिये जाते हैं। यहाँ ये अपने शरीरके अंशसे अपने इर्द-गिर्द रेशमका घर बना लेते हैं। इन्हींको "ककून" या रेशमके "कोए" कहते हैं। यह कार्य तीन दिनोंमें समाप्त हो जाता है।

(४) चौथे दिन वहाँसे उठाकर ये गर्म जगहमें रक्खे जाते हैं। गर्मीकी अधिकतासे यहाँ ये मर जाते हैं। यदि इस प्रकार मारे न जायँ तो ककून काटकर बाहर निकल आयेंगे और ककून खराब हो जायगा। ककून बन जानेके उपरान्त इनका शरीर आध इञ्च लम्बा व पहिलेसे मोटाईमें आधा रह जाता है। ककूनका रंग इन कीड़ोंके शरीरके रंग जैसा होता है। इनमें सफेद ककून सबसे उत्तम समझा जाता है।

(५) इन ककूनोंसे तार कातनेके पहिले इनको उबाल लेना पड़ता है। ऐसा कर लेनेसे तारोंके टूटनेका डर नहीं रहता।

स्वर्ण-मंडप ।

यहांसे मैं स्वर्ण-मंडप नामक उद्यान देखने गया। इसका वास्तविक नाम "किंकाकूजी" या "रोकुञ्जी" है। यह बुद्ध धर्मके "जैन" सम्प्रदायका मन्दिर है। संवत् १४५४ में "अशीकागावा योशीमित्सू" नामक शोगूनने इस स्थानको पहिलेके मालिकोंसे लेकर बनवाया था। उक्त शोगूनने अपने पुत्रको राज्य देकर संन्यास लिया और यहाँ एक उत्तम महल बनवाया था। यद्यपि उक्त शोगून नाममात्रके लिये माथा मुड़ा, भगवा वस्त्र पहिनकर साधुके वेशमें यहाँ रहते थे, तथापि यहाँ पूरे ऐशोआरामका सामान रहता था। इसके सिवा वे राजकाज भी यहीं बैठे बैठे किया करते थे।

यहाँके प्रधान मन्दिरमें पुराने चित्रोंका बहुत बड़ा संग्रह है व मन्दिर बड़ा ही उत्तम बना है। मन्दिरका उद्यान भी अत्यन्त मनोहर है। इसमें चीड़के ऊंचे ऊंचे

वृक्षोंने इसकी शोभाको वन्यशोभाका रूप दे दिया है। इसके बीचमें एक कृत्रिम सरोवर बना है। इसमें छोटे छोटे कई टापू हैं, जिनपर चीड़के छोटे बड़े कितने ही वृक्ष

स्वर्णमण्डप उद्यानमें प्राचीन चीड़का वृक्ष।

लगे हैं। तालाब लाल मछलियों तथा एक प्रकारकी जलकुम्भीसे भरा है। यहींपर एक तिमहला प्रासाद भी है। इसकी छतोंपर सुनहला काम बना है, इसीसे इसका नाम सुनहला-मंडप पड़ा है।

इसके सामने एक ऊंचा और नीचेसे ऊपर तक हरे हरे वृक्षोंसे भरा हुआ पहाड़ है। इसका नाम "किनुकासायामा" या "रेशमके टोपका पर्वत" है। इसके विषयमें एक कहावत प्रचलित है कि एक दिन ग्रीष्मके तापमें "उघा" नामक मिकादो-ने आज्ञा दी कि सामनेका यह पर्वत श्वेत रेशमसे ढाँक दिया जाय, जिसमें यह हिमसे

पृथ्वी प्रदक्षिणा

राक फेलर हाल (पृष्ठ १०६)

इन्होंने इसकी शोभाको वन्यशोभाका [illegible] दिया है। इसके बीचमें एक [illegible]
सरोवर बना है। इसमें छोटे छोटे कई टापू [illegible] उनपर चीड़के छोटे बड़े कितने ही

सुनहला-मंडप उद्यानमें प्राचीन चीड़का वृक्ष।

लगे हैं। तालाब लाल मछलियों तथा एक प्रकारकी जलकुम्भीसे भरा है। यहीं
एक तिमहला प्रासाद भी है। इसकी छतोंपर सुनहला काम बना है, इसीसे इसका
नाम सुनहला-मंडप पड़ा है।

इसके सामने एक ऊंचा और नीचेसे ऊपर तक हरे हरे वृक्षोंसे भरा हुआ
पहाड़ है। इसका नाम "किनुकासायामा" या "रेशमके टोपका पर्वत" है। इसके
विषयमें एक कहावत प्रचलित है कि एक दिन ग्रीष्मके तापमें "उदा" नामक मिकादो
ने आज्ञा दी कि सामनेका यह पर्वत श्वेत रेशमसे ढाँक दिया जाय, जिसमें यह हिम-

फूजी पर्वतका दृश्य (पृष्ठ २७०)

हुए पर्वतकासा नज़र पड़े। ऐसा ही किया गया और तभीसे यह नाम पड़ा है। जान पड़ता है कि यहाँ के मिकादो लोग भी वाज़िदअली शाहसे कम शौक़ीन न थे।

आज सन्ध्या समय मैं 'बिवा' तालमें जलयात्रा करनेके लिये गया। यह कियोतोसे कोई १५ मील दूर है। इसका नाम "ओमी" ताल है, पर इसका आकार जापानी वीणा "बिवा" कासा है, इसीने इसका नाम भी बिवा प्रचलित हो गया है। यह ताल ३६ मील लम्बा व १२ मील चौड़ा है। समुद्रतटसे इसकी ऊंचाई ३२८ फुट है। कहा जाता है कि इसकी गहराई भी इतनी ही है, किन्तु जगह जगह यह बहुत छिछला है।

इस तालसे बिवा नाम्नी एक नहर निकाली गयी है। इसके द्वारा मालसे भरे छोटे छोटे स्टीमर ओसाका समुद्रसे बिवा तालमें आ जा सकते हैं। यह नहर कई जगह पहाड़के भीतरसे सुरंगोंमें होकर गुजरी है। कियोतो पहुंचने तक यह १४३ फुट नीचे गिरती है, इससे इसमें वेग अधिक है। यह वेग बिजली उत्पन्न करनेके काममें लाया गया है। इससे कियोतोको बड़ी भारी विद्युतशक्ति प्राप्त होती है।

तोकियो विश्वविद्यालयके शिल्प-विद्यालयमें "टनावासकूरो" नामक एक छात्रने अपने उपाधि-निबन्धके लिये यह विषय चुना था कि जल मार्गद्वारा मनुष्य तथा मालकी आमदरफ्त 'बिवा'सेसे किस भाँति हो सकती है। वह निबन्ध विद्वत्ता-पूर्ण था, इसलिये उसी नवशिल्पीको इस नहरका भार सौंपा गया। इस कामको उसने बड़ी योग्यतासे सम्पादित किया। आजकल प्रायः सब लोग ही बिवासे इसी नहर द्वारा कियोतो लौटते हैं, पर रात्रि हो जानेके कारण मैं ऐसा नहीं कर सका।

× × × ×

आज प्रातःकालमें मैं महाशय "हरादायसूकू" से मिलने गया। आप कियोतोमें "दोशीशा" विद्यालयके प्रधान हैं। यह ईसाइयोंकी संस्था है और आप भी ईसाई धर्मावलम्बी हैं। आपका जन्म संवत् १९२० में हुआ था। आपने विदेशी भाषाकी पाठशाला 'कुमामोतो'में शिक्षा लाभ कर 'दोशीशा'में भी शिक्षा प्राप्त की थी। इसके उपरान्त आप अमरीकाके विख्यात विश्वविद्यालय 'येल'में शिक्षा ग्रहण कर १९४८ में धार्मिक–कक्षासे स्नातक बने। फिर आप योरपमें भ्रमण करनेके बाद तोकियो, कियोतो व कोबेमें कुछ दिनोंतक 'पास्टर'का काम करते रहे। आप "रिकुगोज़ाशी" व "क्रिश्चियन वर्ल्ड"के सम्पादक भी हैं। १९५० से १९६३ तक आप जापानी 'क्रिश्चियन एण्डेवर यूनियन'के सभापति भी रह चुके हैं। १९५७ में आप लन्दनकी जगन्मण्डली नाम्नी सभामें उपस्थित थे। १९६३ में आप भारत-भ्रमण कर गये हैं। एडिनबरा नगरमें समस्त संसारके पादरियोंकी जो पंचायत हुई थी, उसमें भी आप उपस्थित थे। संवत् १९६६ में आपने अमरीकाके हार्वर्ड, येल तथा अन्य विद्यापीठोंमें व्याख्यान दिये थे। आपको एडिनबरा विश्वविद्यालयसे एल० एल० डी० की व अम्हर्स्ट कालेजसे डी० एस० की उपाधि प्राप्त हुई है। आप बड़े ही विद्याव्यसनी हैं।

यद्यपि आप ईसाई व पादरी हैं और योर-अमरीकाकी सफ़र भी कर आये हैं, तथापि आप साहब नहीं बने हैं। अब भी आप मुझसे अपने देशी वस्त्र किमोनो

ही पहिले मिले थे। जापानमें ईसाई धर्म राजनीतिक गूढ़ समस्या नहीं है। चाहे पूर्वमें पादरी प्रचारक अन्य देशोंकी भाँति यहाँ भी देशको हड़प करनेको ही आये हों, पर अब ईसाई धर्म इस देशका वैसा ही अंग हो गया है जैसा भारतवर्षमें इस्लामी धर्म बन गया है। आपसे बातचीत कर यह ज्ञात हुआ कि जापानके ईसाई अपना राष्ट्रीय चर्च बनाना चाहते हैं। जापानी ईसाई आत्मरक्षा व स्वाभिमानके विचारसे धार्मिक संस्थाओंको विदेशियोंके अधीन रखना स्वतन्त्र जीवनके विरुद्ध समझते हैं। इसीसे यहां शीघ्र ही राष्ट्रीय कलीसा बननेवाला है।

महात्मा ईसाने एशिया खण्डमें ही जन्म ग्रहण किया था। उनकी परवरिश एशियाकी आबोहवामें हुई थी। उन्होंने एशियाई विचार व बुद्धिसे प्रेरित हो, पाप व कुचेष्टाको जीतकर ईश्वरका राज्य प्राप्त करनेके लिये अपने धर्मका प्रचार किया था, किन्तु आज एशियामें प्रभु ईसाका एक भी स्वतन्त्र गिरजा बाकी नहीं है। इस समय ईसाई धर्म योरपका प्रधान धर्म बना है। योर-अमरीकाके वर्तमान ईसाई-धर्मको यदि धर्म कहा जाय, तो यह कहना पड़ेगा कि प्रभु ईसाकी रूह वैकुंठमें बैठी अपने शिष्यों-के कर्मोंपर अफ़सोस करती होगी। १९ सौ वर्षोंके उपरान्त एशियाके पूर्व छोरमें जापान स्वतन्त्र ईसाई चर्चकी स्थापना करना चाहता है। देखें, एशियाका यह चर्च योर-अमरीकाका केवल जूठनमात्र ही होता है, या वास्तविक धार्मिक केन्द्र बन, मान पाकर धर्म पिपासाके बुझानेमें कुछ सहायक होता है।

मध्याह्नभोजनके उपरान्त महाशय "के० निशीओ" के साथ यहाँके कुछ कार-खाने देखने चला। रेशमके कारखानेको देखनेकी बड़ी इच्छा थी, पर आपने कोरा जवाब दिया कि रेशमके कारख़ानेवाले कारख़ाना नहीं दिखलावेंगे। ख़ैर, इससे मैं निराश होकर उनके साथ "रामी" पौधेके रेशोंसे बननेवाले वस्त्रके कारखानेमें गया। यह पौधा कोई एक गज ऊंचा होता है। इसके पत्ते भिंडीकेसे होते हैं। इसकी छालका वस्त्र लिननसे भी उत्तम बनता है; चीनमें इसका अधिक व्यवहार होता है।

इससे बने वस्त्रको देखकर मैं इसका कारख़ाना देखने गया, किन्तु कारख़ाने-वालेने टालमटोल कर दिया। लिननका काम देखनेके बाद, इसका कार्य कैसे होता होगा—इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

यहाँसे चलकर मैं एक दूसरे कारख़ानेमें आया। यहाँ रामी पौधेके सूतका वस्त्र बुना जाता था, इसमें कोई विशेषता नहीं है, किन्तु यहाँ एक विचित्र वस्तु देखी।

जापानमें एक प्रकारका बहुत चिमड़ा व महीन काग़ज बनता है। यह बड़ा मज़बूत होता है और इससे आध इञ्चका चौड़ा फीता बनता है। इसे यदि आप तोड़ना चाहें तो कठिनतासे टूटता है। ज़रा ऐंठकर दोहरा कर देनेसे तो इसे तोड़ना असम्भव सा ही है। यहाँ इसका व्यवहार मामूली रस्सीकी जगह छोटे बड़े पुलिन्दे बांधनेके लिये किया जाता है। इस कारख़ानेमें वही फ़ीता कपड़ेकी भाँति बुना जा रहा था। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि इससे 'पनामा टोपी' की तरह टोपियां भी बनायी जाती हैं। चीनमें इनकी रफ्तनी बहुत होती है। इसकी टोपी, ठीक पनामा टोपीकी भाँति बनती है, परन्तु इसका मूल्य उससे चौथाई भी नहीं है। मैली हो जानेपर यह धोयी भी जा सकती है; इसे देखकर अचम्भित हो जाना पड़ा।

चीनीके बर्तन ।

यहाँसे मैं चानीके बर्तनोंका कारखाना देखने गया। यह एक बृहत् स्थानमें था। ये बर्तन एक विशेष प्रकारके पत्थरको पीस व सानकर मामूली मिट्टीके बर्तनकी भाँति कुम्हारके ढंगपर बनाये जाते हैं। इसका चाक भी भारतवर्षके चाककी भाँति हाथसे ही हिलाकर चलाया जाता है। अमरीकामें यह विद्युत्की शक्तिसे चलता है।

प्रारम्भमें ये बर्तन खरिया मट्टीके रंग जैसे दिखायी देते हैं। सुखानेके बाद इन्हें ६०० से ७०० अंशके तापमें पकाते हैं। पकानेके उपरान्त भी ये खरियाकेसे ही दिखायी देते हैं, पर बजानेसे इनकी आवाज़ काँचकी सी होती है।

यदि इसपर नक्काशी करनी हो तो इसी समय वह की जाती है व विशेष प्रकारके रंगसे इसपर बेल-बूटे भी बनाये जाते हैं। यह रंग ऐसा होता है कि आँचमें पिघलकर ठंढा होनेपर फिर काँचकी भांति जम जाता है।

नक्काशी व चित्रणके उपरान्त इसपर एक विशेष प्रकारका आवेष्टन लगाया जाता है। यह पदार्थ भी देखनेमें खरियाका सा देख पड़ता है। लुक होजानेके उपरान्त ८००० से ९००० की आँचमें ये ३६ घंटे तक फिर पकाये जाते हैं। इस तापसे सारा पदार्थ गलकर, जैसे चीनीके बर्तन हम देखते हैं, वैसे बर्तनोंमें परिणत हो जाता है।

चीनीके बर्तन बहुमूल्य होते हैं। कोई कोई पुराने बर्तन दो दो और चार चार हज़ार तकके मैंने देखे हैं। इतने अधिक मूल्यका कारण उत्तम चित्रण व विशेष आभाके रंगोंका बहुमूल्य पदार्थ होना ही है। ऐसे बहुमूल्य पदार्थ पकानेमें अधिकांश टूट भी जाते हैं। इससे बच जानेवाले बर्तनोंका मूल्य और भी बढ़ जाता है।

यूरोप तथा जापानमें भी उस प्रकारके चीनी बर्तनोंका कुछ पता न चला, जो दिल्लीके किलेमें अब भी रक्खे हैं व जिनके बारेमें यह किंवदन्ती है कि विषयुक्त भोज्य पदार्थोंके रखनेसे ये पात्र टूट जाते थे व इससे पता लग जाता था कि भोजनमें विष है।

फ़ारसी पुस्तकोंमें एक प्रकारके वस्त्रका हाल भी मैंने पढ़ा था। यह "हरीरा" कहा गया है। इसके विषयमें लिखा है कि यह चीनमें बनता था व इसका गुण यह था कि पूर्णिमाकी ज्योत्स्नासे यह वस्त्र फटकर गिर पड़ता था। विलासप्रिय नृपतिगण युवती वारांगनाओंको ये वस्त्र पहिनाकर चाँदनीमें बुलाते व वस्त्र फटजानेपर हँसी किया करते थे। इस वस्त्रका भी संसारमें पता नहीं चला। न जाने ये दोनों बातें कवियोंकी कल्पना ही हैं या पुराने जमानेमें इनका वास्तविक अस्तित्व था।

कारखाना देखकर मैं चीनी बर्तनके व्यापारीकी दूकानपर गया। आपने मेरा बड़ा सत्कार कर भोजन कराया तथा अन्य रूपसे भी आदर किया। यहाँ चीनीके एक बार पके हुए पात्रोंपर नाम लिखनेको दिया, ये नामयुक्त पात्र नामके सहित पक जाते हैं। मैंने देवनागरीमें भगवान् बुद्धका नाम तथा विक्रम संवत् आदि लिख दिया था।

चिओनिन ।

चिओनिनका मन्दिर जापानी बौद्ध धर्मके "जीदो" सम्प्रदायका प्रधान मठ है। यह कियोतोकी पूर्व दिशामें पहाड़ियोंके बीचमें बना है। इस मन्दिरकी स्थापना संवत् १२९८ में हुई थी। इसकी प्रतिष्ठा यहाँके प्रसिद्ध साधु "हूनकोदैशी"ने की

थी, किन्तु आधुनिक समयमें यहाँ जो इमारतें हैं, वे १६८७ की बनी हुई हैं, क्योंकि पुरानी इमारतें जल गयी थीं।

इस आश्रमके भीतर जानेके लिये बहुत बड़ा, कोई ८१ फुट लम्बा व ३७॥ फुट चौड़ा एक फाटक है। इसके भीतर जाकर १०० सीढ़ियाँ तयकर मैं ऊपरके प्रधान मन्दिरके सम्मुख पहुंचा। यहाँसे दाहिनी ओर जरा ऊँचाईपर वृक्षोंकी झुर्मुटमें १६७५ का बना हुआ एक मण्डप है। इसमें एक विशाल घंटा लटका हुआ है, इसकी ऊँचाई १०'८ फुट व व्यास ९ फुट है। घंटेका दल ९॥ इंच मोटा व इसका वज़न ७४ टन अर्थात् १९९८ मन है। यह १६९० में ढाला गया था।
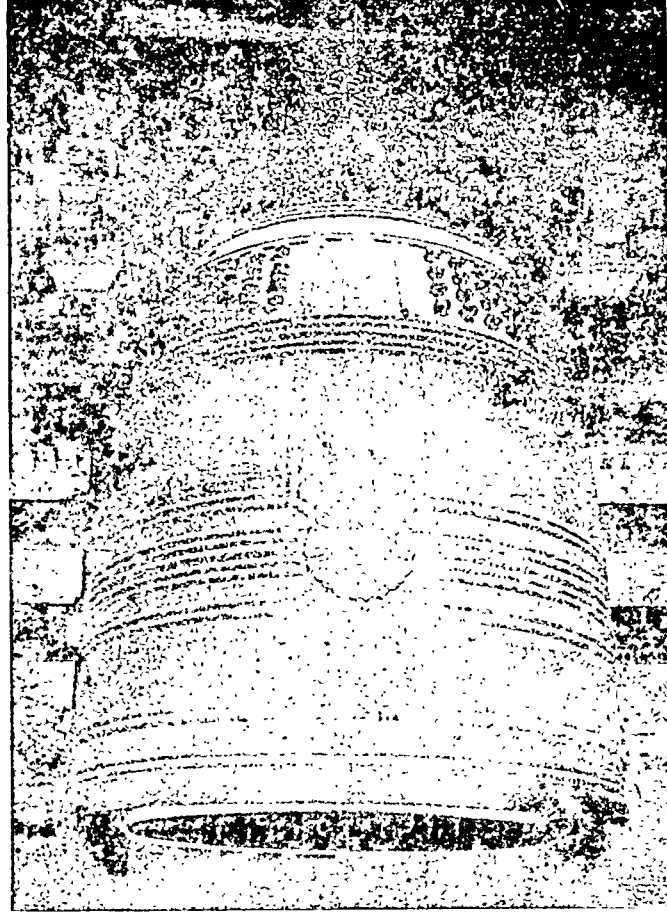
चिओनिनके मन्दिरका विशाल घण्टा।

प्रधान मन्दिरका मुख दक्षिण दिशाकी ओर है। यह १६७ फुट लम्बा, १३८ फुट चौड़ा व ९४॥ फुट ऊँचा है। यह योगिराज "इनकोदैशी" को समर्पित किया गया है। इनका स्मारक-स्थान प्रधान वेदीके पीछे एक अन्य वेदीपर बना है। यह स्थान चार सुनहले बड़े स्तम्भोंसे घिरा हुआ है।
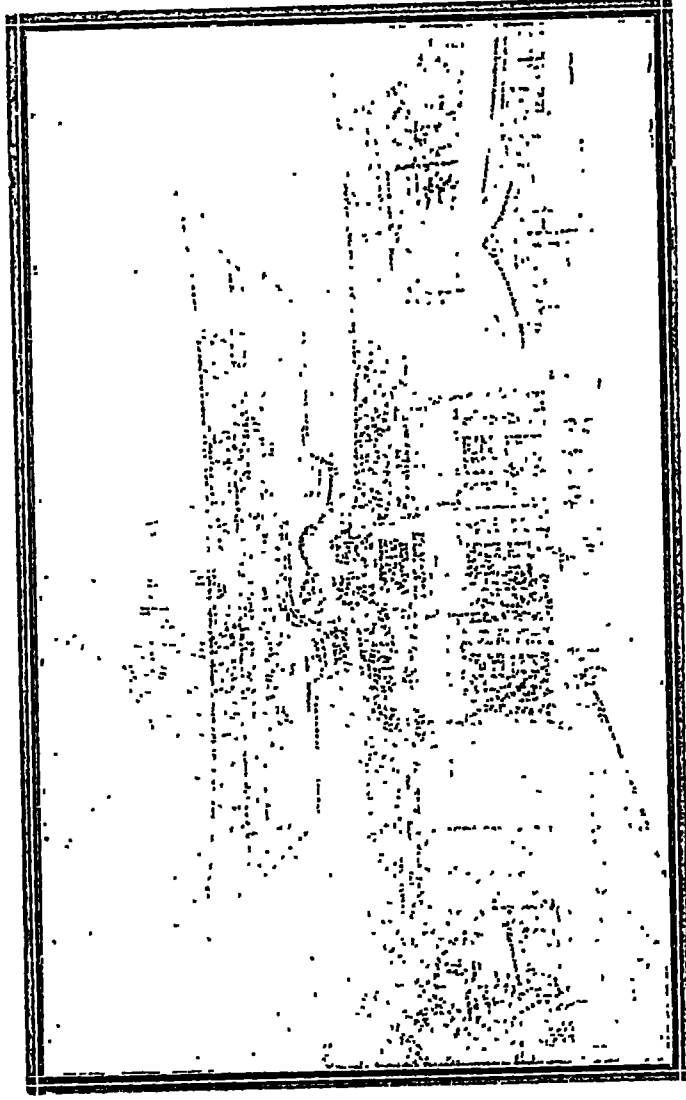
विशाल बुद्धकी मूर्तिवाला मन्दिर, नारा (पृष्ठ २८५)
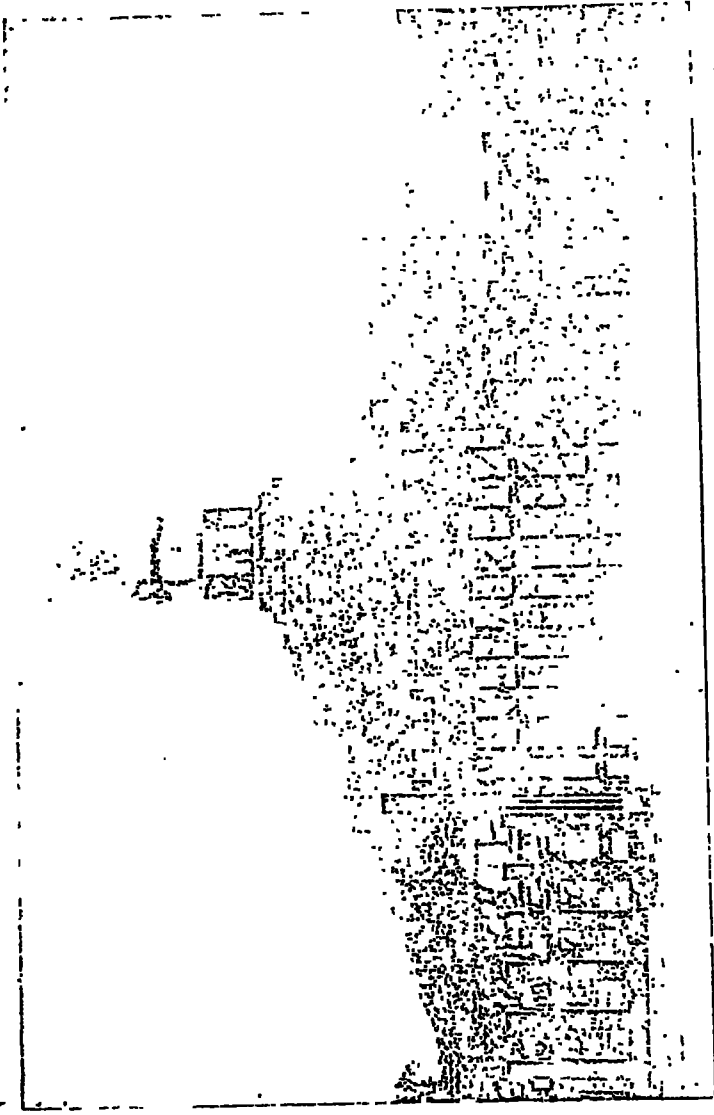
दाईबुत्सुके सन्मुख कर्णशिला: [यहांपर उन कोरियनोंके नाककान गडे हैं जो हिदयोशीके आक्रमणके समय मारे गये थे, पृ० १८७, ३०६] (पृष्ठ २६१)

प्रधान वेदीके पश्चिम एक दूसरी वेदी है, इसपर "इयासू" व उनकी माताका स्मारक है। वहीं "हिदेतादा"का स्मारक भी है। प्रधान वेदीकी पूर्व दिशामें बीचकी वेदीपर "अमिदा" अभिन्नेश्वरकी प्रतिमा है व कतिपय मठधारियोंके स्मारक भी हैं।

प्रधान मन्दिरकी पूर्व दिशामें मठका पुस्तकालय है। इसमें बौद्ध धर्म सम्बन्धी प्रायः सभी पुस्तकें रक्खी हैं। प्रधान मन्दिरके पीछे लकड़ीका एक बरामदा है। उसपर चलनेसे एक प्रकारका चें चें शब्द होता है, लोग मैनाके शब्दसे इसकी तुलना करते हैं और कहते हैं कि यह जान बूझकर ऐसा बनाया गया है। अब इस प्रकारकी कारीगरीका होना असम्भव बतलाया जाता है। इस बरामदे द्वारा मैं "शुईदो" मन्दिरमें गया। इसमें दो प्रधान वेदियोंपर 'अमिदा' व काननकी प्रतिमाएँ हैं। ये प्रतिमाएँ "इशिन सोजू" "केबुनशी" व "केबुन्दा"की निर्माण की हुई हैं।

यहाँसे होकर मैं "इभिस्तू"के महलमें गया, इसका नाम गोटन है। इसमें दो भाग हैं, एकका नाम "ओहोजू" व दूसरेका "कोहोजू" है। इन महलोंमें "कानो" सम्प्रदायके चितेरोंके चित्रोंका अच्छा संग्रह है, किन्तु इनमेंसे अधिकांश चित्रोंका रंग फीका पड़ गया है। दो कमरोंमें चीड़ व बकुल वृक्षोंके दृश्य हैं। यह 'कानो नाओनोबू'के खींचे हुए हैं। दूसरेमें केवल चीड़ वृक्षका ही दृश्य है। इसमें एकबार भूतपूर्व सम्राट्‌ने विश्राम किया था। एकमें हिमका दृश्य बड़ा उत्तम दिखाया गया है। यहाँ अनेक कमरोंमें भिन्न भिन्न चितेरोंके उत्तम चित्र हैं। इन्हें बहुत समय तक देखनेके उपरांत मैं यहाँसे आगे बढ़ा।

यहाँसे नीचे उतरकर मैं "दाईबुत्सू" देखने गया। यह भगवान् बुद्धकी एक भीमकाय काष्ठ-मूर्ति है। १६४५ से यहाँ एक न एक भीमकाय बुद्ध-मूर्ति बराबर रही है, किन्तु अग्नि, भूकम्प अथवा बिजलीके गिरनेसे एकके पीछे एक नष्ट होती रही। इस समय जिस मूर्तिको मैंने देखा वह १८५८ में स्थापित हुई थी। यह लकड़ीके ढाँचेपर लकड़ीकी पट्टियाँ जड़कर बनी है। इसकी शकल अत्यन्त भद्दी है। इसके निर्माणमें शिल्पके किसी अङ्गपर ध्यान नहीं दिया गया है। इस मूर्तिमें केवल मस्तक व कन्धे हैं, शरीरके और भाग नहीं हैं। फिर भी इसकी ऊँचाई ५८ फुट है।

इस मन्दिरमें मूर्तिके चारों ओर आधुनिक समयकी मामूली १८८ तस्वीरें लगी हुई हैं। इनपर कुछ पद्य भी लिखे हैं। यहाँपर कुछ पुराने लोहोंका भी संग्रह है जो किसी समय किसी गृहके अंश थे।

यहाँसे मैं "अरशियामा" नदी देखने गया। यह "होजूगावा" नदीसे बनी है। इसके दोनों तट व ऊँचे पहाड़ चीड़ व पद्मके वृक्षोंसे भरे हैं व बीचमेंसे यह नदी बहती है। ग्रीष्ममें जल-विहारके लिये यहाँ बहुतसे लोग आते हैं। सुना है, वसन्तमें जब पद्मकाष्ठ फूलते हैं तब इसकी शोभा अवर्णनीय होती है। हमलोग भी यहाँ दो तीन घंटे तक घूमते रहे, फिर एक शिलापर संध्या की व नावपर ही भोजन कर रात्रिमें होटलकी ओर लौटे। अमरीकामें रौकी पर्वतमालाको पार करते समय रेल एक दर्रेमेंसे होकर गुजरती है। इसको वहाँ 'गोर्ज' कहते हैं। यहाँ भी अरशियामाकी तरह कुछ कुछ यही दृश्य है। किन्तु गोर्जमें न तो नावपर जल-विहार ही हो सकता है न हरे वृक्ष ही दिखायी देते हैं, हाँ ऊँचे पर्वत व बीचमें नदी अवश्य है।

बाईसवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

नारा !

आज प्रातःकाल कियोतोसे प्रस्थान किया और डेढ़ घंटेमें नारा पहुंच गये । नाराको जापानकी राजधानी होनेका गौरव पहिले प्राप्त हो चुका है । संवत् ७५७ से ८४१ तक यह नगर जापानकी राजधानी था ।

सम्राट् "काम्मू" ने राजधानी यहाँसे हटाकर यमाशिरो प्रान्तमें स्थापित की । राज-काजमें बौद्ध महन्तोंकी अनधिकार छेड़छाड़से बचनेके लिये ही उक्त सम्राट्ने ऐसा किया था । आधुनिक नगर उस समयके नगरका दशमांश भी नहीं है ।

रेलसे उतर हम लोग होटलकी ओर चले । योर-अमरीकाकी प्रणालीके होटल-में न जाकर हमने जापानी होटलमें ही निवास किया । यहाँ हमें सुन्दर चटाइयोंके फर्श वाला कमरा ठहरनेको मिला । कपड़ा उतार आज सोलह मासके उपरान्त आनन्द-से ज़मीनपर लेट गये । सबसे आश्चर्यजनक बात यहाँ यह थी कि कुएंका ठंढा ज़ल मिला क्योंकि इस समय यहाँ ९० अंशसे अधिक गर्मी पड़ रही थी । तिसपर भी यह कुएंका पानी बरफके ऐसा ठंढा था । जिस प्रकार बरफ गिलासमें डालनेसे बाहर जल-कण एकत्र हो जाते हैं वैसा ही इससे भी होता था । यह जल बहुत देर तक ऐसा ही ठंढा रहता था ।

गर्मी अधिक होनेके कारण इस समय बाहर न जाकर हमने भोजनके बाद विश्राम करनेका विचार किया । ज़रासी देरमें बादल घिर आये और अच्छी वर्षा हो गयी । इससे कुछ ठंढक हो गयी । सोकर उठनेके उपरान्त हम चार बजेके बाद नगर देखने चले ।

पहले हम संग्रहालय देखने गये । इसका नाम यहाँ "हकूबुत्सुक्वान" है । यहाँ उन पुरातन जापानी शिल्पोंके मननका अच्छा अवसर मिलता है जो धार्मिक उत्तेजना-से बने हैं । मूर्तिनिर्माण, चित्रण तथा अन्य प्रकारके सूक्ष्म शिल्पको धर्मसे कितनी सहायता मिली है व मिलती है, यह बात आँख खोल कर देखनेपर सभी प्राचीन देशोंके इतिहाससे प्रकट हो जाती है । यदि प्रतिमा-पूजा अत्यन्त प्राचीन कालसे संसारमें, विशेषकर साधारण जनतामें, प्रचलित न होती तो क्या मिश्रमें उन बड़े बड़े मन्दिरोंका भग्नावशेष मिलता जिनको देख आज बीसवीं शताब्दीमें भी लोग चकित रह जाते हैं ? यूनान व इटलीमें जो विशाल मूर्तियाँ मिलती हैं वे भी मूर्तिपूजाके प्रभावसे ही बनी हैं । योरपीय चित्रणकलामें भी इसीका प्रभाव है । पुराने महान् चितेरोंके प्रायः सभी चित्रोंमें धार्मिक दर्शन अथवा धार्मिक जीवनका दृश्य देखनेको मिलता है । जापान व चीन भी उसीके प्रभावसे भरे पड़े हैं । बूढ़े भारतका तो कहना ही क्या है । उसकी तो नस नसमें साकार उपासना व प्रतिमा-पूजन भरा है । जान पड़ता है कि बालकोंको घोंटीके साथ यह भाव माता पिला देती है

नाराके प्रसिद्ध स्थान (पृष्ठ २८४)

नाराके प्रसिद्ध स्थान (पृष्ठ २८४)

लिये यह वज्रलेप सा हो जाता है। प्राचीन समयसे आज तक महान् व्यक्तियोंने इसकी निस्सारता देखकर इसके विरुद्ध आवाज उठायी पर परिणाम क्या हुआ? कुछ दिनों तक तो शिष्योंने मूर्तिपूजा छोड़ दी पर जब उनका दल बढ़ा तो वे गुरुजीकी ही मूरत बना पूजने लगे। महात्मा नानकने मूर्ति-पूजाके खिलाफ आवाज उठायी थी किन्तु उनके अनुयायियोंने क्या किया? केवल उन्हींकी मूर्तिकी पूजा नहीं की किन्तु उनकी माता व उनके शिष्योंके वस्त्र, खड्ग, पुस्तक तथा एक कागकी भी पूजा क्रमशः प्रारम्भ कर दी। यह सब कुछ अमृतसरमें देखनेको मिल सकता है। फिर, गुरु नानकने हिन्दुओंको मिलाकर एक करना चाहा था किन्तु परिणाम यह हुआ कि उन्हींके अनुयायियोंमें अनेक सम्प्रदाय बन गये जैसे खाकी, निर्मले, कनफटे इत्यादि; यहाँतक कि इस समय तो खालसा हिन्दू नामसे भी घृणा करने लगे हैं। प्रातः-स्मरणीय गुरु गोविन्द सिंहने जिस गोहत्याके निवारणार्थ व जिस हिन्दुत्वके रक्षार्थ अपने पिता गुरु तेग बहादुरजीको अपनी बलि करनेकी योजना की व जिन्होंने स्वयं अपने दो पुत्रोंसहित जिस धर्मकी रक्षाके लिये अपने प्राण दिये उन्हींके अनुयायी आज हिन्दूके नामसे बेज़ार हैं व गो-मांस तक खानेमें नहीं हिचकते।

गुरु नानकके बाद समय समयपर अन्य महात्माओंने भी मूर्त्तिपूजाके खिलाफ़ आवाज उठायी थी किन्तु उन सभीकी मूर्त्तियाँ आज पुजती हैं, अभी बहुतसे गुरुजन जीवित हैं जिन्होंने श्रीस्वामी दयानन्दजीके प्रतिमा-पूजनके विरुद्ध घोर नाद सुना है पर आज क्या देखा जाता है। अभी स्वामीजीको आँख बन्द किये तेंतीस वर्ष नहीं बीते कि प्रत्येक आर्य्य मन्दिरमें स्वामी जीके चित्र लटके हैं व उनपर श्रद्धासे फूलोंकी माला लटकायी जाती है। मूर्त्तिपूजाका दूसरा नाम किसी विगत महान् पुरुषकी मूर्ति, चित्र तथा समाधिके सामने कोई पदार्थ श्रद्धासे रखना ही है अथवा उसका गुणगान करके हृदयमें श्रद्धासे उसको स्मरण करना ही है।

इतना ही नहीं, अभी उस दिन हमने पढ़ा था कि गुरुकुल कांगड़ीके विगत वार्षिकोत्सवके समय वेद-ग्रंथ सभापतिके आसनपर रक्खे गये थे। कहीं कहीं उसका विरोध होनेपर श्रीमान् लाला मुन्शीरामजीने भी अपने निजके लेखमें इसका विरोध नहीं किन्तु समर्थन ही किया था और कहा था कि मैं वेदके पत्रोंका सम्मान करना भी ठीक समझता हूँ। यह भाव बिलकुल ठीक व मानुषिक है, किन्तु हम श्रीमान् जीसे यह प्रश्न पूछनेकी धृष्टता करते हैं कि यदि वेदोंके पत्रों तकका सम्मान उचित है तो फिर आज राम, कृष्ण आदि महात्माओंके स्मारक स्वरूप अनेक मूर्तियोंका सम्मान करनेमें क्या आपत्ति है? फिर भी आर्य-समाजके कई संन्यासी और उपदेशक ऐसे शब्दोंमें मूर्ति-पूजाका खण्डन करते हैं कि यदि उन्हीं शब्दोंका स्वामीजीके चित्रके लिये--स्वामीजीके लिये नहीं--व्यवहार किया जाय तो हमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ये आर्य भी वैसा ही व्यवहार करेंगे जैसा हिन्दू जनता ऐसे अवसरोंपर करती है। और यदि आर्य्य समाजी वैसा व्यवहार न करें तो हम उन्हें मुर्दों व निर्जीव मनुष्यों-में शुमार करेंगे, क्योंकि जिनको अपने पूज्य पुरुषोंकी निन्दा सुनकर रोष नहीं होता उन्हें जीवित समझना एवं पुरुष संज्ञासे उनका संबोधन करना अनुचित है।

बड़ा विवाद इसपर होता है कि प्रतिमाको लोग ईश्वर मानते हैं। ईश्वर क्या

है, यह पहले न पूछकर हम प्रतिमा-पूजनके विरोधियोंसे यह पूछना चाहते हैं कि आप संसारके किसी देशमें ऐसी कोई प्रतिमाका पता बतावें जिसको लोग परमेश्वरके नामसे पूजते हों या जिसका नाम किसी ऐसे व्यक्ति विशेषका हो जो इस संसारमें कभी हाड़-मांसके शरीरमें न रहा हो । हम उत्तरकी प्रतीक्षा न कर स्वयं कहे देते हैं कि ऐसा पता बताना असम्भव है । यदि यह उत्तर मान लिया जाय तो हम पूछते हैं कि फिर क्यों मूर्ति-पूजाके विरुद्ध आवाज़ उठायी जाती है? क्या सौ या पचास वर्षके पूर्व रहे हुए मनुष्यकी तस्वीरका सम्मान करना मूर्त्ति-पूजा नहीं है ? और कालके प्रसारमें पीछे छिपे हुए मनुष्यकी मूर्तिके सामने सिर झुकाना मूर्त्ति-पूजा है ? यदि मनुष्य समुचित विचार करनेके उपरान्त कुछ कहे-सुने तो संसारमें इतना बखेड़ा, संताप व रक्तपात न हो ।

जो लोग कहते हैं कि निराकार प्रभुकी उपासना करनी चाहिये उनसे यह स्वाभाविक प्रश्न होता है कि वह निराकार प्रभु क्या पदार्थ है । यह जटिल समस्या है । एक ग्रन्थि खोलनेसे तीन और पड़ जाती हैं, यहाँ तक कि थोड़ी देरमें प्रश्नों व संदेहोंका अन्त नहीं रहता, और स्वयं वेदों तकको "नेति नेति"के पीछे शरण लेनी पड़ती है । ऐसा जटिल प्रश्न, जिसका समाधान अभीतक बड़े विद्वानोंसे नहीं हुआ, जनतासे करना अल्पज्ञताकी चरम सीमा नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? बेचारे सीधे-सादे मनुष्योंको एक साफ़ सुथरे रास्तेसे जिसपर आज बहुत समयके पूर्वसे वे लोग आ जा रहे हैं हटाकर एक ऐसी राहपर लगाना कि जिसका पता स्वयं बतलानेवालेको भी नहीं है और साथ ही राह भी पथरीली चट्टानों एवं कांटोंके जंगल व घास-फूससे भरी है, कहाँकी बुद्धिमानी है? अप्राप्य विकट रास्तोंका पता लगाना इने-गने मनुष्योंका काम होता है । जनता सीधी राह छोड़ ऐसे मार्गसे चलना कदापि पसन्द नहीं करती । इसीसे देखा जाता है कि सुधारकोंकी बतायी हुई राह चलते हुए भी जनता थोड़े दिनोंके उपरान्त पुनः अपने पुराने पथपर आजाती है क्योंकि वह सुगम है व उसपर चलनेवाले पथिकोंको आंधी-पानीसे बचनेके लिये जगह जगह आश्रयस्थान भी मिलते हैं व अन्य आवश्यकताओंकी पूर्त्तिका भी प्रबन्ध रहता है । साधारण जनता सरलताका मार्ग खोजती है, विकट निर्जन रास्ता नहीं ।

अब हम इन बातोंको छोड़कर जापानी संग्रहालयका हाल लिखते हैं । इस संग्रहालयमें जापानी शिल्पके नमूने बहुतसे स्थानोंसे एकत्र किये गये हैं । प्रायः सभी मठों व मन्दिरोंने कुछ न कुछ यहाँ भेजा है । जो मूर्त्तियाँ यहाँ संगृहीत है उनमेंसे बहुतसी ७ वीं और ८ वीं शताब्दी तककी हैं । इनके अतिरिक्त यहाँ बड़े ही कीमती हस्तलिखित पत्रोंका भी संग्रह है । प्राचीन सम्राटोंके हस्ताक्षर भी संगृहीत हैं । "काके मोनो" पर उत्तम उत्तम चितेरोंके खींचे हुए चित्र भी यहाँ सुरक्षित कर रक्खे हैं । इतिहासके पूर्व समयके मिट्टीके बर्तन व माध्यमिक युगके अस्त्र-शस्त्रोंका भी संग्रह यहाँ है । सारांश यह कि यहाँसे प्राचीन जापानी सभ्यताके बारेमें बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है ।

यहाँसे "नन्दाइमों" तथा "नियोमों" नामके पुराने दक्षिणी फाटक तथा दो

पृथ्वी प्रदक्षिणा
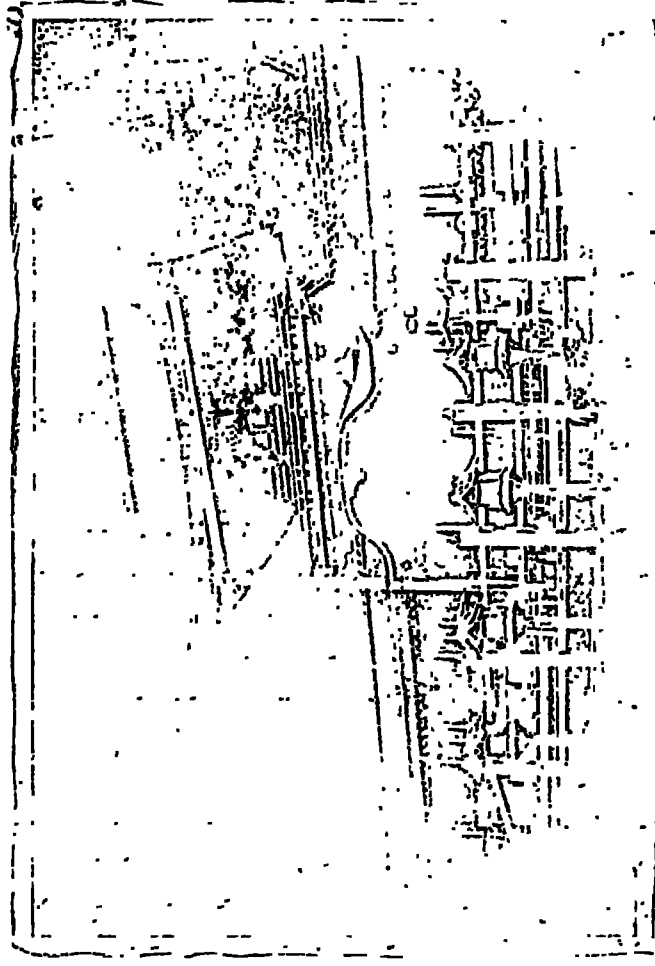
नाराका संग्रहालय (पृष्ठ २८४)

कासूगा पार्कमें हरिणोंका समूह [पृ० २८५]

मन्दिरोंके कपाट देखकर फिर विशाल बुद्ध भगवान्की मूर्त्ति देखने चले। यह मूर्त्ति काँसेकी बनी है व ५३॥ फुट ऊंची है। बुद्ध भगवान् ध्यानावस्थित सुखासनमें कमल-पुष्पपर बैठे हैं। मूर्त्ति आठ सौ छः संवत्में प्रथम ढली थी, किन्तु मस्तक, जलकर गल जानेके कारण, १७ वीं शताब्दीमें फिरसे बनाया गया है। मस्तकका रंग शरीरके रंगसे अधिक काला है। यद्यपि यह मूर्त्ति ठोस नहीं है तो भी इसका दल ६ से १० इंच तक मोटा है। इसीसे इसके भारका आन्दाजा लगा लेना चाहिये।

यहाँसे हम हिरनोंके बीच घूमने लगे। यहाँ घासके बड़े बड़े मैदानोंमें हजारों हिरन चरते हैं। ये मनुष्योंसे नहीं डरते। हाथसे लेकर खाद्य पदार्थ तक खा जाते हैं। इनके सींग भी छूनेमें बड़े नरम लगते हैं, क्योंकि वे प्रतिवर्ष काट दिये जाते है जिसमें हिरन यात्रियोंको मार न सकें।

वहाँ से हम नारामें जो बड़ा घंटा है उसे देखने गये। यह संवत् ७८९ में ढाला गया था और १३ फुट ६ इंच ऊंचा व ९ फुट चौड़ा है। इसके दलकी मोटाई ८.४
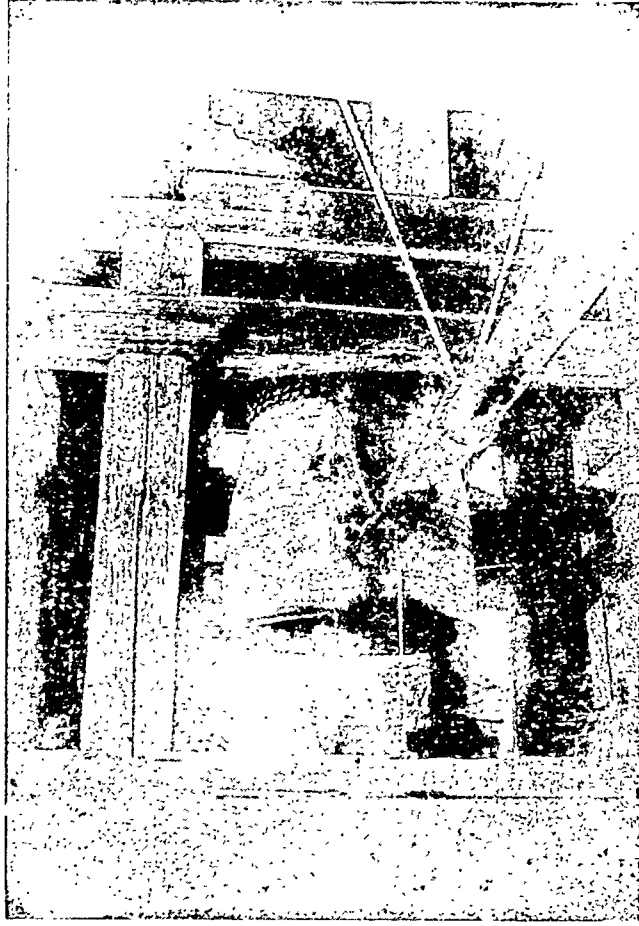
नाराका बड़ा घण्टा।

इंच है। इसके ढालनेमें २७ मन रांगा और ९७२ मन तांबा लगा है। और पदार्थोंका भार नहीं दिया है।

यहाँ से घर लौटते समय हम एक तालावपर आये। इसमें बहुतसे छोटे छोटे कछुए और मछलियाँ थीं। इन्हें एक प्रकारके चावलकी बनी लम्बी लम्बी रोटी खिलाते हैं। रोटीका लम्बा टुकड़ा फेंकनेसे उन लोगोंमें आपसमें लड़ाई होती है जो देखने योग्य है।

आज प्रातःकाल हम शिन्तो मन्दिर "कासूगा" देखने चले। इसकी स्थापना ८२४ में हुई थी। यह "फुजी वारा" कुलके वीरोंको समर्पित है। यहाँके शिन्तो देवताओं-का नाम "अमा-नो-कोयाने" है। इनकी पत्नी तथा अन्य पौराणिक देवता भी इसमें सम्मिलित हैं। यह मन्दिर बहुत सुन्दर बना है। वृक्षोंके झुरमुटमें लाल रंगका मन्दिर आंखोंको बहुत सुहावना लगता है क्योंकि हरे हरे वृक्षोंको देखते देखते चित्त प्रसन्न हो जाता है। यहाँ पर एक विचित्र सप्तवटी है। एक तनेमेंसे सात प्रकारके भिन्न भिन्न वृक्ष उगे हैं जिनमेंसे चार प्रकारके वृक्षोंके नाम ये हैं--चेरी, (पद्मकाष्ठ), कमे-रिया, वेस्टेरिया और नान्तेन। अन्य तीन वृक्षोंके नाम यहाँ वाले भी नहीं जानते, यह एक अद्भुत बात है। इस मन्दिरमें दो नर्त्तकियाँ सदा रहती हैं जो एक येन देनेपर दर्शकोंको "कागूरा" नृत्य दिखलाती हैं। यह धार्मिक नृत्यके नामसे प्रसिद्ध है परन्तु इसमें कोई विशेषता नहीं है। यहाँसे लौटकर आज हमने होटलमें ही विश्राम किया।

कासूगा नामक शिन्तो मन्दिर
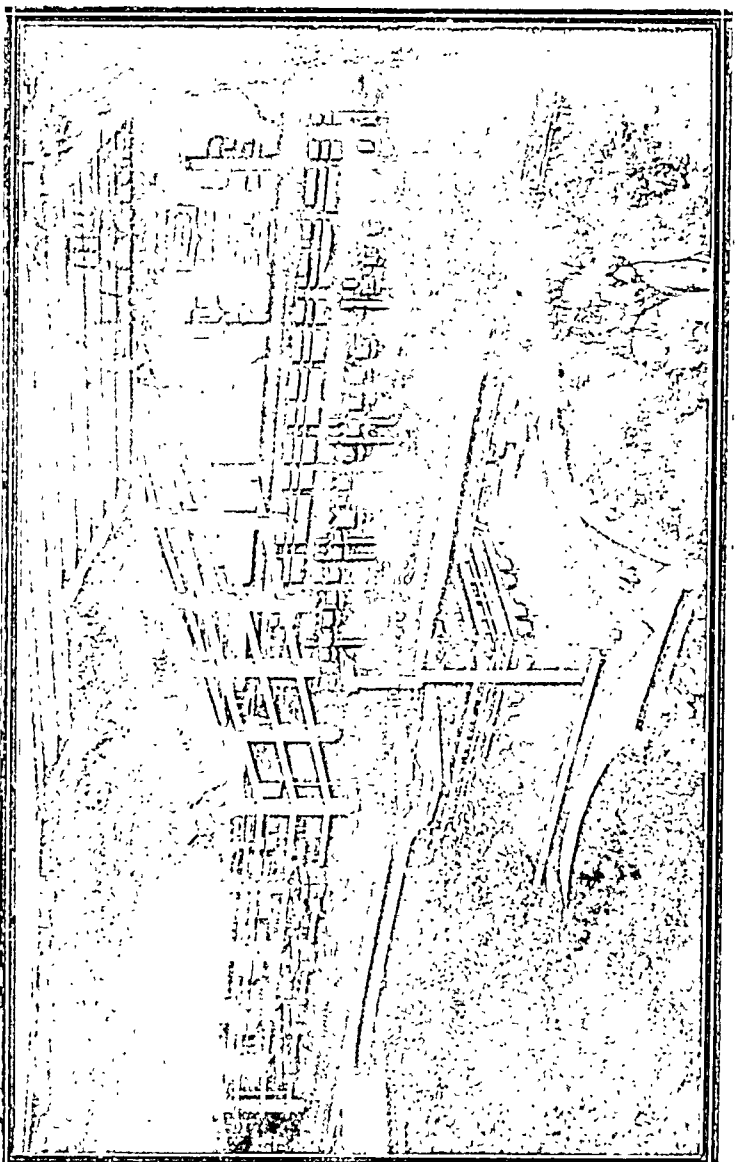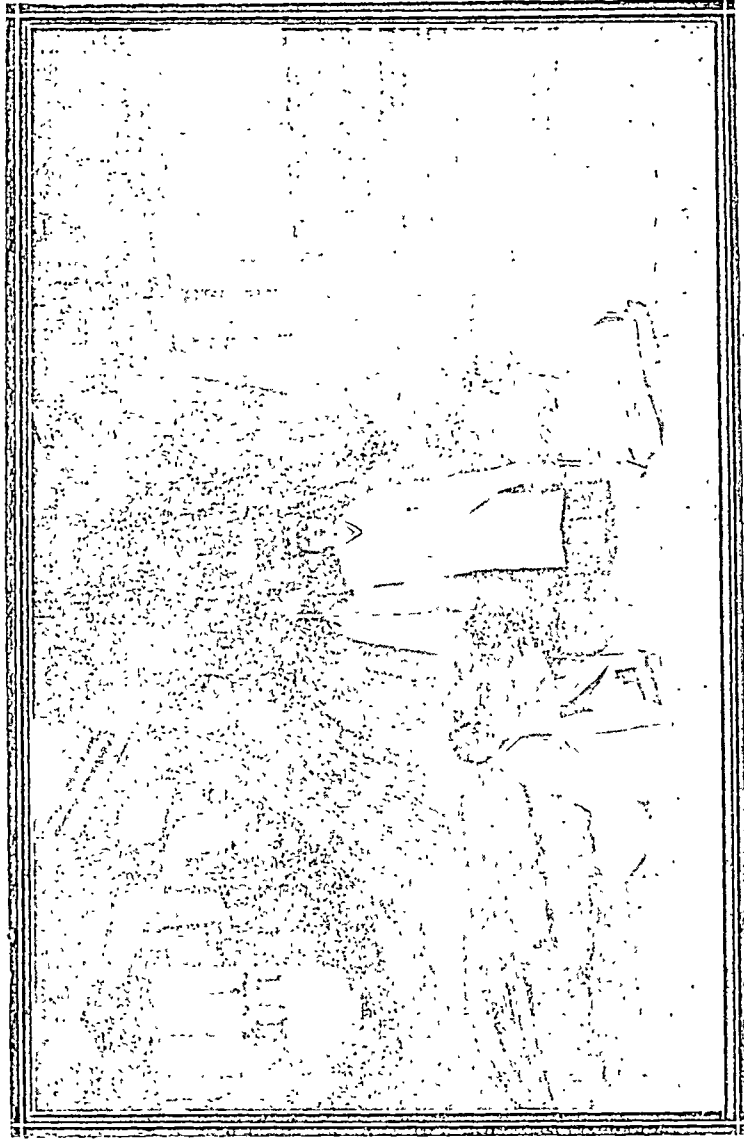
(पृष्ठ २८६)

कासूगा देवीकी देवदासियां (नर्तकियां) (पृष्ठ २८६)

तेईसवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

ओसाकाके लिये प्रस्थान ।

बौद्ध जापानका नालन्दा ।

नारासे ओसाकाके लिये चलकर हम बीचमें "होरयुजी"में उतर पड़े। जापानमें यह सबसे प्राचीन बौद्ध मन्दिर है। इसे "शोतूकोतैशी"ने बनवाया था। यह संवत् ६४४ में बनकर तैयार हुआ था। आरम्भमें जब यहाँके राजाने बौद्ध भिक्षुओंको कोरियासे निमन्त्रित कर बुलवाया था तो उन्होंने यहीं आकर अपना मन्दिर बनाया और मठ स्थापित किया था। यहीं बैठकर उन्होंने जापानको बौद्ध धर्मका सन्देशा दिया था।

इसको केवल मन्दिर ही नहीं कहना चाहिये, प्रत्युत यह एक प्रकारका मठ भी है। यहाँ कई मन्दिर हैं। प्राचीन कालमें यहाँ एक विशाल विद्यापीठ था और हर प्रकारके ज्ञानके विस्तार और प्रचारका प्रबन्ध था। आठवीं शताब्दीके अन्य बहुतसे पदार्थ भी यहाँ हैं और कहा जाता है कि यह मन्दिर उसी समयका है। देखनेसे भी यही ज्ञात होता है। अपने देशमें इतनी पुरानी वस्तुको ऐसी अच्छी हालतमें देखनेका सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ है, मालूम नहीं कि ऐसा कोई पदार्थ है या नहीं। आज इस मन्दिरको बने कोई १३३६ वर्ष हुए। इसके सिवाय यहाँ कई मन्दिर और एक पगोदा है। मन्दिरका नाम "कोंदो" है व दूसरे भवनका नाम "दाईकोंदो" है। यहाँ साधुओंके व्याख्यान होते थे और छात्रोंको शिक्षा भी दी जाती थी।

पहले हम "कोंदो" देखने गये। इसमें बहुत सी मूर्तियाँ रक्खी हैं। कहा जाता है कि इनमेंसे कतिपय मूर्तियाँ भारतवर्षसे आयी हैं। यह मन्दिर काठका है। दर्वाजे इसके पुराने भारतीय ढंगके हैं। जापानमें अन्यत्र ऐसे दर्वाजे कम देखनेमें आते हैं। इनकी चौखटें ऊँची हैं और इनमें भारतीय ढंगकी बिलैयाँ लगी हैं। भीतरकी दीवार भूसा मिली मिट्टीकी बनी है, उसपर अत्यन्त सुन्दर चित्रकारी की हुई है। बहुत समयकी होनेके कारण यद्यपि यह कुछ बिगड़ गयी है तो भी इसे देखनेसे चतुर चितेरोंकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। यहाँ केवल भगवान् बुद्धकी ही मूर्तियाँ नहीं हैं, किन्तु वे सब मूर्तियाँ भी देख पड़ती हैं जो अपने यहाँ मन्दिरोंमें मिलती हैं। चित्रगुप्त सहित यमकी मूर्ति, औषधिके अधिष्ठाता धनवन्तरिकी मूर्ति, ब्रह्माकी मूर्ति तथा अन्य अनेक देव-देवियोंकी भी मूर्तियाँ यहाँ हैं, जिन्हें पृथक् पृथक् नाम दिया गया है।

"दाईकोदो"में देखने योग्य कोई विशेष वस्तु नहीं है। हां, पगोदामें चारों ओर चार दृश्य दिखाये गये हैं। पूर्व ओर "मञ्जू"की मूर्ति व अनेक देवता-

ओंकी मूर्तियाँ हैं । दक्षिणमें "अमिदा", "क्वानन" व "दैशेशी"की मूर्तियाँ हैं। पश्चिमकी तरफ भगवान् बुद्धके देहत्याग व शिष्योंके विलापका तथा उत्तरमें समाधिका दृश्य है। ये सब चारों ओरके दृश्य पर्वतकी खोहमें दिखाये गये हैं। निर्माताओंने "अजन्ता"की नकल उतारनेका प्रयत्न किया है । इस समय यह मठ "होसो" सम्प्रदायके अधीन है ।

यहींपर एक और मन्दिर है, जहाँ बिन्दुके बराबर, सफेद पत्थरका एक छोटा टुकड़ा दिखाया जाता है। कहते हैं कि यह किसी महात्माके मस्तकसे निकला है ।

इस मन्दिरके देखनेसे एक भारतीयके हृदयमें क्या भाव उत्पन्न होते हैं, यह कहना कठिन है । सहृदय पाठक इसका अनुमान स्वयं कर सकते हैं भारतके बाहर इसके प्राचीन गौरवका कितना चिन्ह मिलता है, इसका ठिकाना नहीं। क्या कोई विद्वान् भारतके बाहर एशियाई देशोंमें दस पाँच वर्ष भ्रमण करके 'बृहत् भारतीय मण्डल'के खोजनेका यत्न करेगा? ऐसा करनेसे यह मालूम होगा कि भारतीय सभ्यताका संसारपर क्या प्रभाव पड़ा है । यह कहते हमें कुछ भी संकोच नहीं होता कि जिस प्रकार यूनानका प्रभाव सारे यूरोपपर पड़ा है उसी भाँति भारतका प्रभाव सारे एशियापर पड़ा है। चीन, जापान, कोरिया, अफगानिस्तान व फ़ारसपर किस किस भाँति व कब कब इसका प्रभाव पड़ा है, इसका पता लगाकर विद्वानोंको पुस्तक रूपमें संसारके सामने रखना चाहिये, क्योंकि पुराने गौरवके ज्ञानसे कभी कभी लज्जित होकर गिरे हुए मनुष्य भी भावी जीवनको सुधारनेका बड़ा यत्न करतें हैं और इस तरह देशका बड़ा काम होता है ।

ओसाका नगर व एशियाका मैनचेस्टर ।

"होरयुजी" से चलकर थोड़ी ही देरमें ओसाका नगरमें पहुँच गये। रास्तेमें एक जगह ढेकुलसे धान कूटते देखा । यहाँके मनुष्य ठीक उसी प्रकार इसे पैरसे दबाकर चला रहे थे जिस प्रकार अपने देशमें भड़भूजेकी दूकानोंमें चलाते हैं। खेतोंमें यहाँ भी ढेकी व कूंड़से पानी निकालते और कहीं कहीं दौरी चलाकर भी सिंचाई करते देखा। देखते देखते रेल नगरके सन्निकट पहुँच गयी । जिस प्रकार काशीसे कलकत्ते पहुँचनेके समय सारा नभोमंडल धूम्राच्छादित देख पड़ता है, नगरके और निकट पहुँचनेपर ऊंची ऊंची चिमनियोंसे भरा एक जंगल सा दीख पड़ता है जिनमेंसे 'भक भक' धुआँ निकल आकाशको काला बना देता है, ठीक ऐसा ही समा यहाँ भी है।

तोकियोमें भी जो यहाँकी राजधानी है गिन्जा सड़कको छोड़कर और जगहोंमें खपड़ेके छोटे छोटे मकान देख पड़ते हैं। बड़ी बड़ी इमारतें होनेपर भी वह प्राच्य-देशका शान्त नगर सा मालूम पड़ता है। किन्तु "ओसाका" ऐसा नहीं है। यहाँ आधुनिक योर-अमरीकाके ढंगके बड़े बड़े मकानोंकी बहुतायत है। सारा नगर ऊंची ऊंची चिमनियोंसे भरा है। बड़ी बड़ी चौड़ी सड़कें भी यहाँ खूब हैं। इसमें "योदो गावा" नदीसे जो इस नगरके बीचमेंसे बहती है, व उसकी अनेक नहरोंसे अनेक जलमार्ग भी बने हुए हैं। योरपनिवासी इसे जापानका 'वेनिस' कहकर पुकारते हैं।

रात्रिको इन नहरोंकी शोभा अकथनीय हो जाती है । हज़ारों छोटी बड़ी नौकाएं इधरसे उधर आती जाती देख पड़तीं हैं । इनमेंसे कुछ तो मल्लाहों द्वारा

होरयुजी बौद्ध मन्दिर (पृष्ठ २८७)

कौंदो मन्दिर

(पृष्ठ २८७)

...जाती हैं और कुछ वाष्प, मोटर तथा बिजलीसे चलती हैं। इनपर चढ़कर ... व जल-विहारकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें संध्या समयकी ठंढी ... खानेके लिये इष्ट-मित्रों, प्रेमियों और प्रणयिनियोंके साथ मिलजुल कर दिल-... करने तथ. प्रेमालापसे या विविध भावोंसे चित्तको प्रसन्न करनेके लिये प्रायः यहाँ आते हैं। इनमेंसे अनेक मनुष्य तो नौकाओंपर चढ़कर इधर उधर घूमते हैं और बहुतेरे सड़कों, पुलों (यहाँ पुलोंकी अधिकता है), बाग-बागीचोंमें टहलते घूमते नज़र आते हैं। दुःखित भारत-सन्तानोंको सन्ध्या समय रोटीका ख्याल आता है। वे इसी सोचमें घर लौटते हैं कि देखें सूखी रोटी भी पेटभर मिलती है या नहीं। किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है, यहाँ दिन भर काम करनेके उपरान्त ग़रीबोंको भी इतना प्राप्त हो जाता है कि वे आनन्दसे दो भाजियोंके साथ पेटभर रोटी खा सकते हैं व कुछ धन बच भी रहता है। इसीसे ये लोग आनन्दसे जीवन विताते हैं। ... धोबीके कुत्तेकी भाँति इधरसे उधर मारे मारे नहीं फिरना पड़ता।

इन दर्शकोंके मनोरञ्जनार्थ सड़कें, रास्ते, पुल, इमारतें सभी चीज़ें बिजलीसे जगमगाती रहती हैं। पल पलपर रंग व रूप बदलकर विज्ञापनकी पटरियाँ (साइ-नबोर्ड) दर्शकोंके मन अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। रात्रिको बिजलीकी रोशनी द्वारा इस प्रकार विज्ञापन देनेकी प्रथा अभी बिल्कुल नवीन है। इसके आविष्कारका गौरव भी अमरीकाको प्राप्त है। किन्तु सामयिक दौड़में पीछे न रहनेवाले युवक जापानने इसे भी इस प्रकार अपना लिया है कि न्यूयार्कके ब्रॉडवे सड़कपर भी विज्ञापनोंकी ऐसी भरमार नहीं। यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि ओसाकामें ग्रीष्मकी रात्रिने "शामे अवध" को मात किया है। इस स्थानपर नाना प्रकारकी मिठाई व खानेकी अन्य वस्तुएं बेचनेवालोंकी भी भीड़ रहती है। नदीमें भी जगह जगहपर बड़े बड़े पटैले अच्छे साज-बाज व सजधजसे नौकारोहियोंको भोजन कराते फिरते हैं।

नदीके दोनों ओरके ऊंचे मकानोंसे "बीवा" की झनकार व मधुर मीठी तान भी जलविहारियोंको बराबर सुन पड़ती है। यह ध्वनि उन गेशाओंके मकानोंसे आती है जो यहाँ रहती हैं। बीच बीचमें गेशाओंके मकानोंपर बैठे हुए मौजियोंका अट्टहास भी सुन पड़ता है। सारांश यह कि हमारे ऐसे मनहूसोंको छोड़कर जो कोई यहाँ आवेगा वह बिना आनन्द उठाये नहीं रह सकता। कितना ही दुःखित मनुष्य हो, एक बार उसके मनकी मुर्झायी कली अवश्य ही विकसित हो पड़ेगी। वह सारे दुःखदर्दको भूलकर अन्य लोगोंकी तरह आनन्दमें मग्न हो जायगा। यही जीवित देश, जीवित जाति व जीवित मनुष्यका चिन्ह है। इसीसे जातिकी शक्तियाँ बढ़ती हैं, जाति दीर्घजीवी, बलिष्ट व नीरोग होती है।

किसी यूनानी हकीमने सत्य ही कहा है कि जितनी देर कोई मनुष्य हँसता है उतना समय उसकी जिंदगीमें नहीं लिखा जाता और जितनी देर वह रोता है उतना समय उसके जीवनके लेखेमें दो बार लिखा जाता है। तात्पर्य्य यह है कि हंसी-खुशीसे जिन्दगी बढ़ती है, रोने और फिक्र करनेसे घटती है। यह बात एक मनुष्यके लिये जितनी सत्य है जातिके लिये भी उतनी ही सत्य है।

फ्रांसमें पेरिसके आफेल टावरके ढंगपर यहाँपर भी एक ऊंचा धरहरा बनाया

गया है । यह विद्युत्-प्रकाशसे जगमगाता रहता है । आने जानेके लिये इसमें बिजलीका एक यन्त्र भी लगा है। ऊपरसे सारा शहर बड़ा सुन्दर देख पड़ता है।

ओसाकामें पहुँचनेके उपरान्त इतनी प्रचण्ड गर्मी पड़ने लगी जिसका ठिकाना नहीं। तापमापक यंत्रका पारा चढ़कर ९४ डिगरीपर पहुँचा। इससे दिनको दर्वाजा बन्दकर बिजलीके पंखेकी ही शरण लेनी पडती थी। यही कारण है कि यहाँ घूमकर अधिक नहीं देख सके।

एक दिन एक कांचका कारखाना देखने गये थे। बालू व एक प्रकारकी सफेद मिट्टी मिलाकर व आगमें गलाकर कांच बनाया जाता है। इस समय यहाँ नाना प्रकारके गिलास, कटोरे और पात्र सांचेमें ठप्पेसे दबाकर ही बनाये जा रहे थे। दूसरी जगह पानी लगा इनको चिकना बनाते थे। यहाँ इतनी अधिक भयानक गर्मी थी कि दो तीन पलमें ही पसीनेकी धारा बह चली। इस प्रचण्ड गर्मीमें १० घंटे प्रति दिन आंचके सामने खड़े होकर काम करना पड़ता है। काम करनेवालोंमें पांच पाँच वर्षके नन्हें नन्हें बच्चे देखकर रोंगटे खड़े हो गये। इस दृश्यने आधुनिक सभ्यताका पैशाचिक रूप आँखोंके सामने लाकर खड़ाकर दिया। ख्याल हुआ कि हम इन्हीं नन्हें नन्हें बच्चोंके पसीनेसे तर-बतर काँचके बर्तनोंका व्यवहार करते हैं। आधुनिक सभ्यताका यह अंग सभ्यताके नामको कलुषित कर रहा है।

यहाँपर हम एक चमड़ेका कारखाना देखने भी गये थे, किन्तु कारखानेमें रूसी सेनाके लिये जंगी सामान बन रहा था, इस कारण यहाँ किसी भी विदेशीको जानेकी इजाज़त न थी। हमारे साथ जो युवक जापानी व्यापारी आये थे, वे कहने लगे कि जब हम घरपर लौटेंगे और घर वालोंको यह मालूम होगा कि हम चमड़ेके कारखानेमें गये थे, तो हम बिना शुद्ध किये हुए घरमें न घुसने पावेंगे। शुद्ध करनेके निमित्त हमारे सिरपर नमक छिड़का जायगा। बात यह है कि यहाँ चमार लोग अशुद्ध समझे जाते हैं। अभीतक यह चाल दूर नहीं हुई है।

यहाँसे एक घंटेके रास्तेपर "शिकाई" नामक एक स्थान है। समुद्र तटपर होनेके कारण यह बड़ी रमणीक जगह है। ग्रीष्ममें यहाँ ओसाका-निवासी गर्मीसे परित्राण पानेके लिये आते हैं। प्राचीन समयमें यह इस देशका प्रधान बन्दर था। अब भी पाल द्वारा चलने वाले अनेक जहाज़ यहींसे कोरिया जाते हैं।

ओसाकाकी दूसरी तरफ एक घंटेकी राहपर "कोबे" नगर है। आजकल यह यहाँका प्रधान बन्दर है। जापानका प्रधान विदेशी वाणिज्य यहींसे होता है। यहाँपर देशी तथा विदेशी लोगोंके बड़े बड़े कार्यालय हैं। भारतवासियोंकी भी दस-बारह दूकानें हैं। याकोहामामें भी भारतवासियोंकी ३०, ४० दूकानें हैं जिनमें प्रायः सिन्धी व सिंधालियोंकी ही दूकानें अधिक हैं। कोबेमें पारसी सज्जन अधिक हैं।

एक दिन ओसाकाके निकट एक पहाड़पर गये जो प्रायः दो मील चलनेके उपरान्त मिलता है। यहाँ कोई १५ फुटकी ऊँचाईपर एक बड़ा सुन्दर और रम्य स्थान है। डेढ़ सौ फुटकी ऊँचाईसे यहाँ एक जलधारा गिरती है। सारा पहाड़ चनारके वृक्षोंसे भरा है। वसन्तमें पद्मके पुष्पोंकी तथा ग्रीष्ममें शीतल समीरकी

बहार लूटने और शरद एवं हेमन्तमें चनारके वृक्षोंकी ललाई देखनेके लिये हज़ारों आदमी यहाँ आते हैं। यहाँ कई निवास-स्थान व उपहार-गृह बने हैं। हमने भी आज सायंकालको यहाँ ही भोजन किया और आज ही २५ श्रावण (१० अगस्त) को, ठीक दो मासके उपरान्त, हम जापान छोड़कर चीनके लिये चल पड़े। यों तो समुद्र द्वारा चीन जानेमें प्रायः ६ या ७ दिन लगते हैं, किन्तु यहाँसे कोरिया जानेमें कुल १२ घंटे ही समुद्रमें रहना पड़ता है। कोरियासे रेल द्वारा चीन जानेमें सिर्फ चार दिन लगते हैं। हमें कोरिया देखना था, अतः 'एक पंथ दो काज'के सिद्धान्तके अनुसार हमने इसी राहसे जाना उचित समझा। ओसाकासे प्रातःकाल चलकर सन्ध्या समय "शिमोनो सेकी" बन्दरपर पहुंच गये। यहाँ हमने ९ बजे रात्रिके समय जापानको 'सायोनारा' (प्रणाम) कहा और एक प्रकारसे स्वाधीन संसारकी यात्रा समाप्त कर पराधीन एवं दासत्वकी श्रृंखलासे जकड़े हुए संसारकी ओर चले।

चौबीसवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

'सायोनारा'

जापानको अन्तिम प्रणाम

आज नवीन एशियाके स्वाधीन शिशुकी गोदमें आये दो मास दो दिन हो गये । आज स्वाधीन जगत्से अधीन संसारकी ओर यात्रा होगी । इन दो मासोंमें अपने भाइयोंको बताने लायक क्या देखा है, वही यहाँ लिखना है ।

तेरह सौ वर्ष पूर्व बूढ़े भारतका जो संदेशा जापानको चीन व कोरियाके मार्गसे चलकर मिला था उसका चिह्न अब कहीं कहीं पुराने मन्दिरोंमें ही रह गया है । आज दिन भी पुराने मन्दिरोंमें भारतीय शिल्पियोंके हाथकी बनी बुद्ध भगवान्‌की प्रतिमाए मिलती हैं । पर हमारा सम्बन्ध जापानसे इतना ही नहीं है ।

हमें यह कहते कुछ भी संकोच नहीं होता कि हम आज दिन भी जापानियोंको अपना ही बन्धु समझते हैं और स्वभावतः जान पड़ता है कि ये हमारे ही हैं । अङ्गरेज़ी भाषा जाननेके कारण इङ्गलैंड व अमरीकामें हमें वहाँके निवासियोंसे बातचीत करनेकी बहुत सुविधा थी, किन्तु एक सालके बीचमें कभी ऐसा अवसर न मिला कि बातचीत करनेमें वह भाव पैदा हो जो अपनोंसे बातें करनेमें होता है । अमरीका-निवासी जब कभी मिलते थे तभी बड़ी अच्छी तरह बातें करते थे किन्तु उनके साथ मिलने-जुलनेमें सदा परायापन ही झलकता था । जापानी भाषा हम बिलकुल नहीं समझते, जापानी भी हिन्दी नहीं समझते, अतः इनसे भी अङ्गरेज़ी द्वारा ही बातचीत करनी पड़ती थी किन्तु इनसे बातचीत करनेमें ज़रा भी हिचक नहीं होती थी । ऐसा ज्ञात होता था कि मानो किसी अपने भाईसे ही बातचीत कर रहे हैं । यह क्यों ? इसी कारण कि हममें और इनमें समानता अधिक है । हम एक दूसरेके मनोभावोंको अच्छी तरह समझ सकते हैं ।

यदि बंगालके किसी ग्रामसे कुछ लोग किसी योगमायाके बलसे जापानके ग्राममें पहुंचा दिये जायँ तो उन्हें यह जाननेमें कुछ समय लगेगा कि हम किसी दूसरे देशमें हैं, क्योंकि चारों ओर यहाँ भी वही धानोंसे भरे खेत, घास-फूससे छायी हुई झोपड़ियाँ, व नंगे सिर वाले मनुष्य मछली-भात भोजन करते देख पड़ेंगे । हां, विभिन्नता यह होगी कि उन्हें बिजलीकी रोशनी, साफ उत्तम जल व जगह जगह पाठशालाए देख पड़ेंगी, गृहोंमें खाद्य पदार्थ भी अच्छे व काफी देख पड़ेंगे । मनुष्योंके शरीर भी कपड़ेसे ढँके व माथा भी ज्ञानरहित नहीं मिलेगा । सारांश यह कि यदि बंगालके ग्रामोंमें विद्युत् प्रकाश हो जावे, पल्ली पल्लीमें पाठशालाएँ खुल जायं, पद्मा व हुगलीमें युद्धपोत खड़े मिलें तो बंगाल व जापानमें कुछ भी भेद न रह जाय ।

यह मालूम होनेसे कि हममें और जापानियोंमें कुछ भेद नहीं है, भारतीयोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रह जाती पर यह बात सच है, इसमें कुछ सन्देह नहीं । जापा-

जापानमें चाय-पानी
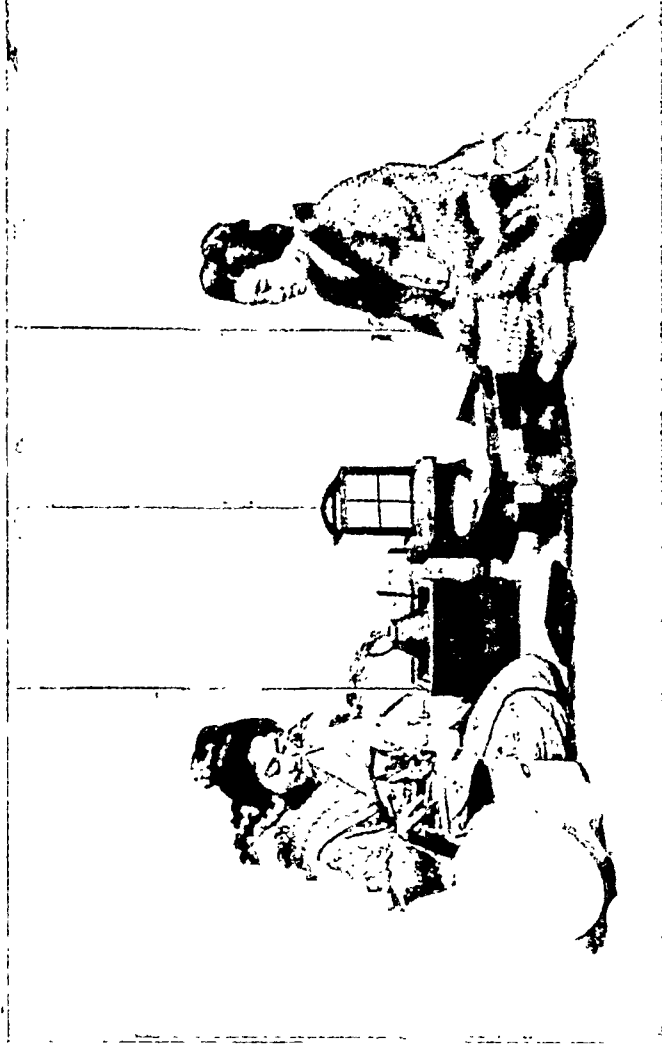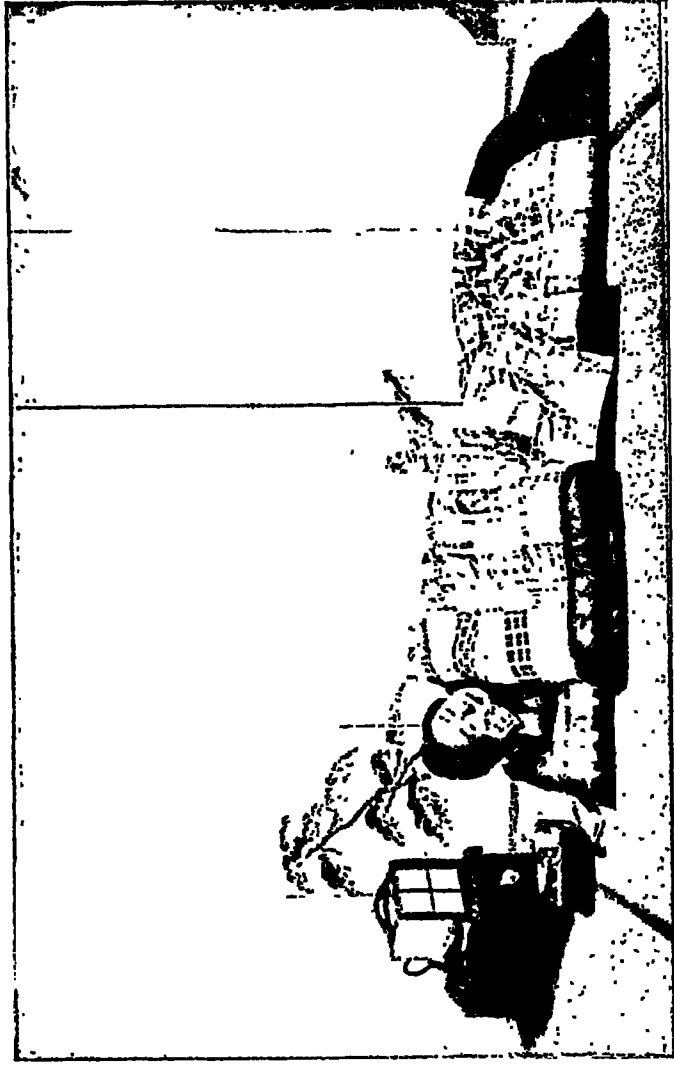
[पृ० २९३]

जापानमें पृथ्वीपर सोनका ढंग

[पृ० २९३]

[illegible]का चाल-ढाल, रहन-सहन, खान-पान, पहिरावा, पूजा-अर्चा, भूत-प्रेत, टोना-टामन, श्राद्ध-पिण्ड, छूत-छात सभी भारतवासियोंके समान हैं।

योरपवाले व अमरीका-निवासी कहते हैं कि जापानने बिलकुल योरपियन ढंग स्वीकार कर लिया, अब उसमें एशियाई बात कुछ भी बाकी नहीं है। यह इतना भ्रमात्मक कथन है जिसका ठिकाना नहीं। यदि आज दिन ऊपरी निगाहसे देखनेवाला व्यक्ति भारतको योरपीय सभ्यताका गुलाम इस कारण कहे कि भारतमें कुछ लोग कोट पतलून पहिनने लग गये हैं, होटलमें भोजन करने लग गये हैं तथा उन्होंने घरोंमें भी विलायती सभ्यतासे रहना अख्तियार कर लिया है तो कदाचित् यह कथन उससे अधिक सच होगा जितना यह कहना कि जापान योरपीय सभ्यताका गुलाम हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि जापानियोंने योर-अमरीकासे रणविद्या सीखी है, जंगी जहाज़ व गोली-गोला बनाना सीखा है, बड़े बड़े आफिस, बैंक, कारख़ाने, पुतलीघर सभी योर-अमरीकाकी भांति बनाये हैं और वे सेनाके तथा अन्य कारबारमें भी योरपीय पोशाक पहिनते हैं, योरपीय भोजनसे भी घृणा नहीं करते, पर इससे क्या होता है? यह केवल बाहरी आडम्बरमात्र है। आप बड़ेसे बड़े जापानीके घर जाइये जो कदाचित् कई बार योर-अमरीकाकी यात्रा कर आया हो तो उसके यहां भी पहले पहल आपका अभिवादन करने जो टहलुई आवेगी वह पृथ्वीपर मस्तक रख आपको प्रणाम करेगी। घरमें घुसते समय आपको झखमार कर जूता उतारना ही पड़ेगा। कतिपय घरोंमें ज़मीनपर ही पलथी मारकर बैठना होगा। जिनसे आप मिलने गये होंगे वे महाशय लम्बे किमोनोमें ही आपसे मिलेंगे। आपको पान-सुपारीकी जगह यहां जो चाय मिलेगी वह अङ्गरेज़ी मीठी चाय नहीं, वरन् दूध-शक्कर-रहित हरी चायकी पत्तीका गरम गरम काढ़ा ही होगा। यह रिवाज़ आफ़िसके क्षुद्र लेखकसे लेकर साम्राज्यके प्रधानसचिव काउण्ट ओकूमाके घरमें भी पाया जायगा।

जापानमें लगभग दो मास रहकर हम उत्तर-दक्षिण कोई डेढ़ हज़ार मील घूमे किन्तु एक भी स्त्री हमें साया पहिने न देख पड़ी, यद्यपि बहुत सी ऐसी स्त्रियोंसे मुलाकात हुई जो योर-अमरीकामें दस दस बारह बारह वर्ष रह आयी हैं। बड़े बड़े नगरोंमें, सड़कोंपर, ट्राममें और रेलमें, कहीं भी ऐसे पुरुष नहीं देख पड़ते जो विदेशी पोशाकमें हों। हां, कल-कारखानों, कोठियों, बंकों इत्यादिमें विदेशी पोशाकें देखी जाती हैं किन्तु वे पहिननेवालेको भार सी प्रतीत होती हैं, घरमें आनेपर वे किस प्रकार फेंकी जाती हैं यह भारतवासियोंको बताना न होगा।

जापानी मांसभक्षी जाति नहीं है तथापि जापानियोंको विदेश तथा स्वदेशमें मांस खानेसे घृणा नहीं है। काम पड़नेपर वे मांस खा लेते हैं किन्तु मांस उनके जीवनके साथ लिपट नहीं जाता। घरमें उन्हें फिर वही मछली भात व तरकारियां ही अच्छी लगती हैं।

जापानने विदेशियोंके संसर्गसे खान-पान, रहन-सहन, पूजा-अर्चन नहीं छोड़ा है और न उसमें कुछ अदल-बदल ही किया है किन्तु आत्मरक्षा व शत्रुके दमन करनेकी जितनी विद्या थी उसे उसने भली भांति अपनाया है। चालीस वर्षोंमें ही जापानियोंने इस विद्यामें इतनी उन्नति कर ली है कि वे अपने गुरुओंको ही राह दिखाने लगे

हैं । कहा जाता है कि ड्रेडनाट जहाज़ बनानेकी चाल जापानने ही चलायी-है, पहिला ड्रेडनाट इसी देशमें बना था ।

इतने कम समयमें जापानकी ऐसी असाधारण उन्नति संसारको चकित कर देती है । अभी संवत् १९२५ में यहां जो युगान्तर हुआ था उस समय जापान क्या था, कुछ नहीं, केवल मध्ययुगकी भांति एक छोटा सा राज्य था जैसा कि वाजिद्अलीशाहके समय अवध अथवा शुजाउद्दौलाके समय बंगाल रहा होगा । १९३५-४०तक उसने अपने पंख फड़फड़ाये और हाथ पैर पसार अंगड़ाई ले अपनी निद्रा तोड़ी व अपना घर सम्हालना प्रारम्भ किया । १९५१में चीनको पराजितकर उसने योरपीय जगत्की आंख अपनी ओर फेरी और अपनी ओर देखते हुए उनसे कहा कि भैया, हम भी मनुष्य हैं, हमारे भी हाथ पैर हैं, हमें याद रखना। १९६०-६१ में उसने घमण्डी रूसका गर्व खर्व कर एक बार जगत्को अचम्भेमें डाल दिया । अब क्या था, अब तो उसकी भी गणना प्रथम श्रेणीकी शक्तियोंमें हो गयी । योर-अमरीकाकी शक्तियोंने हाथ मिलाकर अपने मञ्चपर चढ़ा उसका स्वागत किया और कहा कि "आप बड़े हैं, आप शक्तिशाली हैं, आप राखमें छिपी अग्निके अंगारे हैं, आइये, हमारी पंक्तिमें बैठिये और संसारकी अन्य छः शक्तियोंके साथ मिलकर उन्हें सात बनाइये । आप तो हमारी बिरादरीके हैं, हमारी पंक्तिमें भोजन कीजिये ।" रूसपर विजय पाये आज १०-११ वर्ष हो गये । इस समय योरपमें जो विनाशकारी संग्राम हो रहा है उसमें यदि जापानने जर्मनोंका संग दिया होता तो आज एशियाका क्या हाल होता, इसके जाननेका अवसर केवल अंगरेज वीर सर एडवर्ड ग्रेको ही है । इस संग्रामसे जापानका कितना महत्त्व बढ़ गया है व इससे उसके वाणिज्य-व्यापारको कितना लाभ पहुंचेगा इसका पता दस वर्ष बाद लगेगा । गत ४०, ५० वर्षोंमें जापानने दस दस वर्षोंमें जितनी उन्नति की है उतनी उन्नति इतने ही कम समयमें दूसरी किसी जातिने संसारमें की है या नहीं इसमें सन्देह है । इसकी यकायक इतनी उन्नति देख योर-अमरीका वाले आश्चर्यमें पड़ गये हैं व जापानको योरपियन हो गया बतलाते हैं । हम भी उन्हींकी बात सुनकर उन्हींका पढ़ा पाठ दुहरा देते हैं ।

विदेशमें किसी जापानीको देख प्रायः लोग यही कहेंगे कि यह जाति बड़ी घमंडी है । इसके मुखपर कभी हँसीका नाम नहीं आता । यह सदा गम्भीरतामें ही पड़ी गूढ़ विचार किया करती है । किन्तु इस देशमें आकर देखनेसे कोई विशेष गम्भीरता नहीं देख पड़ती । यहाँ जापानी मामूली मनुष्योंकी भांति हँसते हैं व खेलते हैं, उनका सभी कुछ व्यवहार मामूली है । पर विदेशमें ये इतने गम्भीर क्यों बनते हैं इसका कारण है और वह कारण भी बड़े महत्त्वका है । जापानकी असाधारण शक्तिके कारण जहाँ संसारमें योर-अमरीकाकी शक्तियाँ इससे डरती व इसका सम्मान करती हैं वहाँ इससे स्वाभाविक डाह भी करती हैं । ऐसी अवस्थामें वे इसकी प्रत्येक बातको ध्यानसे देखती व मौका ढूँढ़ा करती हैं कि कैसे व कब इसे नीचा दिखावें । अतएव प्रवासी जापानियोंको इसका ख्याल रखना पड़ता है और एक एक कदम उन्हें फूंक फूंककर रखना होता है । उनके ऊपर जापानका गौरव निर्भर है । उनके एक दोषसे सारी जाति कलंकित बन सकती है, उनकी ज़रासी भूलसे सारे देशको

…चा करना पड़ेगा। इसी दायित्वका विचार उन्हें विदेशमें गम्भीर बनाता है। …जातिके बड़प्पनका लक्षण है।

भारतवर्षके समाचारपत्रों तथा जनतामें जापानके प्रति प्रीतिभाव नहीं है। वे …सदा कलंकित व दोषी ठहराया करते हैं। क्यों? इसलिये कि वह जीवित रहना चाहता है, अपनी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखना चाहता है, इसलिये कि उसका जो कर्त्तव्य है उससे वह विमुख नहीं होता। जिस कारणसे जापान स्वतन्त्र व प्रभावशाली है व जिसके अभावसे अन्य एशियाई जातियां दासत्वकी श्रृङ्खलामें बँधी हैं उसी कारणको चिरस्थायी बनानेके लिये हम भारतवासी उसकी निन्दा करते हैं न? क्या कभी निन्दकोंने इसपर भी विचार किया है? नहीं, उनमें इसपर विचार करनेकी योग्यता ही नहीं है, नहीं तो उनकी हालत भी ऐसी न रहती।

जापानपर एक बड़ा दोष यह लगाया जाता है कि उसने कोरियाको दबा लिया। अगर वह कोरियाको न दबाता तो करता क्या? चीन कोरियाको सुरक्षित रखनेमें असमर्थ था, कोरिया स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता था, यह साफ ज़ाहिर है। नतीजा यह होता था कि रूस अपना विशाल हाथ उसपर फैलाता जाता था। यदि रूसका पूर्ण अधिकार उसपर हो जाता जैसा कि पोर्ट आर्थरपर उसका अधिकार था तो कितने दिन जापान चैनसे सोने पाता? क्या कभी आपने इसका विचार किया है? ऐसी अवस्थामें अपनी रक्षाके लिये, अपनेको जीवित रखनेके लिये, यदि वह कोरिया-पर अधिकार न जमाता तो और क्या करता? कोरियाको तो कोई न कोई दबाता ही। पोर्ट आर्थरको ध्वंसकर रूसके एशियामें बढ़े हाथको काट रूसपर उसने जो विजय प्राप्त की थी व जिसके कारण भारत भी प्रसन्न हुआ था, क्या उसीके स्वाभाविक फलके लिये भारतवर्षको जापानसे रुष्ट होना उचित है?

जापानपर सारा दोष इस बातका आरोपित किया जाता है कि वह चीनपर प्रभाव जमाना चाहता है। हां ठीक है, जापान चीनपर प्रभाव जमाना चाहता है, पर इसमें बुराई क्या है? चीनकी बन्दर-बाँटमें यदि इसे भी हिस्सा मिल जाय तो हमारा क्या नुकसान है? जहाँ चीनपर रूसी, फरासीसी, जर्मन, अंगरेज सभीका प्रभाव पड़ रहा है, सभीने अपना अपना प्रभावमण्डल व स्वार्थमण्डल बना रक्खा है, वहाँ यदि जापान भी ऐसा करे तो क्या दोष है? सिंगताऊ व पोर्ट आर्थरकी भाँति यदि चीनमें स्थल स्थलपर योर-अमरीकावालोंका प्रभाव बढ़ जावे व एशियाई समुद्रमें इनके युद्धपोतोंके लिये आश्रय तथा स्थान हो जायँ तो जापान कितने दिन सुखकी नींद सो सकता है? ऐसी अवस्थामें यदि चीन अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ है तो जापान अपनी जान क्यों जोखिममें डाले? यह कहाँकी बुद्धिमानी है? किन्तु संसारके जीवित मनुष्योंकी यह नीति मुर्दोंकी समझमें नहीं आसकती इसीसे तो वे मृतक-शय्यापर पड़े पड़े सिसक रहे हैं।

जापान निर्जीव अथवा अर्द्धजीवित जातियोंकी भाँति सुदूर भविष्यके सुन्दर स्वप्नसे प्रसन्न नहीं होता और न उसे पूर्वकी कथा और कीर्ति ही सुन या कहकर सन्तोष होता है। "हमारे दादाने घी खाया था, हमारी हथेली सूंघ लो" यह कहने-की फ़ुरसत उसे नहीं है। उसे तो इतना भी नहीं याद है कि रूस-जापान युद्धके समय

हमारी क्या अवस्था थी व आजसे ३० वर्ष बाद क्या होगी। पाँच-सात- दस वर्षोंमें हमारे विचारवान् पुरुषोंकी क्या दशा होगी व उसके लिये हमें क्या तैयारी करनी चाहिये जापानवाले इसी विचारमें लिप्त रहते हैं। संसारकी सारी जीवित जातियोंका यही हाल है। क्या फरासीसियोंको इसके विचार करनेकी फुरसत है कि चिरकालसे अङ्गरेज़ोंके साथ हमारी शत्रुता चली आती है? क्या रूसको भी इसका विचार कभी होता है कि अभी दस वर्ष ही हुए जापानसे लड़ाई हुई थी? नहीं, यही कारण है कि ये लोग वर्त्तमानके विचारसे प्रेरित होकर ही सबके समान शत्रु जर्मनीसे लड़नेके लिये तैयार हुए थे व आपसमें मित्र बने थे। दस वर्ष बाद क्या होगा, कौन किसका शत्रु, कौन किसका मित्र होगा, इसके विचारकी फुरसत इस समय नहीं है।

किन्तु अधीन जातियोंका कोई वर्त्तमान काल नहीं होता इसीसे वे या तो भविष्यका स्वप्न देखा करती हैं या पूर्वके गौरवकी कथा कह अपना समय बिताती हैं। बिस्मार्कके पूर्व जर्मनी-निवासी भी भविष्यका स्वप्न देखा करते थे। मेजिनीके उत्पन्न होनेके पहिले इटलीवाले भी पूर्वजोंकी गाथा पढ़ा करते थे पर आज उन्हें वर्त्तमान ही वर्त्तमान सूझता है।

क्वान्टुंग गवर्नमेंटके सैनिकविभाग से गृहीत, मई १९०५

पोर्ट आर्थरका मानचित्र

पच्चीसवाँ परिच्छेद।

—:o:—

पराधीन एशिया।

आज सोलह मासके उपरान्त पराधीन जगतमें फिर पदार्पण किया। विगत वर्ष, वैशाख (मई) मासमें सिकन्दरिया बन्दर छोड़नेपर स्वाधीन जगतमें पदार्पण किया था, आज फूसन बन्दरपर उतरनेसे पराधीन जगतमें आना हुआ।

इस समय संसारमें योर-अमरीकाकी तूती बोल रही है। योर-अमरीकाको छोड़ जगतके प्रायः सभी देश परतन्त्र हैं। योर-अमरीकाको छोड़नेके उपरान्त एशिया खण्ड तथा अफ्रीका बच जाते हैं। इनमेंसे प्रायः सभी देश तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं––

(१) एक तो वे हैं जो एक प्रकारसे अभी मानव-जीवनकी शैशवावस्थामें ही हैं, अर्थात जिनका मानसिक विकास अभी इतना नहीं हुआ है कि वे पाशविक जीवन और मानव-जीवनमें कोई बड़ा भेद कर सकें। ऐसी जातियाँ असभ्य व बर्बर समझी जाती हैं। कहाँ कहाँ व भूमिका कितना कितना भाग इनके पास है यह भूगोल जाननेवालोंसे छिपा नहीं है। इन्हें परतन्त्र कहना चाहिये या स्वतन्त्र, यह बताना कठिन है, किन्तु मेरे विचारसे यदि इन्हें थोड़ी देरके लिये छोड़ दें तो कोई हानि नहीं।

(२) दूसरी वे हैं जिन्होंने मानवजीवनकी युवावस्थाको भी लाँघकर वृद्धावस्थामें पग धरा है। इस कोटिमें उन सब देशोंकी गणना हो सकती है जिन्होंने संसारके ज्ञान-भण्डारमें किसी न किसी समय कुछ देहरी दी है। ऐसी जातियाँ प्रायः सभीकी सभी इस समय दासत्वकी शृंखलामें बद्ध होकर दूसरी युवावस्था प्राप्त जातियोंकी गुलाम बनी उनका मुख जोह रही हैं।

(३) कुछ देश ऐसे भी हैं जो नितान्त परतन्त्र नहीं हैं, उनमें अभी सिसिकनेको जान बाकी है किन्तु उनका जीवन मरनेसे भी खराब है। मुर्देको संतोष भी हो सकता है कि हम मर गये, अब हमारा शव जिसके जीमें जिस भाँति आवे उठावे धरे, पर जीवित पुरुषकी जब यह अवस्था हो जाती है कि उसे हाथ पैर हिलानेके लिये भी दूसरोंका सहारा ढूँढ़ना पड़ता है तब उसका जीवन मरनेसे भी अधिक दुःखदायी होता है।

हानोलूलूसे लेकर सिकन्दरिया तककी भूमिका कोई भाग स्वाधीन एशिया नहीं कहा जा सकता। किसीका नाम रूसी एशिया, किसीका जर्मन एशिया,

किसीका फ्रेंच एशिया, किसीका डच एशिया, किसीका पोर्चुगीज़ एशिया व किसीका नाम ब्रटिश एशिया है।

अधिकांश जगह तो इन उपर्युक्त योरपवालोंकी सम्पत्तिमें तथा साम्राज्यमें शामिल है, और जहाँ इनका राज्य नहीं है वहाँ भी इनका प्रभाव-मण्डल है। चीन, मञ्चूरिया, फ्रांस, अरब इत्यादि जगहोंमें योर-अमरीकाके भिन्न भिन्न देशोंने अपना अपना प्रभाव-मण्डल व स्वार्थ-मण्डल बना रक्खा है। सारांश यह कि इनके दबावसे कोई भी स्थान खाली नहीं है।

हाँ, एक जापान ही ऐसा देश है जिसे स्वतन्त्र शब्दका महत्त्व समझते हुए स्वतंत्र कहनेमें हिचक नहीं होती और जिसने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली है कि उसका मान योर-अमरीकाकी शक्तियोंको भी करना पड़ता है, किन्तु इस बाल-शक्तिका दिनों दिन पनपना अन्य प्रौढ़ शक्तियोंको नहीं सुहाता।

अभी चीनी युद्धके पूर्व संवत् १९५२ में जिसे अछूत, व रूसके युद्धके पूर्व संवत् १९६२ में जिसे अर्द्ध-अछूत समझते थे उसी बर्बर जापानके साथ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेमें घमण्डी योर-अमरीका वालोंको यदि आनाकानी होती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? किन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि वे इस मानसिक पीड़ाको अबतक सहन करते हैं। जो योर-अमरीका-निवासी संसारको अपना क्रीड़ा-स्थल समझते हैं, जिनके विचारमें, उन्हें छोड़कर, संसारके अन्य सब मनुष्य उनके ऐशो-आरामके सामान एकत्र करनेके लिये, उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिये तथा पशुओंको भाँति उनकी गुलामी करनेके लिये ही सिरजे गये हैं, उन्हें यदि स्वाभाविक गुलामीके पञ्जेमेंसे चन्द मनुष्योंको निकल जाते देख, नहीं, केवल निकल जाते ही नहीं वरन् बराबरीका दावा करते देख, और अपनेमें उन्हें पुनः बांधनेकी शक्ति न पाकर स्वाभाविक रोष चढ़ आवे तो इसमें उनके भ्रांतिमय पूर्व विचारोंको छोड़कर और किसका कसूर है?

जो योर-अमरीकावाले संसारमें सभी जगह स्वच्छन्दतासे विचरते हैं, जगत्में जिन्हें कहीं भी माथा नहीं नवाना पड़ता, पृथ्वीके किसी भी स्थानपर जिन्हें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं, उन्हें ही इस छोटेसे टापूमें जगह जगह अटक अटक कर चलना पड़ता है। जो अभी तक वहशी जापानियोंको "कंटेम्प्टिबुल लिटिल मंकी" ('घृणित छोटा बन्दर') के नामसे पुकारते थे, उन्हींको जगह जगह क़ायदे-क़ानूनकी पाबन्दी करते हुए माथा झुकाना पड़ता है। जिनके लिये संसारमें कहीं भी कुछ अड़चन नहीं होती उन्हींको यहाँ रेलमें सुबह उठनेपर पायख़ाने पेशाबकी तकलीफ़ व हाथ मुँहतक धोनेकी असुविधा सहनी पड़ती है। होटलोंमें नाच-रङ्ग व आहार-विहारके कुप्रबन्ध तथा उनके उपयुक्त स्वतन्त्र क्लबोंके अभावके कारण बेचारोंको जो कष्ट उठाना पड़ता है उसे देख उनपर किसे तरस न आवेगा?

भला इन सब कठिनाइयोंको ये योर-अमरीकावाले कबतक सहेंगे? जबतक सहते हैं, तभीतक जापानकी भलाई है, नहीं तो जापानकी क्या गति होगी सो पाठक समझ ही सकते हैं!

उक्त बातें तो थी हीं, उसपर एक और तुर्रा यह कि "बांड़ी बांड़ी आप गयी

... रस्सी भी लेती गयी"। आप खुद तो स्वतन्त्र हो ही गया था, कोरिया या ...से भी इनका प्रभाव मार निकाला और अब अपना सबक़ चीनको भी सिखान ...। किन्तु ये सब युक्तियां केवल योर-अमरीकावालोंको ही सूझती हैं जो अपन ... मियां-मिट्ठू बन बैठे हैं। जापान किसीके बापकी बपौतीका सिद्धान्त नहीं मानता। ... अपने अर्थके साधनमें तत्पर है। उसे अपने बाहुबल व शक्तिपर भरोसा है। ईश्वर ...को अपने प्रयत्नमें सफलमनोरथ करें यही एशियावासियोंकी आन्तरिक इच्छा है।

गत योरपीय महायुद्धने संसारके सामने एक भयानक दृश्य खड़ा कर दिया था। सारे विचारवान् मनुष्य शान्तिकी इच्छा कर रहे थे, किन्तु उन्होंने कदाचित् इसपर विचार करनेका भी कष्ट नहीं उठाया कि शान्ति योर-अमरीकाकी शक्तियोंके आपसके समझौतेका नाम नहीं है। संसारमें उस समयतक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती जबतक कि इस जगतमें एक भी मनुष्य मानव नामको कलङ्कित करनेके लिये दूसरोंका दासत्व स्वीकार किये रहेगा। 'शान्ति' शब्दका प्रयोग करना भी उस समय-तक केवल जल्पनामात्र है जबतक कि मनुष्यके हृदयसे दूसरोंको दबानेकी लालसा न मिट जावे। अफ्रीकाके बियाबानमें घूमनवाला नरदेहधारी वहशी भी जबतक दूसरोंसे दबाया जा सकता है, तबतक शान्ति स्थिर रूपसे स्थापित नहीं हो सकती। मानवजातिकी उपमा यदि एक शृङ्खलासे दी जावे तो मैं यह कहूंगा कि यह सिकड़ी उस समयतक जगत्को आगे नहीं खींच सकती जबतक इसकी एक कड़ी भी निर्बल हो। शान्तिके लिये संसारसे पराधीनताका भाव दूर करना होगा। इसका अर्थ यह है कि मज़बूतको कमज़ोर व निर्बलको शक्तिशाली बनाना होगा। यही कालचक्रका काम है। आज वह एशियाई जातियोंको हिला कर जगाने व योरपीयोंको आपसमें लड़ानेमें वही कर रहा है। योर-अमरीकावालोंको वह यह सबक़ सिखा रहा है कि "ऐ ज़बर्दस्त ज़ेरदस्त आज़ार, गर्मताके बमानद ईं बाज़ार"। किन्तु कालचक्रको यह भी नहीं मंज़ूर है कि तराज़ूके दोनों पलड़ोंको बराबर कर लंगड़के चलनेको बन्द कर दे। इसीसे वह 'बन्दर-बांट' करता है, ज़बर्दस्तको एक थप्पड़ मार इतना गिरा देता है कि कमज़ोर थोड़े दिनोंमें ज़बर्दस्त बन जाता है। किन्तु जब इसकी ज़बर्दस्ती सीमा पार कर जाती है तो इसे भी थप्पड़ लगता है, यही हाल इस संसारका है। इसमें स्वार्थको छोड़ दूसरी बात नहीं है। जो स्वार्थकी माला नहीं जपता वह घीकी मक्खीकी भांति निकालकर अलग फेंक दिया जाता है, और जो इसकी दिन रात आराधना करता है उसीका बोलबाला होता है। इसी स्वार्थके त्यागसे गिरी जातियोंकी आज गिरी दशा है, और इसी स्वार्थके अपनानेसे जापान आज जापान बना है।

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

कोरियाका ऐतिहासिक दिग्दर्शन* ।

कोरिया जिसे 'चोसेन' भी कहते हैं भारत तथा चीनके सदृश अत्यन्त प्राचीन देश है । जापानियोंका विचार है कि प्रारम्भसे ही जब जापानके राज्यका बीजारोपण हुआ था, जापान व चोसेनमें परस्पर सम्बन्ध था । कहा जाता है कि कदाचित् उस समय चोसेनके दक्षिण-पूर्व भागपर जापानी राजवंशके पूर्वजोंका कुछ प्रभाव था । अनुमान है कि यह प्रभाव उत्तर व पश्चिमकी ओर भी फैला हुआ था । कुछ समय तक यह आपसका संग बड़ा घना था, यहाँतक कि दोनों देशोंके राजवंशोंमें वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे । जहाँ एक ओर चोसेनवासियोंका सम्बन्ध जापानियोंसे था वहाँ दूसरी ओर उनका घनिष्ट सम्बन्ध चीननिवासियोंसे भी था । इन दो प्रभावशाली देशोंके बीचमें होनेके कारण चोसेनको बड़े संकटोंमें पड़ना पड़ता था । अपने स्वार्थकी दृष्टिसे इस देशको कभी एकका, कभी दूसरेका साथ देना होता था । यह साथ इस दृष्टिसे निश्चित होता था कि दोनोंमें कौन प्रतिद्वन्द्वी अधिक शक्तिशाली है ।

इस इधर उधरके झुकावके कारण इन दोनों पड़ोसी देशोंमें अक्सर शान्तिभंग होता रहा । संवत् १९३३ में जापानके साथ सन्धि होनेसे यह देश प्रथम बार संसारके अन्य देशोंकी निगाहमें एक स्वतंत्र देशकी भाँति देखा जाने लगा किन्तु आन्तरिक दुर्बलता व स्वाभाविक शक्तिशाली पड़ोसीकी ओर झुकावकी इच्छाके कारण यह देश जापानियोंके लिये विशेष कष्टका कारण बना रहा । चाहे प्रत्यक्ष कहिये, चाहे अप्रत्यक्ष, किन्तु १९५१-५२ के जापान–चीन युद्ध व १९६१-६२ के रूस-जापान युद्धका यह देश एक प्रधान कारण था । जापान-रूस युद्धके उपरांत चोसेन देश जापानियोंकी संरक्षकतामें आ गया व १९६८ में यह जापानी साम्राज्यका अङ्ग बन गया । इसीसे हमने इसका नाम 'बृहत्तर-जापान' रक्खा है ।

प्राचीन काल ।

चोसेनका भी प्राचीन इतिहास अन्य देशोंके प्राचीन इतिहासकी भाँति पौराणिक वृत्तान्तसे परिवेष्टित है ।

एक अति प्राचीन गाथाके अनुसार अत्यन्त प्राचीन समयमें ताई-हाकू जान (ताई-पेक-सान) पर्वतपर 'क्वानइन' नामका एक 'अर्ध-दैविक' मनुष्य ३००० अनुयायियोंके साथ प्रकट हुआ । इसका पुत्र क्वान-यु (क्वान-उंग) जिसका प्रचलित नाम शेन-कुन (सोन-कुन) है ओकेन (वाङ्ग-कोन) प्रान्तमें जिस आज दिन

---

*जापान सरकारके वृत्तान्तसे गृहीत ।

...करते हैं बसा। किन्तु उसके प्राचीन राज्यके सम्बन्धमें किसी प्रामाणिक लिखित पता नहीं चलता। चीनी इतिहासमें इस द्वीपकल्पके निवासियोंका परिचय पूर्वी अस्त्य मनुष्योंके नामसे चू (शू) व चिन (शिन) समयमें भी विक्रमके तीन चार शताब्दी पूर्व मिलता है। किन्तु जो कुछ वृत्तान्त प्राप्त है वह अधिकांशमें अप्रामाणिक ही है। प्राचीन जापानी गाथामें, जो चीनी गाथाके सदृश ही अप्रामाणिक है, इन चोसेनवासियोंकी चीनी गाथाके बनिस्बत अच्छा वृत्तान्त मिलता है। ये गाथाएँ--कोजीकी व निहोन-शोकी--सादी भाषामें यमातो जातिका प्राचीन वृत्तान्त बताते हुए इसका प्रमाण भी देती हैं कि जापानी द्वीपका इस चोसेन प्रायद्वीपसे घना सम्बन्ध था।

जापानी राजवंशकी सुविख्यात पूर्वजा अमातेरासू-ओमीकामीने जब जापानी राज्यकी नींव डाली तब इसमें ओ-याशीमा अर्थात् अनेक द्वीप-मालाओंके अतिरिक्त कियुशू, ईज़ूमो व चोसेनका दक्षिण-पूर्व भाग भी शामिल था। चोसेनका सम्बन्ध जापानसे था, इसके प्रमाण रूपमें एक कथाकी भी साक्षी दी जाती है जिसमें अमातेरासू ओमीकामीके लघु भ्राता सूसानोवोनो-मीकोतोके अपने पुत्र इसोताकेरूके साथ चोसेनमें जा वहाँ सोशीमोरीमें राज्य करनेकी कथा लिखी हुई है। चलनेके पूर्व सूसानोवोने अपने पुत्र इसोताकेरूको उन वृक्षोंके बीज ले चलनेकी अनुमति दी जिनकी लकड़ीसे जलयान बन सकते हैं क्योंकि कोरियामें बहुत अधिक स्वर्ण है और उसे घर भेजनेके लिये जलयानोंकी आवश्यकता होगी। इसोताकेरू अपने पिताके आज्ञानुसार बीज ले गया था। कोरिया-निवासियोंमें इसकी पूजा उद्यान-विद्याके अधिष्ठातृ-देवके नामसे प्रचलित हो गयी।

'सूसानोवो' (जिसका राज्य 'ईज़ूमो'में था) के पुत्र 'ओकूनीनूशी'के समयमें 'अमानो-हीबोको' नामी कोरिया-निवासी राजपुत्र जापानमें आ बसा। उसका बड़ा परिवार अनेक स्थानोंमें खूब फूला फला। इस परिवारका एक युवक 'कियुशू' प्रान्तमें फूकूकाके निकट ईतोमें बसा था, इसके वंशज बहुत समय तक इस कुलका नाम चलाते रहे। युककालकी दो पीढ़ियोंके उपरांत हीकोहोहो-देमी, जिम्मू-तेन्न, नृपतिका आजा, जो बूगा, कियुशूमें रहता था, कोरियामें गया और वहाँ उसने तोयोतामा-हीमे नामक राजकन्यासे विवाह किया। इन दोनोंके पुत्र उगाया-फूकी-अयेजू-नो-मीकोतोने चार पुत्र छोड़े जिनमें सबसे छोटा पुत्र उपर्युक्त जिम्मू-तेन्न, नृपति था। ये चारों राजकुमार कियुशूसे जापानके प्रधान द्वीपको पराजित करनेके लिये चले। इनमेंसे ज्येष्ठ और कनिष्ठ कुमार हूगोक प्रान्तसे आधुनिक ओसाकाकी ओर चले। इस यात्रामें उन्होंने एकके बाद दूसरी जातियोंको पराजित कर अपने अधीन किया। द्वितीय व तृतीय बन्धु दूसरी ओरसे चले, व उनमेंसे एक इनाहीनो-मीकोतोने कोरियामें पहुँच वहाँ एक राज्य स्थापित किया। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि दूसरा भाई दक्षिण चीनकी ओर गया था, कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि इसी राजकुमारका नाम काकू नृपति (कियोक) था जिसने शिरागीके राजवंशकी स्थापना की थी।

ऐसा मालूम होता है कि उस समय चोसेन प्रायद्वीप अनेक भिन्न भिन्न जातियों द्वारा बसा हुआ था जिनमेंसे अधिकांश दक्षिण-पश्चिमके कोनेमें पाये जाते थे।

एक चीनी वृत्तान्तमें, जो विक्रमके पूर्व द्वितीय शताब्दीके मध्यकालमें 'चोऊ' समयका है, इन जातियोंकी संख्या ७८ लिखी है। इनमेंसे 'शिरो' (सारो) सबसे अधिक बलिष्ठ जाति थी। इसीने 'शिन' नामी राज्यकी स्थापना की व अन्य पड़ोसी जातियोंपर भी अपनी सत्ता जमायी। शायद चोसेनमें यही प्रथम राज्य था। इस समयके बाद चोसेनकी हालतका दो शताब्दियोंतकका कोई वृत्तान्त नहीं मिलता। किन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि इस समयमें भिन्न भिन्न जातियोंके आपसके सम्बन्धमें अनेकानेक उलटफेर हुए होंगे जिनके परिणाममें तीन राजवंशोंकी स्थापना हुई होगी। इनका वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

तीन राजवंशोंका समय।

विक्रमके पूर्व द्वितीय शताब्दीके अन्तमें यह द्वीपकल्प तीन राज्योंमें विभक्त हुआ। इनके नाम हैं—शिनकान (चिन-हान, आधुनिक किशो-होकूदो), 'बेनकान' (पियोनहान, आधुनिक किशो-नन्दो), व 'बा-कान' (मा-हान, आधुनिक ज़ेनरा, चूसी, व केकिदोके भाग)। आदिमें इनका नाम 'तीनों कान' था, किन्तु अनेक उलटफेरोंके उपरान्त ये 'शिरागी' 'कुदारा' व 'कोकोलो'के नामसे प्रसिद्ध हुए व विक्रमके ४३ वर्ष पूर्वसे ७५७ वर्ष बादतक अच्छी अवस्थामें रहे।

(क) शिरागी (सिन-रा)–विक्रमके ४३ वर्ष पूर्व जब कि 'शिन-कान'की शक्तिका बहुत कुछ ह्रास हो चुका था योज़नगिरिके अङ्कमें एक प्रतापी मनुष्य उत्पन्न हुआ जिसने बची हुई शिन-कानकी ६ जातियोंका मुखिया बन उसकी शक्तियोंका पुनः उद्धार किया। इसी व्यक्तिका नाम काकू (कियोक) राजा था जिसके वंशजका नाम 'बोकू' (पाक) था। इस नामका अर्थ 'जलयान' किया जाता है जिससे इसका विदेशसे आना बताया जाता है। बहुतसे लोग इसे इनाही-नो-मीकोतो, जिम्मू नृपतिका भाई बताते हैं जिसके सम्बन्धमें कोरिया जाकर वहां एक राज्य स्थापित करना बताया जाता है। राजा काकूकी अनेक पीढ़ियोंके बाद कियुशूके रहनेवाले एक व्यक्तिने जिसका नाम सेकी (सोक) था शिरागीके राजाकी कन्यासे विवाह किया, और अन्तमें वह इस नातेसे राज्यका अधिकारी बन गया। यह घटना विक्रमकी प्रथम शताब्दीके आरम्भमें हुई थी। इस राजाने शिरागी राज्यकी शक्ति व नामकी खूब वृद्धि की। इसने वंशका नाम बदलकर की-रिन (कि-लिम) रखा। इसने एक जापानीको अपना प्रधानसचिव नियुक्तकर जापानसे बड़ा घना सम्बन्ध जोड़ लिया।

शिरागीका राज्य बोकू, सेको तथा किन वंशोंके राजाओंसे शासित हुआ। यह राज्य प्रायः १००० वर्षों तक चला। बोकू वंशके १०, सेको वंशके ८ व किन वंशके ३८ राजाओंने इस राज्यपर शासन किया।

जापानका वह भाग जो कोरियाके सन्निकट है कियुशू है जो उस समय शुकूशीके नामसे प्रसिद्ध था। यह यमातो प्रान्तकी राजधानीसे अत्यन्त दूर था। जैसे जैसे शिरागीकी शक्ति बढ़ने लगी वैसे वैसे कियुशूकी जातियोंमें वैमनस्य फैलने लगा, वे यमातो शक्तिके विरुद्ध सिर उठाने लगीं और अन्तमें इसका परिणाम संवत् १३९ वाला कुमासोका ग़दर हुआ।

महाराज कीको व राजकुमार यमातो-ताके-नो-मीकोतो इस ग़दरको शान्त करने-

... रहे किन्तु अन्तमें जब यह पता चला कि यह गदर शिरागीके राजाके उसकानेसे ... रहा है तब वीर रानी जिंगो-कोगोने संवत् २५७ में कोरियापर चढ़ाई कर दी व शिरागीके राजाको आसानीसे पराजित कर अपने अधीन कर लिया। इसके बाद यह राज्य बराबर जापानको कर देता रहा।

(ख) मिमाना (इमा-ना)—इस राज्यमें कारा (कोरिया) व ओकाया सम्मिलित थे। यह प्रान्त पुराने बेन-कान व शिनकान उत्तर-पूर्व व बा-कान पश्चिमके देशोंमें बसा था। यह समुद्रके निकट कियुशूको जो जलराशि कोरियासे पृथक् करती है उसके सम्मुख उपस्थित था। यह राज्य थोड़े काल तक शिरागीके अन्तर्गत रहनेके उपरान्त दो भिन्न स्वतंत्र राज्योंमें विभक्त हो गया। एकका नाम कारा था जिसमें ९ जातियाँ सम्मिलित थीं व दूसरेका नाम ओकाथा था जिसमें चार जातियाँ संगठित थीं। ओकायाको अकेले शिरागीके दबावसे अपना बचाव असम्भव प्रतीत होने लगा। सहायता माँगनेपर जापानने सेनापति 'शिवोनो रीहीको'को सेनासहित सहायतार्थ भेजा। इसी समयसे ओकाया जापानके संरक्षणमें आया। यह सूजीन महाराजके राजत्व-कालकी घटना है। यह प्रान्त शिवोनो रीहीकूके वंशजोंके अधीन उस समय भी था जब संवत् २५७ में रानी जिङ्गो-कोगोने कोरियापर प्रसिद्ध धावा किया था।

संवत् ३०४ में आराता-वाके व कागा-वाके सेनापतियोंने ओकायाको अपनी छः अन्य जातियोंको पुनः प्राप्त करनेमें सहायता दी थी व उसीके साथ चार और जातियोंको पराजित कर इसके साथ जोड़ दिया। इससे यह राज्य बड़ा हो गया व धनी भी हो गया। इसकी अवस्था भी सुधर गयी। यह जापानके राज्यके साथ चार शताब्दियोंतक अपना सम्बन्ध बनाये रहा।

यह दो शक्तिशाली राज्यों, शिरागी व कुदारा, के बीचमें उपस्थित होनेके कारण उन दोनोंके उत्साहको दबाये रहा किन्तु बादमें सातवीं शताब्दीके अन्तमें यह स्वयम् शिरागी राज्यमें विलीन हो गया। यह अवस्था जापानकी सहायता बन्द हो जानेके कारण हुई थी।

(ग) कुदारा (पेकचे)—कोकोली वंशके राजाओंने संवत् ३९ में बा-कानके पुराने स्थानमें रियासत स्थापित की थी। यह स्थान आज दिन जेनरा, चूसी व केकी प्रान्तोंके नामसे प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन इतिहास इस भाँति है।

विक्रमके पूर्व सातवीं शताब्दीके मध्यमें चीनका एक विख्यात पुरुष की-शी (की-चा) ईन वंशके चौ राजाके अत्याचारोंसे अपने कुटुम्ब सहित चीन छोड़ भाग आया। पहिले यह लिआओतङ्गमें आ बसा। इसके वंशज अपनी राजधानी लिआओतङ्गसे हटाकर पिङ्ग-याङ्ग (हीजो) कोरियामें ले आये। इस कि-शीके वंशज बहुत दिनों तक राज्य करते रहे किन्तु विक्रमके पूर्व दूसरी शताब्दीमें इस राजवंशको वे-मान (वीमा-न) वंशके पुरुषोंने हटा दिया। ये वे-मान वंशके लोग भी चीनसे ही भागकर यहाँ आये थे। कीशी वंशका राजा की-जुन (कि-चुन) दक्षिणकी ओर भागा, और बा-कान निवासियोंको परास्तकर वहाँ उसने अपना राज्य स्थापित किया। इधर तो इसने अपना दूसरा राज्य बा-कानमें स्थापित कर लिया, उधर वे-मान वंशका राज्य भी चिरस्थायी न हो सका। वह थोड़े ही समयमें लुप्त हो गया। प्रथम तो उत्तरी कोरियाका

भाग चीनके नवीन राजवंश हानने वे-मानके वंशजोंसे छीन चार भागोंमें विभक्त कर दिया, किन्तु ये इलाके फिरसे कोकोली वंशके प्रतापी आक्रमणकारियोंने छीन लिये। इसके उपरान्त कोकोलीके राजाके एक यशस्कामी लघु भाई ओन-सोन (ओन-चोन)ने दक्षिणमें जा बा-कानको विजयकर वहाँ कुदारा नामका एक नया राज्य संवत् ३९ में स्थापित किया। इस राज्यको शक्तिशाली बनानेमें बड़ा समय लगा। इसमें राजवंशकी कई पीढ़ियाँ व्यतीत हो गयीं। यह राज्य संवत्में २२३ जब शोको-ओ (सो-को-वाग) वंशके पाँचवें नृपति राजसिंहासनपर बैठे तब अधिक बलशाली हुआ। अब कुदारा इतना शक्तिशाली हो गया कि एक ओर शिरागी व दूसरी ओर कोकोलीसे इस द्वीपकल्पके आधिपत्यके लिये लड़ भिड़ सके। किन्तु इस समय (संवत् २५७में) विख्यात जापानी रानी जिंगोने यहाँ चढ़ाई की व कुदाराको भी शिरागी व कोकोलीके साथ जापानके अधीन होना पड़ा। कुदारा राज्य प्रायः ६७२ वर्षोंतक रहा किन्तु इस समयका अधिकांश भाग इसे जापानकी अधीनतामें ही व्यतीत करना पड़ा। उस समय कुदारा वंशके बहुतसे राजकुमार यमातो राजवंशके दर्बारमें हाज़री बजाते पाये जाते थे।

(घ) कोकोली--जब कि (संवत् ३० वि० पू०) उत्तरी कोरियामें बाऊ राजाकी मृत्युके बाद चीनका अधिकार ढीला पड़ रहा था, उसी समय मंचूरियामें कोकोली नामका एक शक्तिशाली राज्य उत्पन्न हुआ। शूमो (चू-मोंग) जिसने इस राज्यकी नींव (संवत् २० वि० पू०) में डाली थी सुंगारी नदीके किनारेपर उत्तरी मंचूरियामें रहता था किन्तु धीरे धीरे दक्षिणकी ओर धँसता धँसता कोकोली वंश रूरी (यु-नगो) जो शूमोका पुत्र था, उसके समयमें यालू नदीके दक्षिण तटतक आ पहुँचा। इसके पुत्र बाकू-राई-ओ (मू-री-वाँग)ने ७५ विक्रममें अपनी सीमाको और दक्षिणकी ओर बढ़ाया एवं हान राजवंशकी सारी भूमिको अपने राज्यके अन्तर्गत कर लिया। किन्तु विक्रमकी तीसरी शताब्दीके मध्यकालमें कोकोलीकी राज्यसीमाका बड़ा संकोच हुआ। इसका प्रधान कारण कोसोन (कोङ्ग-सोन) राजवंशके बढ़ते हुए प्रभावका दबाव था। यह नवीन राजवंश चीनमेंसे वीआई वंशके प्रतापसे निकाले जानेपर लीआओतङ्गमें जा बसा था।

कोकोली वंशने जब कुछ चलते न देखा तो अन्तमें सरल मार्गका अवलम्बन कर संवत् ३०४ में अपनी राजधानी पिङ्ग-याङ्ग (हीजो) में स्थापित की। इस समय जापानका प्रभाव इस द्वीपकल्पमें बढ़ रहा था और उसके प्रतापके कारण कोकोलीको शिरागी व कुदाराके साथ इस द्वीपराज्यकी प्रभुता स्वीकार करनी पड़ी। इस राज्यसे बहुतसे पुरुष, कुछ बन्दीकी भाँति व कुछ स्वेच्छासे, जापानमें आ बसे। इन्हीं लोगोंकी बस्तीका नाम कोरिया बस्ती (कागजिन-ईको) अभीतक है और यमातो प्रान्तमें अब भी ये अपने श्रेष्ठ शिल्पचातुर्यका परिचय देते पाये जाते हैं। कोकोली वंशका उपहार लेकर प्रथम राजदूत जापानमें संवत् ३५४ में आया था। अत्यन्त दूर होनेके कारण कोकोलीका जापानसे घना सम्बन्ध होना नहीं पाया जाता। यह राज्य बहुत दिनों तक जापानको कर भेजता रहा।

लीआओतङ्गमें कोकोली वंशको कई बार कालके चक्रमें पड़ना पड़ा। किन्तु

पृथ्वी प्रदक्षिणा

२०३ मीटर ऊँची पहाडीपर स्मारक (पृष्ठ ३३६)

चीआई राजवंशके पतनके उपरान्त दक्षिणसे कोकोली राज्यपर जो दबाव पड़ता था वह ढीला पड़ गया। अब उत्तरकी ओरसे टंगूस व तातार जातियोंका दबाव आरम्भ हुआ और उसीके साथ हसेन-पाई जातिवाले भी जो टंगूस जातिके ही थे और लीआओतङ्गमें बसते थे कोकोलियोंको तङ्ग करने लगे। किन्तु लीआओतंग एक बार पुनः कोकोलियोंके बीसवें राजा चो-जू-ओ (चङ्गसू-वांग) की राज्य-सीमामें आ गया (४७७-५४७ विक्रम)।

राजवंशोंकी कथा।

त्रिराजवंशका पतन—सप्तम शताब्दीमें शिरागी, कुदारा व कोकोली राजवंशों-की आपसकी द्वेषाग्नि अधिक भभक उठी व उसकी ज्वाला अन्तिम सीमातक पहुँच गयी, यहाँतक कि एक जापानसे सहायता लेता था तो दूसरा चीनसे और वे सारे द्वीपकल्पपर अपना राज्य स्थापित करनेके लिये आपसमें कटते मरते थे। अन्तमें शिरा-गीका राजा चीनकी सहायतासे, जो उस समय तङ्ग वंशके अधीन था, कुदारा व कोकोलीको संवत् ७२७ में पराजित करनेमें समर्थ हुआ। किन्तु दूसरी ही शताब्दीमें नवीन राज्य बोकाई (पोहाई)का उत्तरी-पश्चिमी सीमापर इतना दबाव पड़ा कि शिरागीका आधा उत्तर-पूर्वका राज्य उसकी अधीनतासे निकल गया (७७० विक्रम)। अगली दो शताब्दियोंमें भिन्न भिन्न जातियोंने स्वतंत्रताके लिये जो भीतरी बखेड़े मचाये थे, उनके कारण यह राज्य और शिथिल पड़ गया, यहाँतक कि ८७७ विक्रममें कोरिया (कोली) का राज्य काईजौमें स्थापित हो गया।

कोली (कोरिया) वंश।

ओकेम (वांगकोन) वंशके प्रथम राजाने १८ वर्ष पर्यन्त लड़ाई भिड़ाई करके सारे द्वीपकल्पको एक पताकाके नीचे किया और सारे देशमें एक साम्राज्य स्थापित हुआ। यह राज्य पाँच शताब्दियोंतक बड़ी उन्नत दशामें रहा। इस कालमें देशवासी बड़े सुखी रहे। यहाँ इस समय हर प्रकारकी शान्ति विराजती थी, इसी समय सभ्यता व बौद्ध धर्मकी चर्चा भी यहाँ खूब बढ़ी। किन्तु इस राज्यको पड़ोसियोंसे बचाये रखनेमें बड़ी कूटनीतिसे काम लेना पड़ा, क्योंकि इसी समयमें एक एक करके सङ्ग, लीआओ, किन, युआन राजवंश आधुनिक मंचूरिया व उत्तरी चीनमें उठे व मिटे। ये आपसमें खूब लड़ते भिड़ते रहे। समय समयपर विजयिनी जातियोंका संग देकर उनकी हाँमें हाँ मिलानेमें कोरियाको बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती थी। किन्तु इस चातुर्य-नीतिमें इसे सदा सफलता ही प्राप्त नहीं होती रही।

पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्य युगमें कोरियाके अन्तिम राजाको यह निश्चय करनेमें बड़ी दिक्कत पेश आयी कि वह शिथिलताकी ओर जाते हुए युआन वंशका साथ दे या प्रतापी और बढ़ते हुए मिंग वंशके साथ हो। वह इस भाँति दुविधामें पड़ा ही था कि उसके सबसे बलिष्ठ सेनापति ली-सीई-कीई (ली-सौंग-कियु) ने १४४९ विक्रममें उसे हराकर उसका राज्य स्वयम् छीन लिया। इसके एक सौ वर्ष पूर्व कोरियाको कुबलिया खाँके जापानी धावेमें सहायता देनेके कारण बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी।

लीवंश ।

कोरिया राज्यके सेनापति ली-शीई-कीईका यह विचार बहुत ठीक था कि मिंग वंशके विरुद्ध युआन वंशसे षड्यन्त्र करनेमें राजा देशपर बड़ी आपत्ति ला रहा है। इस कारण उसने जीर्ण कोली वंशको निर्मूल कर दिया और अपना नवीन राज्य कानयो (कीईजो) में स्थापित किया। इस राजाने पुराना नाम चोसेन, जो सर्वप्रिय था, पुनः प्रचारित किया। इस नवीन राजाने मिंग वंशको उपहार दे उसकी अधीनता स्वीकार की और देशमें चीनी कानून व चीनी विद्या तथा सभ्यताका प्रचार किया।

टायसो (तायें-चौंग) वंशके तृतीय राजाने (१४५८–१४७५ विक्रम) देशमें चारोंओर विद्यालय स्थापित किये व चीनी पुस्तकोंके मुद्रणार्थ अक्षर ढालनेका भी एक कार्यालय खोला।

चतुर्थ नृपति सीसो (सी-चौंग १४७६–१५०७) ने एक सार्वजनिक भवन बनवाया जहाँ गम्भीर शास्त्रोंकी विवेचना होने लगी। इसी राजाने उनमून नामी कोरियन अक्षरोंका आविष्कार किया जो श्रवणेन्द्रियके सिद्धान्तपर बने हैं (जापानी अक्षरोंका नाम काता काना है। चीनमें इस प्रकारके अक्षर अबतक प्रचलित नहीं हैं)। इसीने देशमें ज्योतिष तथा यन्त्र विद्याका भी प्रचार करवाया, स्वयम् बहुत सी उत्तम उत्तम पुस्तकोंका सम्पादन किया, राज्यकर-पद्धतिको सुधारा तथा कारागार-सम्बन्धी नियमोंका भी संशोधन किया। यह लीवंशके कालका स्वर्णयुग वा सत्ययुग था।

दसवें नृपति इनजान-कुन (योन-सान-कुन १५५२–१५६३) के उपरान्त देशमें अराजकताकी वृद्धि होने लगी और देश आपसके लड़ाई-झगड़ेसे दुःख उठाने लगा। इसीके साथ साथ राज-कर्मचारियोंमें भी दूषण बढ़ने लगे।

जापानी आक्रमण ।

चतुर्दश नृपति सेनसो (सोऊचङ्ग १६२४-१६६५) के समयमें विख्यात तोयोतोमी हिदेयोशी, जापानी प्रधान सचिव व सेनापतिका इस देशपर आक्रमण हुआ। यह आक्रमण सारे देशपर फैला था। अन्तमें इस सेनापतिने राजधानी (कीईजो) व प्राचीन हीजोको परास्तकर हीजोमें जापानी सेनाके लिये एक बड़ा दुर्ग निर्माण किया। राजा गिशू नगरमें भाग गया व मिंग राजवंशकी सहायतासे नाममात्रके लिये राज्यको बचा लिया। चीनियों व जापानियोंमें कई वर्षोंतक यह युद्ध चलता रहा। जब मंचू वंशका प्रभाव बढ़ा तब कोरियाने इसका साथ दिया और मिंग वंशको तिलांजलि दी। अब कुछ समय तक कोरिया बाहरी शत्रुओंके आक्रमणसे बचा रहा और अट्ठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें शिल्प व विद्याकी फिर कुछ कुछ उन्नति यहाँ होने लगी। किन्तु आरामतलबी, सुस्ती, कूटनीति व आपसके कलहने वास्तविक उन्नतिके मार्गमें बहुत कुछ रुकावट डाली और उसके स्वाभाविक प्रसारको रोक दिया। इतनेमें ही १९०६ में पच्चीसवें राजा कें-सोकी मृत्यु हो गयी। इसने राज्यका कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़ा था। बस इस प्रश्नको लेकर कि सिंहासनारूढ़ कौन हो, लोग आपसमें लड़ने लगे। छब्बीसवाँ

राजा टेस्सो (चोल-चौंग) इन्हीं गड़बड़ोंके मध्यमें सिंहासनपर बैठ गया । तबसे किन् (किम्) व विन् (मिन्) वंशोंमें भयानक कलह मचना आरम्भ हुआ जिसके कारण देशपर विपत्तियोंका बादल टूट पड़ा । प्रजापीड़न, कुशासन व अराजकताका राज्य चारोंओर देशमें फैल गया। इस समय अच्छा मौका देखकर विदेशियोंने हस्तक्षेप करनेकी अनुमति चाही । इस समय ताइ-ईन्-कुन् (तायें-वान्-कुन्) ने जो बालक-राजाका संरक्षक था देशमें नवीन स्फूर्ति फूकनी चाही किन्तु वह कृतकार्य न हो सका । उसका सब प्रयत्न निष्फल गया ।

जापान-रूस युद्ध ।

जापानके हस्तक्षेप करनेसे --- देश चीनसे स्वतन्त्र हो गया किन्तु चीनका षड्यन्त्र बन्द नहीं हुआ । नतीजा उसका यह निकला कि १९५१–१९५२ में जापानने चीनसे लड़ाई छेड़ दी । इस युद्धके उपरान्त कोरिया चीनसे बिलकुल स्वतन्त्र हो गया और देशका नवीन नाम कान (हान) रक्खा गया किन्तु आपसका षड्यन्त्र अब भी नहीं मिटा । भीतर ही भीतर भिन्न भिन्न वंश आपसमें राजनीतिक चालें चलते ही रहे यहाँतक कि १९६१-१९६२ में जापान-रूस युद्ध भी इसीके कारण छिड़ गया । रूसको पराजित करनेके उपरान्त जापानने कोरियाको स्वतन्त्र छोड़नेमें अपनी भलाई न देखते हुए पोर्ट्स माउथकी सन्धिसे कोरियापर अपने अधिकारकी घोषणा कर दी और प्रिंस ईतो यहाँके प्रधान 'रेज़ी-डेण्ड' (रेज़ीडेण्ट जनरल) नियुक्त हुए । अब देशमें जापानी प्रभावसे बाह्य उन्नति आरम्भ हुई । कहा जाता है कि १९६८

प्रिन्स ईतो

में कोरियाके राजाने स्वेच्छासे अपना अधिकार त्याग कोरियाको पूर्णतया जापानका दास बना दिया। स्वतन्त्रतासे निकलकर देश पूर्णतया दासत्वकी शृङ्खलामें बँध गया। अब इसके नवीन प्रभुओंने इसको फिरसे तृतीय बार चोसेन नाम दिया है।

जापानका नूतन राज्य

१९६८ से १९७२ तक केवल चार ही वर्ष होते हैं किन्तु इसी अल्प समयमें जापानने अपने अधिकारको दूसरोंकी निगाहमें सार्थक करनेके लिये यहाँ अनेक प्रकारकी उन्नति व तड़क-भड़कके कार्योंको प्रारम्भ किया है। स्यूल नगर जो यहाँकी राजधानी है हर प्रकारसे सुसज्जित हो रहा है। विद्युत् प्रकाश, शुद्ध जल, चौड़ी चौड़ी सड़कें, यहाँतक कि सण्डासका भी प्रबन्ध यहाँ हो रहा है, यद्यपि जापानमें अभीतक सण्डास कहीं नहीं बनाये गये हैं।

चार ही वर्षोंमें लाखों जापानी यहाँ आ बसे हैं और प्रतिदिन इनकी अधिक संख्या यहाँ आती जाती है। जापान सरकार इस देशको विदेश नहीं रहने देना चाहती वरन् इसे अपनाना चाहती है। कोरियन व जापानी लोग जातिकी दृष्टिसे इतने निकट हैं कि इनका आपसमें मिल जाना असम्भव नहीं है। जापान आपसके वैवाहिक सम्बन्धको भी खूब सहायता दे रहा है। उसकी इच्छा है कि कोरिया भी होकैद्रोकी भाँति जापानका अङ्ग बन जावे, केवल जापानके अन्तर्गत विदेशी राज्यकी भाँति न रहे। उसकी इच्छा है कि यह स्काटलैंडकी भाँति इङ्गलिस्तानसे मिलकर ग्रेटब्रिटेनकी भाँति ग्रेट जापान बनावे किन्तु अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इस परिश्रममें जापान सफल होगा या नहीं। यदि कोरिया जापानसे स्काटलैंडके इङ्ग-लैंडके साथ मिलनेकी भाँति मिल गया तो अवश्यमेव यह पञ्चामृत दोनों देशोंके लिये शुभकर होगा किन्तु यदि यह मिलाव आयर्लैंडके साथ मिलनेकी भाँति केवल तेल-जलके मिलावके सदृश हुआ तो यह प्राच्य देशमें एक नवीन समस्या उपस्थित कर देगा। देखें, इसका क्या परिणाम होता है। यह एक नवीन समस्या हल हो रही है। इसकी ओर सारे जगत्की आँख लगी है।

कोरियावालोंका पहिरावा (पृष्ठ ३०९)

स्त्रियां भी पायजामा पहनती हैं (पृष्ठ ३०९)

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

चोसेनके स्त्री-पुरुषोंकी चालढाल ।

इस देशमें एक सप्ताहसे भी कम रहनेका अवसर मिला, इससे स्वयम् अपने अनुभव द्वारा इस देशके बारेमें कुछ वर्णन करना देशके प्रति अन्याय करना अधिक पुस्तकावलोकनके अभावके कारण अन्य पुरुषोंकी सम्मति तथा अनुभवसे लाभ उठानेकी योग्यता भी मुझमें नहीं है। इसलिये यह जानते हुए भी कि जापानी इस देशके प्रभु हैं, उन्हें यह देश अपने पास रखना ही है, इस कारण उनकी सम्मति स्वार्थभावसे अछूत व निष्पक्ष नहीं हो सकती, मुझे उनके दिये हुए वृत्तान्तको छोड़कर अपने भाइयों तक इनका समाचार पहुंचानेका और कोई उपाय नहीं है। इससे पाठकगण उपर्युक्त अध्यायमें दिये हुए इतिहास तथा नीचे दिये हुए अन्य वृत्तान्तोंको पूर्णतया प्रामाणिक न समझते हुए अपनी स्वतन्त्र राय बनावें। यह वृत्तान्त केवल इस दृष्टिसे लिखा जा रहा है कि एक नवीन देशके बारेमें देशवासियोंको कुछ न कुछ परिचय अवश्य मिल जावे। जिन्हें इसके पाठके उपरान्त अधिक वृत्तान्त जाननेकी अभिलाषा होगी वे अन्य पुस्तकोंके अवलोकनसे तथा इस विचित्र प्राचीन देशकी यात्राका कष्ट उठाकर ठीक ठीक समाचार जाननेका प्रयत्न करेंगे।

इस देशके मनुष्योंको देखकर एक बार भारतवर्षके पञ्जाबी सिक्ख भाइयों तथा साधारण रीतिपर मुसलमान भाइयोंका स्मरण हो आता है। यहाँके पुरुष प्रायः दाढ़ी रखते हैं व इनके सरके बाल भी बड़े होते हैं जिन्हें ये माथेके ऊपर कंघी कर बाँध रखते हैं। इन्हें देखनेसे सिक्ख भाइयोंके केश याद आते हैं। टोपी पहिननेके पूर्व ये लोग माथेके गिर्द एक काले रङ्गकी पट्टी बाँधते हैं जो एक प्रकारसे सिक्खोंके मस्तकपरके चक्र सी देख पड़ती है। यहाँके लोग प्रायः सफेद रङ्गके कपड़े पहिनते हैं। सभी लोग एक प्रकारका पायजामा पहिनते हैं जिसे नीचे पैरके गुल्फके पास बाँध देते हैं अर्थात् मोहरी खुली नहीं रहने देते, ऊपर बरमें एक मिर्जई पहिनते हैं, बाहर लम्बा एँड़ी तकका अंगरखा। अंगरखा व मिर्जई ये दोनों बगलबन्दीकी भाँति होती हैं। दाहिनी ओरका पल्ला बाईं ओरके पल्लेके नीचे जाता है व ऊपर बाईं ओरका पल्ला दाहिने वक्षस्थलके पास एक बन्द द्वारा बँधा रहता है। माथेपर ये लोग काले तारकी बनी हुई एक प्रकारकी टोपी पहिनते हैं, जैसी हमारे खत्री भाइयोंके यहाँ छोटे बच्चेको अंग्रेजी टोपी पहिनायी जाती है।

स्त्रियोंकी पोशाक

स्त्रियोंकी पोशाक भी प्रायः मर्दोंकी ही भांति होती है। ये भी पायजामा पहिनती हैं और मिर्जईकी जगह एक अंगिया, जो बहुत ही छोटी होती है। जो श्रमजीवी स्त्रिया केवल उसीको पहिनकर बाहर कार्य्य करती हैं उनका अंग उस

छोटे कपड़ेसे नहीं ढंकता; हां, उनका पायजामा बहुत ऊंचा पेटके भी ऊपर बाँधा जाता है। मध्यमश्रेणीकी स्त्रियाँ पायजामेके ऊपर चोलीका दामन दबाकर एक प्रकारका ढीला, श्वेत वा कपूरी रङ्गका लहँगा पहिनती हैं। ये अपने बाल प्रायः भारतवर्षकी स्त्रियोंकी भाँति लंबी चोटी करके बाँधती हैं। किन्तु अन्य प्रकारसे भी बाल बाँधनेकी प्रथा यहाँ प्रचलित है जो बड़ी विचित्र है। इसमें बाल एक प्रकारसे मुकुटकी भाँति देख पड़ते हैं। यहाँ पर्देका सख्त रिवाज़ था। स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलती थीं। केवल रात्रिमें एक घंटा बजता था तब सब पुरुष घरमें चले जाते थे और स्त्रियाँ घंटे भरके लिये बाहर आती जाती थीं। दिनमें बाहर आनेके लिये एक प्रकारका लम्बा अंगरखा फर्गुलकी भाँति माथेपरसे नीचे छोड़ लेती थीं इससे उनका मुख नहीं ढपता था पर सब अंग ढप जाता था। पर्देका रिवाज़ घट रहा है किन्तु प्रतिष्ठित धनी लोग अब भी इस मर्यादाको निबाहते हैं। स्यूल नगरमें अब भी स्त्रियाँ यह लम्बा अंगा ऊपर डालकर निकलती हैं। इस लम्बे अंगरखेके बदलेमें छाता भी प्रयुक्त होता है। जो यह लम्बा अंगरखा नहीं ओढ़तीं वे छाता लगा लेती हैं। रात्रिमें पानी न बरसते हुए भी स्त्रियोंको छाता लगाये देखकर पहले बड़ा कौतूहल हुआ था पर रहस्य मालूम पड़नेसे सन्देह दूर हो गया।

चोसेन देशमें आनेके पूर्व मेरा विश्वास था व मेरे अतिरिक्त अन्य और भी बहुतसे लोगोंका यही विश्वास होगा कि पर्देकी प्रथा महात्मा मुहम्मदके बाद मुसलमानी धर्मके साथ साथ उत्पन्न हुई है और यह प्रथा या कुप्रथा कहिये, केवल उन्हीं देशोंमें प्रचलित है जहाँ जहाँ मुसलमानी सभ्यताका असर पड़ा है; यद्यपि साथ ही यह कहना भी सत्य है कि संसारके मुसलमानी सभ्यताप्रधान देश मिश्र इत्यादिमें भी यह कुप्रथा उस चरमसीमा तक नहीं पहुंची है, जहाँतक कि वह भारतमें है। किन्तु इस देशमें भी पर्देका रिवाज़ देखकर चकित होना पड़ा और अभी तक इसके निश्चयका अवसर नहीं प्राप्त हुआ कि यह प्रथा यहाँ स्वतंत्र रूपसे है वा मुसलमानी धर्मके साथ साथ आयी है। यह भी याद रखनेकी बात है कि चीन, मन्चूरिया व कोरियामें भी मुसलमान धर्मावलम्बी मनुष्य हैं।

कोरियानिवासियोंका भोजन।

यहाँके लोग दिनरातमें तीन बार भोजन करते हैं—प्रातः काल कलेवा, दोपहरमें रसोई व रात्रिमें व्यालू। खुशहाल लोग चावलका अधिक प्रयोग करते हैं किन्तु निर्धन जन चावलकी जगह ज्वार बाजरेके भातसे ही काम चलाते हैं। दाल यहाँ अनेक प्रकारकी होती है। मूंग भी मिलती है किन्तु ये लोग दाल हमारी भाँति नहीं खाते वरन् उसकी पीठी बनाकर भिन्न भिन्न प्रकारके खाद्य पदार्थ उससे बनाते हैं। भातके अतिरिक्त नाना प्रकारकी भाजी व सूखी मछली इनका प्रधान खाद्य-पदार्थ है। इनके अतिरिक्त हर प्रकारके जलचर, भूचर, नभचर, जीवजन्तुओंका मांस भी ये लोग प्राप्त होनेसे खा लेते हैं। पशुओंके आन्तरिक यन्त्र, यकृत, प्लीहा इत्यादि यहाँ असाधारण उत्तम खाद्य पदार्थ समझे जाते हैं। यहाँ नोन व मिर्चापर अधिक रुचि है, पियाज भी बहुत व्यवहारमें आता है। तिलका तेल भी बहुत
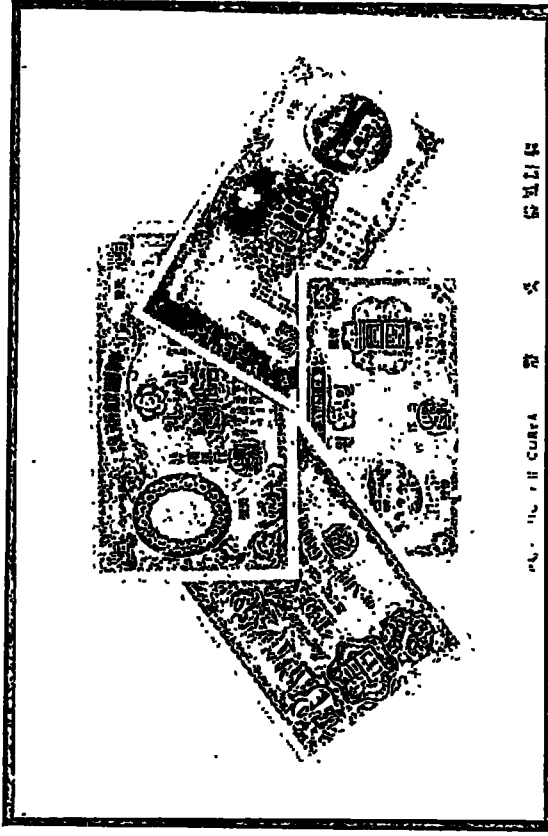
कोरियाके कागजी सिक्के ।

कोरियाके मकान, क्षुद्र भोपड़े (पृष्ठ ३११)

:या जाता है। गाय-बकरियोंके रहते हुए भी यहाँ दूध-घीका व्यवहार बहुत कम
यही अवस्था जापानमें भी है और सुनते है कि चीनमें भी यही हालत है।

कोरियाके मकान।

यहाँके गृह बड़े ही क्षुद्र झोपड़ोंके होते हैं जो अत्यन्त मैले व छोटे रहते
फ़ूसनसे स्यूल तक प्रायः दो ढाई सौ मीलकी यात्रामें भी ईंट व खपड़ेके मकान
हीं देख पड़े। किन्तु स्यूलमें पुरानी राजकीय इमारतें बहुत अच्छी अच्छी देख पड़ीं
संग्रहालयमें दो सहस्र वर्ष पूर्वके भी खपड़े, ईंट व अन्य पके हुए मिट्टीके पात्र
मले, जिससे ज्ञात होता है कि आधुनिक हीनावस्थाका कारण अत्यन्त निर्धनता है,
त्तम गृह बनानेके ज्ञान तथा अभिलाषाका अभाव नहीं।

महाशय गेल नामके एक पादरी यहाँ बीस वर्षोंसे रहते हैं। उनसे बातें
करने तथा देखनेसे भी ज्ञात हुआ कि यहाँके निवासी श्रम करनेको तथा अन्य मेहनत,
शक्कतके कामको नीची निगाहसे देखते हैं। भूखे मरते रहना इन्हें कबूल है पर हाथसे
म कर अपनी इज्जतमें बट्टा लगाना ये पसन्द नहीं करते। यही फाकेमस्ती हमारे
शमें भी पायी जाती है। इसके जाननेके उपरान्त यहाँकी हीनावस्थाके कारणका
हुत कुछ पता चल गया। जब किसी देशमें ऊँच-नीचका भाव आ जाता है व श्रम
रना नीचा ख्याल किया जाने लगता है तब उस समाजकी अधोगति प्रारंभ होती है
व घुन लगे वृक्षकी भाँति समाज भीतर भीतर खोखला होने लगता है। अन्तमें एक
दिन आता है कि जरासे हवाके झोंकेको भी सम्हाल सकनेकी शक्ति न रहनेके कारण
ठूठ-मूठ ऊंचा उठा हुआ वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ता है। इस गुलामीकी अवस्थामें भी
इस देशमें यह दशा है कि घरोंमें टहल करनेवाली श्रमजीवी स्त्रियाँ भी एक छोटी
सी पोटली व गठरी हाथमें उठा बाज़ारसे घर लानेमें अपनी मानहानि समझती हैं।
ऐसी अवस्था होते हुए इस देशका और क्या हो सकता था?

इस फाकेमस्तीका सहायक जातपाँतका भेद भी यहाँ उपस्थित था और अब
भी है। यहाँ चार प्रकारकी जातियाँ हैं (१) उत्तम जातियाँ जिन्हें 'यांग पान' कहते
हैं (२) मध्यम जातियाँ (इनका नाम नहीं मालूम। शायद कोई विशेष नाम नहीं
हैं) (३) साधारण जातियां जिन्हें 'सांग नोमे' कहते हैं (४) इनके अतिरिक्त 'पेक-
चोंग' नामकी एक और जाति इनसे भी नीची है, यह विदेशियोंके वंशजोंसे बनी है।
अन्तिम जाति दासोंकी है।

इनमेंसे उत्तम जाति (यांग पान) के दो विभाग थे--टोंगपान व सोपान।
इनमेंसे प्रथम राजकाजके उच्च पदोंपर रह सकते थे व दूसरे सेनामें उच्च पदाधिकारी
होते थे। ब्राह्मण-क्षत्रियसे इनकी तुलना करना अनुचित न होगा। इनके स्वत्व
व अधिकारोंकी भी कथा ज्योंकी त्यों मैं नीचे उद्धृत करता हूं।

राजकाजके सभी पदोंके ग्रहण करनेका अधिकार इनके अतिरिक्त और जाति-
योंको न था। इसपरसे भी ये युद्धसे बरी थे। इन्हें राज-कर नहीं देना होता था
व अपराध करनेपर शारीरिक दण्डसे भी ये मुक्त थे। न्यायालयमें इन्हें खड़े रहनेका
अधिकार था किन्तु अन्य लोगोंको घुटनेके बल झुके रहना पड़ता था। यात्रा

'यांगपान' जातिके उच्च पदाधिकारीकी वेशभूषा ।

करते समय इन्हें अधिकार था कि पहलेसे टिके हुए अन्य यात्रियोंको निकालकर वासों व चट्टियोंमें ये सबसे उत्तम स्थान ले सकें। जब इनसे मामूली श्रेणीके लोग बोलते थे तब उन्हें श्रीमान् हुजूर इत्यादि शब्दोंका प्रयोग करना पड़ता था। इनके सामने हुक्का पीने, चारपाईपर बैठने अथवा घोड़े इत्यादिपर चढ़नेका अधिकार नीची श्रेणीवालोंको नहीं था। अब ज़रा इनकी दशाको अपने यहाँके ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी दशासे मिलाइये। हमारे यहाँ भी हिन्दू दण्ड-नीतिके अनुसार ब्राह्मणोंको प्राण-दण्ड नहीं मिल सकता। अब भी ग्रामोंमें ब्राह्मण-क्षत्रियोंके सामने अन्य जातिवाले हुक्का नहीं पी सकते, चारपाईपर बैठे नहीं रह सकते, यहाँ तक कि घाममें छाता

कोरियाकी स्त्री (पृष्ठ ३१०

प्रतिष्ठित धनियोंमें पर्दा (पृष्ठ ३१०)
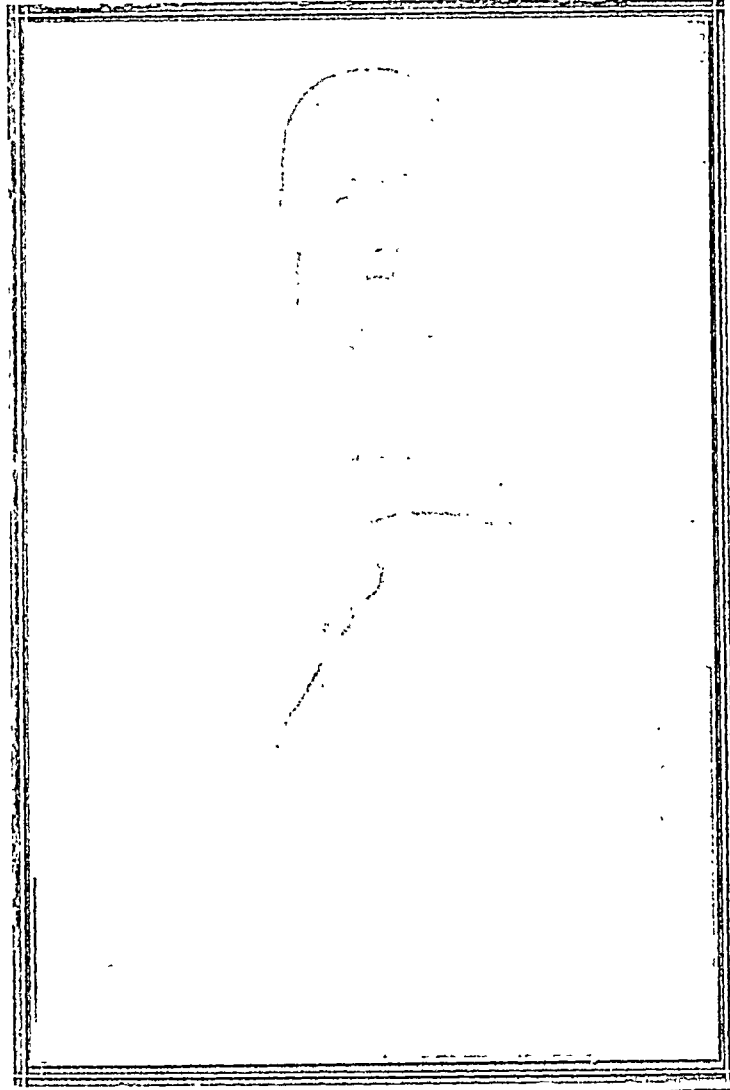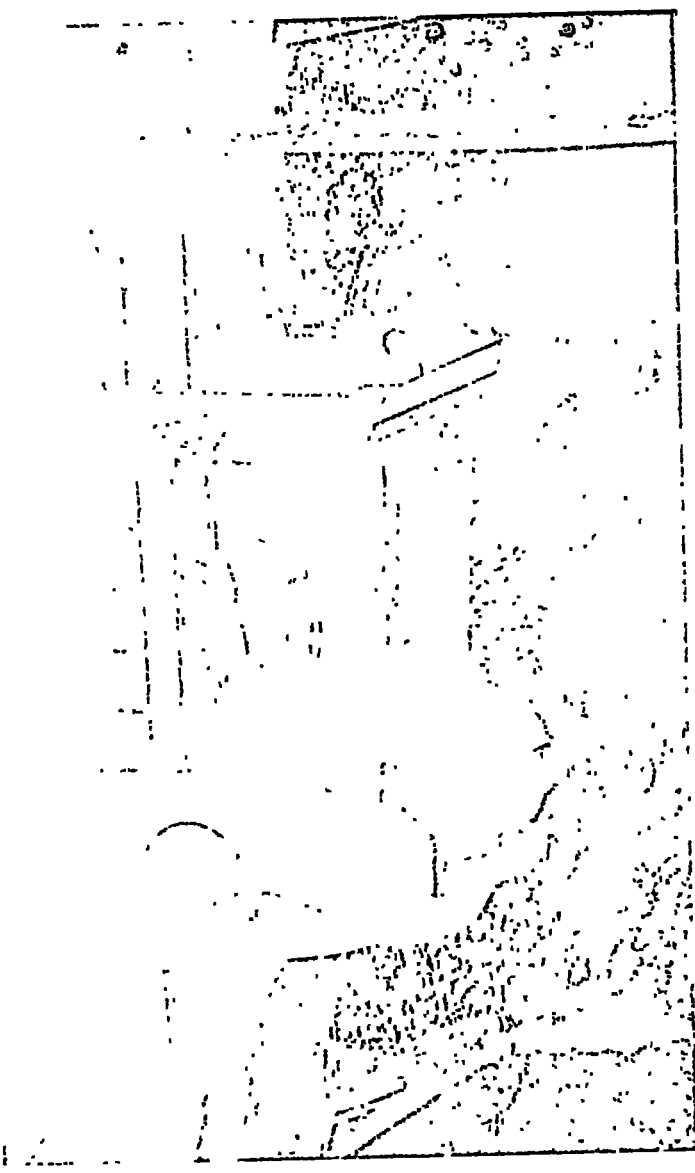
नहीं लगा सकते। बेचारे कितने ही गरीब, जो कलकत्ते, मुम्बईसे लौटते वक्त अपने साथमें छाते ले आते हैं, यदि भूलसे उन्हें अपने गाँवमें लगा लें तो ये घमण्डी लोग थप्पड़ मार उनसे छीन लेते हैं। न जाने यह 'ज़बर्दस्तका ठेंगा सिरपर' की कुप्रथा संसारमें क्यों और किससे चल पड़ी है।

मध्यम श्रेणीके लोगोंको राजकाजमें उच्च पद नहीं मिलते थे किन्तु उन्हें रोज़गार-धन्धा कर जीविका कमानेकी मनाही न थी। उच्च श्रेणीवाले लोग काम-धन्धा नहीं पाते थे, इससे यद्यपि कहनेके लिये वे मध्यम श्रेणीसे उच्च गिने जाते थे, तो भी उनकी आर्थिक अवस्था हीन थी जैसी हमारे यहाँ अन्य व्यापारियोंकी अपेक्षा ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी है। सांग नीम श्रेणीमें कृषक, लोहार, बढ़ई, व्यापारी व अन्य पेशेवाले शामिल थे। दासोंका कुछ अधिकार न था। वे अपने स्वामियोंकी सम्पत्ति थे, वे बेचे जा सकते थे, दूसरोंको दिये जा सकते थे, राज-कर्मचारियोंको सूचना देकर उनका वध भी किया जा सकता था। उन्हें अपनी सन्तानोंपर भी अधिकार न था। अवस्था ठीक वैसी ही थी जैसी कि १९२४ विक्रमके पूर्व अमरीकामें थी।

कानूनी दृष्टिमें यह सब जातपांत तथा गुलामीकी अवस्था जापानी प्रभुओंने उठा दी है, किन्तु सदियोंसे पड़ी आदत तुरन्त नहीं मिट जाती। उसे मिटनेके लिये यदि उतना नहीं जितना कि पड़नेमें लगा था, तब भी आधा समय अवश्य चाहिये। यहाँकी तो बात ही दूसरी है, सभ्यताके घमण्डी अमरीकासे भी अभी तक गुलामी नहीं दूर हुई। वहाँ अब भी गोरे मनुष्य रङ्गीन मनुष्योंके साथ रेल या ट्राममें नहीं चढ़ना चाहते। वे जरा जरा सी बातपर निर्बल काले मनुष्योंको पकड़कर 'लिञ्च' कर डालते हैं। अपनी ही अवस्था आप क्यों नहीं देखते? जूते खाते शताब्दियाँ बीत गयीं पर अभी माथेकी खुजली नहीं मिटी। गौतम, कणाद, राम व अर्जुनकी सन्तान होनेका घमण्ड बाकी ही है—वही मिसाल है "भुँई बित्तौ नाहीं नाम पृथ्वीपाल सिंह" वा "बूतो तनिकौ नाहीं नाम बरियार सिंह"।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद।

—:o:—

फूसनसे स्यूलकी यात्रा।

आज ९ बजे प्रातःकाल ही हमारा जलयान घाटपर इधर उधर आगे पीछे डोलता हुआ एक घंटेमें किनारे लगा। जेटीपर ही दूसरी ओर रेल खड़ी थी। मैंने अपना असबाब नौकामेंसे उतार रेलमें रखवा दिया। पूछनेसे मालूम हुआ कि अभी रेलके रवाना होनेमें एक घंटेकी देर है। इस अवसरको भी व्यर्थ न जाने देनेके ख़यालसे मैंने एक पथप्रदर्शकको साथ ले नगर देखना चाहा। पथप्रदर्शक एक जापानी महाशय मिले। यहाँके जापानी और जापानके जापानियोंमें भेद है। यहाँके जापानी चाहे कुली ही क्यों न हों किन्तु प्रभुवर्गके होनेके कारण वे एक प्रकारसे भिन्न प्रकृतिके हो जाते हैं। जिस प्रकार एक गरीब और एक अमीरके तथा एक शिक्षित और एक अशिक्षितके मनन और विचार-प्रणालीमें भेद है उसी प्रकार विजेता और विजित, प्रभु और दासकी विचारशैलीमें भी अन्तर होता है। ठीक है, जिसके पैरमें बेवाई नहीं फटती, वह दूसरेको उस अवस्थामें क्या दुःख होता है, नहीं समझ सकता। पाश्चात्य विद्वानोंने आनुषंगिक विचार-गति (कम्पेरेटिव साइकालाजी) का भलीभाँति मनन करनेके लिये विश्वविद्यालयोंमें इस विषयकी पृथक् गद्दियाँ स्थापित की हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालयके इस विषयके अध्यापकसे मेरे एक भारतीय मित्रने प्रश्न किया था कि क्या आपने इसपर भी विचार किया है कि स्वतन्त्र मनुष्य और दास मनुष्य एक प्रश्नपर एक ही दृष्टिसे विचार नहीं करते, उनकी विचारशैलीमें विभिन्नता होना सम्भव है। इस प्रश्नने उन्हें चकित कर दिया। हम कितनी पीढ़ियोंसे स्वतन्त्र हैं, यह प्रश्न उनके सामने कभी उपस्थित ही न हुआ था। अब उन्होंने इसपर विचार करनेका वचन दिया है।

इस समय मेरे सम्मुख एक प्रश्न और उपस्थित होता है। वह यह है कि स्त्रियों और पुरुषोंके विचारोंमें भी विभिन्नता है या नहीं। संसारके कतिपय प्रश्नोंपर अधिकतर केवल पुरुषोंके ही विचार मिलते हैं, स्त्रियोंके विचार बहुधा अप्राप्त हैं। यदि अनुभवी शिक्षित स्त्रियाँ इसपर प्रकाश डालें तो संसारका उपकार होगा। उदाहरणके लिये निम्नलिखित प्रश्नको ही लीजिये—कोई पुरुष जब कभी किसी सुन्दर स्त्रीको देखता है तो उसके हृदयमें एक प्रकारका भाव उत्पन्न होता है जो पुस्तकों तथा काव्योंमें वर्णित है। स्त्रीके भिन्न भिन्न अंगोंके देखनेसे पुरुषके मनपर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। अब यह जाननेकी आवश्यकता है कि युवा पुरुषके दर्शनसे स्त्रीके मनपर क्या प्रभाव होता है, पुरुषके किन किन अंगोंके सुडौलपनका क्या क्या प्रभाव महिलाके मनपर पड़ता है? पुरुष चाँदनी रात्रिमें, मेघोंकी घनघोर घटामें सुन्दर स्त्रियोंके दर्शनसे एक प्रकारके विचित्र भावका अनुभव करता है। अब प्रश्न यह है कि स्त्रियोंपर इनका प्रभाव कैसा पड़ता है? इसका उत्तर केवल अनुभवी विचक्षण स्त्रियाँ ही दे सकती हैं।
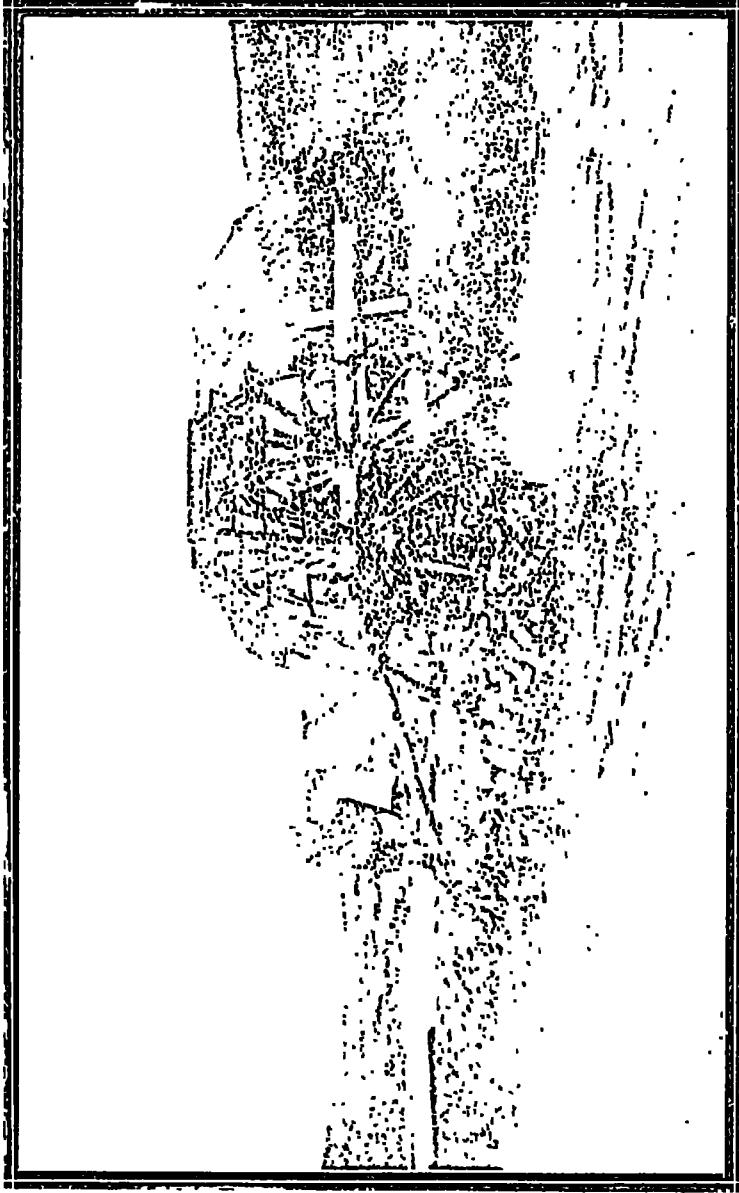
जल खींचनेका यंत्र

(पृष्ठ ३१५)

हाँ, अब मैं अपने वर्णनकी ओर फिर झुकता हूं। ये प्रथदर्शक महाशय मुझे सिविल क्वार्टरमें ले चले। उन्होंने मुझे पहिले उस भागकी गलियों व सड़कोंपर घुमाया जो "जापानियोंकी नयी आबादी"के नामसे पुकारा जा सकता है। यहाँ प्रायः जापानी ही देखनेमें आये। सभी दूकानें उन्हींकी थीं और वे जापानी सामानसे भरी थीं। यहाँसे आप मुझे नेटिव क्वार्टरमें ले गये और बेचारे पददलित देशवासियोंकी कुटी दिखा कर आपने मुझसे कहा—"नेटिव लोग बड़े गन्दे हैं"। मैंने भी मन ही मन प्रभुताको प्रणाम किया और कुढ़ता हुआ वापस लौटा।

राहमें मैंने बहुतसे मजदूर देखे। ये लोग एक विचित्र ढंगकी काठकी तिपाईके द्वारा पीठपर बोझा उठाते हैं। बाजारमें मैंने चावल, मूंग तथा अन्य भिन्न भिन्न प्रकारकी बड़ी छोटी दालें भी देखीं। सब्जीमंडीमें सूखी मछली, गोभी, बैगन, कुहड़ा तथा अन्य प्रकारकी तरकारियाँ और शाक थे, जो प्रायः सभी भारतमें मिलते हैं।

मैं रेल-घर लौट आया। थोड़ी देरमें रेल भी चल दी। यह नगर पहाड़के दामनमें बसा है। ऐसा और नगर, स्यूल पहुंचने तक, रास्तेमें नहीं देखा। ११ बजे दिनसे चलकर ९ बजे रात्रिमें मैं स्यूल पहुंचा। यह विशाल नगर आधुनिक रीतिपर बन रहा है। रास्तेमें छोटी पल्लियोंके सिवाय बड़ा ग्राम भी देखनेमें नहीं आया। सभी मकान भारतवर्षकी भाँति छप्परोंसे छाये तथा मिट्टीके बने थे। कहीं जो एकाध अच्छे मकान देख पड़ते थे वे प्रायः उन जापानियोंके थे, जो इस देशमें आ बसे हैं। फसल अधिकतर धानकी ही देख पड़ी। जगह जगह बाजरा, मक्का और उड़द देख पड़ी। सींचनेके लिये यहाँ भी दौरी चलती है और अन्य प्रकारके भारतवर्षके से तरीके भी बर्ते जाते हैं।

हमारी गाड़ी जिस राहसे जा रही थी वह एक प्रकारसे पहाड़ोंके बीचकी घाटी थी। यद्यपि पहाड़ दो तीन मीलकी दूरीपर थे, पर थे दोनों ओर। मैं दक्षिणसे सीधे उत्तरकी ओर जा रहा था। ये पहाड़ भी दक्षिणसे उत्तरको ही जाते हैं। ९ बजे रात्रिमें स्यूल पहुंच गया। रेलवे-होटलके एक मनुष्यने आकर असबाब संभाल मुझे होटलमें पहुंचाया। इस होटलका नाम 'चोसेन होटल' है। यह रेल-विभागके अन्तर्गत है। यहाँकी रेल सरकारी है, इसलिये यह होटल भी सरकारी है। कहनेका अभिप्राय यह है कि इसका सब व्यय सरकारको ही उठाना पड़ता है। होटलका पूरा वृत्तान्त न लिखकर इतना ही लिखना अलम् होगा कि इस टक्करके होटल, जापानकी तो बात ही न्यारी है, योरप और अमरीकामें भी एकाध ही होंगे। लन्दनका 'सिसिल होटल' शायद इसका मुकाबिला कर सके। किन्तु यहाँ इतने यात्री नहीं होते कि उनके द्वारा इसको लाभ हो। सुना है कि पार साल ही इसके लिये सरकारको बीस हजार येन घाटा सहना पड़ा। यह क्यों, इतना घाटा सह कर भी कोई व्यापार चलाया जाता है? उत्तर है, नहीं। पर यह व्यापारकी दृष्टिसे नहीं वरन् जापानकी प्रभुता स्थापित करनेके लिये बना है। रेल बन जानेसे यह मार्ग योरपकी शाही राह बन गया है। जापानकी ओरसे इस मार्गसे लन्दन पहुंचनेमें रेल द्वारा १२ दिन लगते हैं। समझा जाता है कि युद्धके उपरान्त चीन और जापान इत्यादिमें योरपनिवासी इसी राहसे आवेंगे। जापानके

राष्ट्रमेंसे होकर जाते समय यात्रियोंको ठहरनेका उचित प्रबन्ध न हो यह जापान सहन नहीं कर सकता। इसलिये यहाँ तथा अन्य कई जगहोंपर जहाँसे होकर यह रेल-सड़क गुजरी है, बड़े बड़े होटल बने हैं। इनमें लाभ-हानिका खयाल नहीं किया जाता।

मिशनका दोमुँहा कार्य ।

संसारमें कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ अमरीकावालोंका ईसाई मिशन न देख पड़े। पृथ्वीके कोने कोनेमें, जंगल, पहाड़ और रेगिस्तानी जगहोंमें भी इन लोगोंका अड्डा मिलता है। प्रश्न यह है कि क्या ये मिशन महात्मा ईसाका संदेश ही जगत्को पहुंचानेके लिये जंगल जंगल और वन वनके पत्ते खोजते फिरते हैं? उत्तर क्या दें, सो समझमें नहीं आता। जब कोलम्बसने अमरीका खोज निकाला तब वहाँ बर्बरोंको मनुष्य बनानेके लिये स्पेनके ईसाई लोग चले। जिसमें ईसाई पिताओंको वहशियोंसे कष्ट न पहुंचे, इस कारण स्पेनकी फौज भी इनके साथ हो ली। ईसाई धर्मके प्रचारका उस महान् भूमण्डलमें क्या परिणाम हुआ सो किसीसे छिपा नहीं है। आज दिन पुराने अमरीकानिवासियोंको देखनेके लिये चिड़ियाखानोंमें जाना पड़ता है। अफ्रीका तथा एशियाके भिन्न भिन्न देशोंमें भी धीरे धीरे इनके प्रचारने योरपवालोंका झंडा उड़ा दिया है यह किसीसे छिपा नहीं है। दूर क्यों जायँ, स्वयम् भारतवर्षको ही क्यों नहीं देखते? युद्ध आरम्भ होनेके साथ ही जर्मन और आस्ट्रियन पादरी भी देशमें नजरबन्द कर लिये गये या निकाल दिये गये। यह क्यों? क्या इनमें भी शत्रुताकी बू आती थी? क्या ईसाके धर्म-प्रचारक भी साधुवृत्तिको छोड़ क्षात्र वृत्ति धारण कर सकते थे? हाँ। खैर, कहनेका तात्पर्य यह है कि ईसाई मिशनको केवल धार्मिक संस्था समझना नितान्त भूल है। यह संस्था पूरा राष्ट्रदूतोंका कार्य करती है। व्यापारके तरीकेका, देशके भौगोलिक ज्ञानका व देशमें आपसके कलह इत्यादिका पता लगाकर यह अपनी सरकार-को पहुंचाती है। पहिले यह नाना रूपोंसे अपना प्रभाव देशके राज-कर्मचारियोंपर डालनेका प्रयत्न करती है। यदि इसमें सफलता हो गयी तो अन्य उपाय भी होते हैं। मिशनरी पादरियोंके रहन-सहनके ढंगसे ही इसका पता चल जाता है कि ये धर्मका कितना प्रचार करते हैं।

मैं जब अमरीकासे जापान आ रहा था तो रास्तेमें एक पादरी महाशयसे मुलाकात हुई। आपका शुभ नाम एविसन महाशय है। आप कोरियामें बीस वर्षोंसे धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आप डाक्टर हैं, इस कारण चिकित्सा द्वारा लोगोंपर महात्मा ईसाका प्रभाव डालना चाहते हैं। थोड़े दिन हुए, यहाँ अमरीकाके एक धनी 'सेनरेन्स' महाशय भ्रमणार्थ आये थे। आपपर एविसन महाशयका प्रभाव पड़ गया, इस कारण आपने यहाँ एक चिकित्सालय बनवा दिया। इसका नाम 'सेनरेन्स इन्सटीच्यूट' है। यहाँ चिकित्सा भी होती है और योर-अमरीकाके ढङ्गपर आयुर्वेद भी पढ़ाया जाता है। स्कूलमें पहुंचते हो मैं इन महाशयके पास गया। इन्होंने बड़ी आवभगतसे मुझे अपना अस्पताल और आयुर्वेदशाला दिखायी। पाठशालामें शिक्षा अभी कोरिया भाषा द्वारा दी जाती है। अङ्गरेज़ी भी विद्यार्थियोंको पढ़नी पड़ती है। किन्तु जापानी सरकारके नियमके अनुसार परीक्षा जापानी

भाषामें होनी चाहिये, इससे अब जापानीका भी प्रचार हो रहा है। यहाँ कई अन्य अमरीकन सज्जन काम करते हैं। एविसन महोदय कनैडा-निवासी हैं, किन्तु कार्य अमरीकन संस्थाके अन्तर्गत कर रहे हैं।

आपने एक दूसरे पादरी सज्जनका पता मुझको बताया और उनसे मिलनेका भी मुझे परामर्श दिया। मैं इनसे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। आपका नाम महाशय 'गेल' है। आप भी बीस वर्षोंसे कोरियामें रहते हैं। आपने देशका कोना कोना छान डाला है। देशी भाषा भी भलीभाँति सीखी है। आप अधिक विद्वान् और इसी कारण उदार भी हैं। कोरियामें बुद्धधर्मका जो पता मिलता है आपने उसका अच्छा अध्ययन किया है। आपने बात बातमें कहा कि मैं बुद्धधर्मपर इतना मुग्ध हूं कि यदि महात्मा ईसाकी शरणमें न आ गया होता तो बुद्ध भगवान्‌की शरण लेता। आपका एक छोटा पुत्र है जो बड़ा ही प्यारा लगता है। स्यात् इसने पहिले कभी किसी रङ्गीन पुरुषको नहीं देखा था। मुझे देख मातासे कहने लगा—"मा, यह काला मुँह वाला कहाँका आदमी है?" माने कहा, बेटा ये हमारे भाई भारतनिवासी हैं। इसपर बालक बोल उठा—मैं भारतीयोंसे लड़ूंगा। माता-पिता बालकके इस व्यवहारपर ज़रा शर्मासे गये, पर बराबर हँसते ही रहे। इस बातके कहनेका अभिप्राय केवल यह है कि हम अपने बालकोंको बहुत तङ्ग करते हैं, ज़रा ज़रा सी बातपर पीटते हैं, उनके स्वाभाविक भाव बढ़ने नहीं देते, बालपनसे ही गुलामीकी कड़ी जंजीर हमारे पैरोंमें पड़ जाती है। परिणाम यह होता है कि हम बड़े होनेपर भी निकम्मे रह जाते हैं और हमारे पास स्वतन्त्रताकी बू तक नहीं आने पाती।

एक दिन एविसन महोदयने मुझे ब्यालू करनेके लिये बुलाया। यहाँ गेल महोदय भी सपत्नीक आये थे, तथा अन्य तीन स्त्रियाँ भी थीं। खाते समय नाना प्रकारके साधारण विषयोंपर वार्तालाप होता रहा। भोजनके उपरान्त कुछ गम्भीर बातें होने लगीं। पहिले दिन एविसन महाशयकी स्त्रीने यह प्रश्न किया था कि भारत वर्षमें ईसाई धर्मकी क्या अवस्था है? मेरे मित्रने उत्तर दिया कि बुद्धिमान् पढ़े लिखे मनुष्य एक भी ईसाई नहीं होते, भूखे तथा दुःखित पुरुष क्षुधाके कष्ट तथा अन्य कारणोंसे ईसाई बनाये जाते हैं। यह सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ तथा एक प्रकारका आघात सा लगा! उन्हें यह जानकर भी दुःख हुआ कि हम लोग भी ईसाई नहीं है। आज प्रसंगवश एक स्त्रीने पूछा कि भारतमें "हीदन" लोगोंकी क्या अवस्था है? कल मैं चुप था। आज अच्छा मौका पाकर मैंने उत्तर देना आरंभ किया। मैंने पूछा—"आप 'हीदन' से क्या समझती हैं?" उत्तर मिला—"जो मनुष्य ईश्वरकी उपासना नहीं करते।" मैंने कहा कि आपको यह कैसे ज्ञात हुआ कि भारतमें एक ईश्वरकी उपासना नहीं होती? उत्तर मिला कि पादरियोंसे सुन रक्खा है। मैंने कई प्रकारसे उस भ्रमको दूर करनेकी चेष्टा की पर सब निष्फल हुई, निष्फल होना ठीक भी था। मामूली आदमीके हृदयसे परम्पराके विश्वासको मिटाना सरल नहीं है। क्या किसी हिन्दूकी समझमें यह बात जल्द आ सकती है कि मुसलमान या ईसाई भी उसी प्रभुकी उपासना करते हैं जिसकी उपासना हिन्दू अपने ढंगसे करते हैं। उनकी समझमें यह बात नहीं आती तो ईसाई भी इसे नहीं समझ सकते।

ख़ैर, थोड़ी देर बाद मैंने जरा बात टालकर उनसे एक प्रश्न किया। मैंने पूछा कि अब विज्ञानवालोंने मनुष्यका लाखों वर्ष पूर्वसे पृथ्वीपर होना साबित कर दिया है, और ईसाई धर्म-पुस्तकके अनुसार आदम बाबाको उत्पन्न हुए भी पांच ही हज़ार वर्ष हुए, व महाशय ईसा तो अभी लगभग दो हज़ार वर्षके ही पूर्व थे, तो यदि यह सच है कि महात्मा ईसापर ईमान लाये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता तो उन बेचारे जीवोंकी क्या अवस्था हुई होगी जो महात्मा ईसाके पूर्व इस संसारमें उत्पन्न होकर मर गये? इस प्रश्नने उन्हें जरा चकित कर दिया। गेल महाशय गम्भीरतासे इसपर विचार करने लगे। मैंने उत्तरका अवकाश न दे एक और प्रश्न कर दिया। मैंने पूछा कि आप ईश्वरको इतना पक्षपाती क्यों समझते हैं कि उसने अपने पुत्रको खास एक जगह भेजा, अन्यत्र नहीं? ईश्वरने मनुष्योंको इतना बुद्धिहीन क्यों बनाया कि उन्हें बुरे भलेकी तमीज़का माद्दा नहीं? इन प्रश्नोंने उन लोगोंको अवाक् कर दिया। कोई उत्तर न सूझा। बात उड़ाकर उनमेंसे एक स्त्री बोली—"किन्तु आप यह तो मानेंगे कि संसारमें एक ही धर्म सत्य है?" मैंने उत्तर दिया, 'नहीं, यह कोई बात नहीं है, धर्म रास्तेका नाम है, किसी विशेष सत्यताका नहीं। एक ही स्थानपर पहुंचनेके कई मार्ग हो सकते हैं। भिन्न भिन्न मार्गसे चलकर भी मनुष्य निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच सकता है। काशी पहुँचनेके लिये कलकत्ता-निवासीको पश्चिम और मुम्बई-निवासीको पूर्व जाना पड़ता है। मोटी निगाहसे वे उलटे मार्गपर चलते देख पड़ते हैं, किन्तु अन्तमें दोनों एक ही जगह पहुँच जाते हैं। मैंने यह भी कहा कि हिन्दुओंने प्राचीन समयमें कभी भी यह धृष्टता नहीं की कि अपने उपदेशक अन्य देशोंमें भेजें। वे समझते थे कि यदि परमात्माने हमें ज्ञान दिया है तो दूसरोंको भी दिया होगा। हमें अपने विचारोंको दूसरोंपर ज़बरदस्ती लादनेका कोई हक नहीं है। प्राचीन हिन्दू मानवसन्तानके उदार बुद्धियुक्त तथा ईश्वरके निरपेक्ष होनेका विश्वास करते थे। उन्हें अन्य लोगोंपर विश्वास था। वे दूसरोंको 'होदन' 'नास्तिक' 'म्लेच्छ' "काफ़िर" इत्यादि समझनेकी धृष्टता नहीं करते थे। इसीसे प्राचीन हिन्दू इतिहास धर्मके नामपर मनुष्य-हत्याके रक्तसे नहीं रँगा है।" ये ईसाई जगत्के लिये ज़रा नये ढंगके विचार थे। गेल महाशयने थोड़ी देर सोचकर कहा कि मनुष्यको आधारकी आवश्यकता होती है, इसीसे हमें महात्मा ईसाके नामसे शान्ति मिलती है। मैंने उत्तर दिया कि आपका कथन ठीक है, किन्तु आपको यह भी समझना चाहिये कि यदि आपको महात्मा ईसाके नामसे शान्ति मिलती है तो एक दूसरे पुरुषकी श्रद्धा महात्मा मुहम्मद, भगवान् बुद्ध तथा अन्य नर-देहधारी महात्माओंके चरित्रपर है। यदि आप अपने विचारमें सुख पाते हैं तो दूसरोंको उनके विचारोंमें भी सुखी होने दीजिये। दूसरोंका दिल कड़ी आलोचनासे दुखाना उचित नहीं है। हां, ऊंचे दार्शनिक प्रश्नोंकी कथा अलग है। वह सर्वसाधारणका नहीं, विद्वानोंका विषय है। वे आपसमें विचार कर सकते हैं। थोड़ी देर बातचीत करनेके बाद मैं बिदा हुआ।

स्यूलका मिडिल स्कूल (पृष्ठ ३१६)
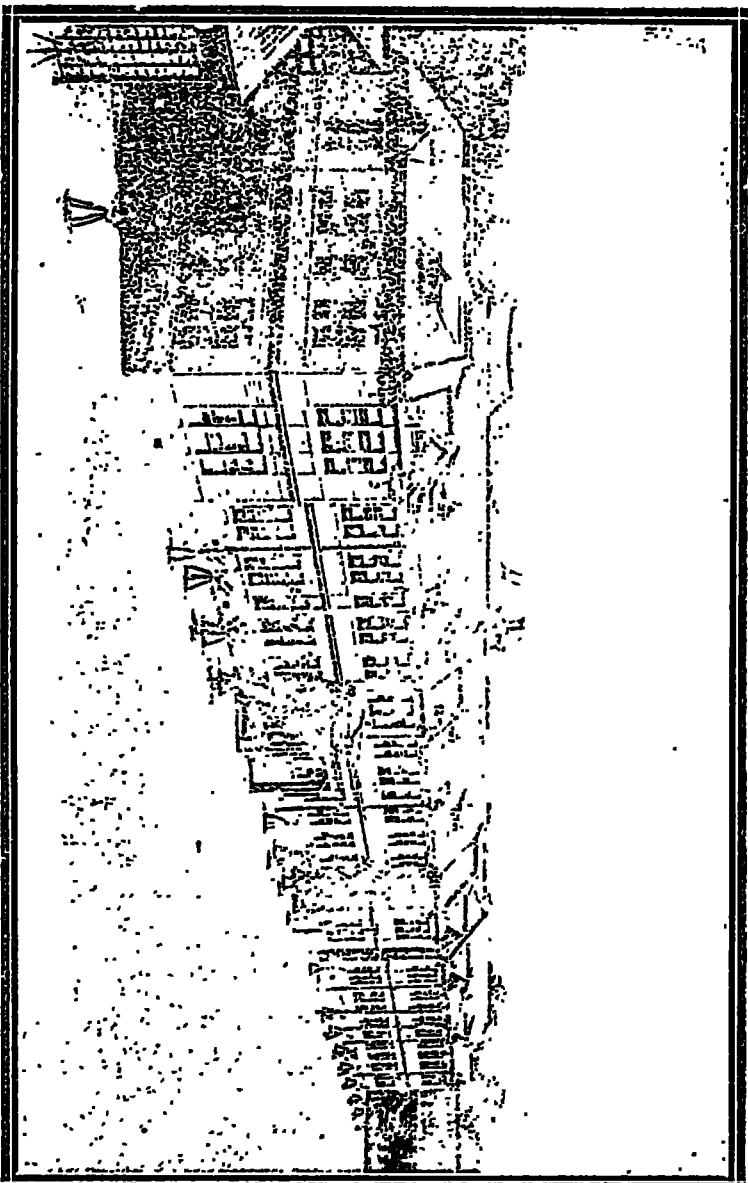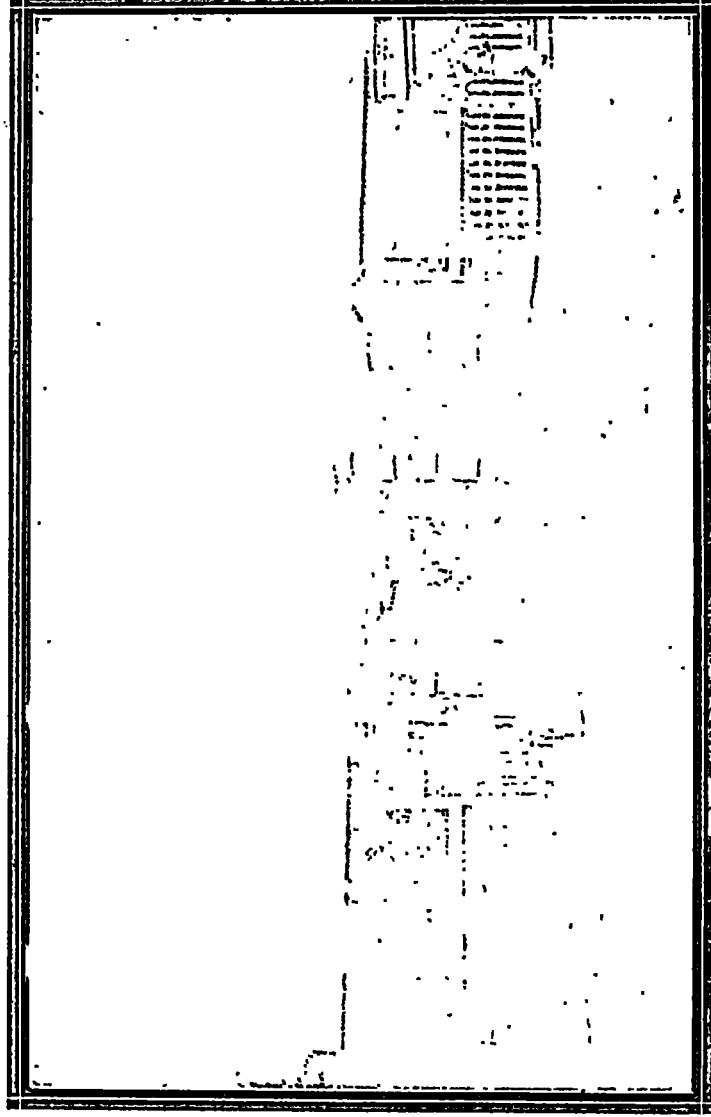
प्रधान शासकका कार्यालय

(पृष्ठ ३१९)

उनतीसवाँ परिच्छेद

—:०:—

स्यूल नगरके दर्शनीय पदार्थ।

स्यूल नगरमें अब अधिक प्राचीन समयकी कोई वस्तु देखनेकी नहीं है। पुराने मंदिरोंको देखनेके लिये नगरसे बहुत दूर दूरतक बड़े ही विकट मार्गसे जाना पड़ता है, जिसके लिये अधिक समय और विशेष प्रकारके प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता होती है। मेरे पास दोनोंका ही घाटा था, इससे उन्हें देखनेकी इच्छा भविष्यकी यात्रापर छोड़ दी।

आज प्रातः काल एक जापानी पथप्रदर्शकके साथ नगर देखने चला। कोरियन पथप्रदर्शक आज खोजनेसे भी नहीं मिला। ये महाशय अंग्रेजी भी अच्छी न जानते थे, और यहाँकी परिस्थितिसे भी अनभिज्ञ थे। फिर न जाने क्या समझकर इन्होंने पथप्रदर्शकका कार्य स्वीकार किया। शासकवर्गके मनुष्य होनेके कारण ही स्यात् इन्हें अपनी अपूर्णताका ज्ञान नहीं था।

ख़ैर, मैं इनके साथ पहिले उस ओर चला जिधर प्रधान शासकका कार्यालय है। इस समय यहाँके प्रधान शासक उसी मकानमें रहते हैं, जिसमें पूर्व समयमें जापानी राजदूत (एलची) रहते थे। वाइसरायके रहनेके लिये एक नया मकान नगरसे तीन मील बाहर बनाया गया था। सरकारकी इच्छा थी कि राजधानी उसी उजाड़ स्थानमें बसायी जाय, किन्तु पुराना नगर छोड़ नगरनिवासी उधर नहीं गये। इस कारण उस बेहूदे ख्यालको छोड़ वाइसरायको यहाँ आकर रहना पड़ा। अब इनके लिये नया भवन बनेगा।

यह जगह नगरके बाहर एक ऊंचाईपर है। यह एक प्रकारकी छोटी पहाड़ी है, यहाँसे नगरका सारा दृश्य देख पड़ता है। नगरके प्रधान भागमें सब मकान जापानियोंके बन गये हैं। देशनिवासी बिचारे हटते हटते दूसरी ओर चले गये हैं। कोरिया-निवासियों तथा विदेशियोंके महल्लेमें ठीक उसी प्रकारका भेद है जैसा भारतवर्षमें स्वदेशी और विदेशी महल्लोंमें होता है, अथवा जैसा काशीमें सिकरौल तथा शहरमें है। थोड़ी देर नगरकी शोभा देखनेके उपरान्त मैं यहाँका संग्रहालय देखने चला। यह स्थान इस पहाड़ीसे कोई तीन मील दूर था। शहरके हर प्रकारके महल्लोंमें घूमता हुआ मैं यहाँ आ पहुंचा। यह यहाँके पूर्वी महलमें है। पहिले मैं जिन जगहोंमें गया वहाँ पुराने समयके राजाओं तथा राव-उमराओंके चलनेके ताम-झाम एवम् एक प्रकारके सुखपाल बहुतसे रक्खे हुए थे। दूसरे दालानमें पुराने खपड़ोंके नमूने रक्खे थे, जिनमें बहुतसे रोग़नी भी थे। यहाँ विक्रमके पूर्वके भी खपड़े, घड़े और हंडियाँ देखी गयीं। शिलालेख भी यहाँ अनेक प्रकारके देखे। यहाँसे हो कर नये भवनमें गया। इस भवनमें बुद्ध भगवान्‌की अनेक मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुए

हैं। यहाँ बीचमें बुद्ध भगवान्की एक लोहेकी ढली मूर्ति रक्खी है। यह विशाल मूर्ति है। पहिले कभी लोहेकी देवमूर्ति मैंने कहीं नहीं देखी थी। यहाँ अनेक छोटी बड़ी मूर्तियाँ हैं। बाज़ बाज़ मूर्तियोंपर एक प्रकारसे कपड़ा लपेटनेके बाद रंगसाज़ी की हुई है। यहाँ पुराने चित्र, राजाओंके निजके सामान तथा अनेक अन्य वस्तुओंका संग्रह है। वर्तमान युगके पूर्वके प्रस्तरके चाकू, तीरोंकी गोसी इत्यादि भी रक्खी हैं। सोने-चांदीके सामान भी यहाँ हैं।

यहाँसे होकर मैं यहाँके अधिष्ठाताके पास आया। उन्होंने एक पुस्तकपर मेरे हस्ताक्षर कराये। इस पुस्तकमें सिंहलद्वीप-निवासी भिक्षु धर्मपाल जीके भी हस्ताक्षर देखे, जिससे मेरा यह भ्रम मिट गया कि मैं ही प्रथम भारतवासी यहाँ आया हूं किन्तु यह ठीक है कि धर्मपाल जीके सिवाय और कोई भी भारत-निवासी थोड़े दिन पूर्व--एक मनुष्यके जीवनकालमें--यहाँ नहीं आया है।

यहाँसे मैं होटल लौट आया और मध्याह्नके भोजनके उपरान्त यहाँका दक्षिणी महल देखने चला। आजकल यहाँ बड़े ज़ोर शोरसे काम लगा है। आगामी अक्तूबर मास (आश्विन-कार्तिक) में यहाँ एक प्रदर्शिनी होने वाली है, जिसमें यह प्रदर्शित किया जायगा कि गत पाँच वर्षोंके शासन-कालमें जापानने कला-कौशलमें इस देशकी कितनी उन्नति की है। यहाँ प्रायः कोरियन वस्तुए ही प्रदर्शित होंगी। कार्य बड़ी धूमधामसे हो रहा है, और अच्छी तैयारी मालूम पड़ती है। महलके बाहरी घेरेमें यह प्रदर्शिनी बन रही है। भीतर दो घेरे और हैं, जिनमें पुराने दीवाने आम और दीवाने खासकी इमारतें हैं। ये इमारतें चीनी ढंगकी बड़ी उत्तम हैं। दीवाने आमका कमरा बहुत बड़ा है। छत काठके मोटे खम्भोंपर खड़ी है, छतपर बोड़िये और शहतीरोंकी जालीसी बन गयी है। ये बड़ी खूबसू-रतीसे चित्रित हैं। सिंहासनके पीछे ड्रागोन जन्तुकी तस्वीर बनी है। यह विचित्र ख़याली साँप, जिसके हाथ पैर और सींग भी होते हैं, चीनी तथा कोरियन चित्रकलामें एक प्रधान भाग होता है। चित्रोंको छोड़ लकड़ी तथा पत्थरके नक्काशीके काममें भी ये प्रयुक्त होते हैं।

इस महलको देखनेके उपरान्त मैं मर्मरका पगोदा देखने पगोदा उद्यानमें गया। यह १९ फुट ऊँचा १३ खण्डोंका पगोदा बड़ा ही सुन्दर, नक्काशीके कामका बना है। इसमें बुद्ध भगवान् तथा देवमण्डली बड़ी अच्छी बनायी गयी है। कहा जाता है कि १३७०-१३९६ विक्रममें यह पगोदा मंगोल नृपतिने चीनमें बनवाकर यहाँ भिजवाया था। हिदयोशीने जब कोरियापर हमला किया था तो वह इसे जापान उठा ले जाना चाहता था, किन्तु अत्यन्त भारी होनेके कारण ले जानेमें इसके टूटनेका भय था, इससे वह यहाँ रह गया। यहाँसे ही मैं इधर उधर सैर करते नगरके बाहर निकल गया। कोरियन बस्तीको देखते हुए संध्याको लौटा। यहाँ नगरके बाहर एक फाटक बना है, जिसे स्वतन्त्रताका द्वार कहते हैं। यह उस समयका बना है जब कोरिया चीन-जापान-युद्धके बाद चीनसे स्वतन्त्र किया गया था। मैं इसका नाम गुलामीका दर्वाजा ही रखना चाहता हूं क्योंकि वही समय था जबसे कोरियाकी यथार्थ गुलामीका सूत्रपात हुआ। कोरिया नाम मात्रको ही चीनके अधीन था, वस्तुतः वह एक प्रकारसे पूर्णतया स्वतन्त्र ही था।

दक्षिणी महलका द्वार
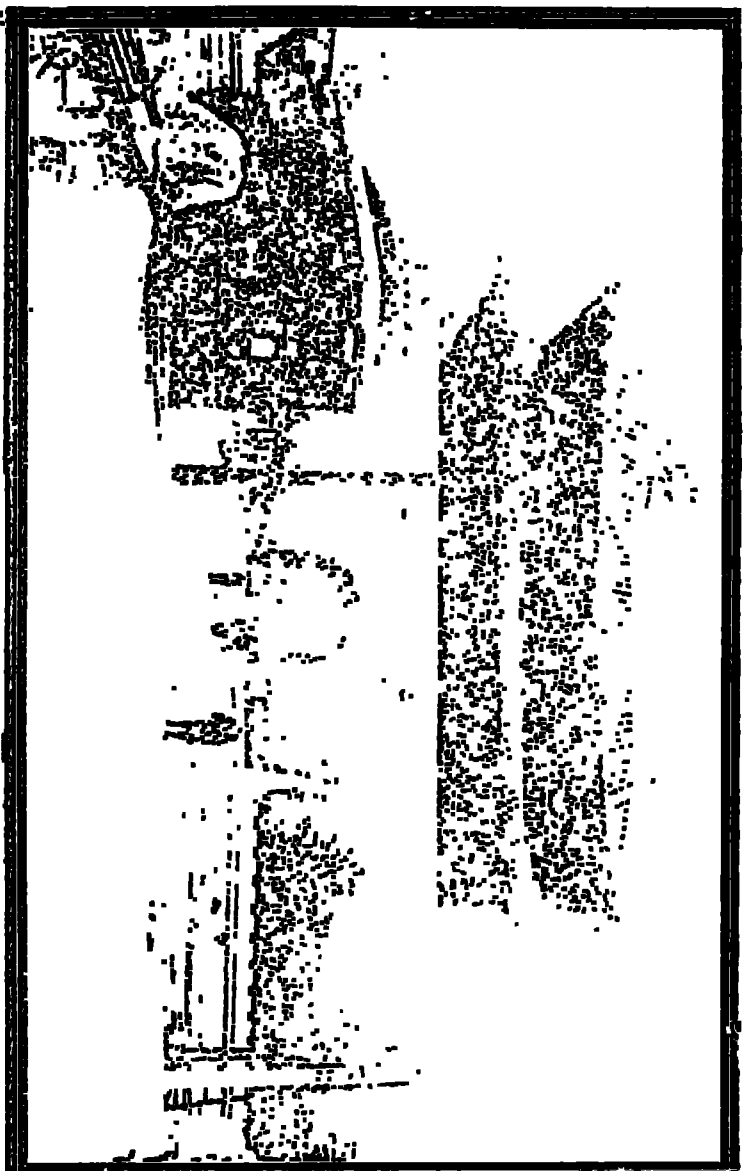
(पृष्ठ ३२०)

पूर्वी महलका तोंक्का द्वार (पृष्ठ ३२१)

स्वतन्त्रता का द्वार (पृष्ठ ३२०)
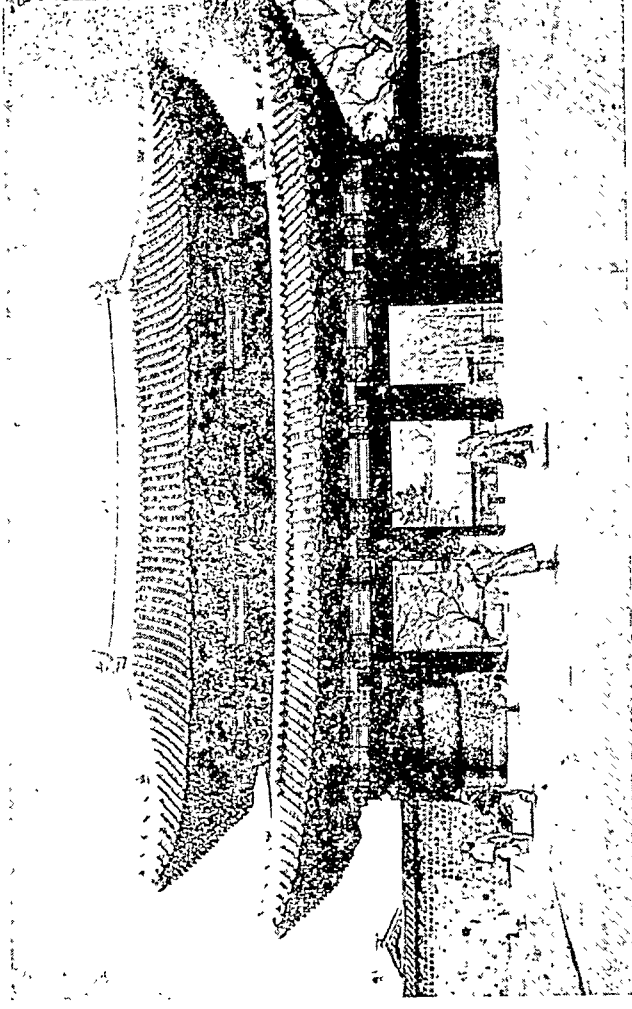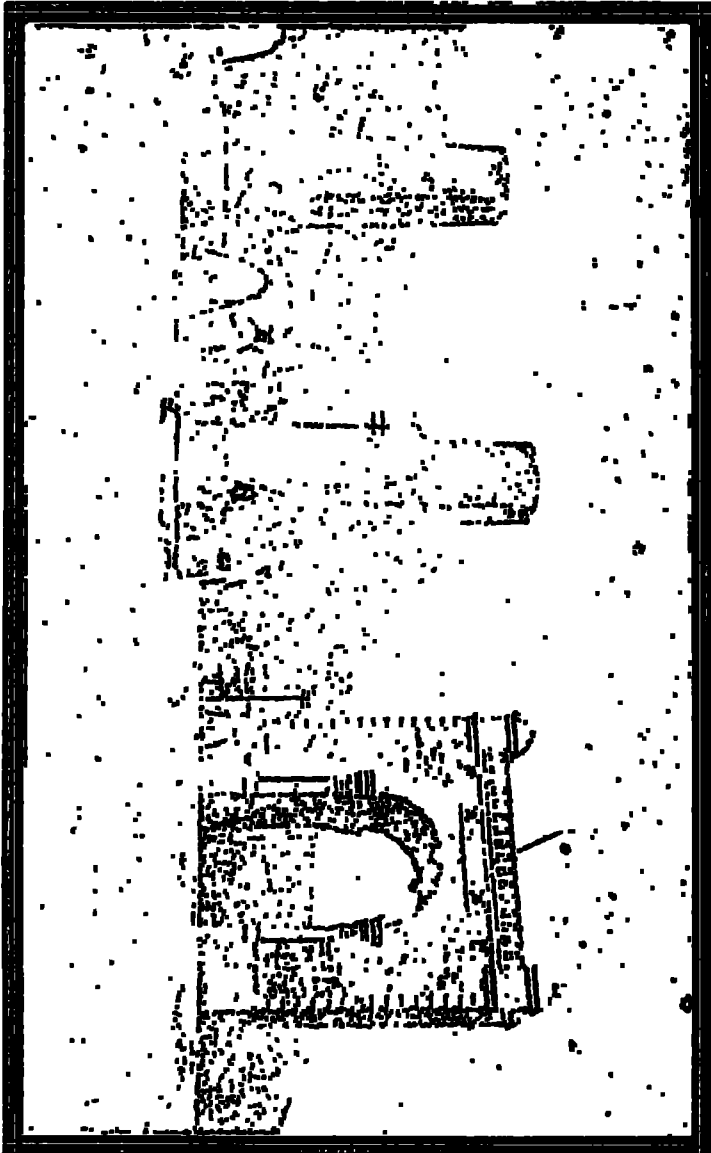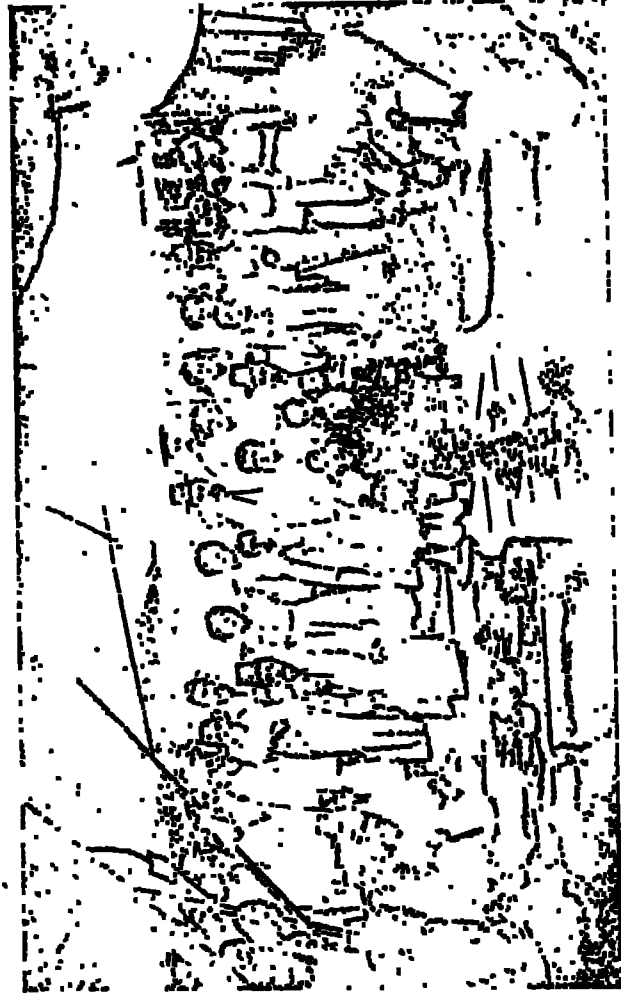
कोरियामें ६१वीं वर्षगांठके समयका भोज (पृष्ठ ३२१)

× × × ×

आज मैं एक कोरियन पथप्रदर्शकके साथ राजप्रासाद देखने चला। यह पूर्वी महलके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ अब भी पुराने नृपति, जिनसे जबर्दस्ती अपने नाबालिग पुत्रको राज्य दिलवाया गया था, और उनके पुत्र पुराने राजा, जिन्होंने अपना राज्य खुशीसे त्याग दिया, भिन्न भिन्न महलोंमें रहते हैं। इनसे मिलने और इनके महलोंके देखनेकी आज्ञा किसीको नहीं है। यात्रियोंको वे महल देखनेको मिलते हैं, जिनमें अब कोई नहीं रहता। महल खूब सजा है, किन्तु उसकी सजावट उसी भाँति फीकी है जैसे विना नमकके उत्तम खाद्य पदार्थ फीके होते हैं। इसे देख मुझे चित्तौरके पर्वत और दिल्लीके खण्डहर याद आ गये। आँखोंमें आँसू भर आये और मैं यहाँ अधिक न रह सका।

संध्याको अवसर पाकर नगरके बाहर रानीकी समाधि देखने गया। यहाँपर उल्लेख करने योग्य कोई विशेष घटना नहीं हुई।

रात्रिको कोरियन ढंगके भोजन और यहाँकी गान्धर्व विद्याका अनुभव प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं एक स्वदेशी उपहारगृहमें गया। नगरकी अवस्था देखनेसे मैंने समझा था कि यह मामूली घर होगा, किन्तु वहाँ जानेसे होश ठिकाने आ गये! कोरियन रियासतका दृश्य इस टूटी हालतमें भी देखनेको मिल गया। जिस कमरेमें मैं बैठाया गया वह अत्यन्त साफ-सुथरा था। बैठनेके लिये जमीनपर बड़ा अच्छा फर्श बिछा था। कार्चोबी कामके बड़े बड़े व छोटे तकिये भी लगे थे। सभी सामान शाही था,पर सादगी और सुथरापन हद दर्जेका था। भोजन एक छोटी चौकीपर रखकर आया। खानेके कोई तीस प्रकारके पदार्थ अलग अलग चाँदी, फूल तथा चीनीकी कटोरियोंमें थे। एक प्रकारकी दालकी तरकारी एक विचित्र पात्रमें रखी थी, जिसमें आवगर्माकी भाँति बीचमें आग रखनेकी जगह थी। यह यहाँकी बड़ी ही उत्तम वस्तु समझी जाती है। दो प्रकारकी कचरी थी, दो तीन प्रकारकी भुजिया थी, कई प्रकारकी मिठाई थी, उसमें एक चावलकी गादी थी जो बहुत अच्छी लगी। कमलगट्टेकी घुघनी भी अच्छी थी।

गाने वाली दो स्त्रियाँ भी इसी समय आकर सामने बैठ गयीं। यह यहाँका रिवाज है। खाते समय मदिरा तथा अन्य भोजनके सम्बन्धमें गीत गाये जाते हैं। ये नर्तकियाँ साफ़-सुथरे और सादे लिबासमें थीं। बाजेवाले छः आदमी थे, तीन शहनाई बजाते थे, एक चिकारा, एक मृदंग और दूसरा नगाड़ा बजाता था। मृदंगको 'छंगू' तथा नगाड़ेको 'पू' कहते हैं। शहनाई और चिकारेका नाम नहीं जान पड़ा। गानेका स्वर अच्छा और मधुर था। ताल-स्वर भारतवर्षके ताल-स्वरोंसे मिलते जुलते थे। जापानियोंके गानके मुकाबिले मुझे यहाँका गान अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ। भोजनके उपरान्त नृत्य प्रारम्भ हुआ। इसे मैं सैण्डोकी कसरत कहूंगा, नृत्य नहीं, क्योंकि इसमें कसरतका भाग ही अधिक था। इसके बाद तलवारका भी नाच हुआ। यह बहुत अच्छा था। नाचनेवाली स्त्रियोंमें कुचेष्टाके हाव-भाव तथा खिरूपनका बिलकुल अभाव था। वे गम्भीर देख पड़ती थीं।

यहाँसे मैं कोरियन नाटक देखने गया। नाटकके अन्तमें केवल एक वृद्ध गायकका गान बहुत अच्छा लगा। यह व्यक्ति राज-दर्बारका गवैया है, किन्तु अब यह वहाँ जाने नहीं पाता। वृद्ध हो जानेपर भी इसका गला कमालका है। पञ्चममें गाते गाते एकदम खरजमें उतर आनेमें यह कमाल कर देता था। ताल-स्वर सब भारतवर्षके से जान पड़ते थे।

आज नगरके बाहर एक पहाड़पर मन्दिर देखने जानेकी बात थी, पर वर्षाके कारण जाना नहीं हुआ, इससे घरके भीतर ही दिन व्यतीत हुआ। प्रातःकाल पोर्ट-आर्थरके लिये प्रस्थान किया।

यालू नदीपर दृढ़ लौह-सेतु
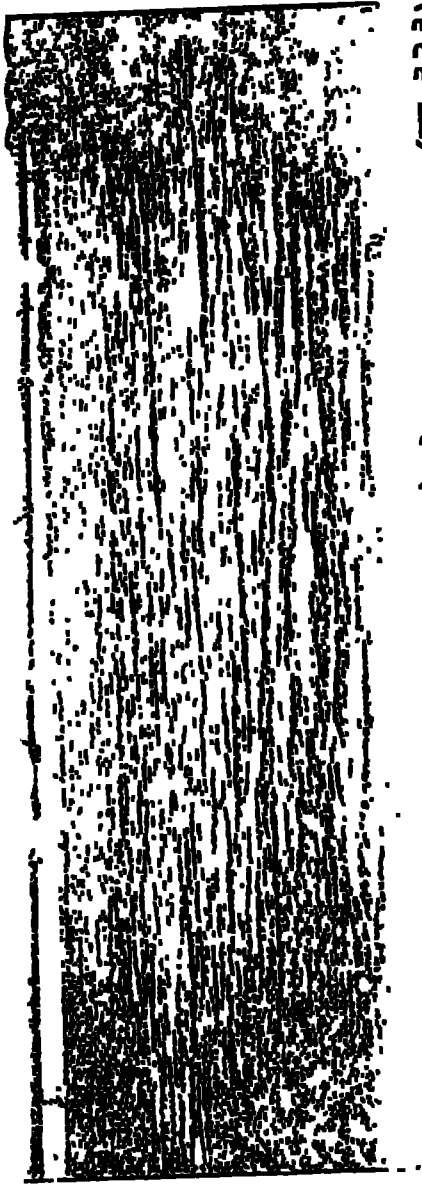
(पृष्ठ ३२३)

तीसवाँ परिच्छेद।

—:०:—

मुकदन यात्रा।

आज प्रातःकाल नित्य क्रियासे निपट कुछ जलपान कर स्टेशन चल दिया। यहाँसे मैं गाड़ीपर सवार हो मुकदनकी ओर चला। फूसनसे स्यूल आते समय दक्षिणी चोसेनके भागको देखनेका अवसर मिला था, आज उत्तरी और पश्चिमी भाग भी देखे। रास्तेमें कोई भी बड़ा कस्बा देखनेको न मिला। इधरकी अवस्था भी दक्षिणी प्रान्तकी भाँति अति शोचनीय है। धानके साथ जुआर, बाजरा और उड़दकी खेती भी इधर देख पड़ी। यहाँके पर्वत चोटीतक घाससे भरे होनेपर भी वृक्षविहीन थे। इसका कारण यह नहीं है कि पहाड़ोंपर वृक्ष उग नहीं सकते, वरन् यह है कि देशके अत्यन्त दरिद्र और शीत-प्रधान होनेके कारण यहाँकी जनता शीतकाल-में सर्दीसे बचनेके लिये वृक्षोंको काटकर जला देती है, इससे वृक्ष नहीं रहने पाते। अब सुना है कि जापानी सरकार पर्वतोंपर वृक्षारोपणका विशेष प्रबन्ध कर रही है।

दिन भर चलनेके उपरान्त संध्या समय मैं कोरियाकी उत्तर-पश्चिम सीमापर पहुंच गया। कोरिया और मंचूरियाको यहाँकी प्रधान नदी 'यालू' परस्पर पृथक् करती है। यह इन दोनों देशोंकी बहुत बड़ी और प्रधान नदी है। इस समय इसका पाट काशीकी श्री गंगाजोके पाटसे कम न था। थोड़े दिन पूर्व तक इस नदीको तरणीद्वारा पार करना पड़ता था, किन्तु अब इसपर सुविस्तृत और दृढ़ लौह-सेतु बन गया है। इसीसे होकर रेल नदीके वक्षःस्थलपर दौड़ती हुई एक ओरसे दूसरी ओर चली जाती है। यन्त्र-कलाका यह एक जीवित-जागृत उदाहरण है जिसके लिये जापानी यन्त्र शास्त्रियोंको उचित अभिमान है। हमारी रेलने जिस समय इस सेतुको लाँघा उस समय रात्रि हो गयी थी। आठ बजेका समय था, किन्तु आकाशमें चन्द्रदेवका पूर्ण साम्राज्य था। शीतल ज्योत्स्ना चारों ओर फैली हुई थी। नदीके उस पार नगरकी दीपशिखा चारों ओर जगमगा रही थी। नदीमें भी इधर उधर सैलानियोंकी डोंगियाँ घूम रही थीं, जिनपरके टिमटिमाते हुए दीप नदीकी शोभा बढ़ा रहे थे।

अब मैं जापानी साम्राज्यसे निकल जापानी प्रभाव-मण्डल मञ्चूरियामें आ गया। इस नगरका नाम अन्तंग नगर है। रूस-जापान-युद्धका प्रथम सूत्रपात संवत् १९६१ के वैशाख मासमें यहीं हुआ था। यही स्थान वह पवित्र तीर्थक्षेत्र है, जहाँ-पर योर-अमरीकाकी राक्षसी विचार-तरंगको प्रथम धक्का लगा। यहींपर पहिले पहिल जापानी क्षत्री वीरोंने रूसियोंको पराजित कर जगत्में घोषणा की थी कि योर-अमरीकाकी बाढ़का अब अन्त होगया। इसी जगह पहिले पहिल योरपकी शक्तिकी वह डरावनी मूर्ति, वस्तुतः कागज़के रावणकी प्रतिमा, जलायी गयी थी जिसके मायाजालमें फँसकर आज डेढ़ शताब्दीसे एशिया काँप रहा था। एशिया-निवासियोंको मोहनिद्रासे जगानेके लिये प्रथम प्रथम यहीं शंखनाद हुआ था। इसी लिये एशियानिवासियोंके वास्ते यह एक पुण्यक्षेत्र या तीर्थ-स्थान बन गया है। जिस

प्रकार भागीरथीकी पुण्यधारामें स्नान करनेसे आत्म-बाधा कटती है उसी भाँति यालू नदीके पवित्र तटपर आनेसे ही भविष्यमें भव-बाधा कटेगी। जिस प्रकार गंगातटस्थ काशी और प्रयागमें लाखों आदमी धार्मिक पिपासा मिटाने आते हैं उसी प्रकार भविष्य-में यालू-तटस्थ अन्तंगमें सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये, पवित्र क्षात्र-धर्म सीख-नेके लिये, लोग आवेंगे। हे अन्तंग नगर! तुमने एशिया-वासियोंका भ्रम दूर किया है, उन्हें अपनी भूली हुई शक्तियोंका स्मरण कराया है, तुम्हें कोटि बार प्रणाम है।

अन्तंग नगरमें जापानी सरकारी रेलसे उतर मुझे जापानी व्यवसायी रेलपर चढ़ना पड़ा। यहाँ चीनके शुल्क-विभागने मेरे सामानकी जाँच की। जाँच करने वाले कर्मचारी सबके सब जापानी हैं। जाँच नाममात्रका खेलवाड़ है। यह जाँच ठीक उसी प्रकारसे होती है जिस प्रकार सौतके लड़केकी जाँच हुआ करती है। अब मैं चीनी देशमें आगया, किन्तु चीनी देश यह उसी अर्थमें कहा जा सकता है जिस अर्थमें अभी कुछ दिनों पूर्वतक मिश्रदेश तुर्कीदेशके अन्तर्गत था, अथवा जिस प्रकार इस समय फ़ारसदेश फ़ारसका है। इस रेल-कम्पनीका नाम दक्षिणी मञ्चू-रिया रेलवे है। यह कम्पनी ठीक उसी तरहकी है जिस तरहकी ईस्ट-इण्डिया कम्पनियाँ डचों, पुर्तगीज़ों तथा फ़रासीसियों इत्यादिने १८ वीं शताब्दीमें बनायी थीं। इस कम्पनीके अन्तर्गत केवल रेलका ही प्रबन्ध नहीं है, वरन् उन सब इलाकोंक प्रबन्ध भी है जहाँ जहाँसे रेल जाती है, और जो जो भूमि रेल कम्पनीकी मिलकियत है। यह रेल-कम्पनियाँ उस जापानी प्रभा व मण्डलके जालकी डोरियाँ हैं, जो मञ्चूरियापर धीरे धीरे फैल रहा है, अथवा उस चरसेकी कतरन हैं जिसे बिछाकर एक चरसेके बराबर ज़मीनके बदले एक नगरका नगर किसी समयमें भारतमें विदेशियोंने घेर लिया था। आजकलके जमानेमें किसी भी कमज़ोर देशमें एक बित्ता भर भी भूमि किसी शक्तिशाली विदेशीको देनेका वही परिणाम होता है जो साढ़े तीन हाथ भूमि दान देनेसे बलि राजाका हुआ था। ये विदेशी शक्तियुक्त जातियाँ पैर रखते ही त्रिविक्रमकी भाँति त्रैलोक्यव्यापी रूप धारण कर सारे देशको ही हड़प जानेका विचार रखती हैं

घंटे भरके उपरान्त गाड़ी फिर चल दी। अब रात्रिके दस बजे थे। सोनेका समय आया तो एक समस्या उपस्थित हुई। प्रायः १६ मास घर छोड़े हो गये तबसे अपने ओढ़ने-बिछौनेका कोई काम ही नहीं पड़ा था। जहाज़में, रेलमें, होटलमें, सभी जगह ओढ़ना-बिछौना वहींसे मिलता था। ओढ़ना-बिछौना ही क्यों, आवश्यकताकी सभी वस्तुएँ मिलती थीं। चट्टी, जूता, रात्रिके पहिननेके कपड़े, साबुन, तौलिया, कंघी, आईना, इत्यादि किसी भी वस्तुके साथ रखनेकी आवश्यकता न थी। इसीलिये ओढ़ना-बिछौना साथमें न था।

अब मैं जापानको भी लाँघकर मध्य एशियामें आगया। यहां योर-अमरीकन यात्री बहुत नहीं आते जाते, इससे प्रतिदिन सेजगाड़ी यहां नहीं चलती, यह केवल सप्ताहमें एक ही दिन चलती है। अतः आज मुझे अपने देशकी भाँति रेलकी सकरी गद्दीपर ही सोना पड़ा, सो भी ओढ़ना-बिछौना नदारद! खैर, पासमें एक हवादार तकिया था जिसे दिनके लिये साथमें रक्खा था, उसमें हवा भर सिरके नीचे रखनेका काम चलाया। सर्दीके कारण विना कुछ ओढ़े गुजारा होना कठिन था, किन्तु पासमें ओढ़ना था नहीं,

रानीकी समाधि

(पृष्ठ ३२१)

पृथिवी प्रदक्षिणा

कोरियाकी बालिकाओंका 'कोतो' बजाकर गाना (पृष्ठ ३२१)
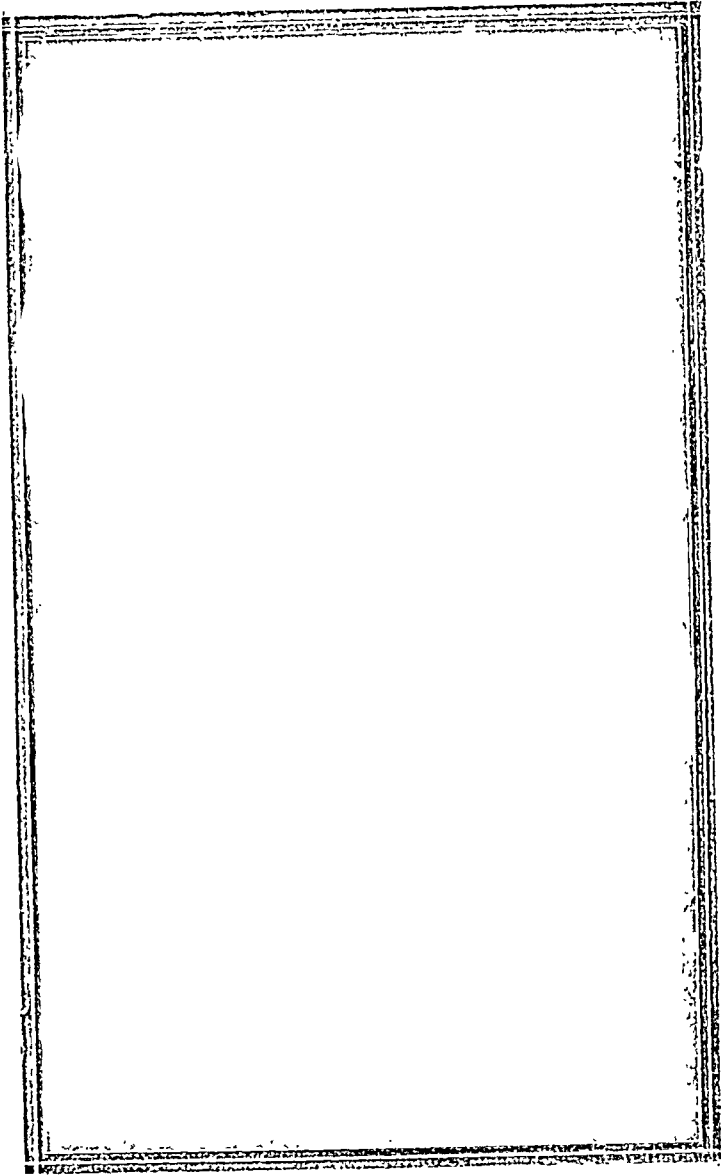
होता क्या ? खैर, बरसाती कोटकी बहोरी (आस्तीन) पैरमें डाल और दामन सिर तक खींच ओढ़कर किसी प्रकार रात्रि बितायी।

सुबह आँख खुलनेपर अपनेको एक उर्वरा भूमिमें पाया। चारों ओर हरे भरे खेत लहलहा रहे थे। किन्तु ये धानके खेत न थे, जुआर, बाजरा, टांगुन, उड़द आदि इन्हींकी यहाँ प्रधानता थी। इधर उधर जो ग्राम देख पड़े वे भी सुखी मालूम पड़ते थे। ईंटोंके घर, खपड़ोंकी छाजन तथा पञ्जाबी ढँगके मिट्टीकी छतके अधिकांश गृह देखनेमें आये। गृहोंके आस पास छोटे छोटे बागीचे भी थे। घरोंके सामने पत्थरके बड़े बड़े जोते भी गड़े थे। मनुष्य भी लम्बे चौड़े और सुखी देख पड़ते थे। पीठपर लम्बी चोटी लटकाये, नीले रंगमें रँगा लम्बा अंगा पहिरे, इधर उधर घोड़ों और गदहोंपर चढ़े घूम रहे थे। स्त्रियाँ कुएँसे पानी ले जा रही थीं, बच्चे

मञ्चूरियामें गदहेकी सवारी।

खेल रहे थे, सारांश यह कि मञ्चूरिया चोसेनसे अधिक प्रसन्न और सुखी देख पड़ा। देखते देखते गाड़ी मुकदनके स्टेशनपर पहुंच गयी। उन्हीं लम्बी लम्बी चोटीवाले नील वस्त्रधारी मनुष्योंने आकर हमारा सामान संभाला और रेलवे-होटलमें ले गये। यह होटल भी रेल-कम्पनीके अन्तर्गत है। यह ठीक स्टेशनपर बना है, नीचे स्टेशनका काम होता है, ऊपर होटल है। अब यहां विचित्र प्रकारका एशियाई शोर सुन पड़ने लगा। होटलके कमरेके बाहरसे 'हैयो, हैयो'की आवाज़ आ रही थी। खिड़कीसे बाहर सर निकाल कर देखा तो मालूम हुआ कि ५०, ६० मज़दूर रस्सियोंके द्वारा एक भारी घन ऊपर खींचकर नीचे गिराते हैं। इस क्रियाद्वारा वे एक मोटा लट्ठा ज़मीनमें धँसा रहे थे। इसीको खींचनेके समय वे "हैयो, हैयो"की आवाज़ लगाते थे।

मुकदन नगर।

यह एक दो-ढाई सौ वर्ष पुराना बड़ा उत्तम नगर है। पुराना होनेके साथ साथ यह अर्वाचीन समयका भी घटना-क्षेत्र है। यहांपर भी अन्तंगकी भांति रूस-जापान युद्धके समय बड़ा भारी युद्ध हुआ था। यहांका युद्ध उस लड़ाईका प्रधान युद्ध था। यहींपर जापानी वीरोंने रूसको हराकर योरपका गर्व खर्व किया था। यहांके भीषण युद्धमें २२८४८ जापानी वीर काम आये। इन क्षत्रियोंने अपने रुधिरसे एशियाके मुखपरका काला धब्बा दूर करनेका प्रथम सफल प्रयत्न किया और श्वेतांगोंके बढ़ते हुए हौसलेकी गतिको केवल रोक ही नहीं दिया प्रत्युत उसे फेर भी दिया। यहीं पर जापानी वीरोंने अपनी लोहेकी कलमसे योरपकी छातीपर यह घोषणा लिख दी कि बस अब तुम्हारे बढ़नेके दिन समाप्त हुए, तुमने अमानुषिक तृष्णासे अबतक मानव जातिको जितना सता लिया, उतना सता लिया। अब तुम्हारी मिज़ाजपुर्सीका समय आ गया, सावधान हो जाओ! तुमको अपने डेढ़ दो सौ वर्षोंकी करतूतोंका संसारको हिसाब समझाना पड़ेगा। यहांका रणक्षेत्र १०० मीलतक फैला हुआ था। रूसियोंकी सैन्य-संख्या एक लाख थी व जापानियोंकी पचास हजार। जापानी वीर क़ुरोकी यहांके सेनानायक थे। इस युद्धको एशियाका 'वाटरलू' कहना अनुचित न होगा। जिस प्रकार १८७२ विक्रमके वाटरलूके युद्धके उपरान्त एक नये युगका प्रारम्भ हुआ था उसी प्रकार १९६२ के मुकदन युद्धके उपरान्त भी एक नये युगका प्रादुर्भाव हुआ है। वाटरलूके क्षेत्रमें वीर नपोलियनकी गतिका अवरोध हुआ था। इस वीर योद्धाके पतनके साथ साथ योरपका गौरव भी संसारमें फैलने लगा। गत शताब्दियोंमें यह समझा जाता था कि योर-अमरीकाकी गतिका अवरोध नहीं होगा; मानो ईश्वरने इन्हीं मुट्ठीभर मनुष्योंको जगतपर राज्य करनेके लिये सिरजा है। १९६२ में मुकदन क्षेत्रमें जापानी वीरोंने रूसी प्रतापको ध्वस्तकर गत शताब्दियोंके इस भ्रममूलक विश्वासका मूलोच्छेदन कर दिया। इसीके बाद जिस नये युगका प्रादुर्भाव हुआ है उसका सिद्धान्त दासत्व नहीं स्वतन्त्रता है। इस युगने प्रारम्भसे ही यह घोषणा की है कि जगतपर योर-अमरीकाके आक्रमणका समय समाप्त हो गया। अब एशिया एशियानिवासियोंके लिये ही सुरक्षित रहेगा वह योर-अमरीका वालोंका क्रीड़ास्थल नहीं बनने पावेगा। इसने सामयिक वर्षा द्वारा सूखते हुए एशियाई खेतोंको नष्ट होनेसे बचा लिया। इसने मुर्दादिल एशियाइयोंको मधुर किन्तु घोर
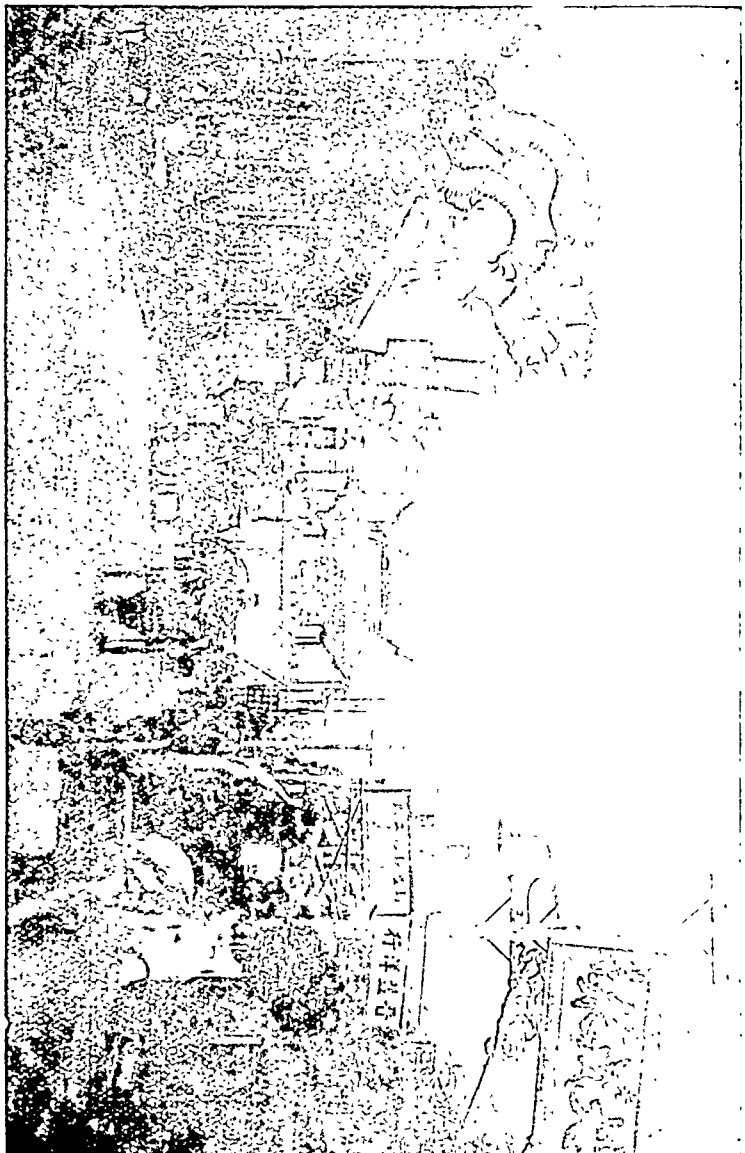
प्राचीन मुकदन नगर [बाजार दृश्य] (पृष्ठ ३२६)

मंचूरियाकी महिला (पृष्ठ ३२५)

नाद करके जीवित कर दिया, सोते हुए मनुष्योंको जगा दिया, व भ्रममें फँसे हुए, कुटिलाचरणमें लिप्त मदान्ध योर-अमरीका वालोंको भी हिलाकर प्रकृतिके नियमके विरुद्ध दूसरोंको लूटनेके घृणित कार्य्यसे बचा दिया। इस प्रकार उभय पक्षोंका हितसाधन करते हुए यह नया युग प्रारम्भ हुआ है। एशियाके भावी गौरवके सूतिका-गार मुकदनका नाम भविष्यके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखा जावेगा। और यह स्थल, जहाँकी भूमि जापानी वीरोंके रुधिरसे सिंचित हो एशियाके मान तथा गौरवकी रक्षा-स्थली बनी है, भावी एशियावासियोंका परम पुनीत तीर्थस्थान बनेगा, इसमें सन्देह नहीं है। अतः हे पवित्र मुकदन स्थान ! तुम्हें सादर व सभक्ति प्रणाम है।

यह मुकदन नगर रोमचिंग प्रान्तके मध्यमें है। यह दक्षिणी मञ्चूरिया रेलको सड़कपरका मध्य स्थान है। यहींसे इस रेलकी शाहराहका एक रास्ता पुण्यधाम पोर्ट-आर्थरको जाता है, जहांसे डायरनकी राह यह शांघाईसे जलमार्ग द्वारा मिल जाता है व उत्तरकी ओर यही शाहराह साइबीरिया द्वारा जाने वाले योरपके राजपथसे मिलती है। योरपके यात्रियोंको यहाँसे जापान सीधे पहुंचनेका भी मार्ग चोसनके रास्ते है। यहाँसे चीनको भी सीधी रेल जाती है जो २० घंटेमें यात्रियोंको यहाँसे चीनकी राजधानी पीकिंगमें पहुंचा सकती है। इस कारण यह नगर आधुनिक दृष्टिसे बड़े महत्वका है और संभवतः दिनों दिन इसकी उन्नति ही होती जायगी।

मुकदन चीनका एक प्रधान नगर है। यहाँकी जनसंख्या भी ढाई लाखके करीब है। यह मञ्चूरियाकी राजधानी भी है। यहीं मञ्चूरियाके प्रधान शासकका निवासस्थान है। इस नगरको प्रतापी मञ्चूवंशके जन्मस्थान होनेका भी गौरव प्राप्त है जिसने चीनके महादेशपर २६७ वर्ष तक शासन किया था। इसके सिद्ध करनेमें बहुत विवा-दकी आवश्यकता नहीं है कि यह नगर मञ्चूरियामें एक अत्यन्त प्राचीन नगर है। युवान राजवंशके समय इसका नाम शेंग-यांग था। मिंगवंशके शासनकालमें यहाँ एक अच्छा कसबा बन गया था। संवत् १६८२ में यह नगर मञ्चू राजवंशके प्रथम पुरुष द्वारा चीन साम्राज्यके साथ राजधानीके नामसे गौरवान्वित हुआ। १७०१ में जब मञ्चू वंशने मिंगवंशको पूर्णतया पराजित कर समस्त चीनके राजसिंहासनपर पदा-र्पण किया और पीकिंगको राजधानी बनाया उस समय यह मुकदन नगर लियू-टूके नामसे प्रसिद्ध हुआ जिसका अर्थ "घरकी राजधानी" है। संवत् १७१५ में यहाँ फेंग-टियनप्रान्त बना और तबसे यह नगर फेंग-टियनके नामसे प्रसिद्ध है।

संसारके सब पुराने नगरोंकी भाँति यहाँ भी नगरके चारों ओर शहरपनाह बनी है। यह दीवार ३० फुट ऊंची व १६ फुट चौड़ी ईंटोंकी बनी है, इसका घेरा ४ मील-का है व भीतर जानेके ८ प्रधान द्वार हैं। नगर इस दीवारके बाहर भी खूब बसा है। बाहरी नगरके चारों ओर भी एक और मिट्टीकी दीवार है जो प्रायः १० मील घेरेकी है। रेल-सड़कके पास १४९९ एकड़ जमीन रेल-विभागके अन्तर्गत है। यहाँ नवीन जापानी नगर बस रहा है। यहाँ पक्की सड़कें, बाग, बागीचे, उत्तम पानीके नल, संडास, बिजलीकी रोशनी, तार, टेलीफोन इत्यादि आधुनिक सभ्यताके सभी प्रधान चिन्ह मौजूद हैं। यहाँपर अभी ६००० की बस्ती है जिसमें प्रधान भाग जापानियोंका ही है। यहाँपर हुकूमत भी जापानियोंकी है। ऐसी ही जगहोंको कन्सेशन टेरीटरी कहते हैं।

इस समय पुराने नगरमें गन्दी, बदबूदार, गर्दसे भरी हुई तंग सड़कोंसे आना जाना होता है। नगरके भीतर बहुत ही घनी बस्ती है। बाहरसे देखनेमें मकान व दूकानें सभी गन्दी मालूम पड़ती हैं किन्तु खुशहाली यहाँ है, इसमें सन्देह नहीं है। यहाँ देशी भोजनवालोंकी बहुत दूकानें हैं, प्रधान भोज्य पदार्थ भारतकी सी ही बड़ी बड़ी रोटियाँ, मांस व तरकारियाँ हैं। एक दूकानमें भीतर जाकर देखा तो मटर व ककुनी एकमें पीसकर उसका उलटा बगैर तेलके बना रहे थे। यहाँ बैगनकी तरकारी भी भारतकी भाँति धरी थी। पाँच पैसेको कोई चार बड़ी बड़ी रोटियां तौलकर दूकानदारने दी थीं पर दूकान मैली थी, मैली होनेके कारण मैंने उन्हें खाया नहीं, केवल चखकर ही छोड़ दिया। यद्यपि देखनेमें नगर बड़ा मैला मालूम होता है व अब जीर्ण भी हो गया है किन्तु एक फाटकपर चढ़कर देखनेसे ज्ञात हुआ कि जिस समय यह बना होगा उस समय इसकी शोभा संसारके समकालीन नगरोंसे कम न रही होगी। उस समय यह नववधूकी भांति सुन्दर व सुसज्जित रहा होगा। नगरको बहुत देर तक देखनेके उपरान्त मैं सन्ध्या समय यहाँसे लौट आया।

मुकदनके प्रधान दर्शनीय स्थान राजमहल व राजसमाधियाँ हैं। किन्तु इनके देखनेके लिये अपने अपने देशके राजदूतों (एलचियों)से कहकर कर्मचारियोंके पाससे विशेष आज्ञा माँगनी होती है। मेरे पास इतना बखेड़ा करनेका समय नहीं था। मुझे तो केवल एक दिनमें जो कुछ देख सकूं वही देखना था, इसलिये मैंने राजमहल देखनेकी आशा छोड़ दी। अब रहीं राजसमाधियाँ सो वे संख्यामें यहां तीन हैं। इनके नाम पी-लिंग, टङ्ग-लिंग व यङ्ग-लिंग हैं। इनमेंसे अन्तिम यहाँसे ५० कोस व दूसरी ५ कोसकी दूरीपर है। इससे इन दोनोंके दर्शनका भी विचार छोड़ केवल प्रथमको ही देखने चला। एक जापानी पथप्रदर्शक मेरे साथ हो लिया।

हम लोग एक विक्टोरिया गाड़ीपर चढ़कर चले। नगरके बाहर हो हमारी गाड़ी खेतोंके बीचमेंसे होकर निकली। दोनों ओर ऊंचे ऊंचे बाजरेके पौधे थे, कुछ खेतोंमें ककुनी बोयी हुई थी। ८,९ इंच लम्बी, १ इंच मोटी दानोंसे लदी टाँगुन मैंने अपने देशमें कभी नहीं देखी थी। कहीं कहीं उड़दके भी खेत देखे। सारांश यह कि खेतोंमेंसे होते नगरके बाहर चार मील जानेपर यह समाधि मुझे मिली। यह समाधि मञ्चूवंशके द्वितीय नृपति सम्राट् ता-संगकी है। आपका देहांत १७०१ विक्रममें हुआ था। इस समाधिमन्दिरके चारों ओर १८०० गज घेरेकी एक सुवृहत् पक्की दीवार है। दीवारके भीतर दो अहाते हैं। पहिले अहातेमें एक मण्डपके बीचमें जिसपर दोमंजिला चीनी छत लुक फेरे हुए खपडोंसे छायी है पत्थरका एक विशाल जलजन्तु—कच्छप—रखा है। उसकी पीठपर एक विशाल शिलालेखका पत्थर है जिसपर तीन भाषाओंमें विगत सम्राट्का चरित्र अंकित है। कहा जाता है कि यह लेख स्वयम् कांग-सी नृपतिके हाथका लिखा है। इस मण्डपके बाहर सड़कके दोनों ओर पूरे कदके घोड़े, हाथी, ऊँट व एक ओर पत्थरकी खुदी जानवरकी मूर्तियां रखी हैं। यहांसे दूसरे अहातेके भीतर एक बड़े द्वारसे जाना होता है जिसमें भारतवर्षके ढंगका बड़ा मोटा बेवड़ा द्वार बन्द करनेको लगा है, अन्तर केवल इतना है कि वहाँ बेवड़ा द्वारके भीतर लगाया जाता है कि जिसमें ढकेलके कोई द्वार न खोल सके, पर यहां बेवड़ा बाहर लगा

पृथिवी प्रदक्षिणा

मुकदनका राजमहल (पृष्ठ ३२८)
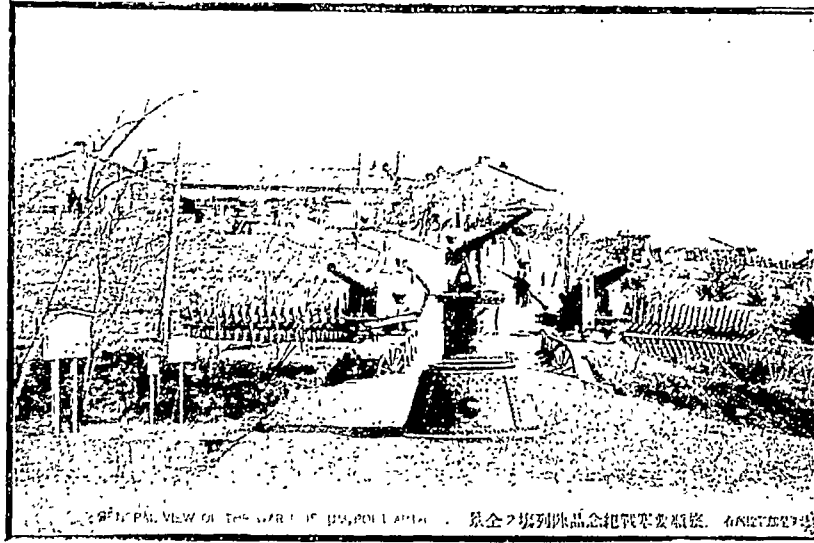
संग्राम सम्बन्धी संग्रहालय, पोर्ट आर्थर (पृष्ठ ३३१)

'दर्बार' नामक सुन्दर गृह (पृष्ठ ३२९)

है । इस अहातेके भीतर चार छोटे छोटे गृह बने हैं व बीचमें एक बहुत सुन्दर बड़ा गृह है, जिसे दर्बारके नामसे पुकारते हैं। असल समाधि इस मकानके पीछे मैदानमें बनी है। समाधिपर कोई इमारत नहीं है केवल ऊँचा मट्टीका ढ्हा है जिसपर वृक्ष-लता-गुल्म जंगली तौरपर उगे हैं। यहां संगमर्मरकी सीढ़ियोंपर अच्छी नक्काशीका काम है। लकड़ीके साजोंपर भी जो छतको उठाये हुए हैं अच्छी रंगसाजी है। यहाँ गुलमेहदी, गुलाबाँस तथा जटाधारी इत्यादि पौधे बहुतायतसे लगे देख पड़े। होटलसे यहाँतक प्रकृतिका अजीब लावण्यमय सोहावना दृश्य देख पड़ता है जिससे मनुष्य थकता नहीं।

रात्रिमें एक चीनी नाटक देखने गया, यह अजीब ढंगका नाटक था। बाजेका स्वर तो अपना सा था पर झांझ व लकड़ीके बाजेकी ऐसी करकश आवाज थी कि वह सहन नहीं होसकी। पात्र भी बेढंगे विचित्र प्रकारसे बने थे। जवनिका यहाँ होती ही नहीं। सारांश, इसका कुछ उत्तम प्रभाव नहीं पड़ा। रात्रिभर सोनेके उपरान्त प्रातःकाल ही पोर्टआर्थर धामकी यात्रा की।

इकतीसवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

पोर्ट-आर्थर-धाम ।

मुकदनसे पोर्टआर्थर तीर्थ १७० मील प्रायः १२ घंटोंकी राह है। जिस प्रकार चौरासी कोसकी ब्रजयात्राकी भूमि कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी बाल-क्रीड़ाके कारण पुनीत है, वहाँकी रज मस्तकपर चढ़ानेसे हिन्दू लोग अपनेको कृतकार्य समझते हैं उसी प्रकार पोर्टआर्थरकी भूमि भी पुनीत है। कृष्णचन्द्र पांच सहस्र वर्ष पूर्व भारतके महाभारतके कर्त्ता-धर्त्ता व भारतको दुष्ट कुरु व यदुवंशके भारसे मुक्त करनेवाले थे, इसी कारण उन्हें आज हम भारतवासी महात्मा, प्रभु तथा ईश्वरका अवतार कहकर भी स्मरण करते हैं। मुकदन व लूसनके पहाड़के बीचकी १७० मील भूमि जापानी वीर कृष्णचन्द्रके सखाओंके रुधिर-रञ्जित पद-चिन्होंसे पूरित है और इसी लिये यहाँकी रज पड़नेसे समस्त एशियावासी अपनेको पवित्र समझते हैं। इस भूमिपर रूस रूपी कंसको पछाड़कर कृष्णके सखाओंने सारे एशियाभूखण्डको योर-अमरीकाके अत्याचार-भारसे हलका किया है। इस भूमिका एक एक रजःकण क्षत्रियोंके शोणितसे सनकर पवित्र हो गया है। धन्य हैं वे पुरुष जिन्होंने संसारको योर-अमरीकाके दासत्व रूपी गर्तमें डूबनेसे बचाया! धन्य हैं वे जापानी माताएं जिनकी कोखसे वे वीर जापानी उत्पन्न हुए थे जिन्होंने इस पुनीत क्षेत्रमें अपने शरीर-खण्डोंसे आहुति देकर उस नरमेध-यज्ञको समाप्त किया जिसके फलसे आज संसारको योर-अमरीकाके दासत्वके भयसे छुटकारा मिला है! इसी पुण्य-भूमिकी शोभा देखते देखते दिन समाप्त हो गया और रात्रिके १० बजे मैं पुण्यधाम 'टियोजन' में पहुंच गया। दूरसे ही ऊंची पहाड़ीकी शिखा, स्मारक चिन्हपर चमकती हुई दीप-शिखा देख पड़ी। इसे मैंने प्रणाम किया।

आज दिन भर कुछ विशेष भोजन न मिलनेके कारण मैं क्षुधासे पीड़ित था और देर होजानेके कारण भोजनकी आशा भी न थी। मैंने भी एकबार जीमें सोचा कि आधुनिक समयके तीर्थस्थानमें आज उपवास ही करना चाहिये किन्तु तुरंत फिर ख्याल आया कि नहीं यहां उपवास करना उचित नहीं, यह सांसारिक तीर्थ है, खूब भोजन करना ही इस तीर्थका माहात्म्य है। पारलौकिक तीर्थोंमें उपवास करना स्वार्थत्यागका उपदेश है, किन्तु सांसारिक तीर्थोंमें यह उचित नहीं।

यहां मैंने दो दिन निवास किया, एक एक पहाड़को जाकर देखा और उसकी रज माथेपर चढ़ायी। जहाँ जहाँ घमासान युद्ध हुआ था उन सब जगहोंको मैंने देखा, जहाँ जहाँ रूसी दुर्गकी धज्जियाँ उड़ायी गयी थीं उन सबकी परिक्रमा की। वीर
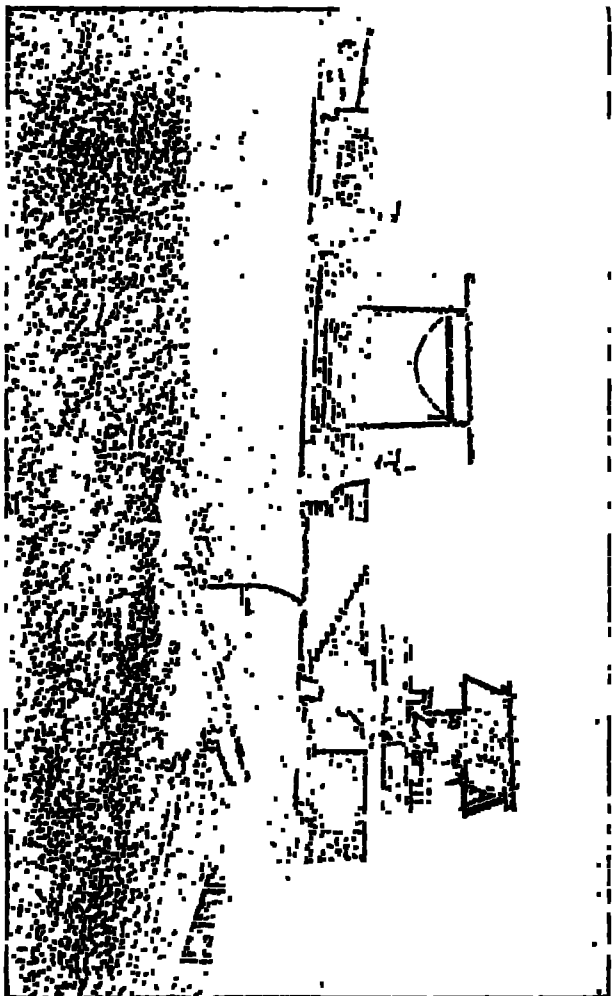
ऊंची पहाड़ीका स्मारक (पृष्ठ ३३०)
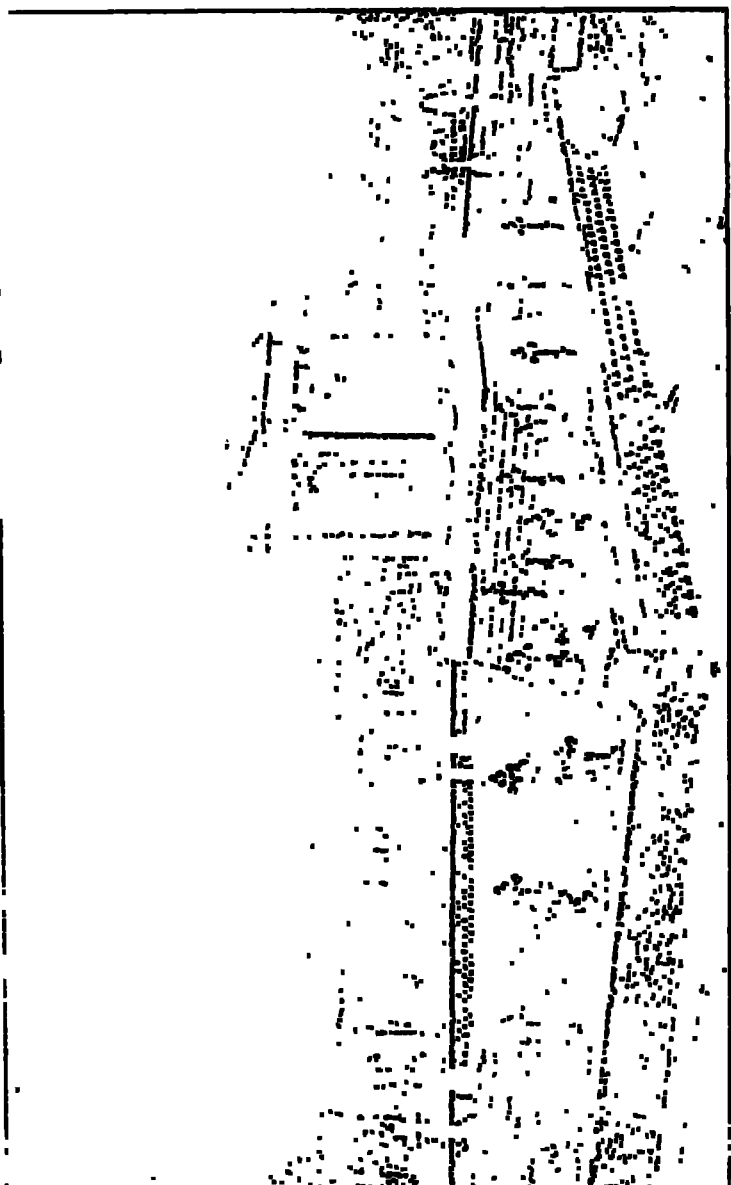
रूसी स्मारक

(पृष्ठ ३३१)
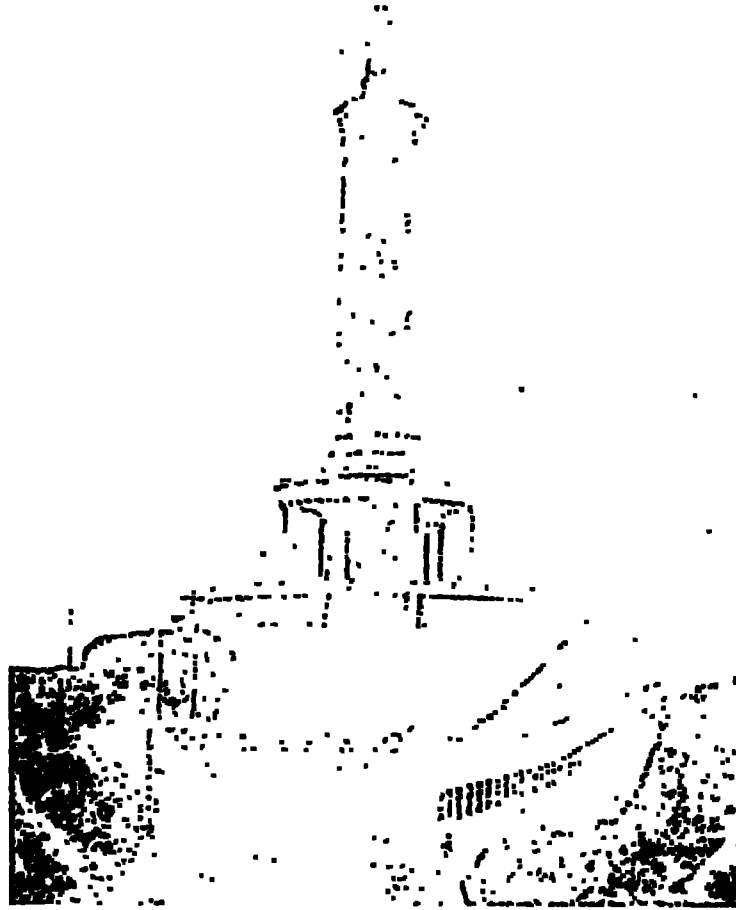
आहत जापानियोंका स्मारक।

आहत जापानियोंके लिये जो स्मारक बना है उसे भी देखा। युद्धके उपरान्त जिन रूसी वीरोंने अपने देशहितके लिये यहाँ प्राण त्यागे थे उनके सम्मानार्थ भी रूस सरकारको यहाँ तथा मुकदन इत्यादि स्थानोंमें स्मारक बनानेकी आज्ञा जापानने दी थी। उन स्मारकोंको भी मैंने देखा। ये रूसी स्मारक जापानी बुशीदो (क्षात्र) धर्मके जीते जागते चिन्ह हैं। एशियानिवासी अपने शत्रुओंका भी मान करते हैं, उनके वीरोंकी मर्यादाका भी उन्हें ज्ञान रहता है, इसका यह एक स्पष्ट प्रमाण है। एशिया-निवासी केवल इसी कारण कि दूसरे हमारे शत्रु हैं, दूसरोंके गुणोंको नहीं भुला देते। शत्रुता वास्तविक गुणोंका लोप नहीं करती, किन्तु यह ऊँचा विचार योर-अमरीका वालोंको मोटी बुद्धिमें आना कठिन है। उन्हें तो शत्रुओंके गुणोंका देखना दूर रहा, झूठे लांछन लगाकर संसारमें एक दूसरेको बदनाम करनेमें भी लाज नहीं आती। ईश्वर उनकी सभ्यता उन्हींको मुबारक करे, हमारी सभ्यता उनसे कहीं उच्चतर श्रेणीकी है।

यहाँका संग्राम सम्बन्धी संग्रहालय भी मैंने देखा जिसमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र रक्खे हैं। यहाँ दो नगर हैं, एक प्राचीन चीनी नगर, दूसरा आधुनिक नगर

जिसका बसाना रूसियोंने आरम्भ किया था। रूसियोंको जब कुस्तुनतुनिया मिलनेकी आशा नहीं रह गयी तब उन्होंने अपनी आँख इधर एशियाकी ओर प्रशान्त सागरमें विस्तृत पोताश्रय खोजनेकी ओर लगायी। उनका पोताश्रय ब्लहाडी वास्टाक, चोसेनके उत्तरी छोरपर है। जाड़ेके दिनोंमें उसका पानी जमकर बरफ बन जाता है, इससे वहां बारहों महीने लड़ाकू जहाज़ नहीं रह सकते। अतः उनका ध्यान इस ओर गया और उन्होंने धीरे धीरे मञ्चूरिया व मंगोलियाको ग्रसना प्रारम्भ किया। इन्हीं सब बखेड़ोंके कारण जापान व चीनमें युद्ध प्रारम्भ हुआ और १९५१-५२ में जापानने चीनको परास्त कर पोर्ट-आर्थर व डायरन इत्यादिपर कब्जा कर लिया। जापानके सामने अपनी दाल न गलती देख रूसने जर्मनी व फ्रांसको उभाड़ा। इन तीनों महाशक्तियोंने मिलकर जापानपर इस बातका जोर डाला कि जापान ये दोनों पोताश्रय चीनको फेर दे। इसका क्या अर्थ है यह जापान भली भाँति जानता था किन्तु उस समय अपनेमें इन शक्तियोंसे लड़नेकी सामर्थ्य न देखकर उसे ये दोनों बन्दर चीनको वापस करने पड़े किन्तु उसी समयसे जापानने अपनेमें शक्तिका संचार करना प्रारम्भ किया जिसका फल १० वर्षके उपरान्त १९६१-६२ के युद्धमें निकला।

दो ही वर्ष बाद रूसने इन बन्दरोंको चीन सरकारसे ठीकेपर ले लिया और विपुल धन व्यय कर इन्हें आधुनिक रण विद्याके अनुसार सुरक्षित करना आरम्भ कर दिया। उसने प्रधान प्रधान २५ पहाड़ियोंपर विकट दुर्ग बनाये और सारा पोताश्रय इस प्रकारसे सुदृढ़ किया जिसमें उसे किसी भांतिका भय न रहे। रूसका विचार इस नगरको दूसरा मास्को बनानेका था। उस समयमें यहाँ तीन हज़ार श्वेतांग निवास करने आ गये। उनके लिये एक नया नगर बसाया जाने लगा। इसीका नाम नया नगर है, किन्तु जापानके हाथ पुनः आनेके उपरान्त जापानने इसे डायरनके समान लाभकारी न समझ इसको प्रधान स्थान नहीं बनाया। डायरनको ही प्रधान पद दिया है। डायरन जापानी मञ्चूरियाका प्रधान स्थान है।

एशियाका मेराथान

विक्रमके ३४८ वर्ष पूर्व एजियन समुद्रमें एक बड़ा भारी युद्ध यूनानी व पारसियोंमें हुआ था। इसमें तीन प्रसिद्ध युद्ध हुए थे—(१) थर्मापोलीमें जल व स्थल दोनों युद्ध हुए, (२) सलामिसमें केवल जल-युद्ध हुआ था और (३) मेराथानमें केवल स्थलयुद्ध हुआ था। इसी प्रकार इस बीसवीं शताब्दीके एशियाई मेराथानमें भी तीन प्रसिद्ध युद्ध हुए—(१) पोट आर्थर १९६१, १७ पौष (१ जनवरी) जल व स्थलयुद्ध, (२) शुशिमा १९६२, १३ ज्येष्ठ (२७ मई) जल-युद्ध (३) मुकदन १९६२, ३१ चैत्र (१४ मार्च) स्थलयुद्ध।

जिस प्रकार योरपीय मेराथानमें एशियाई शक्तिके विनाशका आरम्भ हुआ था उसी प्रकार इस बीसवीं शताब्दीके एशियाई मेराथानमें योरपीय शक्तिके विनाशका सूत्रपात हुआ। विक्रमके पूर्व चौथी शताब्दीके मध्ययुगमें यदि यूनानी लोग पारसियोंसे हार जाते तो आज दिन कदाचित् संसारको योरपका नाम भी सुननेको न मिलता और संसारके मानचित्रमें योरपके भिन्न भिन्न राज्योंके स्थानपर शायद एशियाई शक्तियोंका ही नाम लिखा मिलता। यह मेरी नहीं योरपवालोंकी ही राय है।

'पृथिवी प्रदक्षिणा'

भातरा नगरका प्रवेशद्वार (पृष्ठ ३२७)
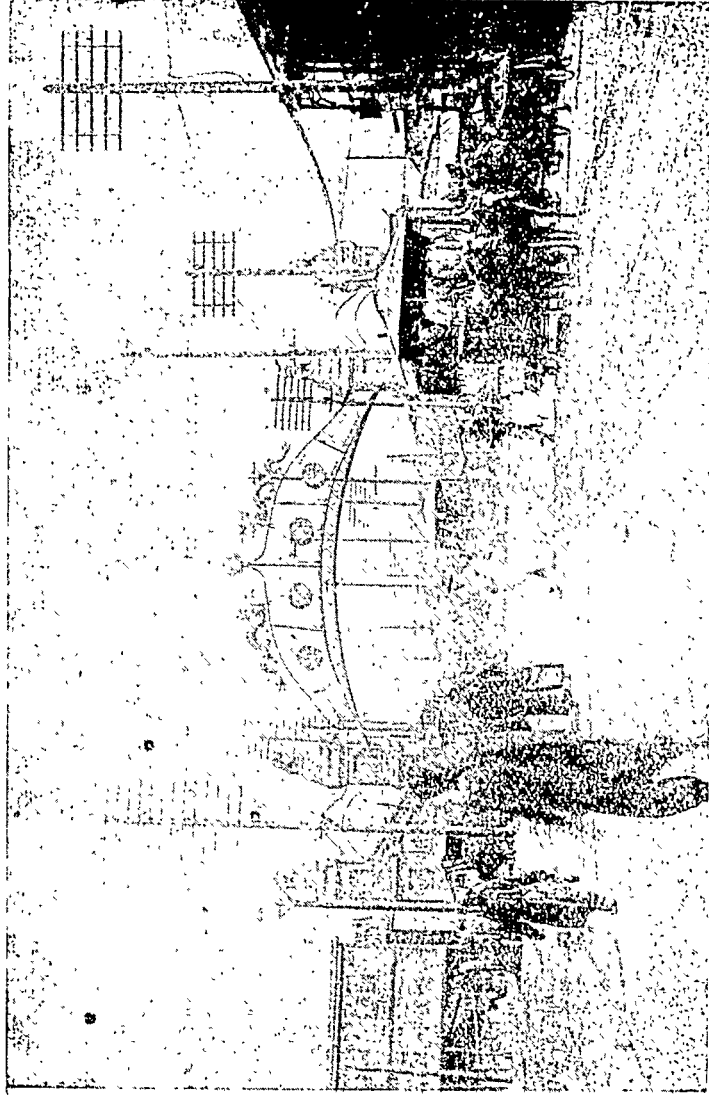
वाहरी नगरका प्रवेशद्वार (पृष्ठ ३२७)

इसी प्रकार यदि विक्रमके उपरान्त बीसवीं शताब्दीके मध्ययुगमें एशियाई मेराथानमें जापानकी पराजय होती तो एशियाका क्या होता इसके सोचनेसे भी हृदय काँपता है। जापानका तो सर्वनाश हो ही गया होता, इसमें सन्देह ही क्या है? चीनकी भी बन्दरबाँट अबतक समाप्त हो गयी होती। फारस व अफ़गानिस्तान भी केवल प्रभाव व स्वार्थमण्डलके अर्द्धस्वरूपमें अबतक न बचे रहते किन्तु उनपर भी योर-अमरीकावालोंका झण्डा फहराता देख पड़ता। नाममात्रको स्वतन्त्र एशियाका नाम भी संसारकी पटियापरसे मिटा दिया जाता और दासत्वकी श्रृङ्खलामें बँधकर प्राचीन देश कब तक पददलित हुआ करते, यह केवल परमात्मा ही जाने। इसीसे इस युद्धका नाम एशियाका मेराथान रखना उचित समझा गया है।

पोर्टआर्थरका आधुनिक जापानी नाम टियोजन व प्राचीन चीनी नाम लूसन है। यह बन्दर अपनी विचित्र स्थितिके कारण तथा १९५२ व १९६२ के युद्धोंके कारण जगत्प्रसिद्ध हो गया है। कहा जाता है कि रूस-जापान युद्धके बराबर भीषण युद्ध देखनेका संयोग बूढ़े संसारको पहिले कभी भी नहीं प्राप्त हुआ था। आज दिन भी भग्न दुर्गोंके खँडहरोंके देखनेसे उक्त समरकी भीषणताका दृश्य आँखों तले घूम जाता है। यह संसारके ऐतिहासिक स्थानोंमें एक प्रधान स्थान है। पूर्वीय एशियाके यात्रियोंकी यात्रा बग़ैर इसके दर्शनके सम्पूर्ण नहीं समझी जा सकती और अन्य एशियानिवासियोंके लिये तो यह एक दूसरा बदरिकाश्रम, मक्का शरीफ व जेरूसेलम है। यहांकी प्राकृतिक शोभा भी अतुलनीय है।

ऐतिहासिक वृतान्त।

यहांके इतिहासका प्रारंभ हजार वर्षोंसे भी पहिले माना जा सकता है। पुराने कागज़-पत्रोंसे पता चलता है कि 'तांग' वंशके शासन-समयमें भी यह पोताश्रय रण-स्थान था (६७७-७३४ विक्रम)। युवान राजवंशके राजत्वकालमें (१३३७-१४२५ विक्रम) इस पोताश्रयका नाम नाविकोंने 'शिनजूकू' रक्खा था जिसका अर्थ 'सिंहमुख' है। यह नाम इस कारण रक्खा गया था कि इसके भीतर आनेका मार्ग इतना संकीर्ण है कि वह सिंहके मुखसा देख पड़ता है। 'मिंग' राजवंशके प्रभावके समयमें (१४२५-१७०१ विक्रम) इसका नाम 'लूशंकाऊ' पड़ा, जिसका अर्थ 'यात्रियोंको सुखदेनेवाला' है। किन्तु यह सब होते हुए भी इसका वास्तविक प्रयोग 'मंचू' राजत्व-कालके पूर्व यथार्थ रूपसे नहीं होता था। 'मंचू' वंशके प्रथम नृपति 'तटसंग'ने इसको प्रधान पोताश्रय बनाया और यहींसे शनटङ्गमें उनकी सेना जल-मार्गसे भेजी गया थी। उसी समयसे इसकी मान-मर्यादा बढ़ी और 'कंग-सी' नृपतिने इसे जलसेनाका स्थान बनाया किन्तु जल-सेना यहाँसे शीघ्र हटा ली गयी और फिर २०० वर्षों तक इसका नाम सुननेमें नहीं आया।

१९१४ में जब अंगरेज़ों व फरासीसियोंने चीनके विरुद्ध युद्धघोषणा की तब यह लूसन स्थान संयुक्त सेनापतियों द्वारा युद्धका सामान एकत्र करनेके लिये चुना गया और आधुनिक ब्रिटिश सम्राट्के पितियाके नामपर जो उस समय बालक थे 'पोर्टआर्थर'के नामसे विख्यात हुआ। इस युद्धके उपरान्त चीनी राजनीतिज्ञ 'लीहुंगचंग'ने इस प्राकृत दुर्गको भलीभाँति रण-विद्या द्वारा सुदृढ़ करना चाहा।

१९४५-४९ के बीचमें यह भलीभाँति दुरुस्त किया गया और चीनकी उत्तरीय जल-सेनाका प्रधान स्थान बना। इस समय इस बन्दरका प्रभाव बढ़ा और यहाँकी जन-संख्या बीस हज़ार हो गयी। सामान्य जनताके अतिरिक्त यहाँ २० हज़ार सैनिक थे। १९५१ में चीन-जापान युद्ध छिड़ गया और पहिला युद्ध यहीं हुआ किन्तु एक ही हमलेमें जापानने इस दुर्गको एक दिनमें ही हस्तगत कर लिया। इसके बाद उसका चीनको फेरा जाना, चीनसे उसका रूसके हाथ आना तथा रूसका मद चूर्ण कर उसका फिरसे जापानके हाथमें आना, यह सब ऊपर कहा ही जा चुका है।

यह पोताश्रय अण्डाकार है। इसकी लंबाई दो मील व चौड़ाई कुल आध मील है। दोनों ओरसे भूमिके दो हाथोंने मानों घेरकर इसे गोदमें ले लिया है। खुले समुद्रसे भीतर आनेका मार्ग केवल ३०० गज़ चौड़ा है किन्तु उसकी गहराई बड़ेसे बड़े जहाज़को भीतर आने देनेके लिये काफी है। इस भूमिके हस्ताकार टुकड़ों-पर पहाड़ हैं जिससे मुहानेकी खूब रक्षा हो सकती है। अगल बगल व पीछेकी ओर ऊँची ऊँची पहाड़ियोंके कारण यह स्वाभाविक रूपसे दुर्गम स्थान है। ईंट, पत्थर, लोहा लक्कड़ व आधुनिक रणशास्त्रकी सहायतासे यह स्थान सचमुच अजेय बनाया जा सकता है और इसी कारणसे रूसियोंका घमण्ड, कि इसको जीतना मानुषिक शक्तिके परे है, मिथ्या विश्वास नहीं था।

जलसेनापति तोगो।

रूसी युद्धका पूरा वृत्तान्त अवश्य ही पाठकोंको बहुत रुचिकर होता, पर यहां विस्तारपूर्वक लिखना कठिन है। उसके लिये स्वतन्त्र पुस्तककी रचना होनी चाहिये। फिर भी हम इस विचित्र लड़ाईका थोड़ासा हाल नीचे लिखते हैं।

संवत् १९६१ के २६ माघ (८ फरवरी) को रात्रिको पोर्ट-आर्थर-के विरुद्ध जल-सेनापति तोगोने आक्रमण प्रारम्भ

कच्छपकी पीठपर शिलालेख (पृष्ठ ३२८)
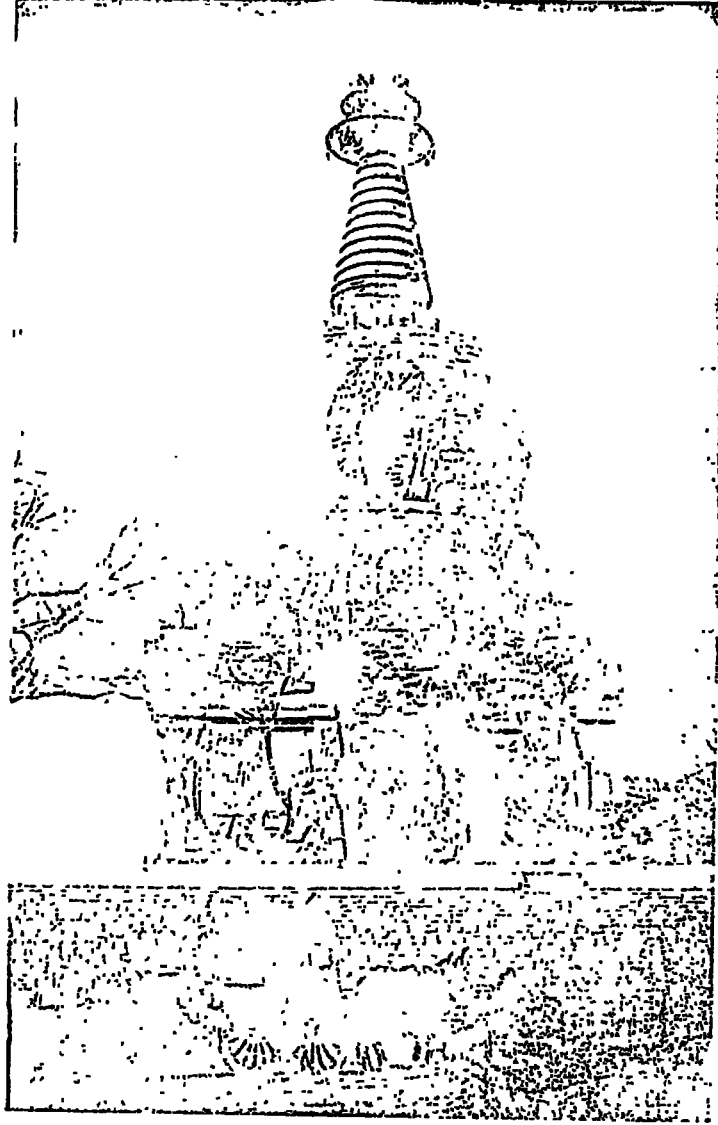
लामा टावर या निशी टावर, मुकदन (पृष्ठ: ३२८)

किया । इस आक्रमणमें रूसी युद्धयानोंको कुछ नुकसान पहुंचा । इसके बाद अनेक आक्रमण हुए व अनेक बार अपने निजके व्यापारी जहाज़ोंको डुबाकर पोताश्रयके द्वारको रुद्ध करनेका प्रयत्न किया गया । इन आक्रमणोंमें कितने ही रूसी जहाज़ काम आये व अन्य युद्धपोतोंने दुर्गकी आड़में आश्रय लिया जहाँ वे बेकार खड़े रहे । स्थल-सेनाने १२ ज्येष्ठ (२६ मई) को नैनशन पहाड़ी जीत कर पोर्ट-आर्थरके भीतर रहनेवाली रूसी सेना और बाहरकी सेनाके सम्बन्धका अन्त कर दिया । उत्तर-से दक्षिण तक एक लम्बी क़तार बनाकर युद्ध करनेसे रूसियोंको दक्षिण व पश्चिमकी ओर दबनेपर मज़बूर होना पड़ा । रूसियोंने पहाड़ियों व घाटियोंका पूरा पूरा फ़ायदा उठाकर जापानियोंकी बाढ़ रोकनेका जितना सम्भव था उतना यत्न किया । जापानियोंकी कठिनाइयोंका पता इसीसे खूब चल सकता है कि ये खुले मैदानमें पड़े थे, रूसी लोग पहाड़ियोंके ऊपरसे इन्हें निशाना बना रहे थे और उन्हें दुर्गों, पहाड़ों व घाटियोंमें छिपकर या अन्य रूपसे अपना बचाव करनेकी सुविधा थी ।

एक मौकेपर किसी दुर्गपर कब्जा करना अत्यन्त आवश्यक समझकर तोपोंकी बाढ़में दौड़कर उसे लेनेके लिये ३८०२ मनुष्य चुने गये । सेनापति 'नाकामुरा' इनके नायक बने । आक्रमण करनेके पूर्व आपने सेनाको जो आज्ञाएँ दीं वे विशेष रीतिसे बयान करनेके योग्य हैं । आपने कहा,—"हमारा लक्ष्य इस दुर्गको काटकर दो टुकड़े करना है, किसी व्यक्तिको इस आक्रमणसे जीवित लौटनेकी आशा नहीं है, इसीसे जीवनकी आशा छोड़ वीरोंको आगे बढ़ना चाहिये । अगर मैं पहले आहत हो जाऊँ तो सेनापति "वातानावे" मेरा स्थान तुरंत लेंगे, यदि वे भी गिर जायँ तो 'ओकुबो' महाशय उनका आसन लेंगे ; सारांश यह कि सब अफसरोंको अपनेसे ऊपर वाले अफसरका उत्तराधिकारी समझना चाहिये । यह हमला बिलकुल संगीनों द्वारा ही किया जावेगा, चाहे रूसियोंकी अग्निवर्षा कितनी ही भयङ्कर क्यों न हो किन्तु हमारे वीर जब तक दुर्गपर न पहुंच जावें एक आवाज़ भी न दागें" । अहा, वीर जापानियो ! तुम्हारा नाम आज संसारमें जगमगा रहा है । वीर सेनापति नाकामुरा, तुम आज जनरल बैरन नाकामुराके नामसे पोर्ट-आर्थरके गवर्नर जनरलके आसनपर सचमुच शोभा देते हो । तुम्हारा हाड़-मांसका शरीर तो कुछ न कुछ समयमें पञ्चत्वमें विलीन हो ही जावेगा किन्तु तुम्हारी उज्वल कीर्ति तुम्हारे मित्र व शत्रु दोनोंको ही न भूलेगी । तुम्हारा नाम स्मरण कर न जाने कितने कायर सूरमा बन जावेंगे । तुम धन्य हो, तुम्हारी वीर माताको प्रणाम है और उनकी जननी जन्मभूमि जापानको शतशः प्रणाम है ।

वर्तमान रेलसड़कके किनारे कितने ही भीषण संग्रामोंके उपरान्त श्रावणके अन्त-में रूसी लोग प्रधान दुर्गोंके पीछे शरण लेनेके लिये बाध्य हुए । जब दुर्गोंपर आक्रमण करनेका सामान पूरा हो गया तब राजाज्ञा हुई कि आक्रमणके पूर्व साधारण निवासियोंके बचावका पूरा बन्दोबस्त होजाना चाहिये । इस राजाज्ञाके अनुसार सेनापति नोगीने रूसी सेनापतिके पास दूत भेजकर कहलाया कि आप असैनिक जनताको दुर्गसे बाहर निकलनेकी आज्ञा दें और दुर्गको भी खाली कर दें । किन्तु रूसी सेनापतिने उत्तर दिया कि हमें जापाना सम्राट्की कृपाओंकी आवश्यकता नहीं है, हममें दुर्ग तथा उसके भीतर रहने वाली जनताकी रक्षा करनेको पर्याप्त शक्ति है ।

इस उत्तरके मिलनेके उपरान्त पहिला आक्रमण प्रारम्भ हुआ। यह ३ भाद्रपदसे ८ भाद्रपद (१९ अगस्तसे २४ अगस्त) तक चला। इसके बाद तीन आक्रमण और हुए। इन आक्रमणोंकी भीषणताके लिखनेकी शक्ति लेखनीमें नहीं है। इसकी भीषणताका अन्दाज़ा इसीसे लगाया जा सकता है कि वीर रूसी सैनिक आधुनिक अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित व अत्यन्त दृढ़ दुर्गोंका पूरा फ़ायदा उठाते हुए और दुर्गोंके अतिरिक्त सुरंग, खाई, माइन, विद्युत्शक्तियुक्त तारके जाल इत्यादिसे सहायता लेते हुए भी चार महीनेसे अधिक दुर्गकी रक्षा न कर सके। २०३ मीटर ऊँची पहाड़ी जो यहाँ सबसे ऊँचा गिरि-शिखर है जापानियोंके हाथमें मार्गशीर्षके अन्ततक आ गयी थी। इस पहाड़ीके विजय करनेमें ३१५४ जापानी खेत रहे और ६८५३ आहत हुए। रूसियोंकी मृतक-संख्याका पता इससे चल सकता है कि दुर्गकी प्राप्तिके उपरान्त उसमें ५३८० रूसी शव मिले थे। इस पहाड़ीके हाथ आनेके बाद रूसियोंका मेरुदण्ड टूट गया। सेनापति नोगीने यहाँसे रूसी युद्धपोतोंका ठीक ठीक स्थान देख कर

सेनापति नोगी।

तुंगचा क्वान शानपर जापानियोंका भीषण आक्रमण (पृष्ठ ३३६)

२०३ मीटर ऊंचा पहाड़

(पृष्ठ ३३६)
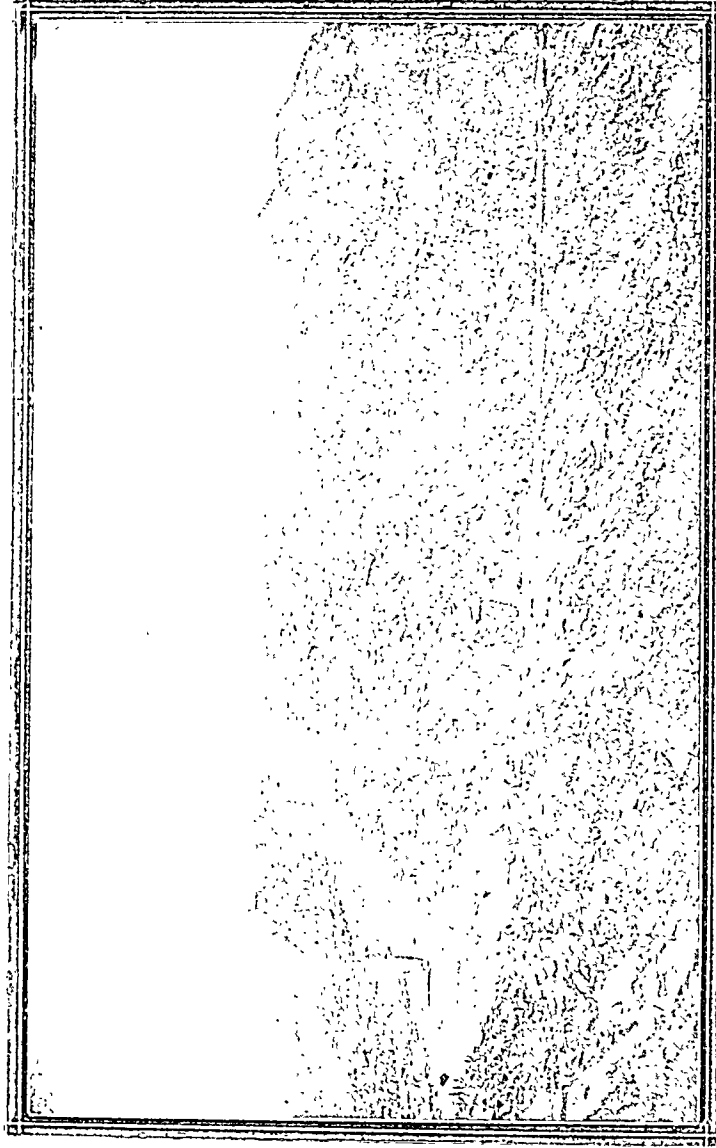
उसका पूरा पूरा पता अपने सहकारी सेनापतियोंको देदिया। उन लोगोंने बड़ी तोपोंके ज़रिये इन सबको चूर्ण कर नष्ट कर डाला।

१९३१ के १७ पौषको सेनापति स्टोसेलने नोगीके पास समाचार भेजा कि जहाँ जहाँ श्वेत पताका उड़ती है वहाँ वहाँ गोले न दागे जावें। १८ पौष (२ जनवरी) को रूसी सेनापतिको दुर्ग खाली कर देना पड़ा। २१ पौषको 'शुद्ध-शी-ईङ्ग' ग्राममें एक किसानके घरपर दोनों सेनापति मिले और रूसी सेनापति स्टोसेलने दुर्ग और पोताश्रय जापानियोंके सुपुर्द कर दिये।

पोट-आर्थरकी पराजयसे रूसकी हार पूरी नहीं हुई। उसे पूर्ण करनेके लिये मुकदनमें स्थलपर ३१ चैत्र (१४ मार्च) १९६२ को और शुशीमा खाड़ीमें १३ ज्येष्ट (२७ मई) १९६२ को वालटिक बेड़ेके नाशकी लड़ाई हुई। इस युद्धके बाद रूसमें दम लेनेको भी सांस बाकी नहीं थी। जल-सेनाके नामसे उसके पास एक भी जहाज़ न बचा था और स्थलपर भी उसकी सेनाका बुरी तरहसे मर्दन हो गया।

लूसन वन्दना।

हे पोर्ट-आर्थर! आधुनिक टियोजन, प्राचीन लूसन, तुम्हें श्रद्धा सहित प्रणाम है। हे लूसन पहाड़! तुम्हारी गोदमें स्वतन्त्र एशियाका सूतिकागार है, तुम नवीन एशियाके जन्मदाता हो, इसलिये तुमको पुनः नमस्कार है। हे बीसवीं शताब्दीके मेराथान! तुमने एशिया भूखण्डको मृत्युसे बचाया है, इस कारण तुम्हें प्रणाम है। हे एशियाके वाटरलू! तुम्हारे वक्षःस्थलपर योरपका गर्व खर्व हुआ है, इससे तुमको प्रणाम है। हे मञ्चूरियाके हलदीघाट! तुम्हारी ही घाटियोंमें रूसका मान-मर्दन हुआ है, इससे तुम्हें बारंबार प्रणाम है। हे लूसन पहाड़! तुम्हारे ही शरीरसे जापानी वीरोंके नादने टकरा कर प्रतिध्वनित हो, एशिया भूखंडमें चारों ओर फैलकर गहरी नींदमें पड़े हुओंको जगाया है, तुम्हारे ही ऊपर खड़ी हो जापानी भुशुण्डियोंने आग उगल योरपके भय रूपी काग़ज़के रावणको जलाया है, इससे तुमको प्रणाम है। हे योर-अमरीकाके राहुको भंग कर एशिया रूपी चन्द्रदेवको अपनी ज्योत्स्ना जगत्में फैलानेका अवसर देने वाले पोर्ट-आर्थर! तुम्हें प्रणाम है। अपनी सफलताके मदसे अन्ध योर-अमरीका निवासी वैज्ञानिकगण व तत्त्ववेत्ता भी यह भूल गये थे कि संसारकी कोई जाति सदाके लिये गुलामी करनेके लिये नहीं सिरजी गयी है। वे अपनी सफलतासे इतने मदमस्त थे कि वे यह विचार भी नहीं कर सकते थे कि योर-अमरीका वाले कभी एशियावालोंसे किसी बातमें भी पराजित हो सकते हैं, सो हे टियोजन! तुमने रूसका मान भंग कर उन्हें भी अचंभित कर दिया है। वे अब अपने विचार बदलने लगे हैं। इस लिये तुम उनके ज्ञानदाता होनेके कारण पूजनीय हो, अतः तुमको नमस्कार है। मोहनिद्रामें निमग्न एशियावासी बिस्तरे-पर खुर्राटे ले रहे थे, तुम्हारी तोपोंके घनघोर शब्दोंने उन्हें जगा दिया, वे अचम्भेमें आँख मल इधर उधर देखने लगे, पूर्व दिशामें भानु-पताका फहराते देख उनके शरीरमें स्वेदन होने लगा और वे उठ खड़े हुए, इस कारण तुम मोहनिद्रामें पड़े एशियावासि-योंको जगानेवाले हो, तुम्हें फिर फिर प्रणाम है। हे नवयुगका प्रचार करनेवाले! हे

एशियामें स्वतन्त्रताकी घोषणा करनेवाले ! हे घोरअमरीकाकी बाढ़के रुद्ध करनेवाले ! हे प्रातः स्वाधीन समीर बहाकर एशियावासियोंके हृदय-कमलको खिलानेवाले ! हे 'एशिया फार एशियाटिक्स' (एशिया एशियानिवासियोंके लिये है) की घोषणा करने वाले पोर्ट-आर्थर ! तुम्हें बारंबार प्रणाम हैं। हे घोर-अमरीकाके तापसे झुलसती हुई एशियाकी खेतीपर आनन्द-वर्षा बरसानेवाले ! हे श्वेतांगोंके तुषारसे ठिठुरे हुए सवर्णोंके शरीरको वसन्तागमनका संदेशा पहुंचा गर्मी पहुंचाने वाले ! तुमको प्रणाम है। हे घोर-अमरीकाकी रजनीसे आच्छादित एशिया भूखण्डको प्रभातभानुसे लोहितवर्ण करनेवाले ! तुमको प्रणाम है। हे एशियाको मोक्ष देने वाले कूसन पहाड़ ! आधुनिक समयके पुण्यधाम ! भविष्यके बैतुलक्षुदा व स्वर्गद्वार, तुमको कोटि कोटि प्रणाम है। वन्दे पोर्ट-आर्थरम्-वन्देमातरम्।

चतुर्थ खण्ड—चीन ।

साइबेरिया
मंगोलिया
मंचूरिया
गोबी मरुभूमि
सिन किआंग
तिब्बत
लासा
काशी
भारत
कलकत्ता
ब्रह्मदेश
बङ्गाल की खाड़ी
रंगून
स्याम
कालगन
नैनकाङ
पीकिङ्ग
मुकदन
पोर्ट आर्थर
किआउ चाऊ
पीतसमुद्र
पेलिंग पर्वत
चेंगचाऊ
चीङ्कि
शांघाई
यांङ्टसीकियांग नदी
नैनलिंग पर्वत
कैण्टन
हांगकांग
अमाय
फारमोसा
हैनन
यात्रामार्ग
कियोतो
प्रशान्त सागर
कैण्टन
हांगकांग
सिंगापुर
फिलिपाइन द्वीप
पिनांग
मलक्का
बोर्नियो
७० ८० ९० १०० ११० १२० १३० १४० १५०
५० ४० ३० २०
० १०० २०० ३०० ४०० ५०० ६००

चीनका मानचित्र.

पहिला परिच्छेद ।

—:o:—
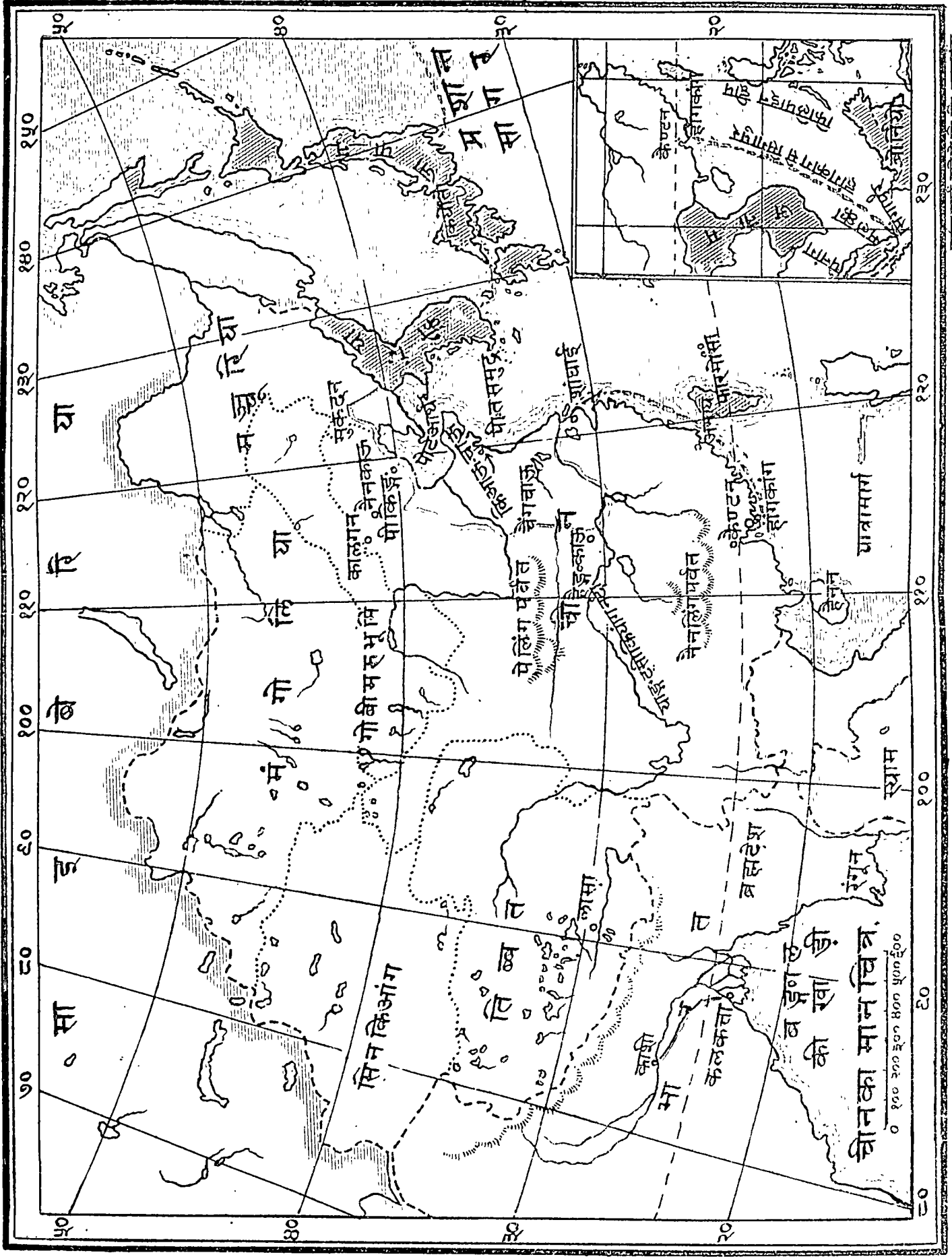
चीनकी यात्रा ।

आज सायंकाल पोर्टआर्थरसे विदा हो रात्रिभर चलनेके उपरान्त प्रातःकालमें मुकदन पहुँचे । मुकदन होटलमें प्रातःक्रियासे निपट कलेवा किया । इसके बाद चीनके लिए प्रस्थान करनेका समय आगया । पोर्ट-आर्थर आते समय भोजनके लिए बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी थी, इस विचारसे भोजन साथ ही लेना उचित समझ होटलसे ही कुछ भाजी व शाक ले लिया और एक चीनी दूकानसे एक बड़ी रोटी भी लेली ।

चीनी मुद्रा-प्रणाली ।

आगे चीनमें जापानी मुद्रायें काममें न आवेंगी, इस कारण यहाँ चीनी मुद्राओंको बदलना पड़ा। चीनी मुद्राका हिसाब बड़ा गड़बड़ है। चीनमें मुद्रा-प्रणालीका आधार स्वर्णपर नहीं वरन् रूपेपर है। किन्तु आधुनिक समयमें चाँदीका भाव प्रतिदिन उठा गिरा करता है। इसी कारण यहाँकी मुद्राका भाव भी निश्चित नहीं है। भारतवर्षकी मुद्रा भी चाँदीपर ही निर्भर है, इसी कारण वहाँकी मुद्राका भाव भी संसारके बाजारमें स्थिर नहीं है। वैसे तो संसारमें कहींकी मुद्राका भाव भी दूसरी जगह स्थिर नहीं है, किन्तु उन देशोंकी मुद्राओंका भाव, जहाँ उनकी जड़ सोनेपर है, उतनी जल्दीसे नहीं घटा बढ़ा करता जितनी कि उन देशोंकी मुद्राओंका, जहाँ उनकी व्यवस्था चाँदीपर बनी है। इस कारण उन देशोंको, जहाँ चाँदीकी मुद्राका व्यवहार है, अन्तर्जातीय व्यवहार व व्यापारमें बड़ी हानि उठानी पड़ती है। उन्हें लेन व देन दोनोंमें ही घाटा उठाना पड़ता है। यह घाटा क्यों, किस प्रकार व कितने परिमाणमें कब कब होता है, इसका विवरण अन्तर्जातीय व्यापार-सम्बन्धी पुस्तकोंमें मिल सकता है । हां, यहाँ इतना और कह देना प्रसंग-विरुद्ध न होगा कि यदि ऐसा देश जहाँ चाँदीकी मुद्राका व्यवहार है परतन्त्र भी हो तो व्यापारमें और भी अधिक हानि होती है।

भारतवर्षमें भी चाँदीकी मुद्राका व्यवहार है। इस मुद्राप्रणालीके विरुद्ध भारतीय व्यापारी बराबर आवाज़ उठाते आये हैं किन्तु सरकार इस प्रश्नको यह कहकर टाल देती है कि भारत ऐसे निर्धन दरिद्र देशमें सोनेकी मुद्राके प्रचारसे देशके भीतरी व्यापारियों व जनताको असुविधा होगी। यह क्यों होगी, कैसे होगी और इसके रोकनेका क्या उपाय है, यह बड़ा जटिल विषय है और इसके पक्ष एवं विपक्षमें इतनी अधिक युक्तियाँ हैं कि उनका यहाँ उल्लेख करना अनुचित है । हाँ, इतना और जान लेना उचित है कि अब भारतवर्षमें थोड़े दिनोंसे गिन्नीका
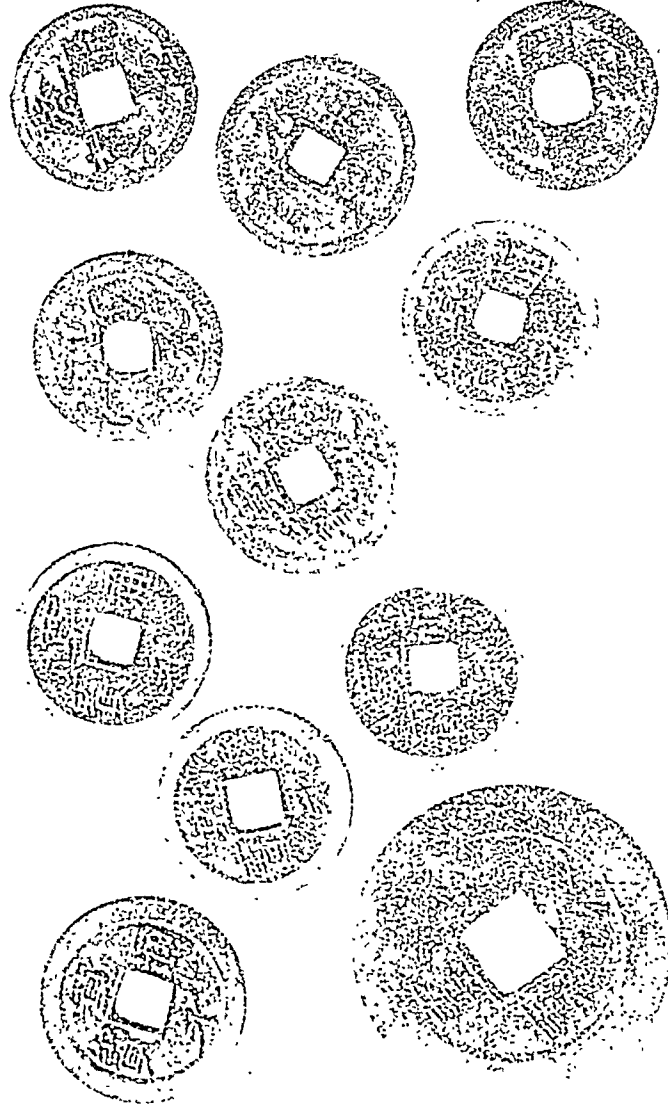
पुराने सिक्के ।

भाव स्थिर होगया है, अर्थात् १ गिन्नी १५) रुपये* के बराबर होगयी है किन्तु इससे केवल इङ्गलिस्तान व भारतके बीचमें जो व्यापार होता है उसीमें सुविधा हुई है, अन्य देशोंके व्यापारमें इससे अधिक सुविधा नहीं है । उदाहरणके लिये यदि

* युद्ध-समाप्तिके बाद विनिमयकी दर बिलकुल ही अस्थिर हो गयी थी । दो वर्षके पहिले यद्यपि भारतसरकारने क़ानून द्वारा गिन्नीका मूल्य दस रुपयेके बराबर कर दिया था और यद्यपि क़ानूनसे तो यही दर अबतक क़ायम है, फिर भी वास्तवमें अब पुनः एक गिन्नी लगभग १५ रुपयेके बराबर हो गयी है ।

पन्द्रह हजार रुपयेकी एक हुण्डी लिखी जावे तो उसका मूल्य इङ्गलिस्तानमें तो एक हजार पाउंड मिलेगा किन्तु जापानमें उसी हुण्डीका मूल्य एक हजार पाउंडकी हुंडीके बराबर नहीं मिलेगा बल्कि उससे कम ही मिलेगा क्योंकि जापानवाले एक पाउण्डका दाम १५) रुपया नहीं लगाते। इसका कारण यह है कि यदि जापानवाले भारतीय व्यापारीसे एक हज़ार पाउण्ड माँगें तो उन्हें भारतमें १५ हजार चाँदीके सिक्के मिलेंगे, एक हजार सोनेके सिक्के देनेके लिये भारतनिवासी बाध्य नहीं हैं। अब इन १५ हजार चाँदीके सिक्कोंका मूल्य उतने जापानी सिक्कोंमें नहीं मिल सकता जितना एक हजार सोनेके सिक्कोंका मिलेगा, क्योंकि हमारा रुपया सांकेतिक मुद्रा (टोकेन मनी) है अर्थात् हमारी मुद्रामें उतने मूल्यकी चाँदी नहीं है जितनेपर वह चलती है। हमें दस आनेकी चाँदीका मूल्य सोलह आने देना पड़ता है। संसारमें शायद और जगहोंमें भी सांकेतिक मुद्राका व्यवहार है किन्तु उनकी जड़में सोनेकी असली मुद्रा है, इससे व्यापारमें उन्हें हानि नहीं उठानी पड़ती।

भारतवर्षमें अब राजकीय हिसाब-किताबमें पाउण्डका ही व्यवहार होता है जैसा कि सरकारी आय-व्ययके चिट्ठोंमें स्पष्टतः देख पड़ता है, किन्तु तब भी मुद्रा-प्रणाली न बदलनेका क्या अभिप्राय है, समझमें नहीं आता। इस विषयपर देशके व्यापारियोंको प्रचण्ड आन्दोलन करके इसे बदलवा कर ही छोड़ना चाहिये। बदलते समय यदि एक और सुधार हो जावे तो बड़ा ही उत्तम हो। संसारके प्रायः सभी देशोंमें जो मुद्रा-प्रणाली इस समय प्रचलित है वह दशमलव-सिद्धान्तपर बनी है, अर्थात् एक प्रधान सिक्का छोटे छोटे 'सौ" भागोंमें विभक्त है, जैसे अमरीकन डालरमें १०० सेण्ट, तथा जापानी येनमें १०० सेन होते हैं, हमारे यहाँ एक रुपयेके सोलह आने, एक आनेके चार पैसे, एक पैसेकी तीन पाइयाँ हैं। इस प्रकारकी प्रणालीसे हिसाब रखनेमें बड़ी कठिनाई होती है। इसलिये यदि देशमें मुद्राप्रणाली बदलते समय निम्नलिखित सुधार भी हों तो उत्तम होगा।

(१) मुद्राका आधार सोनेपर रहे। (२) सांकेतिक मुद्राकी जगह वास्तविक मुद्रा ही बने किन्तु कागज़की साङ्केतिक मुद्राका व्यवहार जारी रहे। (३) मुद्रा-प्रणाली दशमलव-प्रणालीपर बने अर्थात् एक रुपयेके पूरे १०० भाग हों जिन्हें पैसा या चाहे जो नाम दिया जाय, यदि इन पैसोंके और छोटे विभाग करने हों तो वे भी एक पैसेमें दस भाग हों। यह आवश्यक नहीं है कि इन छोटे भागोंके सिक्के अवश्य बनें किन्तु ये हिसाब-किताबकी सहूलियतके लिये होंगे, अस्तु।

चीनी मुद्राका प्रथम रूप डालर है, यह अमरीकन डालर नहीं वरन् चीनी डालर है। इसको चीनमें "युआन-इन" कहते हैं। यह सिक्का १०० भागोंमें विभक्त है। इन छोटे हिस्सोंको सेण्ट कहते हैं। एक एक सेण्टके तांबेके सिक्के और १० सेण्ट व २० सेण्टके चाँदीके सिक्के भी प्रचलित हैं। अब जो गड़बड़ी उपस्थित होती है वह यहाँ होती है। यदि आप एक डालरके छोटे सिक्के भुनावें तो ११ (?) सिक्के दस सेण्टके और भावके अनुसार सात आठ ताँबेके सिक्के आपको मिलेंगे जिससे बड़ी असुविधा होती है। यह तो हुई मामूली बात। बड़े लेन-देनमें डालर नहीं चलते, यहाँ 'टेल' चलते हैं। ये टेल चाँदीके छोटे बड़े टुकड़े होते हैं जो तौलकर लेन-

देनमें काम आते हैं। ये भिन्न भिन्न तौलके होते हैं जिससे लेन-देनमें बड़ी गड़बड़ी उपस्थित होती है। इनका ठीक वही हिसाब है जो भारतमें सोनेके टुकड़े 'बटर'का हिसाब है। खास खास कोठियोंका टेल खास खास भावपर बिकता है। इसके अलावा यहाँ भिन्न भिन्न देशोंके बैंकोंने अपने भिन्न भिन्न नोट चला रक्खे हैं। ये नोट कहीं लिये जाते हैं कहीं नहीं, जैसे भारतमें मुम्बई अहातेका नोट बंगाल अहातेमें नहीं लिया जाता। इससे भी बड़ी असुविधा होती है। अब यदि कोई व्यापारी मुम्बई अहातेका नोट कलकत्तेमें बेचना चाहे तो उसे भावके मुताबिक बट्टा देना पड़ता है वा बढ़ती मिलती है। रेलमें तो एक अहातेके सौसे अधिक मूल्यके नोट दूसरे अहातेमें लिये ही नहीं जाते। ऐसा ही हाल यहाँ भी है। पीकिङ्गके नोट शाङ्घाईमें नहीं चलते और न शाङ्घाईके पीकिङ्गमें। यह सब दुर्दशा पराधीन व निर्बल देशोंमें ही देख पड़ती है, स्वाधीन व बलवान् देशोंमें नहीं। बैंक आफ इङ्गलैंडका नोट, सारे इङ्गलैंड क्या, सारे ब्रिटिश द्वीपमें चलता है, इसी प्रकार अमरीकाका नोट न्यूयार्कसे सान-फ्रान्सिस्को तक कहीं भी नहीं रुकता।

खैर, सिक्का बदलनेके उपरान्त देखा कि चीनी डालर तौल व रूपमें अमरीकन डालरके बराबर ही है तथापि उसका मूल्य अमरीकन डालरके आधेसे भी कम है। भारतीय रुपयेसे यह दूनेसे भी अधिक बड़ा है पर इसका मूल्य लगभग डेढ़ रुपयेके बराबर है। यह अवस्था चाँदीकी साङ्केतिक मुद्राओंमें ही हो सकती है, स्वर्णकी वास्तविक मुद्राओंमें नहीं। अमरीका आदि देशोंमें चाँदीकी मुद्राओंकी संख्या न्यून होती है। वे सिक्के केवल देशके भीतर छोटे छोटे कामके लिये ही होते हैं, इससे व्यापारमें कुछ हानि नहीं होती। किन्तु भारत व चीन जैसे देशोंमें जहाँ सारा अन्तर्जातीय व्यापार भी इन्हींसे चलता है, इनसे कितना नुकसान होता है यह व्यापारके अंकोंसे ही जाना जा सकता है। जितना अधिक व्यापार होगा हानि भी उतनी ही अधिक होगी।

चीनी रेल।

अब रेलपर बैठ हम चल दिये। यह उतनी अच्छी नहीं है जितनी जापानकी थी या जितनी जापानी रेल मञ्चूरियामें है, बल्कि इसे बहुत खराब कहना चाहिये। प्रथम श्रेणीकी गाड़ीमें भी भारतवर्षके ड्योढ़े दर्जेसे अधिक आराम इस लाइनमें नहीं है।

चीनमें स्वयं चीनियोंकी बहुत कम रेलें हैं। यहाँ फरासीसी, जर्मन व अंग्रेजी कम्पनियोंकी ही रेलें हैं, अर्थात् जिन जिन देशोंसे कर्ज लेकर ये रेलें बनी हैं उन्हीं उन्हीं देशोंके हाथमें उनका पूरा प्रबन्ध है। यह ठीक वैसी ही अवस्था है जैसी भारतवर्षमें भोगबन्धक इलाकोंकी होती है, अर्थात् ज़मींदारी उन महाजनोंके प्रबन्धमें रहती है जो कर्ज देते हैं। ऐसी अवस्था वहीं होती है जहाँ कर्ज लेने वाला गरजू होता है। भारतवर्षमें भोगबन्धक इलाके महाजनोंके चंगुलसे छूटकर जमींदारोंके पास पुनः जाते हुए कम ही देखे गये हैं। यह साफ ही है कि जब जमींदार इलाका रहते अपना काम नहीं चला सका तो इलाका दूसरेके प्रबन्धमें जानेपर कब चला सकेगा। मिश्र देश इसी कर्जके फेरमें स्वतन्त्रसे परतन्त्र बना। यह स्वाभाविक भी है। भारतवर्षकी ही स्थिति देखिये। जो महाजन कभी किसी जमींदारको कर्ज देता है उसकी निन्यानवे फी सदी यही मंशा रहती है कि इलाका हड़प कर जायँ। यही दशा
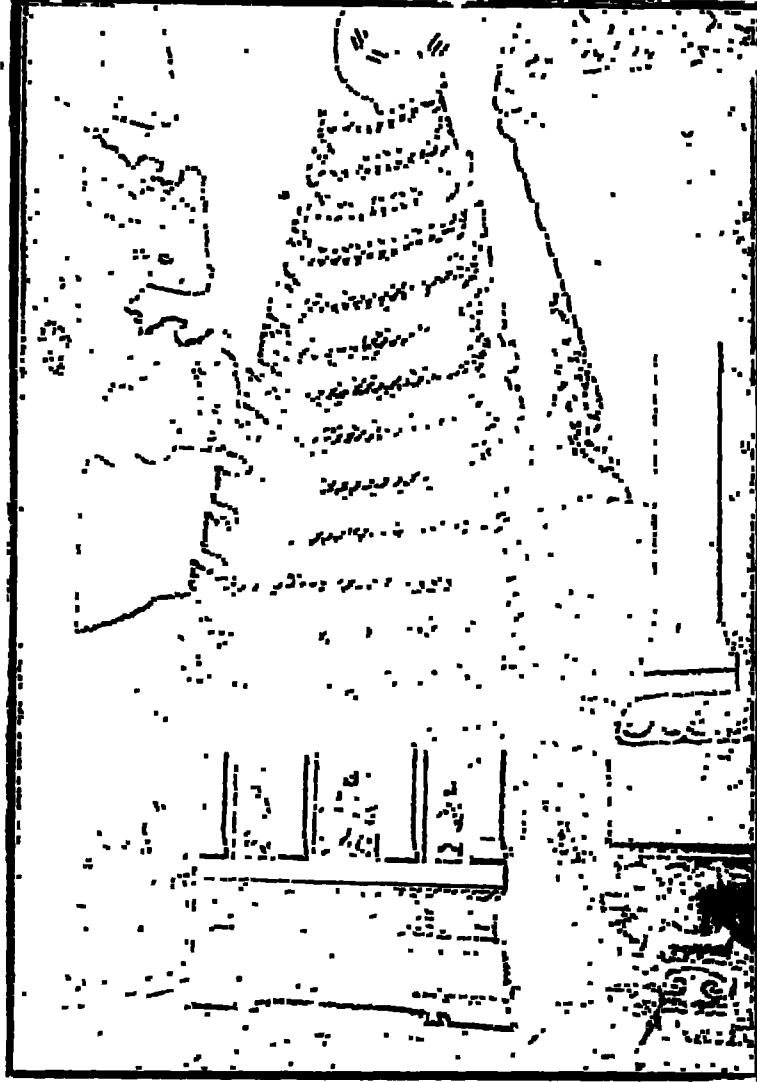
पाई-युन-कुआनके उत्तरमें पाई-युन-सू मन्दिरका स्तूप (पृष्ठ ३६७)

संसारके सभी धनियोंकी है, अन्तर इतना ही है कि जहाँ छोटे धनिक केवल छोटी छोटी ज़मींदारियोंके ही पानेसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, वहाँ बड़े बड़े धनिक पूरा राज्य ही लेनेकी ताकमें लगे रहते हैं।

सारांश यह कि उन्हीं रेल-कम्पनियों द्वारा चीनके बटवारेकी व्यवस्थाका होना कोई असम्भव बात नहीं है। देर इसी बातमें लग रही है कि धनिकोंमें अभी परस्पर मतभेद है। वे आपसमें अभी इसका निश्चय नहीं कर सके हैं कि कौन कितना लेगा। भगवान् इन धनिक व्याघ्रोंसे चीनकी रक्षा करे!

हम जिस रेलपर इस समय जा रहे थे वह ब्रिटिश धनिकोंकी रेल है, इसीसे इसका प्रबन्ध ब्रिटिश लोगोंके हाथमें है। दिनभर चारों ओर हमें हरे हरे खेत व सुखी जन ही देख पड़े, किन्तु अज्ञानके कारण सुख ज्ञानयुक्त दुःखसे भी अधिक बुरे परिणामका देनेवाला होता है। ये बिचारे भोलेभाले किसान संसारके आधुनिक जीवनके संघर्षणसे अनभिज्ञ हैं, ऐसी अवस्थामें इनका सुख चार दिनकी चाँदनीसे बढ़कर नहीं है। परतन्त्रताके गर्तमें गिरकर इन्हें कैसी कैसी यातनाएँ उठानी पड़ेंगी, इसका इन्हें लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। रात्रिभर गाड़ी चलती रही। दूसरे दिन प्रातःकाल ९ बजे हम चीनकी राजधानी पीकिङ्गमें पहुँच गये।

दूसरा परिच्छेद।

—:o:—

एशियाका प्रथम प्रजातन्त्र।

अमरीकामें चीनका नाम 'चीनका महान् प्रजातन्त्र राज्य' (दि ग्रेट रिपब्लिक आफ चाइना) पढ़कर बड़ा आनन्द होता था। जीमें सोचते थे कि एशिया-खण्ड (जम्बूद्वीप) में भी एक प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हुआ, पर इस ख्याली महलको प्रथम प्रथम कोरियामें ही एक महाशयने धक्का लगाकर हिला दिया था। वह जर्जर महल पीकिंगमें प्रवेश करते ही गिर गया। रास्तेमें और यहां पीकिंगकी अवस्था देख यही मुंहसे निकल आया कि 'हे भगवन्, क्या इसीको प्रजातन्त्र राज्य कहना उचित है ?' हां, यदि दुष्यन्तके विना 'शकुन्तला' नाटक खेला जा सकता हो व जलके विना वर्षा हो सकती हो तो प्रजाकी आवाज़के विना प्रजातन्त्र राज्य भी कहा जा सकता है।

आजकल संसारमें प्रजातन्त्र राज्य (डिमाक्रेसी) शब्दकी इतनी चर्चा है कि सभी लोग बस इसी शब्दपर मुग्ध हैं, इतना भी कष्ट नहीं उठाते कि प्रजातन्त्र शब्दका ज़रा अर्थ भी विचारें और सोचें कि वह क्या है। हम भारतीयोंमें विचारशक्ति तो है नहीं, और स्वतन्त्र विचार करें भी तो कैसे, बस हमने एक शब्द सुन लिया उसीके पीछे दौड़ पड़े। भला कभी आपलोगोंने यह विचार करनेका भी कष्ट उठाया है कि संसारमें प्रजातन्त्र वास्तवमें कहीं है भी ? हां, यदि प्रजातन्त्रका यही अर्थ समझा जाय कि देशका शासन कौन करेगा इसमें सारी प्रजा अपनी सम्मति दे दे तो आजकल योर-अमरीकामें सभी जगह प्रजातन्त्र राज्य है। पर यदि उसका शाब्दिक अर्थ किया जाय और उसका यह अभिप्राय समझा जाय कि हर विषयमें सारी प्रजाकी रायसे ही काम होगा तो मैं यह कहूंगा कि ऐसा प्रजातन्त्र राज्य अमरीकाके संयुक्तराज्यमें भी नहीं है, बेचारे चीनका तो नाम ही लेना व्यर्थ है।

आजकल हमारी विचार-प्रणालीमें एक और भी अवगुण आ गया है। वह यह है कि हम कार्य व कारणके वास्तविक सम्बन्धको भलीभांति न समझ बहुतसे विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न हुए कार्यको एकमें मिला देते हैं व इस मिलानसे जो फल हमारे सम्मुख उपस्थित होता है उसे जनसाधारणके दिये हुए एक नामसे पुकार उसी नामपर हम मुग्ध होजाते हैं। इस प्रजातन्त्रको ही लीजिये तो क्या देख पड़ता है ? इस प्रणालीके स्वाभाविक गुण-अवगुणका विचार किये वगैर व विना इसकी जांच किये कि आया ऐसी प्रथा बड़े बड़े अधिक समुदायवाले देशोंमें होना सम्भव है वा नहीं, हम इसपर मुग्ध हैं। इस प्रकार मुग्ध होनेका कारण भी है, वह यह कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके जिन विचारोंका प्रचार गत दो शताब्दियोंमें हुआ है उनके साथ यह प्रजातन्त्र (डिमाक्रेसी) वा बहुतन्त्र नाम लगा है, इसीसे हम इसपर मुग्ध हैं।
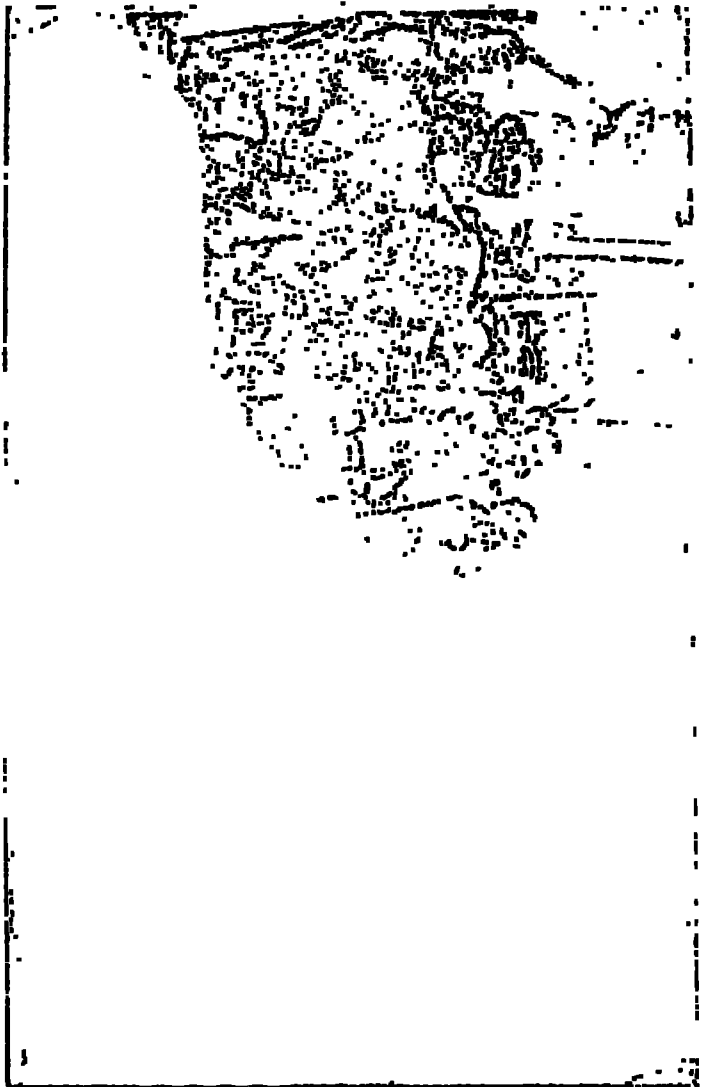
चीनकी राज्यक्रान्तिका दृश्य (पृष्ठ ३५७)
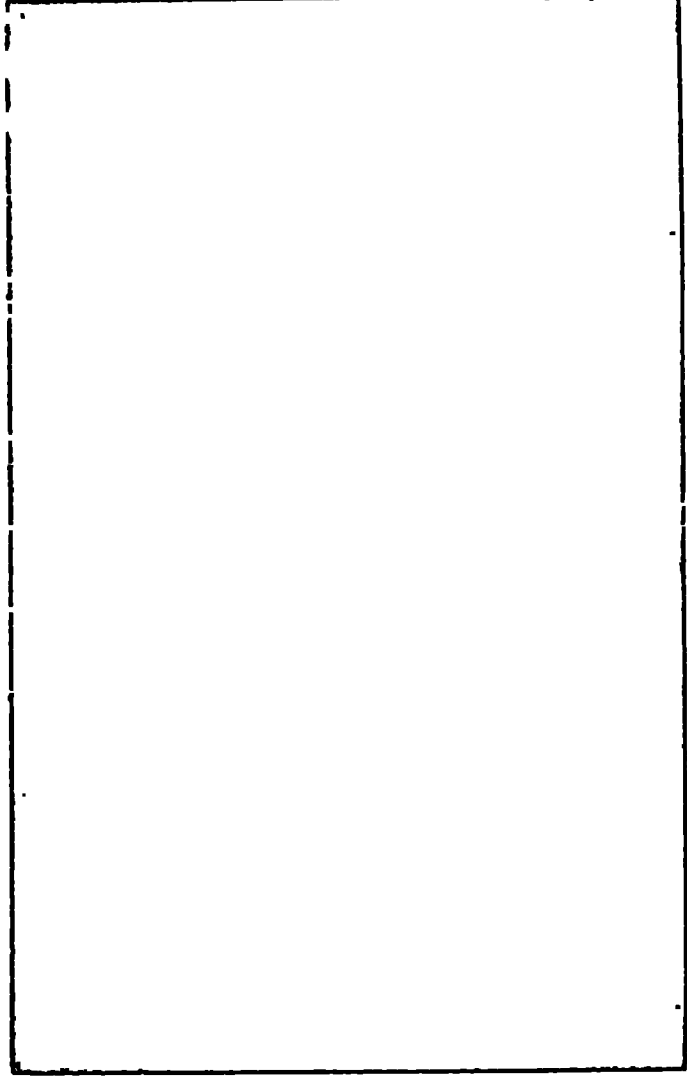
चीनकी राज्यक्रांतिका दृश्य (पृष्ठ ३४६)

पर यह विचार नहीं किया कि इंगलिस्तानमें भी, जो गत दो शताब्दियोंसे इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके प्रचारका केन्द्र रहा है, यह बहुतन्त्र प्रथा प्रचलित नहीं है। वहां भी कतिपय-तन्त्र, गुणतन्त्र वा कुलीन तन्त्र अर्थात् 'एरिस्टाक्रेसी' का ही राज्य है। वास्तवमें वही राज्य सुराज्य वा रामराज्य हो सकता है जहांके राजकाजकी बागडोर कतिपय गुणी, पण्डित, बुद्धिमान्, धीमान् और धैर्यवान् ब्राह्मणोंके हाथमें हो। जिस समाजमें सभी नेता होते हैं, जहाँ आज्ञा मानने वालोंका नहीं वरन् आज्ञा देनेवालोंका ही बाहुल्य होता है वह समाज बहुत दिनोंतक टिक नहीं सकता। इतिहासमें सम्पूर्ण बहुतन्त्रकी कथा केवल यूनानके इतिहासमें विक्रमसे तीन शताब्दी पूर्व मिलती है किन्तु यूनानमें ये बहुतन्त्र राज्य बहुसंख्यामें, प्रत्येक ग्राममें, थे और साथ ही जहां दो लाख स्वतंत्र देशवासियोंको राज्यका अधिकार था वहां अन्य बीस लाख गुलाम थे जो पशुओंकी भांति केवल आज्ञापालन ही किया करते थे। तिसपर भी अनेक रसोइयोंकी यह खिचड़ी बहुत काल तक नहीं पक सकी। इस बहुतन्त्रकी आयु बीस पच्चीस वर्षोंसे अधिक नहीं रही। राजकाजका काम सीधासादा नहीं है। वह बड़े पित्तेमार तथा स्वार्थ-त्यागका काम है। यह स्वार्थ-त्याग, यह "कामकञ्चन-कीर्ति"के लोभका परित्याग ऐसा सरल नहीं है कि सारी जनता कर सके। इसीलिये सारी जनता शासनकार्य भी नहीं कर सकती। शासनपर स्वार्थत्यागी, ब्रह्मविद्याके वेत्ता, ज्ञानयुक्त, कतिपय विचक्षण ब्राह्मणोंका ही अधिकार है। इसलिये प्राचीन आर्य राजाओंके सचिवगण प्रायः सच्चे त्यागी ब्राह्मण ही हुआ करते थे। राजाका काम केवल आज्ञा देना व जनतासे उस आज्ञाका पालन करवाना ही हुआ करता था। आज दिन भी सुराज्य वहाँ ही है जहाँकी सचिव-मण्डलीमें बुद्धिमान्, गुणवान् व धीर ब्राह्मणोंकी अधिकता है। इसीको वास्तवमें स्वराज्य भी कहना उचित है। यदि वे सचिवगण जनता द्वारा नियुक्त किये जायँ तो उनका शासन ही प्रजातंत्र और वास्तविक बहुतन्त्र कहा जा सकता है।

स्वराज्य एक विलक्षण प्रकारकी परतन्त्रताका नाम है। उसमें एक विशेष प्रकारके दायित्वके भावसे प्रत्येक मनुष्यको बँधना पड़ता है। स्वराज्यमें निजके बहुतसे स्वार्थोंका त्याग आवश्यक होता है, साथ ही जनताके सामूहिक स्वार्थके भावका प्राधान्य भी मानना होता है। वह एक प्रकारका नियमित जीवन है जिसकी अधीनतामें आकर प्रत्येक मनुष्यको अपनी स्वतन्त्रता छोड़नी पड़ती है।

मोटी निगाहसे यह एक उलटी बात मालूम पड़ेगी किन्तु ज़रा ध्यान देनेसे इसका यथार्थ तत्व, इसकी वास्तविकता भलीभाँति मालूम हो जायगी। इससे यह विचार कि स्वराज्यप्राप्तिसे हमें स्वतन्त्रता मिल जावेगी, हम जो चाहें सो करेंगे, हमपर किसी प्रकारका अंकुश बाकी न रह जावेगा, नितान्त भ्रम-मूलक है। और यह भाव जहाँ जहाँ है वहाँकी जनता स्वराज्यके लिये नहीं वरन् अराजकता और लाइसेन्सके लिये ही तैयार है। ऐसे समाजोंमें स्वराज्यसे न तो सुराज्य व सुखकी प्राप्ति और न दैन्य-अज्ञानका ह्रास ही होगा, वरन् कुराज्य, दुःख-दैन्य तथा अज्ञानकी वृद्धि ही अधिक अधिक होती जायगी।

यही अवस्था चीनकी हुई जैसी प्रतीत होती है। यहाँ आवश्यकता थी सुदृढ़

राज्यकी, ऐसे फौजी प्रभुत्व (मिलीटेरिज्म) की, जो मूर्ख प्रजामें ज़बर्दस्ती विद्याका प्रचार करता, उसके अज्ञानान्धकारको दूर करता व उसे वास्तविक सांसारिक व पारमार्थिक सुखोंकी प्राप्तिके लिये जीवन-संग्रामकी भीषणताके महत्वका ज्ञान प्राप्त कराता। ऐसा होनेसे संभव था कि कुछ दिनोंके उपरान्त यहाँ स्वराज्य, सुराज्य वा बहुतन्त्र राज्य होनेके लिये जो आवश्यक गुण हैं वे जनतामें उत्पन्न हो जाते। किन्तु हुआ क्या कि कतिपय ऐसे लोग उठ खड़े हुए जो पाश्चात्य भावोंसे भरे हुए थे, जिनकी आँखोंके सामने योर-अमरीकाकी ज्योति चकाचौंध मचा रही थी और जो अपने यहाँकी कुप्रथा व कुप्रबन्धसे इतने ऊब गये थे कि उनमें यह विचार करनेकी भी सहनशीलता बाकी न रह गयी कि आया जो कुछ हमने देशके उपकारके लिये सोचा है वह देशकी सामयिक अवस्थाके अनुकूल है भी या नहीं। उन्होंने जनताको हवाई महल दिखा, ज्वरसे पीड़ित मनुष्यको स्नानका लालच दे, येन-केन-प्रकारेण जो कुछ उनको मनोवाञ्छित था कर डाला। परिणाम वही हुआ जो संसारमें पहिले भी बहुत बार हो चुका है, अर्थात् नीच स्वार्थियोंको मौका हाथ लगा, उन्होंने गड़बड़ीमें अपना ही घर भरना चाहा। एक ओर गड़बड़ीसे और दूसरी ओर नेताओंकी सरलता व सच्चे स्वभावसे फायदा उठा अपना दाँव इन्होंने चला दिया। इनका पासा चित्त पड़ा। सच्चे निःस्वार्थ नेता मौकेसे निकाल बाहर किये गये, प्रजा मानो जलती कड़ाहीसे चूल्हेमें गिर पड़ी। कुराज्यकी जगह अराजकता छा गयी। स्वार्थियोंने लूटनेके लिये व संसारकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिये इसका नाम प्रजातन्त्र रख दिया। चोरोंके साथ गिरहकट भी आ मिले। वे सुधारके नामपर विदेशियोंसे ऋण लेकर देशको कंगाल बनाने लगे। धनका बड़ा अंश अपने घरमें और थोड़ा देशमें लगाने लगे। गिरहकटोंको भी साझीदार बना लिया। अब देशकी बर्बादीमें कसर केवल यह बाकी रह गयी कि चोरोंको निकाल गिरहकट स्वयम् देशका बटवारा कर लें। इस भीषण दुर्दशासे चीनकी रक्षा केवल तभी तक है जबतक कि गिरहकटोंमें आपसकी फूट है।

इस कारण संसारमें केवल एक शब्दके पीछे दौड़ना उचित नहीं किन्तु आगापीछा सोचकर काम करना ही उचित है। पितृशासन तन्त्र (पेट्रिआर्कल), वंश व गोष्ठीतन्त्र (क्लैन और ट्राइबल गवर्नमेंट), एकतन्त्र (अब्सोल्यूट मोनर्की), कतिपय-तन्त्र, गुणतन्त्र वा कुलीन तन्त्र (अरिस्टोक्रेसी), बहुतन्त्र, प्रजातन्त्र (डिमाक्रेसी) इत्यादि सभी राज्य देशकालकी अवस्थाके अनुसार उत्तम तथा अधम हो सकते हैं। सभी तन्त्रोंमें सुराज्य व कुराज्यकी सम्भावना है। सुराज्यकी दृढ़ता व सफलता मनुष्योंके चरित्रपर निर्भर है। वह उसी समय प्राप्त हो सकती है जब कि प्रबन्धकी बागडोर निःस्वार्थ व्यक्ति या व्यक्तियोंके हाथमें हो, यह चाहे एक राजा हो चाहे कतिपय विचक्षण सचिव या समाज व प्रजाके प्रतिनिधि हों।
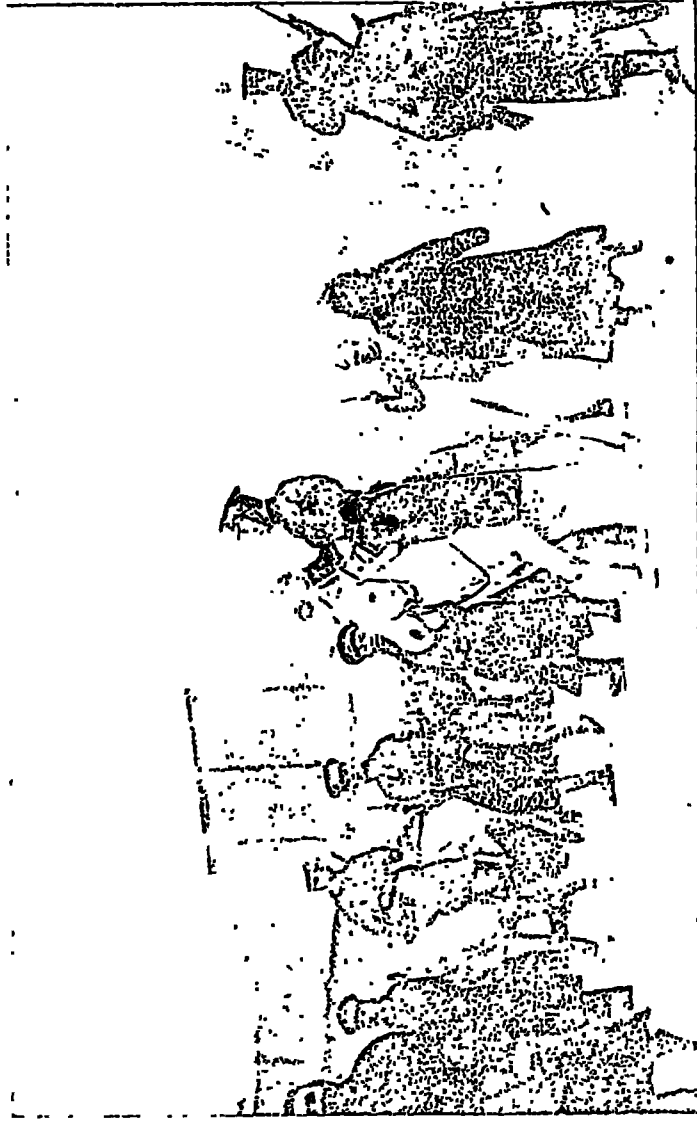
चीनकी राज्यक्रान्तिका दृश्य (पृष्ठ ३४८)

तीसरा परिच्छेद ।

—:०:—

चीनमें प्रथम दिन ।

दस बजेके लगभग हम पीकिङ्गमें आ उपस्थित हुए । रेलघरसे चलकर हम होटल पहुँचे । इस होटलका नाम लीयू-कु-फैन-टीन (अर्थात् ग्राण्ड होटेल डिस वैगन्स लिट्स) है । यह नामसे तो फरासीसी विदित होता है किन्तु है अन्तर्जातीय प्रबन्धमें ।

यहाँ आनेपर सुना कि युद्ध प्रारम्भ होनेके बाद जर्मन व इनके साथी देशवाले यहाँ नहीं रहने पाते । यहाँके वर्तमान प्रबन्धकर्ता शायद अँगरेज हैं । खैर, हमने अपना नाम व पता होटलकी पुस्तकमें लिखकर एक कमरा लिया । वहाँ जा कपड़े उतार फेंके । भीषण गर्मी थी । फिर हाथ मुंह धो स्नान किया । गर्मीके कारण खूब ठंढे जलसे स्नान करनेकी लालसा थी पर वह सफल न हुई, कारण कि जिस कुण्डमें यहाँ नहाना पड़ा वह बहुत सकरा था व पानी बहनेका प्रबन्ध भी ठीक न था । स्नानोपरान्त कपड़े बदल हम भोजनार्थ नीचे उतरे । भोजनालयमें गये तो योर-अमरीकाका नज़ारा नज़र आया । वही योर-अमरीका-निवासियोंका बाहुल्य, वही स्त्रियोंका अपूर्ण वस्त्र, वही आपसकी ठठोली व घरेलूपन जो योर-अमरीकामें देखा था यहाँ भी देखा । यह दृश्य जापानमें देखनेको नहीं मिला था, कारण कि योर-अमरीका वाले न तो उसे अपना घर ही समझते हैं, न वह उनकी भोगभूमि ही है । वहाँ ये बेचारे ऐसे रहते हैं जैसे कि पानीके बाहर मछली ।

भोजनोपरान्त भीषण गर्मीके कारण बाहर जानेकी हिम्मत न पड़ी । बिस्तरपर जाकर सो गये । सायंकालके बाद बाहर निकले । साथमें एक चीनी दुभाषिया भी थे । इनका नाम था 'वांग महाशय' । होटलके बाहर होते ही अच्छी साफ सुथरी सड़क मिली, दोनों ओर ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ देख पड़ीं, योर-अमरीकाके ढङ्गकी वस्तुओंसे भरी बड़ी व छोटी दूकानें भी दिखायी पड़ीं । दर्याफ्त करनेसे ज्ञात हुआ कि इस समय हम जिस मोहल्ले, पाड़े वा पुरवेमें हैं उसका नाम 'लीगेशन क्वार्टर' है । संवत् १९५७ में जब यहाँ फसाद हुआ था अर्थात् विदेशियोंको मार निकालनेके लिये जो बाक्सर नामी दंगा हुआ था उस समयसे इस लीगेशन पाड़ेका प्रबन्ध अन्तर्जातीय मण्डलीके हाथमें आगया । इसलिये अब इस पाड़ेको चीनकी प्रधान नगरीका एक मोहल्ला कहना अनुचित है । यह केवल लीगेशन क्वार्टर ही नहीं है, केवल विदेशियोंकी भोगभूमि भी नहीं वरन् विदेशियोंका मुल्क है, यहां उनका राज्य है, यहां सम्पूर्ण चीनपर अपना अधिकार जमानेके लिये षड्यन्त्र रचे जाते हैं, यहीं उस बृहत् मायाजालके फन्दे बनते हैं और उसकी ग्रन्थियां दी जाती हैं जो समय आने पर समस्त चीनपर फैलाया जायगा ।

यहाँ केवल भिन्न भिन्न देशोंके राजदूतों (एलचियों) का कार्यालय मात्र ही

नहीं है वरन् विदेशियोंके घर, उनके बैंक, उनके अलग अलग डाकखाने और फौज भी रहती है । संसारमें और किसी देशमें विदेशियोंक अपने डाकखाने हैं कि नहीं, इसमें सन्देह है । इन डाकखानोंमें विदेशी अपना अपना स्टाम्प चलाते हैं । बैंकोंमें भिन्न भिन्न देशवाले अपना अपना नोट भी चलाते हैं जो एक दूसरेके नहीं लेते व एक नगरका दूसरे नगरमें स्वयम् वे ही बैंकवाले बिना बट्टा लिये नहीं लेते ।

पीकिंगकी सैर

अब हम चीनकी राजधानीके बीचमें उपस्थित योर-अमरोकाके पीकिङ्गसे निकल चीनी पीकिंगमें आगये । इधर उधर चारों ओर रिकशा गाड़ियाँ दौड़ती देख पड़ीं । यहाँकी सड़कें बड़ी ही खराब हैं, धूल गर्दा बहुत है, उसपरसे भी पक्की सड़कके दोनों ओर कच्ची सड़कें हैं, जिनपरसे होकर देशी इक्के दौड़ते हैं । इसकी ठीक वही अवस्था है जो वर्षाकालमें भारतवर्षमें कच्ची सड़कोंकी होती है । पानी छिड़कनेकी भी यहाँ विचित्र रीति है । दो मनुष्य एक बड़े काठके पीपेमें पानी भर कर सड़कपर ला रखते हैं, फिर उनमेंसे एक बांसके कलछेसे, जिसमें कटोरेकी जगह भी एक बांसकी दौरी ही लगी रहती है, जल उठा उठा कर सड़कपर छिड़कता है ।

अब हम जिस स्थानपर हैं उसे मञ्चू नगर कहते हैं । यह प्रायः ३०० वर्षका पुराना है । इस नगरकी एक ओर चीनी नगर है और दूसरी ओर मोगल नगर है । मोगल नगर बिलकुल उजाड़ है । वहाँ अब बहुत कम बस्ती है । केवल नगरसे दूर वीरानमें पुराना पीत मन्दिर है जो कुबलिया खांका बनवाया हुआ है । चीनी नगरमें भी ठीक मञ्चूनगरके बाहर दो तीन गलियां खूब बसी हैं और धनिक चीनियोंकी हर प्रकारकी दूकानोंसे भरी हैं । रात दिन वहाँ खूब चहलपहल व भोड़भाड़ रहती है किन्तु रात्रिमें मात्रा अधिक हो जाती है । गलियां बहुत ही सकरी हैं । सड़कें इतनी खराब हैं जिसका ठिकाना नहीं । इस कारण आने जानेवालोंको बड़ी असुविधा होती है ।

इस नगरकी प्रधान विशेषता दीवारोंका बाहुल्य है । नगरके चारों ओर तो बड़ी शहरपनाह है ही जो ३० मीलके घेरेमें है, २७ फुट ऊंची व ऊपर ५२ फुट चौड़ी है । जड़में इसकी चौड़ाई ६४ फुट है । किन्तु इसके अतिरिक्त मञ्चूनगर व चीनीनगरके बीचमें भी एक बड़ी दीवार है । योर-अमरीकन नगर 'लीगेशेन क्वार्टर'के चारों ओर भी दीवारें हैं । मञ्चू नृपतिके महलोंके गिर्द जो "वर्जित नगर"के नामसे प्रसिद्ध है, एक और दीवार है । इसके भोतर प्रधान राजप्रासाद, उद्यान, एक कृत्रिम तालाब तथा कृत्रिम पहाड़ी भी है । इनके अतिरक्त नगरमें जहां जाइये वहीं आपको ऊंची ऊंची दीवारें मिलती हैं । बागों, मन्दिरों तथा गृहोंके चारों ओर भी दीवार बनानेकी चाल यहाँ है । इस कारण इस नगरको दीवारप्रधान नगर कहना अनुचित न होगा ।

यद्यपि भिन्न भिन्न नामोंसे यह नगर विक्रमके दो सहस्र वर्ष पूर्वसे विद्यमान है तथापि इसका आधुनिक नाम इसे १४७८ विक्रम संवत्में "यंगलू" नृपतिके १९ वें वर्षमें मिला था । उसी समय मिंगवंशके 'यंगलू' राजाने नैनकिनसे राजधानी ला यहां स्थापित की । नैनकिन दक्षिणमें है व पीकिङ्ग उत्तरमें । इस समयके पहिले १० वीं

सडकपर रिकशा गाडियोंका दृश्य (पृष्ठ ३५०)
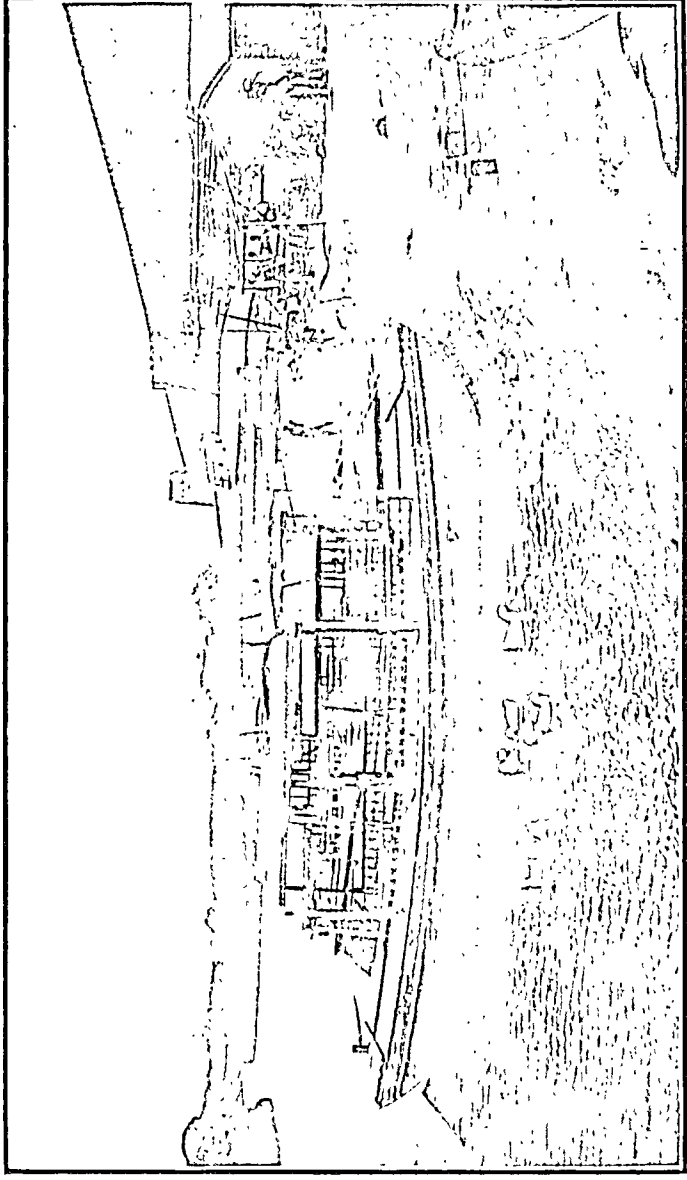
पूर्वीय कोणके द्वारके पास शहरपनाहका दृश्य (पृष्ठ ३५०)

शताब्दाके पूर्व यह नगर केवल एक सीमापरका छोटा कस्बा था। यह कई बार छोटे छोटे राजाओंकी राजधानी बना किन्तु सारे चीनकी राजधानी बननेका सौभाग्य इसे युआनवंशके राजत्वकाल (१३३६-१४२४) में ही प्राप्त हुआ था। तबसे बराबर यह अपने उच्च पदपर बना है। बीचमें ३४ वर्षोंके लिये राजधानी नैनकिन चली गयी थी, फिर यहीं आगयी।

लंदन, बर्लिन, पेरिस, वाशिंगटन इत्यादिके देखनेसे जो बात ज्ञात होती है वह यहां नहीं होती। यहां तो अब भी वही अवस्था है जो दिल्लीमें है। तोकियो व काहिरःमें भी वर्तमान अवस्थाके चिन्ह दिन प्रति दिन बढ़ते जाते हैं। आधुनिक नगर होनेकी आकांक्षासे वे हरप्रकारके आधुनिक साजबाजोंसे अपनेको सज रहे हैं। पर पीकिङ्ग आज भी वैसा ही बना है जैसा चार हजार वर्ष पूर्व रहा होगा। अन्तर केवल शक्तिमें पड़ा है।

रास्तेमें रोटी खानेसे उसकी चाट पड़ गयी थी इससे आज चीनी भोजन करनेके लिये एक चीनी भोजनालयमें पहुँचे। चीनी लोग मांसका अधिक प्रयोग करते हैं इससे हमें ऐसा उपहारगृह खोजना पड़ा जहां शाक-भाजी अधिक मिले। हमारे दुभाषिया महोदय हमें एक मुसलमान उपहारगृहमें ले गये। यहां इस बातका बिलकुल भय नहीं था कि शाक-भाजीमें चर्बी डाली जायगी क्योंकि मुसलमान भाई यहां भी कतिपय मांसोंसे वैसा ही परहेज करते हैं जैसा भारतवर्षमें। इससे वे भोजन बनानेमें तेलको छोड़ मक्खनका भी व्यवहार नहीं करते।

स्वागतका विचित्र ढंग।

गृहमें हमारे प्रवेश करतेही व्यवस्थापक महाशयने एक विचित्र किलकारका शब्द किया जिसे सुन गृहके कोने अंतरे सभी जगहोंसे वैसा ही प्रतिशब्द आया जिससे घर गूँज उठा। हमारे ज़रा ठिठुकने पर हमारे दुभाषियेने कहा, महाशय, डरिये मत, चीनमें आगन्तुक सज्जनोंके अभिनन्दन करनेका यही तरीका है।

हमें ले जाकर एक कमरेमें बैठाया गया। इसे हम साफ नहीं कह सकते। हां, वह बिलकुल गन्दा भी न था किन्तु इससे तबीयत न भरी। नौकरने तौलिया गर्म पानीमें भिगो सामने ला रक्खी। जापानमें और यहां भी यह बड़ा ही उत्तम रिवाज है। एक तो गर्म पानीसे भीगे वस्त्रसे हांथ मुंह पोंछनेसे सब मैल छूट जाता है, दूसरे एक प्रकारकी ताज़गी भी मालूम पड़ती है। अत्यन्त गर्मीमें तुरन्त ठंढे पानी-से हाथ मुंह धोनेसे जो सर्दीका डर है वह भी नहीं रहता।

चीनका भोजन।

भोजनके लिये प्रथम कोंहड़ा व तर्बूजका भुना हुआ बिया आया। यह यहां बहुत खाया जाता है किन्तु छिला हुआ न होनेके कारण हम इसे अच्छी तरह नहीं खा सके। इसके उपरान्त कच्चा सिंघाड़ा, उबाले हुए कमलगट्टे, भसीड़ और पानीमें भीगे हुए ताजे अखरोट आये। फिर दो तीन प्रकारकी भाजियां व रोटियां आयीं। ये रोटियां हमारी फरमाइशसे नहीं वरन् यहांकी चालके अनुसार आयी थीं। रोटियां पतली

व छोटी थीं, पर भारतवर्षकी तरह आगपर सेंकी न थीं, केवल तवेपर ही बनी थीं। भाजियोंमें गोविन्दबरी जो आटेके लासेकी होती है बहुत अच्छी थी। भोजन खूब हुआ। चीनी भोजन थोड़े दिनोंमें रुचिकर हो सकता है किन्तु जापानी भोजनके, भातको छोड़, हमारे रुचिकर होनेमें अधिक अभ्यासकी आवश्यकता है। भोजनोपरान्त यहांकी गलियोंकी सैर की, फिर होटलमें आ निद्राभिभूत होगये।

शायद हमारे देशवासियोंको यह ज्ञात नहीं होगा कि चीनमें भी मुसलमान लोग हैं। किन्तु यह उन्हें जानना चाहिये कि चीनमें मुसलमानोंकी अच्छी संख्या है पर चीनके मुसलमान चीनी हैं, भारतीय मुसलमान भाइयोंकी भांति अरबी नहीं हैं। वे "चीनी हैं हम वतन है बस चीन ही हमारा" कहते हैं, वे अपने अन्य भाइयोंकी तरह "मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा" का अनर्गल पाठ नहीं पढ़ते।

लामा मंदिर (पृष्ठ ६५३)

कटलर स्मारक [तीन दरका फाटक]

पृष्ठ ३५३)

चौथा परिच्छेद ।

—:o:—
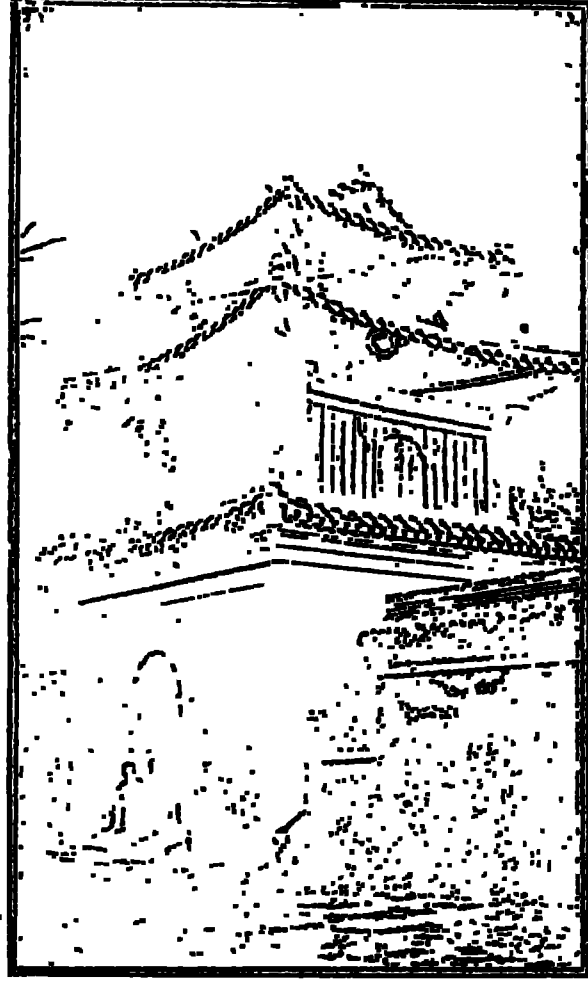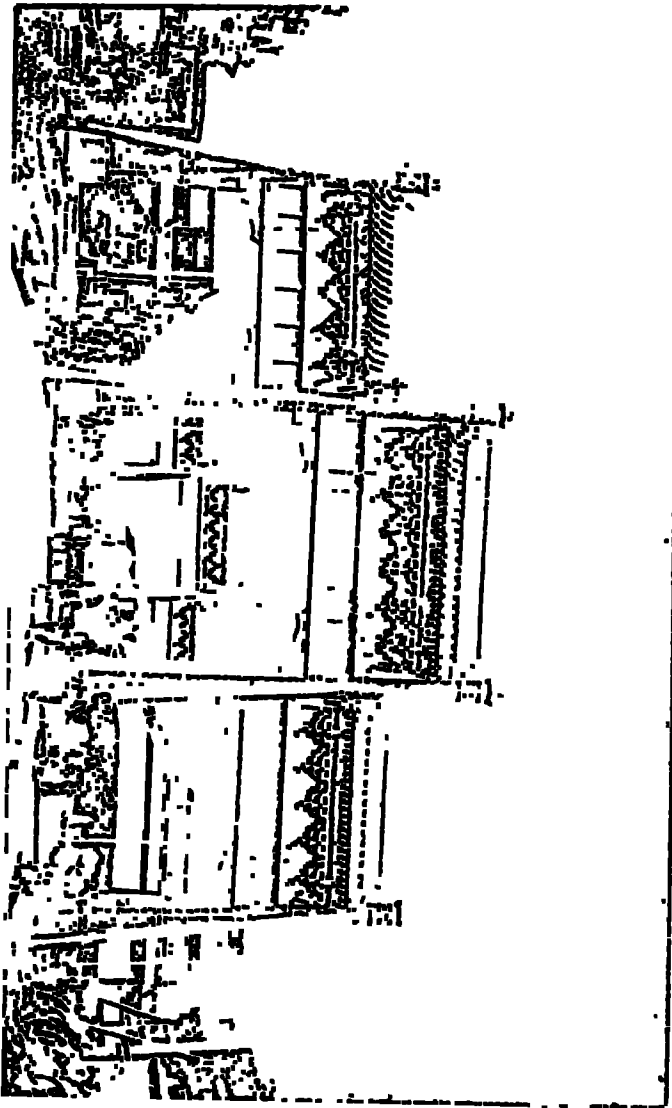
चीनमें द्वितीय दिन ।

आज प्रातःकाल कलेवा करनेके उपरान्त हम नगरके प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों-को देखने चले। लीगेशन क्वार्टरसे बाहर हो जिस सड़कसे हम चले उसपर एक बड़ा तीन दरका पक्का महराबदार फाटक मिला। दर्याफ्त करनेसे मालूम हुआ कि संवत् १९५७ में जो बाक्सरका नामी फसाद यहां हुआ था उसमें एक विदेशी, कटेलर नामी जर्मन, हत हुआ था। बखेड़ा शान्त होने पर श्वेताङ्ग संसारके प्रभुओंने चीनी सरकारको दबाकर यहां एक स्मारक चिन्ह बनवाया। यह योर-अमरीकाकी पाशविक शक्तिका नमूना पीकिङ्गके बीचमें खड़ा है और जबतक यह यहां बना रहेगा तबतक योर-अमरीकावालोंकी क्रूरताकी याद चीनियोंको दिलाता रहेगा।

इस बखेड़ेके उपरान्त चीन सरकारको इन विदेशियोंको जिनकी क्षति हुई थी धन देना पड़ा था। इस प्रकारकी क्षति-पूर्तिका नाम 'इन्डेमूनिटी' है। इस नामसे इन विदेशियोंने कितना धन चीनसे लिया था यह हमें नहीं ज्ञात हुआ। हाँ, अमरीकाके संयुक्त राष्ट्रको जो धन मिला था वह उसने चीनको इस शर्तपर वापस दे दिया कि उस धनसे चीनी विद्यार्थी अमरीकामें शिक्षा ग्रहण करनेके लिये भेजे जायँ। उस धनराशिसे आज दिन प्रायः तीन लाख रुपये प्रति वर्ष ब्याजसे मिलते हैं; इस रकमकी सहायतासे सैकड़ों विद्यार्थी अमरीकाको चीनसे जाते हैं। ऐसा अमरीकाने क्यों किया, कुछ समझमें नहीं आता। इसमें कुछ भेद अवश्य होगा, किन्तु जो हो, इस समय इसका परिणाम अच्छा ही हो रहा है। इससे अमरीकाको साधुवाद है।

आगे चलकर हम लामा मन्दिरके निकट पहुंच गये। यह एक बड़े अहातेके
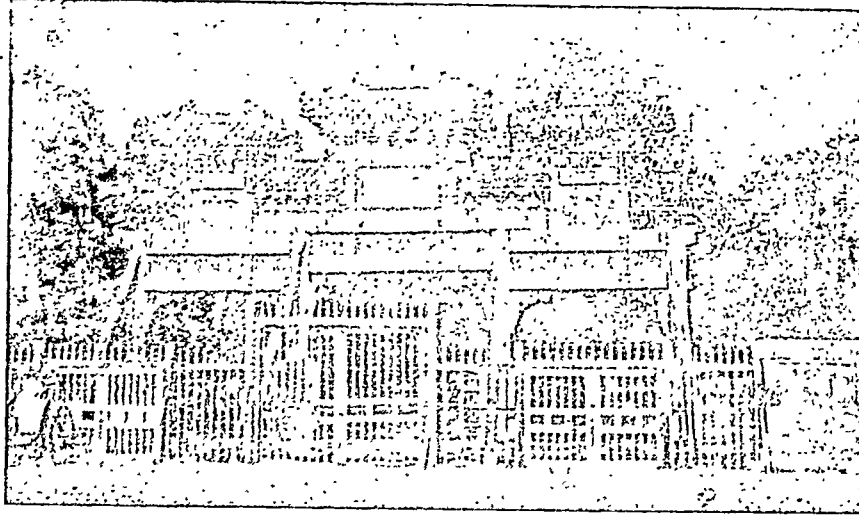
लामा-मन्दिर।

भीतर बना है। अहातेमें कई मन्दिर हैं, किन्तु सब बे-मरम्मत हैं। छतोंपर इतनी घास जमी है कि बोझसे छतें झुक गयी हैं। सारी जगह ऐसी मालूम पड़ती है कि इस जगहका कोई स्वामी नहीं है। जीमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ऐसी सुन्दर जगह इतनी बे-मरम्मत क्यों पड़ी है। इसका उत्तर भी तुरन्त मिल गया। जगत्से बौद्ध धार्मिक जीवनका साम्राज्य उठ गया। अब जीवनसंग्रामकी भीषणतामें पूजा-अर्चा, देवी-देवता, मन्दिर-मठ, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक और "बाभन-विशुन"की ओर ध्यान देनेकी फुर्सत जगत्को नहीं है। ये वस्तुएँ जीर्ण हो गयीं। इनका स्थान अब केवल संग्रहालयमें बाकी है। पाश्चात्य जगत्में तो ये सचमुच ही केवल संग्रहालयकी भाँति रह गयी हैं तथा दर्शकोंको माध्यमिक युगकी याद दिलाती हैं व उस समयके रीति-रिवाज और चाल-ढालका पता बताती हैं। किन्तु प्राच्य जगत्में इनकी और भी दुर्दशा है। धन तो इतना है नहीं कि ये संग्रहालय समुचित दशामें रक्खे जा सकें। जनतामें भी इनकी ओर श्रद्धा बाकी नहीं है। फलतः ये बे-मरम्मत व घास फूससे भरे रहनेके कारण कुत्ते-बिल्लियोंके निवास-स्थान बन रहे हैं। काशीकी गलियोंमें जहाँ भक्तोंकी कमी नहीं है उनकी आँखोंके सामने देवमूर्तियोंपर पशु सिर रक्खे सोते मिलते हैं और वे आँख बन्द किये चले जाते हैं। इस दुर्दशासे तो यह कितना अच्छा होता कि एक स्थान बनवा कर ये देवमूर्तियाँ सत्कारपूर्वक रख दी जातीं जिससे कमसे कम पुरातन मूर्ति-निर्माण-कलाका तो पता चलता।

यहाँ पीकिंगमें किसी जगह जाइये, सभी जगह दरवानोंको कुछ देना पड़ता है। प्रायः दस पैसे इन्होंने अपनी फीस मुकर्रर कर रक्खी है। हमने भी दस पैसे दे भीतर पैर रखा। यहाँ प्रायः पाँच सौ लामा लोगोंके निवासके लिये स्थान बने हैं। इन संस्थाओंमें पाँच वर्षके बालकोंसे लगाकर बुड्ढे लामा तक हैं। इनका विवाह नहीं होता, इन्हें सारा जीवन ब्रह्मचर्य्यमें ही बिताना पड़ता है।

अब हम एक मन्दिरके निकट आये। यहाँ द्वारपर दो अष्टधातुके सिंह पत्थरकी चौकीपर बैठे द्वारपाली कर रहे हैं। मन्दिरके द्वारपर "ओंमणिपद्मेहुँ" देवनागरीसे मिलते जुलते अक्षरोंमें लिखा है, इन्हें तिब्बती अक्षर कहते हैं। इस मन्दिरमें बुद्ध भगवान्की बहुतसी मूर्तियाँ रक्खी हैं। एकका नाम 'दीर्घायुदाता बुद्ध', दूसरीका 'सौभाग्यदाता बुद्ध' तथा तीसरीका 'चिकित्सक बुद्ध' है। यहाँ तथा जापानमें भी बौद्ध देवताओं तथा भारतवर्षके पौराणिक देव व देवियोंमें कुछ अन्तर नहीं है, फर्क केवल नाममात्रका है। यहाँ तिब्बती अक्षरोंमें लिखी एक पुस्तक भी देखी। यह भारत-वर्षकी पोथियोंकी भाँति पत्रोंकी है व काठकी पटरीपर वेष्टनमें लपेटकर रक्खी है।

यहाँसे भीतर दूसरे मन्दिरमें गये। यहाँ सैकड़ों छोटे बड़े लामा पीत वस्त्र पहिने आसनोंपर बैठे पुस्तक पाठ कर रहे थे। जान पड़ता था कि बटुसमुदाय चण्डीका पाठ करता हो। एक व्यक्ति, जो इनमें प्रधान था, धूपदानीमें अगियारी देता जाता था। *

* वह बुद्धदेवकी मूर्तिको नाना प्रकारके खाद्यपदार्थ दिखा दिखा कर अपने पास रखता जाता था। इस मन्दिरके पीछे एक विशाल मन्दिरमें मैत्रेयी बुद्धमूर्ति स्थापित है। यह सुविशाल मूर्ति ७२ फुट ऊंची है। यह मूर्ति खड़ी अवस्था में काष्ठकी है। कहा जाता
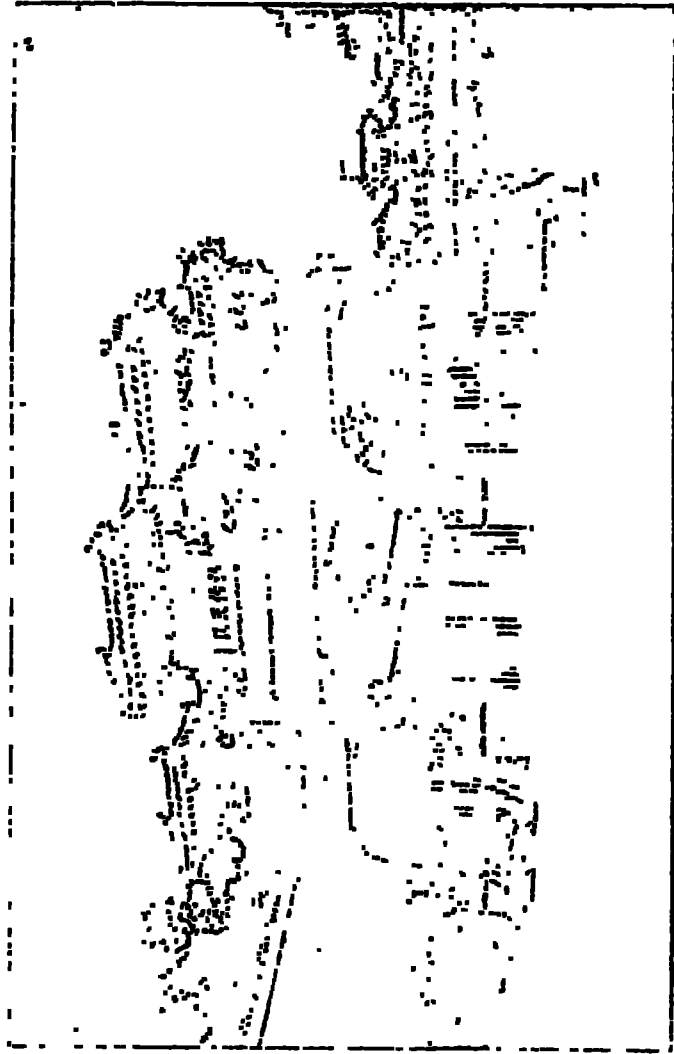
मन्दिरके द्वारपर अष्टधातुके सिंह (पृष्ठ ३५४)

सौभाग्यदाता बुद्ध (पृष्ठ ३५४)

कनफ्युशसका मन्दिर।

यहाँसे निकलकर हम पासके कनफ्युशस मन्दिरमें गये। फाटकके भीतर घुसते ही हमें राहकी दोनों ओर पत्थरकी बड़ी बड़ी पटियोंपर कुछ लिखा देख पड़ा। हमने समझा था कि ये पटियाँ कबरोंपर स्मारकरूप खड़ी की गयी हैं, किन्तु बात
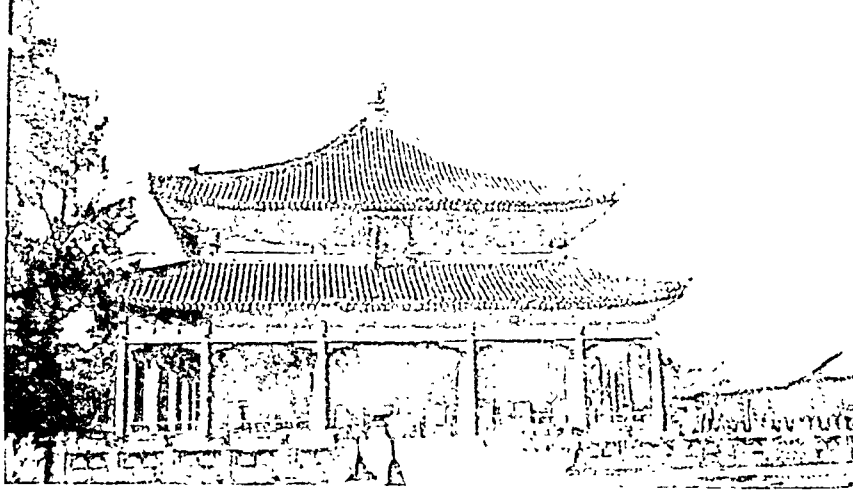
कनफ्युशसका मन्दिर।

दूसरी निकली। इन्हें यहाँके राजकीय विभागके विश्वविद्यालयका पञ्चाङ्ग कहना चाहिये। संवत् १९५८ के पूर्व यहाँ राजकर्मचारी केवल वही पुरुष हो सकता था जो एक विशेष प्रकारकी राजकीय परीक्षामें उत्तीर्ण होता था। इन पटियोंपर उन्हीं उत्तीर्ण मनुष्योंके नाम लिखे हैं। ये सभी नाम विगत मञ्चूवंशके राजत्वकालके हैं। वर्त्तमान राष्ट्रपति "युआन-शि-काई" का नाम भी इनपर है। इस मन्दिरके अहातेमें बाँझके वृक्षोंकी अधिकता है, इनसे मन्दिरकी शोभा बढ़ती है। दूसरे अहातेमें घुसते ही आपको नगाड़ोंके सदृश पत्थरके दश टुकड़े देख पड़ेंगे। ये पत्थरके नगाड़े वास्तवमें नगाड़े नहीं वरन् नगाड़ेके समान होनेके कारण इस नामसे पुकारे जाते हैं। असलमें ये बड़ी पुरानी वस्तुएँ हैं। ये यहाँके नृपति "सुआनवांग"के समय (७७७ वि० पू०) के हैं। ये "चू" वंशके नृपति थे। इन पत्थरोंपर जो शिला-लेख हैं वे प्रायः तीन सहस्र वर्षोंके पुराने हैं, इससे ये बड़े महत्वके हैं।

दर्वाजेके ठीक सामने विराट् मन्दिर है। मन्दिरपर चढ़नेकी सीढ़ियां संगमर्मरकी हैं। प्रायः चीनी मन्दिरोंके चबूतरोंपर चढ़नेके लिये तीन सीढ़ियाँ होती हैं। दोनों बगलकी सीढ़ियाँ वास्तविक सीढ़ियाँ होती हैं किन्तु बीचकी सीढ़ी केवल एक चौड़ी पत्थरकी पटिया होती है जिसपर सुन्दर अजदहेका चित्र खुदा रहता है। अन्य

है कि सारी मूर्ति एक काष्ठमें खोदकर बनी है। रंगके कारण इसका वास्तविक पता नहीं चल सकता। यहां अंधेरा इतना था कि मूर्ति अच्छी तरह नहीं देख पड़ती थी। यहा दस पैसेपर एक धूपबत्ती व दूसरी फूलबत्ती जलानेको मिलती है। इन्हें हमने भी श्रद्धासे जलाया।

प्रकारकी भी नक़ाशी होती है। यह सुविशाल मन्दिर लकड़ीका बना है जिसपर लाल रंग किया हुआ है। इसके भीतर भी बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। मोटे मोटे खम्भोंपर ऊँची छत खड़ी है। ज़मीनमें कालीनकी जगह नारियलका फर्श बिछा है। कहा जाता है कि यहाँ पशुप्राप्त कोई वस्तु नहीं आसकती किन्तु जो प्रसाद यहाँ चढ़ता है उसमें मांस होता है। यहां दो विशाल सिंहासन हैं, एक बीचमें दर्वाजेकी ओर और दूसरा बाईं बगलमें; किन्तु इनपर मूर्तियाँ नहीं हैं। बीचके सिंहासनपर एक पटिया लटकी है जिसपर महात्मा कनफ्युशसका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है। लेख यह है "महान् पवित्र पुरुखा कनफ्युशसकी आत्मा"। यहां शोर शराबा नहीं होता। केवल बड़ी गम्भीरतासे उपासकगण कनफ्युशस और उनके उपदेशोंका ध्यान करते हैं। सामने वेदीपर पूजाके पदार्थ अर्पित किये जाते हैं। यहाँ वर्षमें एक बार पूजा होती है। उस समय चीन-नरेश स्वयम् यहाँ उपस्थित होते हैं।

प्रधान पटरीके अतिरिक्त यहाँ और अन्य आलोंमें महात्माके गुणानुवाद तथा स्तव लिखे हुए हैं। प्रधान छः स्तव ये हैं—(१) कनफ्युशस पूर्ण मनुष्य थे। (२) संसारमें कनफ्युशसके बराबर दूसरा पुरुष नहीं है। (३) कनफ्युशस सारे चीनी साधु-सन्तोंके आदिपुरुष हैं। (४) कनफ्युशस दस सहस्र पीढ़ियोंसे चीनियोंके उपदेष्टा हैं। (५) कनफ्युशसके उपदेशोंकी तुलना किसी सांसारिक अथवा स्वर्गके पदार्थसे भी नहीं हो सकती। (६) कनफ्युशसकी विद्या ऐसी गहरी थी जैसी कि समुद्रकी गहराई।

भारतवासी चीनके नामसे बहुत कम परिचित हैं। उन्हें चीनकी क़हक़हा दीवार, चीनी बर्तन, महात्मा कनफ्युशसके नाम, चीनी यात्री ह्युऐ-न-त्साँग (युआन-चुआन) के प्रसिद्ध भारत-भ्रमणके इतिहास तथा कलकत्तेके चीनी यात्रियोंका ही ज्ञान है। किन्तु चीनमें भारतके जानने योग्य बहुतसी बातें हैं। चीनकी सभ्यता बड़ी प्राचीन है। चीन देशमें जगह जगह वृहत् भारतके भी चिन्ह दिखायी पड़ते हैं।

कनफ्युशन धर्म ।

कनफ्युशन धर्मके नामसे कोई विशेष धर्म समझना एक प्रकारकी वैसी ही भूल है जैसी "मनु" को किसी विशेष धर्मका चलानेवाला समझना। कनफ्युशन धर्मको मनुसंहिताकी भांति समाज-संगठनकी एक विशेष फिलासफी (या विचारावली) समझना चाहिये। इनके उपदेशोंमें सदाचार-सम्बंधी, राजनीति-सम्बंधी और साधारण सभ्यता-सम्बंधी ऊंची शिक्षा मिलती है। कनफ्युशन धर्म ईसाई धर्म, मुसलमान धर्म, बौद्ध धर्म और साम्प्रदायिक हिंदू धर्मकी भांति विशेष प्रकारके पूजार्चन, नरक-स्वर्ग तथा पाप-पुण्यकी व्याख्या नहीं करता व न उसमें अमुक बातके करने व अमुकके न करनेका ही उपदेश तथा निषेध है, किन्तु कनफ्युशन धर्म एक प्रकारका मानव-जीवन शास्त्र है जिसमें मानव-जीवनके प्रत्येक अंगपर प्रकाश डाला गया है। यह कोई विशेष सम्प्रदाय नहीं वरन् जो भाव हिन्दू नामसे उत्पन्न होता है वही इससे भी समझना चाहिये। जैसे हिन्दू धर्मकी विशेषताका बताना कठिन है, क्योंकि वह सम्प्रदाय नहीं है, वैसे ही कनफ्युशन धर्मकी विशेषता भी कुछ नहीं कही जा सकती। इसमें उन सब बातोंका उल्लेख है जो मानव-समाजके लिये अनिवार्य हैं। यह संप्रदाय नहीं वरन् एक प्रकारकी सभ्यता है। कनफ्युशनके

पीत मन्दिरके समीप खण्डित मूर्तियां (पृष्ठ ३६१)
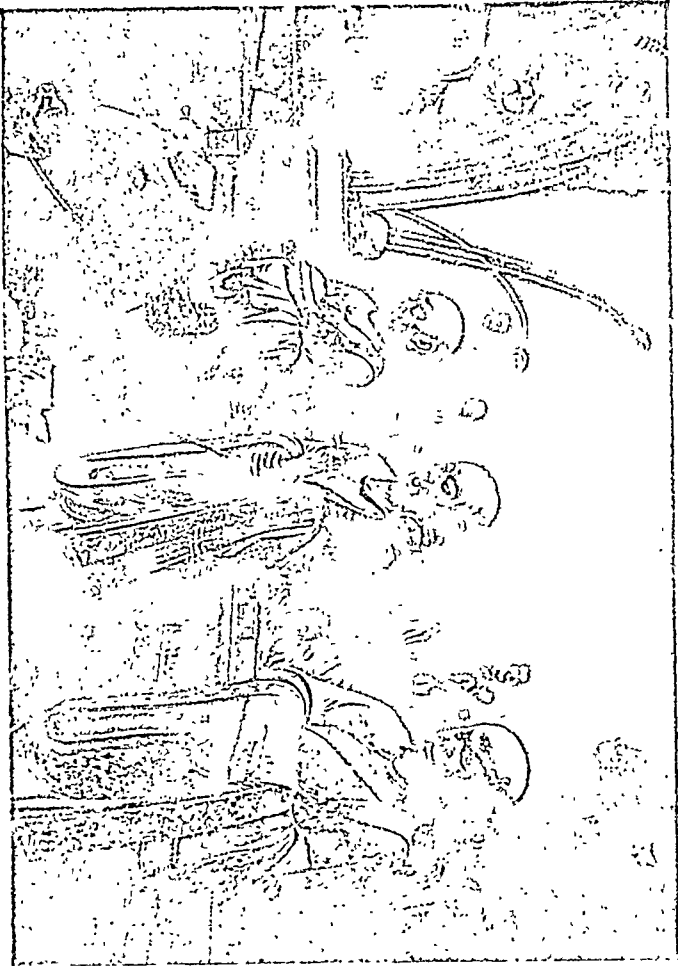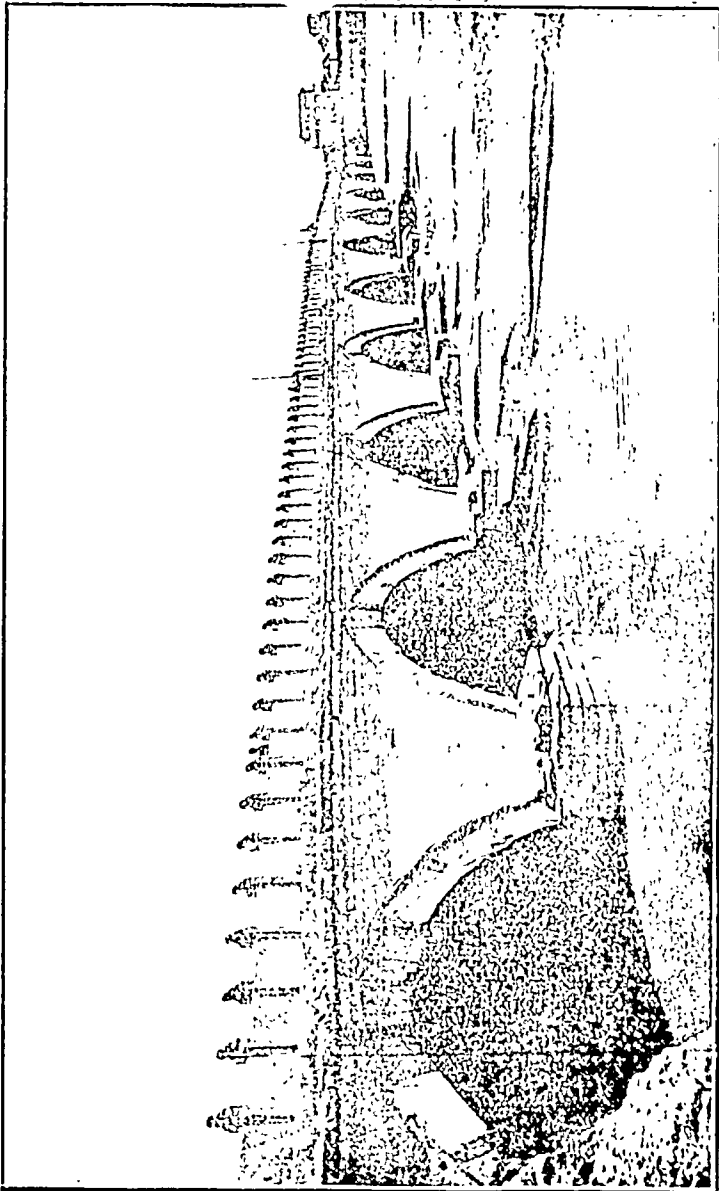
ग्रीष्म महलके पास मैकपोल सेतु

(पृष्ठ ३६३)

उपदेश चार बड़े विभागोंमें विभक्त हो सकते हैं। (१) व्यक्तिगत व समाजगत कर्तव्याकर्तव्य सम्बंधी, (२) कृषि, शिल्प, वाणिज्य इत्यादि द्वारा धनोपार्जनकी विधि सम्बन्धी, (३) शासन-प्रणाली तथा दण्ड-विधान व अन्य नियम, व (४) इन उपर्युक्त शास्त्रोंके प्रचारकी रीति। इन उपर्युक्त बातोंसे आपको यह भलीभांति ज्ञात होजाना चाहिये कि यह कनफ्युशन धर्म क्या पदार्थ है। यह सभ्यता चीनियोंके अङ्ग प्रत्यङ्गमें भीन गयी है और उनके जीवनका प्रधान अङ्ग बन गयी है। चीनियोंके जीवनसे कनफ्युशन सभ्यता उसी भांति पृथक् नहीं की जा सकती जैसे हिन्दुओंके जीवनसे हिन्दू सभ्यता अलग नहीं की जा सकती।

'कुआन-सिआंग-ताई' नामकी वेधशाला।
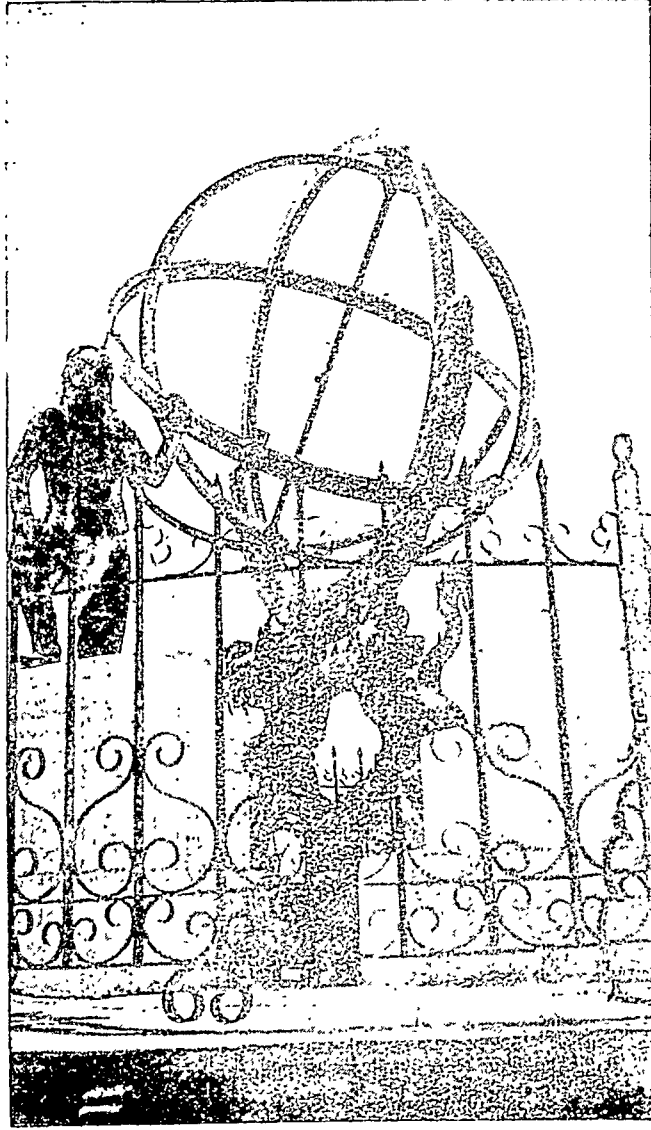
यहांसे होकर हम होटल लौट आये और भोजन करके विश्राम किया। सन्ध्याको हम मानमन्दिर और वेधशाला देखने चले। इसे चीनी भाषामें "कुआन-सिआंग-ताई" कहते हैं। यह संवत् १३३६ में "युआन" वंशके प्रथम राजा कुबलिया खाँके राजत्वकालमें बनी थी।

संवत् १७१८ व १७७७ के बीचमें यह वेधशाला रोमन सम्प्रदायके पादरियोंकी देखरेखमें रख दी गयी थी। इन्हीं लोगोंने यहां बहुतसे अष्टधातुके यन्त्र बनवाकर रक्खे थे। इनमेंसे बहुतसे यन्त्र संवत् १९५७ में बाक्सरके दंगेके समय जर्मन लोग उठा लेगये। वे अब बर्लिनमें रक्खे हैं।

यहां ही चीनके प्रधान गणितज्ञ लोग पञ्चाङ्ग बनाते हैं। यहां अरबी अक्षरोंमें लिखे हुए बहुतसे पर्य्यवेक्षण-यन्त्र रक्खे हैं। किसी समय यह वेधशाला अरबी पण्डितोंके हाथमें थी। यहांसे लौटते हुए राहमें नगाड़ा व घण्टाघर देखे। नगाड़ा घर ईंटोंका एक बृहत् गृह है। यह ९८ फुट ऊंचा है। यहांसे सारे नगरका दृश्य देख पड़ता है। यहां एक बड़ा व दो छोटे नगाड़े हैं। किसी समयमें यहींसे रात्रिमें पहरा बदलनेके समयकी सूचना सारे नगरमें दी जाती थी। कोई भारी आपत्ति उपस्थित होनेपर भो नगरनिवासी इन्हींसे सजग किये जाते थे। अब यह केवल एक तमाशे-की तरह खड़ा है।

घण्टा-घरमें एक सुविशाल घण्टा है। यह १४ फुट ऊंचा और ३४ फुटके घेरेमें है। इसके दलकी मोटाई ९ इञ्च है। इसका भार १५०० मन है! यह यहांपर संवत् १४७७ से है।

यहांसे हम सार्वजनिक बाग देखने गये, यहां ३० पैसे देकर प्रवेश किया। बाग क्या, तमाशा है। पहले यह महलका एक भाग था, अब जनताके लिये खोल दिया गया है। सन्ध्याको यहां अच्छी भीड़ होती है। दर्शकगण अपनी अपनी मण्डली और टोली बनाकर यहां आते, बैठते और भोजन भी करते हैं। यहां भी एक घण्टाघर है। बाहरकी ओर गाड़ी और रिकशाओंकी भीड़ लगी रहती है। मोटरें भी यहां देख पड़ती हैं। प्रायः सभी धनी लोग सन्ध्या समय यहां आते हैं। हम भी इधर उधर टहल कर वापस आये।
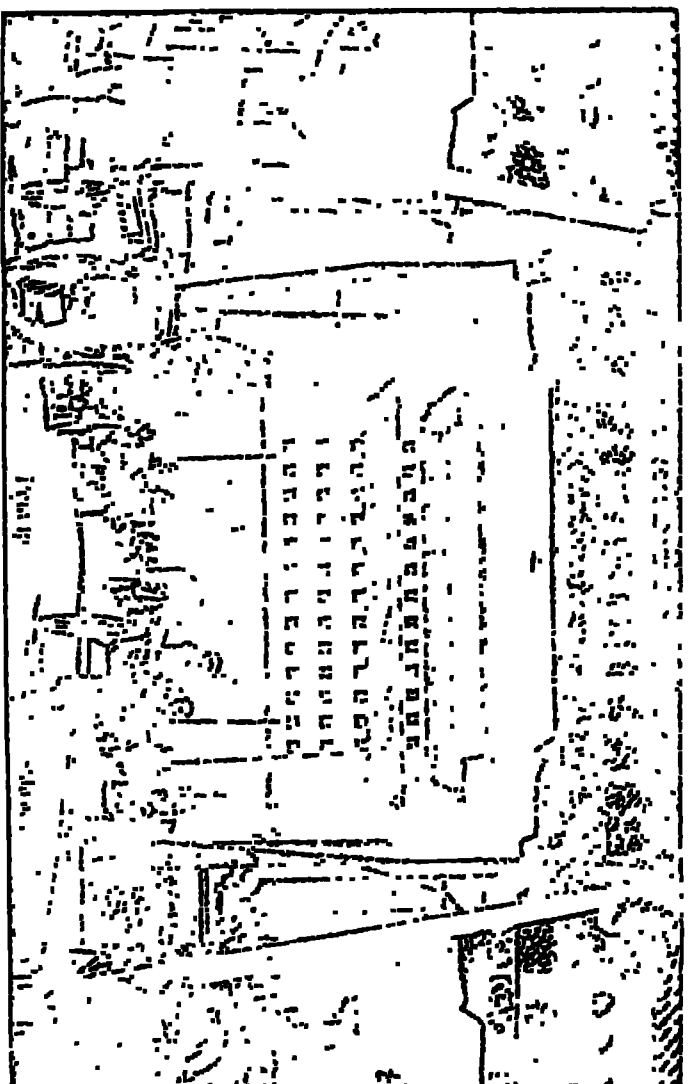
गाड़ियों और रिकशाओंकी भीड़ (पृष्ठ ३५८)

ड्रम-टावर [नगाड़ाघर] (पृष्ठ ३५८)

पाँचवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

चीनमें तृतीय और चतुर्थ दिन ।

कल अत्यन्त गर्मी थी। सूर्य्यकी किरणें इतनी प्रखर थीं कि जिसका हिसाब नहीं। आज उसके प्रतिकूल नभोमण्डलमें इधर उधर मेघ देख पड़ने लगे। कुछ कुछ हवा भी चल रही थी। हम बाहर जानेके लिये तैयार हुए, इतनेमें कुछ बूँदाबांदी शुरू हो गयी। इस ख्यालसे कि बूँदें रुक जायँ तब चलें, हम जरा ठहर गये, इतनेमें मूसलधार पानी बरसने लगा। वृष्टि प्रायः दो घण्टे तक होती रही। हमारा बाहर जाना असम्भव होगया। हम भी कलके थके थे, जरा आराम करने लगे। पानी रुक जानेपर मध्याह्नके बाद हम बाहर निकले।

पीत-मन्दिर ।

आज पीत मन्दिर देखनेको नगरके बाहर उत्तर ओर मुगल नगरमें जाना था। मार्ग एक प्रकारसे नहीं हीके बराबर था। हमारी रिकशा जिस राहसे जारही थी वह अत्यन्त खराब थी। उसे राह कहना ही अनुचित है। इसपर वर्षाने और भी गज़ब ढाया था। सारी राह कीचड़से भरी थी। कहीं कहीं पानी भी हाथ हाथ डेढ़ डेढ़ हाथ जमा था। रिकशाके पहिये और आदमीके पैर बित्ता बित्ता भर धँसे जाते थे। १५ वर्ष पूर्व जिन लोगोंने काशीमें सारनाथकी यात्रा की होगी या कभी श्रावणकी "पञ्चकोसी" की होगी, वे महाशय इस राहका अनुमान भलीभांति कर सकते हैं। ग्रामीण भाई सदा इसका अनुभव करते ही हैं।

हमारी तकलीफको बढ़ानेके लिये इस समय वर्षा फिर प्रारम्भ हो गयी। खैर, दो घण्टे बाद हम इस पीत मन्दिरके निकट पहुंच गये। इसे मन्दिर कहना भूल है, यह एक प्रकारका महल है। युआन वंशके राजत्वकालमें मुगल नृपति कुबलिया खाँका यह राजमन्दिर था। अब यह इतनी जीर्ण अवस्थामें है कि वर्षाके समय इसके भीतर जाना उचित नहीं समझा जाता। यह राजप्रासाद ऊँची मर्मरकी कुर्सीपर लकड़ोका बना हुआ है। इसकी छतपर पीत और हरित रंगके खपड़ोंकी छाजन है, इसीसे इसे पीत मन्दिर कहते हैं। किन्तु पीत रंगके खपड़ोंकी छाजन और भी अनेक जगहोंमें देखी है, पर उनका नाम पीत भवन या मन्दिर नहीं है। इसमें कौनसी विशेषता है कि जिससे यह नाम रखा गया, यह मालूम नहीं। इस भवनमें एक और विशेषता है। इसके कार्निस व घोड़ियोंपर जो रंगसाजी है वह चीनी नकशेपर नहीं वरन् भारतीय नमूनेकी है। यहाँ सभामण्डपमें दो गड्ढे दिखाये जाते हैं और कहा जाता है कि ये उन दर्बारियोंके पैरके चिन्ह हैं, जो प्रतिदिन बड़ी संख्यामें यहां खड़े हो होकर राजाको जोहार करते थे।
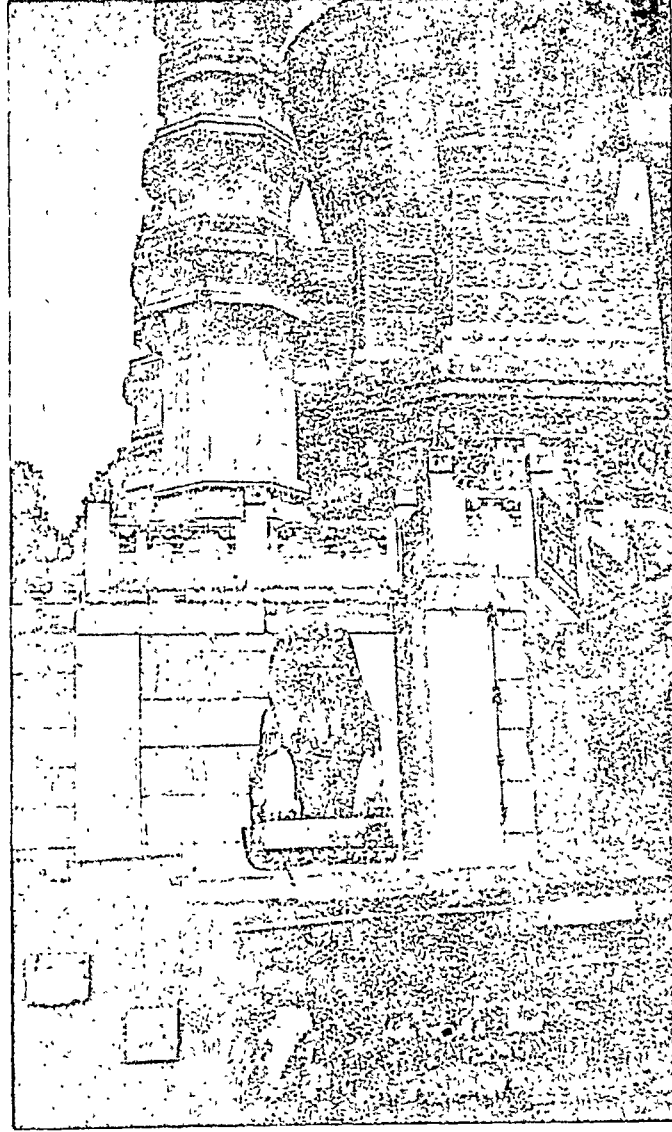
पीत मन्दिर ।

पीत मन्दिरसे लगा हुआ एक अत्यन्त सुन्दर संगमर्मरका स्तूप है। कहा जाता है कि नृपति कुबलिया खाँने तिब्बतसे दलाईलामाको यहाँ बुलाया था। चीनके सब मुग़लवंशी राजा बौद्ध थे। "खाँ" नामके पीछे लगनेसे उन्हे मुसलमान न समझना चाहिये। वास्तवमें "खाँ" मुसलमानी उपाधि नहीं है, यह मङ्गोल उपाधि है और मुगल शब्द भी इसी मङ्गोलका अपभ्रंश है।

दलाईलामा यहाँ आकर बीमार हो गये और यहीं उनका देहान्त भी हो गया। यह स्तूप उनका स्मारक स्वरूप बना है। इसपर बड़ी ही सुन्दर नक्काशी बनी है। स्मारक अष्टभुज चबूतरेपर बना है। दलाईलामाका आना, उनका
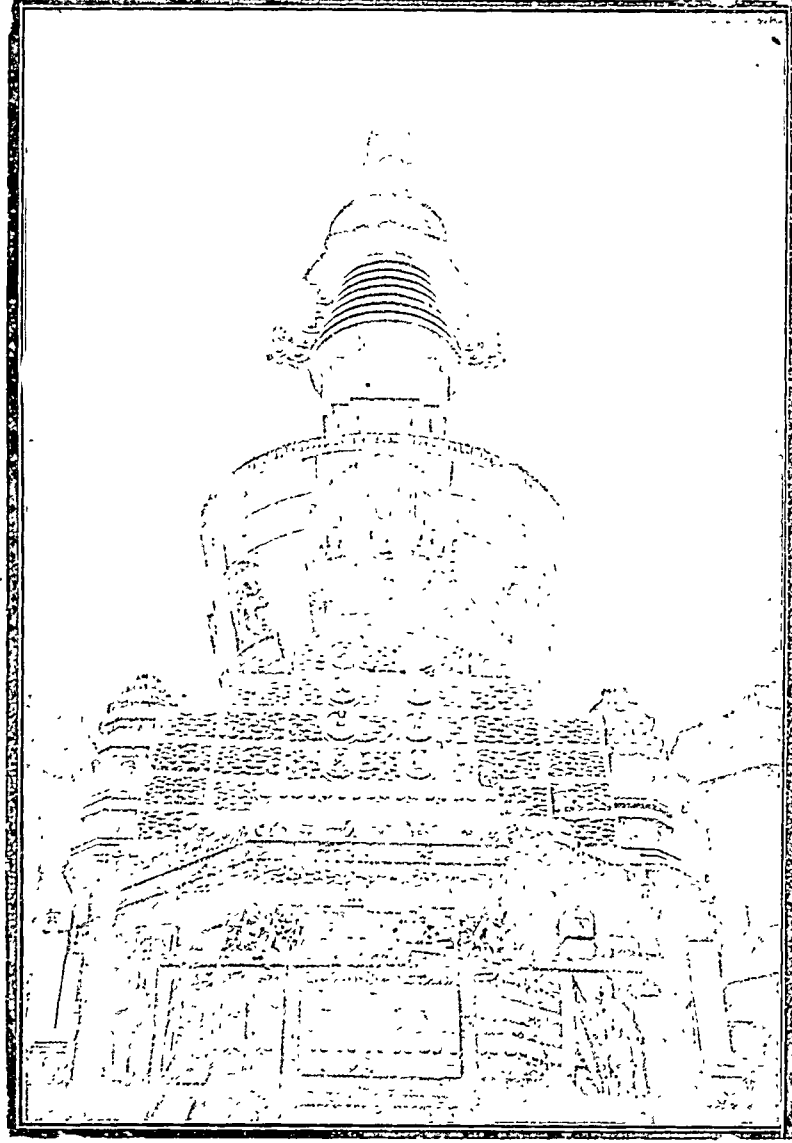
पीत मंदिरका संगमर्मरवाला स्तूप (पृष्ठ ३६०)
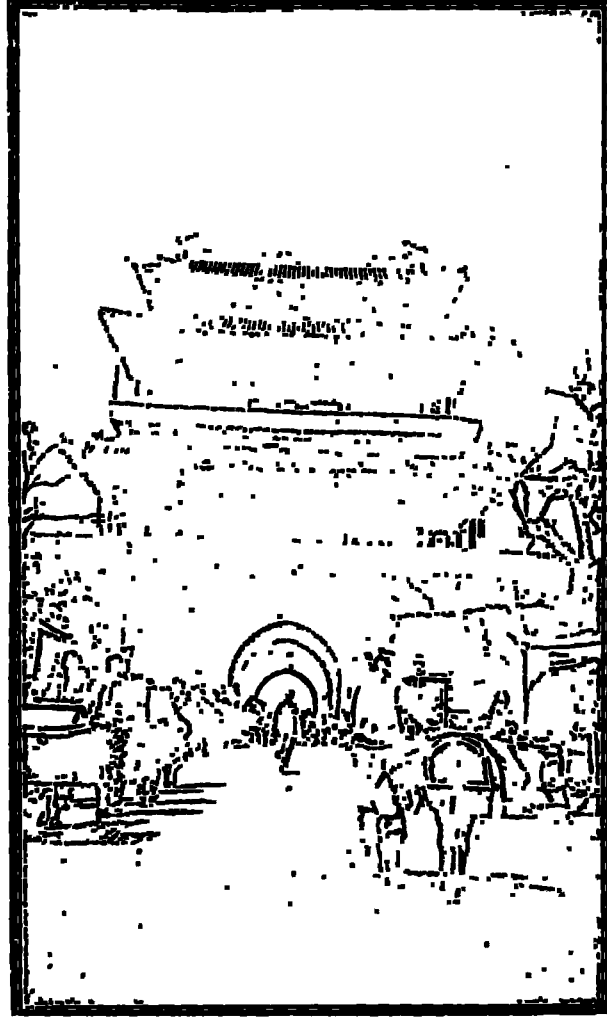
ते-शिन-मेन गेट, नगरके बाहर जानेका उत्तरी द्वार (पृष्ठ ३५६)

बीमार होना, राजाका उन्हें देखने आना, राज-वैद्यका चिकित्सार्थ आना, लामाके निर्वाणपर शिष्योंका विलाप करना, विलापके समय एक शिष्यकी प्रसन्नता क्योंकि वह आकाशमें लामाको बुद्ध पदवीपर विमानपर चढ़े हुए देख रहा था--ये दृश्य यहाँ पृथक् पृथक् दिखाये गये हैं। सारांश यह कि यह स्थान बड़ा ही रमणीक है और जिस समय यह बना था (विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीमें) उस समय देशमें कितनी शिल्पोन्नति हो चुकी थी यह इस स्थानके देखनेसे भलीभाँति मालूम पड़ता है।

आजकल दर्शकोंको यहाँकी मूर्तियाँ खण्डित अवस्थामें मिलेंगी। सभीके मुखका कुछ न कुछ भाग तोड़ दिया गया है। यह उत्पात संवत् १९५७ में बाक्सरके बखेड़ेके समय हुआ था। इसका वृत्तान्त यह है--यहाँ जापानी सेना पड़ी थी। उसका एक सिपाही इसपर चढ़कर स्वर्ण-कलश चुराना चाहता था। ऊपरसे वह गिरकर मर गया। उसके साथियोंने यह समझकर कि इन देवताओंने ही इसे मारा है क्रोधसे सबकी नाकें तोड़ डालीं।

नाटक।

आज रात्रिमें हम यहांका एक नाटक देखने गये थे। नाटकका प्रभाव तो अधिक कुछ नहीं पड़ा, हाँ, दर्शकोंका प्रभाव विशेष रूपसे पड़ा। इसके पूर्व हमें स्वप्नमें भी यह ख्याल नहीं था कि चीनी लोग इतने अमीर हैं। आज देखनेसे मालूम हुआ कि धनिकोंकी यहां अच्छी संख्या है। नाटककी प्रथम श्रेणी धनिक स्त्री-पुरुषोंसे भरी थी, उनकी पोशाक और आभरण देखकर किसीको भी उनके अत्यन्त धनी होनेमें सन्देह नहीं रह सकता।

यहां चीनी व मञ्चू दोनों प्रकारके दर्शक थे। मञ्चू स्त्रियां अपने बाल एक विचित्र प्रकारसे बनाती हैं। वे मुखपर इतना रंग लगाती हैं कि शकल बड़ी ही भद्दी हो जाती है। चीनी स्त्रियोंके बाल इतनी सुन्दरतासे गूथे जाते हैं कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। ये बालोंको सँवार कर रखनेमें बङ्ग महिलाओंसे भी बढ़ीचढ़ी हैं। इन्हें कृत्रिम उपायोंसे मुखकी शोभा बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। ये स्वयं ही बड़ी सुन्दर होती हैं। इन्हें देख फारसी कवि "सैदी" की "लाबुते चीनी" की उपमा यथार्थ प्रतीत होती है।

× × × ×

चौथा दिन।

आज हम यहांका प्रसिद्ध साहित्यभवन देखने गये। इसे चीनी भाषामें "कुआज़ू- चीन" कहते हैं। यह भवन कनफ्युशसके मन्दिरके बहुत निकट है। यहांका प्रधान भवन संगमर्मरका बड़ा ही सुन्दर बना है। दर्वाजोंकी नक्काशी ऐसी अच्छी है कि जिसका ठिकाना नहीं। इसकी छत भी रंगीन खपड़ोंकी ही है। बीचके प्रधान भवनके चारोंओर संगमर्मरके तकिया-मुतक्के लगे हैं। संगमर्मरकी ही एक नहर भी बनी है, जिसमें इस समय भी कमल फूले थे। प्रधान मन्दिरमें कोई पुस्तकालय इत्यादि नहीं हैं। यहां केवल पूर्व समयमें पण्डित लोग विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे।

हम यहां चीनी पुस्तकालय देखने आये थे किन्तु पुस्तकें कहीं न देख पड़ीं, तब हमने अपने पथप्रदर्शक महाशयसे उसके बारेमें पूछा। उन्होंने कहा, "आइये महाशय,

मैं आपको पुस्तकें दिखाऊँ ।" यह कहकर वे हमें बड़े दालानोंकी ओर ले चले जो चारों ओर बने हैं। उनमें ऊंची ऊंची पत्थरकी पटियोंपर खुदे हुए शिलालेख दिखाकर उन्होंने कहा कि ये ही प्राचीन चीनी पुस्तकें हैं। हमने इन विचित्र पुस्तकोंका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि "सिन" वंश (१९८-१५० वि० पू०) के राजाने अपनी ही बातोंका रिवाज देशमें फैलानेके लिये सब प्राचीन पुस्तकें जलवा दी थीं, जिसमें कोई पढ़ लिख कर उनकी बातोंका विरोध न करे। यह कैसी ऊंची बुद्धिका काम था सो कहना आवश्यक नहीं। सिन वंशके बाद हान वंश (१४९ वि० पू०—२७७ विक्रम) के राजाने इन ग्रन्थोंको पत्थरपर खुदवाया जिसमें ये फिर नष्ट न कर दिये जायँ।

१७९३-१८५२ में "चीन लंग" नृपतिने, जो बड़े विद्यारसिक थे, चीनमें मञ्चू वंशकी स्थापना की। उन्होंने विद्या-प्रचारके विचारसे बड़ी खोजसे पुरानी पुस्तकोंका पता लगाकर उन्हें एकत्र किया और यहां मँगाकर रक्खा। उन्होंने इन प्रधान १३ ग्रन्थोंको पत्थरकी पटियोंपर खुदवा कर यहां रख दिया। इन ग्रन्थोंके प्रधान नाम ये हैं--

(१) परिवर्त्तनका ग्रन्थ (ई-चिंग) (दि कैनन आफ चेनजेज़)
(२) पद्य ग्रन्थ वा पिङ्गल (शी-चिंग) (दि कैनन आफ पोइट्री ऑर बुक आफ ओड्स)
(३) इतिहास (शू-चिंग) (दि कैनन आफ हिस्ट्री)
(४, ५, ६) वसन्त और शरद् ऋतुओंकी कथा (चन-च्यू) (दि स्प्रिङ्ग एण्ड ऑटम एनल्स)--तीन भिन्न भिन्न टीकाओं (सो-जू-चुआन, कंग-यांग-चुआङ्ग, कूलियांग-चूआन) के संस्करण
(७) कर्म्म काण्डका क्रिया-विधान (ली-ची) (दि बुक आफ राइट्स)
(८) चाऊ क्रिया-विधान (चाऊ-ली) (दि चाऊ रिचुअल्स)
(९) शिष्टाचार विधि (ई-ली) (दि डीकोरम रिचुअल)
(१०) सन्ततिधर्म-पवित्रता (लिआओ-चिंग) (दि बुक आफ फीलि-अल पाइटी)
(११) महात्मा कनफ्यूशसके अवतरण (लून-यू) (दि कनफ्यूशियन एनालेक्ट्स)
(१२) पुराणों और दर्शनोंपर भाष्य (अर-या) (दि एक्सपाजिशन एण्ड रेक्टीफायर आफ दि क्लासिक्स)
(१३) महात्मा मेनसिअसकी पुस्तक (मेंग-जू) (दि बुक आफ मेनसिअस)

यहाँसे होकर हम वर्जित महल देखने चले। यहाँ प्रति व्यक्तिको ३० सेण्ट शुल्क देनेपर भीतर जानेकी आज्ञा मिलती है। चार वर्ष पूर्व जब मञ्चू वंशके नृपतियोंका यहाँ राज्य था उस समय यहाँ किसीको आनेकी आज्ञा न थी। इस अहातेके भीतर राजप्रासाद हैं। यहीं मञ्चू नृपतिगण निवास करते थे। राजप्रासादके अतिरिक्त बड़े बड़े मुसाहिब, राव और उमरावोंके निवासस्थान भी यहाँ हैं। अब भी पद-च्युत बालक सम्राट् यहीं एक महलमें निवास करते हैं। प्रधान महलोंके देखनेकी आज्ञा नहीं है किन्तु बाहरसे ही संगमर्मरकी अधिकतासे उनकी सुन्दरताका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। प्रधान महलके पास पहुंचनेके लिए तीन नहरें पार करनी

ग्रीष्म महलके पास संगमर्मरका सेतु (पृष्ठ ३६३)
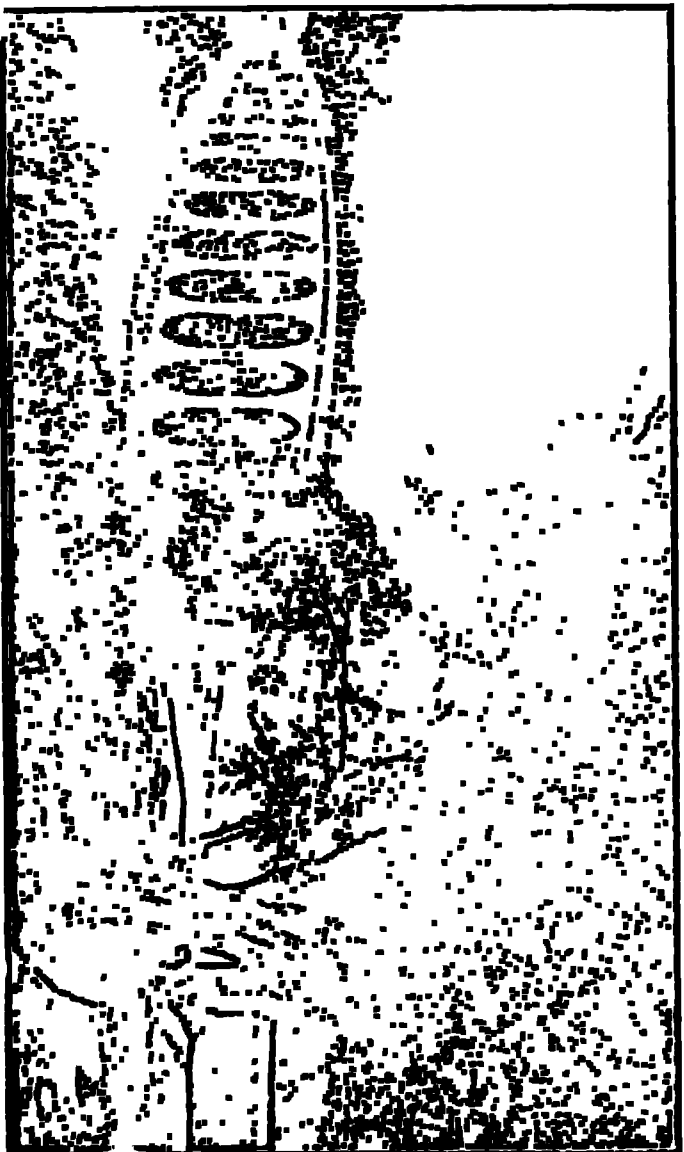
चित्रकारीयुक्त चीनका बरतन (पृष्ठ ३६३)

पड़ती हैं। इन नहरोंपर सुन्दर संगमर्मरके तीन सेतु बने हैं। इन सेतुओंपर पूर्व कालमें पहरा रहता था। वर्तमान राष्ट्रपति युआन-शि-काई यहां नहीं रहते। ये एक दूसरे ही महलमें रहते हैं--जिसका नाम हेमन्तनिवास (विंटर पैलेस) है । इस हेमन्तनिवासके चारों ओर कठिन पहरा पड़ता है। जान पड़ता है जैसे भीतर खूंखार दरिन्दे या हत्यारे डाकू बन्द हों । जिन राजाओं और राष्ट्रपतियोंको प्रजा या जनतासे इतना भय हो वे क्या राजा और राष्ट्रपति होनेकी योग्यता रखते हैं ?

यहां देखनेकी खास वस्तु संग्रहालय है। इसके भीतर जानेके लिये एक डालर शुल्क देना पड़ता है। यहींपर एक महलमें उपहारगृह है। यहां हम थोड़ी चाह पी और मिठाई खा फिर संग्रहालयमें गये। पहिले जिस जगह हम गये वहां मीनेके काम (क्लायज़नी) की बहुतसी छोटी बड़ी वस्तुएं रक्खी थीं। किसी समय यह चीनका प्रधान शिल्प था। ये वस्तुएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। इनमेंसे कुछ तो अमूल्य हैं। दस दस बीस बीस हजारके मूल्यकी तो अनेक वस्तुएँ यहां हैं। इसी घरमें पत्थर (जवाहिरात) के बने हुए वृक्षों तथा फूलोंका संग्रह भी है। बोस्टन (अमरीका) के हार्वर्ड विश्वविद्यालयमें कांचके पुष्पोंका संग्रह देखा था। उनकी सुन्दरता अनुपम थी किन्तु वे आधुनिक विज्ञानकी रीतिसे बने हैं। यहाँपर ये जवाहिरातके वृक्ष प्राचीन रीतिसे बने हुए हैं। जहां जिस रंगकी जरूरत थी वहां उसी रंगका असली पत्थर काममें लाया गया है, इसीसे इसका मूल्य बहुत है। बाज बाज वृक्षोंमें मोती व हीरे लगे हैं। यहांसे हो कर हम उस घरमें गये जिसमें चीनके वर्तनोंका संग्रह है। चीनके वर्तन चीनमें और विशेष करके चीनके राजप्रासादमें कैसे होंगे यह अनुमान किया जा सकता है। चीनके वर्तनोंका दाम दो बातोंसे बढ़ता है । एक तो वार्निसके रंगसे और दूसरे उसपरकी चित्रकारीसे ; अर्थात् मसालोंकी बहुमूल्यताके कारण, तथा कारीगरोंकी निपुणता और परिश्रमके कारण। भारतवर्षमें जन-श्रुति सुनी है कि चीनमें दादा किसी वस्तुको प्रारम्भ करता था तो पोता कहीं उसे समाप्त कर पाता था। वस्तुतः यह बात सत्य है, क्योंकि एक एक वर्तनपर चित्रकारी करनेमें कई वर्ष लगते होंगे व जब दस बीस बन कर तैयार हो जाते होंगे तब उनके पकानेका कार्य प्रारम्भ होता होगा। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त बातका सत्य होना असम्भव नहीं है। यहां बाज बाज वर्तन लाखोंके मूल्यके हैं । चित्रकारी भी उनपर गजबकी है । बाज बाज वर्तन इटली देशके चित्रकारोंके रंगे हुए हैं। रंगोंमें कोई ऐसा रंग नहीं है जिसके वर्तन यहां न हों। बाज बाज वर्तन अत्यन्त प्राचीन हैं। यहां काठ व लाख (लैकर) के कामकी भी बड़ी ही अच्छी अच्छी वस्तुएँ धरी हैं। सोने-चांदीके सच्चे जड़ाऊके कामकी बुद्ध भगवान्की मूर्तियाँ भी यहां रक्खी हैं। चीनीके कामकी बड़ी बड़ी तस्वीरें बनी हैं। दो चार चित्र भी यहां हैं किन्तु उनका यथार्थ संग्रह नहीं है। यहाँ दो घण्टे हम इधर उधर घूम कर देखते रहे, फिर यहांसे निकल मुसलमान पाड़ेकी ओर चले ।

चीनमें मुसलमान ।

भारतवर्षमें शायद मुसलमान भाइयोंको भी यह ज्ञात न होगा कि चीनमें भी

मुसलमान हैं। वास्तवमें यहां मुसलमानोंकी अच्छी संख्या है। सब मिलाकर यहाँ डेढ़ दो करोड़ मुसलमान हैं। चीनी तुर्किस्तान, कानसू, सेनसी, युन्नान प्रान्तोंमें इनकी संख्या अधिक है। यद्यपि अब भी मसजिदोंमें कभी कभी इनकी भीड़ होती है और कभी कभी यहाँसे हजके लिये भी मुसलमान लोग वैतुल अल्लाह जानेकी दिक्कत उठाते हैं, किन्तु अन्य बातोंमें इनका धर्म सिर्फ हराम जानवरोंको ग्रहण न करनेमें ही है। जिस प्रकार हिन्दुओंका धर्म चौकेमें है उसी प्रकार इन चीनी मुसलमानोंका धर्म सुअरके परहेजमें है।

आधुनिक धर्म।

यहीं क्या, संसारमें अब कहीं भी प्राचीन ढंगके धर्मकी प्रथा शेप नहीं रही। योर-अमरीकामें अब भी लाखों आदमी गिरजाघर जाते हैं किन्तु उन्हें बुलानेके लिये वहाँ नाना प्रकारके रोचक पदार्थोंका प्रबन्ध करना होता है, नहीं तो केवल पादरी साहबकी कथा सुनने वहाँ कोई भी न जावे। गिरजोंमें प्रधान प्रधान नामी व्यक्तियोंकी वक्तृतायें, सुन्दर एवं मधुर कण्ठके गान तथा अन्य अनेक बातें लोगोंको वहाँ आकृष्ट करती हैं। अभी कलके नये सम्प्रदाय आर्य समाजका जो साप्ताहिक अधिवेशन लन्दनमें होता था उसमें भी एक दर्जन सभ्योंको बुलानेके लिये धारीवाल महाशय (सभापति) को उन्हें चाय पिलानेका प्रबन्ध करना पड़ता था। सारांश यह कि समयके साथ जैसे अन्य विचारोंका परिवर्तन हो रहा है वैसेही धार्म्मिक विचारोंमें भी परिवर्तन होता चला जा रहा है।

धर्म ईश्वरकृत कोई सनातन तत्त्व नहीं है। वह भी अन्य सब बातोंकी तरह मानव-जीवनको एक दर्रेपर चलानेके लिये मनुष्य-कल्पित प्रथा ही है। ऐसी अवस्थामें मानवविकासके साथ, मानवविचारके परिवर्तनके साथ, उसमें भी परिवर्तन होना आवश्यक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अब मनुष्य अधिक धार्मिक बन गये हैं या प्राचीन समयमें अधिक धार्मिक थे, वरन् समयके साथ साथ वह भी बदलता जाता है। किन्तु जहाँ जहाँ धार्मिक विचारोंमें परिवर्तन, कुफ्र या प्रचलितधर्मका विरोध (हेरेसी) समझा जाता है वहाँ वहाँ निर्जीव ममी (संरक्षित शव) की भाँति इन पुराने भावोंका परिचय देनेके लिये अब भी यह प्रथा विद्यमान है किन्तु इनका प्रभाव मानव-जीवनके संग्रामपर कुछ भी नहीं पड़ता। ये उसी भाँति पददलित और तिरस्कृत होते हैं जैसे मिश्रके पाँचहज़ार वर्ष पूर्वके प्रतापी राजाओंके शवोंकी आज दिन छीछालेदर हो रही है। संसारकी विचित्र गति है। उसकी गतिके विरुद्ध चलना यमका आह्वान करना है। जो कालकी गतिके साथ जीवनधारामें स्वाभाविक रूपसे बहना पसन्द नहीं करता उसे भँवरमें पड़ कर जान खोनी होगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। चीन और भारत इसके जीवित प्रमाण हैं। इन दोनों देशोंको अपनी सभ्यताका घमण्ड था। ये दूसरोंको अनार्य्य और अपनेको श्रेष्ठ समझते थे, दूसरोंकी बात सुनना नापसन्द करते थे और समझते थे कि ईश्वरके इकलौते पुत्र हमही हैं। हमें छोड़ अन्य क्या जानें। यह समझकर इन्होंने अपना दर्वाजा बन्द कर दिया। बाहरका प्रवाह भीतर आना, भीतरका बाहर जाना बन्द हो गया। गतिमें जो स्वाभाविक जीवनी-शक्ति है वह रुक गयी। परिणाम क्या हुआ कि गुरु गुड़ ही रहे चेला चीनी
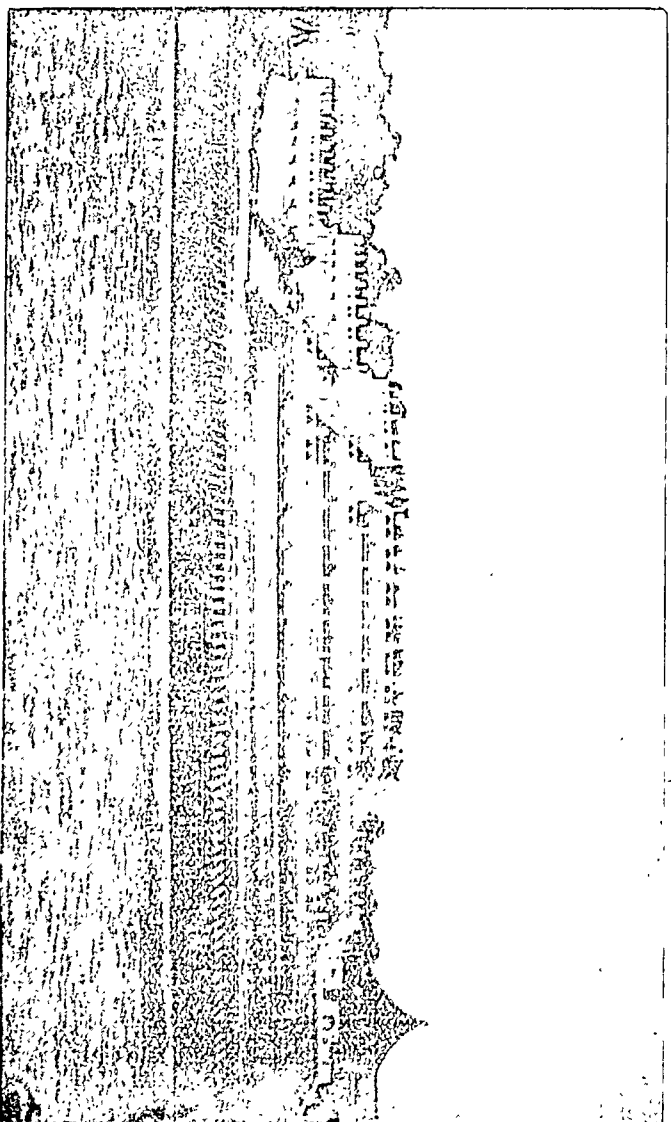
विश्वकर्माकी वेदी (पृष्ठ ३६६)

हाटमन गेट मारकेट [हाटमनबाजार] (पृष्ठ: ३६८)

हो गया। अब इनका नाम भी संसारमें कोई नहीं लेता। जहाँ जाते हैं वहीं लात मिलती है। लेकिन तब भी ये अपने पुराने गौरवमें मस्त हैं। रहें मस्त, संसारको इससे क्या, वह तो आगे बढ़ता ही जायगा। जो स्वयं मरना चाहता हो उसको जिलानेकी उसे फुरसत नहीं है। उसे अपना ही झंझट क्या कम है जो दूसरोंका सौदा मोल लेता फिरे? नुकसान तो अपना ही है।

सारांश यह कि अब संसारमें जो प्रचलित धर्म है वही उपासनाके योग्य है, दूसरा नहीं। आधुनिक धर्म मसजिदों, कलीसों और मन्दिरोंमें बन्द नहीं है, वरन् बैंकों, कोठियों तथा विज्ञान-शालाओंमें आज दिन विराट् भगवान्की पूजा होती है।

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा।
तासु दुगुन कपि रूप दिखावा॥

इस चौपाईकी भाँति मनुष्य जैसे जैसे मानसिक जगत्की वृद्धि करता जाता है उसी प्रकार ईश्वरके विराट् रूपका भी आकार बढ़ता जाता है। वह अब कावेकी दीवार लांघ गया। उसके रखनेको भारतके चारों धाम और सातों पुरियाँ यथेष्ट नहीं हैं। त्रिविक्रमकी विराट् मूर्तिकी भांति वह त्रिभुवन-व्यापी हो रहा है। ऐसी अवस्थामें क्षुद्रतासे निकल कर हमें भी इस विराट् मूर्तिकी आरती उतारनी चाहिये। "गगन मय थाल रविचन्द्र दीपक जलै" ऐसी आरतीका आयोजन करना चाहिये।

मुसलमान—पाड़ा।

हम दो घण्टे चलकर मुसलमान पाड़ेमें पहुंचे। यहाँ बहुतसे मुसलमान भाइयोंके घरपर अरबी अक्षरोंमें कुछ लिखा देखा, पर उसे पढ़ न सके। यहाँ हम एक विशाल मसजिदमें गये तो बहुतसे लड़कों, जवानों और बूढ़ोंने हमें घेर लिया। मसजिदमें कोई विशेषता न थी। उसे पहिचानना भी कठिन था। केवल अरबीमें कूफी अक्षरोंमें यहाँ "बिसमिल्लाह" और "लाइलाह" इत्यादि मुसलमानी कलमे लिखे थे। चीनी लोग उन्हें पढ़ तो सकते हैं मगर अर्थ नहीं बता सकते। एक बूढ़े मुसलमान भाईके माथेपर सिज़देका घट्टा देख हमने उनका नाम पूछा तो उन्होंने "मसऊद" बताया और एक लड़कीका नाम "फातमा" बताया। किन्तु इनके ये नाम प्रचलित नहीं हैं। प्रचलित नाम चीनी हैं। प्रत्येक व्यक्तिके दो नाम होते हैं, जिनमें एक नाम चीनी है और दूसरा मुसलमानी।

छठवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

चीनमें पञ्चम दिन ।

पेकिंगके मन्दिर ।

आज हम ब्रह्मांड मन्दिर देखने चले। चीनी भाषामें इसे (टीयनटान) कहते हैं। योर-अमरीका वाले इसे स्वर्ग मन्दिर (दि टेम्पुल आफ हेव्हन) के नामसे पुकारते हैं। हमने इसे ब्रह्माण्ड मन्दिर इसलिये कहा कि वास्तवमें यहाँ विश्वकर्माके विराट् रूपकी पूजा प्रकृतिके नाना पदार्थों जैसे पृथ्वी, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागण इत्यादिकी पूजा द्वारा ही होती थी। चीनी नगरकी दीवार-के बाहर दक्षिण फाटकसे निकलते ही थोड़ी दूरपर बाईं ओर यह मन्दिर अवस्थित है। मन्दिर एक बड़े अहातेमें है जिसके चारों ओरकी दीवार कोई तीन मील लम्बी है। यह मिंग वंशके यंगलू राजाके राज्यकाल (१४७७ विक्रम) में बना था। इस समय यह चीनकी अन्य बहुतसी इमारतोंकी भाँति बड़ी ही बुरी अवस्थामें है। सारा अहाता जंगली पौधोंकी बाढ़से भरा पड़ा है। इस अहातेके भीतर कई बड़ी बड़ी अत्यन्त सुन्दर संगमर्मरकी वेदियाँ बनी हैं। एक वेदीके ऊपर तेहरा गोल भवन बड़ा ही सुन्दर बना है। इसकी छतें छातेकी भाँति देखनेमें बड़ी ही सुन्दर लगती हैं। छतपरके खपड़े गाढ़े नीले रंगके हैं। इनका रंग शरद् ऋतुके आकाशका सा देख पड़ता है। इस रंगके खपड़े चीनमें अन्यत्र नहीं देख पड़े। टियन-टान नामी यहां-की प्रधान वेदीपर कोई मण्डप नहीं है। यह भी संगमर्मरकी ही तिमञ्जिली बनी है। पहिली मञ्जिल २१० फुट चौड़ी, ५ फुट ऊंची है। दूसरी मञ्जिल १५० फुट चौड़ी और ५ फुट ऊंची है। ऊपरका चबूतरा ९० फुट लम्बा, ५ फुट चौड़ा है। इस-पर संगमर्मरका फर्श है जो ९ वृत्तोंमें बंटा है। पहिला मण्डल एक गोल पत्थरका है, उसके बाहरका मण्डल ९ पत्थरोंकी पटियोंसे बना है। उसके बाहर वाले वृत्तमें १८ पत्थर हैं। सबसे बाहर वालेमें ८१ पत्थरकी पटियां हैं। जब यहां वार्षिक पूजा होती थी या दुर्भिक्ष अथवा किसी अन्य विपत्तिके समय यहाँ प्रार्थना की जाती थी तो स्वयं नृपतिको प्रार्थना करनेके लिये यहां आना पड़ता था। नृपतिके साथ राज्यके बड़े बड़े कर्मचारीगण और नगरके प्रधान लोग भी उपस्थित होते थे। वेदीपर एक नील वर्णका वितान ताना जाता था। यहाँ एक और भवन है जिसका नाम "चाई-कङ्ग" है। यह राजाके रहनेकी जगह है। राजा यहाँ आकर स्नान करते थे, नये पवित्र वस्त्र धारण करते थे व तीन दिन निराहार रहकर काया शुद्ध करनेके उपरान्त विश्वकर्म्माकी पूजाके निमित्त वेदीपर उपस्थित होते थे। विश्वकर्माका चीनी नाम "सांग-री" है। राजा पृथ्वीपर ईश्वरके प्रतिनिधिके रूपमें हैं, इस कारण राजाको ही प्रधान उपासना करनी होती थी, बीचके गोल पत्थरपर राजा स्वयं खड़े होते थे।

ब्रह्मांड मंदिरका फाटक

(पृष्ठ ३६६)
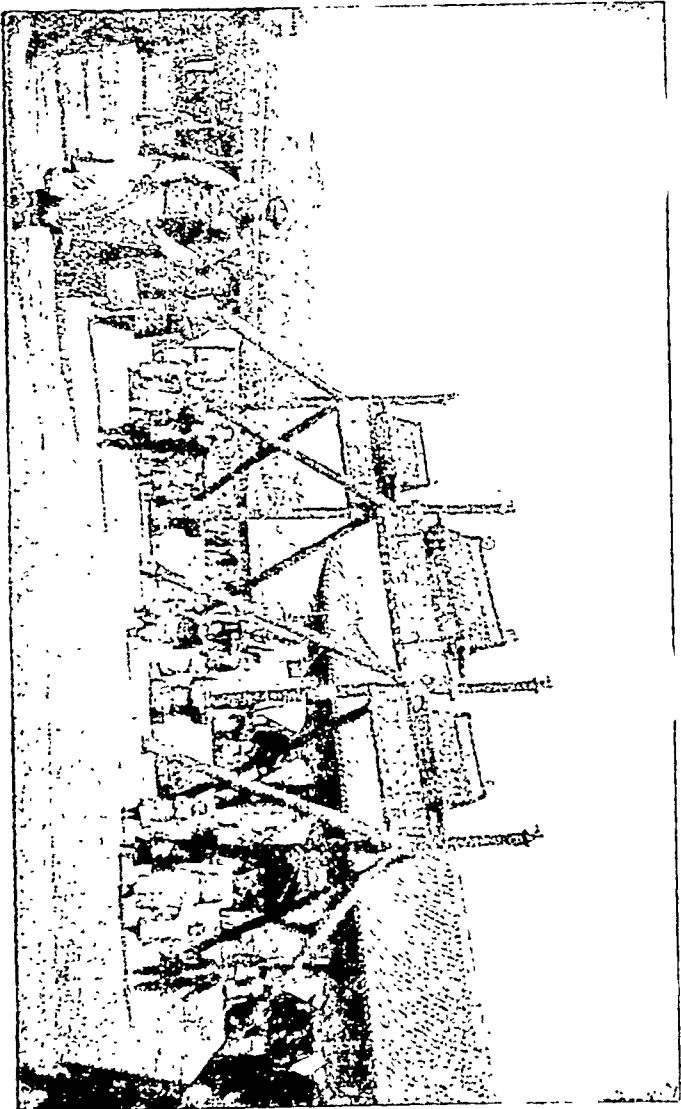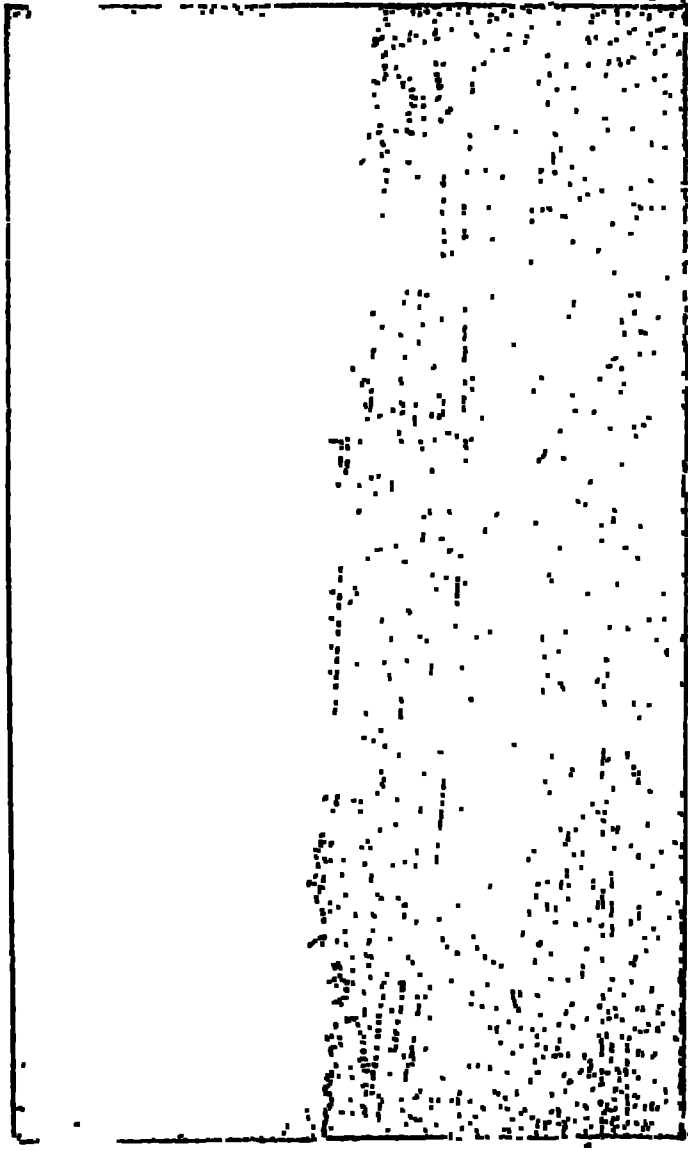
मझायड मंदिरकी गोल भवन युक्त वेदी (पृष्ठ ३६६)

बाहरके ९ पत्थरोंपर राज्यके प्रधान सचिव, उसके बाहरके १८ पत्थरोंपर चीनके १८ प्रान्तोंके अधिष्ठाता व उसके बाद क्रमसे नागरिक लोग अपने अपने पदके अनुसार खड़े होकर विश्वके कर्त्ता प्रधान विराट् पुरुषकी पूजा करते थे। जितने दिनों तक यहाँ पूजा होती थी राजा बराबर हविषान्न भोजन करते थे और अन्य लोगोंको भी निरामिष भोजन ही करना पड़ता था। इस मन्दिरको देखनेसे चीनके ऊंचे विचारका पता सहज ही चल जाता है। विश्व और जगत्के कर्त्ताके विषयमें उनका क्या विचार था इसका भी उससे कुछ कुछ पता चलता है। यह विश्वपूजा प्रजातन्त्र स्थापित होनेके समयसे बन्द है। पर "युआन-शि-काई" प्रजातन्त्रके अधिष्ठाताने इस पूजाको फिरसे, एक वर्ष हुआ, जारी किया है।

यहाँसे हम कृषि-मन्दिरमें गये। इसे चीनीमें "सेन-नंग-तान" कहते हैं। यहाँ भी चारों ओर दीवारें हैं। यहाँ कृषिदेवके उपासनार्थ एक वेदी भी बनी है। उसके साथ साथ आकाश और पृथ्वीके अन्य अधिष्ठाता देवताओंकी वेदियाँ बनी हैं। यहाँ आज कल एक प्रदर्शनी होने वाली है, उसके लिये विशेष प्रबन्ध किया जा रहा है।

थोड़े दिनोंसे चीन और जापानमें जो विशेष वैमनस्य फैला हुआ है उसके सम्बन्धमें चीनियोंने जापानके प्रति पूर्ण बहिष्कारका व्रत धारण किया है। हमको एक व्यापारी "टनाका" महाशयने ओसाकामें बताया था कि इस बहिष्कारके कारण जापानी व्यापारको बड़ा धक्का पहुंचा है। इसी बहिष्कारको पुष्ट करनेके लिये यह प्रदर्शनी हो रही है। यहाँपर जापानी वस्तुएँ और उन्हींके मुकाबिलेकी स्वदेशी वस्तुएँ प्रदर्शित होंगी जिससे जनताको अपने देशके बने पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान हो जाय।

यहाँ पासही एक बाजार सा लगा था जिसमें तमाशे भी हो रहे थे, हज़ारों नर-नारियोंकी यहाँ भीड़भाड़ थी।

धर्म्म मन्दिर।

यहाँसे होकर हम आगे चले। दो तीन मील जानेके उपरान्त पश्चिमी दर्वाजेके निकट हम "ताओ" धर्मके प्रधान मन्दिरमें पहुंचे। इसका नाम "पाई-युन-कुआन" है। यहाँ एक सुन्दर उद्यान है। प्रधान मन्दिरमें "च्यु-चेन-जेन" की दो मूर्तियाँ हैं। यहाँके पुजारी लम्बे बाल रखते हैं जिन्हें बटकर वे माथेके ऊपर बाँधते हैं। देखनेमें ये सिक्ख भाइयोंकी भाँति देख पड़ते हैं। ये मूर्तियाँ खूब रंगी हुई हैं और शिल्पकलाकी उत्कृष्टता प्रकट करती हैं। ये इस धर्मके प्रवर्तककी मूर्तियाँ समझी जाती हैं। इन मूर्तियोंके दर्शन प्रतिदिन नहीं हो सकते। इनके दर्शन वर्षके प्रथम मासके प्रथम १९ दिनोंमें ही किये जा सकते हैं। अयोध्याजीमें त्रेताके मन्दिरमें भी इसी भाँति प्रतिदिन दर्शन नहीं मिलते, केवल एकादशीको ही रात्रिमें दर्शन मिल सकते हैं।

यहाँसे हम रास्तेमें "तेन-निङ्ग-सू" भी देखने गये। यह बड़ा प्राचीन बुद्ध मन्दिर है। यह "सूई" वंशके राजत्वकालके समय (६४६-६७४ विक्रम) बना

था । यहाँ अब सिवाय एक १३ मञ्ज़िले स्तूपके और कुछ भी बाकी नहीं है । सब स्थान भग्नावस्थामें है । यह स्तूप अष्टभुज है और ईंट-चूनेसे बना है । इसपर बड़ी उत्तम मूर्तियाँ बनी हैं । मिट्टीकी मूर्तियाँ बनवाकर उनपर पलस्तर किया गया था । अब बहुत जगहोंका पलस्तर गिर गया है । नीचे पत्थरका काम भी है । इस मन्दिरमें ३०० बौद्ध पुरोहित निवास करते हैं । चार पाँच बड़े बड़े कुत्ते भी यहाँ थे । वे देखकर बहुत भूंके ।

यहाँसे जिस राह होकर हम लौटे वह बड़ी खराब थी । दुर्गन्धिके कारण नाक फटी जाती थी और जगह जगह पानी जमा था ।

———

पृथिवी प्रदक्षिणा

'तेन-निंग-सू' बुद्ध मन्दिरका तेरह मंजिला स्तूप (पृष्ठ ३६८)

हँगकाऊके मजदूर (पृ ३७९.)
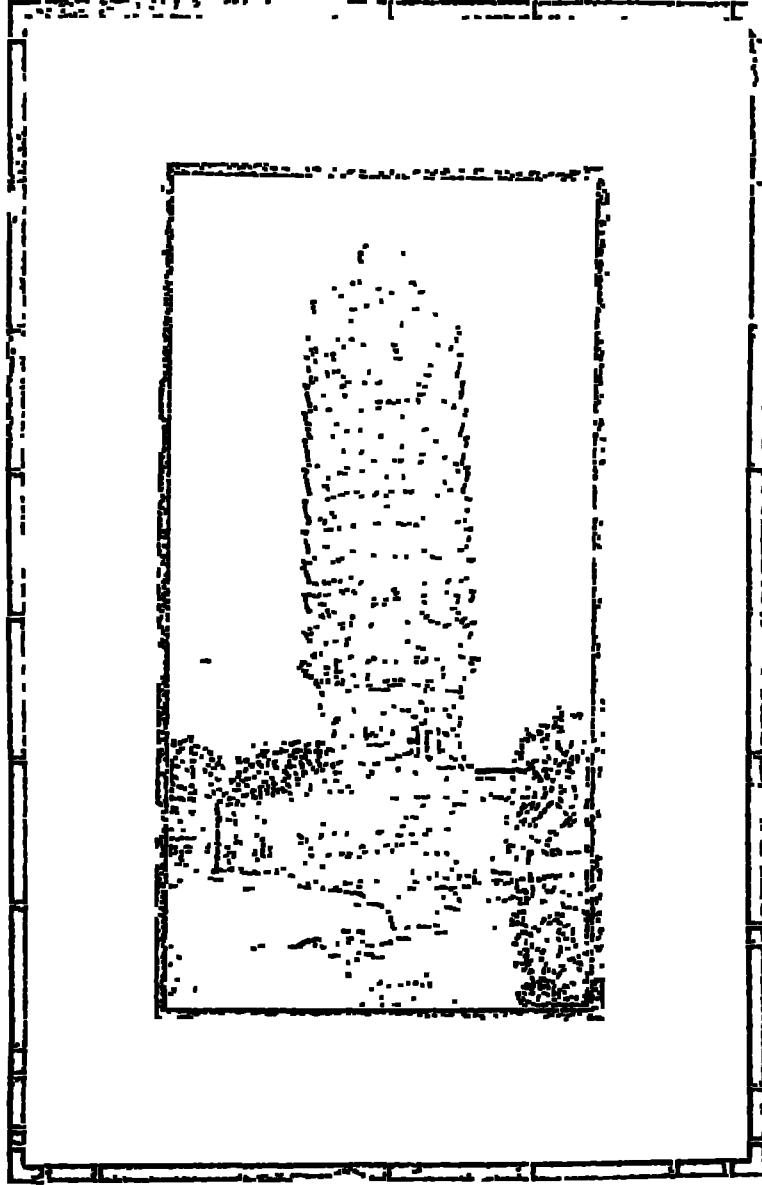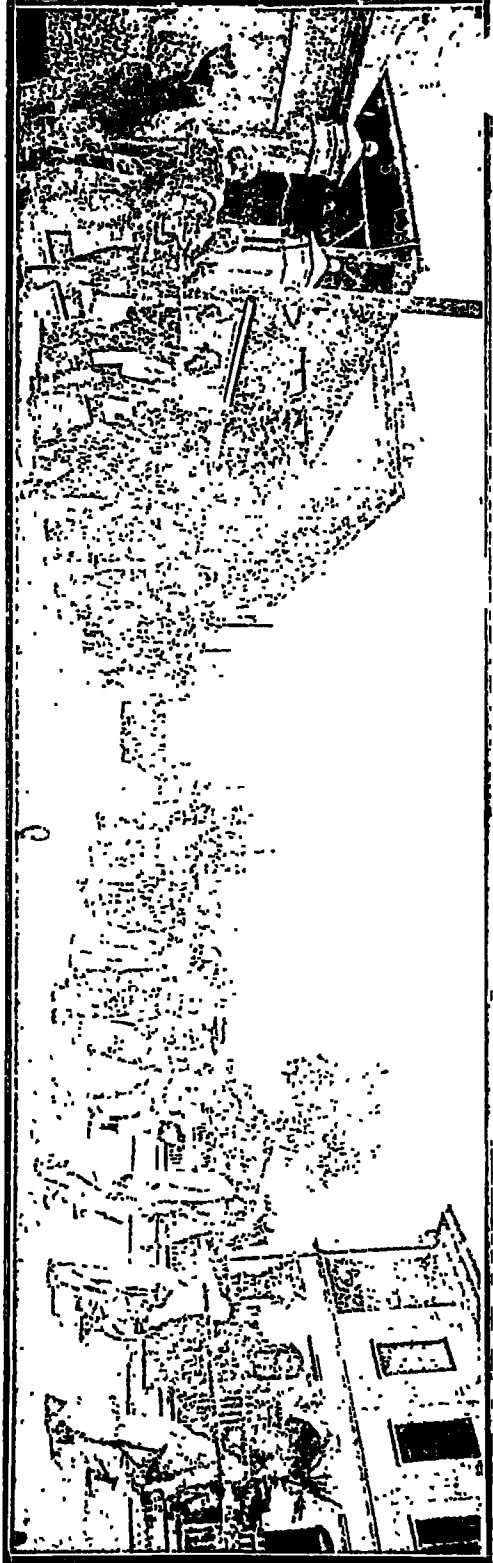
सातवाँ परिच्छेद।

-:०:—

चीनकी दीवार।

पृथ्वीका दूसरा अद्भुत पदार्थ।

अब हम संसारके दूसरे अद्भुत पदार्थको देखने चले। गत वर्ष मिश्रमें सूचिकाकार स्तूप (पिरामिड) देखा था। आज चीनकी प्रसिद्ध दीवार देखने चले। यूनानियोंने अपनी पुस्तकोंमें संसारके सात अद्भुत पदार्थोंका वर्णन किया है। उन सात पदार्थोंमेंसे छः तो यूनानके आसपास ही अर्थात् मिश्र, वेबिलोनिया, दर्रे दानियाल और यूनानमें ही हैं, शेष एक यही चीनी दीवार है। उस समयके पर्यटकोंको जिन जिन वस्तुओंको देखनेका अवसर मिला उनका उनका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तकोंमें कर दिया। उसके बाद संसारमें कितनी ही अन्य अद्भुत चीजोंका पता चला है, कितनी ही नयी अद्भुत चीजें बनी हैं पर वे आजकल संसारके अद्भुत पदार्थोंमें नहीं गिनी जातीं। संसारके अद्भुत पदार्थोंका नाम लेनेसे उन्हीं यूनानियोंके उक्त सात पदार्थोंका ही बोध होता है।

मध्य अमरीकाके युकाटान प्रान्तमें जिन प्राचीन इमारतोंका अब पता चला है व अधिकाधिक प्रतिदिन चल रहा है, वे कम आश्चर्यकी वस्तुएँ नहीं हैं। आधुनिक युगमें तो प्रतिदिन ही एकके बाद दूसरी पूर्वसे बढ़चढ़ कर अद्भुत वस्तुएँ बन बिगड़ रही हैं।

आज जिस अद्भुत पदार्थके देखनेके लिए हमने प्रस्थान किया उसका हाल प्रथम प्रथम अपने मौलवी साहब (मीर यादअली साहब मरहूम) से बाल्यावस्थामें सादीकी बोस्ताँ पढ़ते हुए मिला था। बोस्ताँके दीबाचेमें एक जगह याजूज़ माजूज़का ज़िक्र आया है, वहीं यह कहानी सुनायी गयी थी।

मौलवी लोग यह कहानी इस भाँति बताते हैं कि किसी समय याजूज़ माजूज़ नामी दो जिन्न या देव अपनी सेनाके साथ आकर चीनियोंको सताते थे। इनसे बचनेके लिये चीनी पैग़म्बरने राजासे कहकर एक दीवार बनवायी जिसमें यह शक्ति थी कि ये देवता उसे लाँघ नहीं सकते थे तथा दिनमें तो उसके निकट भी नहीं आ सकते थे। रात्रिमें ये जीभसे चाट चाट कर इस दीवारमें छेद करनेकी चेष्टा करते थे, रात्रिभरके चाटनेसे जो छेद दीवारमें हो जाते थे वे आर पार नहीं होते थे। दिन होते ही शापके कारण ये वहाँसे भाग जाते थे। दिनमें रात्रिका किया हुआ छेद आपसे आप भर जाता था। रात्रिमें उन्हें पुनः छेद प्रारम्भ करना पड़ता था। अतः छेदके कभी होनेकी सम्भावना न थी। इस तरह चीनी लोग इस विपत्तिसे बच गये।

वास्तवमें इसका इतिहास इस प्रकार है—१९८-१५० वि० पू० में चीनमें 'सिन' वंशका राज्य था। इस वंशके राजाओंने ऐसे अनेक कार्य किये हैं जिनसे उन राजाओं और उनके सलाह देने वालोंकी क्षुद्र बुद्धिका पता चलता है, यथा—(१) प्रजासे हथियार छीन लेना, (२) अपनी मनमानी बातोंका प्रचार करनेके लिये प्राचीन पुस्तकोंको जलाकर भस्म करना, (३) 'कनफ्युशन' पण्डितोंको प्राणदण्ड देना, व (४)

मंगोलोंके हमलोंसे देशको बचानेके लिये दो हज़ार मील लम्बी दीवार बनवाना इत्यादि। यह राज्य बहुत दिनों तक नहीं चल सका। इसकी आयु कुल ४२ वर्ष ही रही।

इस दीवारके बननेके बादसे अबतक कई बार इसकी मरम्मत भी हुई है। इससे इसका पता चलना बड़ा कठिन है कि पुरानी दीवार कौन है व नयी कौन है।

किन्तु यह दीवार संसारमें अबतक जाने हुए पदार्थोंमें सबसे अद्‌भुद पदार्थ है, इसमें सन्देह नहीं। इसे देखकर मनुष्यकी बुद्धि चकित हो जाती है। पहाड़की ऐसी चोटियोंपरसे होकर यह गुजरी है जहाँ चढ़ना भी दुस्तर है, फिर सामान ले-जाना तो और भी मुश्किल हुआ होगा। सबसे मुश्किल बात, जो समझमें नहीं आती, यह है कि यह दीवार पहाड़पर अधिकतासे मिलने वाले पत्थरोंकी नहीं वरन् पकायी हुई ईंटोंकी बनी है। दो हजार मील लम्बी दीवारके लिये इतनी ईंटें कहाँसे आयीं? पहाड़ोंपर मसाला सानने के लिये जल कहाँसे आया? ये समस्यायें बड़ी ही जटिल हैं। सबसे बढ़कर जटिलता तो यह है कि जिन्हें इतनी बड़ी दीवार बनानेकी सामर्थ्य थी, क्या उनमें बड़ी सेना तैयार कर अपने शत्रुओंको परास्त करनेकी शक्ति नहीं थी? यदि नहीं थी तो शत्रुओंने दीवार बनानेमें बाधा क्यों न डाली? फिर तीन साढ़े तीन गज़ ऊँची दीवार उन्हें फाँदकर आनेमें किस भाँति रोक सकी? ये जटिल समस्याएँ विना चीनी इतिहास व चीनी ग्रन्थोंको भली भाँति पढ़े हल नहीं हो सकतीं। यह समस्या उतनी ही टेढ़ी है जितनी सागरपर श्रीरामचन्द्रके सेतु बनानेकी है, क्योंकि जो व्यक्ति १०० योजन लम्बे समुद्रमें सेतु बना सकता है वह हज़ार, पाँच सौ जहाज बनाकर क्या अपनी सेनाको उस पार नहीं ले जा सकता था!

भारतवर्षमें यह विश्वास है कि रास्तेमें यदि मृत पुरुषकी रथो मिले तो यह बड़ा उत्तम शकुन है। आज जब हम होटलसे निकलकर चीनी दीवार देखनेके लिये रेलघर जा रहे थे तो राहमें एक मुर्देकी बरात मिली। यह बरात भारतवर्षमें

चीनमें मुर्देकी बरातका दृश्य।

चीनी स्त्रियां (पृष्ठ ३६१)

चीनकी दीवार

(पृष्ठ ३७१)

पछाहीं क्षत्री भाइयोंके "हाँसा तमासा"से भी कहीं बढ़कर थी। इसके संगमें बहुत उत्तम फुलवारी थी व सारा सामान बरातका सा था। शव एक उत्तम ताबूतमें बन्द एक चीनी पालकीके भीतर रक्खा था जिसे लोग कन्धोंपर उठाये हुए थे। सुना है ऐसी बरात यहाँ बहुत निकलती है।

रेलोंका विवरण।

अब हम स्टेशन पहुंच गये। हम अन्यत्र कहीं लिख आये हैं कि चीनमें रेलें प्रायः विदेशी धनी व्यवसायियोंकी ही बनवायी हुई हैं और वे ही उन्हें चलाते भी हैं। पर प्रसन्नतासे कहना पड़ता है कि यह रेल-सड़क चीनियोंकी ही है। इसमें लगा हुआ धन सब चीनियोंका है। इसका प्रबन्ध भी चीनियोंके हाथोंमें है, शिल्पी व यन्त्र-शास्त्री भी चीनी ही हैं। 'चान-टीन-यु' महाशय अमरीकाके येल विश्वविद्यालयके एक स्नातक हैं। आपने ही इस सड़कका प्रथम प्रथम विचार किया और सब नकशे इत्यादिका काम भी आपकी ही अध्यक्षतामें हुआ। इस सड़कका नाम 'पीकिंग-कालगन-सुई युआन' रेलवे है। यह १९६२ में प्रारम्भ हुई व १९६६ में समाप्त हो गयी। इसके निर्माणमें प्रायः ९० लाख 'टेल' (चीनी सिक्के) लगे हैं। यह १८० मील लम्बी है। इसी प्रबन्धमें २७६ मील रेल-सड़क और बन रही थी जो १९७५ में पूर्ण होने वाली थी। उसका व्यय चीनी सिक्कोंमें प्रायः डेढ़ करोड़से अधिक अनुमान किया गया था।

अब हम रेलपर चढ़कर रवाना हुए। गर्मी बड़ी भीषण थी। भोजनका सामान साथमें था। आधी राह तय हो जानेके उपरान्त गाड़ी विकट पहाड़ी रास्तों-से जाने लगी, कहीं सुरंगोंके भीतरसे, कहीं पुलोंपरसे, कहीं पहाड़के दामनमेंसे होकर चली जा रही थी। थोड़ी दूर और आगे जानेसे पहाड़पर पुरानी दीवार दिखायी देने लगी। अब हम 'चिंग-लांग-चिआओ' रेल-घरपर पहुंचे। यह रेल-घर अन्तिम स्थान है जहाँतक अभी रेलकी सड़क तैयार हो गयी है। हम अपना थोड़ा बहुत असबाब यहाँ छोड़ दीवार देखने चले। हमारे चीनी पथ-प्रदर्शक महाशयने हमारा सब असबाब 'नैनकाउ' रेलघरपर छोड़ दिया था जहाँ आज रात्रिमें विश्राम करना था। वे हमारी तस्वीर उतारनेकी फिल्म* भी वहाँ छोड़ आये थे जिससे यहाँ अधिक तस्वीरें लेनेका मौका न मिला।

रेलघरसे कोई मील भर चलकर हम एक पहाड़ीपर आ गये और हमने अपने-को विख्यात चीनी दीवारके ऊपर पाया। यहाँसे उत्तर-पश्चिमकी ओर मंगोलियाका विस्तृत मैदान देख पड़ा। दूर्बीनसे देखनेपर बहुत दूर तक मैदान ही मैदान देख पड़ता है। यहाँपर दीवार दोहरी, दुर्गके सदृश बनी है। थोड़ी थोड़ी दूरपर अर्थात् एक एक 'ली'† पर छोटे छोटे मीनार बने हैं, जहाँपर पहरेदारोंके रहनेकी जगह है।

---

* यह एक प्रकारके अबरकके सदृश वस्तुकी बनी होती है जिसपर रासायनिक पदार्थ लगे होते हैं। इनका नाम सोल्यूलोआइड है। यह गनकाटन, जो एक प्रकारकी बारूदके सदृश वस्तु है, व कपूरके मेलसे तैयार होती है। इसके बनानेकी क्रिया गुप्त है।

† ली, चीनी दूरीका माप है, ३ ली = एक माइल।

सारी दीवार यहाँ दुर्गम पहाड़ोंपर होकर बनी है। दीवारमें ऊपर कंगूरे हैं जिनमें मार कटीही है। देखनेसे दिल्लीकी शहरपनाहसी देख पड़ती है। घण्टों यहाँ बैठे इधर उधरका दृश्य देखते रहे, अनन्तर नीचे उतर रेलघरपर आ गये। यहाँसे नैनकाऊ लौटनेके लिये नियमित गाड़ी नहीं है। प्रायः यात्री लोग मज़दूरोंकी गाड़ीपर लौटते हैं, जो संध्या समय उन्हें कामपरसे घर पहुंचाती है। अभी इसमें दो घण्टेकी देर थी इससे हमें यह समय यहीं बिताना था। थोड़ी देरमें यहाँ एक अमरीकन महाशय भी आ गये। ये हमसे एक दिन पूर्व पीकिंगसे यहाँ आये थे। नैनकाऊसे यहाँ ये खच्चरपर चढ़कर आये थे। इन्होंने राहमें एक फाटकका पता बताया जिसका नाम 'चू यंग-कुमान' है। इसपर बुद्धकी मूर्तियाँ एवं संस्कृत भाषामें लेख खुदे हैं। हमें उसके न देखनेका बड़ा दुःख हुआ। सुना कि यह संगमर्मरका बना है और शायद इसे भारतीय कारीगरोंने बनाया है।

एक तो रेलकी यात्रा, दूसरे पहाड़की चढ़ाई-उतराई व पैदल चलना, तीसरे विदेशी भोजन जो एक समय अधिक नहीं खाया जाता, सारांश यह कि इन सब बातोंसे हमें अत्यन्त भूख लग गयी। साथका भोजन नैनकाऊमें छूट गया था, इससे बड़ा कष्ट हुआ, नैनकाऊमें आनेपर भोजन करनेके बाद होश ठिकाने हुए। यहाँ भोजन बड़ा ही उत्तम मिला, रस्सेदार भाजी रोटी व चावल। स्वदेशका भोजन होनेके कारण नियमित परिमाणसे अधिक खानेमें आया।

ग्रीष्म-महल (पृष्ठ ३६२)
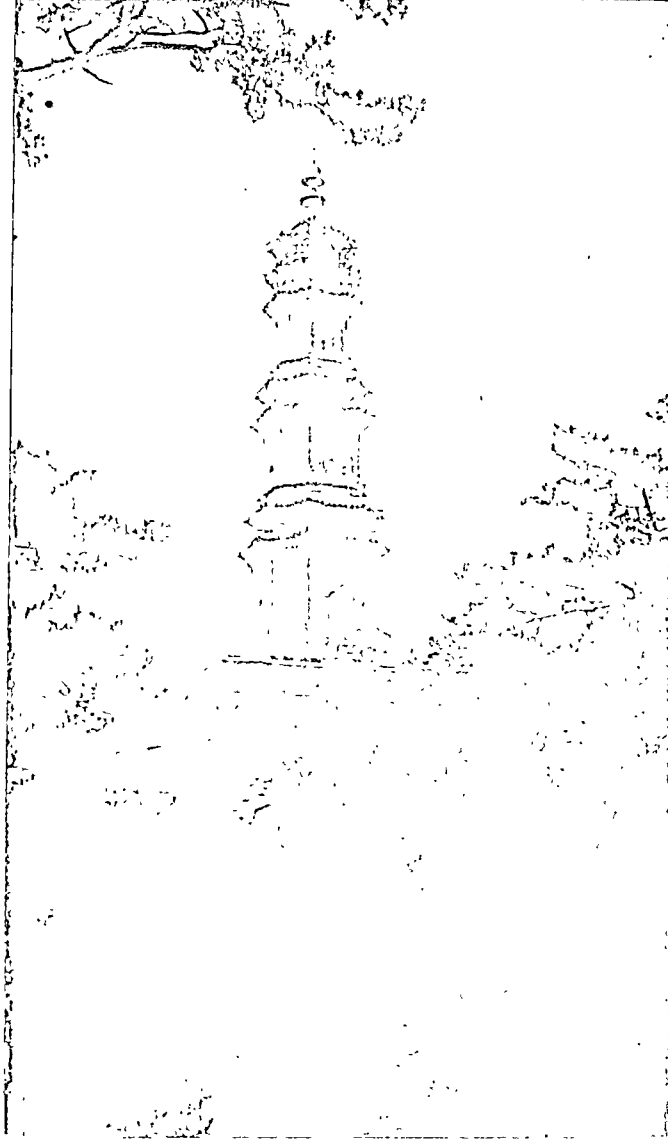
ग्रीष्म महल का स्तूप (पृष्ठ ३६२)

आठवाँ परिच्छेद।

—:o:—

मिंग वंशके राजाओंकी समाधि।

आज हम मिंग वंशके राजाओंकी समाधि देखने चले। चीनी लोग इन्हें स्वदेशी राजा समझते हैं। इस वंशके उपरान्त जो मञ्चू वंश १९६८ तक राज्य करता था वह विदेशी समझा जाता है। इसीसे प्रजातन्त्र स्थापित होनेके उपरान्त १९६८ में प्रथम राष्ट्रपति अध्यापक 'सन-यात सेन' ने यहाँ मिंग राजाकी समाधिपर आकर राजाओंकी आत्माको यह संदेशा सुनाया था कि देशसे विदेशियों का राज्य निकल गया। विदेशियोंके अधिकार एवं दासत्वसे चीनी मुक्त हो गये। जिन शब्दोंमें यह संदेशा सुनाया गया था, वे चीनी भाषामें हैं। उनका अंग्रेजी अनुवाद अध्यापक 'सन-यात-सेन' की
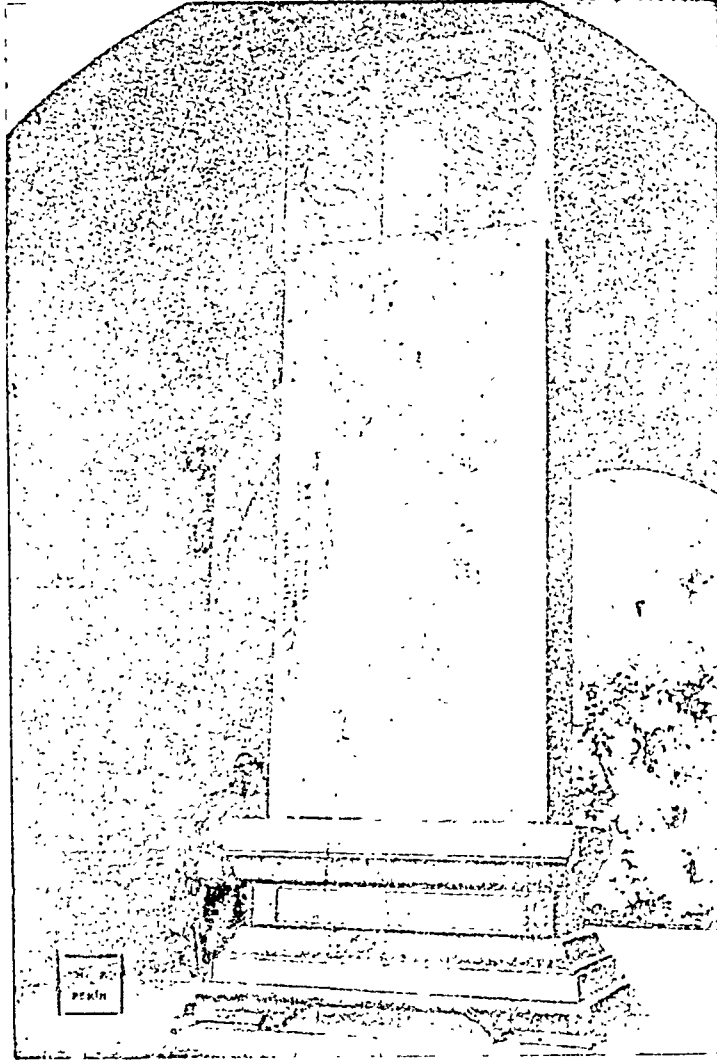
मिंगवंशके राजाकी समाधि।

जीवनीमें अंकित है। हमें खेद है कि हम इस समय उन शब्दोंको यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते किन्तु वे शब्द ऐसे ओजस्वी हैं कि सबको उनका पाठ करना चाहिये। उन शब्दोंमें विद्युत्‌की स्फूर्ति है और उनमें शवमें भी प्राण प्रवेश करानेकी शक्ति है।

नैनकाऊसे यह समाधि-स्थान प्रायः ११ मील दूर है। आने जानेमें प्रायः सात घण्टे लगते हैं। सवारी गदहों और चीनी झम्पानकी मिलती है। चीनी झम्पान जिसे यहाँ विदेशी लोग 'सीदान चेयर' कहते हैं बड़े आरामकी सवारी है। हमने भी इसीको लिया। मार्ग बड़ा ही मनोहर था। दोनों ओर लहलहाते खेत थे। बीचकी पगडण्डीसे हम चले जा रहे थे। खेतोंमें अधिकतर मक्का, ज्वार व टाँगुन बोयी हुई थी। कहीं कहीं तिलके खेत भी थे, एक आध जगह अण्डी भी देख पड़ी। ग्रामीण कहीं गदहोंकी जोड़ीसे टाँगुन दाँयँ रहे थे, कहीं खलिहानके लिये भूमि साफ़ कर लीपते थे। खेतोंमें स्त्रियाँ पक्षियोंको उड़ा रही थीं। कहीं कहीं धुआँ भी किया जा रहा था। सारांश यह कि दृश्य अत्यन्त मनोहर था। अब हम एक विशाल संगमर्मरके फाटकके पास आ गये। इसमें तीन दर हैं। खम्भोंपर बड़ी उत्तम नक्काशीका काम है। यहाँ भी चीनी अजदहोंकी ही अधिकता है। पर यहाँ नक्काशीमें व्याघ्रोंका युद्ध भी दिखाया गया है। पासमें ही एक काले पत्थरकी विशाल शिलापर कुछ लेख है। यहाँसे थाप भर चलनेके उपरान्त एक विशाल फाटक और मिलता है जो ईंट-पत्थरोंका बना हुआ है। इसके भीतर कूर्म-पृष्ठकी एक विशाल शिलापर लेख है। इसमें यहाँ आने वाले यात्रियोंको विगत नृपतियोंके सम्मानार्थ सवारी परसे उतरनेकी आज्ञा है, जिसका पालन अब कोई नहीं करता। यहाँसे आगे चलकर एक गरुड़ध्वजकी भाँति खम्भेपर 'जैत संग' राजाने अपने पूर्व पुरुष 'यंगलू' राजाको प्रशंसामें लेख लिखा है। यहाँसे आगे चलकर २४ पशुओं व १२ मनुष्योंकी पूरे कदकी संगमर्मरकी मूर्तियाँ हैं। ये बड़ी सुन्दर

२४ पशुओंकी मूर्त्तियां।

चीनी झम्पानकी सवारी
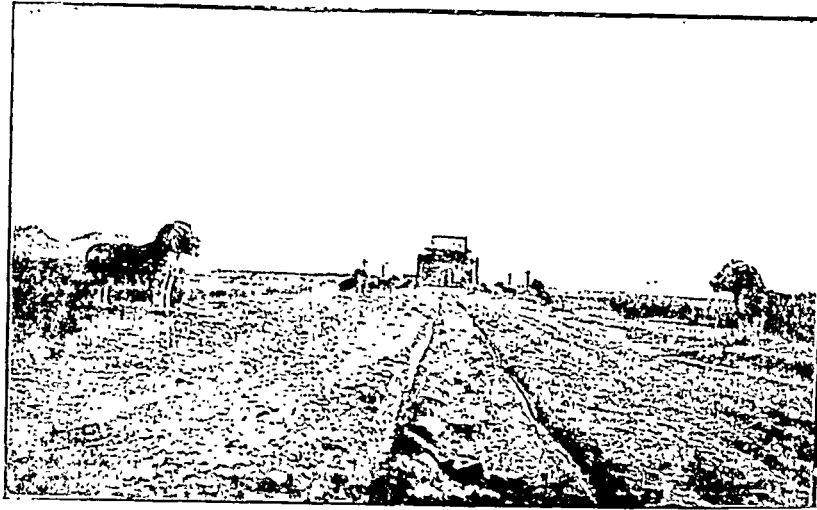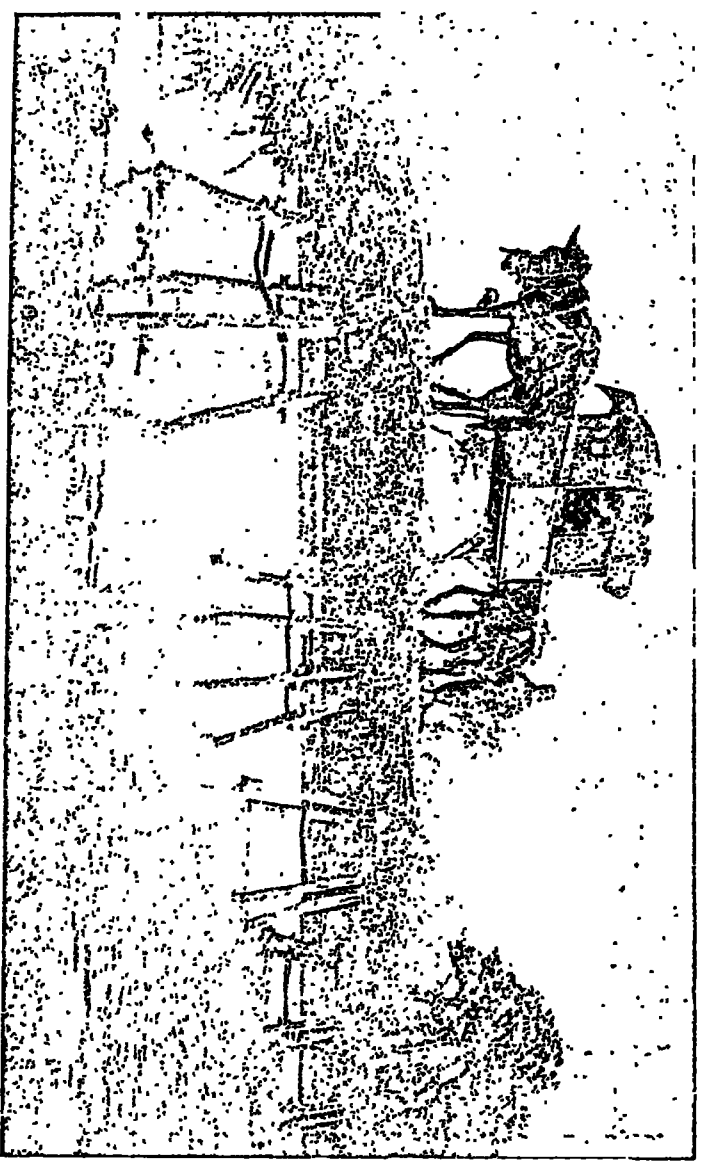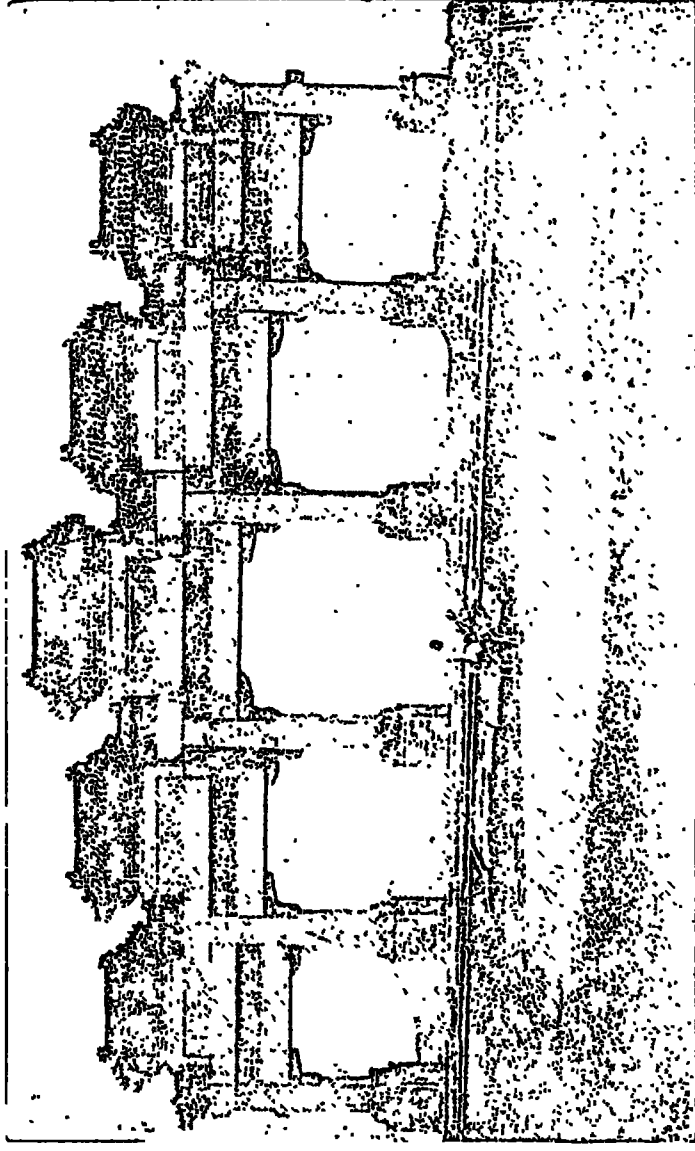
(पृष्ठ ३७४)

मिंगवंशकी समाधियां

(पृष्ठ ३७३)

बनी हैं। मूर्तियोंमें चार घोड़े हैं, चार जिराफके सदृश एक जन्तुकी मूर्तियाँ हैं, चार हाथी, चार ऊँट, चार व्याघ्र व चार सिंह हैं। पुरुषोंमें चार सचिवोंकी, चार प्रधान कर्मचारियोंकी व चार सैनिकोंकी हैं। ये मूर्तियाँ सड़कके दोनों ओर बनी हैं। पशुओंकी मूर्तियोंमें दो दो बैठी व दो दो खड़ी हैं।

दो दो बैठी व दो दो खड़ी मूर्तियां।

यंगलूकी समाधि

यहाँसे आगे चलकर हम यंगलू नृपतिकी प्रधान समाधिमें पहुंचे। यहाँ एक बड़े अहातेमें विशाल भवन बने हैं। बीचका भवन अत्यन्त सुन्दर है। उसके चारों ओरके संगमर्मरके तकियेपर अच्छा काम किया हुआ है। यहाँसे आगे बढ़नेपर एक संगमर्मरकी वेदीपर संगमर्मरकी कई धूपदानियाँ धरी हैं। इसके आगे २५, ३० गज़के सुरंगके रास्तेसे एक छतपर जाना होता है। छतके पीछे खुले मैदानमें मिट्टीके टीलेके नीचे नृपति 'यंगलू'का शव दबाया हुआ है। छत-पर एक विशाल शिलापर स्वर्णाक्षरोंमें लिखा है "चेंगसू चेन-हुआंग-टी" "उज्ज्वल तेजस्वी मिङ्गवंशकी समाधि"। यहीं पर १९६८ में अध्यापक 'सन'ने अपना संदेशा सुनाया था। यहाँसे हम भागेभागे नैनकाऊकी ओर लौटे। साथमें भोजन था किन्तु इस भयसे कि कहीं रेल छूट न जावे, हमने भोजन भी नहीं किया।

आते समय जिस राहसे हम आये थे उसमें तीन छोटे छोटे नाले वा पहाड़ी नदियाँ पार करनी पड़ी थीं। एकपर उत्तम पत्थरोंका सेतु भी बना था, किन्तु लौटती बार जिस राहसे हम गये उसमें सेतु नहीं मिला, नदियाँ यहाँ भी पार करनी पड़ीं। रास्तेमें कई ग्राम मिले। यहाँके ग्रामीण भी भारतवर्षको भाँति भोले भाले हैं। जल्दी जल्दी कर हम तीन बजेके पूर्व नैनकाऊमें आ गये। होटलसे जल्दी कर रेलघर आये और गाड़ीपर सवार हो गये किन्तु रेल छूटी पाँच बजे। दो घण्टे रेलपर ही बिताने पड़े। रेल छूटनेके उपरान्त विना किसी विशेष घटनाके हम पीकिंग लौट आये।

नवाँ परिच्छेद ।

—:o:—

विविध संग्रह ।

पवित्र व प्राचीन चीनी दीवारकी तथा मिंगवंशके राजाओंकी समाधिकी यात्रासे लौट पीकिंगमें हमने पाँच दिन और बिताये। समयका अधिकांश भाग 'बृहत्तर जापान'का समाचार लिखनेमें बीता किन्तु दिनमें एक बार अवश्य ही बाहर जाना होता था।

एक दिन हमने एक गलीसे आते समय एक चीनी बरात देखी। इसको बरात न कहकर सोहगी, तिलक वा हथपूरी कहना उचित होगा, किन्तु वह जा रही थी लड़कीके घरसे लड़के वालेके यहाँ। इसमें प्रायः वे सब वस्तुएँ थीं जो माता-पिता लड़कीको दहेजमें देते हैं। बरात बड़ी सुन्दर थी, बाजा गाजा सभी कुछ था। दहेजके सामानमें नाना प्रकारकी सामग्री थी—टेबुल, कुर्सी, आईने, पलंग, कपड़े लत्ते, आलमारी, उगालदान, जांता, चूल्हा, चक्की, बर्तन, भाँड़ा इत्यादि—सारांश यह कि गृहस्थीकी कोई वस्तु भी छूटी नहीं थी।

विवाह-पद्धति ।

यहाँ संक्षेपमें चीनी विवाहका भी हाल लिख देना अनुचित न होगा। चीनमें भी भारतवर्षकी भाँति विवाहका प्रबन्ध माता-पिताके हाथमें ही है। वर-वधूका इसमें कुछ दखल नहीं। विवाहकी बातचीत प्रायः रिश्तेदारों द्वारा प्रारम्भ होती है। दोनों खान्दानोंके राजी हो जानेपर लाल काग़ज़पर दोनों खान्दानोंकी तीन पुश्तोंका विवरण लिखकर एक दूसरेके यहाँ भेजा जाता है। काग़ज़के विनिमयके बाद दोनों खान्दान एक दूसरेकी वास्तविक स्थितिकी जाँच गुप्त रीतिसे प्रारम्भ कर देते हैं। एक ओर तो यह जाँच जारी रहती है, दूसरी ओर ज्योतिषी महाराज वर-कन्याके भविष्य सुख-दुःख, मेल-मिलापकी गणना करते हैं। सब ठीक ठाक हो जानेपर चोरी चोरी लड़के-लड़कीको एक दूसरेके माता-पिता देख आते हैं। जब दोनों ओरकी दिलजमई हो जाती है तो लड़के वाला लड़कीके लिये वस्त्र व शिरके आभूषण लड़कीके यहाँ भिजवाता है। इसके भेजनेसे विवाह पक्का हो जाता है। अब साइत, सुदिवस विचारा जाता है। उसके ठीक हो जानेपर एक दिन पूर्व नाते व रिश्तेके लोग घरमें आकर लड़के लड़कीको बधाई देते हैं। विवाहके दिन वरके घरसे पालकी जाती है। उसमें बैठकर श्वेत वस्त्र धारणकर वधू वरके घर आती है। इसी समय सब कुछ दहेजका सामान भी आता है। लड़की जैसे अपने पिताके घरको छोड़ बाहर निकलती है वैसे ही लड़का अपनी भावी ससुरालमें आ, सास ससुरसे मिल अपने घर लौट अपनी भावी संगिनीकी बाट जोहता है। लड़कीके यहाँ पहुंचनेपर लड़का लड़की दोनों स्वर्ग एवं पृथ्वीको नमस्कार कर मंडपमें आते हैं। यहाँ

ग्रीष्म महलमें संगमर्मरकी नौका (पृष्ठ ३६२)
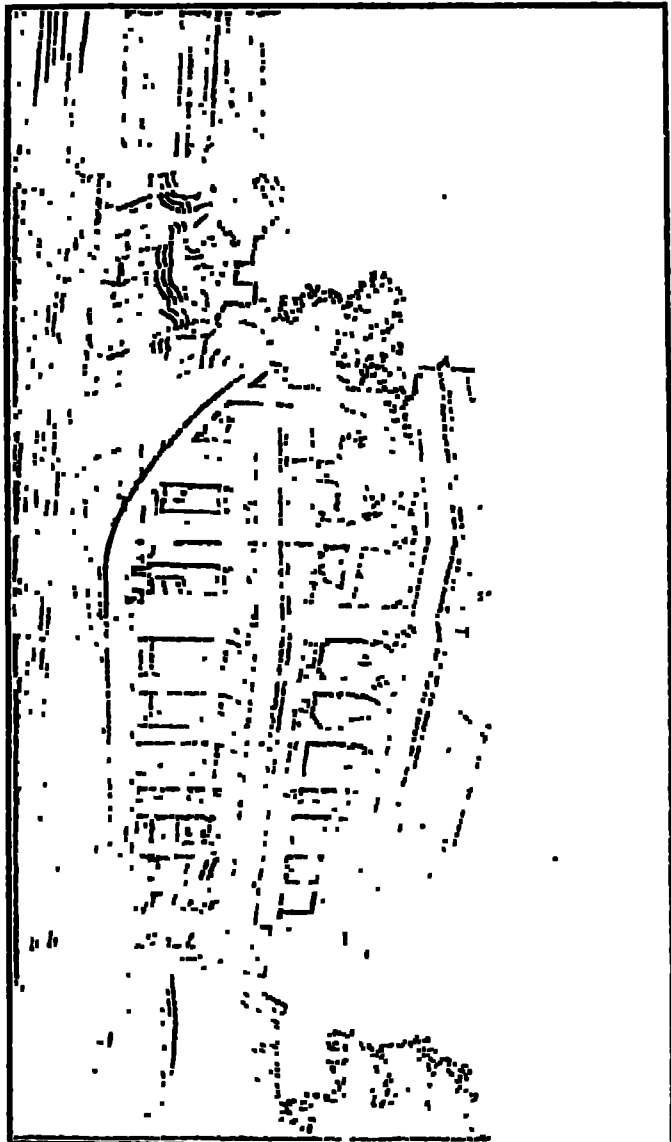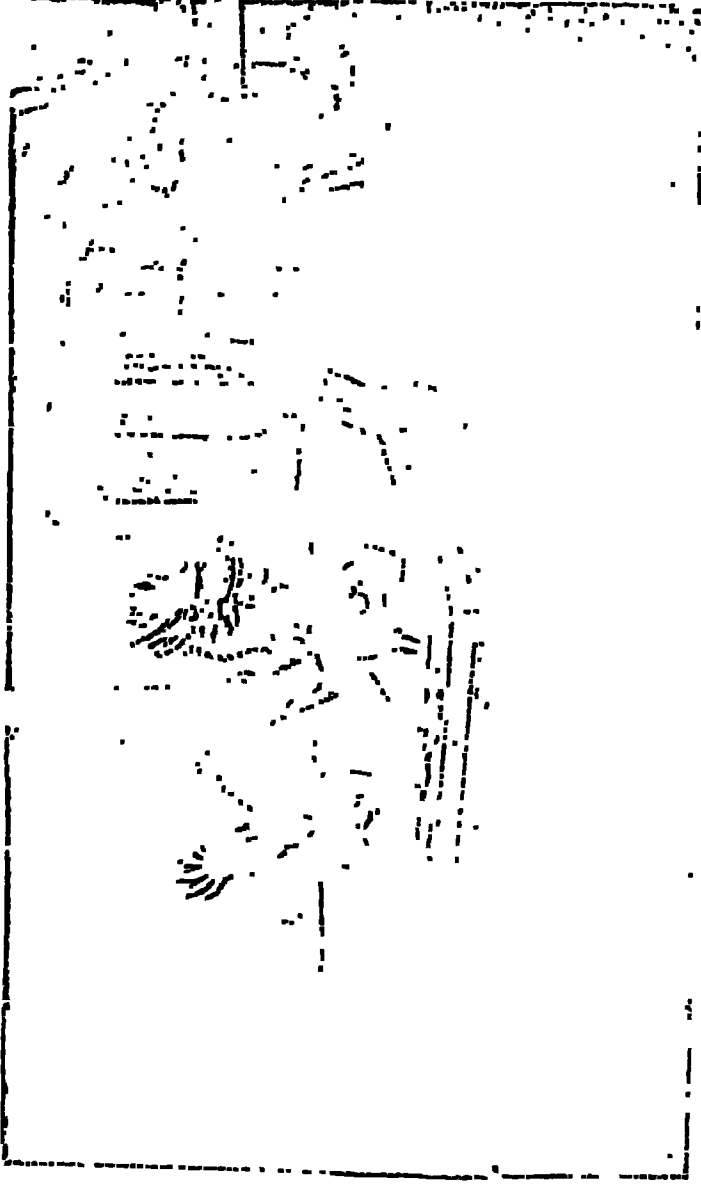
ग्रीष्म महलमें अजदहेकी मूर्त्ति (पृष्ठ ३६२)

लड़का लड़कीका घूँघट हटा उसका मुख प्रथम बार देखता है और दोनों एक दूसरेकी जूठी शराब एक ही पात्रसे पीते व एक प्रकारकी मिठाई खाते हैं। यह भारतवर्षकी मुखजुठावन (दही लड्डू अथवा दही गुड़) रस्मके सदृश है! इसके उपरान्त ये दोनों—अज्ञात बालक-बालिका वा पुरुष-स्त्री—पति-पत्नी बन जाते हैं। विवाहके दूसरे दिन वरके दर्वाज़ेपर एक प्रकारका वन्दनवार जिसे 'साई-चाऊ' कहते हैं लटकाया जाता है। यह कई रंगके वस्त्रोंको एकमें बाँधकर बनाया जाता है। यह इस बातकी गवाही है कि नव वर-वधूका आपसमें मिलाप हो गया और दोनोंने प्रसन्न चित्तसे पति-पत्नीका व्रत धारण कर लिया। इससे लड़कीवाले बड़े प्रसन्न हो जाते हैं व उनकी दुविधा मिट जाती है। पाँच छः दिनके उपरान्त लड़कीवालेके यहाँ जेवनार होती है। वर-वधू दोनों बुलाये जाते हैं, यहाँ वर अपने ससुरके सम्बन्धियों-से मिलता है। विवाहके आठ दिन बाद लड़कीवाले लड़केके घर जाते हैं। विवाहके अट्ठारहवें दिन वरपक्षके लोग वधूके घर जाते हैं। एक मासके बाद लड़की अपने मैके लौट आती है व कमसे कम आठ दिन व अधिकसे अधिक एक मास नैहरमें रहकर फिर अपने घर जाती है। इस द्विरागमनके उपरान्त विवाहका कार्य समाप्त हो जाता है।

यहाँ एक चीनी महाशयसे भेंट हुई। आपका नाम 'वू' महाशय है। आप एडिनबराके स्नातक हैं। किन्तु आपको नये चीनियोंसे बड़ी घृणा है। शिखाहीन चीनियोंको आप अराष्ट्रीय, अचीनी पुकारते हैं। आप आधुनिक राष्ट्रपद्धतिके बड़े विरोधी हैं और उसकी बड़ी तीव्र समालोचना करते हैं। इसके कारण आपको कष्ट भी उठाना पड़ा है। आप प्राचीन सभ्यताके बड़े भक्त हैं, किन्तु आपके से विचार वाले चीनमें विरले ही हैं। इससे आप मन ही मन कुढ़ कुढ़ कर घुला करते हैं।

आपको भविष्यत्में चीनके उत्थानकी आशा नहीं है। आपका कहना है कि जो आधुनिक चीनी, विदेशसे शिक्षा पाकर लौटे हैं वे चीनी सभ्यता और सभ्यताकी जड़, साहित्य,से इतने अनभिज्ञ हैं कि उन्हें चीनी कहना ही अनुचित है। आप जिस प्रका-रका सुधार चाहते हैं वह होना दुस्तर है। आपके विचारमें इसका परिणाम यह होने वाला है कि देशमें अराजकता व क्रान्ति फैल जायगी तथा देश विदेशियोंके हाथमें चला जायगा। आपके चित्तमें जो भाव उठते हैं, आपको जो सच्चा सन्ताप होता है, आप जिस भाँति कुढ़ कुढ़ कर घुलते हैं सो सब हम भारतवासी अनुभव कर सकते हैं। इसी बीचमें एक और चीनी सज्जनसे मिलनेका अवसर मिला। उनसे अधिक बातें नहीं हुईं इससे उनके विचारोंका अधिक पता नहीं चला।

हमें चीनी मकान व बाग़ देखनेका बड़ा शौक था पर यथार्थ रूपसे उन्हें देखनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। एक दिन एक बाग देखा जिसमें कृत्रिम पहाड़ी इत्यादि बनी थी। बड़े छोटे सभी प्रकारके वृक्ष भी लगे थे किन्तु केवल एक बाग देखनेसे हमारी तृप्ति नहीं हुई।

एक दिन यहाँका प्रधान विद्यालय भी देखने गये थे पर बन्द होनेके कारण कुछ न देख सके, केवल बाहरसे ही बन्द कमरे देखे।

यहाँके प्रधान शिक्षाविभाग-कर्मचारीसे भी भेंट हुई। आपसे बहुत बातें

हुई किन्तु यहाँकी वास्तविक शिक्षा-प्रणालीका साफ पता न चला। चीनके सम्बन्ध-में जो संवत् १९७१ की विवरणी है (ईअर बुक आफ चाइना १९१४) उसमें इसका वृत्तान्त दिया है।

पाँच दिन यों ही इधर उधर व्यतीत हो गये और हमने हैंगकाऊकी यात्रा करनेका संकल्प कर लिया। यहाँकी यात्राका विचार कई कारणोंसे हुआ था। (१) रास्तेमें होनानकू देखनेकी इच्छा थी। यह वह जगह है जहाँ विक्रमके पूर्व दूसरी शताब्दीमें हानवंशकी राजधानी थी। यहीं प्रथम प्रथम बौद्ध धर्मका प्रचार चीनमें हुआ था। १२४ संवत्में यहाँ प्रथम 'बुद्ध-चैत' बना था जो अब तक भी विद्यमान है। (२) पीकिंगसे हैंगकाऊ प्रायः सात सौ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर है। यहीं जानेसे चीनके भीतरकी व्यवस्थाके दिग्दर्शन हो जानेकी आशा थी। (३) हैंगकाऊमें एक बृहत् लोहेका कारखाना है उसे भी देखना अभीष्ट था। (४) हैंगकाऊ ही वह जगह है जहांसे मन्चूवंशके विरुद्ध प्रथम विद्रोहका झंडा उठा था जिसने चीनमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। (५) यहां जानेसे बृहत् नद यांगट्सीकियांगपर होकर शांघाई जानेका अवसर मिलेगा। इन्हीं सब बातोंके विचारसे बहुत असुविधा रहनेपर भी हमने यहां जानेका निश्चय कर लिया।

हैंगकाऊका दृश्य

(पृष्ठ ३७८)

पृथिवी प्रदक्षिणा

घास लिये हुए चीनी कुली (पृष्ठ ३७४)

दसवाँ परिच्छेद।

—:०:—

हैंगकाऊ यात्रा।

प्रथम दिन।

प्रातःकाल ९ बजे मैं हैंगकाऊ चलनेके लिये तैयार हो रेलघर आगया। रेलघरमें मजदूरोंसे बड़ी दिक़त उठानी पड़ी। वे कुछ बात ही नहीं सुनते थे। पथ-प्रदर्शक महाशय भी एक प्रकारके सीधे-सादे व्यक्ति थे। आप न तो अच्छी अंगरेज़ी बोल सकते थे, न भलीभांति बातोंका आशय ही समझ सकते थे। बात कहो कुछ, समझते हैं कुछ। इससे बाज़ वक्त तबीयत बड़ी खिझला जाती थी। अस्तु, राम राम करके गाड़ी मिली, असबाब रक्खा गया और हम लोग रवाना हुए। मुझे रात्रिमें "चैंगचाऊ" रेल घरमें १२ बजेके लगभग उतर जाना था इससे मैंने सेज लेना निरर्थक समझा किन्तु यहां प्रथम श्रेणीमें जो बैठनेका स्थान था वह इतना संकुचित था कि ज़रा भी लेटने पौढ़नेकी जगह न थी इससे लाचार हो सेज लेनी ही पड़ी।

गाड़ी जिस राहसे जा रही थी वह बड़ी ही रमणीक थी। सारी ज़मीनमें हरी हरी खेती दीखती थी। ऊसर व बञ्जरका नाम भी कहीं न था। "सुदृढ़ कृषक-समाज देशके सांचे गौरव" द्वारा जहां तहां खेतोंमें नाना क्रियाएँ की जा रही थीं, कहीं जुताई, कहीं सिंचाई, कहीं निराना, कहीं काटना, कहीं दांवना, कहीं ओसावना, सांराश सभी कार्य हो रहे थे।

अब दोपहर हो गया। भोजनका समय निकट आ गया। मैंने पथ-प्रदर्शक महाशयको बुला भोजन मांगा। पीकिंगसे चलनेके पूर्व मैंने इन्हें रोटी व भाजी ले लेनेका आदेश किया था। ये लाये भी थे पर चलते समय कुछ अन्य चीजोंके साथ उसे बांध रक्खा था। मैंने कहा "भैया उसे मत ले चलो"। बस आपने उसके साथ रोटी भी छोड़ दी ! मांगने पर यहां आपने कहा कि आपके कहनेसे ही तो हम छोड़ आये। उनपर बड़ा क्रोध आया, पर निरर्थक समझ चुप रहा। खैर, थोड़े समयमें आप रेलघरसे कुछ लिट्टी ख़रीद लाये। इसपर सफेद तिल लगे थे, बीचमें किसी दालका आटा नमक मिलाकर भरा था। गरज़ कि वह 'सिझी' अच्छी थी, और "सबसे मीठी भूख" को भी कहावत चरितार्थ होती थी।

[इसके आगेका अंश लिखनेका मुझे अवसर ही नहीं मिला। मैं प्रायः अपने स्मृति-गुटकामें लिखने योग्य वस्तुओंका उल्लेख कर लिया करता था और जब अवकाश मिलता था तब लिख लिया करता था। जैसा मैं ऊपर बता चुका हूँ इस विशेष यात्रामें केवल तीन चीजें ही लिखनेकी थीं (१) होनानफू जहांपर पहिले पहिल बुद्ध धर्म्मका प्रचार चीनमें हुआ था (२)

हैङ्ककाऊका नगर व वहाँका लोहेका कारखाना (३) याङ्गट्सीकियाँग नदीकी यात्रा व शांघाई नगरका विवरण। मेरा विचार था कि शांघाईसे रवाना होनेके बाद जहाज़में समय मिलेगा वहाँ इसका विस्तारसे विवरण लिख सकूँगा। पर जहाजपर चलकर घरकी ओर रवाना होनेके बाद पहिले हाङ्ककांगमें छेड़छाड़ हुई, फिर सिंगापुरमें मैं उतार लिया गया जहाँ मुझे तीन मास तक कैसरे-हिन्दका मेहमान रहना पड़ा गो मेहमानदारीका कुल व्यय मुझे ही देना पड़ा। इन कारणोंसे रास्तेमें यह अंश लिखनेका अवसर नहीं मिला। घर लौटनेपर अनेक विघ्न व बाधायें उपस्थित होती रहीं जिनके कारण आज आठ वर्ष तक यह पुस्तक न छप सकी और न इस अंशके लिखनेकी ही नौबत आयी। अब इस अंशका लिखना कठिन हो गया है क्योंकि एक तो अधिक दिन बीत जानेसे वृत्तान्त भी विस्मृत हो गया, दूसरे मेरे पास याददाश्त भी पूरी नहीं है। आशा है पाठकगण इस त्रुटिके लिये मुझे क्षमा करेंगे।

मैं इसका प्रयत्न कर रहा हूँ कि यदि किसी प्रकार संभव हो सका तो पुस्तकोंके आधारपर भूमिकामें इन उपर्युक्त जगहोंका संक्षिप्त वृत्तान्त दे दिया जाय। इससे अधिक कुछ कर सकना मेरे लिये प्रायः असंभव ही है।]

॥ इति ॥

विशेष शब्दोंकी सूची ।

[पृष्ठ-संख्याके क्रमके अनुसार]

सहन, चौक, आँगन २७,२००
वज़ू करना, हाथ मुँह धोना २७
वक़्फ, दान ३१
दालमंडी, काशीका एक मुहल्ला जहाँ वेश्याएँ रहती हैं ३२
बहर, अशुद्ध है, वाह, वाह पढ़िये ३२
कहवा (काफी), एक पेड़का बीज जिससे एक तरहकी चाय तैयार होती है ३२
करेप, झीना रेशमी कपड़ा ३२
टेटी, ब्रजका एक वृक्ष जिसके फलकी कचरी व अचार बनाते हैं ३३
जगमोहन, मन्दिरके सामनेका दालानकी तरहका भाग ३४
दामन, पहाड़के नीचेकी भूमि, अंचल ३५,३१५
ढोके, पत्थरके अनगढ़ टुकड़े ३८,२०३
डाँड़े, नाव खेनेके डाँड़े ३८
लुङ्गी, छोटे अर्जकी धोती ४२
पौले, एक प्रकारकी खड़ाऊँ ४२
खुज्जा, फलके भीतरका रेशेदार भाग, जैसे नेनुएका ४२
वे, मिश्री उपाधि ४३
अनी, नोक, बछका नुकीला भाग ४५
यात्रीवाल, यात्रियोंका प्रदर्शक ५१
पियावा, पौसरा ५३
सुम्बुल, एक काली, चमकीली व पतली शाखका पौधा जो प्रायः पुराने कुओंमें होता है। उर्दू-वाले इसकी मिसाल बालोंसे देते हैं। अंगरेजीमें इसे 'फर्न' कहते हैं। ५७
चंगेज़, चंगेर, बांस या बेतकी डलिया ५७
सरो, चीड़की जातिका पेड़ जो बाग़ोंमें लगाया जाता है, यह गावदुम होता है ५८
चकोतरा या माहताबी, बड़ा नीबू ६१
सलाद, एक तरहका भोजन जो भाजियोंसे बना होता है, इसमें खटाईकी विशेषता रहती है ६१
सुलफेबाज़, गंजेड़ी ६२
चैलियाँ, लकड़ीके पतले टुकड़े ६८
वास्तुविद्या, गृहनिर्माणविद्या, इञ्जीनियरी ७८
आखनिक शास्त्र, खनिज विद्या ७८
अनगढ़, उजड्ड, अनाड़ी ८२
फगुल, बच्चोंके पहिननेका कपड़ा ८५,३१०
पुंश्चली, कुलटा ८८
मौनी, सींककी छोटी दौरी ९१
बेंचवर्क, बढ़ई या मिस्त्रीका वह काम जो एक लम्बी मेज़पर बैठकर या औजारोंको रखकर किया जाता है ९१
खीप, छीप, चाँदी या वह चोंगी जिससे शीशी या बोतलमें तेल इत्यादि डालते हैं ९६
चरी, छोटी ज्वारके हरे पेड़ जो चारेके काममें आते हैं १००
मक्की, मकई १००
जई, जौकी जातिका एक अन्न १००
झुप्पे, झब्बे, खोशे १००
बाल, ज्वार इत्यादिके पौधोंका डण्ठल जिसके चारों ओर दाने गुछे रहते हैं १००
खराद, खरादनेका यंत्र १०१
बाँझ, एक पहाड़ी वृक्ष जिसे अंगरेजीमें 'ओक' कहते हैं १०२
लढ़िया, बैल गाड़ी १०२
दहाने, लोहेकी एक वस्तु जो घोड़ेके मुहँमें रहती है व जिसपरसे लगाम लगायी जाती है १०२
उजरत, मज़दूरी १०५
कहुआ, कहवा, काफी १०६
सतालू, शफताल़ू, एक प्रकारका फल १०६

मीना, सोने-चाँदीके ऊपर पक्के रंगका काम २०१
बैठकी मोती, जो एक ओर चिपटा और दूसरी ओर गोल हो २०२
अकीक, एक प्रकारका लाल नगीना २०४
साँझी, रंग या फूलकी तसवीर जो आश्विनमें मथुराकी तरफ मन्दिरोंमें बनती है २०५
पंजरिका, 'पुस्तिका'से अभिप्राय है २०९
'गम्भीरा', गरबा, एक प्रकारका गीत जिसे गाते हुए स्त्रियाँ गोल घूम घूम कर नाचती हैं २०९
गेशा, जापानी वेश्या २११
सलई, देवदारुकी लकड़ी २१९
कीमोनो, जापानी चोग़ा २१९,२९३
सरज़मीन, धरती, मुल्क़ २२२
पैवस्तगी, ममता २२३
मज़ार, क़ब्र, समाधि २२३
आज़ार, दुःख २२३
मुतअसिब, पक्षपात करनेवाले, धर्मान्ध २२३
मुताह, मुता, शिया लोगोंमें एक तरहका विवाह जो थोड़े समयके लिये होता है २२४
तरखा, जलका तेज बहाव २२८
कुट, लुगदी, गूदा २३०
नादेहन्दी, न देना २५४
महकर, मथकर २६६
मरउत, दूधके ऊपरका गाढ़ा अंश जिसे अंगरेजीमें 'क्रीम' कहते हैं २६६
लवाब, लासे या लारकी तरहका पदार्थ जो अलसी इत्यादि वस्तुओंसे निकलता है २६९
गाँसी, तीर व बर्छी इत्यादिका फल २६९
कलीसा, गिरजाघर २७८
लुक होना, वार्निश होना २७९,३२८
बेज़ार हैं, तंग आगये हैं २८३
बिलैया, एक तरहकी सिटखिनी २८७
पल्ली, छोटा गाँव २९२
बन्दरबाँट, थोड़ा थोड़ा करके हड़प जाना २९५
बेहरी, चन्दा २९७
लंगड़, पेण्डुलम (इस वाक्यमें तराज़ू तथा घड़ीके मानसिक चित्रोंका मिश्रीकरण है) २९९
बगलबन्दी, एक प्रकारकी मिर्जई ३०९
लिञ्च (लिंश) करना, न्याय विधिका पालन न कर यों ही फैसला करना व मृत्यु-दण्ड देना ३१३
घोड़िये, कपड़े टाँगनेके लिये दीवारमें लगी खूटियाँ ३२०
आबगर्मा, पानी गर्म करनेका बर्तन जिसके बीचमें आग व चारों ओर पानी रहता है ३२१
खिस्सूपन, हँसोड़पन ३२१
चरसा, गाय इत्यादिका पूरा चमड़ा ३२४
जोते, अशुद्ध छपा है, जाँते चाहिये ३२५
बहोरी, आस्तीन ३२५
मिजाजपुर्सी, कुशलप्रश्न (यहाँपर व्यंगमें प्रयुक्त हुआ है) ३२६
उलटा, बेसनका एक पकवान, पपरा, चिल्ल या चिल्ला ३२८
बेवड़ा, वह डण्डा जो द्वार बन्द करनेके लिये दीवारके छिद्रों-में आड़ा लगा दिया जाता है ३२८
पित्तेमारका काम, बड़ी मेहनत तथा धैर्यका काम ३४७
तकिया मुतक्का, पटिया जो छज्जे, रोक या सहारेके लिये लगायी जाती है ३६१
दीबाचा, भूमिका ३६९
ताबूत, मुर्देका सन्दूक ३७१
झम्पान, एक प्रकारकी पालकी ३७४

अनुक्रमणिका।

अनुक्रमणिका।

ऊ

ए

ओ

औ

क

* अन्य विवरणोंके लिये 'चीन' शब्दके नीचे देखिये ।

य

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

होनानफू तथा हैंगकाऊका विवरण ।

होनानफू ।

शुद्ध प्राचीन नगर चीनके पुरातन साहित्यमें प्रसिद्ध पाँच पर्वतोंमें से 'सुंग-शान' नामक पर्वतके समीप बसा हुआ है। दो छोटी छोटी नदियाँ भी यहाँसे बहती हुई निकली हैं जिनके कारण तथा अनेक प्राचीन चिह्नोंके कारण यहाँ एक निराली ही छटा देखनेमें आती है। पहिले यह नगर कई राजवंशोंकी राजधानी रह चुका है। उस समय इसका नाम 'लो-याङ्ग' था। हान वंशके उत्तरकालमें जब यहाँ मिङ्गटी नामका राजा राज्य करता था तब उसने बौद्ध धर्मप्रचारकोंको बुला लानेके लिये 'त्साई यिन' तथा अन्य लोगोंको भारतवर्ष भेजा था। ये लोग विक्रम संवत् १० में लौटकर राजधानामें पहुंचे। उनके साथ दो भारतीय बौद्ध भिक्षु थे और एक घोड़ेकी पीठपर लदे हुए बहुतसे धार्मिक ग्रन्थ भी थे। होनानफूमें पाई-मा-जू अर्थात् 'श्वेताश्व-मन्दिर' नामका जो मन्दिर है वह इसी घोड़ेकी याददाश्तमें बनाया गया था। घोड़ेकी मृत्युके बाद उसका मृतशरीर इसी स्थानपर गाड़ा गया था, इसी वजहसे मन्दिरका नाम 'श्वेताश्वमन्दिर' रखा गया. क्योंकि मृत घोड़ेका रंग सफेद था। चीन देशमें यह पहिला ही बुद्धमन्दिर था।

राजाकी सहानुभूतिके कारण नूतन धर्मका प्रचार बड़ी शीघ्रतासे होने लगा। भारतसे गये हुए धर्मग्रन्थोंका अनुवाद चीनी भाषामें किया गया और धीरे धीरे भारतवर्षसे और भी कई बौद्ध प्रचारक बुलाये गये। वूनी नामक राजाके राज्यकालमें बोधिधर्म नामका सुविख्यात बौद्धधर्म-प्रचारक यहाँ आया। सुंग-शान पर्वतपर जहाँ इस समय शाओलिंगजू नामका मन्दिर है, कहते हैं उसी स्थानपर एक चट्टानकी दीवारकी तरफ मुँह किये हुए लगातार नव वर्षतक बैठकर बोधिधर्मने कठिन तपस्या की थी। इस प्रकार चीनमें बुद्ध-धर्मके प्रचारका आदिस्थान तथा अनेक प्राचीन स्मारकोंकी पवित्र भूमि होनेके कारण ही यह नगर विशेष महत्त्वका समझा जाता है। यहां अब भी बहुतसे मन्दिर भग्नावस्थामें पाये जाते हैं जिनमें दुर्गा, भैरो, व गणेशजी जैसी अनेक मूर्तियां मिलती हैं। भारतवासियोंको यहां आकर यही जान पड़ेगा मानो वे किसी हिन्दू तीर्थस्थानमें हों, अस्तु।

हैंगकाऊका लोहेका कारखाना ।

हैंगकाऊ नगर शांघाईसे ३८५ मील व पीकिङ्गसे ७५४ मीलकी दूरीपर बसा हुआ है। इसके पास ही दो नगर–हानयांग व वू-चंग—और हैं। इन तीनों नगरोंके कारण यह स्थान चीनके व्यापारका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। हान-शुई तथा यांगट्सीकियांग, इन दो नदियोंकी समीपता इसकी व्यापारवृद्धिमें विशेष सहायक

है। इस नगरत्रयीकी संयुक्त आबादी कोई ११॥ लाख है जिसमेंसे आठ लाख मनुष्य अकेले हैंगकाऊमें ही रहते हैं। यहांपर अंगरेजों, रूसियों, फरासीसियों, जर्मनों व जापानियोंकी पृथक् पृथक् बस्तियां हैं। ये सब प्रधान नगरके उत्तर-पूर्वके कोनेमें यांगट्सीकियांगके तीरपर अवस्थित हैं। वू-चंग तथा हानयांगकी जनसंख्या क्रमशः अढ़ाई लाख तथा एक लाख है। इस प्रकार तीनों नगरोंमें सबसे बड़ा होनेके कारण व तीनोंके बिलकुल पास पास बसे रहनेके कारण हैंगकाऊ ही अन्य दो नगरोंकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है, यहां तक कि कभी कभी तीनोंके लिये केवल 'हैंगकाऊ' नामका ही प्रयोग किया जाता है और हानयांग व वू-चंग पृथक् नगर न माने जाकर हैंगकाऊके ही भाग समझे जाते हैं। यही कारण है कि लोहेका कारखाना वास्तवमें हानयांग नगरमें होते हुए भी बहुधा हैंगकाऊका ही कारखाना कहलाता है।

यह कारखाना हान-शुई नदीके दाहिने किनारेके पास ता-पाइ-शान पहाड़ीके उत्तरी अञ्चलमें स्थापित है। इसका विस्तार एक मीलसे भी अधिक है। इसमें धाऊ (कच्चा लोहा) गलानेके लिये ईंटोंकी बड़ी बड़ी दो भट्टियां बनी हुई हैं। ये १२० हाथ ऊंची हैं और इनका व्यास १२ हाथ है। कोयला व धाऊ आपही आप चलनेवाले यंत्रकी सहायतासे ऊपर ले जाकर भट्टियोंमें डाला जाता है। पिघला हुआ लोहा दो हाथ लम्बे व चार इञ्च चौड़े छड़ोंके रूपमें ढाल लिया जाता है। इन भट्टियोंसे उत्तर-की तरफ चतुष्कोण आकारका कोई ६६७ हाथ लम्बा व १६० हाथ चौड़ा कारखाना है जिसमें भट्टियोंसे निकले हुए लोहेको फौलादी चद्दरों तथा रेलकी पाँतों इत्यादिका रूप दिया जाता है। इस कारखानेके पश्चिममें तोपें तथा गोला-बारूद इत्यादि तैयार करनेका कारखाना भी है।
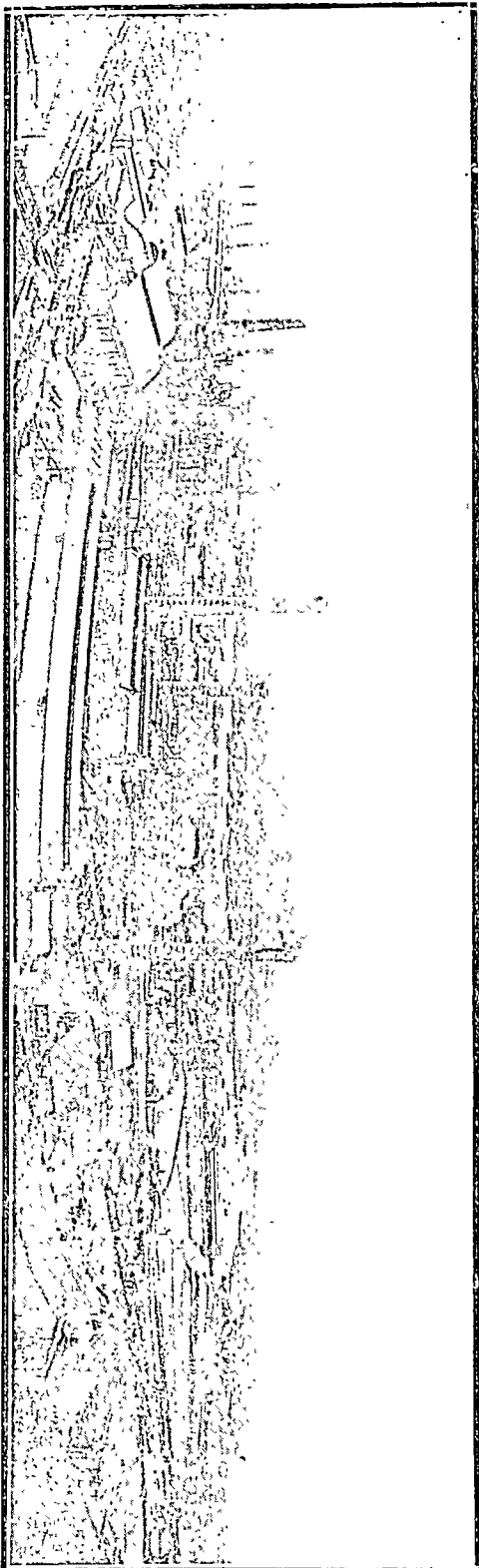
हैंगकाऊका लोहेका कारखाना (पृष्ठ ४०२)

परिशिष्ट—२

शुद्धि-पत्र।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
धु	बन्धु	३	७
थोड़ी सी	थोड़ेसे	५	३०
शुतुमुर्ग	शुतुर्मुर्ग	,,	३१
वायू	वायु	७	१९
पतला।	पतला	,,	२०
पाना	पानी	,,	२९
सगारों	सागरों	९	१०
हि	हिम	,,	१९
जह	जहाँ	१०	५
म लूम	मालूम	,,	३१
ह ते	होते	११	३०
गुलिस्तां	गुलसितां	१२	१३
९२५	१९२४	१४	२५
जो	जब वह	१५	११
थे	गये थे	१७	६
वस्तुओंको	वस्तुओंका	१८	११
वा	व	१९	१२
यर्दा	पर्दा	२०	३
और	ओर	२२	१६
गामीअल	जामीअल	२५	४
कको	एकको	२६	१३
उमानिया	उस्मानिया	२७	२
औह	और	,,	७
ममोरम	मनोरम	२८	३
र	दूर	२९	२
विदान्	विद्वान्	,,	७
अरुज	उरुज़	३१	४
चल ा	चलता	,,	५
जलेखा	जुलेखा	,,	१७
जए	जहाँ	३३	४

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
गये ये	गये थे	३६	२०
वलक्षण	विलक्षण	३७	५
देख ा	देखने	,,	१६
विश्र म	विश्राम	३८	३
हुआ है	हुए हैं	४०	९
आध मील	यह आध मील	४३	२२
मुकावलमें:	मुकाबलःमें	४५	३१
अलीगड़	अलीगढ़	४७	३६
वात	बात	,,	३७
जिस	जिस	४८	२
निकल	निकला	५२	९
यहाँपर ईसामसीह	यहांपर एक ओर ईसामसीह	,,	२१
चढ़ा हुई एक ओर	चढ़ी हुई रखी है	,,	२१
इधर	इधर	,,	२३
मोमवर्त्ती	मोमबत्ती	,,	२७
वहांपर	यहांपर	,,	२९
उठ ने वाले	उठानेवाले	५४	२३
नया	गया	५५	२१
आगापीछा	आगपीछ	,,	२६
११॥ फुट	१११॥ फुट	५६	१८
स्रोत	स्रोत	५७	११
अर्थात्	अर्थात्	,,	२३
प्रेम-स्रोत	प्रेम-स्रोत	५९	५
घोड़ा	घोड़ी	,,	२२
यहांके	यहांकी	६१	१५
जूलाजिकल	जूओलाजिकल	६२	१९
चाट···मेंट	चोट···भेंट	६३	२३
योग्यसा	योग्यता	६४	३१
ध्यान	ध्यान	६५	१५
करनेके	करनेकी	,,	१९
अधिक	अधिक	,,	३५
सहस्र	सहस्र	६७	३
,,	,,	,,	,,
लण्डनयात्रा	लण्डनयात्रा	६८	७
१५७५	१७७५	७१	२२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
याहे	मेल	७१	२४
स्रोत	स्रोत	,,	३२
hollis	Hollis	,,	३७
प	व	७२	८
आपजवटरी	आयजर्वेटरी	७८	३२
जमींदारीओं	जमींदारियों	७९	१९
wether	whether	८४	९
द्रुष्म	द्वन्द्व	८६	११
होती है	होती हैं	८९	२७
लियोमार्ड	लियोनार्ड	९०	१३
लोगमें	लोगोंमें	९१	६
ग्रेम्चवर्क	येम्चवर्क	,,	३६
अत्दाजा	अन्दाजा	९२	१८
(४) यह	यह	,,	२१
मिन्न	भिन्न	९४	१९
वृहत्	बृहत्	,,	३७
होत्ता है	होता है	९५	१
वा	व	९६	२०
दो सहस्र	छः सहस्र	९६	३३
मिन्न	भिन्न	१००	७
सम्पाम्धी	सम्बन्धी	१०३	१७
मोंनी	मौनी	,,	२६
कित्तु	किन्तु	,,	२९
षिचार-स्रोत	विचार-स्रोत	१०७	१७
तठी	उठा	११०	१८
मैंने	मैं	,,	२२
सद्या	सच्ची	११६	२९
दर्शिनीय	दर्शनीय	११९	१५
प्रदर्शिनी	प्रदर्शनी	१२१	२७
,,	,,	१२३	५
अमरिकन	अमरीकन	,,	२८
प्रदर्शिनी	प्रदर्शनी	१२६	२१
साफी	साक़ी	१३०	३
मौटर	मोटर	१३८	६
धड़का उचाई	धड़की ऊँचाई	१४२	२२
रियाज़	रिवाज	,,	२७

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
गोसःबागों	गोसःबग्गो	१४३	२
ई	है	१४४	१४
स्यूयार्क	न्यूयार्क	,,	२९
सन्दूक	सन्दूक	,,	३२
निश्चत	निश्चित	,,	३७
आधे	आधा	१४५	३६
क़रनेका	करनेका	१४७	२७
लाट	लौट	१४८	२८
निवासियोंकी	निवासियोंके	१५८	११
४१५	४१.५	१५९	१
फिलीसफी	फिलासफी	१६०	२६
इन्द्रधनुप	इन्द्रधनुष	१६३	३५
दिल्गी	दिल्लगी	१७४	२८
,,	,,	,,	३१
कित्तु	किन्तु	१७६	१९
जोशोवाड़ा	जोशीवाड़ा	१९०	२
भ तर	भीतर	,,	१०
भितसुकोशी	मित्सुकोशी	,,	१७
वै ने	बैठने	१९७	१३
नियोगी	नोगी	१९८	२३
मरोंमें	कमरोंमें	२००	३१
अपन	अपनी	२०५	२
उद्वत	उद्धृत	२१५	१५
ऋपियों	ऋषियों	२२२	३०
ध्रवी	ध्रुवी	२२५	४
नाव	नावें	२२८	३५
ोई	कोई	२३२	४
आयुवद	आयुर्वेद	२४४	१७
पड़ते	परते	२५४	,,
लैकट	लैकर	२५९	११
पड़ता	परता	२६६	३३
सहस्रबाहु	सहस्त्रबाहु	२७२	३६
निशा	निशी	२७३	३३
मत्दिर	मन्दिर	२८६	७
भारताय	भारतीय	२८८	१२
दशकों	दर्शकों	२८९	१५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पोखाकें	पोशाकें	२९३	२७
गत	वर्तमान	२९९	७
था	है	,,	८
पादरियोंके	पादरियोंकी	३१६	२५
गोसी	गांसी	३२०	५
प्रदर्शिनी	प्रदर्शनी	,	१४
नायी	बनायी	,,	२८
जोते	जांते	३२५	८
सा वष	सौ वर्ष	३२६	११
शिखा स्मारक	शिखाके स्मारक	३३०	२०
औस्थर	अस्थिर	३४२	५
शताब्दा	शताब्दी	३५१	१
वर्षा	वर्षा	३५९	१९
सैदी	सादी	३६१	२५
होनानकू	होनानफू	३७८	६

पृष्ठ १३२ में जो अंगरेजी पद्यांश दिया गया है उसका मूल श्लोक यह है—

यात्येकतोऽशिखरं प्रतिरोषधीना—
मावि ष्कृतारुण पुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजो द्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥

अभिज्ञानशाकुन्तल, चतुर्थ अंक।

जहां जहां अंग्रेज, यूरोप (प्रधानतया पृष्ठ २८७ के पूर्व), अमेरिका इत्यादि शब्दोंका प्रयोग हुआ हो वहां वहां कृपाकर अंगरेज, योरप, अमरीका इत्यादि पढ़िये। इसके अतिरिक्त टाइप न उठने या मात्राओंके टूट जानेकी जो गलतियां ऊपरकी सूचीमें सम्मिलित न की गयी हों उन्हें भी पाठक कृपया सुधार लें।

परिशिष्ट—२

आधार-पुस्तकोंकी सूची।

१ वर्तमान जगत, अध्यापक विनयकुमार सरकार कृत, बंगलामें

2 An Official Guide to Eastern Asia (published by the Imperial Japanese Railways, Tokyo).
 Vol. I.—Manchuria and Chosen.
 Vol. II.—South-Western Japan.
 Vol. III.—North-Eastern Japan.
 Vol. IV.—China.

3 Report of the Association Concordia of Japan, Extra Number, Tokyo, May 1915.

4. The Journal of the Indo-Japanese Association, December 1914.

5. The Tokyo Higher Technical School.

6. Education in Japan, 1915, (published by the Department of Education, Tokyo).

7. Japan's Women's University: Its past, present, and future (published from Tokyo, 1912).

8. Japan, a monthly magazine, June 1915.

9. Baedekar's Egypt.

10. „ Southern France.

11. „ Northern France.

12. „ United States.

13. Official Report of Harvard University (April 20, May 22, July 25, September 28,1914; August 5, 1915; April 6, 1916).

14. Tuskegee Normal and Industrial Institute (by Clement Richardson).

15. Thirty-third Annual Catalogue of Tuskegee Institute, 1913-14.

16. Tuskegee to Date, 1912 (published by Tuskegee Institute, Alabama).

17. National Association for the advancement of Coloured Peoples (Fourth Annual Report 1914, New York City)

18. Official Guide to Harvard University (1907, published by the University).
19. Above the Clouds and Old New York (contains description about the Woolworth Building, 1913).
20. Nutshell Boston Guide (1912).
21. Niagara Falls City Guide.
22. Utah (contains description about the Morman Church).
23. The Official Guide to Panama Pacific International Exposition, San Francisco, 1915.
24. The Official Guide Book of the Panama California Exposition, San Diago, 1915.
25. Tourist's Guide and Handbook of Honolulu and the Hawaiian Islands, 1914 (published by the Mid-Pacific Folder Distributing Co., Ltd.)
26. Mukden (published by the Japanese Tourist Bureau).
27. Buddhist Ethics and Morality by Prof. M. Anesaki, 1912.

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाकी पुस्तकें ।

१,२—स्वराज्यका सरकारी मसविदा

सम्पादक—श्रीयुत श्रीप्रकाशजी, बी., ए., एल-एल. बी. बारिस्टर.

वर्तमान राजनीतिक प्रश्नोंकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ बड़े महत्त्वका है। पहले भागमें सरकारी मसविदा है और दूसरेमें भारतकी भूत और वर्तमान परिस्थितिकी सरकारी आलोचना। सर्वसाधारणके लाभके लिए मूल्य आधा अर्थात् ॥|=) कर दिया।

३—अब्राहम लिंकन

लेखक—श्रीयुत पं. रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

इतिहास तथा महापुरुषोंके जीवनचरितोंके अध्ययनसे गिरी हुई जातियाँ भी पुनः उठने तथा दासत्वके बन्धनसे छुटकारा पानेमें समर्थ होती हैं। अब्राहम लिंकन दरिद्र कुलमें उत्पन्न होकर भी अपने गुणोंके बल अमेरिकाके राष्ट्रपतिके पदपर पहुंच गये। इनके जीवनमें अलौकिक गुणोंके दर्शन होते हैं। दासत्वसे अमेरिकाका उद्धार करनेवाले सच्चे देशभक्तका यह अपूर्व आदर्श है। इसकी उपयोगिताके ही कारण मध्यप्रदेशके शिक्षा-विभागने इसे पाठ्य ग्रंथोंमें स्थान दिया है। मूल्य ॥)

४—प्राचीन भारत

लेखक—श्रीयुत पं. हरिमंगल मिश्र एम. ए.

ऐसे सर्वांगपूर्ण प्राचीन भारतका गौरव दर्शाने वाले इतिहासकी देशको कितनी आवश्यकता थी, यह इसे देखने ही पर प्रगट होगा। इसमें १००० विक्रम तकका संक्षिप्त इतिहास है। भारतकी प्राचीन सभ्यता, राज्यप्रणाली, राजा प्रजाका पारस्परिक सम्बन्ध, इत्यादि विषयोंका वर्णन प्राचीन इतिहास तथा पुराण ग्रन्थोंके आधारपर दिया गया है। आवश्यक चित्र भी हैं। मूल्य ३॥|-)

५—इटलीके विधायक महात्मागण

सम्पादक—श्रीयुत रामदास गौड़ एम. ए.

इस ग्रन्थमें उन्हीं जगद्विख्यात महापुरुषोंके जीवनचरित दिये गये हैं जिन्होंने इटलीको पराधीनताके पंकसे निकाला। पराधीनताकी हालतमें कैसी कैसी आपत्तियाँ आती हैं, कैसे कैसे आत्मत्याग करने पड़ते हैं, इत्यादि बातें बड़ी बारीकीके साथ दिखलायी गयी हैं। इन चरित्रोंकी सहायतासे भारतकी बहुतसी उलझनें सुलझायी जा सकती हैं। यूरोपकी राजनीतिक चालोंका भी विशद वर्णन है। मूल्य २।)

६—यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक

लेखक—श्रीयुत पं, चन्द्रशेखर वाजपेयी, एम. एस-सी, एल-टी,

इस ग्रंथमें यूरोपके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानोंकी शिक्षा-पद्धति विषयक आलोचना दी

गयी है, साथ ही इसमें शिक्षाका वह रूप बड़ा बारीकीसे दिखलाया गया है जिसने पाश्चात्य देशोंको इतना शक्तिशाली तथा समृद्ध बनाया। भारतीयोंको शिक्षाप्रणालीके इन तत्वोंको भलीभाँति समझ लेना चाहिए। पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य सजिल्दका १॥)

७—विहारीकी सतसई

लेखक—पंडित पद्मसिंह शर्मा

इस पुस्तकमें विद्वान् लेखकने विहारीकी काव्यशक्ति, विरह वर्णन इत्यादि विषयोंकी ओजस्विनी भाषामें आलोचना की है। मूल्य २)

८—बनारसके व्यवसायी

लेखक—श्रीयुत भगवतीप्रसाद सिंह एम. ए.

इस ग्रन्थमें बनारसके कारीगरोंकी स्थितिका सच्चा चित्र खींचा गया है। लेखकने बड़े परिश्रमसे घर घर घूमकर इसकी आवश्यक सामग्रीका संग्रह किया है और यह प्रमाणित किया है कि यदि प्राचीनकालागत व्यवसायोंका पुनरुद्धार किया जाय तो पाश्चात्य देशकी बनी वस्तुओंसे ये बखूबी मुकाबला कर सकती हैं। मूल्य ।=)

९—गृहशिल्प

लेखक—स्वर्गीय श्रीयुत बाबू गोपाल नारायण सेन सिंह बी. ए., एल-एल.बी

किसी समयमें भारत उद्योग-धन्धों तथा कारीगरीमें सारे संसारमें सबसे बढ़ा हुआ था। विलासिताकी सामग्रियाँ भी प्रायः यहींसे सभी देशोंमें पहुंचती थीं और उनका व्यवहार भी लोगोंने यहींसे सीखा। इस पुस्तकमें इन्हीं उद्योग-धन्धोंकी दशा तथा उनकी उन्नतिके उपाय बतलाये गये हैं। घरू उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेमें यह पुस्तक विशेषरूपसे सहायक होगी। मूल्य ॥)

१०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद

लेखक—श्रीयुत रामदास जी गौड़ एम. ए.

जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजीके अद्वैतवादपर वैज्ञानिक दृष्टिसे इसमें विचार किया गया है। विज्ञानद्वारा यह दिखलाया गया है कि ज्यों ज्यों नयी गवेषणाओंसे नये सिद्धान्त निकलते आ रहे हैं त्यों त्यों अद्वैत सिद्धान्तकी पुष्टि होती जा रही है। इसमें देश (स्पेस), शून्यता, अनन्यता इत्यादिके लक्षण, सृष्टिका विकास और अन्त, अनात्मकी एकता,, विकास सिद्धान्त, व्यावहारिक वेदान्त, उपासना इत्यादि गम्भीर विषयोंपर विद्वत्तापूर्ण मीमांसा की गयी है। सजिल्दका मूल्य १॥=)

११—जापानकी राजनीतिक प्रगति

अनुवादक—श्रीयुत लक्ष्मण नारायण गर्दे

जापानने इधर ५० वर्षोंके अन्दर जैसी आश्चर्यजनक उन्नति की है यह प्रायः सभीपर विदित है। इसने उद्योग-धन्धे आदिके साथ साथ राजनीतिक विषयोंमें भी बड़ी उन्नति की है, इन सभी कारणोंसे आज उसका स्थान शक्तिशाली देशोंमें बहुत ऊँचा हो गया है। इस पुस्तकमें इन्हीं सब बातोंका क्रमागत विकास बड़ी

१७—राजनीति शास्त्र

लेखक—श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार

हिन्दी साहित्यमें इस विषयपर अपने ढङ्गकी यह पहली ही पुस्तक है। इसमें सभी मुख्य मुख्य राजनीतिक सिद्धान्तोंका, राष्ट्रोंके सामान्य रूपका, उनके विकास तथा ह्रासका, शासन-कार्यमें प्रजाके अधिकारोंका, भिन्न भिन्न शासनपद्धतियों और शासकोंके उत्तरदायित्व इत्यादिका विशद वर्णन किया गया है। राजनीतिक उन्नति चाहने वालोंको इसका अवलोकन अवश्य करना चाहिए। मूल्य सजिल्दका २।=)

१८—राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्र

लेखक—श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार

यह बहुत गहन किन्तु उपयोगी विषयकी पुस्तक है। इसमें राष्ट्रकी आमदनी तथा खर्चके भिन्न भिन्न तरीकों, उनकी उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता, कर-सिद्धान्त तथा राष्ट्रीय ऋण आदि महत्वपूर्ण विषयोंकी मीमांसा की गयी है। देशके सभी पढ़े लिखे नागरिकोंको इस पुस्तकसे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य ३।)

१९—अंग्रेज जातिका इतिहास

लेखक—श्रीयुत गंगाप्रसाद एम. ए.

यह इतिहास अंग्रेज जातिकी राजनीतिक तथा सामाजिक उन्नतिपर दृष्टि रखकर लिखा गया है। इस पुस्तकमें राजाप्रजाके पारस्परिक संघर्ष तथा उन घटनाओंका वर्णन विशद रूपसे दिया गया है जिनके कारण यह छोटा सा टापू इतनी आश्चर्यजनक उन्नति कर सका। पृष्ठ-संख्या ४२५, मूल्य सजिल्दका २।)

२०—भारतवर्षका इतिहास

लेखक—एक इतिहासप्रेमी

इसमें वैदिक कालसे लेकर वर्तमान समय तकका इतिहास दिया गया है। भारतकी राष्ट्रीय सभ्यता तथा उसके राजनीतिक विकासपर विशेष रूपसे प्रकाश डाला गया है। हिन्दू जातिके उत्कर्ष और उसके वर्तमान राजनीतिक पतनका वर्णन बड़ी मार्मिक भाषामें किया गया है। इसकी रचना बड़े परिश्रम और खोजके साथ की गयी है। मूल्य सजिल्दका २॥।)

२१—अशोकके धर्मलेख (पहला भाग)

लेखक—श्रीयुत जनार्दन भट्ट एम. ए.

इसमें अशोकका संक्षिप्त इतिहास और धर्मलेखोंके आधारपर उनकी राज्य-व्यवस्था, धर्म-प्रचार, प्रजावत्सलता इत्यादि विषयोंका वर्णन दिया गया है; प्रत्येक लेखका संस्कृत और हिन्दी अनुवाद दिया गया है और फुटनोटमें पाठान्तर तथा विवादग्रस्त स्थलोंके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न विद्वानोंके मत दिये गये हैं। पुस्तकके अन्तमें ६ परिशिष्टोंके अतिरिक्त अनुक्रमणिका भी दी गयी है। अशोकके धर्मलेखोंपर सम्भवतः अन्य किसी पुस्तकमें पुरातत्त्वज्ञोंकी सम्मतियोंका ऐसा संग्रह और मीमांसा न मिलेगी। पृष्ठसंख्या ५१६, मूल्य २॥।) (दूसरे भागमें धर्मलेखोंके चित्र होंगे)

बारीकीसे दिखलाया गया है और उसके प्रत्येक अंगका पृथक् पृथक् अध्यायोंमें पूरा पूरा वर्णन दिया गया है। मूल्य ३॥=)

१२—रूसका पुनर्जन्म

लेखक—श्रीयुत सोमदत्त विद्यालंकार

यह पुस्तक 'रिवर्थ आफ रशियां' के आधारपर लिखी गयी है। उस आकस्मिक राज्यक्रान्तिका वर्णन है जिसने वहाँकी ज़ारशाहीका तंत्र स्थापित कराया। असहाय प्रजाके साथ मनमानी करनेका क्या है और निर्बलसे निर्बल प्रजा भी अत्याचार अधिक होनेसे क्या इत्यादि बातें बड़ी बारीकीसे दिखलायी गयी हैं। चित्र भी हैं।

१३—रोम साम्राज्य

लेखक—श्रीयुत शंकर राव जोशी

रोमका किस प्रकार इतना विशाल साम्राज्य खड़ा हुआ, सीज़र, महापुरुषोंने किस प्रकार इसकी शक्ति बढ़ायी और पीछे वैभवके मदसे शासकोंके ही हाथ किस प्रकार इसका अधःपतन हुआ इत्यादि विषय साथ वर्णित किये गये हैं। मूल्य २॥)

१४—खादका उपयोग

लेखक—श्रीयुत दुर्गाप्रसाद सिंह

वैज्ञानिक ढंगसे लिखी जानेपर भी पुस्तककी भाषा अत्यन्त सरल है। किन किन फसलोंके लिए कौनसा खाद कब कितना देना चाहिए और उसे किस प्रकार तैयार करना चाहिए इत्यादि आवश्यक बातें बड़े सरल ढंगसे दी गयी हैं। खेतीसे सम्बन्ध रखनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए। मूल्य १)

१५—सारनाथका इतिहास

लेखक—अध्यापक वृन्दावन भट्टाचार्य एम. ए.

इस पुस्तकमें सारनाथका पूरा विवरण, बुद्धदेवसे भी पहलेका इतिहास, [illegible]सकके आविष्कार, भांति भांतिकी मूर्तियां, स्तम्भ तथा शिला-लेख इत्यादि सभी विषय सांगोपांग दिये गये हैं। भाषा बड़ी आसान है। आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं। इतिहास एवं स्वदेश प्रेमियोंको इस पुस्तकसे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। मूल्य ३॥)

१६—ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास

अनुवादक—श्रीयुत केशवदेव सहारिया.

यह सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान् श्री रमेशचंद्र दत्तकी "एकानामिक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया" का संक्षिप्त अनुवाद है। इसके पढ़नेसे मालूम हो जायगा कि भारतकी निर्धनता कैसे बढ़ती गयी, इसके उद्योग-धन्धे कैसे नष्ट किये गये, स्वार्थ-[illegible] कैसे कैसे कर बैठाये गये एवं किस प्रकार विदेशियों द्वारा इसका रक्त [illegible] गया। मूल्य सजिल्द[illegible]